सम्मर्पण

प्राप्तिस्थान
श्री शरत कुमार मित्र, एडवोकेट
८५ ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता

उनका अनुमति से
सप्रेम, सविनय, सश्रद्धा
समर्पित

❀

समर्पण

पंचदश शताब्दी के बिहार की जिस विभूति के अमर-गान से
समस्त भारतवर्ष विमोहित हुआ था,
उस मैथिल-कोकिल

विद्यापति

के अकृत्रिम पदों का यह विचारात्मक संस्करण
बीसवीं शताब्दी के बिहार के गौरव,
स्वाधीनता-मन्त्र से समस्त भारतवर्ष को उद्बोधित करने वाले

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

को
उनकी अनुमति से
सप्रेम, सविनय, सश्रद्धा
समर्पित

❀

सूचीपत्र

संकेत-निर्देश

अ—अमूल्य विद्याभूषण और खगेन्द्रनाथ मित्र सम्पादित विद्यापति पदावली।

ग्रि: वा ग्रयर्सन— An introduction of the Maithily Language of North Bihar, containing a grammar, chrestomathy and vocabulary (1881).

न० गु—नगेन्द्रनाथ गुप्त सम्पादित विद्यापति की पदावली का वंगीय साहित्य परिषत् संस्करण (१३१६ बगाँब्द)

न० गु-तालपत्र—इस संस्करण के तरौणी के तालपत्र की पोथी से लिए हुए पद।

प-त—पदकल्पतरु, सतीशचन्द्र राय सम्पादित वंगीय साहित्य परिषत् संस्करण।

प-स—पदामृत समुद्र, पण्डित वावाजी महोदय की पोथी की पृष्ठ-संख्या।

वेनी—रामवृक्ष वेनीपुरी सम्पादित विद्यापति की पदावली का संस्करण।

मि० गी० स—मिथिला गीत संग्रह।

रागत—रागतरंगिणी, दरभंगा राज-लाइब्रेरी से प्रकाशित संस्करण।

रामभद्रपुर—रामभद्रपुर में प्राप्त पोथी की पदसंख्या।

सा० मि०—सारदाचरण मित्र सम्पादित विद्यापति पदावली का संस्करण।

क्षणदा—विश्वनाथ चक्रवर्ती संगृहीत क्षणदागीत चिन्तामणि, वृन्दावन संस्करण।

J.A.S.B—Journal of the Asiatic Society of Bengal.

J.B.O.R.S—Journal of the Bihar and Orissa Research Society

I.A.—Indian Antiquary

द्रष्टव्य— आकरग्रन्थों में जो पद जिस भाव में पाया गया है ठीक उसी भाव में छापा गया है। छन्द इत्यादि के संशोधन की कोई चेष्टा न की गयी है।

मुखबन्ध

(नवीन संस्करण)

विद्यापति की पदावली का एक इतिहास है। स्वर्गीय सारदा चरण मित्र ने १८९१ ई० में एम० ए० पास कर जब प्रेसिडेन्सी कौलेज में अध्यापकता ग्रहण की उस समय से वंगला साहित्य के प्रति उसकी प्रगाढ़ प्रीति का सूत्रपात हुआ। इसके कुछ वाद से वे साहित्याचार्य अक्षय कुमार सरकार से मिल कर प्रत्येक मास "प्राचीन काव्य संग्रह" प्रकाशित करने लगे। अक्षय कुमार ने चन्डीदास का तथा सारदाचरण ने विद्यापति का भार लिया। इसके वाद से विद्यापति की पदावली "प्राचीन काव्य संग्रह" में प्रकाशित होने लगी एवं वाद में एकत्रीकृत होकर १३८५ साल में पृथक-पुस्तकाकार में प्रकाशित हुई।

इसके वाद सारदाचरण मित्र महाशय के यत्न से, अर्थव्यय से तथा तत्वावधान में वह १३१६ साल में पण्डित-प्रवर नगेन्द्रनाथ गुप्त महाशय के सम्पादन में प्रकाशित हुई। इस संस्करण के खतम हो जाने के वाद १३४१ साल में वहुभापाविद् पण्डित अमूल्यचरण विद्याभूषण के ऊपर इसके द्वितीय संस्करण के सम्पादन करने का भार अर्पित हुआ। उन्होंने इन पदों को सजा कर एवं कितने नये पदों को जोड़ कर यह संस्करण प्रस्तुत किया। सारदाचरण मित्र के सुयोग्य पुत्र हाईकोर्ट के एडवोकेट श्रीयुक्त शरत्कुमार मित्र ने प्रथम खण्ड के रूप में इन पदों को प्रकाशित किया। उसके सात वर्षों के वाद वन्धुवर अमूल्यचरण के अस्वस्थ होने पर शरत् वावू ने इस संस्करण के पूरा करने का भार मुझे सौंपा, मैंने २१० संख्या के पद के वाद से समस्त अवशिष्ट पदों की व्याख्या करके एक शब्दसूची के साथ उसका सम्पादन किया। इसकी सम्पादना में मेरे वन्धु और भूतपूर्व छात्र मैथिल भापाभिज्ञ सुपण्डित श्रीयुक्त विद्यानन्द ठाकुर एम० ए० वी० एल० साहित्य-विनोद महाशय ने मेरी प्रभूत सहायता की थी। विद्यानन्द ठाकुर आज इस लोक में नहीं हैं, उन्होने जिस अकुण्ठ भाव से मेरी सहायता की थी उसे मैं आज कृतज्ञता सहित स्मरण करता हूँ।

द्वितीय संस्करण के निःशेप होते होते मेरे मन में इसका एक नवीन और सर्वांग-सुन्दर संस्करण प्रस्तुत करने की चिन्ता उत्पन्न हुई। द्वितीय संस्करण के पदों के लिए मुझे अधिकतर अमूल्य वावू पर निर्भर करना पड़ा था और अमूल्य वावू ने अधिकतर नगेन वावू पर निर्भर किया था। फल यह हुआ कि विद्यापति के पदों के समान गुरुत्वपूर्ण काव्य के सम्पादन में जो कुछ करना चाहिए था, मैं वह कुछ भी न कर सका अर्थात् मूल के साथ पाठ मिला कर भापा की विशुद्धि स्थापन करके एवं आकर ग्रन्थों से पदों को लेकर इसे समृद्ध कर प्रकाशित करने का सुयोग मुझे था ही नहीं।

इसी समय मेरे बन्धु श्रीमान बिमानविहारी मजुमदार एम० ए० (इतिहास और अर्थनीति), एच० डी०, आरा जैन कौलेज के प्रिंसिपल हुए। बिमान बाबू विद्यापति के काव्य के अनुरागी हैं; वे [illegible] दिनों से Journal of the Bihar Research Society, Patna University Journal, [illegible]ी-प्रचारिणी पत्रिका इत्यादि में विद्यापति के सम्बन्ध में गवेषणापूर्ण आलोचना कर रहे थे। मैं यह निश्चितरूप से जानता था कि मैथिली भाषा के अनुशीलन में उनका अमूल्य सुयोग होगा। श्रीयुक्त शरत् कुमार से मैंने प्रस्ताव किया कि तृतीय संस्करण के सम्पादन में बिमान बाबू की सहकारिता अत्यन्त आवश्यक है; इस प्रस्ताव में उन्होंने सानन्द सम्मति दी एवं बिमान बाबू ने हमारा आह्वान सानन्द ग्रहण किया। श्रीमान बिमानविहारी केवल भाषाविद् नहीं, धर्मनीति, इतिहास तथा राष्ट्र विज्ञान में उन्होंने प्रामाणिक पाण्डित्य के लिए प्रतिष्ठा अर्जन की है। निखिल भारत राष्ट्रविज्ञान परिषद् का सभापति निर्वाचित होकर उन्होंने देश-विदेश में ख्याति लाभ की है। किन्तु विद्यापति की सम्पादना के सम्पर्क में उनमें जो मैं सब से अधिक योग्यता की बात समझता हूँ, वह है उनका वैष्णवशास्त्र और काव्य का प्रगाढ़ पाण्डित्य और अनुराग।

आज कई वर्षों से श्रीमान बिमानविहारी विद्यापति के पदों के संग्रह, पाठोद्धार, अर्थ-निर्धारण में अक्लान्त परिश्रम कर रहे हैं। प्राचीन पोथियों से बहुत से नये पद संग्रह करके इन्होंने इस संस्करण को समृद्ध किया है। इसके पद-निर्वाचन, क्रम के अनुसार सन्निवेश, पाठान्तर उद्धार, शब्दसूची प्रस्तुतीकरण इत्यादि के विषय में जो कुछ भी कृतित्व है समस्त उन्हीं को प्राप्त है।

विद्यापति के पदों का जो ऐतिहासिक प्रच्छन्न पटभूमि है, उसका अनुसन्धान एवं विश्लेषण करके उन्होंने एक बहुमूल्य भूमिका की रचना की है। भूमिका में विद्यापति के काल एवं उनकी पदरचना के काल पर नवीन आलोकपात किया गया है। मैं आशा करता हूँ कि इससे सन्धानी और विशेषज्ञ पाठकों को अनेक सुविधा होगी। पदों की व्याख्या और शब्दार्थ का प्रधानतः मैं दायी हूँ; इस विषय में भी मैं बिमानविहारी बाबू की सहायता लाभ कर उपकृत हुआ हूँ।

परिशेष में बन्धुवर श्रीयुक्त शरत्कुमार को उनके अध्यवसाय और उत्साह के लिए बधाई देता हूँ। श्रीमान् बिमानविहारी की सुकन्या कल्याणीया श्रीमती मालविका चाकी एम० ए० और श्रीमती मंजुलिका मजुमदार बी० ए० ने प्राचीन पोथियों से नकल करने में तथा प्रेस कौपी तैयार करने में यथेष्ट सहायता की है।

श्री खगेन्द्रनाथ मित्र

भूमिका

१

विद्यापति की बहुमुखी प्रतिभा

जनसमाज में विद्यापति की कवि ख्याति अमर हो गयी है। किन्तु विद्यापति केवल कवि ही न थे। वे एक साथ ही कवि, शिक्षक, कहानीकार, ऐतिहासिक, भूवृत्तान्त-लेखक, स्मार्त्त निबन्धकार, धर्मकर्म के व्यवस्थादाता एवं कानून के प्रामाण्य ग्रन्थ लेखक थे। विष्णुशर्मा के समान गल्प के अन्तर्गत शिक्षा देने के लिए उन्होंने 'पुरुषपरीक्षा' की रचना की; वैषयिक काजकर्म चलाते रहने के लिए जो धरण पत्र लिखने का प्रयोजन उस युग में होता था, उसे सिखाने के लिए संस्कृत में 'लिखनावली' लिखी ; कीर्त्ति सिँह ने किस प्रकार असलान् ('अर्सलान्' नाम में एक तुर्की शब्द पाया जाता है, जिसका अर्थ है सिँह—तुर्क-अफग़ान समय में कितने ही आदमियों का नाम अर्सलान् पाया जाता है—असलान् इसी अर्सलान् का अपभ्रंश हो सकता है) नामक मुसलमान के हाथ से पितृराज्य मिथिला का उद्धार किया, उसी को लेकर 'कीर्त्तिलता' नामक एक चमत्कारी ऐतिहासिक कहानी की रचना की ; मिथिला से नैमिषारण्य तक के भूखण्ड में जितने तीर्थ हैं उनका पूर्ण विवरण देते हुए 'भूपरिक्रमा' नामक गैज़ेटियर के प्रकार का भौगोलिक ग्रन्थ लिखा ; शिवसिँह के रणनैपुण्य तथा प्रेमनैपुण्य चित्रित करते हुए अवहठ्ठ भाषा में 'कीर्त्तिपताका' की रचना की। उनके द्वारा लिखित 'शैव-सर्वस्व सार' 'दान-वाक्यावली' तथा विशेष करके "दुर्गाभक्तितरंगिनी" स्मृति के प्रामाण्य ग्रन्थरूप में परवर्त्ती निबन्धकारों द्वारा उद्धृत किए गए हैं। उन्होंने सुनिपुण व्यवहारशास्त्रविद्रूप में 'विभागसार' ग्रन्थ में उत्तराधिकारी निरुपण और उनके बीच में धनसम्पत्ति के बांटने की व्यवस्था दी है।

कीर्त्तिलता कीर्त्तिपताका तथा शिवसिंह के सिंहासन अधिरोहण विषयक पदों में युद्धविग्रह का जीवन्त वर्णन पढ़ कर मालूम होता है कि विद्यापति केवल लेखनी-परिचालन ही नहीं करते थे। हो सकता है कि उन्होंने अपने प्रपितामह के अग्रज पुत्र चण्डेश्वर के समान युद्ध में भी सक्रिय भाग लिया हो। विद्यापति संगीत विद्या में जितने पारदर्शी थे उसका प्रमाण उनके असंख्य पदों में है। भारतीय कविकुल में रवीन्द्रनाथ के सिवा किसी अन्य कवि में इस प्रकार की प्रतिभा की बात हमलोगों ने जानी ही नहीं है। विद्यापति के कुछ ही दिनों बाद इटली में इसी प्रकार के प्रतिभाशाली दो कलाकारों का उद्भव हुआ था। वे थे लिओनार्दो दा भिंचि और माइकेल एञ्जेलो। लिओनार्द (१४५२-१५१६) एक साथ ही स्थपति, चित्रकार, गायक, दार्शनिक और इनजीनियर थे। माइकेल एञ्जेलो (१४७५-१५६४) ने काव्य, स्थापत्य, चित्रकला एवं इनजीनियरिंग विद्या में समान प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इनलोगों ने केवल एक ही भाषा में

ग्रन्थ रचना की थी। लेकिन विद्यापति ने संस्कृत गद्य और पद्य में, अवहठ्ठ भाषा एवं मैथिली में काव्यादि लिखा था एवं इन तीनों भाषाओं में समान पारदर्शिता दिखलायी थी। उनकी मैथिली पदावली की विवेचना केवल मिथिला लोक में ही नहीं हुई है, वरन् बंगला और हिन्दी भाषियों ने अपने अपने साहित्य में अतुलनीय सम्पद् समझ कर इसकी विवेचना की है।

२

विद्यापति का वंशपरिचय

मध्ययुग में अनेक कवि और ग्रन्थकार ग्रन्थ के शेष में अथवा कविता की भनिता में अपने माता-पिता और अन्यान्य पूर्वपुरुषों का कुछ विवरण लिख गए हैं। विद्यापति के पूर्ववर्त्ती मिथिला के लेखक भी इसी नीति का अनुसरण कर गए हैं। किन्तु विद्यापति ने अपने किसी ग्रन्थ अथवा किसी अकृत्रिम पद में अपने वंश की कोई वात नहीं कही है। इतना ही क्यों, १८८५ खृष्टाब्द में Indian Antiquary में प्रकाशित शिवसिंह द्वारा किए गए विद्यापति को विसपी ग्राम के दानपत्र में भी विद्यापति के पिता का नाम तक नहीं है। जौन वीम्स ने १८७३ खृष्टाब्द के Indian Antiquary में लिखा है कि विद्यापति का असली नाम वसन्त राय और उनके पिता का भवानन्द राय था। वे जाति के ब्राह्मण थे और उनका वासस्थान यशोहर जिले के वर्णाटौर में था। १८८२ बंगाब्द अथवा १८७५ खृष्टाब्द में राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने 'वंगदर्शन' में प्रमाणित किया कि विद्यापति मिथिलावासी और मिथिला के राजा शिवसिंह के सभासद थे। जौन वीम्स ने उनका प्रवन्ध पढ़कर अपनी भूल समझी एवं १८७५ खृष्टाब्द के अक्टूबर मास के Indian Antiquary में राजकृष्ण मुखोपाध्याय के प्रबन्ध का अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया। उनके छः वर्षों के वाद १८८? खृष्टाब्द में सर जार्ज एब्राहम ग्रियर्सन ने (जो उस समय मिस्टर ग्रियर्सन के नाम से परिचित थे और दरभंगा जिले के मधुवनी मुहकमे के भारप्राप्त राजकर्मचारी थे) मिथिला पंजी का अनुसंधान करके विद्यापति के ऊंचे की पीढ़ी के सात पुरुषों के नाम (विष्णुनाथ—हरादित्य—कर्मादित्य—देवादित्य—वीरेश्वर—जयदत्त – गणपति) एवं उनके नीचे की पीढ़ी के बारह पुरुषों के नाम (हरपति — रतिधर — रघु—विश्वनाथ—पीताम्बर—नारायण—दीनमणि—तुला - एकनाथ—भैया—फणीलाल—बदरीनाथ) अपने Maithili Chrestomathy नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में प्रकाशित किया। नेपाल दरवार में प्राप्त हलायुध मिश्र के ब्राह्मणसर्वस्व की एक प्रतिलिपि की पुस्तिका से जाना जाता है कि 'पक्षे सितेहसौ शशिवेदरामयुक्ते नवम्यां नृपलक्ष्मणाब्दे" अर्थात् ३४१ लक्ष्मण सम्वत् में, १४६० खृष्टाब्द में ग्रन्थ के लिपिकार श्री रूपधरने 'सप्रक्रियसदुपाध्याय, निजकुलकुमुदिनी के चन्द्रस्वरूप प्रतिपक्ष के निकट सिंहस्वरूप सच्चरित्र एवं पवित्र पंडित श्रीविद्यापति महाशय के' पास अध्ययन किया। १८८१ खृष्टाब्द में विद्यापति की तेरहवीं पीढ़ी के पुरुष बदरीनाथ जीवित थे। १४६० से १८८१ तक ४२१ वर्षों में तेरह पीढ़ियाँ हुईं, प्रत्येक पीढ़ी के लिए ३२ वर्ष, ४ मास और १८ दिन हुए. इतिहास में

साधारणतः प्रत्येक पीढ़ी के लिए २५ वर्ष समय माना जाता है। उक्त वंशलता से मालूम होता है कि विद्यापति के वंश के लोग असाधारण दीर्घजीवी होते थे।

ग्रियर्सन के परवर्त्ती मैथिल गवेषक लोगों ने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादि एवं मिथिला की पंजी का अनुसन्धान करके विद्यापति के पूर्वपुरुषों की निम्नलिखित वंशलता स्थिर की है :—
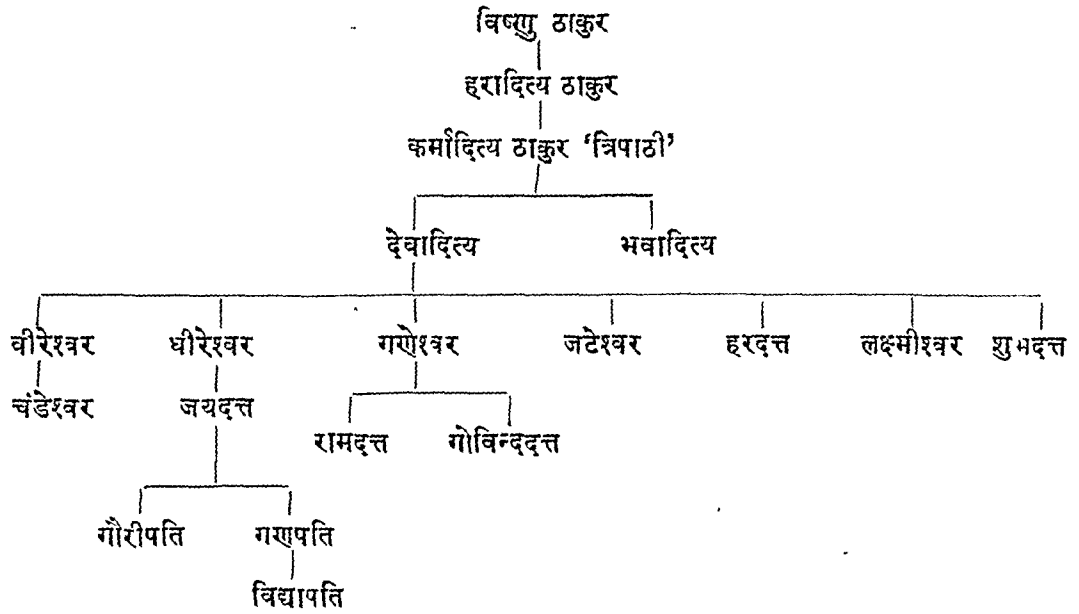
इस वंशलता के अनुसार विद्यापति सुप्रसिद्ध पंडित और राजमंत्री वीरेश्वर, गणेश्वर, चण्डेश्वर प्रभृति के अधस्तन पुरुष हैं।

ग्रियर्सन प्रदत्त वंशलता में देवादित्य के पिता का नाम कर्मादित्य पाया जाता है। ऊपर लिखित वंशलता में भी वीरेश्वर और गणेश्वर के पितामह और देवादित्य के पिता का नाम कर्मादित्य है। किन्तु वीरेश्वर और उनके पुत्र चण्डेश्वर ने गणेश्वर और उनके पुत्र गोविन्ददत्त ने अपने अपने ग्रन्थों में कर्म्मादित्य के नाम का उल्लेख नहीं किया है। सबों ने देवादित्य के कुल में उत्पन्न कहकर गौरव बोध किया है। यथा, वीरेश्वर के 'छन्दोपद्धत्ति" की सूचना में—

देवादित्यकुले जातः ख्यातस्त्रैलोक्यसंसदि।
पद्धतिं विदधे श्रीमान् श्रीमान् वीरेश्वरः स्वयम्॥ (१)

---

(१) बिहार और उड़ीसा में रिसर्च-सोसाइटी-प्रकाशित मिथिला की हस्तलिखित पोथी का विवरण—खंड १, पृष्ठ १२२।

गणेश्वर ने अपने 'सुगति सोपान' में देवादित्य का उल्लेख करके ही अपना वंशपरिचय दिया है—

अभूद्देवादित्यः सचिवतिलको मैथिलपते—
निजप्रज्ञाज्योतिर्दलितरिपु चक्रान्धतमसः।
समन्तादश्रान्तोल्लसित सुहृदर्कोपलमणौ
समुद्गुते यस्मिन् द्विजकुल सरोजै विकसितम् ॥ (२)

चण्डेश्वर ने कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, पूजारत्नाकर, विवादरत्नाकर, गृहस्थरत्नाकर, कृत्यचिन्तामणि, शैवमानसोल्लास, राजनीतिरत्नाकर प्रभृति बहुत सी किताबें लिखी हैं। किन्तु उन्होंने किसी जगह भी कर्मादित्य का नाम नहीं लिया है। उनके चचेरे भाई गोविन्ददत्त ने 'गोविन्दमानसोल्लास' में देवादित्य उनके पुत्र गणेश्वर, गणेश्वर के अग्रज वीरेश्वर की कीर्ति सगौरव घोषित की है। यदि देवादित्य के पिता कर्मादित्य मन्त्री होते तो निश्चय ही वीरेश्वर गणेश्वर, चण्डेश्वर, रामदत्त अथवा गोविन्ददत्त कहीं न कहीं उनके नाम का सगौरव उल्लेख करते। अथच चन्दा झा ने 'पुरुषपरीक्षा' की भूमिका में और नगेन्द्र गुप्त ने विद्यापति ठाकुर की पदावली की भूमिका में किसी एक मन्त्री कर्मादित्य को देवादित्य का पिता बतलाया है। उन्होंने मन्त्री कर्मादित्य द्वारा २१३ ल० स० अर्थात् १३३२ खृष्टाब्द में प्रतिष्ठित एक देवी मन्दिर में प्राप्त शिलालिपि पर निर्भर होकर इस तरह सिद्धान्त किया है (३)। डा० उमेश मिश्र ने लिखा है कि ये कर्णाट-कुलसम्भव राजा नान्यदेव के मन्त्री थे (४)। नान्यदेव का राज्यकाल १०९७ से ११३३ खृष्टाब्द था। ११३३ खृष्टाब्द में जो राजा परलोकगत हुआ उसका मन्त्री दो सौ वर्षो बाद १३३२ खृष्टाब्द में मन्दिर-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता। डा० जयकान्त मिश्र ने लिखा है कि कर्मादित्य ने राजा हरिसिंह के राज्यकाल में १३३२ खृष्टाब्द में यह मन्दिर स्थापित किया था (५), किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ के परिशिष्ट में हरिसिंहदेव का राजत्वकाल १२९६ से १३२३-२४ खृष्टाब्द बतलाया है। गियास उद्दीन-तुगलक ने १३२४ खृष्टाब्द की २५वीं दिसम्बर को मिथिला में अपना प्रभुत्व स्थापित किया था यह सुविदित ऐतिहासिक घटना है। चण्डेश्वर ने

---

(२) ऐ, पृष्ठ ४०४-४०६, पोथी संख्या ४२६ ; सुगति सोपान की एक प्रतिलिपि २२४ ल० स० वा १३४३ खृष्टाब्द में नेपाल के एक मैथिल ब्राह्मण द्वारा की गयी थी। नेपाल दरबार की पोथी का विवरण, प्रथम खंड, १३२।

(३) श्लोक ऐसे हैं :—

अब्दे नेत्रशशांकपक्ष गदिते श्रीलक्ष्मणक्ष्मापतेः
मासि श्रावणसंज्ञके मुनितिथौ स्वात्यां गुरौ शोभने।
हवीपट्टनसंज्ञके सुविदिते हैहट्देवी शिला
कर्मादित्य सुमन्त्रिनेह विहिता सौभाग्यदेव्याज्ञया ॥ यह हावीडीह ग्राम में पाया गया है।

(४) विद्यापति ठाकुर—पृ० ९-१०। शिवनन्दन ठाकुर ने भी 'महाकवि विद्यापति' में (पृ० १२-१३) इसी प्रकार का मत प्रकाश किया है।

(५) History of Maithili Literature, Vol. I, पृ० १३५-६ एवं पादटीका।

कृत्यरत्नाकर (६) में लिखा है कि वे हरिसिंहदेव के मन्त्री थे। कर्मादित्य चण्डेश्वर के प्रपितामह, सुतरां हरिसिंह के कुल २४ वर्षों के राजत्वकाल में चार पीढ़ियों का मन्त्रित्व करना सम्भव नहीं मालूम होता है। चण्डेश्वर ने १३१४ खृष्टाब्द में नेपाल अभियान में साफल्य लाभ करने पर अपने शरीर की तौल के बराबर स्वर्णदान किया था, यह बात उन्होंने अपने दानरत्नाकर, विवादरत्नाकर और कृत्य-चिन्तामणि में उल्लिखित की है। उनके कृत्यरत्नाकर में इस तुलादान का जिक्र नहीं है इसको लेकर जायसवाल ने सिद्धान्त किया है कि कृत्यरत्नाकर १३१४ खृष्टाब्द से पहले रचा गया था (७)। कृत्यरत्नाकर में चण्डेश्वर ने "स्फुरति" यह बर्तमानकाल व्यवहार करके पिता वीरेश्वर का उल्लेख किया है, किन्तु पितामह देवादित्य के सम्बन्ध में 'आसीत्' यह अतीतकाल लिखकर कहना चाहा कि इस समय देवादित्य जीवित नहीं थे। १३१४ खृष्टाब्द के पहले चण्डेश्वर के पितामह की मृत्यु होने से १३३२ खृष्टाब्द में उनके प्रपितामह कर्मादित्य द्वारा मन्दिर स्थापित होना संभाव्य की सीमा से बाहर न होने पर भी बहुत दूर है। सुतरां जिस कारण से वीरेश्वर, गणेश्वर, चण्डेश्वर, रामदत्त और गोविन्ददत्त ने कर्मादित्य के नाम का उल्लेख नहीं किया है एवं जिस कारण से १३३२ खृष्टाब्द में जीवित मन्त्री का चण्डेश्वर का प्रपितामह होना संभव नहीं मालूम पड़ता, उसी कारण से हावीडीह ग्राम की शिलालिपि में उल्लिखित मन्त्री कर्मादित्य का देवादित्य के पिता कर्मादित्य से स्वतंत्र व्यक्ति मानना ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है। ऐसा नहीं मानने से सन्देह होता है कि विद्यापति के पूर्वपुरुष मन्त्री कर्मादित्य और वीरेश्वर के पितामह कर्मादित्य एक ही व्यक्ति थे वा नहीं एवं विद्यापति वीरेश्वर-चण्डेश्वर के वंश के आदमी थे अथवा नहीं (८)। किन्तु इस प्रकार का सन्देह करने से मिथिला के ब्राह्मणों की वंशपञ्जी की सत्यता में सन्देह करना पड़ता है। इस प्रकार के सन्देह का अवकाश अल्प है।

---

(६) India Office Catalogue, संख्या १२८७।

(७) श्रीचण्डेश्वरमन्त्रिणामतिमतानेन प्रसन्नात्मना।
नेपालाखिलभूमिपालजयिना धर्मेन्दुदुग्धाब्धिना।
वाग्वत्याः सरितस्तटे सुरधुनी सामोदधत्याः शुचौ
मार्गेमासि यथोक्तपुण्यसमये दत्तस्तुलापुरुषः॥

मिथिला की हस्तलिखित पोथियों का विवरण, १ला खंड, पृ० २०५। के० पी० जायसवाल राजनीतिरत्नाकर की भूमिका, पृ० १४।

(८) इस प्रकार का सन्देह वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय ने किया है—Another attempt has been made to connect the fam'ly of Vidyapati with that of Candeshwar on account of the fact that 'Devaditya' is a name common to the two families. Karmaditya who gave the temple of Tilakeshwar in 1332 A. D. cannot be the great grandfather of Candeshwar who made a gift of his own weight in gold in 1314 A. D. and was at that time a very powerful minister. We have, therefore, no grounds upon which to base the identity of the two families. *It may be correct to speak of Karmaditya as an ancestor of Vidyapati and not of Candeshwar* (*Journal of the Department of Letters, Cal. Univ. Vol. XVI, page 35*).

देवादित्य मिथिला के कर्णाटराजवंश के सन्धिविग्राहिक मन्त्री अथवा Foreign Minister थे। उनके पुत्र गणेश्वर ने सुगतिसोपान में पिता और ज्येष्ठ भ्राता वीरेश्वर के पांडित्य, पदमर्यादा और दान की घोषणा की है। देवादित्य के सात पुत्रों में वीरेश्वर ने पिता का सन्धिविग्राहिक का पद पाया था, गणेश्वर 'महामहत्तक' अथवा प्रधान मंत्री हुए थे। गणेश्वर ने अपना परिचय महाराजाधिराज कहके दिया है। वे सामन्त नृपतियों की परिषद् का सभापतित्व करते थे। उनके पुत्र रामदत्त ने भी स्वकृत 'छान्दोग्यमन्त्रोद्धार' ग्रन्थ में 'महाराजाधिराजस्य महासामन्तपालिनो महामहत्तकेशस्य श्री गणेश्वर' का पुत्र कह कर अपना परिचय दिया है। विद्यापति ने पुरुष परीक्षा की अष्टम् कहानी में वीरेश्वर की सहृदयता का उदाहरण दिया है। उन्होंने सुबुद्धि-कथा में गणेश्वर की चतुरता का भी उल्लेख किया है (९)। पंजी में देवादित्य के अन्यान्य पुत्रों के सम्बन्ध में है कि जटेश्वर भाण्डागारिक अथवा Treasury के अध्यक्ष, हरदत्त स्थानान्तरिक अथवा कर्मचारियों को Transfer करने वाले, लक्ष्मीदत्त मुद्राहस्तक अथवा Keeper of the Seal एवं शुभदत्त राजबल्लभ थे (१०)। देवादित्य के सात पुत्रों में केवल विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर केवल पण्डित मात्र थे। उनकी उपाधि थी वार्त्तिकनैवन्धिक। परन्तु उनकी लिखी हुई कोई किताब नहीं मिलती।

गणेश्वर के कनिष्ठ पुत्र गोविन्ददत्त ने अपने 'गोविन्दमानसोल्लास' में अपने को नयसागर अर्थात् राजनीति विशारद और हरिकिङ्कर कह कर परिचित किया है (११)। विद्यापति ने कीर्त्तिलता के तृतीय पल्लव में सम्भवतः इन्हीं का उल्लेख अन्यतम मन्त्री कहके किया है।

ऊपर दिए हुए विवरण से दीख पड़ता है कि विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर के भाई लोग विपुल ऐश्वर्य, प्रभुत्व और पाण्डित्य के अधिकारी थे। उन्होंने प्रचुर दान-ध्यान किया है, बड़ी-बड़ी

---

(९) आसीन्मिथिलायां कर्णाटकुलसम्भवो हरिसिंहदेवो नाम राजा, तस्य सांख्य-सिद्धान्त पारगामी दण्डनीतिकुशलो गणेश्वर नाम धेयो मन्त्री वभूव। पुरुष परीक्षा, चन्दा झा संस्करण, पृ० ६७।

(१०) गढ़विसपी संवोजी विष्णुशर्मा, विष्णुशर्मसुतो हरादित्यः हरादित्य सुतः कर्मादित्यः, कर्मादित्यसुतौ सन्धि-विग्रहिक-देवादित्य-राजवल्लभ-भवादित्यौ, देवादित्य सुताः पाण्डागारिक वीरेश्वर वार्त्तिकनैवन्धिक धीरेश्वर—महामहत्तक गणेश्वर—भाण्डागारिक जटेश्वर—स्थानान्तरिक हरदत्त—मुद्राहस्तक लक्ष्मीदत्त राजवल्लभ शुभदत्ताः भिन्नमात्रिकाः। काशीप्रसाद जायसवाल कर्त्तृक राजनीतिरत्नाकर भूमिका में से पृष्ठ १६ से उद्धृत।

(११) गोविन्द दत्त ने पिता गणेश्वर की कथा उल्लेख करके कहा है :—

"श्रीमानेष महामहत्तक महाराजाधिराजो महान्
सामन्ताधिपतिविंकस्वर यशः पुष्पस्य जन्मद्रुमः।
दक्षो मैथिलनाथ भूमिपतिभिः सप्तांगराज्य स्थितिं
प्रौढानेक वशम्वदैक हृदयो दोः स्तम्भसंभावितः॥

अट्टालिकाएँ बनवायी हैं और मिथिला के समाज संगठन के लिए स्मृति के प्रामाण्य-ग्रन्थ भी लिखे हैं (१२)। किन्तु विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर पण्डित होते हुए भी उच्च राजपद के अधिकारी नहीं थे। धीरेश्वर के पुत्र और विद्यापति के पितामह जयदत्त भी पाण्डित्य अथवा पदमर्यादा का वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं कर सके। जयदेव के पुत्र और विद्यापति के पिता गणपति को बहुतों ने 'गंगाभक्तितरंगिणी' के लेखक गणपति से अभिन्न माना था (१३)। परन्तु उक्त ग्रन्थकार गणपति ने तीन जगहों पर विद्यापति का मत प्रामाण्यरूप में उद्धृत किया है, एवं ग्रन्थ के शेष में अपने को श्री योगीश्वर सम्भव बतलाया है (१४)। इसलिए ये विद्यापति के पिता नहीं हो सकते हैं। मिथिला के पंजी सम्बन्ध के पारदर्शी पंडित श्री रमानाथझा ने भी यही मत माना है (१५)। विद्यापति के वृद्ध प्रपितामह एक बड़े आदमी थे अवश्य, परन्तु उनके प्रपितामह, पितामह और पिता विशेष प्रसिद्धि लाभ नहीं कर सके थे। आत्मसम्मान के सम्बन्ध में सचेतन, अपेक्षाकृत दरिद्र बुद्धिजीवी व्यक्ति अपने सम्बन्धी बड़े लोगों का परिचय नहीं देना चाहते हैं, क्या इसीलिए विद्यापति ने कहीं भी, किसी ग्रन्थ अथवा पद में, देवादित्य, वीरेश्वर, गणेश्वर, चण्डेश्वर, गोविन्ददत्त, रामदत्त प्रभृति ख्यातिमान एवं प्रभूत ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों के साथ अपने सम्बन्ध की कोई बात न लिखी है? इसमें कोई सन्देह नही कि विद्यापति का वंश अत्यन्त सम्भ्रान्त एवं सम्मानित था। मिथिला के राजपरिवार के साथ इस वंश की घनिष्ठता बाइनीबार के कामेश्वर के अधस्तन पुरुषों के मिथिला के सिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के बहुत पहले ही से थी। इसीलिए विद्यापति कवि और पंडित मात्र होते हुए भी कामेश्वर-वंश के राजाओं के साथ अंतरंगता रख सके थे।

३

विद्यापति के पृष्ठपोषक राजन्यवर्ग

विद्यापति ने कौन साल में, किस वर्ष की अवस्था में कविता और निबन्ध की रचना आरम्भ की थी, किस वर्ष में क्या लिखा था, और वे किस समय तक जीवित रहे, इन बातों को निश्चय पूर्वक जानने का कोई उपाय नहीं है। उनके रचित पदों और ग्रन्थों में उनके पृष्ठपोषक राजा, रानी, मन्त्री और सुलतानों का नाम-उल्लेख देखा जाता है। उनके कालनिर्णय पर विद्यापति की रचना और जीवन की कई एक प्रधान घटनाओं का समय-निरूपण निर्भर करता है। कई एक जगह तारीखयुक्त पोथियों से भी कालनिर्णय में कुछ सहायता प्राप्त होती है। मिथिला के ग्रन्थों और शिलालिपियों में

---

(१२) वीरेश्वर की छन्दोगपद्धति (मिथिला की हस्तलिखित पोथियों का विवरण १४६२) गणेश्वर की छान्दोग्य-श्री-कर्त्तृक श्राद्धपद्धति (१६२३) गंगापत्तलक ऐ (पृ० ८४-८६)।

(१३) नगेन्द्रगुप्त की पदावली की भूमिका पृ० ७।

(१४) मिथिला की हस्तलिखित पोथियों का विवरण १ला खंड, पृ० ८८।

(१५) मिहिर, ३८ संख्या पृ० २।

लक्ष्मण सम्वत् में काल-निर्दिष्ट हुआ है। कीलहॉर्न ने प्रमाणित किया है कि १११९ खृष्टाब्द में लक्ष्मण सम्वत् का प्रथम वर्ष है (१६)। जायसवाल ने दिखाया है कि १६२४ खृष्टाब्द के बाद मिथिला में चान्द्र वर्ष स्वीकृत होने से ल० स० और खृष्टाब्द का पार्थक्य बढ़ गया था (१७)।

पहले विद्यापति ने अपने पृष्ठपोषकों का जो परिचय अपने विभिन्न पदों और ग्रन्थों में दिया है, उसका उल्लेख किया जाता है। विद्यापति ने कीर्त्तिलता में ओइनीवार अथवा ओइनीवंश का यशोगान किया है। इस वंश ने ब्राह्मणकुल संभूत होकर भी भुजबल के लिए प्रसिद्धिलाभ की थी (१८)। इसी वंश में कामेश्वर राय का जन्म हुआ (१९)। उनके पुत्र भोगीश्वर खूब दानशील थे। फिरोज शाह सुलतान प्रियसखा कह कर उनका आदर करते थे (२०)। उनके पुत्र गअनेस अथवा गअनराअ (२१) दान, मान, बल, कीर्त्ति और सौन्दर्य में गरीयान् थे। असलान ने राज्यलोभ से विश्वासघातकता पूर्वक २५२ लक्ष्मण सम्वत् में (१३७२ खृ०) मधुमास में (चैत्रमास में) कृष्णापंचमी तिथि को इनकी हत्या कर डाली (२२)।

---

(१६) Indian Antiquary Vol. XIX, 1890, पृ० ७।

(१७) J. B. O. R. S. 1934, पृ० १५।

(१८) ओइनी वंस प्रसिद्ध जग को तसु करह न सेव।
दुहु एकत्थ न पाविवइ भुअवइ अरु भूदेव।—कीर्त्तिलता, पल्लव १।

(१९) ताकुल केरा बड्डपन कहवा कओन उपाँए।
जञ्जन्मि अ उपन्नमति कामेसर सन राए। ,,

(२०) तसु नन्दन भोगीस राअ वर भोग पुरन्दर
हुअ हुआसन तेजिकन्ति कुसुमाउँह सुन्दर।
जाचक सिद्धि केदार दान पंचम बलि जानल॥
पिअ सख भनि पिअरोज साह सुरतान समानल। ,,

(२१) राय गुरु कित्तिसिंह गएनेस सुअ; पृ० ४, हरप्रसाद शास्त्री सं।
तासु तनअ नअविनअ नअ गरुअ राए गएनेस; ,, पृ० ५।
पातिसाह उद्देसे चलु गअनराअ को पुत्त; ,, पृ० ६।
अरु लोअन्तर सग्ग गउ गअन राए मकु बाप। ,, पृ० २०।

अध्यापक वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय कहते हैं कि गअनेस वा गअनराए "may phonetically correspond to गगनेश, गगनेश्वर वा गगनराय and not to गणेश वा गणेश्वर।" किन्तु मैथिल पंडित शिवनन्दन ठाकुर, म० म० डा० उमेश मिश्र और डा० जयकान्त मिश्र ने इनका उल्लेख गणेश्वर कहके ही किया है।

(२२) लक्खन सेन नरेश लिहिअ जवे पक्ख पंच वे।
तन्महुमासहि पढम पक्ख पंचमी कहिअजे॥
रज्जलुद्ध असलाने बुद्धि विक्कमबले हारल।
पास बइसि विसवासि राए गएनेसर मारल॥ कीर्त्तिलता, पल्लव २

उनके तीन पुत्र थे—वीरसिंह, कीर्त्तिसिंह और राअसिंह। विद्यापति ने प्रसंगरूप में तृतीय का नाम उल्लेख किया है। पितृहन्ता के कवल से राज्य उद्धार की आशा से वीरसिंह और कीर्त्तिसिंह जौनपुर के इब्राहिम साह के शरणापन्न हुए। इब्राहिम साह उनको लेकर नाना देशों में अभियान करने लगे। लेकिन उसको मिथिला की ओर आते न देखकर दोनों भाई माँ की दुश्चिन्ता का अन्दाज कर व्याकुल हो गए।

अन्त में उन्होंने यह सोचकर मन को प्रबोध दिया कि माँ को सान्त्वना देने के लिए तो मिथिला में हमारे भाई राअसिंह हैं—वे संग्राम पराक्रम में रुद्र सिंह के समान हैं। उनके संग और भी हैं—सन्धिभेद-विग्रह में सुनिपुण आनन्दखान, सुपवित्र मित्र हंसराज, गुण में श्रेष्ठ मंत्री गोविन्ददत्त और वीर हरदत्त (२३)। बहुत दिनों तक अपेक्षा करने के बाद, इब्राहिम ने मिथिला चलने की तैयारियाँ शुरू की। इब्राहिम साह और उनके पुत्र मामूद (२४) सैन्य-सामन्त के साथ मिथिला आए। कीर्त्तिसिंह के साथ असलान का द्वन्द्वयुद्ध हुआ। असलान पराजित हुआ, परन्तु कीर्त्तिसिंह ने उसे जान से नहीं मारा। बोध होता है, युद्ध में वीरसिंह की मृत्यु हुई थी, इसलिए इब्राहिम ने कीर्त्तिसिंह को राजा बनाया (२५)।

कीर्त्तिलता कीर्त्तिसिंह के राजत्वकाल में ही लिखी गयी थी, क्योंकि प्रत्येक पल्लव की पुष्पिका में 'चिरमवतु महीं कीर्त्तिसिंहो नरेन्द्रः" "सदा सकलसाहसो जयति कीर्त्तिसिंहो नृपः" प्रभृति वाक्य में वर्त्तमानकाल का व्यवहार हुआ है एवं शेष श्लोक में कहा गया है कि कीर्त्तिसिंह की यह वीरत्व-कहानी अक्षय होवे और खेलन कवि विद्यापति की भारती कल्पान्त तक स्थायी हो (२६)।

---

(२३) तहँ अच्छए मन्त्रि आनन्दखान, जे सन्धि-भेद-विग्गहो जान।
सुपवित्त-मित्तो सिरि हंसराज, सरवस्स उपेक्खइ अमर काज॥
सिरि अमृह सहोदर राअसिंह, संगाम परकम रुद्दसिंह।
गुणे गुरुअ मन्ति गोविन्द-दत्त, तसु वंस-बड़ाइ कहओं कओ।
हरक भगत हरदत्त नाम, संग्राम-कम्म अज्जुनमान।

राअसिंह को सब कोई राजसिंह समझते हैं, परन्तु डा० सुकुमार सेन (विद्यापति गोष्ठी पृ० ६) ने उन्हें रामसिंह मान कर लिखा है—"मिथिलामहीमहेन्द्र' महाराजाधिराज, रामसिंहदेव के राजत्वकाल में (१४४६ सम्वत् १३६० खृष्टाब्द) लिखी पोथी पायी गयी है।" यह अनुमान ठीक नहीं मालूम होता है।

(२४) टोमस (Chronicles of Pathan Kings of Delhi पृ० ३२०) साहेब के मतानुसार इब्राहिम १४०१ से १४४० (खृष्टाब्द) तक जौनपुर का राजा रहा। किन्तु कैम्ब्रिज हिस्ट्री के मतानुसार उसने १४०२ से १४३६ ई० तक राज्य किया। उसके पुत्र मामूद शाह ने १४३६ या १४४० से १४५७ तक राज्य किया।

(२५) बन्धवजन उच्छाह कर तिरहुति पाइअ रुप।
पातिसह जसु तिलक कर किर्त्तिसिंह भऊँ भूप॥ कीर्त्तिलता, चतुर्थपल्लव।

(२६) एवं संगरसाहस प्रमथन प्रालब्ध लब्धोदयां
पुष्यातु प्रियमाशशांकतरणीं श्रीकीर्त्ति सिंहो नृपः
माधुर्य प्रसवस्थली गुरुयशोविस्तारशिक्षासखी
यावद् विश्वमिदं च खेलनकवेर्विद्यापतेर्भारती॥ कीर्त्ति लता का शेष श्लोक।

विद्यापति ने भूपरिक्रमा में देवसिंह और शिवसिंह का नाम लिया है। उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में स्वीकार करा है कि उन्होंने यह ग्रन्थ देवसिंह के निर्देश से लिखा है (२७)। इस ग्रन्थ की रचना के समय देवसिंह नैमिषारण्य में किस लिए गये थे ? तीर्थ-यात्रा के लिए जाने पर वहाँ ग्रन्थ लिखवाने की क्या सार्थकता थी ? संसार से अवसर प्राप्त कर वाणप्रस्थ में वहाँ रहने पर भी ग्रन्थ लिखवाने का कोई संगत कारण समझ में नहीं आता। इस ग्रन्थ में देवसिंह को राजा-प्रभृति कुछ नहीं कहा गया है—शिवसिंह को भी नहीं है। इन सब बातों को देखने से सन्देह होता है कि भू-परिक्रमा के लिखे जाने के समय देवसिंह राजनैतिक कारण से मिथिला के बाहर वास कर रहे थे।

विद्यापति ने पुरुष-परीक्षा में भवसिंह, उनके पुत्र देवसिंह और पौत्र शिवसिंह का नाम लिया है। यह ग्रन्थ उन्होंने शिवसिंह के आदेश लिखा है (२८)। लिखने के समय देवसिंह भी जीवित थे—क्योंकि ग्रन्थ के शेष श्लोक में वर्त्तमानकाल व्यवहार कर लिखा हुआ है 'भाति यस्य जनको रणजेता देवसिंहगुणराशिः।' सम्भवतः देवसिंह के जीवनकाल में ही शिवसिंह को क्षितिपति तथा नृपति इत्यादि नामों से अभिहित किया जा चुका था। इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम कवि ने लिखा है कि केवल शिवसिंह और देवसिंह ही नहीं, भवसिंह भी राजा थे (२९)। भवसिंह के पौत्र पद्मसिंह की पत्नी विश्वासदेवी की आज्ञा से शैवसर्वस्व सार और शम्भु-वाक्यावली लिखने के समय विद्यापति ने फिर भवसिंह, देवसिंह,

---

(२७) देवसिंह निदेशाच्च नैमिषारण्यनिवासिनः।
शिवसिंहस्य पितुः सुतपिठ निवासिनः।
पंचषष्टि देशयुतां पंचषष्ठि कथान्वितां।
चतुःखण्ड-समायुक्तामाह विद्यापतिः कविः॥
भू-परिक्रमा, कलकत्ता संस्कृत कोलेज की पोथी, ६। ७६ पृ० ल

(२८) वीरेषु मान्यः सुधियां वरेण्या
विद्यावतामादि विलेखनीयः।
श्रीदेवसिंह क्षितिपाल सुनु
जीयाच्चिरं श्रीशिवसिंह देवः॥
निदेशान्निःशंकं सदसि शिवसिंहक्षितिपतेः
कथानां प्रस्तावं रचयति विद्यापति कविः।
पुरुष-परीक्षा, मंगलाचरण श्लोक २ एवं ३।

(२९) भुक्त्वा राज्यसुखं विजित्य हरितो हत्वा रिपुन् संगरे
हुत्वा चैव हुताशने मखविधौ स्तुत्वा धनैरर्थिनः।
वाग्वत्याः भवसिंहदेवनृपतिस्त्यक्त्वा शिवाग्रे वपुः
पुत्रो यस्य पितामहः स्वरगमद्द्वारद्वयालंकृतः॥
नागेपुरसरोवरकर्त्ता हेमहस्तिरथदान विदग्धः
भाति यस्य जनको रणजेता देवसिंह-गुणराशिः॥
यो गौड़ेश्वर-गज्जनेश्वर रण-क्षोणीषु लब्ध्वा यशो
दिक्-कान्ताचय-कुन्तलेषु नयते कुन्दस्रजामास्पदम्
तस्य श्रीशिवसिंह-देव-नृपतेर्विज्ञप्रियस्याज्ञया
[illegible] विरचे विद्यापतिर्व्यातनोत्॥

शिवसिंह और फिर नये रूप में पद्मसिंह और विश्वासदेवी की कीर्त्ति-घोषणा की है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही देखा जाता है—

भूपालावलि मौलि मण्डन मणि प्रत्यर्चिताङ्घ्रिद्वया-
म्भोज श्रीभवसिंहभूपतिरभूत् सर्व्वार्थिकल्पद्रुमः ॥

किन्तु विद्यापति ने नरसिंह दर्पनारायण की आज्ञा से विभागसार लिखते समय देशसिंह, शिवसिंह और पद्मसिंह का नाम न लेकर केवल कहा है—

राज्ञो भवेशाद्धीरसिंह आसीत् तत्सुगुणा दर्पनारायणेन
राज्ञो नियुक्तोऽत्र विभागसारं विचार्य विद्यापतिरातनोति ॥

(राजेन्द्र लाल मित्र पोथी सं० २०३७)

वर्द्धमान वाचस्पति मिश्र और मिसरु मिश्र ने भी नरसिंह के पूर्व पुरुषों की बात लिखते समय देवसिंह और उनके दो पुत्र शिवसिंह और पद्मसिंह का नाम छोड़ दिया है। यही लक्ष्य करके १६०३ खृष्टाब्द में वेण्डेल साहेब ने लिखा है कि बोध होता है कि देवसिंह, शिवसिंह और पद्मसिंह को

Indian Antiquary Vol. XIV, 1885 July, Grierson "Vidyapati and his Contemporaries"
१८१५ खृष्टाब्द में हरप्रसाद राय ने पुरुष-परीक्षा का बंगला अनुवाद प्रकाशित किया और वह फोर्ट विलियम कौलेज में पाठ्यरूप में निर्दिष्ट हुआ। किन्तु बोध होता है कि उन्होंने खण्डित पोथी पायी थी; इसी लिए ग्रन्थ के शेष में भवसिँह और शिवसिँह को एक समझ के लिखा है—'एवं महाराजाधिराज श्रीशिवसिंह देव युद्धते सकल शत्रु जय करिया राज्य एवं सांसारिक तावत् सुखभोग करिया श्रीमन्महादेवेर साक्षात्कारे देहत्यागे मुक्त होइयाछेन।" इसी अनुवाद पर निर्भर कर १६२७ खृष्टाब्द में वसन्त कुमार चट्टोपाध्याय और १३५४ साल में (१६४७) डा० सुकुमार सेन ने अनुमान किया है कि पुरुष परीक्षा की रचना समाप्त होने के पहले ही शिवसिँह ने परलोकगमन किया था। हमलोग नीचे बहुत भाषाओं के पारदर्शी ग्रियर्सन साहब का अनुवाद देते हैं :—

He whose pure grandfather (on the banks) of the Bagvati, King Bhava Sinha Deva adorned with two wives left his body in the presence of Siva, and went to Heaven, after having enjoyed the blessings of his Kingdom, and after having conquered the universe and slain his enemies in battle, offering oblations to fire according to the rites of sacrifice and supporting the supplicants by his wealth.

Whose father, Deva Sinha, a conqueror in battle, in whom all worthy qualities were collected, is now alive (भाति), who dug the tank of Sankripura, and was skilled in granting gifts of gold, elephants and chariots

He who, after gaining glory in terrible battle with the King of Gauda and with (him of) Gajjana, is conducting it to its home in white Kunda flower in the ringlets of all the ladies of the quarters. At the orders of this Sri Siva Sinha Deva the king, the friend of the learned, Vidyapati completed this .. ..treatise on morals (Indian Antiquary, 1885, P. 192).

भवसिँहदेव को ही चण्डेश्वर, वाचस्पति मिश्र और मिसरु मिश्र ने भवेश कहा है। मिसरु मिश्र ने विवादचन्द्र के मङ्गलाचरण में लिखा है कि राजा भवेश से उनके पुत्र हरसिँह; हरसिँह से राजा दर्पनारायण; राजा दर्पनारायण और धीरा महादेवी से लखिमादेवी के दयित नृपति चन्द्र का उद्भव हुआ। विहार-उड़िसा रिसर्च-सोसाईटी की मिथिला

साधारणतः राजा नहीं माना जाता था (३०)। किन्तु इस प्रकार अनुमान करने का कोई संगत कारण नहीं है। नरसिंह का परिचय देते समय उनके पिता हरिसिंह और पितामह भवसिंह अथवा भवेश का परिचय देना ही यथेष्ट है। नरसिंह के पिता के अग्रज देवसिंह और उनके दोनों पुत्रों की बातें करना अप्रासङ्गिक होता है। नरसिंह के पुत्र धीरसिंह का परिचय लिखते समय उनके पितामह के अग्रज देवसिंह और उनके पुत्र शिवसिंह और पद्मसिंह की बातें लिखना और भी अप्रासङ्गिक है। किसी लेखक की अनुक्ति से कोई सिद्धान्त पहचाना नहीं जाता, विशेष करके जब शिवसिंह के राजा होने की बात केवल विद्यापति ने ही न लिखी है, उनकी मुद्राएँ भी इसका साक्ष्य देती है (३१)। पुरुष परीक्षा के प्रथम और द्वितीय खंड के शेष में विद्यापति ने शिवसिंह के सम्बन्ध में दो प्रयोजनीय सम्बाद दिया है (३२)—एक तो यह कि शिवसिंह का उपनाम रूपनारायण था और दूसरा कि शिवसिंह भव वा शिव के भक्त थे।

अवहट्ठ भाषा में कीर्त्तिलता कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में, एवं संस्कृत भाषा में भू-परिक्रमा और पुरुष-परीक्षा देवसिंह के जीवित समय में लिखी गयी थीं। देवसिंह की मृत्यु के बाद विद्यापति ने फिर अवहट्ठ भाषा के अवलम्बन से कीर्त्तिपताका लिखी (३३)।

पोथी का विवरण, संख्या ३२१ (पृः १९६-९७)। इसमें पाया जाता है कि धीरमती के स्वामी नरसिहँ का उपनाम था दर्पनारायण। चण्डेश्वर ने राजनीति रत्नाकर में लिखा है :—

राजा भवेशेनाज्ञप्तो राजनीतिनिबन्धकम्।
तनोति मन्त्रिणामार्य्यः धीमान् चण्डेश्वरः कृती॥

वाचस्पति मिश्र के महादान निर्णय में भी भवेश का नाम उल्लिखित हुआ है (J, A. S, B. 1903, P. 31)। भवेश के काल सम्बन्ध में J. B. A. S. XV 1915, पृः ४१६-१७ पृष्ठ द्रष्टव्य—इसमें अनुमान किया गया है कि भवेश १२७० खृष्टाब्द के बाद किसी समय राजा हुए थे।

(३०) According to several works of Vidyapati, cited by Eggeling Catalogue, I. o. P. 875-6 (see also Grierson, I. A, March 1899, P. 57) Bhawesa was succeeded by his elder son Devasinha, and he by his son Sivasinha. It is significant that not only Vardhaman and Vacaspati pass over these kings in silence, but Vidyapati himself does so in Narsinha's reign (Rajendra Lal Mittra Notices VI, 68). They were perhaps not generally acknowledged (J. A. S. B. Vol LXXII, Pt I, 1903, PP 1-32),

(३१) Annual Report of the Archaeological Survey of India 1913-14.

(३२) 'So endeth the First Part, entitled An Exposition of Heroes' of the Test of a Man composed by the Poet Vidyapati Thakkura, at the command of His Majesty Siva Sinha endowed with all insignia of royalty, entitled Rupa Narayana, full of devoted faith in Bhava and blessed with boons by the spouse of Rama." The test of Man—Royal Asiatic Society Publication—1935—P 38.

(३३) कीर्त्तिपताका की एकमात्र खण्डित प्रतिलिपि (८ से २९ पृष्ठ तक नहीं है) नेपाल राजदरबार में मः मः हरप्रसाद शास्त्री ने देखी थी, मः मः डा० उमेश मिश्र इसकी नकल लाये हैं। उन्होंने और उनके पुत्र जयकान्त मिश्र ने इस ग्रन्थ से दो चार स्थल उद्धृत किए हैं।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में शिवसहि के सम्बन्ध में शृंगार रस का वर्णन है; बाद में उन्होंने एक सुलतान को किस प्रकार युद्ध में पराजित किया और अपनी कीर्त्तिपताका उड़ायी, इसका वर्णन है। डा० जयकान्त मिश्र ने इसके जिस अंश को उदधृत किया है उसमें गौड़ के सुलतान के इनके द्वारा पराभूत होने की कथा है (३४)। ग्रन्थ के शेष की ओर है—

एवं श्रीशिवसिंहदेव नृपतेः संग्रामजातं यशो
गायन्ति प्रतिपत्तनं प्रतिदिशं प्रत्यगणं सुभ्रुवः॥

वर्त्तमान संस्करण पदावली संग्रह के अष्टम और नवम संख्या के पद अवहट्ठ भाषा में लिखे रहने पर भी उनमें देवसिंह के सुरपुरी जाने का वर्णन है। अनुमान होता है कि ये दोनों पद कीर्त्तिपताका के खण्डित अंश हैं (३५)। शिवसिंह ने गौड़ के एक सुलतान को पराजित किया था इसका जिक्र विद्यापति ने शम्भु वाक्यावली में फिर किया है। पुरुष-परीक्षा में प्रदत्त संवादों के अतिरिक्त कवि ने एक समाचार यहाँ अधिक दिया है। यहाँ कहा गया है कि गौड़ अथवा राज्जन का राजा बड़े बड़े हाथियों और अनेक सैन्य-सामन्त लेकर आया था और उनको शिवसिंह ने शौर्य के द्वारा पराभूत किया (३६)। विश्वासदेवी की आज्ञा से विद्यापति ने—शम्भु वाक्यावली वा शैवसर्वस्वसार (३७), शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत-पुराण-संग्रह और गंगावाक्यावली की रचना की। शैवसर्वस्वसार में २५०७ श्लोक हैं। इसके पंचम श्लोक से जाना जाता है कि पद्मसिंह शिवसिंह के अनुज थे। ये भी संग्राम में भीम के समान थे। बोध होता है कि युद्ध में विकलांग हो जाने के कारण उन्होंने स्वयं शासन न करके उसका भार अपनी पत्नी पर दे दिया था। पूर्वभारत के इतिहास में विश्वास देवी का उच्च स्थान पाना उचित है। विद्यापति ने उनकी जितनी प्रशंसा की है उसका कुछ अंश भी सत्य माना जाए तो उन्हें असामन्या कहना पड़ेगा।

---

(३४) डा० जयकान्त मिश्र, A History of Maithili Literature, Vol I, P 152.

(३५) डा० सुकुमार सेन ने भी इसी अनुमान का समर्थन किया है—"एकटि अवहट्ठ कविताय—निश्चयइ कीर्त्ति पताका थेके उद्धृत—देवसिँहेर परलोक गमनेर ओ शिवसिँहेर राज्यलाभेर वर्णना आछे," विद्यापति गोष्ठी पृः १५।

(३६) शम्भू वाक्यावली के मङ्गलाचरण का चतुर्थ श्लोक। इसमें स्पष्ट है "शौर्य्यावर्जित गौड़ गज्जन महीपालोपनम्रीकृता" तथापि डा० सुकुमार सेन ने कहा है "शिवसिंह के बोधहय एक समय गौड़-सुलतानेर पक्ष निये युद्धे नामते हयछिल।" पृः १६।

(३७) इस ग्रन्थ के एकादश श्लोक में इसका नाम शैवसर्वस्वसार कहा गया है, किन्तु द्वादश श्लोक में इसका उल्लेख शम्भुवाक्यावली के नाम से हुआ है। किन्तु शेष तक इसका नाम शैवसर्वस्वसार हुआ था। यह "शैवसर्वस्व-सार प्रमाणभूत पुराण संग्रह" से जाना जाता है। शेषोक्त ग्रन्थ का एक खंड दरभंगा राजपुस्तकालय में है—
B. O. R. S. Descriptive Catalogue of Mithila Mss: Vol. I (1927), P. 4181. विद्यापति ने संस्कृत श्लोकों की रचना में कितना उत्कर्ष लाभ किया था वह शैवसर्वस्वसार में दिए गए विश्वासदेवी के गुण वर्णन से जाना जाता है—

दुग्धाम्भोधेरिव श्रीगुणगणसदृशे विश्वविख्यात वंशे
सम्भूता पद्मसिंहक्षितिपतिदयिता धर्मकर्म्मैकसीमा।

कवि ने शैवसर्वस्वसार के सप्तम से एकादश श्लोक तक स्रग्धरा छन्द में विश्वासदेवी का गुणगान करते हुए कहा है कि वे पति के सिंहासन पर बैठकर मिथिला महामण्डल का पालन करती थीं, वे न्याय और राजनीति में विश्वविख्यात; उनकी बुद्धि समुज्ज्वल और स्वभाव मधुर। उनके समान कोई दान नहीं कर सकता। उन्होंने विश्वभाग नामक तड़ाग खुदवा कर उसके चारो ओर सुन्दर बागीचा लगवाया था। विश्वासदेवी सम्भवतः खूब विदुषी भी थीं, नहीं तो गंगावाक्यावली के शेष श्लोक में कवि विद्यापति यह नहीं कहते कि यह निबन्ध विश्वासदेवी ने ही लिखा है, उन्होंने (विद्यापति ने) केवल प्रमाणश्लोक उद्धृत कर उसको परिपूर्णता प्रदान की है (३८)। इस ग्रन्थ में हरिद्वार से आरम्भ कर गंगासागर तक के भू-भाग में कौन तीर्थ में क्या तीर्थकृत्य किस प्रकार के भाव से करना चाहिए उसकी व्यवस्था है।

पहले ही कहा जा चुका है कि विद्यापति ने विभागसार ग्रन्थ राजा दर्पनारायण के आदेश से लिखा था। इस ग्रन्थ में प्रायः ५८५ श्लोक हैं। इसमें दायभाग, द्वादश पुत्र लक्षण निरुपण, अपुत्रक व्यक्ति के धन के अधिकारी का निरुपण, स्त्रीधनविभाग, गुप्त-प्राप्त-विभाग, असंस्कृत संस्कार प्रभृति का विचार है (३९)। विद्यापति ने अपनी दानवाक्यावली में इंगित किया है कि दर्पनारायण नरसिंह का विरुद है। भैरवसिंह ने अपनी 'विष्णुपूजा कल्पलता' में विद्यापति का समर्थन किया है। नरसिंह ने दत्त और

पत्युः सिंहासनस्था पृथुमिथिलमहीमण्डलं पालयन्ती
श्रीमद् विश्वासदेवी जगति विजयते चर्य्ययारुन्धतीव ॥७
इन्द्रस्येव शची सम्मुज्ज्वलगुणा गौरीव गौरीपतेः
कामस्येव रतिः स्वभावमधुरा सीतेव रामस्य या।
विष्णोः श्रीरिव पद्मसिंह नृपते रेषा परा प्रेयसी
विश्वख्यात-नया द्विजेन्द्रतनया जागर्त्ति भूमण्डले ॥८
दातारः कति नाऽभवन् कति न वा सन्तीह भूमण्डले
नैकोऽपि प्रथितः प्रदान यशसो विश्वासदेव्याः समः।
यस्या स्वर्णतुला सुखाखिल महादान प्रदाना ' ...
स्वर्गग्राम मृगीदृशामपि तुलाकोटि ध्वनिः श्रूयते ॥९
नित्यं देवद्विजार्थं द्रव द्रविणवितरणारम्भसम्भावित श्रीर्
धर्मज्ञा चन्द्रचूड़ प्रतिदिवस-समाराधनैकाग्रचित्ता।
विज्ञानुज्ञाप्य विद्यापति कृतिनमसौ विश्वविख्यात कीर्त्तिः
श्रीमद् विश्वासदेवी विरचयति शिवं शैवसर्वस्वसारं ॥११

(३८) [illegible] श्री विद्यापति सुरिणा
गंगा वाक्यावली देव्याः प्रमाणैर्विमला कृता।
यह ग्रन्थ दरभंगा राजलाइब्रेरी में है।

(३९) बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी का मिथिला की हस्तलिखित पोथियों का विवरण, प्रथमखण्ड, पृः ३६८-६९। इसका एक [illegible] पटना हाईकोर्ट के भूतपूर्व प्रधान विचारपति श्रीयुक्त लक्ष्मीकान्त झा के पास भी है।

दुर्द्धर्ष अरिकुल का दर्पदलन किया था, इसीलिए उपनाम दर्पनारायण पड़ा था। उनकी स्त्री धीरमती की आज्ञा से यह दानवाक्यावली लिखी गयी थी। धीरमती ने वापी और कूप खुदवाये थे, तीर्थयात्रियों के लिए आवासभवन या धर्मशालाओं का निर्माण करवा दिया था; उन्होंने भिक्षुकों को सरस अन्नदान की व्यवस्था करवायी थी (४०)। इस प्रकार की दानशीला महिषी का तुलापुरुष, स्वर्ण, हस्ती प्रभृति के दान की व्यवस्थायुक्त ग्रन्थ लिखवाना स्वाभाविक है। रघुनन्दन ने विवाहतत्त्व नामक ग्रन्थ में विद्यापति की दानवाक्यावली का मत उद्धृत किया है। राजाओं के नामाङ्कित स्मार्त्तग्रन्थों में विद्यापति की शेष पुस्तक है दुर्गाभक्तितरंगिणी। इसमें एक हजार से भी अधिक श्लोक हैं।

विद्यापति के परवर्त्ती अधिकांश स्मार्त्त पण्डितों ने भी दुर्गापूजा की विधि लिखते समय इस ग्रन्थ को प्रमाणरूप में उद्धृत किया है। १६०२ खृष्टाब्द में यह पुस्तक दरभंगामहाराज की आज्ञा से मुद्रित हुई। इस ग्रन्थ के तृतीय से षष्ठ श्लोक में पाया जाता है कि ग्रन्थरचना के समय नरसिंहदेव जीवित थे। वे मिथिला भूमण्डल के आखण्डल अर्थात् इन्द्रस्वरूप थे। उन्होंने दान में कर्ण को भी मात किया था। उनके पदद्वय को किरीटरत्नशोभित राजा लोग पूजते थे। उनके पुत्र धीरसिंह का प्रताप दिनोदिन बढ़ रहा है। वे संग्राम में वैरियों में जय कर त्रिभुवन-विख्यात हो गए हैं। वे मर्यादानिलय, प्रकामनिलय और प्रज्ञाप्रकर्ष के आश्रय हैं। उनके अनुज रूपनारायण भैरवसिंह देव नृपति ने पंचगौड़ के धरणीनाथ को अथवा पंचगौड़ धरणी के नाथों को नम्रीकृत किया है। वे देवीभक्तपरायण, श्रुति और यज्ञकर्म में पारदर्शी, संग्राम में वे रिपुराजकंसदलन प्रत्यक्षनारायण। उन्हीं की आज्ञा से विद्यापति ने पूर्व निबन्ध-समूह की पर्यालोचना करके इस ग्रन्थ को लिखा है (४१)। दुर्गाभक्तितरंगिणी समाप्त करने

---

(४०) (क) भैरवसिंह की विष्णुपूजा कल्पलता—विहार-उड़िसा रिसर्च सोसाइटी का मिथिला पोथियों का विवरण पृ० ३४०—"दृप्यदुर्धर वैरिदर्पदलनोऽभूद्दर्पनारायणो विख्यातो नरसिंहदेव नृपतिः सर्व्वार्थ चिन्तामणिः।"

(ख) श्रीकामेश्वर पंडितकुलालंकार सारः श्रिया-
मावासो नरसिंहदेवमिथिलाभूमण्डलाखण्डलः।
दृप्यद्दुर्द्धर्ष वैरिदर्पदलनोऽभूद्दर्प नारायणो
विख्यातः शरदिन्दुकुन्दधवलभ्राम्यद्यशोमण्डलः॥
तस्योदारगुणाश्रयस्य मिथिलाक्ष्मापालचूड़ामणेः
श्रीमद्धीरमतिः प्रिया विजयते भूमण्डलालंकृतिः॥
दाने कल्पलतेव चारुचरिते याहरुन्धतीव स्थिरा
या लक्ष्मीरिव भैरवे गुणगणे गौरीव या गण्यते।
वापी कूपजलाधिकाशिविमला विज्ञानवापीसमा
रम्यं तीर्थनिवासिवासभवनं चन्द्राभमभ्रंलिहम्॥
उद्यानं फलपुष्पनम्रविटपच्छायाभिरानन्दनं
भिक्षुभ्यः सरसान्नदानमनघं यस्या भवान्या इह।
लक्ष्मीभाजः कृतार्थो न कृतसुमनसो या महादानहेम
ग्रामैराजीवराजीवहलतर परागासरागैस्तडागैः॥
विज्ञानुज्ञाप्य विद्यापतिमतिकृतिनं सप्रमाणामुदार-
राज्ञी पुण्यावलोका विरचयति नवां दानवाक्यावलीं॥

(४१) अस्ति श्रीनरसिंहदेव मिथिला भूमण्डलाखण्डलो
भूभृन्मौलिकिरीट रत्ननिकर प्रत्यर्चिताङ्घ्रिद्वयः।

के समय भी धीरसिंह ही राजत्व कर रहे थे—भैरवसिंह नहीं—यह बात उस ग्रंथ के शेष दोनों श्लोकों से जानी जाती है। इन दोनों श्लोकों के पहले में धीरसिंह और भैरवसिंह के अनुज चन्द्रसिंह का जयगान किया गया है एवं दूसरे में प्रार्थना की गयी है कि शिव की जटा में जितने दिन गंगा रहें, उनके अर्द्धांग में भवानी रहें, एवं उनके कपाल में शशिकला रहे. उतने दिन श्री धीरसिंह नृपति की कीर्त्ति उज्ज्वल रहे (४२)।

उनकी लिखनावली में हम विद्यापति के पृष्ठपोषक के रूप में एक राजा को पाते हैं जो कामेश्वर के वंश में उद्भूत नहीं है। उन्होंने इस ग्रंथ की उपक्रमणिका में कहा है कि द्रोणवार महीपति सर्वादित्य के पुत्र पुरादित्य गिरिनारायण की आज्ञा से अल्प पढ़े-लिखे लोगों की शिक्षा के लिए और विद्वानों के कौतुक के लिए विद्यापति ने लिखनावली लिखी है (४३)। शिवनन्दन ठाकुर

आपूर्वापरदक्षिणोत्तरगिरि प्राप्तार्थिवाञ्छाधिक
स्वर्णक्षौणिमणिप्रदानविजित श्रीकर्णकल्पद्रुमः ॥३

डा० उमेशमिश्र ने अस्ति के स्थान पर स्वस्ति पाठ माना है, किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि यह पाठ उन्होंने किस पोथी अथवा मुद्रित संस्करण में पाया है।

विश्वख्यातनयस्तदीयतनयः प्रौढ़ प्रतापोदयः
संग्रामांगणलब्धवैरिविजयः कीर्त्याप्तलोकत्रयः।
मर्यादानिलय: प्रकामनिलयः प्रज्ञाप्रकर्षाश्रयः
श्रीमद्भूपति धीरसिंह विजयी राजन्यमोघश्रियः ॥४
शौर्यावर्जित पंचगौड़धरणीनाथोपनम्रीकृता-
ऽनेकोत्तुंग-तुरंग-संगत सितच्छत्राभिरामोदयः।
श्रीमद् भैरवसिंह देव नृपतिर्यस्यानुजन्माजय-
त्याचन्द्रार्कमखण्ड कीर्त्तिसहितः श्रीरूपनारायणः ॥५
देवीभक्तिपरायणः श्रुतिमखप्रारब्धपारायणः
संग्रामरिपुराजकंसदलनप्रत्यक्ष नारायणः।
विश्वेषां हितकाम्यया नृपवरोऽनुज्ञाप्य विद्यापतिं
श्रीदुर्गोत्सव पद्धतिं स तनुते दृष्ट्वा निबन्धस्थितिम् ।६—दुर्गाभक्तितरंगिणी (Indian Antiquary, 1885, PP—192-3)

(४२) यस्य श्रीरत्नमुदयगतो रामस्य सौमित्रिवत्
सौणीमण्डलमण्डनो विजयते श्रीचन्द्रसिंहोऽनुजः।
गंगोमा शशिकरे शिरसि शशिकला यावदेतस्य तावत्
कीर्त्तिः श्रीधीरसिंह क्षितिपति तिलकस्येयमुर्वी चकास्तु ॥ India Govt. Ms. No. 4760, पृ. ११ क,

(४३) सर्वादित्यतनुजस्य द्रोणवारमहीपतेः
गिरिनारायणस्याज्ञां पुरादित्यस्य पालयन्।
स्वल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम्।
विद्यापतिस्सतां प्रीत्यै करोति लिखनावलीम् ॥ लिखनावली का प्रथम श्लोक। यह ग्रन्थ दरभंगा में मुद्रित हुई थी, परन्तु हमने नहीं देखी है। यह श्लोक डा० उमेश मिश्र के 'विद्यापति ठाकुर' से उद्धृत हुआ है।

(४४) और डा० उमेश मिश्र (४५) का कहना है कि पुरादित्य की राजधानी जनकपुर के निकटवर्ती ग्राम राजबनौली में थी। विद्यापति ने ग्रन्थ के शेष में लिखा है कि उन्हीं राजा पुरादित्य ने यह किताब लिखवायी है जिन्होंने शत्रुकुल को पराजित कर उनका धन अर्थीगण को दिया है, अपने बाहुबल से सप्तरीदेश जय कर वहाँ राज्य स्थिति की है, तथा अर्जुन भूपति को, जिसने अपने गोतियों के प्रति नृशंस व्यवहार किया था, युद्ध में मारा है (४६)। आदर्श पत्रों में पंचदश शताब्दी की मिथिला

---

(४४) शिवनन्दन ठाकुर कृत महाकवि विद्यापति, पृ० २०।

(४५) डा० उमेश मिश्र—विद्यापति ठाकुर, पृ० २१।

(४६) जित्वा शत्रुकुलं तदीय वसुभिर्येनार्थिनस्तर्पिता
दोदर्पार्जित सप्तरी जनपदे राज्यस्थिति: कारिता।
संग्रामेऽर्जुन भूपतिर्विनिहतो बन्धौ नृशंसायित:
तेनेयं लिखनावली नृपपुरादित्येन निर्मापिता॥

१९२७ खृष्टाब्द में वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय (Journal of Letters, p. 27) और १९३७ खृष्टाब्द में शिवनन्दन-ठाकुर (पृ० २१) ने "बन्धौ" पाठ माना है। किन्तु १९३७ खृष्टाब्द में डा० उमेश मिश्र ने उक्त श्लोक उद्धृत न कर एक कहानी लिखी है कि शिवसिंह की मृत्यु के बाद विद्यापति लखिमा देवी और सम्भवत: शिवसिंह के अन्यान्य परिवारवर्ग को लेकर २९९ ल० स० और आसपास के समय में राजबनौली में पुरादित्य राजा की शरण में गए। वहाँ जलाशय पर्याप्त नहीं था, इसीलिए विद्यापति ने वहाँ एक बड़ी पुष्करिणी खुदवायी और उसकी प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में यज्ञ करवाया। "अर्जुन नामक एक बौद्ध मत का राजा वहाँ सप्तरी में राज्य करता था। उसके साथ जो और भी बौद्ध थे, सभों ने मिलकर इस यज्ञ में बड़ा उपद्रव किया। पहले तो शास्त्र चर्चा चली, जो पीछे भयंकर युद्ध में परिणत हो गयी, और अन्त में दोनवार वंशीय मैथिल ब्राह्मण राजा पुरादित्य की सहायता से बौद्ध लोग मार भगाए गए और उनका राजा अर्जुन युद्ध में मारा गया। उसका धन सब ब्राह्मणों को बाँट दिया गया। सप्तरी परगना पुरादित्य के राज्य में मिला लिया गया। यहीं पर विद्यापति ने लिखनावली' लिखी थी" (पृ० ४३)।

डा० सुकुमार सेन ने आकरग्रन्थ अथवा पोथी का उल्लेख न कर श्लोक छापते समय "बन्धौ नृशंसायित:" पाठ के बदले "बौद्धौ नृशंसायित:" पाठ रखा है। उन्होंने मन्तव्य भी किया है—"याँरा मने करेन ये एइ अर्जुन भूपति छिलेन तीरहुतेर ब्राह्मण-राजवंशीय अर्जुनसिंह-ताँरा नितान्त भ्रान्त। एँरा बौद्ध छिलेन ना। इनि यदि नेपालेर जयार्जुनमल्लदेव (राज्यकाल चतुर्दश शतकेर शेषपाद)—हन-ता' हले विद्यापतिर प्रथम रचना एइ लिखनावली। नेपालेर राजवंश तखन पुरापुरी बौद्ध ना होक बौद्ध भावापन्न छिल खुबइ" (विद्यापतिगोष्ठी-पृ० १८) Bendall के The History of Nepal and surrounding kingdoms (J. A S. B., Vol. LXXII, part I, 1903, p. 27) में देखा जाता है कि जयार्जुनमल्लदेव के राज्यकाल में लिखित पोथी में १३६३ (हरप्रसाद शास्त्री का नेपाल राजदरबार की पोथियों का विवरण पृ० ३१), १३७१ (ऐ० पृ० ८८) और १३७६ (ऐ० पृ० १२१) का उल्लेख है। बेन्डल महोदय ने जिस वंशावली का अविष्कार किया था उससे उन्होंने सिद्धान्त किया है कि जयार्जुन ने ४६७ नेपाल-अब्द में जन्म ग्रहण किया और ५०२ नेपाल-अब्द अथवा १३८२ खृष्टाब्द में मरे। लिखनावली में उल्लिखित २९९ ल० स० वा १४१७-१८ खृष्टाब्द के ४५ वर्ष पूर्व जयार्जुन की मृत्यु हुई थी; सुतराँ लिखनावली के अर्जुन जयार्जुन नहीं हो सकते हैं।

के आचार-विचार का भी कुछ परिचय पाया जाता है—यथा दासदासियों के क्रय-विक्रय की चलन, जमीन मापकर और फसल देखकर भूस्वामी का खजाना अदा करना इत्यादि। पत्रों में कई एक में २९९ लक्ष्मण सम्वत् देखकर लगता है कि विद्यापति ने इसे १४१७-१८ खृष्टाब्द में लिखा था।

विद्यापति द्वारा रचित ग्रन्थों की आलोचना करके देखा जाता है कि कवि ने कीर्तिलता में (१) कामेश्वर और उनके पुत्र (२) भोगीश राय और उनके पुत्र (३) गअनेश वा गअन राय और उनके तीनों पुत्रों (४) वीरसिंह (५) कीर्त्तिसिंह (६) राअसिंह का नाम; भूपरिक्रमा में (७) देवसिंह और (८) शिवसिंह का नाम; पुरुष-परीक्षा में (९) भवदेवसिंह, उनके पुत्र देवसिंह और उनके पुत्र शिवसिंह का नाम; शैवसर्वस्वसार में भवसिंह, उनके पुत्र देवसिंह, उनके पुत्र शिवसिंह और शिवसिंह के अनुज (१०) पद्मसिंह और उनकी स्त्री (११) विश्वासदेवी का नाम; गंगावाक्यावली में फिर से विश्वासदेवी का नाम; विभागसार में भवेश, उनके पुत्र (१२) हरिसिंह और उनके पुत्र दर्पनारायण का नाम; दानवाक्यावली में (१३) नरसिंह दर्पनारायण और उनकी पत्नी (१४) धीरमती का नाम; एवं दुर्गाभक्तितरंगिणी में नरसिंह और उनके तीन पुत्र (१५) वीरसिंह (१६) भैरवसिंह और (१७) चन्द्रसिंह के नाम का उल्लेख किया है। इन पन्द्रह पुरुषों और दो नारियों में भवदेव, भवसिंह वा भवेश के साथ कामेश्वर का क्या सम्बन्ध था अथवा नरसिंह के साथ शिवसिंह का क्या सम्बन्ध था, यह विद्यापति ने नहीं कहा है। लिखनावली का अर्जुन कौन था इस विषय में भी कवि चुप हैं। इन सब विषयों की खबर पाने के लिए मिथिला की पंजी की आलोचना करनी होगी। कामेश्वर के अधस्तन पुरुषों में (१) कीर्त्तिसिंह (२) देवसिंह (३) शिवसिंह (४) पद्मसिंह और उनकी स्त्री विश्वासदेवी (५) नरसिंह और उनकी स्त्री धीरमती (६) धीरसिंह (७) भैरवसिंह और (८) चन्द्रसिंह का नाम उन्होंने ग्रन्थों में पृष्ठपोषक के रूप में उल्लिखित किया है।

वर्त्तमान संस्करण की पदावली में देखा जायगा कि विद्यापति ने कामेश्वरवंशीयों में देवसिंह का नाम चार पदों में, हरिसिंह का नाम एक पद में, शिवसिंह का नाम १९८ पदों में (८ से २०४ और २०७), विश्वासदेवी के पति पद्मसिंह का नाम एक पद में (२०८) (४७), अर्ज्जुन राय का नाम पाँच पदों में (२०९ से २१३), कुमार अमर सिंह का नाम दो पदों में (२१४ और २१५), कंसदलन नारायण सुन्दर धीरसिंह का नाम एक पद में (२१६), राघवसिंह का नाम तीन पदों में (२१७ से २१९), और नृप

---

(४७) वर्त्तमान संस्करण के २०८ संख्या का पद। डा० सुकुमार सेन ने रामभद्रपुर पोथी अथवा शिवनन्दन ठाकुर के "महाकवि विद्यापति" (द्वितीय भाग; पृ० १२) और "विशुद्ध विद्यापति पदावली" न देख कर ही लिखा है विद्यापति के किसी पद में पद्मसिंह विश्वासदेवी का उल्लेख नहीं है।

रुद्रसिंह का नाम दो पदों में (२२० और २२८) संश्लिष्ट किया है। कुमार अमर, राघवसिंह और रुद्रसिंह के साथ कामेश्वर वंशीयों (शिवसिंह, धीरसिंह प्रभृति) का क्या सम्बन्ध था, यह भी जानने का प्रयोजन है। इसके लिए भी मिथिला की पंजी की सहायता लेनी होगी।

१८७५ खृष्टाब्द में राजकृष्ण मुखोपाध्याय और जौन वीम्स से लेकर १६३७ खृष्टाब्द में शिवनन्दन ठाकुर तक सब लेखकों ने पंजी से वंशावली उद्धृत की है। किन्तु प्रत्येक के द्वारा प्रदत्त वंशावली और विद्यापति द्वारा स्वयं लिखे सम्वाद में कुछ-न-कुछ पार्थक्य देखा जाता है। इस प्रकार के पार्थक्य के क्षेत्र में विद्यापति की उक्ति ही प्रामाण्य समझनी होगी क्योंकि वे समसामयिक थे, अतएव उनकी उक्ति में भूल भ्रान्ति रहने की कम सम्भावना थी। १८७५ खृष्टाब्द में राजकृष्ण मुखोपाध्याय (४८) और उनके निवन्ध के अनुवादक जौन वीम्स (४६) ने पंजी की दुहाई देते हुए लिखा है कि शिवसिंह को तीन पत्नियाँ थीं—रानी पद्मावती, रानी लखिमादेवी और रानी विश्वासदेवी—उन्होंने उनके बाद पर्यायक्रम से राज्य किया और उनके बाद शिवसिंह के चचेरे भाई नरसिंह ने सिंहासन लाभ किया। यहाँ देखा जा रहा है कि शिवसिंह के छोटे भाई पद्मसिंह उनकी रानी पद्मावती में परिवर्त्तित हो गए हैं एवं विश्वासदेवी पद्मसिंह की स्त्री न होकर शिवसिंह की स्त्री हो गयी है (५०)। सारदाचरण मित्र द्वारा संगृहीत विद्यापति की पदावली की भूमिका में अयोध्याप्रसाद कृत उर्दू भाषा में लिखित दरभंगा के इतिहास से जो वंशावली उद्धृत की गयी है उसमें पद्मसिंह का नाम ही नहीं है। सारदाचरण मित्र महोदय ने राजकृष्ण मुखोपाध्याय द्वारा लिखित पंजी के तथ्य पर निर्भर करते हुए लिखा है "पंजीग्रन्थ के अनुसार देवसिंह उनके (शिवसिंह के) पिता थे एवं लक्ष्मीदेवी और विश्वासदेवी उनकी महिषी थीं।" उन्होंने पादटीका में और भी कहा है—"पंजीग्रन्थ इस ग्रन्थ में मैथिल राजा लोग और ब्राह्मण लोगों का परिचय है। इसमें से अनेक विषयों को प्रामाणिक समझ कर ग्रहण किया जा सकता है।" १८८५ खृष्टाब्द में ग्रियर्सन साहब ने सारदाचरण मित्र द्वारा उल्लिखित भूमिका का अनुवाद Indian Antiquary में

---

(४८) वंगदर्शन १२८२ साल, ज्येष्ठ संख्या।

(४६) Indian Antiquary, Vol. IV., Oct. 1875, पृ० २६६।

Sib Singh had three wives—the three Ranis mentioned above (*Rani Pedmavati Devi* 1450 A. D. for 1½ years, Rani Lakhima Devi 1452 for 9 years and Rani Biswas Devi 1461 for 12 years) reigned in succession and after them reigned Nara Singha, Sib Singh's cousin.

(५०) विद्यापति ने शैवसर्वस्वसार के पंचम श्लोक में कहा है कि पद्मसिंह शिवसिंह के छोटे भाई थे। इस ग्रन्थ के सप्तम श्लोक में विश्वासदेवी को "पद्मसिंह क्षितिपतिदयिता" कहा गया है।

प्रकाशित किया एवं पंजी की ऐतिहासिकता का प्रमाण देकर एक वंशलता भी दी (५१)। इसमें भोगेश्वर के नीचे लिखा हुआ है कि उन्हें कोई सन्तान हुई ही नहीं (No issue)। किन्तु कीर्त्तिलता में पाया जाता है कि उनके पुत्र का नाम था गअनेस। उसमें त्रिपुरसिंह के पुत्र का नाम सर्व्वसिंह दिया हुआ है और अर्जुन का नाम नहीं है। वर्तमान संस्करण के २१० संख्या के पद में "त्रिपुर सिंघसुत अरजुन" नाम पाया जाता है। १८८८ खृष्टाब्द में चन्द्रभा की पुरुषपरीक्षा के संस्करण के परिशिष्ट में कीर्त्तिलता का कुछ उद्धृत अंश देखकर ग्रियर्सन साहब ने १८९९ खृष्टाब्द में एक और संशोधित वंशलता प्रकाशित की (५२)। उसमें भी वीरसिंह का नाम छूट गया है। उक्त प्रबन्ध में ग्रियर्सन साहब ने चन्द्रभा संगृहीत स्थानीय इतिहासों पर निर्भर करके लिखा है कि भोगीश्वर राजा ने अपने भाई भवसिंह के साथ राज्यभाग कर लिया; कीर्त्तिसिंह और उनके भाई अपुत्रक अवस्था में मृत हुए एवं उन्होंने भोगीश्वर से जो राज्य का अर्द्धांश प्राप्त किया था, वह भी भवसिंह के अधस्तनों के हाथ लगा; उस समय भवसिंह के वंश में थे शिवसिंह; उनकी अवस्था पन्द्रह वर्षों की थी एवं वे पिता देवसिंह की जीवितावस्था में ही युवराजरूप में राज्य करते थे।

१९२२ खृष्टाब्द में श्यामनारायणसिंह ने अंगरेजी भाषा में जो मिथिला का इतिहास प्रकाशित किया उसमें उन्होंने भी पंजी के मतानुसार कामेश्वर की वंशलता दी है और उसमें विश्वास देवी का शिवसिंह की स्त्री कह कर उल्लेख किया है (५३)। १९३७ खृष्टाब्द में शिवनन्दन ठाकुर ने "महाकवि विद्यापति" नामक जो पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना की (५४), उसमें भी उस वंश की एक पीठिका दी हुई है। किन्तु इसमें गअनेस के अन्यतम पुत्र राजसिंह का नाम नहीं है, एवं भैरवसिंह का उल्लेख धीरसिंह के पुत्र रूप में है। हमलोग पहले ही देख चुके हैं कि विद्यापति ने दुर्गाभक्ति तरंगिणी के पंचम श्लोक में भैरवसिंह का धीरसिंह का अनुज कह कर वर्णन किया है। पंजी का यही सब गोलमाल देखकर सुपण्डित डा० उमेश मिश्र ने अपने "विद्यापति ठाकुर" ग्रन्थ में कामेश्वर की कोई वंशलता ही नहीं दी

(५१) I. A. 1885 July, पृ० १८७, पादटीका २१: "The Panj is one of the most extraordinary series of records in existence. It is composed of an immense number of palm-leaf manuscripts containing an entry for the birth and marriage of every pure Brahman in Mithila; they go back for many hundred years, the Panjiars say, for more than a thousand. These Panjiars or hereditary genealogists go on regular annual tours entering the names of Brahmins born in each village during the past year, as they go along. The names are all entered, as no Brahman can marry any woman who has not been entered in the Panj and vice versa." ग्रियर्सन साहब ने उक्त प्रबन्ध के पंचम परिशिष्ट (१९९ पृ०) में लिखा है—I here add a genealogical tree of King Siva Sinha, which I have compiled from the Panjis of Mithila.

(५२) Indian Antiquary, March 1899, पृ० ५८

(५३) History of Tirhut, पृ० ८३-८४

(५४) शिवनन्दन ठाकुर कृत विद्यापति, पृ० २७

है। आजकल दरभंगा राज लाइब्रेरी के सुपण्डित ग्रन्थाध्यक्ष श्रीयुक्त रमानाथ झा पंजी की वैज्ञानिक गवेषणा कर रहे हैं एवं मिथिला के प्राचीन समाज और इतिहास के अनेक अमूल्य तथ्यों का उद्धार कर रहे हैं। वे कहते हैं कि पञ्जी में भूल नहीं है, केवल पढ़ने और समझने के दोष से पूर्व-लेखकों ने गलत सम्वाद दिया है। विद्यापति के ग्रन्थ और पञ्जी में जो सब सम्वाद पाया जाता है उसे मिलाकर पढ़ने से पदावली समझने के लिए निम्नलिखित पीठिका का सारांश दिया जा सकता है:—
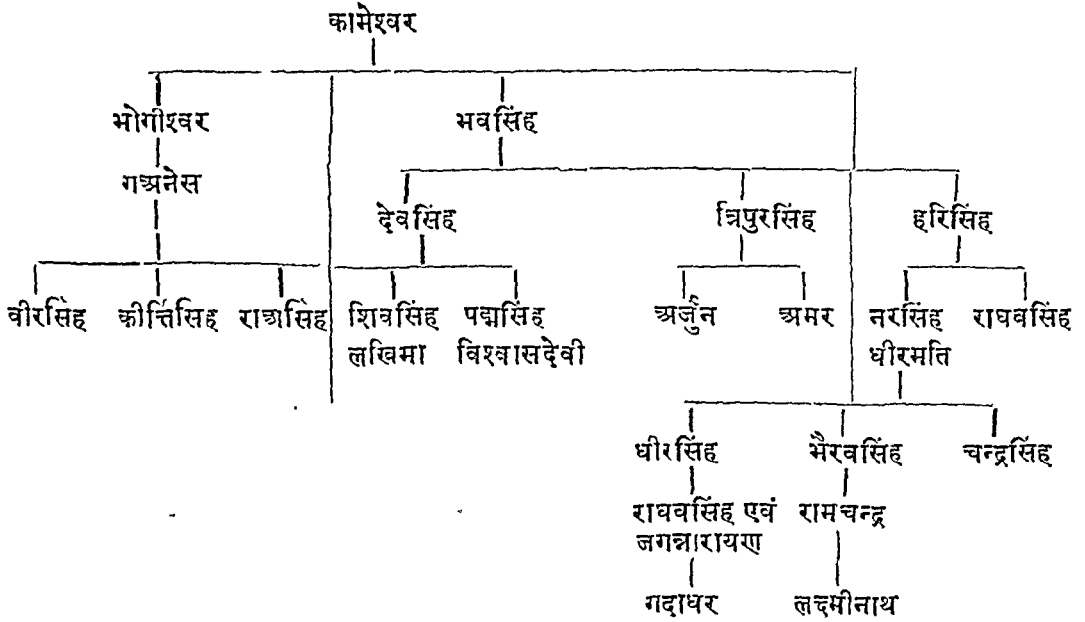
उक्त पीठिका में २२० संख्या के पद में उल्लिखित रुद्रसिंह का नाम नहीं है। पण्डित रमानाथझा कहते हैं कि रुद्रसिंह रामेश्वर के पुत्र थे, महामहात्तक कुसुमेश्वर के पौत्र एवं शिवसिँह के चचेरे भाई (५५)। कुमार अमर और अर्ज्जुन दोनो ही शिवसिंह के चचा त्रिपुरसिंह के पुत्र थे (५६)। कामेश्वर के वंश में दो आदमी राघव पाए जाते हैं—पहले शिवसिंह के चचा हरिसिंह के पुत्र राजा राघवसिंह विजय नारायण और दूसरे हरिसिंहके पौत्र धीरसिंह के पुत्र राघवसिंह। वर्त्तमान संकरण की पदावली में २१७ से २१६ संख्या में उल्लिखित राघवसिंह को शिवसिंह का चचेरा भाई मानना अधिकतर युक्तिसंगत है।

इससे देखा जाता है कि विद्यापति के जो ग्रन्थ और पद अब तक आविष्कृत हुए हैं उनमें पहले कीर्त्तिलता कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में लिखी गयी एवं शेष दुर्गाभक्ति तरंगिणी नरसिँहदेव के जीवनकाल में धीरसिँह के राजत्व में भैरवसिँह के आदेश से लिखी गयी। पुश्तों (Generations) के हिसाब से तीन पुश्तों के भीतर ही कवि-कर्तृक उल्लिखित कामेश्वर वंशीय समस्त पृष्ठपोषकों के नाम पाए जाते हैं।

(५५) प० जयकान्त मिश्र—History of Maithili Literature, Vol. I, पृ० १४, पादटीका २५।
(५६) प० जयकान्त मिश्र—History of Maithili Literature, पृ० ४६५-६६ में दी हुई वंशलता।

कालानुयायी इन सब पृष्ठपोपकों के नाम सजाकर उनके आदेश वा उद्देश्य से उत्सर्गीकृत ग्रन्थ वा पदों का उल्लेख किया जाता है।

१। कीर्त्तिसिँह—कीर्त्तिलता

२। देवसिंह—भूपरिक्रमा और १, ३, ४, ५, ६ संख्या के पद (कीर्त्तिसिँह के गोतिया चचा)

३। हरिसिँह—७ संख्या का पद (देवसिँह के भाई)

४। शिवसिँह—कीर्त्तिपताका, पुरुष-परीक्षा और ८ से २०४ और २०७ संख्या के पद

५। पद्मसिँह और विश्वास देवी—शैवसर्वस्वसार, शैवसर्वस्वसार प्रमाणभूतपुराण-संग्रह, गंगावाक्यावली और २०८ संख्या का पद (शिवसिह के भाई)

६। अर्जुन और अमर—२०६-२१३ एवं २१४-२१५ संख्या के पद (शिवसिह के चचेरे भाई)

७। राघवसिँह—२१७-१६ संख्या के पद (शिवसिँह के चचेरे भाई, हरिसिँह के पुत्र)

८ रुद्रसिँह—२२० और २२८ संख्या के पद (शिवसिँह के गोतिया भाई)

९। नरसिँह और धीरमती—विभागसार, दानवाक्यावली (शिवसिँह के चचेरे भाई, हरिसिँह के पुत्र)

१०। धीरसिँह-भैरवसिँह-चन्द्रसिँह—दुर्गाभक्ति तरंगिणी और २१६ संख्या का पद (शिवसिंह के चचेरे भाई के लड़के)

कामेश्वर के वंश के राजा, रानी और राजकुमार को छोड़कर विद्यापति ने और कई एक पृष्ठपोपकों के नाम दिए हैं। उनमें तीन आदमी सम्भवतः इसी वंश के मन्त्री थे और दो मुसलमान थे। मन्त्रियों के नाम रेणुका देवी के पति महेश्वर (२२१-२२३), जुड़मदेवी के कान्त महेश्वर (२२४ संख्या का पद), रुक्मिणी देवी के पति रतिधर (२२६ संख्या का पद), दश सए अवधान' अर्थात् जो दश शत विषयों में एक संग ही अवधान कर सकते थे ऐसे राय दामोदर। ये लोग किस राजा के मन्त्री थे, किस समय में जीवित थे, इत्यादि विषयोंका हमें कुछ ज्ञान नहीं है। २२७ संख्या के पदमें उल्लिखित मालिक बहारदिन के सम्बन्ध में भी हमें कोई तथ्य अवगत नहीं होता। नगेन्द्र बाबू ने लिखा है कि ये "दिल्ली के एक प्रसिद्ध मुसलमान गायक थे", किन्तु फेरिश्ता और तारीख-इ-मोवारकशाही में बड़े बड़े सेनापतियों की उपाधि मालिक मिलती है।

वर्तमान संस्करण के दूसरे पद में विद्यापति 'महलम जुगपति ग्यासदीन सुलतान' के दीर्घजीवन की प्रार्थना करते हुए पाए जाते हैं। इनका प्रकृत नाम गियास-उद्-दीन आजम शाह था। इनके पिता थे सिकन्दर शाह; पितामह सुप्रसिद्ध सामस-उद्दीन इलियास शाह। इन्होंने पिता के विरुद्ध विद्रोह करके सम्भवतः ७९२ हिजरी में बंगाल के सिंहासन पर आरोहण किया। उनकी जो मुद्राएँ पायी गयी हैं उनकी तारीख ७९५ से ८१२ हिजरी है। सर यदुनाथ सरकार ने उनका राजत्वकाल १३८९ से १४०६

खृष्टाब्द माना है (५७)। घियास्-उद्-दीन ने जौनपुर के प्रथम सुलतान ख़ाजा जहान या मालिक सरभार (१३६४-१३६६) को हाथी एवं अन्यान्य द्रव्य उपहार में भेजे थे। १४०६ खृष्टाब्द में चीन के सम्राट इयूंलो ने बंगाल में दूत भेजा था एवं घियास-उद्-दीन ने १४०६ खृष्टाब्द में चीन देश में अपना दूत भेजा था। कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध कवि हाफ़िज़ ने इन्हें एक कविता लिख कर भेजी थी। यह कोई विचित्र बात नहीं है कि इस प्रकार के सुप्रसिद्ध और विद्योत्साही सुलतान को विद्यापति अपनी कविता उपहार दें। प्रश्न यह होता है कि यह कविता उन्होंने मिथिला पर जौनपुर का अधिकार स्थापित होने के पहले अथवा बाद में भेजा था। मालिक सरभार ने १३६५ से १३६८ खृष्टाब्दों के बीच में तिरहुत पर अपना अधिकार स्थापित किया था (५८)। उनके तिरहुत विजय के बाद विद्यापति ने बंगाल के सुलतान को पद लिख कर उपहार देने का साहस किया था कि नहीं इसमें सन्देह है—यद्यपि घियास-उद्-दीन से सरभार का बन्धुत्व होने के कारण इस प्रकार का उपहार देना राजद्रोह में भी नहीं गिना जा सकता है। यह पद घियास्-उद्-दीन के जीवनकाल में अर्थात् १४०६ खृष्टाब्द में या उससे पहले ही लिखा गया था, इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

नगेन्द्रगुप्त के संस्करण में ४८४ संख्या के पद में हुसेन साहेब का, ८०१ में राउ भोगीश्वर का, ३४ में राय नसरत साह का, ४४ में "कीर्त्तनानन्द" धृत पाठान्तर में पंच गौड़ेश्वर नसीर साह एवं ५२६ संख्या के पद में आलम साह का नाम पाया जाता है। इन पदों को हमलोगों ने विद्यापति की निःसन्दिग्ध रचना क्यों नहीं मानी है उसका विचार किया जा रहा है।

नगेन्द्रनाथगुप्त ने ४८४ संख्या के पद की भणिता के रूप में छापा है—

> भनइ विद्यापति नव कविसेखर
> पहुवी दोसर कहाँ।
> साह हुसेन भृंगसम नागर
> मालति सेनिक जहां॥

पद के नीचे उन्होंने लिखा है कि यह तालपत्र की पोथी और रागतरंगिणी में पाया गया है। इन दोनों आकर ग्रन्थों में यह किस पाठान्तर में है, ऐसी कोई बात नगेन्द्रबाबू ने नहीं लिखी है।

---

(५७) History of Bengal, Vol. II, पृ० ११६। नगेन गुप्त (भूमिका, पृ० ५६) और डा० उमेश मिश्र (पृ० ४७) ने स्टुयर्ट के बंगाल के इतिहास पर निर्भर करके लिखा है कि घियास्-उद्-दीन की मृत्यु १३७३ खृष्टाब्द में हुई।

(५८) Cambridge—Shorter History of India—पृ० २६२—'Sarvar extended his authority not only over Oudh, but also over the Doab, as far as Koil, and on the east into Tirhut and Bihar."

उनकी तालपत्र की पोथी खोज में नहीं मिलती किन्तु दरभंगा से प्रकाशित रागतरंगिणी के ६७ पृष्ठ में भणिता निम्नलिखित रूप में मिलती है—

भनइ जसोधर नव कविशेखर
पुहवी तेसर काँहा।
साह हुसेन भृंगसम नागर
मालति सेनिक जहाँ॥

रागतरंगिणी के इस असली पद को बदल कर नगेन बाबू ने जसोधर के स्थान पर विद्यापति बैठा दिया था एवं परिवर्त्तन के लिए विद्यापति का जीवनकाल असम्भवरूप से दीर्घ माना गया था (५६)। जसोधर वा यशोधर के इस पद पर निर्भर करके उन्होंने और उनके परवर्त्ती विद्यापति के आलोचनाकारियों ने यह सिद्धान्त किया था कि नवकविशेखर वा कविशेखर विद्यापति की उपाधि थी। इस पद के विद्यापति की रचना न प्रमाणित होने पर भले ही नगेन बाबू के तालपत्र में सन्देह न हो परन्तु कम-से-कम उनके द्वारा इसके सद्व्यवहार में तो सन्देह अवश्य हो जाता है।

नगेन बाबू की ८०१ संख्या के पद में राउ भोगिसर का नाम है एवं इसका भी आकर तालपत्र की पोथी है। किन्तु उसकी भाषा इतनी आधुनिक, भाव इतना तरल और रचना शैली इतनी निकृष्ट है कि उसे विद्यापति के बाल्यकाल की रचना भी माना नहीं जा सकता है (६०)। राउ भोगिसर यदि

(५६) नगेन बाबू ने इस पद की टीका में लिखा था कि उक्त हुसेन शाह "बंगदेश का पठान शासन कर्त्ता"। हुसेन शाह का राजत्वकाल १४९३-१५१८ खृष्टाब्द था। विद्यापति उनके राज्यकाल में जीवित नहीं रह सकते थे ऐसा समझ कर हरप्रसाद शास्त्री ने कीर्त्तिलता की भूमिका में लिखा है कि ये हुसेन शाह जौनपुर के सुलतान थे, जिन्होंने १४५७ खृष्टाब्द में राज्याधिरोहण किया। शास्त्री महाशय यदि रागतरंगिणी का पाठ देखते तो इस प्रकार का अनुमान नहीं करते।

(६०) पद यह है—मोराहि रे अगंना चांदन केरि गछिया ताहि चढ़ि कुररए काकरे।
सोने चंचु बंधए देब मोये वायस, जओ पिआ आओत आज रे॥
गावह सखि लोरि झूमरि मअन आराधने जाउ॥
चउदिस चम्पा मउलि फुललि चान्द उजोरिए राति।
कइसे कए मअन आराधना रे होइति बड़ि रति साति॥
विद्यापति कवि गाओल रे तोंके अछ्गुनक निधान।
राउ भोगिसर गुन नागरा रे पदमा देवि रमान॥

अर्थात् मेरे आँगन में चन्दन का वृक्ष है, उस पर बैठ कर काक मृदु स्वर में पुकार रहा है। हे वायस, यदि प्रियतम आज आवें तो तुम्हारे चोंच में सोना मढ़ा दूँगी। हे सखि, झूमर, लोरी, गाओ। मदन की आराधना में जाऊँगी। चारों ओर चम्पक और मल्लिका फूली हुई है; रात्रि चन्द्रमा की किरण से उज्ज्वल। किस प्रकार मदन की आराधना करूँगी? रति की बड़ी शान्ति होगी (नगेन बाबू का अनुवाद—बड़ी रतिशान्ति होगी। विद्यापति गाते हैं, तुम्हारे लिए गुणनिधान गुणी नागर पद्मादेवी के वल्लभ राउ भोगिसर हैं।

पद शुरू से अन्त तक सामञ्जस्यविहीन है। पहले नागर के आने की बात, फिर नायिका के अभिसार की बात है।

कीर्त्तिसिंह के पितामह भोगीश्वर थे, एवं विद्यापति ने यदि उनके समय में कविता लिखी तो उनका रचना-काल चार पुश्तों तक फैल जाता है। १३७१ खृष्टाब्द में भोगीश्वर के पुत्र गणेश्वर की मृत्यु हुई। अगर इस पद को विद्यापति की रचना मानी जाए तो १३७१ खृष्टाब्द के पूर्व भोगीश्वर के राज्यकाल में कवि की उम्र अन्ततः १५।१६ होनी चाहिए अर्थात् १३५४ खृष्टाब्द के आसपास उनका जन्म होना मानना पड़ेगा। कीर्त्तिलता १४०४ खृष्टाब्द के पहले रचित नहीं हुई थी, और उसमें कवि ने अपने को खेलन कवि कहा है और बालचन्द्र के साथ अपनी तुलना की है। यदि उनका जन्म १३५४ खृष्टाब्द में हुआ था तो १४०४ ई० में उनकी उम्र ५० वर्षों की हुई। पचास वर्ष की उम्र में लोग अपना परिचय खेलन कवि कह कर नहीं देते। इस पद को किसी अन्य आदमी ने रच कर विद्यापति के नाम से चला दिया है।

नगेन बाबू की ३४ संख्या का पद रागतरंगिणी के ४४ पृष्ठ से लिया गया है। पद के शेष दो चरण ये हैं:—

कविशेखर भन अपरुब रुप देखि।
राय नरसद साह भजलि कमलमुखि॥

इस पद के नीचे लोचन ने लिखा है, "इति विद्यापतेः"।

उनकी उक्ति का समर्थन पदकल्पतरु की १६७ संख्या के पद की भणिता से होता है। यह पद रागतरंगिणी में प्रदत्त पद का बंगला संस्करण माना जा सकता है। उसकी भणिता में है:—

भणये विद्यापति सो वर-नागर।
राइ-रूप हेरि गरगर अन्तर।

कविशेखर विद्यापति की उपाधि थी कि नहीं, यह सन्देह का विषय है; और पदकल्पतरु में विद्यापति भणिता में जो पद है उसकी भाषा देखकर मैथिली कवि विद्यापति पर उसका आरोप करना कठिन हो जाता है। इन्हीं सब कारणों से हम लोगों उसे ने संदिग्ध श्रेणी में स्थान दिया है। यदि यह पद विद्यापति की रचना हो, तो उक्त नरसदशाह गौड़ के सुलतान हुसेन शाह का पुत्र नरसदशाह नहीं हो सकता है। हुसेनशाह के राज्यकाल में यदि विद्यापति का जीवित रहना सम्भव न हो, तो उनके पुत्र के राज्यकाल में कवि के द्वारा रचना किया जाना और भी असम्भव है। पद में उल्लिखित नरसदशाह सम्भवतः फिरोज़ तुग़लक का पौत्र नसरत्खान तुग़लक था। ये फिरोज़ के कनिष्ट पुत्र नासिर-उद्-दीन महमूद तुग़लक के साथ दिल्ली का सिंहासन लेने के लिए झगड़ रहे थे और १३९४ से १३९९ ई० तक इन्होंने अपने को सुलतान घोषित कर दिया था।

नगेन्द्र बाबू की ४४ संख्या का पद किसी मैथिल पोथी में अथवा नेपाल पोथी में नहीं मिलता। यह बंगाल में अष्टादश शताब्दी में संगृहीत क्षणदागीत चिन्तामणि (पृ० ११) और पदकल्पतरु (२०१ पद) एवं कीर्त्तनानन्द में पाया जाता है। प्रथमोक्त पदसंग्रह के ग्रन्थ में दो स्थानों पर भणिता है—

चिरञ्जीव रहु पंच गौड़ेश्वर
कवि विद्यापति भने ॥

किन्तु कीर्त्तनानन्द की भणिता—

नसीरशाह भाने मुझे हानल नयन बाणे
चिरे जीव रहु पंच गौड़ेसर
कवि विद्यापति भाणे ॥

मूल में नसीरशाह का नाम न रहने पर किसी परवर्त्ती अनुलिपिकार के द्वारा उसका नाम बैठा दिया गया हो, ऐसा सम्भव प्रतीत नहीं होता। ये पंच-गौड़ेश्वर नसीरशाह सुलतान नसिर-उद्-दीन महमूद (१४४२-१४५६) थे। गियास-उद्-दीन आजमशाह को कवि ने जिस प्रकार प्रथम नाम ग्यासदीन से पुकारा है, उसी प्रकार यहाँ भी उक्त सुलतान का उसके पहले नाम नसीर से पुकारा जाना सम्भव सा लगता है। रागतरंगिणी के ६७ पृष्ठ में देखा जाता है कि कंसनारायण के नाम से एक कवि ने भणिता में लिखा है—

सुमुखि समाद समादरे समदल नसिरासाह सुरताने।
नसिराभूपति सोरम देह पवि कंसनरायण भाणे ॥

कंसनारायण भैरवसिंह के पौत्र लक्ष्मीनाथ का विरुद था। 'देवी महात्म्य' की एक पोथी की पुष्पिका से जाना जाता है कि ये १५११ खृष्टाब्द में राजा थे सुतरां उनकी भणिता में जिस नसिर साह का नाम है वे हुसेनशाह के पुत्र नसरत्शाह (१५१६-१५३२) थे। नगेन बाबू की ४४ संख्या के पद के नसिरसाह यदि नसरत्शाह होवें, तो यह कहा जा सकता है कि यह पद कंसनारायण की अपनी रचना है अथवा उनकी राजसभा के कवि गोविन्ददास अथवा श्रीधर की रचना है। उक्त तीनों कवि ही विद्यापति के समसामयिक थे एवं उनके द्वारा रचे हुए पदों में आगे चलकर विद्यापति का नाम घुस जाना असम्भव नहीं लगता। यह पद केवल बंगाल में ही पाया जाता है, अतएव कोई-कोई यह भी तर्क कर सकते हैं कि यह श्रीखण्ड के रघुनन्दन के शिष्य छोटे विद्यापति की रचना है।

नगेन बाबू ने विद्यापति को एक जगह आलमशाह के साथ भी जोड़ा है। उनके संस्करण की ६ संख्या का नाना विषयक पद (पृ० ५२६) इन्होंने कहाँ पाया, यह नहीं लिखा है; किन्तु टिप्पणी में लिखा है—'मिथिला पोथी में टीका है—'विद्यापति कोँ उपाधि दशावधान छल ये दिल्ली दरबार से भेटल छलैन'—विद्यापति की उपाधि दशावधान थी जो दिल्ली दरबार से मिली थी। प्रवाद है कि बन्दी शिवसिंह को दिल्ली के पादशाह ने विद्यापति का गीत सुन कर सन्तुष्ट हो मुक्त कर दिया था। इस

प्रवाद में कितना यथार्थ है इसी पद से प्रमाणित होता है। आलमशाह कौन था, यह ठीक नहीं कहा जा सकता।" हमलोग किन्तु पद को रागतरंगिणी में (६१) निम्न आकार में पाते हैं:—

ऊपर पयोधर नखरेख सुन्दर मृगमद पङ्के लेपला।
जनि सुमेरु ससिखण्ड उदित भेल जलधर जाले झाँपला॥
अभिसारिणि हे कपट करह कॉं लागी।
कोन पुरुष गुणे लुबुध तोहर मन रयनि गमओलह जागी॥
कारने कओंने अधर भेल धूसर पुनु कोनें आरत देला।
दुधके परसे पवार धवल भेल अरुण मजिठ भए गेला॥
नविप नारि गजे गज्ज नड़ाओलि परसलि सूर किरणे।
ऐसन देखिय कपट करह जनु वेकत नुकाओव कओने॥
दस अवधानभन पुरुष पेम गुनि प्रथम समागम भेला।
आलमसाह प्रभु भाविनि भजिरहु कमलिनि भमर तुलला॥

रागतरंगिणी में उसके नीचे इस प्रकार की कोई टिप्पणी नहीं जिससे जाना जाए कि यह विद्यापति की रचना है अथवा 'दशावधान' विद्यापति की उपाधि है। नगेन्द्रबाबू ने इस पद का पाठ बदल कर 'ऊपर पयोधर' के स्थान पर 'गोर पयोधर' और 'झाँपला' के स्थान पर 'झपला' कर दिया है। यह पद विद्यापति की रचना है ऐसा कोई प्रवाद बंगाल में भी नहीं है। क्योंकि यही पद कटकर पदकल्पतरु में २४५ संख्या का पद हो गया है और उसमें कोई भणिता नहीं है—

अभिसारिणि कपट करह कथि लागि।
कोन पुरुख हेन हरल तोहारि मन
रजनि गोङायलि जागि॥
जनु पञ्चारि गज गेह नड़ायल
परशल सूरकि रमणे।
ऐछन हेरि तनु नात करह जनु
वेकत लुकायत कोने॥
दूधक परशे पङार धवल भेल
अरुण किरण कोन केल।
गोर पयोधर नखरेख सुन्दर
पंकजे मृगमद भेल॥

(६१) रागतरंगिणी, पृ० ८६

विद्यापति के युग में सैयद वंश के एक आलमशाह १४४४ खृष्टाब्द से १४४८ खृष्टाब्द तक दिल्ली और वदायूँ में बास करते थे। वे शिवसिंह के समसामयिक नहीं हो सकते, क्योंकि काव्यप्रकाशविवेक पोथी में पाया जाता है कि शिवसिंह १४१० खृष्टाब्द में मिथिला में राज्य करते थे और १४४३-४८ खृष्टाब्द में नरसिंह दर्पनारायण और उनके पुत्र धीरसिंह मिथिला के राजा थे। आलमशाह एक नगण्य नृपति थे, (६२) एवं उनके साथ मिथिला के किसी राजनैतिक सम्बन्ध के न रहने की सम्भावना अधिक है। प्रवाद है कि शिवसिंह ने दिल्ली के किसी सुलतान के साथ युद्ध किया था और बन्दी हुए थे। इस प्रवाद में कितनी सत्यता है यह जानने के लिए विद्यापति के समय में और उनसे कुछ पहले और बाद की राजनैतिक अवस्था की पर्य्यालोचना करने का प्रयोजन है। विद्यापति ने किस प्रकार के राजनैतिक वातावरण में कविता-रचना की थी यह जानने के लिए भी इस आलोचना की आवश्यकता है।

४

विद्यापति के युग में मिथिला और उत्तर भारत

ग्रियर्सन ने पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध को विद्यापति का युग माना है (६३)। इस समय से पहले और बाद में भी उन्होंने कुछ कविता और निबन्ध लिखे हैं अवश्य, परन्तु ये ही पचास वर्ष उनकी रचना का श्रेष्ठ युग है।

दिल्ली के तुग़लक वंश के प्रतिष्ठाता ग़ियास्-उद्-दीन तुग़लक ने (१३२०-२५) १३२४ खृष्टाब्द की २५वीं दिसम्बर को मिथिला के कर्णाट-वंशीय राजा हरिसिंहदेव को पराजित करके तिरहुत को दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया (६४)। उसी समय से तिरहुत की पूर्ण स्वाधीनता अन्तर्हित हो गयी।

---

(६२) आलम किस श्रेणी के सुलतान थे यह Cambridge Shorter History (पृ० २५६) के निम्नलिखित विवरण से जाना जाता है—When Muhammad died in 1444, no point on his frontier was more than forty miles distant from Delhi, and the Kingdom inherited by his son, who took the title of Alam Shah or 'world king', comprised little more than the city and the neighbouring villages. He was more feeble-minded and mean spirited than even his father had been, and in 1447 when he marched to Badayan, he found that city so attractive that he decided, in spite of the protests of his advisers, to reside there rather than at Delhi, and in 1448 he retired thither, leaving the control of affairs at the capital in the hands ot his two brothers-in-law", Chronicles of Pathan kings of Delhi के ग्रन्थकार टॉमस के मत से आलमशाह ने १४४३ से १४५१ ई० तक राजत्व किया।

(६३) ग्रियर्सन ने १८८१ से ४४ वर्षों तक विद्यापति के सम्बन्ध में आलोचना करके १९३५ खृष्टाब्द में पुरुष-परीक्षा के अंगरेजी अनुवाद में लिखा है—"Vidyapati flourished & was a Celebrated author during at least the first half of the 15th century" (पृ० ११)।

(६४) जायसवाल राजनीति रत्नाकर की भूमिका-पृ० १२

त्रिहुत में तुग़लक साम्राज्य का एक टकसाल स्थापित हुआ एवं उसका नाम हुआ तुग़लकपुर उर्फ त्रिहुत। चम्पारण जिला के सिमराओन परगना के निकटवर्त्ती और वर्त्तमान नेपाल राज्य के अन्तर्भुक्त सिमराओन गढ़ की दुर्गशोभित राजधानी से भाग कर हरिसिंहदेव ने नेपाल जाकर कुछ दिन राज्य किया। घियास उद्-दीन तुग़लक ने हरिसिंहदेव के गुरुवंश के कामेश्वर को सामन्तराज्य बना कर प्रतिष्ठित किया। कामेश्वर ने दरभंगा जिला के मधुबनी मुहकमें के अन्तर्भुक्त सुगौना नामक स्थान में राजधानी स्थापित की।

मुहम्मद-बिन-तुग़लक के (१३२५-१३५१) राजत्व के शेषभाग में राजनैतिक विश्रृंखलता का सुयोग लेकर पूर्व भारत के अनेक हिन्दू सामन्तराजाओं और मुसलमान शासनकर्त्ताओं ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। यह नहीं मालूम कि कामेश्वर ऐसे लोगों में थे अथवा नहीं। किन्तु १३४५-४६ खृष्टाब्द में गौड़ के सुलतान सम्स-उद्-दीन इलियास शाह ने (१३४२-५७) त्रिहुत-जय की और नेपाल पर भी चढ़ाई की। नेपाल से लौटने पर उसने उड़िसा की चिल्का झील तक विजय अभियान किया एवं उसके बाद चम्पारण और गोरखपुर भी जीत लिए (६५)। शायद इसी समय सम्भवत; चम्पारण और गोरखपुर के राजाओं के समान कामेश्वर ने भी सम्स-उद्-दीन इलियास शाह का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। इसीलिए दिल्ली-सम्राट फिरोज तुग़लक (१३५१-१३८८ ई०) ने जब १३५४ ई० में अन्तर्वेदी और अयोध्या से कुशी तक के भू-भाग पर पुनरधिकार किया एवं विशेष कर गोरखपुर, करुप और त्रिहुत के राजाओं का दमन किया (६६) तब कामेश्वर को हटा कर उनके पुत्र भोगीश्वर को त्रिहुत के सामन्त नृपति का पद प्रदान किया (६७)। फिरोज शाह के राजत्व के शेषभाग में साम्राज्य में फिर विश्रृंखलता देखी जाती है। १३७१-७२ में उसकी सिन्धु पर चढ़ाई नेपोलियन के मास्को-अभियान अथवा औरंगजेब के दक्षिणात्य-अभियान के समान नाशकारी हुई थी। भोगीश्वर की मृत्यु के बाद उनके पुत्र राअ गअनेस राजा हुए। किन्तु सम्राट के सुदूर सिन्धुदेश में रहने का सुयोग उठा कर असलान (सम्भवतः अर्सलान का अपभ्रंश) नामक एक व्यक्ति ने गअनेस की हत्या कर दी। यह

---

(६५) History of Bengal, Vol. II, पृ० १०४-५।

(६६) आफिफ कृत तारीख-ए-फिरोजशाही।

(६७) Darbhanga District gazetteer, 1907, पृ० १७—"The first of the line, Kameshwar was deposed by Firoz shah in 1353, who gave the throne to his younger son Bhogishwar who was his personal friend" फिरोजशाह १३५३ ई० के नवम्बर मास में दिल्ली से अभियान के लिए बाहर चला। सुतरां १३५४ ई० के पहले ही वह त्रिहुत विजय नहीं कर सकता था। पंजी के अनुसार भोगीश्वर कामेश्वर का ज्येष्ठ पुत्र था, कनिष्ट पुत्र नहीं। विद्यापति ने कीर्त्तिलता में भोगीश्वर को फिरोजशाह का प्रियसखा कहा है—

"पिअसख भणि फिरोजसाह सुरतान समानल"

विद्यापति के युग में सैयद वंश के एक आलमशाह १४४४ खृष्टाब्द से १४४८ खृष्टाब्द तक दिल्ली और वदायूँ में वास करते थे। वे शिवसिंह के समसामयिक नहीं हो सकते, क्योंकि काव्यप्रकाशविवेक पोथी में पाया जाता है कि शिवसिंह १४१० खृष्टाब्द में मिथिला में राज्य करते थे और १४४३-४८ खृष्टाब्द में नरसिंह दर्पनारायण और उनके पुत्र धीरसिंह मिथिला के राजा थे। आलमशाह एक नगण्य नृपति थे, (६२) एवं उनके साथ मिथिला के किसी राजनैतिक सम्बन्ध के न रहने की सम्भावना अधिक है। प्रवाद है कि शिवसिंह ने दिल्ली के किसी सुलतान के साथ युद्ध किया था और बन्दी हुए थे। इस प्रवाद में कितनी सत्यता है यह जानने के लिए विद्यापति के समय में और उनसे कुछ पहले और बाद की राजनैतिक अवस्था की पर्य्यालोचना करने का प्रयोजन है। विद्यापति ने किस प्रकार के राजनैतिक वातावरण में कविता-रचना की थी यह जानने के लिए भी इस आलोचना की आवश्यकता है।

४

विद्यापति के युग में मिथिला और उत्तर भारत

ग्रियर्सन ने पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध को विद्यापति का युग माना है (६३)। इस समय से पहले और बाद में भी उन्होंने कुछ कविता और निबन्ध लिखे हैं अवश्य, परन्तु ये ही पचास वर्ष उनकी रचना का श्रेष्ठ युग है।

दिल्ली के तुगलक वंश के प्रतिष्ठाता गियास्-उद्-दीन तुगलक ने (१३२०-२५) १३२४ खृष्टाब्द की २५वीं दिसम्बर को मिथिला के कर्णाट-वंशीय राजा हरिसिंहदेव को पराजित करके तिरहुत को दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया (६४)। उसी समय से तिरहुत की पूर्ण स्वाधीनता अन्तर्हित हो गयी।

---

(६२) आलम किस श्रेणी के सुलतान थे यह Cambridge Shorter History (पृ० २९६) के निम्नलिखित विवरण से जाना जाता है—When Muhammad died in 1444, no point on his frontier was more than forty miles distant from Delhi, and the Kingdom inherited by his son, who took the title of Alam Shah or 'world king', comprised little more than the city and the neighbouring villages. He was more feeble-minded and mean spirited than even his father had been, and in 1447 when he marched to Badayan, he found that city so attractive that he decided, in spite of the protests of his advisers, to reside there rather than at Delhi, and in 1448 he retired thither, leaving the control of affairs at the capital in the hands ot his two brothers-in-law", Chronicles of Pathan kings of Delhi के ग्रन्थकार टॉमस के मत से आलमशाह ने १४४३ से १४५१ ई० तक राजत्व किया।

(६३) ग्रियर्सन ने १८८१ से ४४ वर्षों तक विद्यापति के सम्बन्ध में आलोचना करके १९२५ खृष्टाब्द में पुरुष-परीक्षा के अंगरेजी अनुवाद में लिखा है—"Vidyapati flourished & was a Celebrated author during at least the first half of the 15th century" (पृ० ११)।

(६४) जायसवाल राजनीति रत्नाकर की भूमिका-पृ० १२

त्रिहुत में तुगलक साम्राज्य का एक टकसाल स्थापित हुआ एवं उसका नाम हुआ तुगलकपुर उर्फ त्रिहुत। चम्पारण जिला के सिमराओन परगना के निकटवर्त्ती और वर्त्तमान नेपाल राज्य के अन्तर्भुक्त सिमराओन गढ़ की दुर्गशोभित राजधानी से भाग कर हरिसिंहदेव ने नेपाल जाकर कुछ दिन राज्य किया। घियास उद्-दीन तुगलक ने हरिसिंहदेव के गुरुवंश के कामेश्वर को सामन्तराज्य बना कर प्रतिष्ठित किया। कामेश्वर ने दरभंगा जिला के मधुबनी मुहकमें के अन्तर्भुक्त सुगौना नामक स्थान में राजधानी स्थापित की।

मुहम्मद-बिन-तुगलक के (१३२५-१३५१) राजत्व के शेषभाग में राजनैतिक विशृंखलता का सुयोग लेकर पूर्व भारत के अनेक हिन्दू सामन्तराजाओं और मुसलमान शासनकर्त्ताओं ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। यह नहीं मालूम कि कामेश्वर ऐसे लोगों में थे अथवा नहीं। किन्तु १३४५-४६ खृष्टाब्द में गौड़ के सुलतान सम्स-उद्-दीन इलियास शाह ने (१३४२-५७) त्रिहुत-जय की और नेपाल पर भी चढ़ाई की। नेपाल से लौटने पर उसने उड़िसा की चिल्का झील तक विजय अभियान किया एवं उसके बाद चम्पारण और गोरखपुर भी जीत लिए (६५)। शायद इसी समय सम्भवत; चम्पारण और गोरखपुर के राजाओं के समान कामेश्वर ने भी सम्स-उद्-दीन इलियास शाह का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। इसीलिए दिल्ली-सम्राट फिरोज तुगलक (१३५१-१३८८ ई०) ने जब १३५४ ई० में अन्तर्वेदी और अयोध्या से कुशी तक के भू-भाग पर पुनरधिकार किया एवं विशेष कर गोरखपुर, करुप और त्रिहुत के राजाओं का दमन किया (६६) तब कामेश्वर को हटा कर उनके पुत्र भोगीश्वर को त्रिहुत के सामन्त नृपति का पद प्रदान किया (६७)। फिरोज शाह के राजत्व के शेषभाग में साम्राज्य में फिर विशृंखलता देखी जाती है। १३७१-७२ में उसकी सिन्धु पर चढ़ाई नेपोलियन के मास्को-अभियान अथवा औरंगजेब के दक्षिणात्य-अभियान के समान नाशकारी हुई थी। भोगीश्वर की मृत्यु के बाद उनके पुत्र राअ गअनेस राजा हुए। किन्तु सम्राट के सुदूर सिन्धुदेश में रहने का सुयोग उठा कर असलान (सम्भवतः अर्सलान का अपभ्रंश) नामक एक व्यक्ति ने गअनेस की हत्या कर दी। यह

(६५) History of Bengal, Vol. II, पृ० १०४-५।

(६६) आफिफ कृत तारीख-ए-फिरोजशाही।

(६७) Darbhanga District gazetteer, 1907, पृ० १७—"The first of the line, Kameshwar was deposed by Firoz shah in 1353, who gave the throne to his younger son Bhogishwar who was his personal friend" फिरोजशाह १३५३ ई० के नवम्बर मास में दिल्ली से अभियान के लिए बाहर चला। सुतरां १३५४ ई० के पहले ही वह त्रिहुत विजय नहीं कर सकता था। पंजी के अनुसार भोगीश्वर कामेश्वर का ज्येष्ठ पुत्र था, कनिष्ट पुत्र नहीं। विद्यापति ने कीर्त्तिलता में भोगीश्वर को फिरोजशाह का प्रियसखा कहा है—

"पिअसख भणि फिरोजसाह सुरतान समानल"

घटना २५२ लक्ष्मण सम्वत् के चैत्रमास की कृष्णापंचमी मंगलवार अर्थात् १३७२ ई० के प्रथम भाग में घटी थी जिसका वर्णन विद्यापति ने कीर्त्तिलता में किया है। यथा :—

लक्ष्मणसेन नरेश लिहिअ जबे पक्ख पंच वे। तम्महु मासहि पढम पक्ख पंचमी कहिअ जे॥
रज्जलुध्ध असलान बुद्धि विक्कम बले हारल। पास वइसि विसवासि राए गएगोसर मारल॥ (६८)।

यही नहीं मालूम होता कि यह असलान कौन था। लेकिन यह कीर्त्तिलता के वर्णन से मालूम होता है कि वह इब्राहिम शाह के जौनपुर के सिंहासनारोहण के २।१ वर्ष बाद तक अथात् १४०२-३ ई० तक मिथिला के एक अंश में आधिपत्य स्थापित किए हुए था। इब्राहिम शाह के त्रिहुत-अभियान के समय कीर्त्तिसिंह ने असलान को द्वन्द्व-युद्ध मेंपराभूत किया। प्रसंगक्रम से कहा जा सकता है कि कीर्त्तिलता में भी विद्यापति की कवित्व-शक्ति का सुन्दर निदर्शन पाया जाता है। कीर्त्तिसिंह के साथ असलान के द्वन्द्वयुद्ध के वर्णन में कवि ने अवहट्ठ भाषा में संस्कृत तोटक छन्द का प्रयोग किया है। यथा—

हसि दाहिन हथ्थ समथ्थ भइ।
रनरओ पलट्टिअ खग्ग लइ॥
तँहि एक्कहि एक्क पहार पले।
जहि खग्गहि खगगहि धार धरे॥
हअ लग्गिय चंगिम चारुकला।
तरवारि चमक्कइ विज्जुज्वला॥
टरि टोप्परि टुट्टि शरीर रहे।
तनु शोणित धारहि धार वहे॥

अर्थात् (असलान ने) हँसकर (रणरत हो) जो दाहिना हाथ समर्थ था उसमें पलट कर खड्ग लिया। जहाँ खड्ग का खड्ग से संघर्ष हुआ, वहाँ एक के बाद एक आघात हुआ। अश्व ने सुन्दर चारुकला दिखलाई। तलवार से मानों विद्युतप्रभा बाहर होने लगी। शरीर के अनेक स्थान कट गए—रक्त की धारा बहने लगी।

---

(६८) कीर्त्तिलता, द्वितीय पल्लव। हरप्रसाद शास्त्री और बाबूराम सकसेना दोनों ने 'पक्ख पंचवे' का अर्थ किया है वे=२, पंच=५=पक्ख=२=२५२ ल० स०। किन्तु जायसवाल कहते हैं कि जौनपुर के सुलतान इब्राहिम ने ही गणेश्वर के पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित किया। अतएव इब्राहिम के राजत्व काल १४०१-१४४० ई० के भीतर ही गणेश्वर की हत्या माननी पड़ेगी। इसीलिए उन्होंने 'जव' शब्द का अर्थ 'जव' न लगा कर उसे संख्यावाचक ज=५, वे=२ अर्थात् ५२ माना है एवं २५२ में ५२ जोड़ कर ३०४ ल० स०=१४२३ ई० में हत्या की तारीख का निरूपण किया है (J. B. O. R. S. Vol XIII, 1927, पृ० २९७)। इस प्रकार जोड़ कर तारीख लिखने की रीति कहीं नहीं थी। इसके अलावा हमें इण्डिया गवर्नमेंट की काव्यप्रकाश विवेक पोथी से (India Government Ms. Fol. 1179) की पुष्पिका से मालूम होता है कि २९१ ल० स० अर्थात् १४१० ई० में शिवसिंह मिथिला के राजा थे। शिवसिंह के राज्यारम्भ के १२ वर्ष बाद गणेश्वर की मृत्यु, उसके बाद कीर्त्तिसिंह का राज्य, उसके बाद शिवसिंह के पिता देवसिंह का राज्य करना असम्भव है।

१३७२ ई० से १४०२ ई० तक के तीस वर्षों में मिथिला की अवस्था क्या थी ? कीर्त्तिलता से मालूम होता है कि इस समय मिथिला में अराजकता थी —

ठाकुर ठक भए गेल, चोरें चपुरि घर लिज्झिअ।
दासे गोसाञ्‌ निगहिअ, धम्म गए धन्ध निमज्जिअ ॥
खले सज्जन परिभविअ कोई नहि होइ विचारक।
जाति अजाति विवाह, अधम उत्तम काँ पारक ॥
अखूखर—रस निहार नहि,
कइ कुल भमि भिखूखारि भँउ।
तिरहुत्ति तिरोहित सववगुणे,
राए गएनेस जबे सग्ग गँउ ॥

अर्थात् ठाकुर अर्थात् सम्भ्रान्त लोग (barons) ठक अथवा प्रवंचक हो गए, चोरों ने घर दखल कर लिया। दास ने प्रभु को निगृहीत किया, धर्म धन्धं में डूब गया। खलों ने सज्जनों को पराभूत किया। कोई विचारक न रहा। जाति और अजाति में विवाह होने लगे। अधम ने उत्तम पर श्रेष्ठत्व लाभ किया। विद्यारस समझने वाले लोग दिखाई नहीं पड़ते। कुलीन व्यक्ति भिखारी हो गए। गएनेस के स्वर्गगत होने पर तिरहुत से सारे गुण तिरोहित हो गए।

यह वर्णन पढ़ने से मालूम होता है कि अराजकता कुछ ज्यादा दिनों तक स्थायी थी। दो चार वर्षों में जाति-अजाति में विवाह नहीं होने लगते, विद्यारस समझने वाले लोग विरले नहीं रह जाते। परन्तु इस अनुमान के विरुद्ध यह प्रश्न होता है कि यदि इतने दिनों तक अराजकता थीं तो कामेश्वर के कनिष्ठ पुत्र और भोगीश्वर के छोटे भाई भवेश अथवा भवदेवसिंह ने राज्य कब किया था ? कीर्त्तिलता का वर्णन पढ़ने से मालूम होता है कि पहले कामेश्वर, उसके बाद भोगीश्वर, उसके बाद गअनेस राजा हुए एवं गएनेस के बाद इब्राहिम ने कीर्त्तिसिंह को मिथिला का सिंहासन दिया। किन्तु विद्यापति ने पुरुष परीक्षा में भवसिंह का उल्लेख करते समय केवल "भुक्त्वा राज्य सुखं" नहीं कहा है, बल्कि स्पष्टतया उनको नृपति की आख्या से अभिहित किया है। शैवसर्वस्वसार में भी कवि ने उनको भूपति कहा है। मिसरु मिश्र ने विवाद-चन्द्र में भवेश को 'सार्व्वभौम राजा" कहा है। इस समस्या का सामाधान करने के लिए जायसवाल ने कहा है "The first king of this dynasty was the younger brother of Kamesa; he is called Bhavesa or Bhava Sinha in Mss., After 1370 he seems to have become king (६६) विद्यापति ने कीर्त्तिलता में कामेश्वर को 'राए' वा राजा कहा है; सुतरां कामेश्वर को उस वंश का पहला राजा न कहने का कोई कारण नहीं है। मिथिला की पंजी के अनुसार भवेश कामेश्वर के कनिष्ठ भ्राता न थे, कनिष्ठ पुत्र थे। वे विद्योत्साही नृपति थे।

---

(६६) राजनीति रत्नाकर की भूमिका, पृ० २३।

उनकी आज्ञा से चण्डेश्वर ने राजनीतिरत्नाकर लिखा (७०)। यदि भवेश १३५० ई० के बाद राज्याधिरोहण करते, एवं उसके बाद चण्डेश्वर ने यह पुस्तक लिखी होती तो विद्यापति यह नहीं बोलते कि गअनेस की हत्या के बाद अराजकता हुई थी और न यह कहने का साहस करते कि विद्याचर्चा का लोप हो गया था। १८६६ ई० में ग्रियर्सन ने चन्दा झा द्वारा संगृहीत मिथिला की ऐतिहासिक जनश्रुति पर निर्भर करते हुए लिखा है कि भोगीश्वर ने राजा होने के बाद अपने भाई भवसिंह के साथ राज्य-विभाग कर लिया (७१)। मालूम होता है कि भोगीश्वर और भवेश एक ही समय में राज्य करते थे और असलान ने कामेश्वर वंश की दोनों शाखाओं को अधिकारच्युत कर दिया था। इस अनुमान के पक्ष में विद्यापति की भूपरिक्रमा को प्रमाणरूप में उपस्थित किया जा सकता है। इस ग्रन्थ में देखा जाता है कि देवसिंह नैमिषारण्य में बास करते थे एवं विद्यापति ने उनका और शिवसिंह का नाम लेते समय उनके सम्बन्ध में राजा विशेषण का प्रयोग नहीं किया है। देवसिंह यदि तीर्थयात्रा करते हुए नैमिषारण्य में वास करते तो ऐसी अवस्था में उसी जगह रह कर विद्यापति द्वारा पुस्तक नहीं लिखवाते। वे पुत्र के साथ और अन्ततः कुछ समय के लिए कवि विद्यापति के साथ नैमिषारण्य में रह कर सुदिन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

गएनेसर की मृत्यु के समय वीरसिंह और कीर्त्तिसिंह शायद नितान्त शिशु थे। जब उनकी उम्र ३०-३२ वर्षों की हुई, वे पितृराज्य का उद्धार करने के लिए जौनपुर जाकर इब्राहिम के शरणापन्न हुए। उसके पास जाने के पहले शायद कामेश्वर वंश के लोगों ने पहले बंगाल के सुलतान गियास-उद्-दीन आजमशाह और उसके बाद दिल्ली के सुलतान नसरतखान की सहायता से असलान के कवल से मिथिला के उद्धार की चेष्टा की थी। इस चेष्टा का निदर्शन विद्यापति के पद की भणिता में इन दोनों नरपतियों के नामोल्लेख में पाया जाता है।

१३८८ ई० में सुलतान फिरोजशाह की मृत्यु के बाद केवल बंगाल छोड़कर उत्तर भारत में सर्वत्र घोरतर अशान्ति देखी जाती है। दिल्ली का साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। फिरोज के उत्तराधिकारी परस्पर झगड़ा करके कमजोर हो गए। १६३४ ई० में जब सुलतान फिरोज के पुत्र सुलतान मुहम्मद शाह की मृत्यु हुए, तब उनका एक पुत्र केवल ४६ दिन राज्य करके मृत्यु के मुख में गिरा। उनका एक

---

(७०) राज्ञा भवेशेनाज्ञप्तो राजनीतिनिबन्धकम्।
तनोति मन्त्रिणामार्य्यः श्रीमांश्चण्डेश्वरः कृती॥
राजनीतिरत्नाकर, दूसरा श्लोक।

(७१) "Bhogishwara, when he came to the throne divided the kingdom with his brother Bhawa Sinha. Kritti Sinha died childless, and so did his brother, and the half of the kingdom which they inherited from Bhogishwara went over to Bhava Sinha's family the representative of which was then Siva Sinha, who was a youth of fifteen years of age and was then reigning as Yuvaraja during the life time of his father Deva Sinha and who from that time governed the whole of Tirhut." Indian Antiquary 1899 p. 58

दूसरा पुत्र महमूद, नासिर-उद्-दीन महमूद की उपाधि धारण कर सुलतान हुआ; किन्तु अमीर और मालिकों ने फतेखाँ के पुत्र और फिरोज के पौत्र नसरत खाँ को सुलतान घोषित कर दिया। उसका नाम हुआ सुलतान नासिर-उद्-दीन नसरत शाह। तारीख-इ-मुबारकशाही में देखा जाता है कि नसरत खाँ ने दोआब के जिलाओं और मण्डलों, पानीपत, झाझोर और रोहतक पर आधिपत्य स्थापित करना शुरू किया, और महमूद के अधीन दिल्ली के आसपास का कुछ भूमिखण्ड रह गया (७२)। खाजा जहान ने जौनपुर की स्वाधीनता की घोषणा कर दी। गुजरात, मालवा, और खानदेश ने दिल्ली की अधीनता का त्याग कर दिया। महमूद की जो क्षमता बची-खुची थी वह भी १३९८ ई० में तैमूरलंग के आक्रमण के फलस्वरूप विनष्ट हो गई। १३९९ ई० के मार्च मास में तैमूर समरकन्द लौट गया और तब नसरत खाँ ने दोआब से चलकर मेरठ और वहाँ से दिल्ली पर अधिकार कर लिया। किन्तु कुछ ही महीनों में वह इकबाल द्वारा पराजित हुआ और मेवात में मृत्यु को प्राप्त हुआ (७३)। इस समय की राजनैतिक अवस्था का वर्णन करते हुए तारीख-ई-मुबारकशाही का ग्रन्थकार कहता है कि गुजरात और उसके पार्श्ववर्त्ती देश जाफर खाँ वाजिबुल मुल्क के हाथ में थे; मुलतान, दीपलपुर और सिन्ध के अंशविशेष मसनद अली खिज्रखाँ के अधीन थे; महोबा और कालपी महमूद खाँ के अधिकार में थे; कन्नौज, अयोध्या, आगरा, दालमऊ, सन्दिला, बहरैच, बिहार और जौनपुर खाजा जहान के अधीन; धार दिलावर खाँ के अधीन; समाना खलिब खाँ के अधीन और बियाना शम्स खाँ उहादि के अधीन था। देश में राजनैतिक ऐक्य ज़रा भी न था। चलचित्र के अभिनय के समान द्रुतगति से राजा अमीर और सुलतानों के भाग्य का परिवर्त्तन होता था। आज जो राजा था, कल वह निर्वासित हो जाता था। किसी भी राज्य की सीमा स्थायी नहीं थी। इस प्रकार की राजनैतिक परिस्थिति में मिथिला में अराजकता होना और वीरसिंह और कीर्त्तिसिंह का जौनपुर जाकर इब्राहिम से सहायता की प्रार्थना करना ज़रा भी अस्वाभाविक नहीं है।

मालूम होता है कि तैमूरलंग के आक्रमण के पहले ही जौनपुर के प्रथम सुलतान खाजा जहान ने तिरहुत पर अपना प्रभुत्व विस्तार किया था (७४)। इब्राहिम शाह १४०१ ई० में जौनपुर के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए, किन्तु ऐसा नहीं हुआ कि राज्याधिरोहण करते ही वे तिरहुत आ सकें। तारीख-इ-मुबारकशाही से मालूम होता है कि १४०१ ई० में दिल्ली के सुलतान महमूद और उसके सेनापति इकबाल ने कन्नौज पर आक्रमण किया। इब्राहिम एक वृहत् सेना लेकर उनके साथ युद्ध करने गया। जिस समय

---

(७२) तारीख-इ-मुबारकशाही- J. B. O. R. S., १९२७, पृ० २६२

(७३) तारीख-इ-मुबारकशाही पृ० २६६-६७ (डा० कमलकृष्ण वसु का अनुवाद)

(७४) "In a short time, he brought under his sway the chiefs of Kanauj, Kara, Oudh, Sandila, Dalamau, Bahraich, Behat and Tirhut & subdued the refractory Hindu chieftains". Tarikhi-Mubarak Sahi, Elliot, IV, P. 29.

दोनों दलों में युद्ध होने वाला ही था, उस समय इकबाल के प्रभुत्व से आत्मरक्षा करने के लिए सुलतान महमूद सहसा शिकार करने का बहाना करके इकबाल को छोड़ कर इब्राहिम के निकट गया। किन्तु इब्राहिम ने जब उसे कोई उत्साह न दिया तो वह लौट कर कन्नौज चला आया (७५)। फिरिश्ता के वर्णन से मालूम होता है कि इब्राहिम १४०५ ई० से १४१६ ई० तक दिल्ली के साथ युद्ध में लगा था (७६)। सुतरां इब्राहिम ने १४०२-१४०४ खृष्टाब्दों के बीच किसी समय तिरहुत आकर कीर्त्तिसिंह को सामन्त नृपति का पद प्रदान किया।

वन्धवजन उच्छाह कर तिरहुत पाइअ रूप।
पातिसाह जसु तिलक करू कित्तिसिंह भउ भूप॥
कीर्त्तिलता, चतुर्थपल्लव।

कीर्त्तिसिंह के राज्याधिष्ठान से आरम्भ कर अन्ततः १३६० ई० तक (७७) तिरहुत जौनपुर का सामन्त-राज्य था। १४६० खृष्टाब्द के कुछ बाद जौनपुर के आखिरी सुलतान हुसेन ने तिरहुत आक्रमण करके धनसम्पत्ति लूटी थी। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम ७६ वर्षों में जौनपुर के सुलतान दिल्ली के सुलतानों की अपेक्षा बहुत अधिक क्षमताशाली हो गए थे। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि उस युग में दिल्ली साम्राज्य की परिधि अत्यन्त संकीर्ण हो गयी थी। इससे कहा जा सकता है कि मिथिला के शिवसिंह अथवा उनके परवर्त्ती और किसी राजा का दिल्ली के साथ सम्बन्ध होने की कोई सम्भावना नहीं थी। इस समय में दिल्ली का अधिकार कन्नौज के पूर्वभाग में स्थापित हुआ ही नहीं था। इब्राहिम शाह के भय से सैयद वंश का मुबारक शाह और उसका उत्तराधिकारी महम्मद शाह सन्त्रस्त थे। इब्राहिम शाह के पुत्र महमूद शाह ने (१४४०-५७) कई एक बार दिल्ली पर आक्रमण किया। सैयद वंश का शेष सम्राट शाह आलम (१४३४-५१) ने निरुपद्रव जीवन-यापन के उद्देश्य से दिल्ली छोड़कर १४४८ ई० से वदायूं में वास करना आरम्भ किया एवं जौनपुर के आक्रमण से आत्मरक्षा करने के लिए महमूद शाह के कनिष्ठ पुत्र हुसेन के साथ अपनी वहिन व्याह दी। उसे वदायूँ से लौटते न देख कर दिल्ली के उमराओं ने वहलोल लोदी को सिंहासन पर विठा दिया। शाह आलम के समान तुच्छ सम्राट जौनपुर के सामन्तराज्य तिरहुत के अधिपति शिवसिंह को वन्दी करेगा और विद्यापति पद-रचना कर उनका उद्धार कर लावेंगे, यह असम्भव सा प्रतीत होता है। वहलोल लोदी महमूद के आक्रमण से इतना विपन्न हो गया था कि उसने उसके पास यह सन्धि-प्रस्ताव भेजा था कि वह जौनपुर के सामन्त के रूप में दिल्ली का शासन करने को तैयार है, परन्तु महमूद ने इस प्रस्ताव को वापस कर दिया। १४५८ ई० में जौनपुर के चतुर्थ सुलतान महमूद के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद ने भी दिल्ली पर आक्रमण किया। मुहम्मद

(७५) J. B O. R. S., 1927, पृ० २६६

(७६) Brigge-Ferishta, Vol IV, ch. VII

(७७) History of Bengal, Vol II, पृ० १२२—दिनाजपुर में प्राप्त १४६० ई० के एक लेख से हमें मालूम हुआ है कि पूर्णिया जिला का वारूर परगना गौड़ के सुलतान रुकन-उद्-दीन बरबाक के अधीन था।

के भाई हुसेन ने (१४५८-१४७६) दो बार दिल्ली पर आक्रमण किया और पहले आक्रमण के समय बहलोल फिर जौनपुर का सामन्तराजा बनने को तैयार हुआ। किन्तु १४७६ ई० में बहलोल जौनपुर के सुलतान को पराजित करने में समर्थ हुआ। १४८३ ई० जौनपुर की स्वाधीनता मिट गयी।

मिथिला के जौनपुर सामन्तराज्य के रूप में परिगणित होने पर भी उसके हिन्दू राजा सब प्रकार जौनपुर के अधीन नहीं हुए। इस युग में हिन्दू सामान्तराजाओं की क्षमता के सम्बन्ध में सुपण्डित सारदाचरण मित्र महाशय ने १८७८ ई० में विद्यापति की पदावली की भूमिका में जो उक्ति कही थी, वह आज भी प्रयोज्य है: "भले ही अफग़ान और पठानों ने बंग और बिहार पर अधिकार स्थापन किया हो, किन्तु वे नितान्त मूर्ख थे; इसलिए प्रजाशासनभार पूर्ववत् हिन्दुओं के हाथ में ही था। हिन्दू राजा लोग मुसलमानों के अधीन होकर उन्हें करमात्र प्रदान करते थे, राज्य शासन में हिन्दू राजा ही एकाधिपत्य करते थे।"

कीर्त्तिसिंह १४०२ से १४०४ ई० के बीच किसी समय राजा हुए थे। किन्तु वे अधिक दिनों तक राज्य भोग नहीं कर सके, क्योंकि १४१० ई० में हम शिवसिंह को तीरभुक्ति वा तिरहुत के महाराजाधिराज के रूप में देखते हैं (७८)। देवसिंह के जीवन काल में ही शिवसिंह को राजा कहा जाता था यह बात हम विद्यापति की "पुरुष-परीक्षा" के शेष श्लोक "भाति भस्य जनको रणजेता देवसिंह नृपतिः" चरण से जान सकते हैं। "दुर्गाभक्ति तरंगिणी" के तृतीय से पंचम श्लोक में देखा जाता है कि नरसिंह देव के

---

(७८) "काव्यप्रकाश विवेक" की पोथी (इन्डिया गवर्न्मेन्ट की पोथी) (११७ क) पुष्पिका में यह निम्नलिखित रूप में पाया जाता है—"इति तर्काचार्य ठक्कुर श्री श्रीधर विरचिते काव्य-प्रकाश-विवेके दशम उल्लासः ॥ शुभमस्तु ॥ समस्त विरुदावली विराजमान महाराजाधिराज श्रीमत् शिवसिंहदेव संभुज्यमान तीरभुक्तौ श्रीगजरथपुर नगरे संप्रतिष्ट सदुपाध्याय ठक्कुर श्रीविद्यापतीनामाज्ञया खौयाल सं श्री देवशर्मा बलियास सं श्री प्रभाकराभ्यां लिखितैषा हस्ताभ्यां।" लसः २९१ कार्त्तिक वदी १०॥ (J. A. S. B., १९१५, पृ० ३९२)। शिवसिंह के राज्यकाल में केवल एक यही तारीख २९१ ल० स० वा १४१० खृष्टाब्द निसंदिग्ध है। विद्यापति ने शायद शिवसिंह से बिसपी गाँव दान में पाया था। उनके वंशधरों ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग तक इस ग्राम का भोग किया था। उनलोगों ने इस समय दलील में सरकार के पास जो ताम्रपत्र दाखिल किया था उसमें दानपत्र की तारीख लक्ष्मण संवत् २९३ (१४१२ खृष्टाब्द), शक १३१२ (१३९९ खृष्टाब्द), संवत् १४५५ (१४०० खृष्टाब्द) और सन् ८०७ लिखा हुआ था। अकबर ने २९३ ल० स० के १७० वर्षों के बाद फसली सन प्रवर्त्तन किया। इस तारीख का उल्लेख रहने से दानपत्र जाली मालूम पड़ता है। चार प्रकार के अब्दों में जो तारीख क्रिया गया है उसमें किसीसे भी किसी का मेल नहीं है। इसीलिए उसको जाली कहा जाता है। १८८५ ई० में ग्रियर्सन ने अनेक कष्ट से उसकी जो प्रतिलिपि संग्रह की थी, उसमें शक, सम्वत् और फसली सन नहीं था, केवल ल० स० था (Indian Antiquary, 1885)। सम्पत्ति जब्त होने पर विद्यापति के वंशधरों ने इस तारीख को छिपाने की प्रयोजनीयता समझी थी। Proceedings of the Asiatic Society, Bengal, August 1895, Vol. LXVII, प्रथम खण्ड, पृ० ९९ और बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, १३०७ बंगाब्द में प्रमाणित करने की चेष्टा की गयी है कि यह दानपत्र जाली है।

जीवनकाल में ही उनके पुत्र धीरसिंह और भैरवसिंह राजा कहलाने लगे थे। इन दृष्टान्तों से हम अनुमान कर सकते हैं कि कामेश्वर वंश के राजा लोग वृद्धावस्था में पुत्र के हाथ में राज्यभार देना कुलधर्म समझते थे। "राजनीति रत्नाकर" के चतुर्दश प्रकरण (राजकृत राज्यदानम्) में चन्देश्वर का यह लिखना भी इस अनुमान की पुष्टि करता है:—

यदा राजा जरायुक्तो रोगार्त्तो निस्पृहोऽपि च।
आसन्न मृत्युं विज्ञाय कुलधर्मं विचारयन्॥
तदा पौरजनान् सर्व्वानाहुय मन्त्रयेच्चतैः
सप्तांगानि च राज्यानि ज्येष्ठ पुत्राय दापयेत्।

देवसिंह सम्बन्ध में कीर्त्तिसिंह के चाचा थे। कीर्त्तिसिंह के परलोकगमन के समय शायद देवसिंह "जरायुक्त और निस्पृह" हो गये थे, अतएव कुछ ही दिन राज्य करके उन्होंने उपयुक्त पुत्र शिवसिंह को राज्यदान कर दिया। चण्डेश्वर उक्त ग्रन्थ में राज्याभिषेक की व्यवस्था देते हुए कहते हैं कि राजा कुमार को सिंहासन पर बिठाकर उनके कपाल पर तिलक लगाकर कहेंगे—'आज से यह राज्य मेरा नहीं; ये राजा प्रजा की रक्षा करें।

"अद्यारभ्य न मे राज्यं राजाऽयं रक्षतु प्रजाः।
इति सर्व्व प्रजाविष्णु साक्षिणं श्रावयेन्मुहुः"

शिवसिंह ने तीन वर्ष और नव महीने तक राज्य किया था। वे १४१० ई० या उससे कुछ पहले ही राजा हुए थे। उनका राजत्वकाल करीब-करीब १४१० ई० से १४१४ ई० तक बतलाया जा सकता है। विद्यापति ने "पुरुष परीक्षा" और "शैवसर्वस्व-सार" में लिखा है (७६) कि शिवसिंह ने गौड़ के राजा को दबाया था। अतएव यह जानने की जरूरत है कि उस समय गौड़ की कैसी अवस्था थी।

विद्यापति ने जिस "ग्यासदीन सुरतान" की दीर्घ जीवन कामना की थी, उसकी मृत्यु के बाद उसीके पुत्र सैफ-उद्-दीन हामजा शाह ने १४०६-१० ई० में १५-१६ महीने के लिए राजत्व किया था। इस समय दिनाजपुर के राजा गणेश सर्वोपेक्षा अधिक प्रभावशाली सामन्त थे। सर यदुनाथ सरकार अनुमान करते हैं कि गणेश राजकर्त्ता अथवा king-maker हो गये थे। अनुमानतः १४११ से १४१३ ई० तक हिसाब-उद्-दिन बायाजिद शाह और १४१३ ई० में उसके पुत्र अलाउद्दीन फिरोज शाह ने कई महीने के लिए राजत्व करना आरम्भ किया (८०)। तबाकत्-इ अकबरी और फेरिश्ता के मतानुसार सात वर्षों तक राजत्व किया (८१)। किन्तु सर यदुनाथ सरकार मुद्रादिपर निर्भर करते हुए

(७६) पुरुष-परीक्षा के शेषश्लोक में—"यो गौड़ेश्वर गज्जने सर रणे क्षौणीषु लब्ध्वा यशः" (Indian Antiquary, 1885 July) अथवा पाठान्तर—यो गौड़ेश्वर-गज्जनेश्वर-रणक्षौणीषु लब्ध्वा यशो "है।" शैव-सर्वस्व-सार' में है—"शौर्यावर्जित गौड़गज्जन महीपालोपनम्रीकृता।"

(८०) History of Bengal, Vol II, पृ० ११६-१२७।

(८१) तबाकत्-इ-अकबरी, लखनऊ सं० पृ० ५२४; फेरिश्ता, २रा खण्ड, पृ० २९७।

उसका राजत्वकाल ८१७ से ८२१ हिजरी वा १४१३ से १४१८ ई० मानते हैं। अतः शिवसिंह के समसामयिक गौड़ेश्वर थे सैफ-उद-दीन हामजा शाह, सिहाबुद्दीन बयाजिद शाह, अलाउद्दीन फिरोजशाह और गणेश अथवा दनुजमर्द्दनदेव। रियाज उस्-सलातिन में देखा जाता है कि गणेश ने मुसलमानों पर अत्याचार किया और यह अभियोग लगाकर पीर नूर कुतुब-उल-आलम ने जौनपुर के इब्राहिम शाह के पास खबर भेजी और इब्राहिम शाह ने प्रचण्ड सैन्यदल लेकर ८१८ हिजरी अथवा १४१४ ई० में बंगाल पर चढ़ाई की एवं चढ़ाई की बात सुनकर गौड़ेश्वर ने डर के मारे इब्राहिम के पास जाकर क्षमा प्रार्थना सहित नति स्वीकार की (८२)। इस वर्णन में बहुत कुछ अतिरंजन है।

पदावली के वर्त्तमान संस्करण के अष्टम पद में देखा जाता है कि शिवसिंह ने यवनों के संग युद्ध में गुरुतर प्रताप दिखलाया था; नवें पद में पाया जाता है कि उन्होंने राम के समान अपने धर्म की रक्षा की थी। सुतरां यह कहना युक्ति संगत नहीं मालूम पड़ता कि उन्होंने इब्राहिम शाह के कहने से गौड़ जाकर गणेश के विरुद्ध युद्ध कर उन्हें नम्रीकृत किया। सतरहवीं शताब्दी में राजपूतों और मुगलों की शतवर्षाधिक मैत्री के बाद प्रबल प्रतापान्वित औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध जयसिंह को भले ही भेजा हो, किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी के पहले भाग में इब्राहिम शाह ने बंगाल के हिन्दू राजा के अत्याचार से मुसलमानों की रक्षा करने के लिए शिवसिँह को भेजने का साहस किया हो, यह नहीं हो सकता। यदि ऐसा है तो शिवसिँह ने किस गौड़ेश्वर से युद्ध किया ? हमलोगों को लगता है कि उन्होंने गणेश का साथ देकर सैफ-उद-दीन हामजा शाह अथवा सिहाब-उद-दीन बयाजिद शाह को दबाया था। तुग़लक-वंश के अन्तिम सम्राट महमूद की दुर्बलता का सुयोग लेकर हिन्दू लोग सिर उठाने की चेष्टा कर रहे थे। पूर्व भारत में इस प्रचेष्टा का नेतृत्व भार राजा गणेश ने ग्रहण किया था, और उनके सहकारी हुए थे मिथिला के राजा शिवसिंह। शिवसिंह इब्राहिम शाह की अधीनता मान कर भी चलने को राजी न थे, क्योंकि हम लोग देखते हैं कि दनुजमर्द्दन के समान उन्होंने भी अपनी मुद्रा चलायी थी। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि ८१८ हिजरी से जौनपुर की सेना के बंगाल पर आक्रमण के लिए

---

(८२) रियाज़-उस्-सलातिन, पृ० ११०-११२। इस उक्ति की समालोचना करके सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं:—
"True history shows that the story of Ibrahim Shah having invaded Bengal in person in 818 A. H. can not be true. But that does not necessarily mean that no general of the Jaunpore kingdom led an army into Bengal. Against the mail-clad heavy cavalry of upper India the Bengal irregular infantry of Paiks and Dhalis and small force of rugged horsemen mounted on diminutive Morang pories, could make no stand. On the other hand, the invaders from the dry Oudh Country too could not maintain their hold on the population; nor keep their men and horses fit in the steaming swamps of Bengal when the monsoon started. So a truce was patched up by mutual consent, and the Jaunpore force went back, probably for a money consideration and certainly on the promise that Ganesh would convert his son Jadusen to Islam and make him Sultan of Bengal in his own place (History of Bengal, Vol II, Pp-127-128).

जाने के समय अथवा उधर से लौटने के समय शिवसिंह के साथ उसका युद्ध हुआ था। ऐसा प्रवाद है कि शिवसिँह युद्धक्षेत्र से लापता हो गये और उनकी पत्नी लखिमा देवी ने १२ वर्षों तक उनकी प्रतीक्षा करके कुशश्राद्ध किया। चन्दा झा कहते हैं कि शिवसिह के वाद मिथिला में कुछ दिनों तक अराजकता चलती रही।

इसी अराजकता के समय अथवा कुछ बाद तिरहुत के पश्चिम हिस्से में, नेपाल के दक्षिणांश में, गोरखपुर और चम्पारण में एक ब्राह्मण राजवंश का उद्भव हुआ। वेन्डल साहव ने हरप्रसाद शास्त्री संगृहीत नेपाल राजदरवार की पोथी के विवरण में इस वंश के तीन राजाओं और उनके समय का उल्लेख पाया है। एक पोथी १४६२ सम्वत् में अर्थात् १४३४-३५ ई० में पृथिवी सिंहदेव के राजत्वकाल में चम्पकारण्य नगर में लिखी गयी थी और दो पोथियाँ १४५३-५४ और १४५७ ई० में मदनसिह देव के राजत्वकाल में लिखी गयी थी। इनमें की प्रथम पोथी में उनको विप्रराजा कहा गया है। सम्भवतः मदनसिह देव ही "मदनरत्न प्रदीप' के लेखक थे। इन राजाओं की मुद्रा के सामने वाले भाग में "गोविन्द चरण प्रणत" राजा का नाम और पिछले भाग में "श्रीचम्पकारण्य" लिखा हुआ है (८३)। सुतरां ये स्वाधीन नृपति थे। इस वंश के साथ शिवसिँह के वंश का कोई रक्त का सम्बन्ध था वा नहीं, जाना नहीं जाता है। परन्तु दोनों ही वंश ब्राह्मणों के थे और दोनों वंश के राजाओं के नामके साथ सिंह शब्द का योग देखकर लगता है कि सम्बन्ध रहना कोई विचित्र वात नहीं है।

इसी समय के एक और राजा और राज्य का नाम विद्यापति की 'लिखनावली' में पाया जाता है। इस राजा का नाम था पुरादित्य. उसके पिता का नाम सर्व्वादित्य-राज का नाम द्रोणवार। जिस प्रकार शिवसिंह का विरुद था रूपनारायण, उसी प्रकार इनका उपनाम था गिरिनारायण। जनकपुर के निकटवर्त्ती राजवनौली में में इनकी राजधानी थी।

कर्णाटवंशीय मिथिला के शेप राजा हरिसिँह देव के वंशधर चौदहवीं-शताब्दी के शेप भाग और पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में नेपाल में राजत्व करते थे। हरिसिंह देव के एक अधस्तन पुरुष, जयस्थिति नेपाल-राजकन्या राजल्ल देवी के साथ विवाह करके १३८२ ई० में नेपाल के राजा हुए। नेपाल दरवार की कई एक पोथियों की पुष्पिका से जाना जाता है कि जयस्थितिमल्ल १३६४ ई० में, जयसिंहराम १३६५-६६ ई० में, जयधर्म्ममल्ल १४०३ ई० में, और जयज्योतिर्मल्ल १४२६-२७ ई० में नेपाल में राजत्व करते थे। विद्यापति के युग में नेपाल के साथ मिथिला का राजनैतिक सम्बन्ध घनिष्ट न होने पर भी उनमें सांस्कृतिक सम्बन्ध प्रचुर था। इसीलिए विद्यापति की पदावली, कीर्तिलता और कीर्तिपताका की प्राचीन पोथी नेपाल में अनुलिखित हुई थी और अभी तक राजदरवार में संरक्षित है।

---

(८३) Bendall—The History of Nepal and Surrounding Kingdom—J. A. S. B. 1903 Pp. 1—32.

शिवसिंह के भ्राता पद्मसिंह शिवसिंह के लापता होने के बाद ही राजा नहीं हुए। प्रवाद है कि मंत्री अभियकर ने पटना जाकर सुलतान से अभयदान की प्रार्थना की और उसे लाभ करने के बाद पद्मसिंह राजा हुए। शेरशाह के अभ्युत्थान के पहले पटना में कोई सुलतान अथवा उसका कोई प्रभावशाली राजकर्मचारी वास नहीं करता था। लगता है कि जौनपुर जाकर अभियकर ने इब्राहिम शाह के निकट पद्मसिंह का आनुगत्य प्रकाशित किया एवं उनकी अनुज्ञा लाभ करने के बाद पद्मसिंह राजपद पर अधिष्ठित हुए। किन्तु पद्मसिंह की स्त्री विश्वास देवी ही पति के सिंहासन पर बैठ कर राजकाज चलाती थी, यह बात विद्यापति ने "शैवसर्वस्वसार" में कही है।

इनकी कोई सन्तान न होने अथवा कोई अन्य कारण से देवसिंह के भ्राता हरिसिंह के पुत्र नरसिंह ने राज्य लाभ किया। हरिसिंह कभी भी राजा न हुए थे। विद्यापति ने "विभाग सार" में उनकी बातें कहते हुए लिखा है कि राजा भवेश से हरिसिंह और उनके पुत्र दर्पनारायण राजा हुए। दर्पनारायण नरसिंह का विरूद था। जायसवाल ने मधेपुरा सब डिवीजन में कारणदाहा ग्राम में इनकी एक शिलालिपि का आविष्कार किया है। इसकी तारीख शकाब्द "शरसवमदन—शर—५, सव—७ मदन—१३ "अंकस्य बामागति" न्याय से इसका अर्थ हुआ १३७५ शक अथवा १४५३ ई० (८४)। किन्तु जायसवाल कहते हैं कि नरसिंह के पुत्र धीरसिंह को 'सेतुदर्पणी' की पोथी की पुष्पिका में कार्त्तिक ३२१ ल० स० व० १४४० ई० और महाभारत के कर्णपर्व की पोथी में भाद्र ३२७ ल० स० वा १४४७ ई० में महाराजाधिराज कहा गया है (८५); सुतरां १४५३ ई० में नरसिंह का राजत्वकाल नहीं हो सकता है एवं यह तारीख १३५७ शक अर्थात् १४३५ ई० होना चाहिये। किन्तु "अंकस्य बामागति" के नियम का उल्लंघन करके इस प्रकार की कष्टकल्पना करने का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि विद्यापति ने 'दुर्गाभक्ति-तरंगिणी' में नरसिंह का उल्लेख 'अस्ति' शब्द में करके उनके पुत्रों को नृपति कहा है। पहले ही देखा जा चुका है कि कामेश्वर वंश में इस प्रकार की रीति थी। १४४० से १४५३ ई० के बीच में नरसिंह और उनके पुत्र धीरसिंह ने अवश्य मिथिला में राजत्व किया था। दुर्गाभक्ति-तरंगिणी में धीरसिंह के

---

(८४) J B. O. R. S. XX खृष्टाब्द, पृ० १५-१६।

(८५) सेतुदर्पणी की पुष्पिका में हैं—"परमभट्टारकेत्यादि महाराजाधिराज श्री मल् लक्ष्मणसेन देवीयैकविंशत्यधिक शत त्रयतमाब्दे कार्त्तिकामावस्यायांशनौ समस्त प्रक्रिया विराजमान रिपुराज कंसनारायण शिवभक्तिपरायण महाराजाधिराज श्री श्रीमद् धीरसिंह संभुज्यमानायां तीरभुक्तौ अलापुरतपा प्रतिबंन्ध सुन्दरी ग्रामवस्ता सदुपाध्याय श्रीसुधाकरणेमात्मजेन छात्र श्रीरत्नेश्वरेण स्वार्थं परार्थं च लिखितमिदं सेतुदर्पणी पुस्तकमिति।" मनोमोहन चक्रवर्त्ती ज्योतिपिक गणना करके दिखलाते हैं कि १४४० ई० में कार्त्तिकी अमावस्या शनिवार को पड़ती ही नहीं—१३३८ ई० में पड़ी थी। सुतरां सेतुदर्पणी की इस तारीख पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं किया जाता। किन्तु J. B. O. R. S. Vol X पृ० ४२-४२ में प्रकाशित कर्ण पर्व की पोथी के विवरण में देखा जाता है कि धीरसिंह ३२७ ल० स० भाद्रमास में अर्थात् १४४७ ई० में मिथिला में राजत्व करते थे। इस तारीख में सन्देह का कारण नहीं है।

भाई भैरवसिंह का नाम जो लिया गया है, उन्होंने १४९६ ई० में भी राज्य किया था, क्योंकि इस वर्ष में उनके राजत्वकाल में वर्द्धमानकृत 'गंगाकृत्य-विवेक' की पोथी लिखी गयी थी। सुतरां, पंचदश शताब्दी के प्रायः शेष पर्य्यन्त नरसिंह के पुत्रों ने मिथिला में राजत्व किया था।

चौदहवीं शताब्दी के शेषपाद से पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक उत्तरभारत की राजनैतिक अवस्था संकटाकीर्ण थी। युद्धविग्रह, लूट, अत्याचार, राजन्यवर्ग का द्रुत भाग्य परिवर्त्तन उस युग की रोज की घटना थी। इस हालत में कामेश्वर वंश के राजाओं का आनुगत्य करने के लिए विद्यापति को भी कई एक बार भाग्यविपर्य्यय के सम्मुख होना पड़ा था।

५

विद्यापति की जीवनी और कालनिर्णय

पहले ही देखा जा चुका है कि विद्यापति ने इब्राहिम शाह के जौनपुर के सिंहासनारोहण के दो एक वर्ष बाद अर्थात् १४०२-१४०४ ई० के बीच 'कीर्त्तिलता'' रचना की थी। 'कीर्त्तिलता'' की रचना के समय कवि की उम्र पचीस वर्षों से अधिक की न थी; इस अनुमान के पक्ष में दो कारण हैं। प्रथमतः उन्होंने अपने को 'खेलन कवि' कह कर अभिहित किया है (८६) सम्भवतः उनके खेलकूद की उम्र समाप्त न होने के कारण लोग उन्हें 'खेलन कवि' कहते थे। द्वितीयतः तरुणसुलभ दम्भ प्रकाश करके उन्होंने इस काव्य की सूचना में कहा है कि बालचन्द्र और विद्यापति की वाणी में दुर्जनों का उपहास नहीं लगता—बालचन्द्र परमेश्वर शिव के सिर पर शोभा पाता है और विद्यापति की वाणी विदग्धजनों का मान मुग्ध करती है (८७)। किन्तु ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है कि "कीर्त्तिलता" कवि की प्रथम रचना थी। यदि कवि पहले ही से प्रशंसा और समादर प्राप्त नहीं किए होते, तो सहसा 'कीर्त्तिलता' में यह बोलने का साहस न करते कि "यह निश्चय ही विदग्ध लोगों का मनमोहन करेगी"। सम्भवतः इब्राहिम शाह के कीर्त्तिसिंह को तिलक देकर मिथिला के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के पहले ही कवि ने गियास-उद्-दीन आजम शाह को कविता उपहार देकर उनकी सहायता से असलान के

(८६) कीर्त्तिलता के शेष में:—

एवं संगरसाहसप्रमथनप्रालब्धलब्धोदयां
पुष्णाति श्रियमाशशांकतरणीं श्री कीर्त्तिसिंहो नृपः।
माधुर्यप्रसवस्थली गुरुयशोविस्तार शिक्षासखी
यावद्विश्वमिदं च खेलनकवेर्विद्यापतेर्भारती॥

(८७) बालचन्द विज्जावइ भाषा
दुहु नहि लग्गइ दुज्जन-हासा।
ओ परमेसर हरसिर सोहइ
ई निच्चइ नाअर मन मोहइ॥

हाथों से मिथिला का उद्धार करने की चेष्टा की थी। नगेन्द्र बाबू की ३४ संख्या का पद यदि विद्यापति की रचना हो तो यह भी कीर्त्तिलता के पहले ही रचा गया था, ऐसा स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्योंकि उसमें राय नसरत साह का जो उल्लेख है वे १३६४ ई० में राज्याधिरोहण कर चुके थे एवं १३६६ खृष्टाब्द में, अथात् इब्राहिम शाह के जौनपुर-सिंहासन की प्राप्ति दो वर्ष पहले ही, मृत्यु को प्राप्त कर चुके थे। ऐसा संशय किया जा सकता है कि मैथिली भाषा में कविता करने बाद कवि ने फिर अवहट्ठ भाषा में काव्य क्यों किया। इस संशय को यह सिद्ध कर मिटाया जा सकता है कि कवि ने देवसिंह के राजत्वकाल में उनके नाम का उल्लेख कर मैथिली कविता लिखने के वाद (वर्तमान संस्करण का ३-६ पद) अवहट्ठ भाषा में देवसिंह की मृत्यु और शिवसिंह की राज्यारोहण-विषयक कविता (८ और ६ संख्यक पद) रची थी। मालूम होता है कि जिन विषयों में कविता पढ़ने का आग्रह केवल मिथिलावासियों को हो सकता था, उन विषयों में कवि ने अवहट्ठ भाषा में कविता की। पूर्व भारत के काव्यरसिकों की जिस प्रकार की कविता सुनने को उत्सुक होने की सम्भावना थी उसको तत्कालीन बंगला, हिन्दी, उड़िया और आसामी भाषा के साथ विशेष सादृश्ययुक्त मैथिली भाषा में कवि ने रचना की। और जब समग्र भारत के पण्डित-समाज के लिए रचना करनी चाही, तब संस्कृत भाषा का व्यवहार किया जैसे, "भू-परिक्रमा," "पुरुषपरीक्षा", "विभाग-सार", "शैव-सर्वस्वसार" इत्यादि।

ऐसा लगता है कि 'भूपरिक्रमा' 'कीर्त्तिलता' के पहले ही रची गयी थी। "भूपरिक्रमा" की रचना के समय देवसिंह और शिवसिंह नैमिषारण्य में बास कर रहे थे। इस ग्रंथ में उनके नाम का उल्लेख करते समय विद्यापति ने उन्हें नृपति या कुमार कुछ भी नहीं कहा है। कीर्त्तिसिंह की राज्य-प्राप्ति के पहले वे शायद असलान के अत्याचार से अपनी आत्मरक्षा के लिए नैमिषारण्य में बास करते थे। इस समय विद्यापति मिथिला में थे, ऐसा अनुमान करने का कोई कारण नहीं है। मैंने दरभंगा राजलाइब्रेरी के सुपण्डित ग्रन्थाध्यक्ष श्रीयुक्त रमानाथ झा से इस विषय पर प्रश्न किया था। उन्होंने कहा कि मिथिला में किम्बदन्ती है कि भू-परिक्रमा लिखने के समय विद्यापति छात्ररूप में नैमिषारण्य में बास कर रहे थे। इस ग्रन्थ के लिखने के पहले पहले उन्होंने निश्चय ही मिथिला से नैमिषारण्य तक के भू-भाग का पर्य्यटन किया था; नहीं तो उनके लिए यह सम्भव नहीं था कि वे इस भू-भाग के प्रधान प्रधान तीर्थस्थानों का विवरण लिखते। कीर्त्तिसिंह की यशोगाथा की रचना करने के बाद कवि का समादर राजसभा में होने लगा, सुतरां इस समय उनके नैमिषारण्य में वास करने का कोई संगत कारण नहीं है।

कीर्त्तिसिंह की मृत्यु के वाद उनके चाचा देवसिंह ने कुछ थोड़े दिनों तक राजत्व किया और उनके वाद शिवसिंह पर राज्यभार प्रदान कर दिया। देवसिंह की जीवितावस्था में और शिवसिंह के राजत्व आरम्भ होने के वाद "पुरुषपरीक्षा" की रचना हुई। इसके प्रारम्भ में शिवसिंह को 'क्षितिपालगुणु' और शेष में 'क्षितिपति' कहा गया है। देवसिंह की मृत्यु के वाद शिवसिंह के वीरत्व और नागरत्व का वर्णन करते हुए 'कीर्त्तिपताका' की रचना की। अतएव, "पुरुष परीक्षा" की रचना के वाद

"कीर्त्तिपताका" की रचना हुई। शिवसिंह के राज्यकाल में रचित माने हुए २०३ पद प्रमाणित मिले हैं (वर्तमान संस्करण के ८ से २०७ पद और रमानाथ का द्वारा संग्रहीत ३ पद)। इन पदों में शिवसिंह का नाम भणिता में उल्लिखित हुआ है। परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जिन पदों में किसी राजा का नाम नहीं है, उनमें से कोई भी पद शिवसिंह के राज्यकाल में रचा ही नहीं गया था। शिवसिंह की मृत्यु के बाद भी कवि ने बहुत से पदों की रचना की थी।

किन्तु शिवसिंह के मरने के बाद विद्यापति को भी कामेश्वर वंश का आश्रय त्याग कर द्रोणवार के अधिपति पुरादित्य की शरण लेनी पड़ी थी। यह समय उनके लिए विशेष सुखकर नहीं था। जिन्होंने मैथिली, अवहट्ठ और संस्कृत भाषा में ग्रन्थ रचना करके कवि और पण्डित की ख्याति प्राप्त की थी, उनके लिए अल्प पढ़े लिखे लोगों को चिट्ठी लिखना सिखलाने के लिए 'लिखनावली' की रचना करना केवल पेट पालने के काम के समान मालूम पड़ता है। लिखनावली के कई एक पत्रों की तारीख २९९ ल० स० अथवा १४१८ ई० है। यह ग्रन्थ इसी समय लिखा गया था।

पुरादित्य की राजधानी राजबनौली में थी। यदि विद्यापति की स्वहस्त-लिखित कही गयी श्रीमद्भागवत की पोथी यदि सचमुच ही उनके द्वारा लिखी हुई हो, तो कवि अन्ततः दस वर्षों तक राजबनौली में थे। इस पोथी के शेष में जो कई एक अस्पष्ट अक्षर लिखे हुए हैं उनका पाठोद्धार निम्नलिखित रूप में हुआ है—

"शुभमस्तु सर्व्वार्थगता संख्या लसं ३०९ श्रावण शुदि १५ कुजे राजबनौलि ग्रामे श्रीविद्यापते लिपिरियमिति (८८)।

मिथिला की राजनैतिक अवस्था कुछ शान्त होने पर एवं शिवसिंह के भ्राता पद्मसिंह के सिंहासन पर बैठने पर विद्यापति फिर कामेश्वर वंश के आश्रय में लौट आए। उन्होंने पद्मसिंह के नाम का उल्लेख कर पद (संख्या २०८) रचना की एवं विश्वासदेवी की आज्ञा से 'शैवसर्वस्वसार' और 'गंगावाक्यावली' लिखी। उसके बाद उन्होंने नरसिंह के राज्यकाल में 'विभागसार' और 'दानवाक्यावली' और उनके

---

(८८) नगेन्द्रगुप्त की भूमिका, पृ० ६। यह पोथी दरभंगा राजलाइब्रेरी में रक्षित है और ग्रन्थाध्यक्ष श्रीयुक्त रमानाथ झा ने इसे हमें दिखलाया था। पोथी का हस्ताक्षर मुक्ता के समान है। मूल पोथी की लेखा अभी भी अस्पष्ट नहीं हुई है। किन्तु पोथी की तारीख का पाठभेद लेकर मतान्तर है। राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने इसकी तारीख ३४९ लसं० अथवा १४५८ ई० लिखी थी। डा० उमेश मिश्र ने अपने "विद्यापति ठाकुर" नामक ग्रन्थ के शुरू में ही इसका फोटो देकर लिखा है "लक्ष्मण सेन सम्वत् ३८६ की लिखी हुई विद्यापति की हस्तलिपि (श्रीमद्भागवत् की)"। उनके पुत्र डा० जयकान्त मिश्र ने "History of Maithili Literature" (पृ० १८२) में लिखा है—Rama Nath Jha and I myself have worked out and seen that it is 309 La sam. दर्हेदिग्रामगाय मित्र-मण्डल से प्रकाशित "मैथिली गद्यसंग्रह ग्रन्थ में "विद्यापति का हाथ का लिखा भागवत" प्रबन्ध में भी ३०९ ल० स० पाठ माना गया है।

पुत्र धीरसिंह के राज्यकाल में भैरवसिंह की आज्ञा से 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' की रचना की। यह बात नहीं है कि स्मृतिग्रन्थों की रचना के युग में विद्यापति ने कविता ही नहीं लिखी। वर्त्तमान संस्करण के २१६ संख्यक पद में 'कंसदलन नारायण सुन्दर' वा धीरसिंह का नाम पाया जाता है। विद्यापति के पदों के ¼वें हिस्से से कुछ अधिक पदों में राजाओं का नाम पाया जाता है; अन्य पदों में बहुत से राजा शिवसिंह की मृत्यु के बाद कवि की परिपक्व अवस्था में लिखे गये थे। इस सिद्धान्त का प्रमाण आगे चल कर दिया जाएगा।

यह निश्चितपूर्वक नहीं जाना जाता है कि विद्यापति का जन्म कब हुआ था और वे कितने दिन जीते रहे। किम्वदन्ति, अनुमान, कल्पना और इतिहास की आंशिक दृष्टि लेकर नाना प्रकार के लोगों ने नाना मत प्रकाशित किए हैं। सुविज्ञ समालोचक सारदाचरण मित्र महाशय ने १८७८ ई० में अपने संकलित विद्यापति की पदावली की भूमिका में कवि के जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है कि 'विद्यापति दीर्घजीवी थे' एवं "खृष्टीय पंचादश शताब्दी के प्रथमार्द्ध में ही उनकी पदावली प्रकाशित हुई होगी।" नगेन्द्रगुप्त अपनी भूमिका के द्वितीय पृष्ठ में कहते हैं कि २९३ ल० स० वा १४१२ ई० में शिवसिंह राजा हुए। प्रवाद है कि शिवसिंह का वयःक्रम उस समय पचास वर्ष था। साढ़े तीन वर्ष राज्य करके यवनों के साथ युद्ध में पराजित एवं निहत हुए। जन-श्रुति है कि वे युद्ध के बाद लापता हो गए; किन्तु यही अनुमान अधिकतर संगत मालूम होता है कि वे युद्धभूमि में मारे गये। यदि शिवसिंह का जन्म ल० स० २४३ मान लिया जाय तो विद्यापति का जन्म २४१ ल० स० (१३६० खृष्टाब्द) अनुमान किया जा सकता है।" किन्तु राज्याधिरोहण के समय शिवसिंह का वयस १५ वर्ष था, इस प्रकार की जनश्रुति चन्दा झा ने सुनी थी एवं उसी पर निर्भर होकर ग्रियर्सन ने भी १८९९ ई० में वही लिखा (८९)। नगेन्द्रबाबू का दूसरा अनुमान "१३७३ साल के पहले ही उन्होंने कविता रचना की थी, इसमें संशय का कोई कारण नहीं है" (९०)। उनके इस प्रकार कहने का कारण यही है कि उन्होंने स्टुयर्ट साहब के बंगाल के इतिहास में पाया था कि "१३७३ ई० में ग्यास-उद्दीन की मृत्यु हुई।" ग्रियास-उद्-दीन आजम शाह ने १४०९ ई० में भी जीवित रह कर अपने नाम की मुद्रा प्रचारित की थी। इसके अलावा यह भी कहा जा सकता है कि यदि १३६० ई० में विद्यापति का जन्म हुआ तो १३७३ ई० के पहले उनकी उम्र केवल १२ वर्ष की थी। इस प्रकार का एक छोटा बालक "ग्यासुद्दीन की मनस्तुष्टि के लिए" गोपने उपभुक्ता नायिका के "उधसल केसकुसुम" और "खण्डित दशन अधरे" का वर्णन नहीं कर सकता। शायद नगेन्द्र बाबू ने इस पर ध्यान दिया ही नहीं।

---

(८९) Indian Antiquary, 1899, पृ० ९९।

(९०) नगेन्द्र गुप्त भूमिका, पृ० ९९।

विद्यापति की रचना कहे हुए एक पद में है :—

सपन देखल हम शिवसिंह भूप
वतिस वरस पर सामर रूप।
वहुत देखल गुरुजन प्राचीन
आव भेलहुँ हम आयु विहीन ॥ (६१)

यह पद नेपाल पोथी, राग-तरंगिणी, रामभद्रपुर पोथी, यहाँ तक कि नगेन वावू की "ताल-पत्र की पोथी" में भी नहीं पाया जाता। यदि तर्क के लिए इसे अकृत्रिम भी कहा जाए तो इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि शिवसिंह की मृत्यु के ३२ वर्ष वाद विद्यापति की मृत्यु हुई थी। इस पद से केवल यही जाना जाता है कि शिवसिंह के परलोकगमन के ३२ वर्ष वाद तक भी विद्यापति जीवित थे। नगेन वावू ने अनुमान किया है कि विद्यापति ने ३२६ ल० स० (१४४८) के कार्त्तिक मास शुक्ला त्रयोदशी को देह त्याग किया। किन्तु वे अन्ततः ३४१ ल० स० १४६० ई० में मुडियार ग्रामनिवासी छात्र श्रीरुपधर को पढ़ा रहे थे (६२)।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने विद्यापति का मृत्युकाल १४५६ ई० माना है। उन्होंने नगेन्द्र वावू के ४८४ संख्यक पद में हुसेन शाह का उल्लेख पाकर अनुमान किया है कि ये हुसेन शाह वंगाल के सुलतान (१४६२-१५१६) नहीं थे, वल्कि जौनपुर के शेष सुलतान हुसेन शाह थे जिन्होंने १४५८ से १४८६ ई० तक राजत्व किया (६३)। किन्तु पहले ही देखा गया है कि नगेन्द्र वावू का ४८४ संख्यक पद विद्यापति का लिखा ही हुआ नहीं है—यह "जसोधर नवकविशेखर" की रचना है।

पदकल्पतरू की भूमिका में सतीशचन्द्र राय महाशयने विसफी दानपत्र और 'अनलरन्ध्र' पद को अकृत्रिम मान कर २६३ ल० स० के १४१२ ई० के वदले में १४०० खृष्टाव्द माना है। उन्होंने यह माना कि राज्याधिरोहण करते ही शिवसिंह ने विद्यापति को ग्राम दान किया और कहते हैं 'उस समय उनका (विद्यापति का) वयस कम से कम वीस वर्ष का था, यह मान लेने से, अन्दाजन १३८० ई० में उन्होंने जन्म ग्रहण किया, ऐसा सिद्धान्त किया जा सकता है।" सतीश वावू यदि लक्ष्मण सम्वत् को विना भूल किए खृष्टाव्द में परिवर्त्तित कर सकते, तो २६३ ल० स० में विद्यापति को ३२ वर्ष का वयस्क कह सकते। ३२ वर्ष के प्रतिभावान व्यक्ति के लिए मैथिलभाषा में पद, संस्कृत भाषा में "भूपरिक्रमा" और "पुरुषपरीक्षा" और अवहट्ट भाषा में कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका लिख कर "अभिनव जयदेव" और महापण्डित की आख्या से विभूषित होना कुछ विचित्र नहीं है। विद्यापति की मृत्यु के कालनिर्णय में

(६१) नगेन्द्र गुप्त संस्करण, पृ० ४३३।

(६२) Catalogue of Palm Leaf Mss. in Nepal Darbar (1905) पृ. ३. ३६०।

(६३) काशी महाराज की कीर्त्तिलता की भूमिका, पृ० २८-२६।

भी सतीशबाबू ने भ्रान्त धारणा के वशवर्त्ती होकर लिखा है—"राजा दर्पनारायण १४७२ ई० में राजा हुए" और "भैरवसिंह को १५१३ ई० में राज्यप्राप्ति हुई।" किन्तु कनदाहा लिपि में नरसिंह दर्पनारायण को १४५३ ई० में राजा कह कर और वर्द्धमान के 'गंगाकृत्य विवेक' की १४६६ ई० में लिखी पोथी में भैरवेन्द्र का उल्लेख नृपति कह कर हुआ है। भैरवसिँह के पौत्र लक्ष्मीनाथ कंसनारायण १५१० ई० के दिसम्बर मास में मिथिला के सिँहासन पर अधिष्ठित थे (६४)।

अध्यापक वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय कहते हैं कि यद्यपि हमलोग केवल-मात्र यही प्रमाण पाते हैं कि १४०० खृष्टाब्द से १४३८ खृष्टाब्द तक विद्यापति निश्चय ही जीवित थे, तथापि यह मानना कि वे १३६२ ई० में जन्म ग्रहण कर १४४८ ई० में मृत्युमुख में पतित हुए, सत्य से दूर नहीं कहा जा सकता (६५)। शिवनन्दन ठाकुर (६६) कहते हैं कि "विद्यापति ने ल० स० २५२ (जब गणेश्वर की मृत्यु हुई थी) के लगभग कीर्त्तिलता-रचना की थी" एवं "इस समय विद्यापति कम से कम बीस बरस के अवश्य होंगे। इस प्रकार अनुमान से मालूम पड़ता है कि विद्यापति का जन्म २३२ ल० स० (१३५१ ई०) में हुआ होगा।" यह उक्ति एकदम युक्तिसंगत नहीं है। २५२ ल० स० १३७० ई० में "कीर्त्तिलता" रचित होना असम्भव है, क्योंकि विद्यापति ने जो वर्णन किया है कि जौनपुर के सुलतान की सहायता से कीर्त्तिसिंह ने मिथिला का सिंहासन लाभ किया, वह इब्राहिम शाह १४०१ खृष्टाब्द में सुलतान हुआ था। राम के जन्म के पहले रामायण की रचना सम्भव होने पर भी, इब्राहिम शाह के सुलतान होने के ३१ वर्ष पहले ही विद्यापति के लिए इब्राहिम के मिथिला-अभियान का वर्णन करना असम्भव था। शिवनन्दन ठाकुर ने 'सपन देखल हम' पद के साथ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के स्वप्नफल सम्बन्धी श्लोक को मिला कर ठीक किया है कि यह स्वप्न देखने के आठ महीने के भीतर ३२६ ल० स० वा १४४८ ई० में विद्यापति की मृत्यु हुई। किन्तु विद्यापति ३४१ ल० स० १४६० ई० तक जीवित थे, इसका प्रमाण है।

डा० उमेश मिश्र (६७) कहते हैं कि गणेश्वर की मृत्यु के समय अर्थात् २५२ ल० स० वा १३७० खृष्टाब्द में विद्यापति का वयस दस-ग्यारह वर्षों का था, क्योंकि प्रवाद है कि उनके पिता गणपति ठाकुर उनको संग लेकर गणेश्वर की राजसभा में जाते थे। इस प्रवाद की कोई ऐतिहासिक भित्ति नहीं है, क्योंकि यह बात किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं पायी जाती कि विद्यापति के पिता राजा के सभासद थे। डा० उमेश मिश्र और भी कहते हैं कि कीर्त्तलता की रचना के समय कवि की उम्र अन्ततः बीस वर्षों की

(६४) नेपाल राजदरबार की पोथी का विवरण, पृ० ६३ एवं बेन्डल साहब का प्रबन्ध J. A. S. B. १६०३, पृ० ३१।

(६५) Journal of the department of letters (Calcutta University) Vol. XIV, 1927.

(६६) शिवनन्दन ठाकुर "महाकवि विद्यापति" (यह पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ १६३७ ई० में लिखा गया और उनकी मृत्यु के बाद लहेरियासराय पुस्तक भण्डार से प्रकाशित हुआ) पृ० ३६-३६।

(६७) डा० उमेश मिश्र 'विद्यापति ठाकुर' (हिन्दुस्तानी एकाडमी, एलाहाबाद, १६३७) पृ० ३६-४७।

थी। यदि ऐसा हो तो उनके मतानुसार "कीर्त्तिलता' की रचना १३८० ई० के आसपास अर्थात् इब्राहिम शाह के जौनपुर के सिंहासन-लाभ के २१ वर्ष पहले ही हुई थी। वे नसरत शाह को बंगाल के हुसेन शाह का पुत्र समझ कर सिद्धान्त करते हैं कि विद्यापति १५०० ई० तक जीवित थे। नसरत शाह के नामयुक्त पद में यदि हुसेन शाह का पुत्र ही लक्षित होता है तो भी १५०० ई० में पिता को छोड़ कर पुत्र का उल्लेख करने में कोई सार्थकता नजर नहीं आती क्योंकि हुसेन शाह १५१९ ई० तक जीवित थे। किन्तु वैसा मानने से विद्यापति की उम्र १६० वर्ष की जाती है; यह देखकर डा० मिश्र कहते हैं—"कदाचित् नसरत् शाह राजा होने के पूर्व्व ही बड़े लोकप्रिय हो गये थे, इसलिए लोगों ने उन्हें पहले ही से राजा कहना आरम्भ कर दिया था, और इसीलिए विद्यापति ने भी उन्हें राजा लिखा हो।" परन्तु यह नसरत् शाह शाह फिरोज तुगलक के पौत्र थे और इनका राजत्वकाल १३९४-९९ ई० था। डा० मिश्र वर्तमान संस्करण के २१७, २१८ और २१९ संख्यक पद में उल्लिखित राघवसिंह को और धीरसिंह के पुत्र राघवसिंह को एक मानते हैं, किन्तु धीरसिंह के चचा का नाम भी जब राघवसिंह था तब यदि विद्यापति ने उन्हीं को तीन पद उत्सर्ग किया तो कालानुचित्यदोष नहीं होता। इसका कहीं भी प्रमाण नहीं है कि धीरसिंह के पुत्र राघव कभी राजा हुए थे। धीरसिंह के पौत्र रुद्रनारायण को डा० मिश्र २२० संख्यक पद में उल्लिखित नृप रुद्रसिंह से अभिन्न मानते हैं किन्तु उनके पुत्र डा० जयकान्त मिश्र उनको शिवसिंह का गोतिया-भाई मानते हैं (९८)। आशा है, इस क्षेत्र में पिता पुत्र से हार मान लेंगे।

डा० रमेश मिश्र के बाद वर्त्तमान भूमिका लेखक ने पाँच विभिन्न प्रबन्धों में विद्यापति के समय और पदावली की आकर-पोथियों के सम्बन्ध में आलोचना की थी (९९)। उसके बाद विद्यापति के काल-निर्णय की उल्लेखनीय चेष्टा डा० शहीदुल्लाहने की है (१००)। इन्होंने नसिर के साथ नासिरउद्दीन महमूदशाह का अभिन्नत्व स्वीकार किया है; आलमशाह को पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग के दिल्ली का

---

(९८) History of Maithili Literature Vol 1, पृ० १५०, पदटीका में—It is more right to indentify Rudra Sinha with this figure than with Oinivara Rudranarayana, Rudra Sinha's relation to the ruling family will become clear from following genealogy supplied by Pandit Ramanath Jha from the Panjis: Rudra Sinha was Maharaja Siva Sinha's cousin and the grandson of Mahamahattava Kusumeswara, and son of Rameswara".

(९९) विमानविहारी मजुमदार लिखित (क) Bhanitas in Vidyapati's Padas, J. BORS 1942, Pt. II. (ख) Mithila in the age of Vidyapati, B. N. College Magazine 1943 (ग) Maithila poets in the age of Vidyapati—Patna University Journal Vol IV No 1. (घ) विद्यापति का [illegible] प्रचारिणी पत्रिका ४२ वर्ष [illegible] (ङ) The Ramabhadrapur Ms. containing Vidyapati's songs J. B. R S. Vol XXXIV, पृ० २८-३२।

(१००) Indian Historical Quarterly, 1944, Vol XX, पृ० २११-१०।

अयोग्य सुलतान एवं नसरतशाह को १३६४-६६ ई० का दिल्ली का नगण्य सुलतान माना है। हरप्रसाद शास्त्री का पदाँक अनुसरण करके इन्होंने हुसेन शाह के नामाङ्कित पद को विद्यापति की रचना समझ कर उक्त हुसेनशाह को जौनपुर का सुलतान माना है; किन्तु "रागतरंगिणी" के अनुसार वह यशोधर की रचना है, विद्यापति की नहीं, यह पहले ही देखा जा चुका है। डा० शहीदुल्लाह जायसवाल का मत मानकर गणेसर की हत्या की तारीख १४२२ ई० मानते हैं। किन्तु शिवसिंह १४१० ई० में जब राजा हुए, ऐसा पाया जाता है, तो उनके १३ वर्ष बाद गणेसर की हत्या होना असम्भव है। डा० शहीदुल्लाह ने १३६० वा १६३७ ई० में विद्यापति का जन्मकाल मान है। किन्तु १४१० ई० में लिखी 'काव्य-प्रकाशविवेक' की पोथी में विद्यापति को सप्रतिष्ठ सदुपाध्याय कहा गया है। शहीदुल्लाह साहब का मत मानने से १४१० ई० में विद्यापति की उम्र होती है तेरह वा वीस वर्ष। इस अल्प वयस में सप्रतिष्ठ सदुपाध्याय रूप में अभिहित होना प्रतिभावान कवि के लिए भी कठिन है। डा० शहीदुल्ला अनुमान करते हैं कि विद्यापति के अतिवृद्ध प्रपितामह १३३२ ई० में देवी मन्दिर में शिला-लिपि स्थापन के समय ६० वा ८० वर्ष के थे (१०१)। किन्तु १३१४ ई० में कर्मादित्य के प्रपौत्र चण्डेश्वर ने सुप्रसिद्ध निबन्धकार और प्रधानमन्त्री होकर तुलापुरुष दान किया था। सुतरां चण्डेश्वर के चचा और विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर १३३२ ई० में तीस वर्ष के भी न हो सकते थे। किन्तु चण्डेश्वर के पितामह देवादित्य, और विद्यापति के वृद्ध प्रपितामह देवादित्य यदि एक ही व्यक्ति हों, तब डा० शहीदुल्लाह का प्रथम अनुमान, १३७७ ई० के आसपास विद्यापति का जन्म मान लेना ठीक हो सकता है। १३८० ई० में जन्म होने पर भी 'काव्यप्रकाश विवेक' की पोथी लिखी जाने के समय उनकी उम्र तीस वर्ष होती है एवं इस उम्र में लोगों द्वारा सदुपाध्याय की आख्या से अभिहित होना सम्भव है।

डा० सुकुमार सेन ने १६४८ ई० में प्रकाशित "विद्यापति गोष्ठी" नामक पुस्तिका में १६२७ से विद्यापति के सम्बन्ध में जो सब आलोचनाएँ हुई हैं उनका किसी रूप में उल्लेख न कर के और तब भी उनके अनेक अंश व्यवहार करके लिखा है—"विद्यापति का कालनिर्णय नगेन्द्रनाथ (और उनके अनुवर्त्ती लोग) राजकृष्ण और ग्रियर्सन के अतिरिक्त कुछ कह नहीं कर सके हैं।" उन्होंने और भी कहा है—"विद्यापति का जीवत्काल निरूपण करते समय पहले उनके पोषक राजा-जमींदारो का शासन-

---

(१०१) Supposing that in 1332 A D. Karmadiya was 80 years old, at the most Devaditya 55, Dhireshwara 30, Jayadatta 5, Ganpati could have been born at 1352 A. D. and Vidyapati at 1377 A. D. we have calculated this on the basis of 25 years for each generation. If, however, we suppose Karmaditya to have been 60 years old at the time of the erection of the temple then the date of birth of Vidyapati would be 1397 A. D. Considering the references we may reasonably put the date of birth of Vidyapati between 1390 and 1490 A. D. J. H Q, XXI, पृ० २१७]

काल ठीक करना आवश्यक है।" उसको ठीक करते हुए उन्होंने कहा है—"भोगेश्वर के दो पुत्र गणेश्वर (वा गणेश) एवं भवेश्वर (वा भवेश)" (पृ० ६); फिर "(भोगीसर राओ पदमादेइ) एक पद में पाता हूँ। इनके कीर्त्तिसिँह के पितामाता होने से और भणिता अकृत्रिम होने से यह पद विद्यापति के कवि जीवन की प्रथम दिशा की रचना है" (पृ० २६)। किन्तु विद्यापति की 'कीर्त्तिलता" में भी पाया जाता है कि भोगीश्वर कीर्त्तिसिह के पिता न थे, पितामह थे; और मिथिला की पंजी में है कि भवेश भोगीश्वर के पुत्र न थे, भाई थे। डा० सुकुमार सेन ने विद्यापति के जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में कोई तारीख या आनुमानिक काल भी नहीं दिया है। परन्तु विद्यापति के छात्र श्री रूपधर के हाथ की लिखी 'ब्राह्मण-सर्वस्व' की पुस्तिका के प्रति दृष्टि आकर्षण करके वे विद्वत्समाज के कृतज्ञता भाजन हुए हैं (१०२)। इसमें पाया जाता है कि ३४७ ल० स० वा १४६० ई० में श्रीविद्यापति रूपधर को पढ़ाते थे। प्राचीन काल में केवल जीवित व्यक्तियों के नाम के साथ ही 'श्री' शब्द का प्रयोग होता था। इसलिए इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि विद्यापति १४६० ई० में जीवित थे। इस समय उनकी उम्र ८० वर्ष से अधिक थी।

विद्यापति के काल और जीवनी सम्बन्ध में नानारूप विचार-वितर्क के फलस्वरूप जो सिद्धान्त हुआ उसका सार-निष्कर्ष नीचे दिया जाता है।

(१) १३८० ई० के आसपास विद्यापति का जन्म।

(२) १३९४-९६ ई० के बीच पद लिखकर गियास-उद्-दीन आजमशाह और नसरत् शाह को उत्सर्ग करना। १३९६-९७ ई० के बाद जौनपुर के प्रथम सुलतान ने तिरहुत जीता। १३९७ ई० के बाद नसरत्खान के दिल्ली का सुलतान-पद दावा करने के पहले, ये दोनों पद लिखे गये थे।

---

(१०२) सुकुमार बाबू ने २२ पृष्ठ की पदटीका में लिखा है कि नेपाल दरबार की पोथी में उन्होंने इस पुष्पिका को पाया है। असल में उन्होंने इसे १९०५ ई० में प्रकाशित हरप्रसाद शास्त्री की Catalogue of Palm Leaf Manuscripts in Nepal Darbar पृ० ४८ (३३६०) में पाया है। उन्होंने जिस रूप में पुष्पिका को उद्धृत किया है उसमें विद्यापति के सच्चरित्र विशेषण में "परम" शब्द नहीं है एवं मूल का 'पठिता" शब्द "पठता" रूप में मुद्रित हुआ है। पुष्पिका का पाठ यह है—

लसं ३४१ सुरिश्चार ग्रामे सत्क्रिय सदुपाध्याय निजकुलकुमुदिनीचन्द्र वादिमत्तेभ सिंह परम सच्चरित्र पवित्र श्री विद्यापति महाशयेभ्यः पठिता छात्र श्रीरूपधरेण लिखितमदः पुस्तकम्।

पक्षे सितऽर्णो शशिवेदराम
युगे नवम्यांगुरु लघकमादे।
श्रीरूपं भोगीश्वर सद्द्विजेन
पुस्ती विशुद्धा लिखिता च भाते॥

(३) १४०० ई० के आसपास नैमिषारण्यनिवासी देवसिँह के आदेश से 'भूपरिक्रमा' की रचना ।

(४) १४०२-१४०४ ई० के बीच इब्राहिम शाह द्वारा कीर्त्तिसिँह को मिथिला का सिँहासन-प्रदान होना और उसी समय 'कीर्त्तिलता' की रचना ।

(५) १४१० ई० में विद्यापति के आदेश से 'काव्यप्रकाशविवेक" की पोथी की अनुलिपि । इसी समय कवि अलंकार शास्त्र की अध्यापना करते थे । इसी समय (देवसिँह की जीवित-अवस्था में) पुरुष-परीक्षा की रचना और देवसिँह की मृत्यु के पहले अथवा पश्चात् 'कीर्त्तिपताका' की रचना ।

(६) १४१०-१४१४ ई० के बीच शिवसिँह के राज्यकाल में कम से कम दो सौ पदों की रचना ।

(७) १४१८ ई० में द्रोणवार के अधिपति पुरादित्य के आश्रय में राजबनौली में "लिखनावली" की रचना ।

(८) १४२८ ई० में इसी राजबनौली में विद्यापति द्वारा भागवत की अनुलिपि का समाप्त करना ।

(९) १४३०-४० ई० के बीच पद्मसिँह और विश्वासदेवी के नाम से एक पद की रचना और 'शैवसर्वस्वसार' और 'गंगा वाक्यावली' की रचना ।

(१०) १४४०-६० ई० के बीच "विभागसार" "दानवाक्यावली" और "दुर्गाभक्तितरंगिणी" की रचना ।

(११) १४६० ई० में स्मृति के अध्यापक के रूप में "ब्राह्मण सर्वस्व" की अध्यापना ।

विद्यापति के पदों के सैकड़े पचहत्तर में किसी राजा अथवा मन्त्री का नाम नहीं है । ऐसा मालूम होता है कि इनमें से अधिकांश शिवसिंह की मृत्यु के बाद एवं पद्मसिँह, विश्वासदेवी, नरसिँह, धीरसिंह, भैरवसिंह के आश्रय में आने के पहले रचे गए थे । इस समय कवि कामेश्वर के वंश से आश्रयच्युत होकर राजबनौली में वास करते थे । उस समय उनकी उम्र ३५ से ५० वर्षों के बीच की थी । विभिन्न देशों के साहित्य का अध्ययन करने से पता लगता है कि इसी उम्र में साहित्यिक प्रतिभा का श्रेष्ठ विकास होता है । राजनामाङ्कित २२५ पदों में तीस से अधिक विरह के पद नहीं हैं । इसी प्रकार क पदों को देख कर, मालूम होता है, रवीन्द्रनाथ ने लिखा था—"विद्यापति सुख के कवि हैं, चण्डीदास दुख के कवि । विद्यापति विरह में कातर हो उठते हैं, चण्डीदास को मिलन में भी सुख नहीं । विद्यापति जगत में प्रेम को ही सार मानते थे, चण्डीदास प्रेम का ही जगत समझते थे । विद्यापति भोग के कवि थे, चण्डीदास सहन के ।" किन्तु राजसभा के वातावरण में जो पद नहीं रचे गए थे उन्हें कवि ने अपने दुख के दिनों में अकेले बैठकर रचा था, उनमें एक गम्भीरतर सुर, एक निविड़तर आनन्द और अतीन्द्रिय अनुभूति की छाप है ।

६

पदावली की आकर-पोथियों पर विचार

विद्यापति अपने जीवनकाल में ही महाकवि कहला कर पूर्वभारत में समादृत हुए थे। उनकी पदावली का आस्वादन करके श्रीचैतन्यदेव परम आनन्द लाभ करते थे (१०३), एवं उनका पदाङ्क अनुसरण करके मिथिला और बंगाल में बहुत आदमियों ने कवियश लाभ किया था। किन्तु आश्चर्य की बात है कि बीसवीं शताब्दी के पहले किसी एक ग्रन्थ में उनके समस्त पद एकत्र संगृहीत नहीं हुए। यदि इस प्रकार का कोई संग्रह हुआ भी हो तो आज तक वह आविष्कृत नहीं है।

विद्यापति के अनेक पद नेपाल, मिथिला और बंगाल में संगृहीत प्राचीन गीत संग्रह की पोथियों में पाये जाते हैं और अनेक पद किसी भी प्राचीन पोथी में नहीं पाये जाते हैं। गत शताब्दी के शेष पाद में ग्रियर्सन और चन्दा झा और वर्त्तमान शताब्दी में नगेन्द्रनाथ गुप्त, वेणीपुरी और 'मिथिला गीत संग्रह' के प्रकाशकों ने लोगों के मुख से सुनकर और उनमें विद्यापति की भणिता देखकर उन्हें विद्यापति की रचना मान लिया।

विद्यापति की पदसमन्वित पोथियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है, यथा—(क) नेपाल की पोथी (ख) मिथिला में प्राप्त "रागतरंगिणी", शिवनन्दन ठाकुर द्वारा आविष्कृत रामभद्रपुर पोथी और नगेन्द्रनाथ गुप्त वर्णित तरौणि की तालपत्र पोथी; (ग) बंगाल में संगृहीत "क्षणदागीत चिन्तामणि", "पदामृतसमुद्र", "पदकल्पतरु", "संकीर्त्तनामृत" और "कीर्त्तनानन्द"। इन पोथियों में एक के भी सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमें केवल विद्यापति के पद हैं, अन्य किसी कवि द्वारा रचित एक भी पद नहीं है।

---

(१०३) वृन्दावन में बैठकर श्री चैतन्य के सहचर रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री रूप और सनातन से सुनकर कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में तीन बार तीन विभिन्न स्थानों में लिखा कि श्रीचैतन्य विद्यापति का पदगान सुन कर अनुरत आध्यात्मिक आनन्द अनुभव करते थे।

यथा—(क) कर्णामृत, विद्यापति, श्रीगीतगोविन्द
इहार श्लोक गीते प्रभुर कराय आनन्द ॥ (चै० च० ३।१५)

(ख) विद्यापति चण्डीदास श्रीगीतगोविन्द।
भावानुरूप श्लोक पढ़े राय रामानन्द ॥ (ऐ० २।१०)

(ग) [illegible] विद्यापति श्रीगीतगोविन्द गीति
सुनि प्रभुर [illegible] दान (ऐ० ३।१०)

(क) नेपाल पोथी

नेपाल की पोथी नेपाल दरबार की लाइब्रेरी में संरक्षित है। स्वर्गीय काशी प्रसाद जायसवाल और डाक्टर श्रीअनन्त प्रसाद वन्दोपाध्याय शास्त्री के उद्योग से तथा दरभंगा के महाराजाधिराज बहादुर के अर्थानुकूल्य से इसकी फोटोग्राफ कापी गृहीत हुई। इस फोटोलिपि का एक खंड पटना कौलेज लाइब्रेरी में और दूसरा खंड पटना विश्वविद्यालय लाइब्रेरी में रखे हुए हैं। मैंने उसकी सम्पूर्णारूप में नकल कर ली है। जहाँ जहाँ पाठोद्धार में सन्देह हुआ है वहाँ डाक्टर अनन्त प्रसाद वन्दोपाध्याय शास्त्री महाशय की सहायता ली है।

नेपाल को पोथी पुरातन मैथिली लिपि में लिखी हुई है। अधिकांश अक्षर बंगला अक्षरों के अनुरूप हैं। हाथ का लिखा देखकर कोई कोई विशेषज्ञ सोचते हैं कि पोथी अठाहरवीं शताब्दी के प्रथम भाग में लिखी गयी थी। किन्तु १४४७ ई० में मैथिल लिपि में लिखी हुई महाभारत के कर्णपर्व्व की पोथी के अक्षरों से (जिसका नमूना J. B. O. R. S. दशम खण्ड, पृ० ४७ में दिया हुआ है) इस पोथी के अक्षरों का खूब अधिक पार्थक्य नहीं है। पोथी में १०४ पन्ने हैं। पोथी में कोई नाम न था; आधुनिक समय में किसी ने देवनागरी अक्षर में ऊपर लिख दिया है, "विद्यापति का गीत"; यह यदि असल नाम होता तो मैथिली अक्षरों में "विद्यापतिक गीत" पोथी के ऊपर और भीतर लिखा रहता। वस्तुतः इसको विद्यापति का गीत संग्रह कहना भूल है; क्योंकि इसमें अन्ततः और १३ अन्य कवियों के १५ पद हैं (१०४)। नेपाल पोथी के पदों में संख्या दी हुई नहीं है; मैंने क्रमिक संख्या बैठा दी है। सब मिलाकर २८७ पद वा गीत इसमें हैं। किन्तु पदसंख्या १६ के प्रथम नव चरणों के साथ केवल तीन और नये चरण जोड़ कर पदसंख्या ८ बनायी गयी है। १६ संख्यक पद के शेष में और नव चरण अधिक हैं। दोनों गीत ही मालव राग में गेय हैं। पद संख्या ७ मालव राग में गेय है, पद संख्या ९३ धनछी राग में गेय है, किन्तु दोनों पद एक हैं। इसी प्रकार पदसंख्या ६८ और १७४ एक ही पद है, किन्तु पहले का राग धनछी और दूसरे का कानन है। पदसंख्या १९३ और २०७ दोनों ही कोलाव राग में गेय हैं; शेष के दो चरण छोड़कर और सब कई चरणों में इन दोनों पदों में कोई पार्थक्य नहीं हैं।

---

(१०४) पदसंख्या ३०, राजपण्डितकृत; ४१ कंसनृपतिकृत; ४८ आतमकृत; ४९ कंसनरायणकृत; ६० विष्णुपुरीकृत; १०२ लखिमिनाथकृत; १३२ रतनकृत (रागतरंगिणी पृ० १०५ के अनुसार); १४६ सिरिधरकृत; १७० नृपमलदेवकृत; १७५ अमृतकरकृत; १७९ अमिजकरकृत; २०४ पृथिविचन्द्रकृत; २२४ भानुकृत; २६९ धीरेसरकृत; २७० रुद्रधरकृत। निम्नसंख्यक १२ पदों में किसी प्रकार की भणिता नहीं है—३८, १३१, १३२, १३३, १३४, १६०, १७२, १८९, २०४, २७४, २७९ और २८१। अतएव इन १२ पदों के रचयिता कौन हैं यह जानने का उपाय नहीं है।

सुतरां नेपाल की पोथी में वस्तुतः २८३ पद हैं ; उनमें २५६ विद्यापति की भणितायुक्त हैं। इन पदों में कुछ कम-बेश पाठान्तर के साथ ९ "रागतरंगिणी" में, ४५ नगेन्द्रगुप्त कथित तरौणी की तालपत्र पोथी में, ४ पदकल्पतरु में, १२ रामभद्रपुर पोथी में, और ७ ग्रियर्सन के संग्रह में भी पाए जाते हैं। नगेन्द्र बाबू ने अपने साहित्यपरिषत्-संस्करण में अपने १५७ पदों के नीचे लिख कर स्वीकार किया है कि उन्होंने इन्हें नेपाल पोथी से लिया है। और १४ पदों के विषय में कहा है कि इन्हें उन्होंने नेपाल पोथी और तालपत्र पोथी अथवा मिथिला के गीत से लिया है। किन्तु उक्त संस्करण में ४८ और ऐसे पद हैं जिनके विषय में उन्होंने कहा है कि इन्हें उन्होंने दूसरे आकर से लिया है, परन्तु वे पाठ में कुछ अन्तर के साथ नेपाल पोथी में पाए जाते हैं (१०५)।

नगेन्द्र बाबू ने नेपाल पोथी के सब पद प्रकाशित नहीं किए हैं ; यह भी नहीं कहा है कि किस कारण उन्होंने कुछ को चुना और कुछ को छोड़ दिया है। उन्होंने लिखा है—"बहुत से पद इस संस्करण में प्रकाशित हुए हैं। सम्पूर्ण पोथी का मुद्रित होना अत्यन्त वांछनीय है।" विद्यापति के पदों पर भाषातत्त्व अथवा विषयगत किसी रूप की गवेषणा के लिए नेपाल की पोथी का मुद्रित होना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु तो भी वह आज तक प्रकाशित नहीं हुई (१०६)। हमलोगों ने केवल चार पद छोड़ कर नेपाल पोथी के सब पदों को वर्त्तमान संस्करण में सन्निविष्ट कर दिया है (१०७)

---

(१०५) नीचे उसकी तालिका दी गयी है—पहली संख्या नेपाल पोथी की है और ब्रैकेट के भीतर की संख्या नगेन्द्र गुप्त की साहित्य-परिषद् के संस्करण के पदों की है—७ (८४), १८ (१०४), १९ (२६०), २१ (९७), ३८ (५०९), ४९ (७१८), ६८, (१२०), ७५ (४९५), ८१ (७५५), ८६ (१४६), ८९ (४१८), ९८ (५८३), १०५ (६६४), ११२ (२६७), १२५ (९१), १४३ (६६६), १६१ (२८७), १६७ (२०६), १७३ (२६६), १७७ (३००), १८२ (६५१), १९१ (७६६), १९२ (२६९), २१७ (३७), २२१ (५४),। २२९ (५४१), २२५ (२२८), २३६ (८१८), २४१ (५२८), २४२ (४७१), २४५ (६६४), २५० (७२८), २५८ (६०७), २६० (२६४), २६१ (२४८), २७३ (१९६), २७५ (६११), २८६ (६०३), २६ (प्रः ४), १८३ (प ९), २४६ (प्र १४), २४९ (२२३), २४२ (प्र ८), २४० (छर ३२), २७९ (छर २७४), २९८ (छर २०), २७७ (छर ११), २७६ (छर ९)।

(१०६) डा० सुभद्र झा उसकी पाण्डुलिपि प्रस्तुत कर चुके हैं और निकट भविष्य में उसे प्रकाशित करेंगे।

(१०७) जो चार पद छोड़ दिए गये हैं उनमें दो—१०८ और १६० संख्या के पद नितान्त असम्पूर्ण हैं और २७ और २०४ संख्यक पद दुर्बोध्य प्रहेलिका हैं। नीचे चारो पद दिए जाते हैं:—

२०४ संख्यक पद, पृ० १२ ख, पं १, कोलाव राग में—

सरसिज बन्धु रिपुवैरि तनय तद
अहनिसि किछु न सोहावे।
दमता जनक तनय अविसिनल
नाँहि नारि की पावे ॥ध्रु०॥
बिहि भले परिक बिरोधी
हिसो नहि तदम्बर सुन्दर परिजन
दो दिया दे परबोधी॥
गिरिजासुतपति भोजन भोजन
में सहिन छवि मन्दा।

विद्यापति के लिखे हुए ४६ नये पद जिन्हें नगेन्द्रनाथ गुप्त अथवा किसी अन्य संकलनकर्ता ने पहले संकलित न किया था, इस संस्करण में दिए गए है (१०८)।

हरि सुअपहु पिअ चेरि
राहु गणि खाएब छाड़ल छन्दा ॥
भजहि तुरित धनि
नृपति शिरोमणि जेपरवेदन जाने ।

२७ संख्यक पद, पृ० ११ ख, पंक्ति ३, मालव राग में—

हरिरिपु वरद पए गृहरिपु ताहर कान हे
तासु भीमकत विरहें बेआकुल
से सुनि हृदयासाल हे ॥ध्रु०॥
सुन सुन्दरि तेज मान कुरु गमने
अनुदिने तणु खिनि तुहिन नहि जीनि
तुअ दरसने ना जीवने ॥
हरिरिपु असन ऐसन वरगोजिम मुचंसि
गोविजम गोविना
करे कपोल गहि सोदलि
सुन्दरि गोइ मिलल ससिहि कणा ॥
हरिरिपु नन्द प्रिया सहोदर
देइल तासु कामिनी ॥विद्यापतीत्यादि॥

१०८ संख्यक पद (पृ० २६ क, पंक्ति ३) धनछी राग में—

चान्द गगन रह आतुर तारागण सुर उगए परचारि ।
निचल सुमेरु आथक कनकाचल आनव कओने परचारि ॥
कन्हाइ नयन हँहल वनिवारि जे अलप।—ध्रु:
भणे विद्यापतीत्यादि ।

१६० संख्यक पद (पृ० ४७ क, पंक्ति ४) मालव राग में—

तोहि पटत वेक विकाहि लावए
एहि जग नही अउरु केइ दृष्टि आवए
सतयुग के दानि अरु करन बलि होए
गए हरि चन्द हे तिमरि वरुन पावए
दुज जह अछु

(१०८) पहली संख्या नेपाल पोथी की और दूसरी वर्त्तमान संस्करण के पदों की—२-५१०, ३५-३६८, ३६-५१६, ३७-५६७, ३६-२६६, ४०-५७१, ४३-४६६, ४६-५६५, ५२-५०४, ६२-५६१, ७४-५६३, ७८-५६२, ६०-५६४, ६१-५१८, ६२-३२७, ६४-३७२, ६६-४१२, १०१-४११, १०२-३७१, १०३-१६३, १०४-५८४, ११५-४१४, ११६-४५१, १२०-४१०, १२१-५१२, १२६-२४८, १४०-५६५, १५६-५६६, १६६-३६६, १२४-३१७, १६६-३६२, १६८-५६३, २०६-५६२, २०२-५८२, २०६-५६१, २१०-४१३, २२०-५०१, २२१-४, २२२-५५०, २३४-३१५, २६७-४०६, २४०-२५५, २४७-५८२, २५१-१२० २५३-३४५, २८३-४१५ ।

नगेन्द्र बाबू ने लिखा है "नेपाल की पोथी में विद्यापति के सिवा और किसी का पद नहीं हैं (साहित्य-परिषद् संस्करण, पृ० १०१)। पहले ही कहा जा चुका है कि यह सिद्धान्त युक्ति-संगत नहीं है, क्योंकि इसमें और भी १३ कवियों के १५ पद हैं। इन पदों में विद्यापति की भणिता नहीं है, "विद्यापतीत्यादि" शब्द लिखे हुए नहीं हैं; परन्तु अन्य कवियों की भणिता है। किन्तु अपना मत स्थापन करने में सुविधा के लिए नगेन्द्र बाबू ने उक्त पोथी की विष्णुपुरी लिखित ६० संख्यक पद, सिरिधर लिखित १४६ संख्यक पद, नृपमलदेव लिखित १७० संख्यक पद, अमृतकर वा अमिन्नकर लिखित १७५ और १७६ संख्यक पद और पृथिविचन्द लिखित २०४ संख्यक पद को छोड़ दिया है। अन्य कवियों द्वारा रचित ६ पदों को विद्यापति की रचना प्रमाणित करने के लिए उन्हें अनेक असम्भव कार्य करने पड़े हैं, यथाः—उन्होंने कंसनृपति लिखित ४१ संख्यक पद को अपने संस्करण के ७०८ पदरूप में छापने के समय "कंसनृपति भन धैरज कर मन पूरत सबे तुअ आस" वाले अंश को एकदम छोड़ ही दिया है, हालाँकि उन्होंने लिखा है कि यह पद उन्होंने केवल नेपालपोथी से पाया है। सन्देह हो सकता है कि उन्होंने नेपाल की एक पोथी देखी है—मैंने अन्य पोथी का फोटो देखा है। इस सन्देह को दूर करने के लिए मैंने नेपाल के शिक्षा-विभाग के तत्कालीन डायरेक्टर मृगांक शमशेर जंग बहादुर राणा को १९४३ ई० में पत्र लिखा। उन्होंने बतलाया कि नेपाल दरबार की लाइब्रेरी में विद्यापति के पदों की एक पोथी के सिवा कोई दूसरी न कभी थी और न अभी है। मैंने जिस पोथी का फोटो देखा है, उसी को नगेन्द्र बाबू ने व्यवहार किया था, इसका प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि स्थान स्थान पर उसमें आधुनिक बंगला अक्षर में कुछ कुछ लिखा हुआ है (यथा पोथी के ८६ पृष्ट में)। नेपाल पोथी की ४८ संख्या के पद की भणिता में है—

"आतम गवइ बड़े पुने पुनमत पबइ"

इस पद को नगेन्द्र बाबू ने अपने संस्करण के ८२७ संख्यक पदरूप में छापने के समय भणिता बदल कर छाप दिया है—

"कवि विद्यापति गवइ बड़े पुने पुनमत पवइ"।

इस जगह भी उन्होंने स्वीकार किया है यह पद उन्होंने केवल नेपाल पोथी में पाया है। नेपाल पोथी की २६६ संख्या के पद की भणिता—

"नरनारायण नागरा कवि धीरेसर भाने"

नगेन्द्र बाबू ने अपने संस्करण के ४३ संख्यक पदरूप में इसे छापते समय भणिता बदल दिया है—

"नरनारायण नागरा कवि धीरे सरस भाने"

एवं व्याख्या में कहा है— 'सरस कवि धीरे कहते हैं। सरस कवि=विद्यापति (पृ० २७)। नेपाल पोथी की २३० संख्या के पद के शेष में है—

"अइसन जे कविपञ्च से नहि करबे
कवि रुद्रधर एहु भाने"

नगेन्द्र वाबू ने इस पद को अपनी ५०१ संख्या के पद के रूप में छापते समय निम्नलिखित दो पंक्तियाँ और नीचे जोड़ दी हैः—

राजा शिवसिँह रुपनारायण
लखिमा देवी रमाने।

यहाँ भी उन्होंने स्वीकार किया है कि यह पद भी उन्होंने नेपाल की पोथी छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी नहीं पाया है। पद की व्याख्या में लिखा है—"विद्यापति के पद में रुद्रधर का नाम मिथिला की भी पोथी में पाया जाता है।" जहाँ जहाँ अन्य कवि के पदों को विद्यापति पर आरोप करने का प्रयोजन हुआ है, वहाँ वहाँ नगेन्द्र वाबू ने लिखा है कि कवि ने दूसरे आदमी का नाम देकर रचना की है। नेपाल पोथी की २२४ संख्या के पद की भणिता में हैः—

चन्द्रसिँह नरेस जीवओ
भानु जम्पए रे।"

नगेन्द्र वाबू ने उसे ३२२ संख्या के पदरूप में अविकल छाप कर व्याख्या में लिखा है—"स्वरचित पद की भणिता में विद्यापति ने अपना नाम न देकर भानु नामक किसी दूसरे आदमी का नाम दिया है।"

वहुत सी जगहों पर नगेन्द्र वावू ने केवल नेपाल पोथी से गृहीत पद में भी इच्छानुसार भणिता जोड़ दिया है। नेपाल पोथी की २५ संख्या के पद के नीचे है "विद्यापतीत्यादि", किन्तु वह साहित्य परिषत् के संस्करण में ६९७ पदरूप में निम्नलिखित भणिता के साथ छपा है—

भनइ विद्यापति गाओलरे
रस बुझए रसमन्ता
रूपनारायण नागर रे
लखिमा देवि सुकन्ता॥

नेपाल पोथी के १६९ पदों में भणिता का चरण छोड़ कर केवल "भने विद्यापतीत्यादि" अथवा केवल "विद्यापतीत्यादि" लिखा हुआ है। किन्तु साठ पदों में विद्यापति के नाम की सम्पूर्ण भणिता पद में दी हुई है (१०९)। इन साठ पदों में शिवसिँह का नाम तेरह पदों में है, वैद्यनाथ का नाम १ पद में

---

(१०९) प्रथम संख्या नेपाल पोथी की और दूसरी वर्त्तमान संस्करण कीः—१-२६८, १४-५७४, १६-६१, २०-१६२, २६-५३२, ४२-४५६, ४३-४६३, ४५-४४१, ४६-५६५, ५४-४५५, ५८-४५२, ५६-६००, ६१-५४८, ६२-५६१, ६६-२२४, ७७-३१०, ७६-३५, १०३-१६३, १०५-१७०, १०७-४३४, १०६-१८७, १११-३५६, ११३-१२५, ११४-४५, १२५-२६५, १३५-६१५, १४०-५६५, १४१-६१४, १४७-१५६, १४८-७०, १५३-४०५, १५५-२७७, १६५-५८५, १६६-१६८, १६७-७४, १७३-६६, १७६-४१८, १७८-३२५, १८०-१७७, १६०-५०, १६३-५१६, २०२-५८३, २१४-२६७, २१६-४८५, २१६-२३४, २३२-४८५, २३-४२, २३६-३३१, २४५-१७०, २४६-४८५, २५२-४७५, २५४-३८३, २५७-१६४, २६८-४६५, २१३-३०६, २७६-५६६, २७७-६०८, २७८-६०३, २८४-६०५

और वैजलदेव का नाम १ पद में। देवसिँह का नाम २२१ संख्या के पद में (वर्त्तमान संस्करण की ४ संख्या के पद में) है। तीन पदों में विद्यापति ने अपने नाम के साथ कवि कण्ठहार की उपाधि व्यवहृत की है और ४ पदों में अपने नाम का उल्लेख न कर भणिता में केवल कवि कण्ठ हार दिया है (११०)। सुतरां नेपाल पोथी से प्रमाणित होता है कि विद्यापति की उपाधि 'कवि कण्ठहार' थी।

(ख) मिथिला में प्राप्त पोथियाँ

(१) रागतरंगिणी

लोचन कवि कृत रागतरंगिणी में विद्यापति के ५१ पद पाये जाते हैं। इन पदों में से ९ नेपाल पोथी में और १ शिवनन्दन ठाकुर द्वारा संगृहीत रामभद्रपुर पोथी में पाये जाते हैं (१११)। नगेन्द्र बाबू ने यह कह कर शेषोक्त पद को छोड़ दिया है कि वह रागतरंगिणी में भणिताहीन रूप में संकलित हुआ है किन्तु रामभद्रपुर पोथी में उसके शेष चार चरण इस रूप में हैं:—

भनइ विद्यापति अरे रे वरयुवति
अनुभव पेम पुराना रे।
राजा सिवसिंह रुपनरायन
लखिमा देवि रमाना रे।

१९०९ ई० में नगेन्द्र बाबू ने विद्यापति ठाकुर की पदावली की भूमिका में लिखा था: "यह ग्रन्थ अभी तक छपा नहीं है, हस्तलिखित पोथी के आकार में मिथिला में पाया जाता है। प्रायः अढ़ाई सौ वर्ष पहले महेश ठाकुर के राजत्वकाल में लोचन नामक कवि द्वारा यह संकलित हुआ था" (पृ० ४६)। ग्रियर्सन साहब ने दरभंगा के वर्त्तमान महाराजाधिराज कामेश्वर सिँह बहादुर के पास जब उसकी खोज की तो पता लगा कि वह राज्य लाइब्रेरी में था किन्तु अब लापता हो गया है। तब मिथिला में विभिन्न स्थानों में खोजते खोजते इसका एक खंड पचचही ड्योढ़ी निवासी छन्द्रपति सिँह के पास मिला। यह प्रतिलिपि प्राचीन नहीं है, क्योंकि वह देवनागरी अक्षरों में लिखी हुई है। मिथिला की कोई प्राचीन पोथी देवनागरी अक्षरों में लिखी हुई नहीं है। जो हो, उसीका अवलम्बन करके १९३५ ई० में पण्डित

---

(११०) नेपाल पोथी के ४२, १११, और २४५ संख्यक पद में "कविकण्ठहार" उपाधि के साथ विद्यापति की भणिता पायी जाती है। केवल 'कविकण्ठहार' भणिता है, पद संख्या ३१, २१३, २८५ और २८६ में। केवल कण्ठहार भणिता ३८ संख्या के पद में है।

(१११) वर्तमान संस्करण की पद संख्या:—२५, ८२, २३३, ४६०, ८८, २०२, ४२, १३८, १०४। शेषोक्त पद वर्तमान संस्करण की १४२ संख्या के पदरूप में प्रकाशित हुआ है।

बलदेव मिश्र ने इस ग्रन्थ को दरभंगा राजप्रेस से प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में देखा जाता है कि लोचन ने मंगलाचरण के षष्ठ श्लोक में लिखा है—

"धीर श्रीमहिनाथ भूपतिलकः शास्तेधुना मैथिलान् ॥

सप्तम् और अष्टम् श्लोक में कवि ने लिखा है कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना महीनाथ के छोटे भाई नरपति की आज्ञा से की। कवि ने एक पद (पृ० ३५) की भणिता में लिखा है—

लोचनभन बुझ सरस विमलमति
मधुमति पति महिनाथ महीपति ॥

और एक पद (पृ० ४८) की भणिता में कहा है—

"लोचन भन उरवसि मनरंजक नृपनरपति रस जान

दरभंगा के वर्त्तमान राजवंश के प्रतिष्ठाता महेश ठक्कर, उनके पुत्र शुभङ्कर, उसके पुत्र सुन्दर और सुन्दर के पुत्र महीनाथ। लोचन ने यह परिचय अपने ग्रन्थ के तृतीय, चतुर्थ, पंचम और सप्तम श्लोक में दिया है। श्यामनन्दन सिँह के मतानुसार महेश ठाकुर ने १५६६ ई० में परलोक गमन किया एवं महीनाथ ने १६६८ से १६६० ई० तक राज्य किया (११२)। सुतरां लोचन कवि जिन्होंने अपने को द्विज कहा है मैथिल ब्राह्मण थे और सतरहवीं शताब्दी के शेषभाग में इन्होंने रागतरंगिणी की रचना की, इन बातों में सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन महाशय ने लिखा है कि लोचन पंडित का रागतरंगिणी नाम का एक ग्रन्थ—जिसमें विद्यापति के पद हैं—१६१८ ई० में पूना से पण्डित दत्तात्रेय केशव जोशी द्वारा प्रकाशित हुआ है। जोशी ने इस ग्रन्थ की पोथी एलाहाबाद में पायी थी। इस ग्रन्थ की पुष्पिका में कहा गया है कि लोचन लक्ष्मण सेन के पिता के समसामयिक थे (११३)। लक्ष्य करने की बात है कि नगेन्द्र बाबू ने १६०६ ई० में लोचन की रागतरंगिणी से बहुत से पद विद्यापति पदावली में उद्धृत किए थे और उसके नव वर्षों के बाद एलाहाबाद से—जहाँ महामहोपाध्याय गंगानाथ झा के समान मैथिल पंडित लोग थे—एक लोचन की रागतरंगिणी प्रकाशित हुई। श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन महाशय ने

(११२) श्यामनन्दन सिंह कृत History of Tirhut पृष्ठ-२१७

(११३) Vishva Bharati Quarterly. Nov-Jan. 1943-44

पृ० २५५-श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन कहते हैं कि Inclusion of Vidyapati's songs and Moslem Rajas led some people to believe that Lochana Pandit must have flourished in the 14th century. But the Pushpika Sloka would conclusively prove that the book dates back to a much earlier period (पृ० ऐ० २५१)

डा० नीहाररंजन राय बंगालीर इतिहास-आदि पर्व्व ग्रन्थ में (पृ० ७६७-६८) में कहते हैं। १०८२ शकाब्द-११६० ई० में बल्लाल सेन के राजत्व के पहले वर्ष में लोचन पण्डित ने रागतरंगिणी ग्रन्थ की रचना की; विद्यापति के गान अथवा इमन और फिरदोस्त राग प्रभृति परवर्त्तीकाल में इस ग्रन्थ में प्रक्षिप्त हुए हैं।

दरभंगा से प्रकाशित रागतरंगिणी सम्भवतः देखी नहीं और मैंने पूना से प्रकाशित ग्रन्थ नहीं देखा। सुतरां जोशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त अभी नहीं दिया जा सकता है।

जो कुछ भी हो, नगेन्द्र वावू ने रागतरंगिणी मिथिला में पायी थी और मैंने जो मुद्रित ग्रन्थ पाया है वह भी मिथिला की पोथी से प्रकाशित है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि मुद्रित रागतरंगिणी में जिन सब पदों की भणिता में स्पष्टतः दूसरे कवियों का नाम है, उन्हें भी नगेन्द्र वावू ने विद्यापति की भणिता में चला दिया है। कई एक उदाहरण दिए जाते हैं।

(१) नगेन्द्र वावू का ४८४ संख्यक पद रागतरंगिणी और तालपत्र पोथी से लिया गया है। यह पद रागतरंगिणी (पृ० ६७) के अनुसार जशोधर नव कविशेखर की रचना है यह भूमिका में पहले दिखलाया जा चुका है।

(२) नगेन्द्र वावू के १६ संख्यक पद की भणिता—

भणइ विद्यापति गावे
वड़ पुने गुणमति पुनमत पावे ॥

यह पद रागतरंगिणी में (पृ० ७६) निम्नलिखित भणिता के साथ है—

कवि रतनाई भाने।
संक कलंक दुअओ असमाने ॥

रागतरंगिणी में (पृ० १०५) कवि रतन का एक और पद है।

(३) नगेन्द्र वावू के ६४२ संख्यक पद की भणिता

विद्यापति कवि भान।
अचिर होयत समाधान ॥

रागतरंगिणी की (पृ० ८०) की भणिता—

प्रीतिनाथ नृप भान।
अचिरे होयत समाधान ॥

(४) नगेन्द्र वावू ने स्वीकार किया है उन्होंने अपना १२६ संख्यक पद रागतरंगिणी से लिया है। रागतरंगिणी (पृ० ८०) की भणिता—

भवानी नाथ हेन भाने
नृप देव जत रस जाने
नव कान्ह लो ॥

नगेन्द्र वावू ने इसे बदल कर बना दिया है—

कवि विद्यापति भाने
नृप शिवसिंह रस जाने
नव कान्ह लो ॥

(५) रागतरंगिणी का (पृ० ६८) "धैरजकर धरणीधर भान" वाला पद नगेन्द्र बाबू ने अपने ७६२ संख्यक पदरूप में ग्रहण किया है और भणिता में दिया "धैरजधरु विद्यापति भान।"

(६) नगेन्द्र का ५६ संख्यक पद रागतरंगिणी (पृ० १००) से लिया गया है, परन्तु भणिता का "गोविन्द वचन सारे" बदल कर उन्होंने" विद्यापति वचन सारे" कर दिया है।

(७) नगेन्द्र बाबू के ६० संख्यक पद की भणिता में है—

सुकवि भनथि कण्ठहार रे

किन्तु रागतरंगिणी में इस पद की भणिता है (पृ० १६१)—

प्रणवि जीवनाथ भाने।

(८) नगेन्द्र बाबू के ५७६ संख्यक पद की भणिता—

विद्यापति कविवर एह गाव।
सकल अधिक भेल मन्मथ भाव॥

रागतरंगिणी (पृ० ११५) में इस पद की भणिता—

रसमय श्यामसुन्दर कवि गाव।
सकल अधिक भेल सननथ भाव॥
कृष्ण नारायण—इ रस जान।
कमला रति पति गुणकनिधान॥

(९) रागतरंगिणी के (४८ पृ:) "उपमित्र आनन" प्रभृति पद के नीचे लोचन ने लिखा है—"इत्यादि राज्ञः श्रीनिवास मल्लस्य", किन्तु यह स्वीकार करते हुए भी कि उन्होंने यह पद इसी ग्रन्थ से लिया है उसे विद्यापति का पद कह कर छापा है।

(१०) नगेन्द्र बाबू का १६ संख्यक पद रागतरंगिणी से लिया गया है—

इस पद की भणिता में उन्होंने छापा है—

भनइ विद्यापति एहु परब पुन तइ
ऐ सनि भजए रसमन्त रे।
बुझए सकल रस नृप सिवसिंघ
लखिमा देइ कर कन्त रे॥

किन्तु रागतरंगिणी में (पृ० ७२) उसका यह रूप है—

गजसिंह भन एहु पुरब पुनतइ
ऐ सनि भजए रसमन्त रे।
बुझए सकल रस नृप पुरुषोत्तम
असमतिदेइकेर कन्त रे॥

वस्तुतः नगेन्द्र बाबू ने रागतरंगिणी में उद्धृत सिंहभूपति (रागतरंगिणी) पृ० ६० न० गु० ३५८), (ऐ० पृ: ७४-७५, न० गु० १७५), लछमिनारायण (ऐ० पृ० ६५, न० गु० ८२६), गजसिंह (ऐ० पृ० ६८, न० गु०, ६३५) (ऐ० पृ० ७२, न गु० १६), नृपसिंह (ऐ० पृ० ७३-७४, न० गु० ६४), कवि रतनाई (ऐ० पृ० ७६-७७, न० गु० १६), प्रीतिनाथ (ऐ० पृ० ८०, न० गु० ६४२), अमिअकर (ऐ० पृ० ८४, न० गु० ३१७), भवानीनाथ (ऐ० पृ० ६५, न० गु० १२६), धरणीधर (ऐ० पृ० ६८ न० गु० ७६२), गोविन्द दास (ऐ० पृ० १००, न० गु० ५६) (ऐ० पृ० १०१-२, न० गु० ५२३) और श्री निवासमल्ल रचित पदों को विद्यापति पर आरोप कर दिया है। उनके ६४१ संख्यक पद के नीचे मिथिला का पद लिखा हुआ है एवं भणिता में

"भनइ विद्यापति ओरे सहि लेह
सुपुरुस वचन पसान रेह"

है; उसे हमलोगों ने अपने ४४५ संख्यक पदरूप में छापा है। किन्तु अब रागतरंगिणी के ६७-६८ पृष्ठों में उसके शेष चार चरण पाते हैं:—

से सवे विसरु आवे रे रे की हेतु।
मरओ मधथ हेमकर केतु॥
कवि कुमुदी कह रे रे
थिर रह सुपुरुष वचन पसान रेह॥

पाठकगण कृपया हमलोगों का ४४७ वाँ पद छोड़ कर पढ़ें और कृपया उसे काट दें।

रागतरंगिणी से उद्धृत विद्यापति के ५१ अकृत्रिम पदों में से तीन में विद्यापति की भणिता नहीं है, किन्तु लोचन ने 'इति विद्यापतेः' लिखा है। ३६ पदों में विद्यापति का नाम है। दो पदों में कण्ठहार भणिता है, एवं उसके साथ शिवसिंह का उल्लेख है।

(२) रामभद्रपुर की पोथी

रामभद्रपुर की पोथी के आविष्कारक थे, पण्डित विष्णुलाल झा शास्त्री। इन्होंने बिहार-उड़िसा रिसर्च सोसाइटी के अधीन अनेक मैथिल पोथियों का संग्रह किया। दरभंगा जिला के रामभद्रपुर में इस पोथी को पाकर इन्होंने स्वर्गीय पण्डित शिवनन्दन ठाकुर एम० ए० को खबर दी। ठाकुर महाशय ने इसे उधार लेकर करीब दस महीने तक इसका अध्ययन किया एवं १९३८ ई० के जून मास में "विद्यापति विशुद्ध पदावली" ग्रन्थ में उसे प्रकाशित किया। उनकी मृत्यु के बाद लहेरियासराय के "पुस्तक भण्डार" द्वारा उनके "महाकवि विद्यापति" शीर्षक ग्रन्थ के द्वितीय भाग में ये पद फिर प्रकाशित हुए। १९४८ ई० में पण्डित विष्णुलाल शास्त्री महाशय ने पोथी रामभद्रपुर से लाकर पटना कॉलेज के अध्यापक डा० कालीकिंकर दत्त महाशय को दिया और उन्होंने मुझे इसे व्यवहार करने देकर अनुगृहीत किया।

पोथी में चार लिपिकरों के हस्ताक्षर देखे जाते हैं। वह तालपत्र पर लिखी है, परन्तु सब तालपत्र एक समान प्राचीन नहीं हैं। किन्तु कोई अक्षर अथवा तालपत्र दो सौ वर्षों से कम का नहीं है। मैंने यह पोथी डा० अनन्त प्रसाद वन्द्योपाध्याय को दिखलाई और उन्होंने भी मेरे मत का समर्थन किया। पोथी खण्डित है। पोथी के दसवें पत्र में २८ संख्यक पद पहले ही पाया जाता है। शेष पद की संख्या ४१८ और शेष पत्र की संख्या १२१। परन्तु अब ३५ से अधिक पत्र नहीं मिलते। सुतरां यदि अनुमान कर लिया जाए कि १२१ पत्रों में ही पोथी समाप्त हुई थी, तथापि कहना पड़ेगा कि इसमें सैकड़े उनतीस भाग पाया गया है। इस समय पोथी में ६३ पद पाये जाते हैं, उनमें से ८६ पदों को शिवनन्दन ठाकुर महाशय ने प्रकाशित किया है। पोथी में देखते हैं कि ८३, ८४, ८५, १६१, १८६ एवं १८८ संख्यक पदों के अधिकाँश का पाठोद्धार होने पर भी, ठाकुर महाशय ने उनका परित्याग कर दिया है। उन्होंने ४१० संख्यक पद को भी, उसका पाठोद्धार न कर सकने के कारण, छोड़ दिया है; किन्तु इस पद में विद्यापति की भणिता के साथ कुमार अमरसिंह का नाम उल्लिखित रहने के कारण उसका एक ऐतिहासिक मूल्य है। नगेन्द्र बाबू की तरौणी की तालपत्र पोथी में

भन विद्यापति रितु वसन्त
कुमर अमर ज्ञानोदेइ कन्त ॥

भणितायुक्त एक और पद है।

रामभद्रपुर पोथी के १२ पद नेपाल की पोथी में पाये जाते हैं (११४)। इस पोथी का ३०५ संख्यक पद रागतरंगिणी के पृष्ठ ५४-५५ में कुछ पाठान्तर के साथ पाया जाता है; किन्तु रागतरंगिणी में भणिता नहीं है एवं विद्यापति की रचना का कोई निर्देश भी नहीं है। इसलिए नगेन्द्रबाबू ने इसे अपने संस्करण में नहीं लिया। रामभद्रपुर पोथी में उसकी भणिता—

भनइ विद्यापति अरे रे वरयुवति
अनुसअ पेम पुराना रे।
राजा सिवसिंह रुपनराएन
लखिमा देवि रमाना रे ॥

वर्त्तमान संस्करण के १६१ संख्यक पदरुप में यह मुद्रित हुआ है। यदि रामभद्रपुर पोथी नहीं मिलती तो कोई नहीं जानता कि यह सुन्दर पद विद्यापति की रचना है।

रामभद्रपुर पोथी के ६३ पदों में से ६० में विद्यापति की और २ में अमियकर की भणिता है। शेष ३१ पदों में से ४, नेपाल पोथी से जाना जाता है कि, ये विद्यापति की रचना हैं और एक दूसरा

---

(११४) प्रथम संख्या नेपाल पोथी के पद और द्वितीय संख्या वर्त्तमान संस्करण की है—१-२६८, ४२-४५६, ४४-२७२, ५५-३३६, ६२-४६१, ६७-१३४, ८०-५४३, १०६-१४७, ११६-५५, १२६-३५१, २३०-८१, २३६-२२१।

नगेन्द्रनाथ गुप्त की तालपत्र पोथी में विद्यापति की भणिता से युक्त पाया जाता है (न० गु० २२७)। अन्य २६ पदों के बारे में कोई प्रमाण नहीं है कि वे विद्यापति की रचना हैं। स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने मान लिया था कि रामभद्रपुर पोथी में जितने पद हैं वे सब विद्यापति की रचना है। किन्तु यह बात यदि ठीक होती तो अमियकर की भणिता से युक्त दो पद (३६८ और ४१३ संख्यक) इसमें नहीं रहते। प्रथमोक्त पद की भणिता में है—

भनइ अमृत अनुरागे
कपटे कुसुमसर कौतुके गावे।
जसभादेवि रमाने
भैरवसिंह भूप रस जाने॥

विद्यापति ने भैरवसिंह को "दुर्गाभक्ति तरंगिणी" उत्सर्ग की थी, किन्तु किसी पद में उनके नाम का उल्लेख नहीं किया है। अमृत या अमियकर के २ पद नेपाल पोथी में दो रामभद्रपुर पोथी में और एक रागतरंगिणी में पाये गये हैं। नगेन्द्र गुप्त महाशय ने भी नेपाल पोथी में प्राप्त अमियकर के दो पदों को विद्यापति पर आरोप करने का साहस नहीं किया है।

(३) तरौणी की तालपत्र-पोथी

नगेन्द्रनाथ गुप्त महाशय ने साहित्य-परिषत् संस्करण की भूमिका में लिखा है :—"राजकर्म के सम्बन्ध में दरभंगा में रहते हुए श्रीयुक्त मोहिनी मोहन दत्त ने इस पोथी को प्राप्त किया। मैंने इसे उन्हीं के पास पाया। यह पोथी और विद्यापति की हस्तलिखित भागवत-पोथी तरौणी ग्राम में लोकनाथ झा के घर में रखी थीं।" किन्तु समस्तीपुर के सुप्रसिद्ध घोष वंश के रायबहादुर कैप्टेन राधिका प्रसाद घोष और उनके भाई रायबहादुर रामचरण घोष जिस समय (१९४२ ई०) में पटना में क्रमशः मेडिकल कॉलेज अस्पताल के सुपरिन्टेन्डेन्ट और शिक्षा-विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी के पद पर अधिष्ठित थे, तब मैंने उनसे सुना था कि देवघर-निवासी विद्यापति-वंशीय किसी ब्राह्मण ने यह पोथी उनके पितामह [illegible] विपिन बिहारी घोष को प्रदान किया था। समस्तीपुर के तत्कालीन मुन्सिफ मोहिनीमोहन दत्त ने इसे उनके चाचा पूर्णचन्द्र घोष से उधार माँग कर कलकत्ता हाईकोर्ट के विचारपति सारदाचरण मित्र महोदय को दिया और सारदाबाबू ने नगेन्द्र बाबू को इसे व्यवहार करने दिया। साहित्य परिषत् के संस्करण के प्रकाशन के बाद नगेन्द्र बाबू ने इसे कलकत्ता विश्वविद्यालय की पोथीशाला को प्रदान कर दिया; किन्तु जब वे विद्यापति की पदावली का वसुमती संस्करण प्रकाशित करने लगे तो इस पोथी का पता न पा सके। इस तरह से विद्यापति की पदावली की एक मूल्यवान आकर पोथी लोगों की आँखों से अन्तर्हित हो गयी।

नगेन्द्र बाबू ने लिखा है कि इस पोथी में प्राय: ३५० पद थे (भूमिका-पृ० ४३) एवं उसमें विद्यापति के अलावा और किसी का पद नहीं है (पृ० १०१)। वसुमति संस्करण की भूमिका में उन्होंने कहा है कि इस पोथी में दिये गये विद्यापति के समस्त पदों को उन्होंने प्रकाशित किया है। उनके साहित्य परिषत् के संस्करण में जिन पदों के नीचे "तालपत्र की पोथी" आकररूप में लिखी हुई है उसको गिनने से हम पाते हैं कि उन्होंने तरौणी पोथी से २३६ पद लिए हैं। सुतरां, कहना पड़ता है कि अन्य कवियों की रचना समझ कर उन्होंने सौ से भी अधिक पदों का परित्याग किया था। इस पोथी में दिये सब पद विद्यापति की रचना नहीं है, इस बात का प्रमाण नगेन्द्र बाबू ७८३ संख्यक पद में छोड़ गये हैं। इस पद की भणिता है—

भने पंचानन औखद आनन
विरह मन्द व्याधि।
जतहि पार्वति हरि दरसन
ततहि तेजति आधि॥

यह जोर देकर कहा जा सकता है कि यह पंचानन नाम के किसी कवि की रचना है। नगेन्द्र बाबू का ३५५ संख्यक पद तालपत्र पोथी से लिया हुआ है, किन्तु उक्त पद उमापति कृत पारिजात हरण नाटक में पाया जाता है। इस बात में मतभेद है कि उमापति विद्यापति के पहले थे या बाद में हुए थे। १८८४ ई० में Asiatic Society Journal (Part I) में ग्रियर्सन ने इस पद को उमापति कृत बतलाया है।

तरौणी की पोथी के पदों का विश्लेषण करने से पता लगता है कि उसमें से नगेन्द्र बाबू द्वारा लिए गए २३६ पदों में १०३ में कवि के पृष्ठपोषकों के नाम का उल्लेख है, १०१ की भणिता में विद्यापति का नाम है, किन्तु किसी राजा का नाम नहीं है; ३१ पदों में किसी प्रकार की भणिता नहीं है, अतएव इनके बारे में यह निःसंशय रूप में नहीं कहा जा सकता है कि ये विद्यापति की रचना हैं।

(ग) बंगाल की प्राचीन पद-संग्रह पोथियों में विद्यापति के पद

(१) क्षणदागीतचिन्तामणि

आजकल के प्रचलित समस्त पदसंग्रह-ग्रन्थों में सुप्रसिद्ध गौड़ीय वैष्णवशास्त्रकार विश्वनाथ चक्रवर्त्ती की 'क्षणदागीतचिन्तामणि" प्राचीनतम है। विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ने १७०५ ई० में श्रीमद्भागवत की टीका की रचना समाप्त की। सुतरां, यह अनुमान किया जा सकता है कि "क्षणदागीतचिन्तामणि" अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही संकलित हुई थी। इस संकलन में केवल ३१५ पद हैं; उनमें से अनेक उनकी अपनी रचना हैं। पदकर्त्ता के हिसाब से उन्होंने हरिवल्लभ भणिता व्यवहार किया है। सुप्रसिद्ध पदकल्पतरु के सम्पादक सतीशचन्द्र राय महाशय ने लिखा है—"अपने 'वल्लभ" भणिता के पदों में श्लिष्ट "वल्लभ" शब्द की सहायता से उन्होंने श्रीराधावल्लभ श्रीकृष्ण और 'वल्लभ' नामक

पदकर्त्ता-दोनों अर्थ समझाया है। किन्तु विद्यापति के सम्पादक नगेन्द्र बाबू ने 'वल्लभ" शब्द का शोपोक्त अर्थ न समझ कर पदों को भणिताहीन लावारिस माल समझ कर विद्यापति की पदावली में अन्तर्भुक्त कर दिया है" (पदकल्पतरु भूमिका, पृ० २३१)। विश्वनाथ चक्रवर्त्ती के आठ पदों में स्पष्टरूप से वल्लभ भणिता रहने पर भी नगेन्द्र बाबू ने इन्हें विद्यापति की रचना कह कर चला दिया है (११५)। और भी आठ भणिताहीन पदों को क्षणदागीतचिन्तामणि से लेकर उन्होंने उन्हें विद्यापति की पदावली में रख दिया है (११६)। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि ये पद विद्यापति की रचना हैं। क्षणदागीतचिन्तामणि का जो संस्करण श्रीधामवृन्दावन के देवकीनन्दन प्रेस से नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी द्वारा प्रकाशित हुआ है, उनमें पद इतने विकृतरूप में छापे गए हैं कि उनसे किसी रूप में पाठान्तर प्रदान करना हमने उचित नहीं समझा।

(२) पदामृतसमुद्र

"पदामृतसमुद्र' के संकलनकर्त्ता राधामोहन ठाकुर इतिहास-प्रसिद्ध महाराज नन्दकुमार के गुरुदेव थे। ठाकुर महाशय श्रीनिवास आचार्य प्रभु के वृद्ध (great-great grandson) प्रपौत्र थे। अनुमान है कि अठारहवीं शताब्दी के मध्यभाग में उन्होंने इस ग्रन्थ का संकलन किया। इसमें ७४६ पद हैं; इनमें उनके अपने रचित पदों की संख्या २२८ और गोविन्द दास की २७०। बंगला पदों की वे संक्षिप्त और रसपूर्ण टीका संस्कृत में कर गये हैं।

पदामृतसमुद्र में विद्यापति की भणिता से युक्त ६४ पद पाये जाते हैं। राधामोहन ठाकुर महाशय के पाण्डित्य और रसबोध से जो पद परीक्षित होकर रसोत्तीर्ण हुए हैं, वे उत्कृष्ट पद हैं, इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु कुछ पदों में मैथिल शब्दों के बदले बंगला शब्दों का प्रयोग देखा जाता है; कुछ पद मानों कीर्त्तन-गान बनाने के लिये तोड़ कर छोटे और बंगाली श्रोताओं के सहजबोध्य बनाये गये हैं। बहरमपुर के रामनारायण विद्यारत्न महाशय के संस्करण में बहुत सी छापे की भूलें हैं; अतएव उनका व्यवहार न करके हमने पण्डित बाबाजी महोदय की पोथी से पाठान्तरादि दिया है।

नेपाल और मिथिला की प्राचीन पोथियों में पाये जाते हैं (११७)। बाकी १४७ पद केवल बंगाल में पाये गये हैं, अन्यत्र कहीं नहीं। इनमें "चिरचन्दन उरे हार न देला," "एभर बादर, माह भादर, शून्य मन्दिर मोर," "तातल सैकत-वारि बिन्दुसम" "माधव बहुत मिनति करो तोय" प्रभृति भावघन पद केवल बंगाल में ही संरक्षित किये गये थे। श्री चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों का आस्वादन करके परम आनन्द पाते थे, इसलिए बंगाली भक्तों ने चुनचुन कर इन सबों की सयत्न रक्षा की है। कीर्त्तनिया गायकों के द्वारा गाने जाने के समय इनमें बहुत परिवर्त्तन हो गये थे, जो सब शब्द बंगाल में एकदम अप्रचलित थे अथवा जिनका अर्थ समझने में बंगाली श्रोताओं को कष्ट होता था, उन शब्दों और पद-विन्यास के बदले में इन कीर्त्तनियों ने ज़रा भी हिचकिचाहट न की।

पदकल्पतरु का विद्यापति की भणिता से युक्त प्रत्येक पद मिथिला के कवि विद्यापति की रचना है ही, यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता है। हमारे नगेन्द्र बाबू के समान उत्साही संग्रहकर्त्ता भी शुद्ध बंगाली पदों में से निम्नलिखित पांच पदकल्पतरु के पदों को अपने संग्रह में स्थान न दे सके—

शुन लो राजार झि
तोरे कहिते आसियाछि।
कानुहेन धन पराने बधिलि
ए काज करिला कि॥
वेलि अवसान काले
कबे गियाछिला जले
ताहारे देखिया इषत हासिया
धरिलि सखीर गले॥
देखाइया वयान-चान्दे
तारे फेलिलि विषम फान्दे
तुहुँ तुरिते आओलि लखिते नारिलो
ओइ ओइ करि कान्दे॥
हृदय दरशि थोर
तार मनि करि चोर
विद्यापति कह शुन ल सुन्दरि
कानु जियायबि मोर॥ पदकल्पतरु २१५॥

---

(११७) इन चौदह पदों की पदकल्पतरु की संख्या और मित्र-मजुमदार संस्करण की संख्या ये हैं:—
८०-२३५, ११२-६७५, १६३-२३५, २०७-२२१, २५४-४६६, ७४०-२८६, ८५५-२५०, १०६१-२६, १०८१-५०२, १०६५-४६८, १२२६-२२, १६८३-५४६, १८७६-१७७, १६४३-५५४।

(२)

आजि केने तोमा एमन देखि ।
सघने ढुलिछे अरुण आंखि ॥
अंग मोड़ा दिया कहिछ कथा ।
ना जानि अन्तरे कि भेल बेथा ॥
सघने गगने गनिछ तारा ।
देव-अवघात हैयाछे पारा ॥
यदि वा ना कह लोकेर लाजे ।
मरमि जनार मरमे बाजे ॥
आंचरे कांचन झलके देखि ।
प्रेम कलेवर दियाछे साखी ॥
विद्यापति कहे ए कथा दृढ़ ।
गोपत पिरिति विषम बड़ ॥ पदकल्पतरु २२६ ।

(३)

सजल नयन करि पिया-पथ हेरि हेरि
तिल एक हये युग चारि ।
बिहि बड़ दारुण तांहे पुन ऐछन
दूरहि करल मुरारि ॥
सजनि कीये करब परकार ।
कि मोर करम फले पिया गेल देशान्तरे
निति निति मदन-मझार ॥
नारीर दीघनिश्वास पड़ुक ताहार पाश
मोर पिया यार पाशे बैसे ।
पाखी जाति नहि हणो पिया पाशे उड़िया जाओ
मन दुख कहों तहु पाशे ॥
सजनि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] ।
विद्यापति [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] ॥ पदकल्पतरु [illegible] ।

(४)

गगने गरजे घन फुकरे मयूर।
एकलि मन्दिरे हाम पिया मधुपुर॥
शुन सखि हामारि वेदन।
बड़ दुख दिल मोरे दारुण मदन॥
हामारि दुख सखि को पातियाओये।
मिलल रतन किये पुन विघटाओये॥
हरि गेओ मधुपुरि हाम एकाकिनी।
झरिया झरिया मरि दिवस रजनी॥
निंद नाहि आओये शयन नहि भाय।
बरिख अधिक भेल निशि न पोहाय॥
विद्यापति कह शुन वरनारि।
सुजनक दुख दिवस दुइ चारि॥ पदकल्पतरु १७३२।

(५)

एमन पियार कथा कि पुछसि रे सखि
पराण निछिया दिये।
गड़येर कुटागाछि शिरे ठेकाइया
आलाइ वालाइ तार निये॥
हात दिया दिया मुखानि माजिया
दीप निया निया चाय॥
दारिद येमन पाइया रतन
थुइते ठाञि न पाय॥
हियार उपरे शोयाइया मोरे
अवश होइया रय।
ताहार पिरिति तोमार एमति
कवि विद्यापति कय॥ पदकल्पतरु २५२५।

इन सब पदों में विद्यापति का नाम स्पष्टतः रहने पर भी ये सब पद मिथिला के विद्यापति के नहीं हैं। ये सब किसकी रचना है, इसका विचार 'बंगाली विद्यापति' शीर्षक में करूँगा।

इन सब पदों को छोड़ कर सुविवेचना का काम तो नगेन्द्र बाबू ने किया, किन्तु कई एक पदों के समय अनुरूप विचारबुद्धि का परिचय उन्होंने नहीं दिया है:— यथा पदकल्पतरू के मृदंग की बोल के पद्यरूप १५०२ संख्यक पद ने भी उनके संस्करण में ६१० संख्यक पद के रूप में स्थान पाया है।

(पण्डित बावाजी महोदय की पोथी का १५४ वाँ पत्र) इन दोनों चरणों को निम्नलिखित पद में अन्तर्भुक्त कर दिया है—

भाटियारि राग रुपकताल मेंः—
दारुण वसन्त यत दुख देल।
हरि मुख हेरइते सब दूरे गेल॥
यतहुँ आछिल मोर हृदयक साध।
से सब पूरल हरि परसाद॥
कि कहब रे सखि आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर॥ध्रु॥
रभस आलिंगने पुलकित भेल।
अधर कि पाने विरह दूर गेल॥
भनलु विद्यापति आर नह आदि।
समुचित औखदे ना रहे वेयाधि॥

नगेन्द्र बाबू ने अपने ८१० संख्यक पद में इस पाठ को किंचित परिवर्त्तन करके ग्रहण किया है। पदकल्पतरु के १९९७ संख्यक पद में उक्त दो चरण छोड़कर इसके और सब चरण हैं। सुविज्ञ राधामोहन ठाकुर महाशय ने पदकल्पतरु के १९९५ संख्यक पद की केवल दो कलियों को ग्रहण किया है। उन्होंने "समुचित ओखद ना रहे वेआधि" लिखने के बाद नूतन पद आरम्भ किया है—

तिरोतिया (अर्थात् तिरहुत के) राग रुपक तालाभ्यां

आर दूरदेशे हाम पिया ना पाठाउ
आचर भरिया यदि महानिधि पाउ।

इन दो चरणों के बाद फिर एक नूतन पद का आरम्भ हुआ है। इससे समझा जाता है कि विद्यापति के पदों में बंगाल में जो मिश्रण हुआ था, ठाकुर महाशय ने यथा सम्भव उसका परिहार किया है। वैष्णवदास और नगेन्द्र बाबू ऐसी विचार-बुद्धि नहीं दिखला सके हैं।

संकीर्त्तनामृत

देशबन्धु चित्तरंजन दास ने इस पद-संग्रह पोथी का संग्रह किया था। पोथी का लिपिकाल १६९३ शकाब्द वा १७७१ ई०; संकलन कर्त्ता दीनबन्धु दास। उन्होंने अपना आत्मपरिचय दिया है—

प्रपितामहेर नाम श्री ठाकुर हरि।
तार पादपद्मधूलि निज शिरे धरि॥
पितामह ठाकुर नाम श्री नन्द किशोर।
ताँहार करुणाबले हेन इच्छा मोर॥
पिता श्री बल्लवी कान्त ठाकुरेर दया।
सेइ बले लिखि आमि भक्ति शक्ति पाञा॥

वे श्रीखंड के नरहरि सरकार ठाकुर के शिष्यशाखाभुक्त थे। उन्होंने ४० कवियों के रचित ४६१ पदों का संग्रह किया। इनमें विद्यापति के रचे हुए १० पद हैं। परन्तु ऐसा समझने का यथेष्ट कारण है कि उनके ४६७ और ४६८ संख्यक पद बंगाली विद्यापति की रचना हैं।

कीर्त्तनानन्द

कीर्त्तनानन्द से नगेन्द्र बाबू ने अनेक पद लिए हैं। उनमें से बहुतों में तो कोई भणिता नहीं है, परन्तु इनमें से बहुतों को उन्होंने विद्यापति के पद मान लिए हैं। कीर्त्तनानन्द अर्वाचीन पद-संग्रह है; उसके संग्रहकर्त्ता का नाम-धाम नहीं पता लगता, इसकी कोई किसी प्राचीन पोथी भी नहीं पायी जाती। १२७२ बंगाब्द में (१८२६ ई०) लिखी पोथी के आधार पर बनवारी लाल गोस्वामी ने इस ग्रंथ को मुर्शिदाबाद हितैषी प्रेस से प्रकाशित करवाया। कीर्त्तनानन्द में सब मिला कर कुल ६५६ पद हैं, उनमें विद्यापति की भणिता से युक्त पदों की संख्या ५८ है।

पण्डित बाबाजी महोदय की पोथी

मैंने अपने नाना नित्यधामगत अद्वैतदास पण्डित बाबाजी महोदय की स्वहस्त लिखित विद्यापति संग्रह की खण्डित पोथी पाकर उसे बांध कर रखा है। यह अभी तक प्रकाशित न हो पायी है, यों आठ नये पद उसमें पाये गए हैं जिन्हें इस संस्करण में यथा स्थान सन्निविष्ट किया है।

वर्ण और मज्जागत इतना वैलक्षण्य दृष्टिगत होता है कि उस समुदाय को एक ही कवि की रचना किसी मत से भी मानी नहीं जा सकती है। विद्यापति का नामयुक्त कोई पद परित्याग न करने पर भी संकलनकार का कर्त्तव्य है कि वह सम्भव-असम्भव के संबन्ध में प्रमाणादि और युक्ति प्रयोग के सिद्धान्त से मानने योग्य एक रास्ता खोल दे एवं यह निर्देश करे कि विद्यापति का स्वातंत्र्य किस प्रकार निरुपित हो सकता है। भ्रष्टलक्ष्य संकलनकारों ने नानाविध अवान्तर प्रसंगों की अवतारणा की है। कवि के अनुकरण के प्राचुर्य्य से संकलनकार कुछ संशय में पड़ सकते हैं। विद्यापति का जितना अनुकरण हुआ था, लगता है कि उतना अनुकरण किसी भी देश में किसी कवि का न हुआ" (भूमिका पृष्ठ ५३)।

नगेन्द्र बाबू ने स्वयं जिस सिद्धान्त की स्थापना की थी, यदि पदावली के संकलन में वे उसका अनुसरण करते तो हमें उनके निर्वाचित २०३ पदों का परित्याग नहीं करना पड़ता। उनके जिन पदों को विद्यापति की रचना मानना हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं उनकी एक तालिका इस भूमिका के शेष में निर्घण्टरुप में दी गयी है। विशाल पदावली साहित्य में बहुत से पदों का रचयिता कौन है, यह भी पता नहीं लगता। आठरहीं शताब्दी तक के समय में जो पद-संग्रह की पोथियां संकलित हुई थीं, उनमें किसी में, कहीं भी, विद्यापति की रचना का इशारा न रहने पर, केवल भाषा, भाव और छन्द का मेल देख कर किसी पद को विद्यापति की अकृत्रिम रचना नहीं माना जा सकता है, क्योंकि नगेन्द्रबाबू ने स्वयं कहा है कि विद्यापति के अनुकरण में बहुत से पद रचे गए थे। ऊपर जिस तालिका की बात कही है उससे पता लगेगा कि उन्होंने ५१ भणिताहीन अथवा अज्ञात कवियों के पदों को विद्यापति पर आरोप कर दिया है।

उनकी 'विद्यापति ठाकुरेर पदावली' के अनेक पद बहुत से सुविज्ञ पण्डितों के मन में संशय की सृष्टि करते हैं। पदकल्पतरु के सम्पादक सतीशचन्द्र राय महाशय ने १९३१ ई० में लिखा था—"प्रायः चालिस वर्ष व्यापी संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और मैथिल साहित्य और भाषातत्व के अनुशीलन के फलस्वरुप जो हमें सामान्य ज्ञान हुआ है, उसीसे समझ सकता हूँ कि विद्यापति के पद-विन्यास, पाठ-निर्णय और अर्थ-निर्णय में नगेन्द्र बाबू के संस्करण में भी सौ से अधिक मारात्मक भूलें रह गयी हैं (पदकल्पतरु की भूमिका, पृ० १६६)। बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय १९२७ ई० में Journal of the Department of Letters, Calcutta University, सोलहवें खण्ड में कहते हैं, "All songs bearing the भणिताs of शेखर, कविशेखर, रायशेखर, वल्लभ, कविवल्लभ, भूपति, सिंहभूपति, भूपतिनाथ, कविरंजन, कविकण्ठहार, कण्ठहार, जयदेव, अभिनव जयदेव, दश अवधान, पंचानन, रविवर शेखर, चम्पति, चम्पतिपति, सरल, सरसकवि, सरसराम, लखिमिनाथ (No. 163), कंस नारायण, रुद्रधर, राजपण्डित and others have been indiscriminately absorbed in Mr. Gupta's compilation of Vidyapati's songs (पृ० ५२)।

(क) ग्रियर्सन के संगृहीत पद

वर्त्तमान युग में जिस प्रकार बंगाल में सारदाचरण मित्र महाशय ने विद्यापति के पद-संग्रह की पहली चेष्टा की, उसी प्रकार मिथिला में ग्रियर्सन साहेब ने सारदा बाबू के ग्रन्थ प्रकाशन के ६ वर्ष बाद १८८१-८२ ई० में An introduction to the Maithily Language of North Bihar, containing a Grammar. christomathy and vocabulary नामक ग्रन्थ में विद्यापति के ८२ पदों को लोगों के मुख से सुन कर संग्रह किया। उन्होंने किसी प्राचीन पोथी से सहायता नहीं पायी। यह अनुसन्धान करके कि उनके द्वारा संगृहीत पदों में से कितने प्राचीन पोथियों में पाये जाते हैं इस भूमिका के शेष में दिया हुआ (ग) निर्घण्ट प्रस्तुत किया है। उससे पता लगेगा कि उनके ८२ पदों में ५५ आजतक नेपाल मिथिला अथवा बंगाल के किसी भी पोथी में नहीं पाये जाते हैं। इन ५५ पदों में हम ४ को नातिप्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि ये पद कई एक परवर्त्ती काल के मैथिल पण्डितों द्वारा संगृहीत "मिथिला गीत-संग्रह" में अन्य कवियों की भणिता में पाये जाते हैं। उनका २३ संख्यक पद चन्द्रनाथ की भणिता में, २६ संख्यक पद, नन्दीपति की भणिता में, ४६ संख्यक पद रुद्रझा की भणिता में, ६८ संख्यक पद धैरजपति की भणिता में पाये जाते हैं। उनका ३७ संख्यक पद रागतरंगिणी (पृ० ८४-८५) और नगेन्द्रबाबू के तालपत्र की पोथी में अमियकर की भणिता में पाया जाता है, किन्तु पदकल्पतरु में (१५२३) विद्यापति की भणिता है। अन्य ७७ पदों की अकृत्रिमता के सम्बन्ध में सन्देह करने की गुंजाइश नहीं नजर आती। इनमें से ४ पद नेपाल पोथी में, ३ रागतरंगिणी में, २ कुमुदा-गीतचिन्तामणि में, १ पदामृत समुद्र में और १६ नगेन्द्र बाबू के तालपत्र की पोथी में पाये जाते हैं। नगेन्द्र बाबू ने आक्षेप किया है "ग्रियर्सन द्वारा संगृहीत ८२ पद और उनके अंगरेजी अनुवाद पुस्तकाकार में मुद्रित और प्रकाशित हुए हैं, किन्तु एतद्देशीय किसी संकलन में वे संकलित नहीं हुए हैं।" उनके संकलन में भी ग्रियर्सन के ८, १६, १७, १८, २८, ३८, ४६, ४७, ५८, ६३, ६७, ७४ और ७७ संख्यक केवल पद मुद्रित नहीं हुए हैं। परन्तु इन पदों में सन्देह करने अथवा त्याग करने का कोई कारण भी नहीं है। हमने ग्रियर्सन के ७७ पदों को अकृत्रिम और ५ पदों को नातिप्रामाणिक रूप में ग्रहण किया है।

हं। इन ७६६ पदों की भणिता में विद्यापति की जो सब उपाधियाँ देखी जाती हैं, उन उपाधियों में कोई एक भी जहाँ भणिता में पायी जायेगी, वहाँ विद्यापति का नाम न रहने पर भी उसको विद्यापति की रचना पहले अनुमान करके पीछे भाव और भाषा विचारपूर्व्वक सिद्धान्त करना कर्त्तव्य है। दूसरी ओर, यदि इन ७६६ पदों में से एक में भी कविरंजन, कविशेखर, शेखर, चम्पति, बल्लभ, भूपतिसिंह, दशअवधान प्रभृति भणिता न मिले, तो ऐसी हालत में इन सब भणिता से युक्त पदों को विद्यापति की रचना न होने की सम्भावना अधिक है। एक कवि की असंख्य उपाधि या उपनाम होना स्वाभाविक नहीं है। ऐसा कोई भी प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता कि विद्यापति ने स्वयं पंचानन, अमियकर, धैरयपति, जशोधर, रुद्रधर आतम, विष्णुपुरी, लखिमिनाथ, कंसनारायण, रतन, सिरिधर, पृथिवीचन्द इत्यादि अजस्र छद्मनामों से पद रचना की है।

विद्यापति की उपाधि कविकण्ठहार थी। वर्त्तमान संस्करण के ३५६ और ४५६ संख्यक पदों में मिलेगा कि नेपाल पोथी के पदों की भणिता में 'विद्यापति कह कवि कण्ठहार" वा 'भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार" रामभद्रपुर पोथी से गृहीत २८ और २८२ संख्यक पदों में, तरौणि के तालपत्र की पोथी से संकलित, २०, १४०, ४०७ एवं ग्रियर्सन और तालपत्र की पोथी से गृहीत ६४ और ३१२ पदों को मिला कर ६ पदों में अनुरूप भणिता है। इसलिए कवि का नाम न रहने पर भी १५, ३०, ४१, ४८, ६३, १५७, २१२, ४०२, ४०४, ४७८, ४८२ और ५३५ इन कई पदों मे उक्त प्राचीन पोथी में कविकण्ठहार, सरसकवि कण्ठहार अथवा केवल कण्ठहार भणिता रहने से हमने इन्हें विद्यापति की निःसंदिग्ध रचना मान ली है।

वर्त्तमान संस्करण के ६७, ६६, १३५, २१५ और ४१८ संख्यक पदों में कवि ने भणिता दी है, 'सरस कवि विद्यापति'; इसीलिए १११, ११२, १२०, और २१० संख्यक पदों में 'सरस कवि भाने' अथवा नेपाल पोथी के २५१ संख्यक पद में केवल 'सरस भान' देखकर इन पदों को विद्यापति की रचना हमने मान ली है।

कवि का नाम स्पष्टरूप से लिखा नही है, भणिता में केवल 'नवजयदेव' वा 'अभिनव जयदेव' है। ऐसे पाँच पद वर्त्तमान संस्करण में मिलेंगे (६, ७७, ६८, १०७ और ५६४)। बिसपी दानपत्र में है—"ग्रामोयेमस्माभिः सप्रक्रियाभिनव-जयदेव-महाराज पण्डितठक्कर श्रीविद्यापतिभ्याः शासनीकृत्य प्रदत्ताऽतो ग्रामकस्या युयमेतेपां वचनकरीभूकर्पकादि-कर्म-करिष्येथेति लक्ष्मणसेन सम्वत् २६३ श्रावण सुदितीगुरौ।" इस वाक्य से पता लगता है कि कवि की उपाधि अभिनव जयदेव थी; किन्तु इस दानपत्र की अकृत्रिमता सब लोगों को स्वीकृत नहीं है। किन्तु वर्त्तमान संस्करण के ६८ संख्यक पद मे मिलेगा कि नेपाल पोथी में इस पद के नीचे केवल "भनइ विद्यापतीत्यादि" है एवं नगेन्द्र गुप्त के तालपत्र की पोथी में कवि के नाम का उल्लेख न रह कर

"राजा सिवसिंघ रुपनारायण
कवि अभिनव जयदेवे" भणिता है।

सुतरां यह जाना जाता है कि प्राचीन काल में भी कवि की उपाधि 'अभिनव जयदेव' थी (११९)। परन्तु "अभिनव जयदेव" उपाधि स्वीकार कर लेने पर भी हमने केवल 'जयदेव' भणितायुक्त नगेन्द्र बाबू की हरगौरी पदावली के ४० संख्यक पद को अकृत्रिम नहीं माना है, क्योंकि विद्यापति सहसा अपने को जयदेव नाम से अभिहित क्यों करते? और यह पद किसी प्राचीन पोथी में भी नहीं पाया जाता है।

मैंने १९४२ ई० के Bihar and Orissa Research Society के Journal के चतुर्थ खण्ड में "Bhanitas in Vidyapati's Padas" प्रबन्ध में दिखलाया है कि नेपाल, रामभद्रपुर और नगेन्द्रबाबू के तरौणि के तालपत्र की पोथी में एवं रागतरंगिणी अथवा ग्रियर्सन के संग्रह में ऐसा एक भी पद नहीं है जहाँ विद्यापति के नाम के साथ "कविशेखर", "शेखर" "नवकविशेखर" "चम्पति" अथवा "कविरंजन" उपाधि मिली है। नेपाल और मिथिला की आकर पोथियों में "कण्ठहार" उपाधि रहने पर भी बंगाल की प्राचीन पदसंग्रह पोथियों में ऐसा एक भी पद नहीं है जहां विद्यापति के नाम के साथ "कण्ठहार" मिला हुआ है। इस प्रबन्ध के उपसंहार में मैंने लिखा है—"In view of these facts, editors of a critical edition of Vidyapati's padas should be extremely cautious in accepting as Vidyapati's composition any pada with the bhanita of Kaviranjan Kavisekhar, Navakavisekhar, Sekhara or Champati. In all the sources discussed above we find that wherever our poet has referred to Sivasinha or any other king or queen of the family of Sivasinha he has mentioned either their name or their Viruda and has never referred to them as simply Bhupatisinha."

किन्तु वर्त्तमान संस्करण के लिए पदनिर्व्वाचन करने के समय मैंने भूपतिसिहँ भणितायुक्त एक पद (२७८) और नवकविशेखर भणितायुक्त पदकल्पतरु के (१०६, २३२, ३८६ और १८३२) चार पद यथाक्रम ६२१, ७००, ६५१, और ७२४ संख्यक पदरूप में ग्रहण किया है। इसके लिए कैफियत देने की जरूरत है। भूपतिसिँह की भणिता से युक्त पद रागतरंगिणी में है सही, किन्तु लोचन ने ऐसा कोई मन्तव्य नहीं किया है जिससे समझा जाए कि यह विद्यापति की रचना है। किन्तु पदावली साहित्य के जौहरी राधामोहन ठाकुर ने पदामृत समुद्र के शेष चार चरणों के बदले पाठ माना है—

कान्त कातर कतहु काकुति
करत कामिनि पाय।
प्राण पीड़न राइ मानइ
विद्यापति कवि गाय॥

---

(११९) हमलोगों के ९८ संख्यक पद के ११ चरण और बारहवें चरण के "तँये रस" तक रामभद्रपुर पोथी के ८३ पृष्ठ में, ३०६ संख्यक पदरूप में हैं; वह सम्पूर्ण नहीं है। तथापि शिवनन्दन ठाकुर ने अपनी "विद्यापति विशुद्ध पदावली" (पृ० ५९) और "महाकवि विद्यापति" (२रा खण्ड, पृ० ३८) ग्रन्थों मे नगेन्द्रबाबू प्रदत्त भणिता छापी है। इस स्थल पर ठाकुर महाशय ने अपनी आकर पोथी पर निर्भर न करके नगेन्द्रबाबू का अन्धभाव से अनुसरण किया है।

राधामोहन ठाकुर महाशय के पदसंग्रह की रीति पर जिनका मेरे समान श्रद्धा नहीं है उनसे यह अनुरोध है कि पद को नातिप्रामाणिक समझ कर पढ़ें। नवकविशेखर की भणितायुक्त चार पदों की अकृत्रिमता का कोई objective प्रमाण देने में हम अक्षम हैं, क्योंकि मिथिला अथवा नेपाल की किसी प्राचीन पोथी में कोई पद विद्यापति के नाम के साथ नवकविशेखर उपाधि मिली हुई नहीं है। पदकल्पतरु की किसी भी पोथी में ऐसा कोई भी पाठान्तर नहीं है जिससे जाना जाय कि ये कई पद विद्यापति की रचना है। प्रथमोक्त तीन पदों के सम्बन्ध में शायद अगोचर भाव (unconsciously) से नगेन्द्रबाबू का अन्धा अनुकरण किया है। इन चार पदों की भी नातिप्रामाणिक रूप में गणना करनी चाहिए।

(ग) भणिता विचार

नगेन्द्रनाथ गुप्त महाशय ने भाषा और रचना शैली के सादृश्य पर निर्भर करके पद कल्पतरु, क्षणदागीतचिन्तामणि प्रभृति प्राचीन संकलन ग्रन्थों के अनेक पद विद्यापति पर आरोप कर दिया है। विद्यापति की उपाधि कविशेखर थी, इसका एकमात्र प्रमाण यही है कि लोचन ने रागतरंगिणी में (पृ० ४४) "आनन लोल अ वचने बोलए हाँसि" इत्यादि पद की भणिता में—

"कविशेखर भन अपरूपरूप देखि
राए नसरद साह भजलि कमलमुखि"

लिखकर नीचे मन्तव्य किया है "इति विद्यापतेः।" पदकल्पतरु का १६७ संख्यक पद उससे प्रायः अभिन्न है, किन्तु उसकी भणिता है :

"भणये विद्यापति सो वर नागर
राई-रूप हेरि गरगर अन्तर॥"

कविशेखर उपाधि अनेक प्राचीन लेखकों की थी। मैथिली भाषा के आदि लेखक ज्योतिरीश्वर ठाकुर की उपाधि कविशेखर थी; रागतरंगिणी में उद्धृत (पृ: ६७) एक पद के लेखक यशोधर नवकविशेखर; और जिस समय ग्रियर्सन विद्यापति का पद संग्रह कर रहे थे उस समय मिथिला में हर्षनाथ कविशेखर नाम के एक कवि जीवित थे और उनके पद भी ग्रियर्सन ने आधुनिक भाषा के उदाहरण स्वरूप उद्धृत किए हैं। पदकल्पतरु के पदकर्त्ताओं की सूची प्रस्तुत करने के समय सतीशचन्द्र राय महाशय ने कविशेखर के ४२ पद, शेखर के ६८ पद, और रायशेखर के ३५ पदों का उल्लेख किया है। पदकल्पतरु के पदों को अच्छी तरह पढ़ने से समझा जाएगा कि कविशेखर और रायशेखर एक ही व्यक्ति थे। २१८६ संख्यक पद की भणिता में कविशेखर कहते हैं :—

श्रीरघुनन्दन चरण करि सार
कह कविशेखर गति नाहि आर॥

२३७२ संख्यक पद में शेखर ने कहा है :—

प्राण मोर सनातन रघुनाथ जीवन
धन मोर श्रीरूप गोसाञि ।
श्रीरघुनन्दन पति ताहा बिनु नाहि गति
यार गुन भव-भय नाइ ॥

२३७३ और २३७४ संख्यक पदों में देखा जाता है कि रायशेखर श्रीखंड रघुनन्दन के शिष्य थे। पूर्वोक्त पद की भणिता "राय शेखर करू आशे" एवं आरम्भ

श्रीवृन्दावन अभिनव-सुमदन
श्रीरघुनन्दन राजे ।
लाख लाख वर विमल सुधाकर
उयल श्रीखंड-समाजे ॥

शेषोक्त पद की भणिता—

पापिया शेखर राय विकाइल रांगा पाय
श्री रघुनन्दन प्राणेश्वर ॥

शेखर, रायशेखर, कविशेखर, इन तीनों नाम के पदों में जब श्रीखंड के रघुनन्दन का गुरु कह कर वर्णन किया गया है तो इन तीनों व्यक्तियों को एक कहा जा सकता है। ये रघुनन्दन श्री चैतन्य के पार्षद नरहरि सरकार ठाकुर के भाई मुकुन्द के पुत्र थे। इसलिए माना जाता है कि ये कवि षोड़श शताब्दी के शेष भाग तथा सप्तदश शताब्दी के प्रथम भाग में जीवित थे। राय शेखर की "दण्डात्मिका पदावली" सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। शेखर, राय शेखर और कविशेखर के अनेक पद सादा बंगला भाषा में त्रिपदी छन्द में रचित हैं। परन्तु तीन भणिताओं में विद्यापति के अनुकरण में लिखे पद पाये जाते हैं, यथा

२१५८ की भणिता—

कम्बुकण्ठे मणि-हार विराजित
काम-कलंकित-शोभा ।
चरण अलंकृत मंजिर झंकृत
राय शेखर मन लोभा ॥

२५६७ संख्यक पद, जिसे नगेन्द्र बाबू ने २७५ संख्यक पदरूप में विद्यापति की पदावली में ग्रहण किया है, कविशेखर की भणितायुक्त है और उसमें है—

ऐछने आयलि उपनक गेह
पूजा-उपहार तहिं राखलि केह ।

उसके शेष दो चरण हैं—

कह कविशेखर शुन सुकुमारि।
काहे लागि कातर मिलव मुरारि॥

यह स्वीकार करने पर भी कि उन्होंने यह पदकल्पतरू से लिया है, नगेन्द्रबाबू ने शेष चरण को इस प्रकार परिवर्त्तित करके लिखा है—

धरइज धए रह मिलत मुरारि॥

श्री राधा का सूर्यपूजा करने जाना श्री चैतन्य के अनुवर्त्ती पदकर्त्ताओं का अनुभव है; विद्यापति के किस पद में इस प्रकार के किसी घटना का इशारा नहीं है। पदकल्पतरू के २५६८ संख्यक पद के शेष चार चरण ये हैं:—

विपद सपद किये बुझइ न पारि।
कैछने वंचये सो सुकुमारि॥
बोधि सुबल कहे शुन गुणवन्त।
शेखर सह धनि मिलव नितान्त॥

नगेन्द्र बाबू अपने २५५ संख्यक पद में इसका मैथिल रूप देने पर भी सुबल का लोप नहीं कर सके। विद्यापति के किसी अकृत्रिम पद में श्रीदाम, सुदाम, सुबल, ललिता, विशाखा, जटिला, कुटिला, प्रभृति नाम नहीं हैं। ये नाम साहित्य के क्षेत्र में श्रीरूप गोस्वामी और उनके परवर्त्ती वैष्णव महाजनों द्वारा ही बहुत अंश में प्रचारित हुए थे, यद्यपि पुराणादि में इन नामों में कई एक पाये जाते हैं (१२०)।

---

(१२०) श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २२वें अध्याय के ३१वें श्लोक में श्रीकृष्ण के दस सखाओं के नाम पाये जाते हैं:—हे स्तोककृष्ण ! हे अंशो ! श्रीदामन् ! सुबलार्ज्जुन !।
विशाल वृषभौजिस्विन् ! देवप्रस्थ ! वरुथप !॥

सनातन गोस्वामी ने टीका में लिखा है—हे स्तोकेति श्रीदाम्नो मुख्यत्वपि स्तोककृष्णहत्यादौ सम्बोधनं स्वनामत्वेन मित्रत्वात् सम्मुखे वर्त्तमानत्वाच्च। उनके मतानुसार श्रीदाम ही मुख्य सखा थे। श्रीरूप गोस्वामी भक्ति-रसामृतसमुद्र (पश्चिम, तृतीयलहरी १९) में कहते हैं कि "एषु प्रियवयस्येषु श्रीदामाप्रवरोमतः"; किन्तु इनसे अधिक अन्तरंग और श्रेष्ठ ये हैं—"सुबल, अर्ज्जुन, गन्धर्व्व, वसन्त और उज्ज्वलादि"। प्रियनर्मसखाओं में सुबल का श्रेष्ठत्व श्रीरूप गोस्वामी ने ही पहले स्थापन किया। सुतरां सुबल के नामयुक्त जितने पद जहाँ पाये जाएँगे, उन सबों को श्रीरूप गोस्वामी के समसामयिक और परवर्त्तियों की रचना मानना होगा। पद्मपुराण के पातालखण्ड के ७१वें अध्याय के २०-२२ श्लोकों में सुबल का नाम नहीं है—वहाँ श्रीदाम, वसुदाम, किंकिणी स्तोककृष्ण और अंशुभद्र के नाम हैं।

सखियों में भी श्रीरूपगोस्वामी ने ही विशाखा और ललिता को प्राधान्य दिया है। पद्मपुराण के पातालखंड के ७०वें अध्याय में ललिता, श्यामला, धन्या, हरिप्रिया, विशाखा, शैव्या, पद्मा, चन्द्रावली, चित्ररेखा, चन्द्रा, मदनसुन्दरी, प्रिया, मधुमती, चन्द्ररेखा और हरिप्रिया को प्रधाना कहा गया है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में (बंगला, बंगवासी स० पृ० ५२६) ललिता, विशाखादि का नाम नहीं है—वहाँ श्रीराधा की सखियाँ है, सुशीला, शशिकला, चन्द्रमुखी माधवी, कदम्बमाला, कुन्ती, यमुना, सर्व्वमंगला, पद्ममुखी, सावित्री, पारिजाता, जाह्नवी, सुधामुखी, शुभा, पद्मा, गौरी, स्वयंप्रभा, कालिका, कमला, दुर्गा, सरस्वती, भारती, अपेणा, रति, गंगा, अम्बिका, कृष्णप्रिया, चम्पा और चन्दननन्दिनी।

नगेन्द्र बाबू ने स्वीकार किया है कि उन्होंने उक्त पद पदकल्पतरू से लिया है किन्तु 'शेखर सह धनि मिलब नितान्त' चरण को बदलकर 'शेखर कह धनि मिलब नितान्त' कर दिया है। नगेन्द्र बाबू जानते थे कि 'सह' को 'कह' नहीं करने से, चाहे जो भी हो, वह विद्यापति का पद नहीं कहा जा सकता था। इस रहस्य की विशद व्याख्या करने की जरूरत है।

श्रीचैतन्य के परवर्त्ती पदकर्त्ता लोग केवल काव्यरस की सृष्टि करने के लिए ही पद नहीं लिखते थे। वे पदरचना और पदकीर्त्तन को साधना का अंगस्वरूप समझते थे। वे कुमारीरूप में अपनी सिद्धदेह की भावना करके सखी की अनुग होकर यह प्रार्थना करते थे कि वे (सखी) उन्हें सेवा के आनुकुल्य करें। वे श्रीराधाकृष्ण की लीला के दर्शक और पोषक थे। वे सखी की कृपा पाने की साधना करते थे। इस साधना की सुन्दरतम अभिव्यक्ति नरोत्तमदास ठाकुर महाशय की 'प्रार्थना' और 'प्रेमभक्ति चन्द्रिका' में देखी जाती है। उनकी एक प्रार्थना उद्धृत की जाती है—

राधाकृष्ण प्राण मोर युगल किशोर।
जीवने मरणे गति आर नाहि मोर॥
कालिन्दीर कूले केलि कदम्बेर बन।
रतन वेदीर उपर वसाब दुजन॥
श्यामगौरी अंगे दिब चन्दनेर गंध।
चामर ढुलाव कबे हेरिब मुखचन्द॥
गाँथिया मालतीर माला दिब दोंहार गले।
अधरे तुलिया दिब कर्पूर ताम्बुले॥
ललिता विशाखा आदि यत सखीवृन्द।
आज्ञाय करिब सेवा चरणारविन्द॥
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुर दासेर अनुदास।
सेवा अभिलाष करे नरोत्तमदास॥

इसी सेवा की अभिलाषा से प्रेरित होकर शेखर कवि राधा के साथ जाना चाहते हैं, एवं "शेखर सह धनि मिलब नितान्त" कहते हैं। उनके अन्यान्य पदों की भणिता में भी यह सेवा का भाव सुस्पष्टतः फूट उठा है। पदकल्पतरू के २७०६ संख्यक अभिसार के पद का आरम्भ—

आजर-रुचि-हर रयनि विशाला।
तह्रु पर अभिसार करु व्रजबाला॥

यह पद उद्धृत करके नगेन्द्रबाबू अपनी भूमिका (पृ० २४) में कहते हैं—"यह रचना विद्यापति के सिवा किसी अन्य की नहीं लगती है।" परन्तु उसकी भणिता के प्रति ध्यान देने से वह कभी भी प्राक्-चैतन्ययुग की रचना नहीं कहीं जा सकती है। भणिता में है—

यतनहि निःसरु नगर दुरन्ता
शेखर अभरण भेल वहन्ता।

श्री राधा अँधेरी रात में अभिसार के लिए बाहर हुई हैं; मिलन की अपरिसीम उत्कंठा में उनके आभरण और लीलाकमल भी भार से मालूम पड़ते हैं; उन्होंने नूपुर, किंकिणी, हार प्रभृति सबों का त्याग कर दिया है; किन्तु पदकर्त्ता शेखर वही सब आभरण ढोते हुए साथ साथ चले।

श्रीचैतन्य-परवर्त्ती पदकर्त्ताओं की इस दृष्टिभंगी के साथ नेपाल और मिथिला में पाये गए विद्यापति के पदों की तुलना की जाए।

देवसिंह और शिवसिंह के नामांकित पद विद्यापति के प्रथम वयस की रचना हैं। इनमें अधिकांश पद प्राकृत नायक-नायिका को लक्ष्य कर लिखे गये हैं। शिवसिंह के समय में लिखित पदों में जहाँ राधा और माधव का नाम है, वहाँ भी कवि ने उन लोगों को नायक-नायिका के type रूप में दिखलाया है—भक्तिभाव से नहीं देखा है। वर्त्तमान संस्करण का १६४ संख्यक पद विरह का है; नायिका "कतहु न देखिअ मधाइ' कह कर विलाप कर रही है; कवि उसको सान्त्वना देता है—

लखि देविपति पूरिह मनोरथ
आविह सिवसिंह राजा।

१७४ संख्यक पद में विरहिणी की बारहमासी के उत्तर में आश्वासन देता है कि "रूपनारायण पूरथु आस", विरहिनी की आशा राजा शिवसिंह पूरी करेंगे। १७५ संख्यक पद सुप्रसिद्ध "जखने आओब हरि रहब चरण धरि", किन्तु भणिता में कवि कहता है कि तुम्हें चिन्ता क्या है तुम्हारे जीवन के आधार राजा शिवसिँह हैं, वे भगवान के एकादश अवतार हैं। ४१ संख्यक पद में शिवसिँह को हरि-सदृश, ८६ पद में एकादश अवतार और १०३ पद में अभिनव कान्ह और १८५ पद में "केलिकल्पतरु नागर गुरुवर रतन" कहा गया है।

वर्त्तमान संस्करण के १७७ संख्यक पद में "माधव कठिन हृदय परबासी" कहकर दूती वा सखी विरहिनी की अवस्था नायक के पास वर्णन करती हैं, किन्तु नगेन्द्र बाबू के तालपत्र की पोथी को भणिता के अनुसार कवि आश्वासन दे रहा है कि

"राजा सिवसिंघ रूपनारायण
करथु विरह उपचारे"।

यह पद बहुत सुन्दर है। बंगाल के वैष्णव संकलन कर्त्ता लोग इसको ग्रहण करने का लोभ संवरण नहीं कर सके; किन्तु भला वे कैसे कह सकते थे कि विरह का उपचार शिवसिँह करेंगे? इसीलिए देखते हैं कि पदकल्पतरू में (१८८६ संख्यक पद में) इसकी भणिता हो गयी है :—

"भणये विद्यापति शिवसिँह नरपति
विरहक इह उपचारि"

किन्तु इस परिवर्त्तित भणिता में यह नहीं कहा गया है कि विरह का उपचार क्या है। २११ पद में अभिसारिका नायिका की बात कहकर अर्जुन राय 'युवतियों के गति' स्वरूप हैं, यह कवि याद दिला देता है।

वर्त्तमान संस्करण की ४६८ संख्या का पद विपरीत रति का है। नगेन्द्र बाबू के तालपत्र की पोथी और ग्रियर्सन के ३३ संख्यक पद के अनुसार उसकी भणिता है—

भणइ विद्यापति रसमय वाणी।
नागरि रम पिय अभिमत जानी॥

पदामृत समुद्र (पृ० ९२) और पदकल्पतरु (१०६५) है उसे बदल कर वैष्णवोचित भणिता दी हुई है—

भणहुँ विद्यापति शुन परनारि।
नहिले रसिक कैछे तोहारि मुरारि॥

डा० सुशीला कुमार दे ने यह प्रमाणित किया है कि श्री रूप गोस्वामी ने अपनी "पद्यावली" में श्लोक सँग्रह करते समय बहुत से प्राचीन श्लोकों को बदल कर वैष्णवीय रूप दिया है। वस्तुतः विद्यापति में बहुत से ऐसे पद पाये जाते हैं जिसमें राधाकृष्ण के नाम का गन्ध तक नहीं है (१२१) और जो राधाकृष्ण के सम्बन्ध में प्रयोज्य नहीं हो सकते (१२२)। ५३० पद में देखा जाता है कि कवि विरहिनी नारी को कह रहा है कि कलियुग की परिणति का रूप ही यही है, जन्मान्तरीन कर्म्मफल सबों को भोगना ही पड़ेगा। किसी वैष्णव महाजन ने इस प्रकार की निर्मम बात राधा को नहीं सुनायी है। बड़ू चण्डीदास के श्रीकृष्णकीर्त्तन में जिस प्रकार श्रीकृष्ण के ईश्वरभाव की अनेक बातें हैं, उनके ऐश्वर्य की बात सुनाकर नायिका को चकाचौंध कर देने की चेष्टाएँ अनेक हैं, वैसा विद्यापति के पदों में कई एक पाये जाते हैं। ३४६, ३४७, ३४८ और ३४९ पद में कवि संगमभीता राधा को यह कह कर उत्साहित करते हैं कि हरि के निकट फिर क्या भय है?

कपट तेजिकहु भजह जे हरिसवो
अन्तकाल होअ ठाम हे।

---

(१२१) उदाहरण स्वरूप वर्त्तमान संस्करण के २ ३, ९, १४, १५, २०, २१, २२, २३, २४, २६, २८, २९, ३०, ३१, ३२, २८६, २८८, ५५६, ५६१, ५९१ प्रभृति बहुत से पदों में राधाकृष्ण के नाम का गन्ध तक नहीं है।

(१२२) ३५३ संख्यक पद में नायिका आक्षेप कर रही है कि नायक रभस के समय निद्रा में व्याकुल है—

"काम कलारस कत सिखाउवि
पुव पछिम न जान"

८१ संख्यक पद में नायिका कह रही है कि गोरू पहचानना ही गोप का काम, है, नीविबन्ध खोला, आशा का संचार किया, तभी भी पास नहीं आया। २५२ संख्यक पद में "मिलल कन्त मोहि गोप गमार" है, किन्तु सतीशचन्द्र राय महाशय ने ठीक ही कहा है—"श्री राधा मानिनी होकर श्रीकृष्ण के प्रति शठ, लम्पट इत्यादि मर्मन्तुद वाक्य प्रयोग करती थी, किन्तु ऐसा कह कर कभी उन्होंने उनकी भर्त्सना नहीं की कि कृष्ण कामकला में अनभिज्ञ अथवा अरसिक थे। श्रीकृष्ण का परम निन्दक भी कभी भी उन्हें यह अपवाद नहीं दे सकता।" ५६० संख्यक पद में मुरारी का ज़िक्र रहने पर भी नायिका विरह की ज्वाला में सन्देह करती है "अब न धरम सखि बाँचत मोर"।

श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व गौड़ीय वैष्णव पदकर्त्ताओं के माधुर्य्य में डूब गया है। ५७४ संख्यक पद में श्रीराधा अपनी नगण्यता के सम्बन्ध में कहती हैं—

"कतए दमोदर देव वनमालि।
कतए कहमें धनि गोपगोआरि॥"

विद्यापति ने नायिका को उपदेश दिया है, आश्वास, सान्त्वना और उत्साह दिया है, किन्तु कभी भी किसी पद में अपनी लीला संगिनीरूप में नायिका के साथ एकात्मता की स्थापना नहीं की है (१२३)। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रवर्त्तित भजनरीति प्रचारित होने के पहले इस प्रकार करना सम्भव भी नहीं था।

नगेन्द्रवाबू ने शेखर, रायशेखर, कविशेखर प्रभृति भणितायुक्त पदों में ४२ पद विद्यापति पर आरोप किये हैं। अधिकांश स्थलों पर उन्होंने शेखर और रायशेखर नाम बदल कर कविशेखर कर दिया है एवं जहाँ शेखर सखी का अनुग होकर सेवा करना चाहते हैं, उन्हें परिवर्त्तित कर दिये हैं (१२४)।

---

(१२३) ८१ संख्यक पद "भन विद्यापति सुन तयँ नारि, पहुक दूषण दिअ विचारि" में कवि श्रीराधा के पक्ष में नहीं, श्रीकृष्ण के पक्ष में है। २८७ पद में कवि अवश्य राधा का अभियोग सत्य मान कर कहता है—"पहु अवलेपए दोस विचारि"। ३०६ पद में नायिका को दिवा-अभिसार में जाने से मना करता है। ३२१ पद में नायिका को यह कह कर उत्साह दे रहा है कि अभिसार में जाने से दूसरे का उपकार होगा, "भल जन करथि परक उपकार॥" मानिनी राधा को कवि कहता है—"हरिसञो कोप न करए सआनी"; हरि भगवान हैं, इसलिए उनके प्रति कोप करना उचित नहीं है। वैष्णवोय भाव की दृष्टि से विद्यापति की सबसे निष्ठुर भणिता पायी जाती है ५५६ संख्यक पद में, जहाँ सखी के श्रीराधा की विरहावस्था का वर्णन करने के बाद कवि कहता है कि जिसको प्रवासी कान्त स्मरण नहीं करता उसका रूप ही क्या अथवा गुण ही क्या?

कन्त दिगन्तर जाहि न सुमर
कीतसु रूप कि गुने॥

विरह के पदों में अधिकांश स्थल पर विद्यापति "धेरज धैरहु मिलत मुरारि" अथवा "कुदिवस रहए दिवस दुइ चारि" कह कर सान्त्वना देता है। और श्रीखंड के रघुनन्दन के शिष्य कविशेखर कहते हैं—

"धैरज धर हाम आनब याइ (३२७ संख्यक पद, पदकल्पतरु न० गु० ३०२)

कविशेखर के सान्त्वना देने की रीति पदकल्पतरु के २५८२ पद में देखी जाती है, किन्तु नगेन्द्र बाबू ने इस पद को विद्यापति पर आरोप नहीं किया :—

पराधीन हैया प्रेम कैलुँ पर सने।
जानिया शुनिया झांप दियाछि आगुने॥
ए कविशेखर कय ना करिह डर।
गोपने भुंजिबे सुख ना जानिबे पर॥

(१२४) इस पादटीका में कई उदाहरण दे रहा हूँ :—

पदकल्पतरु की संख्या और भणिता	नगेन्द्रगुप्त की संख्या और भणिता (प्रत्येक पद के नीचे नगेन्द्रबाबू ने लिखा है पदकल्पतरु, किन्तु लापरवाही से पाठ और नाम बदल दिया है)।
२५१४ कामिनि काहिनि देवि सम्वाद। कह कविशेखर नह परमाद॥	१८७ कामिनि कहिनी कह सम्वाद कह कविशेखर नह परमाद॥

(घ) विद्यापति के पदमें श्याम नाम

विद्यापति के पदों की आकर पोथियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से विश्लेषण करने पर देखा जाता है कि कवि ने कहीं भी श्याम नाम का व्यवहार नहीं किया है। किस आकर ग्रन्थ में कृष्ण का कौन नाम कितनी बार और किस पद में आया है इसका विशद विवरण ज्ञानपिपासु पाठक "च" निर्घण्ट में

२५१३ पद के आरम्भ में है :— भगवति देवति समय से जानि राइक मन्दिरे करल पयानि ॥ इसी प्रसंग में 'देवि-सम्वाद' प्रयुक्त हुआ है।	नगेन्द्र बाबू ने "देवि-सम्वाद" को "कह सम्वाद" कर दिया है, न तो स्वतंत्र पद नहीं होता, और पूर्व पद की भाषा इतनी अधिक खाँटी बंगला है कि उसको मैथिली में रूपान्तरित करके ग्रहण नहीं किया जा सकता।
२५२२ कहये शेखर कि कर लाजे। कहना काहिनि सखिर माझे ॥	१८९ कह कविशेखर कि कर लाजे। कह न कहिनी सखिनि समाजे ॥
२५१५ रायशेखर अनुमाने। राइक अमिया सिनाने ॥	१९३ कविशेखर अणुमाणे। राहिक अमिय सिनाने ॥
२७०८ शेखर पन्थपर मीलल याइ। आनलि नागर भेटलि राई ॥	२३६ शेखर पन्थपर मिलल याहि। आनल नागर भेटल राहि ॥
२७०५ शेखर कहतहिँ पन्थ विथार। अभिसर सुन्दरि भय नाहि आर ॥	२४६ कविशेखर कह पन्थ विथार। अभिसर सुन्दरि भय नहि आर ॥
२७५१ अरुण उदय भेल जटिला शब्द पाइल। कविशेखर गुण गान ॥	२६३ अरुण उदय भेल जटिला शब्द पाओल कविशेखर इह भान।
२७५६ रायशेखर जाने इहरस-रंग। परवश प्रेम सतत नहे भंग ॥	२६४ कविशेखर जान इह रस रंग। परवश पेम सतत नह भंग ॥
२५६७ कह कविशेखर शुन सुकुमारि। काहे लागि कातर मिलव मुरारि ॥	२७१ कह कविशेखर शुनु सुकुमारि। धइरज धए रह मिलत मुरारि ॥
६८४ तुरिते चाल अब किये विचारह जिवन मकु आगुसार। रायशेखर वचने अभिसर किये से विधिनि विचार ॥	२६० तोरिते भेल अब किये विचारह जीवन मकु अगुसार। कविशेखर वचने अभिसार किये से विधिन विथार ॥
६८५ मन माहा साखि देयत पुनवार। कह शेखर धनि कर अभिसार ॥	२६२ मन मलु साखि देत पुनुवार। कह कविशेखर कर अभिसार ॥
५०३ शेखर कहये प्रियमन कर थीर। सहजइ नायरि भाव गभीर ॥	४०४ कह कविशेखर मन कर थीर। सहजहि नायरि भाव गभीर ॥
२४० कह शेखर वर भीखलेइ तव सोइ देयासिनि गेल।	४३३ कहे कविशेखर भीखलय तव। सेहो देयासिनि गेल ॥
११२३ परिरम्भन वेरि मुदलु आँखि ताहे ये भै गेल शेखर साखि ॥	५५५ परिरम्भन वेरि मुदल आँखि। ताहे भै गेल कविशेखर साखि ॥

परिरम्भण के समय में भी सखीरूप में कवि साक्षी है, यह बात विद्यापति के पद में होना असम्भव है।

पावेंगे ; नीचे उसका संक्षिप्त सार दिया जाता है। कान्ह नाम कान्हाइ, कान्हा, कानु और कानाइ के रूप में पाया गया है।

कृष्ण का नाम	नेपाल पोथी	रामभद्रपुर पोथी	रागतरंगिणी	न० गु० तालपत्र	ग्रियर्सन	बंगाल के प्राचीन संकलन ग्रन्थों में मैथिल विद्यापति के पदों में	सब मिला कर
माधव	४१	१७	७	३७	२३	५०	१७५ वार
कान्ह	३६	१०	१	४३	६	३५	१३७ वार
हरि	३३	८	४	२५	११	२५	१०६ वार
मुरारि	६	३	३	१३	६	११	४५ वार
गोविन्द	२	×	×	×	×	×	२ वार
दामोदर वनमालि	१	×	१	१	×	२	५ वार
मधुसूदन वा मधुरिपु	२	×	१	२	×	×	५ वार
गोप	५	×	×	१	×	×	६ वार
नंद के नन्दन	१	×	×	×	×	×	१ वार
कृष्ण	×	१	×	×	×	×	१ वार
काला	×	×	१	×	×	×	१ वार
मोहन	×	×	×	×	१	×	१ वार
राधारमण	×	×	×	×	×	१	१ वार
सब मिला कर स्वतंत्र पदों में	१३३	३८	१६	६१ ३१ पदों में कृष्ण का एक से अधिक नाम है	४२ ८ पदों में कृष्ण का एक से अधिक नाम है	१०५ १६ पदों में कृष्ण का एकाधिक नाम है	४८५ वार ४२८ पदों में
पोथी में कुल पद संख्या	२८७	६३	५१	२०५	८२	१७०	८८८

विभिन्न आकर पोथियों से लिये गये ८८८ पदों की पर्य्यालोचना करके देखने से मालूम होता है कि उनमें कहीं भी श्याम नाम विशेष्यरूप से व्यवहृत नहीं हुआ है। कई स्थलों में एक ही पद नेपाल पोथी, रामभद्रपुर पोथी, रागतरंगिणी, ग्रियर्सन के सँग्रह, पदामृतसमुद्र, क्षणादागीतचिन्तामणि, पदकल्प तरु, संकीर्त्तनामृत प्रभृति कई एक आकर ग्रन्थों में पाये जाने के कारण स्वतंन्त्र अकृत्रिम पदों की संख्या ८८८ की जगह ७६६ होगी। इन सब पदों में नेपाल पोथी २४१ संख्यक पद में, जो ग्रियर्सन का ७७ वाँ और वर्तमान संस्करण का ४७७ वाँ पद है, हरि तुम्हारा कुटिल मन्द कटाक्ष देखकर लगता है कि तुम्हारा शरीर भीतर से भी श्याम है—"भितरहु श्याम सरीरे" वा "भितरहु श्याम शरीरे"। नगेन्द्र बाबू के तालपत्र की पोथी से लिए हुए वर्तमान संस्करण के २२७ वें पद में भी श्याम शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है—"नहि सरलासय सामरंग"।

जयदेव ने भी गीतगोविन्द में कहीं भी श्यामशब्द विशेष्य के रूप में व्यवहृत नहीं किया है। उन्होंने ३-१४ व गीत में केशव के विशेषणरूप में 'श्यामात्मा कुटिलः", ११-११ वें गीत में "मूर्द्धि श्यामसरोजदाम," माथा पर नीलोपल की माला, एवं ११।२६ वें गीत में "श्यामलमृदुलकलेवर" शब्द व्यवहार किया है। बड़ू चन्डीदास के श्रीकृष्ण कीर्त्तन के प्रथम संस्करण के २३३ पृष्ठ में "सामल कोमल देह तेमार" और ३६२ पृष्ठ में "सामल मेघ" है, किन्तु कहीं भी कृष्ण के नामरूप में श्याम शब्द का व्यवहार नहीं है। श्रीमद्भागवत के १०-२२-१५ वें श्लोक में स्यामसुन्दर (पाठान्तर से श्यामसुन्दर) में "दास्यः करवाय तवोदितम्" है। विश्वनाथ चक्रवर्त्ती और बलदेव विद्याभूषण ने उनका पाठ "श्याम" इस क्रियारूप में ग्रहण कर सुविवेचना का परिचय दिया है; और सनातन गोस्वामी ने अपनी टीका में व्याख्या की है—"श्यामाश्चासौ सुन्दरश्चेति यद्वा श्यामेषु सुन्दरतस्य।

नगेन्द्र बाबू के ४६२ संख्यक पद में देखा जाता है—

हरि बड़ गरवी गोपमाझे बसइ
ऐ से करव जैसे वैरिन हसइ ॥२॥
परिचय करव समय भाल चाइ।
आजु बुझब सखि तुय चतुराइ ॥४॥
पहिलहि वैसव श्याम कए वाम।
संकेत जनाओब मझु परणाम ॥६॥
पुछइते कुशल उलटायब पानि।
वचन न वान्धब शुनह सयानि ॥८॥ प्रभृति

(वर्त्तमान संस्करण का ६५८वाँ पद द्रष्टव्य है)

यह उन्होंने नहीं लिखा है कि यह पद उन्होंने कहाँ पाया। पदकल्पतरु का ४३७ वाँ पद भी यही है, केवल श्याम नामयुक्त पंचम और षष्ठ चरण उसमें नही हैं; यथा—

हरि बड़ गरवि गोप माझे बसइ।
ऐछे कहवि यैछे वैरिना हसइ॥
परिचय करवि समय भाल याइ।
आजु बुझव हाम तुया चतुराइ॥
पुछइते कुशल उलटायवि पाणि।
बचन न बान्धवि शुनह सेयानि॥

सतीशचन्द्र राय महाशय ने बहुत पोथियों को देख कर पाठान्तर के साथ पदकल्पतरु का सम्पादन किया है, किन्तु किसी पोथी में नगेन्द्र बाबू धृत पंचम और षष्ठ चरण नहीं पाया। सुतरां ये दो चरण किसी परवर्त्ती कीर्त्तनिया द्वारा पद के आकर रूप में व्यवहृत हुए थे और भूल से पद के अंशरूप में जुट गये। इस बिचार से यह सिद्धान्त किया जा रहा है कि किसी पद में श्याम नाम रहने पर, यद्यपि उसकी भणिता में विद्यापति का नाम रहे भी तो उसे मैथिल कवि विद्यापति की रचना नहीं माना जायगा।

नगेन्द्र बाबू ने साहित्य परिषद संस्करण के ४०, ३७२, ३८३, ६७५, और ८२१ संख्यक पदों को यथाक्रम से पदकल्पतरु के ७२१, ५२८, २०३८, १६५२ और ११०७ संख्यक पदों से लिया है। इन पाँचों पदों में श्यामनाम है एवं भणिता में विद्यापति का नाम है। पदकल्पतरु के समान प्रामाणिक संकलन का प्रमाण रहते हुए भी, हम क्यों इन पदों को मैथिल विद्यापति की रचना नहीं कह सकते हैं, वह इन पदों की भाषा देखते ही पाठकगण समझ जायेंगे। निम्नलिखित उद्धरण पदकल्पतरु से हैं, क्योंकि नगेन्द्र बाबू ने पदों को मैथिली भाषा में रूपान्तरित करने की यथासाध्य चेष्टा करते हुए उनके नीचे पदकल्पतरु अथवा किसी अन्य आकर का नाम नहीं दिया है। पदकल्पतरु के—

७२१ वें पद का प्रारम्भ :—

नाहि उठल तीरे राइ कमल मुखि
समुखे हेरल वर कान।
गुरुजने संगे लाजे धनि नत-मुखि
कैछन हेरब नयान॥

इसका २७८ पद यों है :—

अवनत-बयनि धरणि नखे-लेखि।
ये कहे श्यामनाम ताहे ना पेखि॥

अरुण वसन परि वगलित केश।
अभरण तेजल झाँपल वेश॥
निरस अरुण कमल-बर-बयणी।
नयत-लोरे बहि यायत धरणी॥
ऐछन समये आओल बनदेवी।
कहये चलह धनि भानुक सेवि॥
अवनत बयने उतर नाहि देल।
विद्यापति कहे सो चलि गेल॥

विद्यापति के ७६६ अकृत्रिम पदों में कहीं भी बनदेवी का नाम अथवा सूर्यपूजा का इशारा नहीं है। पदकल्पतरु के २०३८ संख्यक पद में है—

सुन्दरि तेजह दारूण मान।
साधये चरणे रसिकवर कान॥
भाग्ये मिलये इह श्याम रसवन्त
भाग्ये मिलये इह समय बसन्त॥

"पाये धरिया साधा" एकदम खाँटी बंगला idiom है, यह मैथिल कवि का लिखा हो ही नहीं सकता।

१६५२ संख्यक पद की भाषा भी इस तरह है :—

सुखमय सागर मरूभूमि भेल।
जलद नेहारि चातक मरि गेल॥
आन कयल हिये विहि कैले आन।
अब नाहि निकपये कठिन पराण॥
ए सखि बहुत कयल हिय माह।
दरशन न भेल सुपुरूख नाह॥
श्रवणहि श्याम-नाम करू गान।
शुनइते निकसउ कठिन पराण॥

पदकल्पतरू के ११०७ संख्यक पद की भाषा—

दोंहार दुलह दुहुँ दरशन भेल।
विरह जानित दुख सब दुरे गेल॥

करे धरि वैसायल बिचित्र आसने।
रमये रतन-श्याम रमणि-रतने॥
बहुविध बिलसये बहुविध रंग।
कमले मधुप येन पाओल संग॥
नयाने नयान दुहाँर बयाने बयान।
दुहुँ गुणे दुहुँ गुण दुहुँ जने गान॥
भणये विद्यापति नागर भोर।
त्रिभुवन-विजयी नागरि ठोर॥

उद्धृत पदों की भाषा का विचार करते समय पाठक सतीशचन्द्र राय महाशय का निम्नलिखित मन्तव्य याद रखेंगे : "विद्यापति की पदावली की भाषा उनके द्वारा बनायी नहीं गयी थी, वह मिथिला की तत्कालीन प्रचलित भाषा है ; उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों से अधिक तद्भव मैथिली शब्द और मिथिला के रीति सिद्ध प्रयोग (idiom) बहुत अधिक देखे जाते हैं। बंगला की तथा-कथित 'ब्रजबोली पदावली में किसी भी प्रदेश की, किसी भी समय की प्रचलित भाषा नहीं है। विद्यापति की मैथिल रचना के अनुकरण में कुछ मैथिली, कुछ हिन्दी और कुछ बंगला शब्द के मिश्रण से बंगाली पद कर्त्ताओं के द्वारा सृष्ट किताबी भाषा है। इसमें 'तद्भव' शब्दों की अपेक्षा "तत्सम" संस्कृत शब्दों का प्राचुर्य्य है और रचना में बंग-भाषा सुलभ संस्कृत प्रवणता ही अधिक लक्षित होती है ; यदि यह कहा जाये कि उसमें मैथिल रीति सिद्ध प्रयोग है ही नहीं तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस तथा-कथित ब्रजबोली में यद्यपि व्याकरण और छन्द के विषय में प्रायः सर्वत्र ही विद्यापति की मैथिल भाषा ही अनुसृत हुई, तथापि बंगला पद-कर्त्ताओं के मैथिल भाषा के अनभ्यास और अनभिज्ञता के कारण व्याकरण और छन्द का व्यतिक्रम उनकी रचनाओं में कम नहीं है।"

(ङ) चम्पति, बल्लभ और भूपति भणिता की कविता

नगेन्द्र बाबू ने चम्पति की भणिता युक्त पाँच पदों को विद्यापति का समझ कर ग्रहण किया है (उनके संस्करण का ३७४, ३६४, ४०१, ४२० और ५७३), क्योंकि उन्होंने समझा था कि विद्यापति की उपाधि चम्पति भी थी। किन्तु पदकल्पतरु में उक्त कवि के जो दस पद संकलित हुए हैं; उनमें एक (२०२५ संख्यक पद) की भणिता—

"चरणप्रिय जन राय चम्पति
रचइ भाविनि साथ" है।

इन चम्पति राय का परिचय देते हुए राधामोहन ठाकुर ने अपने पदामृतसमुद्र की स्वकृत टीका में लिखा है—"श्री गौरचन्द्र भक्तः श्री प्रतापरुद्र महाराजस्य महापात्र—चम्पति राय नामा महाभागवत

आसीत्। स एव गीतकर्त्ता।" पदकल्पतरु के २६८ संख्यक पद के—जिसे नगेन्द्र बाबू ने अपनी ३७४ संख्या के रूप में प्रकाशित किया है—शेष छ चरण इस प्रकार है :—

माणिक तेजि काचे अभिलाप।
सुधा-सिन्धु तेजि खारे पियास॥
चीर सिन्धु तेजि कूपे विलास।
छिये छिये तोहारि रभसमय भाष॥
विद्यापति कवि चम्पति भाण।
राइ ना हेरब तोहारि बयान॥

इसके भाव और भाषा के साथ मिथिला के कवि विद्यापति की रचना का कोई विशेष सादृश्य नहीं देखा जाता है। नेपाल अथवा मिथिला के किसी पद में जब विद्यापति की चम्पति उपाधि नहीं पायी जाती है एवं चम्पति नामक एक स्वतंत्र कवि की बात राधामोहन ठाकुर ने कही है, तब इस कवि की रचना का आरोप विद्यापति पर करने से मैथिल कोकिल के गौरव का ह्रास छोड़ कर वृद्धि नहीं होगी। प्रसंग में कहा जा सकता है कि श्रीखंड के कविरञ्जन वैद्य के समान चम्पति भी विद्यापति की उपाधि धारण कर गौरव का अनुभव करते थे।

पहले ही कह चुका हूँ कि वल्लभ अथवा हरिवल्लभ विश्वनाथ चक्रवर्ती का उपनाम था। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि विद्यापति की अन्यतम उपाधि वल्लभ थी। सुतरां वल्लभ भणिता की कोई कविता विद्यापति की रचना नहीं हो सकती।

भूपति भणिता के ७ (न० गु० ३७५, ३८०, ४१६, ५३६, ७५८, ७६१ और ८१५) और भूपति सिँह भणिता के २ (न० गु० ३७८ और ५६१) पदों को नगेन्द्र बाबू ने पद कल्पतरु की पद संख्या ४७८, ५३६, ४७६, ४८३, १८७८, १७२६, १६८३, ४७७ एवं १०८० से ग्रहण करके विद्यापति पर आरोप किया है। पदकल्पतरु में सिंह भूपति नामयुक्त ६, भूपति नामयुक्त ४ और भूपतिनाथ नामयुक्त २ पद पाये जाते हैं। नगेन्द्र बाबू के ५३६ और ५६१ वे पदों में श्याम नाम, ३७८ पद में वृन्दा नाम एवं ४१६ पद में ललिता का नाम है। सब पदों में ही "चम्पति पति अब राइ मानाइते, आप सिधारह कान", "भूपति कि कहब तोय, तोहे से पुरुख-वध होय", "हाहा, सो धनि हामे ना हेरब, सिंहभूपति रस गाय" प्रभृति सखी भाव की बातें कही गयी हैं, जो विद्यापति में कहीं भी नहीं पायी जाती।

(च) बंगाली विद्यापति—कविरंजन वैद्य

पदकल्पतरु में कई एक खाँटी बंगला पद विद्यापति की भणिता में पाये जाते हैं। मैथिली भाषा कितनी भी परिवर्तित क्यों न हो, कभी भी "शुनलो राजार झि, तोरे कहिते आसियाछि" "आजि केने तोमा एमन देखि" प्रभृति पद किसी प्रकार भी मिथिला के विद्यापति की रचना नहीं हो सकते। १८८६ ई० में ग्रियर्सन साहेब ने अपने Modern Literary History of Hindustan ग्रन्थ में

लिखा है—Numbers of imitators sprang up, many of whom wrote in Bidyapati's name, so that it is now difficult to separate the genuine from the imitations, especially as the former have been altered in the course of ages to suit the Bengali idiom and meter (page 10). इस उक्ति के बाद ६२ वर्ष बीत चुके और पदावली साहित्य के सम्बन्ध में अनेक गवेषणाएँ हुई हैं। इन गवेषणाओं के फलस्वरूप देखा जाता है कि प्रतापरुद्र के अमात्य चम्पति की उपाधि विद्यापति थी, ऐसी किम्बदन्ती वृन्दावन के वैष्णवों में है (सतीशचन्द्र राय पदकल्पतरु भूमिका, पृ० ११२) ; और श्रीखंड के रघुनन्दन ठाकुर के शिष्य कविरंजन वैद्य को छोटे विद्यापति कहा जाता था। (श्रीयुक्त हरेकृष्ण मुखोपाध्याय का प्रबन्ध, भारतवर्ष मासिक पत्र में, भाद्र १३३६ बंगाब्द, और साहित्य-परिषत् पत्रिका १३३८ बंगाब्द, तृतीय संख्या, सैंतीसवाँ भाग, पृ० ४३)। १६७३ ई० में लिखित गोपालदास के "रसकल्प बल्ली" में ग्रन्थकार के आत्म परिचय वर्णन में है कि उनके पूर्व पुरुषों में—"जसराज खान् दामोदर महाकवि। कविरंजन आदि सबे राजसेवी" (साहित्य परिषत् पत्रिका १३३८, पृ० १४६)। श्रीयुक्त हरेकृष्ण बाबू ने राम गोपाल दास कृत "रघुनन्दन-शाखा-निर्णय" ग्रन्थ में निम्नलिखित उक्ति पायी है—

कविरंजन वैद्य आछिल खंडवासी
याहार कविता गीत त्रिभुवन भासि ॥
तार हय श्रीरघुनन्दन भक्ति बड़।
प्रभुर वर्णना पद करिलेन दृढ़ ॥

पद यथा—

"श्यामगौर रण एकदेह" इत्यादि
"गीतेषु विद्यापतिवरु विलासः
श्लोकेषु साक्षात् कवि कालिदासः।
रूपेसु निर्भर्त्सित-पंचवाणः
श्रीरंजनः सर्व्व-कला-निधानः ॥
"छोट विद्यापति बलि याहार खेयाति
याहार कविता गाने घुचये-दुर्गति ॥

यदि इस उक्ति को प्रामाणिक कहा जाये तो यह मानना पड़ेगा कि कविरंजन उपाधि नहीं, नाम था; जिस प्रकार चित्तरंजन दास महाशय को 'देशबन्धु' कहते थे, किन्तु उनके सम सामयिक देशबन्धु गुप्त नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति भी हैं। विद्यापति की भणितायुक्त जो बंगला पद पाये जाते हैं उनका कविरंजन की रचना होना सम्भव माना जा सकता है। इन पदों में आदि रस का आधिक्य देखा जाता है। गौरांग-नागर-वादी श्रीखंड के सम्प्रदाय के सब कवियों की रचना में यह वैशिष्ट्य पाया जाता

है। पदों में कवित्व मनोरम, विद्यापति का प्रभाव भी प्रचुर, इसीलिए लोगों ने शायद उन्हें विद्यापति की उपाधि दी थी।

मैथिल विद्यापति ने जिस प्रकार किसी किसी जगह अपने नाम का उल्लेख न कर केवल 'कवि-कण्ठहार' 'कण्ठहार' 'सरस कवि' या 'सरस भणे' कहा है, उसी प्रकार कविरंजन वैद्य ने भी अनेक जगहों में अपना नाम नहीं लिख कर केवल 'विद्यापति' उपाधि लिख कर पद रचना की है और बहुत सी जगहों में अपने प्रकृत नाम कवि रंजन की भणिता में भी पद रचना की है। इस प्रकार के ७ पद कल्पतरु में संकलित हुए हैं। उनमें से दो को नगेन्द्र बाबू ने २०३ और ५८६ संख्य पदरूप में विद्यापति की पदावली में चलाया है। २०३ संख्यक पद पदकल्पतरु का २५६ संख्यक पद है और इस प्रकार है—

यब निविबन्ध खसायल कान।
आपन दिव तवे यदि किछु जान॥

नगेन्द्र बाबू यह कह कर भी कि उन्होंने पदकल्पतरु से लिया है, पाठ बदल दिया है :—

आपन सपथ हम किछु यदि जान॥

"दिव्यि देना" स्पष्ट बंगला idiom है, सुतरां किसी प्राचीन पोथी में न पाने पर भी उन्होंने इसे 'सपथ हम' इत्यादि रूप में परिवर्तित कर दिया है। उनका "उदसल कुन्तल भारा, गुरति शिंगार लखिमि अवतारा" इत्यादि ५८६ संख्यक पद पदामृतसमुद्र और पदकल्पतरु में है; किन्तु 'मदन' को कवि रंजन ने मयना कहा है और 'पालटल' शब्द का व्यवहार किया है, इसलिए उन्होंने बीच के निम्नलिखित चार चरण छोड़ दिए हैं—

कुचकुम्भ पालटल वयना।
रस-अमिया जनु टारल मयना॥
प्रियतम कर तहिँ देवा।
सरसिज माहे जनु रहल चकेवा॥

कविरंजन रचित पदकल्पतरु के १७६० संख्यक पद में है—

आरे सखि कले हाम सो व्रजे यायव।
कवे पिता नन्द यशोदा मायेर स्थाने
क्षीरसर माखन खायव॥
कवे प्रिय धवली साओंली सुरभि लेइ
सखा सने दोहि दोहायव।
कवे प्रिये श्रीदाम सुबल सखा मेलि
काननें धेनु चरायव॥

मैथिल रूप देना संभव न समझ कर नगेन्द्र बाबू ने इसे विद्यापति की पदावली में स्थान नहीं दिया है।

ये कविरंजन तन्त्रोक्त त्रिपुरासुन्दरी की पूजा करते थे। इसीलिए उनके अनेक पदों की भूमिका में देखा जाता है :—

त्रिपुरा-चरण कमल मधु पान।
सरस संगीत कविरंजन भान॥

(पदकल्पतरु के २१८६ पद का पाठान्तर)

डा० सुकुमार सेन ने साहित्य-परिषत्-पत्रिका के १३४० बंगाब्द के २३ पृष्ठ में "कृष्णपदामृतसिन्धु" (पृ० १५०) से इनका उद्धार किया है—

कहे कविरंजन त्रिपुराचरणे मन
अवधान कर तुहुँ कान।
सहचरी कहे कथा त्वरिते पाठाह तथा
तबे से हरबे समाधान॥

८

विद्यापति के समसामयिक मिथिला के कविवृन्द

इतिहास से पता लगता है कि भर्जिल, दान्ते, पेत्रार्क, शेक्सपीयर, मिल्टन, तुलसीदास रवीन्द्रनाथ प्रभृति महाकवि अपने देश में उस युग के एकमात्र कवि नहीं थे। उनके लिए अनेक कवि पहले से क्षेत्र प्रस्तुत कर गये थे एवं बहुत से चन्द्रमा के चारों तरफ रहनेवाले तारों के समान शोभा पाते थे। अभी तक मिथिला के काव्यगगन में अकेले नक्षत्र के समान विद्यापति की गणना की गयी है, किन्तु रागतरंगिणी, नेपाल पोथी और रामभद्रपुर पोथी की सावधानता से पर्य्यालोचना करने से मालूम होगा कि उनके समसामयिक अमृतकर वा अमियकर, जीवनाथ, भीष्म, धीरेश्वर, भानु, कंसनारायण, गोविन्ददास, श्रीधर कवि के पुत्र हरिपति और पुत्रवधू चन्द्रकला भी प्रथम श्रेणी के कवि थे। इनके पद और परिचय संग्रह कर मैंने Patna University Journal की January, 1948 संख्या में 'Maithili Poets in the Age of Vidyapati' प्रकाशित किया है। ज्ञान-पिपासु पाठक इस प्रबन्ध में देख सकते हैं और वर्त्तमान संस्करण के ग, घ, ङ और च परिशिष्ट में इन सब कवियों के पद पाठ कर विद्यापति की रचना के साथ उनकी तुलनामूलक समालोचना कर सकते हैं।

अमियकर के पाँच पद पाये गये हैं। उनमें से एक में शिवसिंह और एक में भैरव सिंह का नाम है। सुतरां ये कवि विद्यापति के एकदम समसामयिक थे। जीवनाथ की केवल एक कविता रागतरंगिणी में (पृ० १११-१२) में पायी जाती है। उसमें "मेधा देइपति रुपनारायण" का नाम है,

सुतरां यह जाना जाता है कि कवि शिवसिंह की सभा में थे। नगेन्द्र बाबू ने (६० संख्यक पद) भणिता बदल कर "प्रणवि जीवनाथ भणें' को 'सुकवि भनथि कण्ठहारे' कर दिया है। भीष्म की तीन कवितायें राग-तरंगिणी में हैं (पृ० ४२-४३, ५७-५८ और ६६)। उनमें से प्रथम दो को भणिता में जगनारायण का नाम है।

"हरिहर प्रणिइअ भीषम भान
प्रभावतीपति जगनारायण जान"
"प्रभावती देइ पति मोरंग महीपति
नृप . जगनारायण जान"

तृतीय पद की भणिता में—

धैरज धर घनिकन्त आओत
कुमार भीषम भान।
इ रस विन्दक नरनारायण पति
धरमा देइ रमान ॥

भीष्म भी राजवंश के आदमी थे, नहीं तो अपने नाम के साथ कुमार शब्द नहीं जोड़ते। जगनारायण धीरसिंह के पुत्र और भैरवसिंह के भ्रातुष्पुत्र थे। नरनारायण भैरवसिंह के एक और भ्रातुष्पुत्र थे।

कवि धीरेसर ने भी उक्त नरनारायण का नाम स्वकृत पद में (नेपाल २६६, न० गु० ४३ परिवर्चित भणिता) दिया है, सुतरां ये भी विद्यापति के Junior contemporary अथवा अपेक्षाकृत कम उम्र के समसामयिक थे।

भानु की कविता नेपाल पोथी के २२४ संख्यक पद में पायी जाती है। पद में चन्द्रसिँह नरेशर का नाम है। ये चन्द्रसिँह धीरसिँह और भैरवसिँह के सोतेले भाई थे। नगेन्द्र बाबू ने पद में के 'भानु जम्पएरे' शब्द की व्याख्या अपने ३२२ संख्यक पद में की है कि विद्यापति भानु नामसे कविता करते थे।

कंसनारायण को विद्यापति का ठीक समसामयिक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि वे विद्यापति के शेष पृष्ठपोषक भैरवसिँह के पौत्र थे, उनका प्रकृत नाम था लखिमि नाथ और विरुद था कंसनारायण। उनकी दो कवितायें रागतरंगिणी में (पृ० ७७ और तीन नेपाल पोथी में ४१, ५६, ११३) पायी गयीं हैं।

गोविन्ददास की दो कविताएँ रागतरंगिणी में हैं (पृ० १००, १०१-२) एवं दोनों कविताओं की भणिता में सोरमदेविपति कंसनारायण के नाम का उल्लेख है। सुतरां ये मैथिल कवि गोविन्ददास भैरवसिँह के पौत्र लखिमिनाथ कंसनारायण के समसामयिक थे। कवि सिरिधर भी कंसनारायण की सभा में थे।

विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकला का एक पद रागतरंगिणी में है। ऐसा प्रवाद है कि विद्यापति के पुत्र का नाम हरिपति था और नगेन्द्र बाबू ने इस भणिता का एक पद प्रकाशित किया है।

६

विद्यापति के पदों में राधाकृष्ण का प्रसंग

बंगाल के प्राचीन संकलन ग्रन्थों में जो सब विद्यापति के पद लिये गये थे, वैष्णव लोग उनमें से प्रत्येक को राधाकृष्ण के सम्बन्ध में लागू करते थे। उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि वर्त्तमान संस्करण का ४१वाँ पद नायिका के रूप देखने के बाद नायक के अनुराग का, ६६ और ७८ और ८४ संख्यक पद कौतुक अथवा धोखा के, ५०२, ७०३ और ७०४ संख्यक पद विपरीत रति के हैं। इन पदों में ऐसा कोई भी विशेष शब्द या भाव नहीं है जिससे समझा जा सकता है कि कवि ने राधाकृष्ण को उद्देश्य कर ये पद-समूह लिखे हैं।* निर्घण्ट में राधाकृष्ण, यमुना, गोप प्रभृति वृन्दावन लीलाद्योतक शब्दों से हीन पदों की एक पूर्ण तालिका दी गयी है। इसमें पता लगेगा कि विद्यापति के ७६६ अकृत्रिम पदों में ३८४ पद अर्थात् सैकड़े ४८ पदों में राधाकृष्ण का कोई प्रसंग नहीं है एवं वे अधिकांश लौकिक घटना हैं और शृंगार रस लेकर लिखे गये हैं एवं ३५ केवल हरगौरी और गंगा विषयक है।

---

*प्रश्न उठ सकता है कि इस प्रकार का अनुल्लेख रहने पर भी वैष्णव लोग इन पदों को राधाकृष्ण लीला सम्बन्धी क्यों समझते थे ? इसका उत्तर यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की दृष्टिमार्ग ऐसा पारसपत्थर थी कि लोहा भी उसे छू कर सोना हो जाता था। श्री चैतन्य चरितामृत में (मध्यलीला, प्रथम परिच्छेद) में देखा जाता है कि प्रभु काव्यप्रकाश में प्राप्त (१म उः ४र्थ अंक) निम्नलिखित पद पढ़कर आनन्द से विह्वल होकर नाचने लगते थे—

> यः कौमारहरः सएवहि वरस्ताएव चैत्रक्षपा
> स्तेचोन्मीलित मालती सुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बनिलाः।
> सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापार लीलाविधौ
> रेवारोधसिवेतसि तरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥

जिन्होंने मेरा कौमार्य हरण किया था, अब वही मेरे स्वामी हैं; आजभी वही चैत्र रजनी है, वही मालती फूल का सुगन्धवाही—कदम्बवनवायु वह रही है; किन्तु मेरा चित्त सुरतव्यापार में रेवा के तट पर वेतसी के तरुतल के लिये समुत्कंठित हो रहा है, अर्थात् गोपन के प्रणय मे जो स्वाद है वह विवाहित जीवन में नहीं पाया जाता है। इस प्रकार का एक श्लोक पढ़कर प्रभु के मन में कुरुक्षेत्र में माधव से मिली हुई राधा के मनोभाव की बात जागी। ऐसी दृष्टिभंगी महाप्रभु से उत्तराधिकार में पाकर वैष्णव साधक लोगों ने विद्यापति के सब पदों को राधामाधव की लीला समझ कर ही ग्रहण किया है।

कवि ने तरुण वयस में तथा शिवसिँह की राजसभा की छाया में जो कवितायें की थीं उनका विषयवस्तु प्राकृत नायक-नायिका का शृंगाररस वर्णन है। इस समय में रचित पदों में राधा और माधव का नाम रहने पर भी कवि ने प्रकृतपक्ष में लीलारस गान नहीं किया है। इस उक्ति के पक्ष में कई एक उदाहरण दे रहा हूँ। वर्त्तमान संस्करण के ५६७ और ५८१ पदों मे (ग्रियर्सन ६२ और ६७) मुरारि और माधव का नाम है, किन्तु नायिका विरह-खिन्ना होकर कह रही है :—

अब न धरम सखि बाँचत मोर।
दिन दिन मदन दुगुनसर जोर॥ (५६०)
माधव जनु दीअइ मोर दोस।
कतदिन राखव हुनक भरोस॥ (५८१)

श्रीराधा किसी तरह भी विरह क्लेश दूर करने के लिए दूसरे नायक की बात नहीं सोच सकती हैं। प्राकृत नायका की विरह ज्वाला को कविने ५३० पद में जन्मान्तरीन कर्मफल कहने में द्विधा नहीं की। १६४ संख्यक पद में नायिका "कतहु न देखिअ मधाइ" कह कर आक्षेप करती है और कवि उसको आश्वासन देता है—

लखि देविपति पूरिह मनोरथ
आविह सिवसिंह राजा।

इस पद के ग्रियर्सन के पाठ में देखा जाता है कि कवि नायिका को कह रहा है— बहुतों के प्रभु तो विदेश जाकर रह गये हैं, कहो तो क्या करें, उनको दोष मत देना: वे तो लाचार विदेश में है, सुतरां तुम घर में बैठ कर हरि के चरण की सेवा करो। ५६७ वें पद में (ग्रियर्सन ७६) शिशुपति के कारण विपन्ना एक तरुणी के मन की बात है। तरुणी को अपना पति गोद में लेकर बाजार जाना पड़ता है, वह हाट के लोगों के द्वारा बाप को खबर भेजवाती है कि उसके घर में दूध भी नहीं है, गाय खरीदने को पैसा भी नहीं है, बाप एक गाय भेजें न तो उनके दामाद को वह क्या खिला कर बड़ा बनावे। ऐसे एक पद में भी कवि ने मुरारी का नाम दिया है और नारी का उल्लेख ब्रजनारी कहके किया है—

भणइ विद्यापति सुनु बृजनारी।
धैरज धर रहु मिलत मुरारी॥

नगेन्द्र बाबू और उनके अनुवर्त्तियों ने विद्यापति के प्रायः समस्त पदों के ऊपर "माधव की उक्ति," 'राधा की उक्ति" "दूती वा सखी की" उक्ति लिख कर कवि के वाक्यों की रस-उपलब्धि में व्याघात पहुँचाया है, वैष्णव भक्तों की दृष्टि में विद्यापति पर रसाभास-युक्त पद लिखने का अभियोग लगवाया है। विद्यापति के पदों की आलोचना के लिए यह जानना विशेष आवश्यक है कि उनके कौन कौन से पद राधाकृष्ण लीला के हैं और कौन २ शुद्ध शृंगार-रस के। विश्वविद्यालय के परीक्षक लोग बहुत

बार "विद्यापति की श्रीराधा" इत्यादि प्रश्न भले ही पूछें, विद्यापति की पदावली में केवल श्रीराधा की बात नहीं है। उसमें स्वकीया, परकीया और साधारणी (वारवणिता) नायिका की बातें जिस प्रकार हैं उसी प्रकार बाला, तरुणी, युवती और वृद्धा की बात है। उदाहरण स्वरूप षष्ठ पद में वृद्धा कुटनी की बात, १६१ पद में स्वकीया नायिका की बात एवं ३५० और ४०६ पद में प्रगल्भा कुलटा का वर्णन द्रष्टव्य है।

१०

कविचित्त का क्रमविकास

विद्यापति ने रवीन्द्रनाथ के समान सुदीर्घकाल तक कविता की रचना की थी। "कीर्त्ति-लता" में उन्होंने अपने को खेलन कवि कह कर बालचन्द्र से अपनी कविता की उपमा दी है, और अति वृद्ध-वयस में कृष्णदास कविराज के समान जड़ातुर होकर लिखा है—

कैसन केस की भए विभच्छल वन भरी रहु काठ।
आधि मलमली कान न सुनीअ सुखि गेल तनु आट॥
दान्त भरि मुख थोथर भए गेल जनि कमाओल साप।
ठाम बैसलें भुवन भमिअ झरी गेल सव दाप॥
जाहि लगी गृहचातर लाओल बुझल सवे असार।
आखि पाखी दुहु समार सोएल जनित सवे विकार॥ (६१३ पद)

इतने अधिक दिनों तक जिन्होंने कविता की और जिसका जीवन सुख-दुख के झूले में बारबार में झूलता रहा, और जिन्होंने १०-१२ राजाओं का उत्थान-पतन देखा, उनके काव्य में एक मानसिक क्रमविकास का सुस्पष्ट चिन्ह रहना स्वाभाविक है। किन्तु कौन कविता कब लिखी गयी थी, यह जाना नहीं जाने के कारण यह क्रमविकास अभी तक लक्ष्य नहीं किया जा सका है। हमने इसी क्रमविकास की धारा लक्ष्य करने के लिए राजनामाङ्कित पदावली को, जहाँ तक सम्भव हो सका है, कालानुयायी सजा कर प्रकाशित किया है। हाँ, इतना अवश्य जोर के साथ नहीं कहा जा सकता है कि राजनाम-विहीन समस्त पद कवि की वृद्धावस्था की रचना हैं; लेकिन इतना ठीक है कि देवसिंह नामाङ्कित ५ पद, ग्यासदीन नामाङ्कित १ पद, हरिसिंह नामाङ्कित १ और शिवसिंह नामाङ्कित २०२ पद, सब मिला कर ये २०९ पद अथवा अकृत्रिम पदों में सैकड़े २९ पद कवि के तरुण वयस की रचना है। इन पदों की विषयवस्तु और भणिता के साथ जिन राजनामविहीन पदों का विशेष सादृश्य देखा जाता है, उनको भी हम विद्यापति के यौवनकाल की रचना मान सकते हैं। उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है कि ५७६ से ५८७ संख्यक प्रहेलिका पद १९३ से २०१ संख्यक प्रहेलिकाओं के समान पद हैं और ये सब एक ही युग में रचे गये थे। Crossword puzzle के सामाधान के लिए काफी रुपये पुरस्कार में

देने की रीति जब प्रवर्त्तित नहीं हुई थी उस समय, यह कहा जा सकता है कि, राजसभा के वातावरण में कवि ने राजारानी और सभासदों के चित्तविनोद के लिए इन पदों की रचना की थी। उसी प्रकार ६६ से ७३ में पदों में सखियों के कौतुक के साथ ३०२ से ३०५ संख्यक पदों के भाव ही क्या, कहीं कहीं भाषा की भी समानता है, यथा—६८ के साथ ३०३ का, ६६ के साथ ३०५ का—सुतरां, यह अनुमान करना असंगत नहीं होगा कि ये पद कवि के जीवन के एक रंगकौतुकमय अध्याय में रचे गये थे।

शिवसिंह के नामाङ्कित पदों में कवि के मन में आनन्द मानों स्वतः स्फूर्त्त हो उठा है। इन सब पदों के रूप, रस वर्ण की इन्द्रधनुच्छटा क्षण-प्रतिक्षण पाठकों को विभ्रान्त कर देती है। चारों ओर मानों एक सुख की लहर बह जाती है। कवि के पद चपल चंचलगति से, तरलित भंगी से नाच-नाच जाते हैं। कल्पलोक का समस्त सौन्दर्य मानों नायिका में मूर्त्तिमान हो उठा है। सखियाँ नायिका को गगनमण्डल के चांद की चोरी का अभियोग लगा कर राजदण्ड का भय दिखलाती हैं, किन्तु अन्य अन्य सखियाँ कहती हैं कि यह कैसी बात है, चाँद में कलंक है, वह राहु के ग्रास में पड़ता है और हमारी सखी के मुख में आकाश के चाँद और पाताल के कमल एक साथ निवास करते हैं। वह नायक को कहती है कि राहु के भय से चाँद मेरे पास सुधा छिपा कर रख गया है, उसका पान मत करना, मुझ पर चोरी का अभियोग लगेगा। नायिका सखियों के पास शिक्षा पाती है कि किस प्रकार

कुन्द भमर संगम सम्भासन
नयने जगाओव अनंगे।
आशा दए अनुराग बढ़ाओब
भंगिम अंग विभंगे॥ (८२)

इस युग की रचना वसन्त उत्सव के गानों में एक ओर नवपल्लव, श्वेतपद्म और अशोक पुष्प प्रदान कर वसन्त के वरण करने की बात है (१४० पद), दूसरी ओर नायिका के मन में आशा जग रही है कि उसके प्रियतम शायद लौट आवेंगे (१४२); जिस नायिका के मन में उस प्रकार की आशा नहीं है, वह कर्मफल की दुहाई देती है (१४३) और कोई नायिका छिप कर प्रियतम से मिलने के बाद लौट आने पर सखियों की चतुर दृष्टि से पकड़ ली जाती है (१३६ पद)।

किन्तु शिवसिंह के राज्यकाल के करीब पचास वर्ष बाद रुद्रसिंह नामाङ्कित पदों में देखा जाता है कि वसन्त के विजय अभियान के अन्तराल में जो विरहिनियों का मर्मभेदी क्रन्दन छिपा हुआ है उसके प्रति कवि की दृष्टि आकृष्ट हुई है—

विरहि विपद लागि
केसु उपजल आगि (२२० पद)

किंशुक के फूलों से चारों दिशायें लाल-लाल हो गयी हैं, मानों विरहियों के मन में आग की ज्वाला फैल रही है। राज नाम विहीन वसन्त के पदों में तीन राधामाधव के वनविहार को लेकर लिखे गये हैं (४७८-४८२)।

अभिसार और विरह को लेकर जो सब पद कवि ने शिवसिंह के युग में लिखे थे, उनके सुर के साथ परवर्त्तीकाल में इन विषयों पर लिखे गये पदों का पार्थक्य गौर से देखने से समझ में आ जाता है। ८६ पद में नायिका करिवर और राजहंस को अपनी चाल से पराजित करती हुई संकेतगृह जा रही है, उसके अन्तर के भाव के सम्बन्ध में कवि एक बात भी नहीं कहता, केवल उसके विभिन्न अंगों की उपमा कमल, चकोर, सफरी, गृधिणी, बेल, ताल, सिंह इत्यादि से देता है। अभिसारिका को किस भाव से और किस साज में अभिसार में जाना होगा, इसका सरस वर्णन ९० से ९४ पदों में पाया जाता है। ९५ संख्यक पद में नायिका पहले साहस के साथ कहती है कि कुल की शंका अथवा गुरुजनों के भय से वह प्रियतम को दिये हुए वचन को भंग न करेगी, किन्तु उसके बाद ही वह इसका वर्णन करने लगती है कि वह किस प्रकार सुकौशल से अपने को सज्जित कर शुक्लाभिसार करेगी। ९७ और ९८ संख्यक पदों में भी ऐसी ही वेशभूषा और दैहिक सौन्दर्य का वर्णन बहुत ही सरस भाव से किया गया है—जैसे—अभिसार के पथ में एक भी बात मत बोलना, क्योंकि तुम्हारी बोली मधुभरी है, जैसे ही बोलेगी, उसके सुगन्ध से आ आ कर भ्रमर तुम्हारा अधरमधु पान करने लगेंगे। वर्षाभिसार के १०४, १०५ और १०६ संख्यक पद कवित्व के हिसाब से तुलनीय हैं। विशेष कर १०६ संख्यक पद के शब्द-झंकार, भाव-गाम्भीर्य और नायिका की आकुल प्रार्थना-"इस प्रकार का प्रेम किसी को भी न हो, मर्म-स्पर्श करते हैं। किन्तु परवर्त्ती काल में अर्ज्जुन राय के आश्रय में रह कर कवि ने अनुरूप विषय पर जो पद लिखे थे (२११ पद) उसकी आन्तरिकता और भी अधिक है—सखी अभिसारिका से कह रही है—

निसि निसिअर भम भीम भुअंगम
जलधर विजुरि उजोर
तरुन तिमिर निसि तइअओ चललि जासि
बड़ सखि साहस तोर

केवल यही नहीं कि पथ विघ्न संकुल है, बीच में दुस्तर नदी है, उसे कैसे पार करोगी! सखि! अपनी "आरति न करिअ झाप" तुम्हारा प्रेम कितना गम्भीर है, इसे छिपाने की चेष्टा मत करना तुम्हारा अंगरक्षक पंचशर है, इसीलिए तुम्हें डर नहीं लगता, किन्तु मेरा हृदय काँप रहा है। इसमें जो थोड़ी सी चपलता है—

सुन्दरि कओन पुरुस धन जे तोर हरल मन
जसु लोभे चलु अभिसार।

वह राजनाम विहीन ३३६ पद में अन्तर्हित हो गयी है—वहाँ सखी केवल विस्मित हो कर कहती है

दुतर जमुन नरि से आइलि बाहु तरि
पतवाए तोहर सिनेह

तुम्हारा प्रेम इतना गम्भीर है कि इस प्रकार की दुस्तर यमुना नदी को केवल अपनी बाहों के जोर पर पार कर आयी हो। ३३५ पद में किसी राजा का नाम नहीं है, उसमें देखा जाता है कि इस प्रकार की दुर्योग-रात्रि में वनमाली चिन्तित होकर सोच रहे हैं कि ऐसी रात में गोपी किस तरह अभिसार में आयगी। कवि उनको कहता है "तुम्हारी अपेक्षा नारी अधिक चतुरा है"। यहाँ पर बाहर के प्राकृतिक दुर्योग के साथ अन्तर का द्वन्द्व जैसे कम शब्दों में प्रकाशित हुआ है, वैसे ही भणिता में राधा-बनमाली के प्रति कवि का एक ममत्व भाव सा फट पड़ा है। फिर राजनामविहीन ३३७ संख्यक पद में भाव की गाढ़ता और अनुराग की तीव्रता का जो चित्र कवि ने अङ्कन किया है उसकी तुलना राजसभा के वातावरण में लिखित एक भी पद में नहीं पायी जाती है। यहाँ राधिका मदन की ज्वाला में नहीं, माधव के दैहिक सौन्दर्य के आकर्षण से नहीं, केवल "तुअ गुन मने गुनि" प्रवल वर्षा में, महाभयभीमा रजनी में अभिसार के लिये बाहर हुई है। जो रमणी दिवाल में चित्रित साँप को भी देख कर डर से काँप गयी है, वह साँप के सिर पर की मणि को हाथ से छिपा कर हँसते २ तुम्हारे पास आयी है (साँप के सिर पर की मणि जलती है, उसकी ज्वाला में लोग उसको देख लेंगे इसी डर से "करे झपइत फणिमणि)"। वह

निअ पहु परिहरि सँतरि विखम नरि
आँगरि महाकुल गारि।
तुअ अनुराग मधुर मदे मातलि
किछु गुनल वर नारि॥

इससे कवि विस्मित नहीं होता, क्योंकि काम और प्रेम जहाँ एकमत हो जाते हैं वहाँ वे क्या नहीं करा देते हैं—

काक पेम दुहु एक मत भय रहु
कखने की न करावे॥

राजसभा में बैठ कर कवि केवल मदन और मदन सभा के प्रताप की कहानी गाते थे, परिणत वयस में प्रेम के चित्र आँकते थे। इस बात का प्रमाण भी इस पद में पाया जाता है कि कृष्णदास कविराज गोस्वामी के पहले ही रसिक जनों को काम और प्रेम का पार्थक्य मालूम था।

शिवसिंह और तत्परवर्त्ती काल के विरह के पदों में भी कविचित्त का क्रम विकाश देखा जाता है। शिवसिंह के समय में लिखित ४८ विरह के पद, अन्य राजा और राजपुरुषों के नामांकित ६; राजनाम विहीन पदों में नेपाल और मिथिला में १०२ (४६७ से ५६६) और बंगाल में प्रचलित ३६ (७१६-७५७) सब मिला कर १६५ विद्यापति रचित विरह के पद अभी तक आविष्कृत हुए हैं। कोई-कोई कहते हैं कि विद्यापति केवल सुख के कवि थे, दुख का गान उन्होंने गाया ही नहीं। इस संख्या की पर्याप्तता से यह सिद्ध हो जाता है कि यह कहना ठीक नहीं है।

शिवसिंह के समय के विरह के पदों में अधिकांश निगतानुगतिक रीति अनुयायी (Conventional) हैं, उनमें भावों की गाढ़ता नहीं है। सुख और सौन्दर्य में मानों कवि दुख का सुर पकड़ ही नहीं सका

है। १७६ और १८१ संख्यक पदों में कोकिल के कलरव से कान बन्द करना, कुसुमित कानन देखकर आँख बन्द कर लेना, बिरह में क्षीण तनु होना, चन्दन में अग्नि की ज्वाला का अनुभव करना, कभी सन्ताप और कभी शीत बोध करना इत्यादि अलंकार-शास्त्रोक्त विरह-लक्षण वर्णित हुए हैं। १८० पद में कवि ने प्रहेलिका बनाकर विरह-वर्णन किया है—यथा विरह-कातर होकर नायिका ने शरत के चन्द्रमा को मुखरुचि, हरिण को लोचन लीला, चमरी को केशपाश, दाड़िम्ब को दन्त-शोभा और सौदामिनी को देहरुचि लौटा दी है। राजनामविहीन ५६० और ५६२ संख्यक पदों की प्रहेलिकाएँ भी इसी समय की रचना मालूम होती हैं। शिवसिंह के नामयुक्त १७० संख्यक पद में विरहिनी नायिका का एक हृदयग्राही शब्दचित्र कवि ने अंकित किया है—यथा—

करतल लीन सोभए मुखचन्द।
किसलय मिलु अभिनव अरविन्द॥
अहनिसि गरए नयन जलधार।
खञ्जने गिलि उगिलल मोतिहार॥

किन्तु उसके उपमा-वैचित्र्य और शब्द-झंकार मानों भाव की गम्भीरता को फूटने ही नहीं देते हैं केवल बंगाल में प्राप्त १७६ संख्यक पद का चित्र बहुत भावघन है—

वामकरे कपोल लुलित केस-भार।
कर-नखे लिख महि आँखि-जलधार॥

दुख के दिनों में अर्जुन राय के आश्रय में बैठ कर कवि ने जो विरह के गान गाये हैं (पदसंख्या २१२) उनमें शब्द कम, परन्तु भाव गम्भीर हैं। चरम दुख के समय में जो उच्छ्‌वास का स्रोत रुक जाता है कवि ने उसकी उपलब्धि की थी। इसीसे वे कहते हैं—

सहज सितल छल चन्द
सबतह से भेल सन्द।
विरह सहाइअ नारि
जिवैकके न हनिअ मारि।

जो चाँद सहज शीतल था वह अब सब प्रकार से मन्द हो गया। नारी को यदि जान से मार देते तो वह बहुत अच्छा था, उससे भी अधिक विरह की यन्त्रणा सहन करा रहा है।

शिवसिंह के पौत्रपर्यायभुक्त राघवसिंह का नामाङ्कित २१८ संख्यक पद कवि के वृद्ध वयस की रचना है। उसमें देखा जाता है कि वसन्त, मलयानिल, चन्द्र, कोकिल इत्यादि विरह उद्दीपक बाहरी वस्तुओं की अपेक्षा नहीं है, केवल राधा के मुख की हँसी सूख गयी है—

जनि जलहीन मीन जक फिरइछि
अहोनिस रहइछि जागि।

उसकी आँखों की नींद को किसने हर लिया, जमीन में पड़ी हुई मछली के समान उसकी हालत हो गयी है। और वह विरह में किसका अवलम्बन करके जीती है ?

"अहनिस जप तुअ नामे"

राजनाम विहीन ५४३ पद में भी यही नाम जपने की बात है—"अनुखन जपए तोहरि पए नाम"; ५४६ पद में इसकी प्रतिध्वनि है :—

सरस मृणाल कइए जपमाली।
अहनिसि जप हरि नाम तोहारी॥

५५४ पद में यह पाया जाता है कि इस विरह में जब प्राणसंशय हुआ है, जब साँस चलती है कि नहीं यह देखा-जाँचा जा रहा है, उस समय यदि उसकी चेतना लौटाने के लिए

"केह बोल आयल हरी।
उससि उठलि सुनि नाम तोहरी॥

५३५ पद में नायिका दूती के द्वारा खबर भिजवाती है—

नाम लइते पिअ तोर।
सर गदगद करू मोर॥

अर्जुन नामाङ्कित पूर्व्वोक्त २१२ संख्यक पद की भाषा के साथ राजनामविहीन ५६९ पद की भाषा और भाव का सादृश्य लक्ष्य करने योग्य है। दूती जाकर नायक से कहती है—

नयन तेजय जलधारा।
न चेतय चीर न पहिरय हारा॥
लख जोजन बस चन्दा।
तैअओ कुमुदिनी करय अनन्दा॥

तुम तो दूर चले आये हो, क्या इसीलिए प्रेम की बात भूल जावोगे ? लक्ष योजन दूर रहने पर रहने पर भी क्या चाँद कुमुदिनी को आनन्द दान नहीं करता ? "दुरहुक दुर गेलें दो गुण पिरीती।" नेपाल पोथी से गृहीत ५३२ संख्यक पद में श्री राधा दुख के आधिक्य में कहती हैं—

जलद जलधि जल मन्दा।
बड़ा बसे दारुण चन्दा॥

ग्रियर्सन संगृहीत ५३९ संख्यक पद में श्री राधा हृदयभेदी क्रन्दन करती हुई कहती हैं मेरे मोहन ने कुब्जा के साथ अनुराग किया, मेरा प्रेम भूल गये।

कतदिन ताकय बाट
हे सखि, शून भेल जमुना घाट।

न हो तो वे मथुरा में ही रहें, केवल एक बार आकर दर्शन दे दें—

ओतहु रहथु गय फेरि।
हे सखि, दरसन देथु एक बेरि॥

ग्रियर्सन संगृहीत एक और पद में (५४६ पद) सखियाँ उद्धव से कहती हैं :—

जाह जाह तोंहे उधब हे
तोंहे मधुपुर जाहे।
चन्द्रवदनि नहि जिउते रे
बध लागत काहे ॥

यह बात सुन कर विद्यापति अपने तन और मन देकर कहते हैं, ना, ना, राधा की प्राणहानि नहीं हो सकती, हरि आज ही गोकुल आवेंगे—

भनइ विद्यापति तनमन दे
सुनु गुनमति नारी।
आजु आओत हरि गोकुल रे
पथ चलु झट झारी ॥

यहाँ विद्यापति श्री चैतन्य के पदानुवर्त्ती कवियों के समान सखी अथवा दूती का अंश ग्रहण न करने पर भी, श्रीराधा की विरह-व्यथा से कातर होकर कहते हैं कि हरि आज ही गोकुल आवेंगे। पदामृत-समुद्र और पदकल्पतरु से गृहीत ७३९ संख्यक पद में देखा जाता है कि कवि गोकुल माणिक के मधुपुर जाने के व्यापार का ही विश्वास नहीं करते हैं—श्रीराधा की विरह-गाथा के उत्तर में कवि कहते हैं "कौतुके छापितहि रहो कान"।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के मथुरा से गोकुल लौटने की बात न रहने पर भी विद्यापति विश्वास नहीं करते कि उनके कृष्ण गोकुल छोड़ कर सदा के लिए चले गये। नेपाल पोथी में प्राप्त एक विरह के पद में (५४८ पद) उन्होंने दूती के द्वारा माधव को सुनाया है—

नदि बह नयनक नीर।
पड़लि रहए तहि तीर ॥
सब खन भरस गेआन।
आन पुछिअ, कह आन ॥

यह बात सुन कर हरि पूर्वप्रीति स्मरण कर घर लौट आये—

विद्यापति कवि भानि।
एल शुनि सारंग पानि ॥
हरखि चलल हरि गेह।
सुमरिए पुरुब सिनेह ॥

बुढ़ापा में विद्यापति ने इस सत्य की उपलब्धि की कि माधव का घर गोकुल में ही था, मथुरा अथवा द्वारिका में नहीं।

बसन्तवर्णन, अभिसार और विरह के शिवसिंहनामाङ्कित पदों के साथ परवर्त्तीकाल में लिखित

विद्यापति के पदसमूह का तुलनामूलकरूप से विश्लेषण करने से यह सिद्धान्त पहचाना जाता है कि कवि ने प्रथम जीवन में प्राकृत नायक-नायिका को लेकर शृंगार रस की कविता लिखी थी, परन्तु परिणत वयस में वैष्णवीय साधना के रस में निमग्न होकर राधाकृष्ण का लीलारस गान किया है। वर्त्तमान युग के मैथिल पण्डित लोग इस सहज सत्य को मानना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि विद्यापति शैव थे, उनके हरगौरी गीत ही मिथिला के शिवमंदिर में गाये जाते हैं और अन्यान्य पद स्त्रियाँ आपस में ही गाकर एक दूसरे का मनोरंजन करती हैं। महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र महाशय लिखते हैं:— मुझे तो यही प्रतीत होता है कि कवि केवल शृंगारिक था, और उसका जीवन भी प्रायः ऐसे ही लोगों के साथ राजसभाओं में व्यतीत हुआ। यह पूर्व में भी कहा गया है कि कवि राधा और कृष्ण के सच्चे स्वरूप से अपरिचित नहीं था; किन्तु सच्चा प्रेम (जिसे हम राधाकृष्ण की भक्ति कहते हैं) कवि ने अपनी इन कविताओं में कहीं नहीं दिखाया। प्रायः उसका उद्देश्य भी यह नहीं था। उन दिनों मिथिला में भक्ति की विशेष चर्चा भी नहीं थी जैसा कि चैतन्यदेव के समय बंगाल में थी (विद्यापति ठाकुर, पृ: ८९-९०)।

विद्यापति के पदों को कालानुयायी न सजाने के दोष से डा० उमेश मिश्र के समान पंडितप्रवर भी विद्यापति के चित्त के क्रमविकास की धारा समझ नहीं सके। विद्यापति शिवसिंह की राजसभा के वातावरण में सचमुच ही शृंगार रस के कवि थे। इस समय में लिखे हुए राधाकृष्ण नामयुक्त पद भी प्रकृतपक्ष में शृंगार रस की कविता है। किन्तु प्रायः दस वर्ष का समय (लिखनावली रचना २९९ ल० स० से भागवत लिपिकाल ३०९ ल० स०) राजबनौली में अपेक्षाकृत दारिद्र्य और विपद में वास करते और श्रीमद्भागवत की प्रतिलिपि प्रस्तुत करते समय उनके मन में एक ऐसा परिवर्त्तन आया कि उसके फलस्वरूप उनके पदों के भाव और भाषा में अनेक रूपान्तर हुआ इसी रूपान्तर को दिखाने की चेष्टा मैंने की है।

डा० मिश्र और शिवनन्दन ठाकुर (महाकवि विद्यापति, पृ० १५९-१८१ जिसमें अन्यान्य व्यक्तियों का मतखण्डन करने के उपलक्ष्य में १९३७ ई० के जुलाइ मास के Searchlight में प्रकाशित मेरे मत की भी समालोचना उन्होंने की है) कहते हैं कि विद्यापति के सारे पूर्वपुरुष शैव थे एवं समसामयिक लोग भी वैष्णव धर्म के पक्षपाती नहीं थे। लेकिन उन्हें याद दिलाने की जरूरत है कि विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर के भ्राता गणेश्वर के कनिष्ठ पुत्र गोविन्द दत्त ने "गोविन्दमानसोल्लास" की रचना की थी एवं उसके मंगलाचरण में उन्होंने अपना उल्लेख हरिकिंकर कह कर किया है। विद्यापति से उम्र में कुछ कम सुप्रसिद्ध व्यवहारशास्त्रवेत्ता वर्द्धमान अपने "द्वैतविवेक" ग्रन्थ के मंगलाचरण में कहते हैं—

मार्गं [illegible] चरेषु [illegible] करोत्स्थले
[illegible] [illegible] करेण [illegible]।
तत्र [illegible] [illegible]—
[illegible] [illegible] हरिः ॥

[illegible]

कपोल स्थल पर पसीना देख कर उसको पोछने के लिए करस्पर्श करते थे, उससे श्री राधा का सात्विक भावजात स्वेद कम न होकर और बढ़ गया था एवं इसी कारण वे हरि विफलप्रयास से बिकल होगये थे।

विद्यापति के समसामयिक कवियों की राधाकृष्ण सम्बन्धी पद रचना को भले ही न मानें, पर विद्यापति के शेष वयस के पोषक भैरव सिंह के आदेश से जो "दण्डविवेक" लिखा गया था उसका साक्ष्य मानना ही पड़ेगा।

इसके अलावा हमलोग बाहर के साक्ष्य पर निर्भर ही क्यों करें ?

विद्यापति के ७६६, ७७०, ७७१ संख्यक प्रार्थना के पद क्या उनके शेप जीवन के अनुताप और वैष्णवीय भाव के श्रेष्ठ परिचायक नहीं है ? यौवन काल में वे शृंगार रस में निमग्न थे और उसी विषय की पद रचना की थी, इसी को लेकर वृद्ध वयस में आक्षेप करते हैं—

"यावत जनम हम तुय पद न सेवल
युवति मति मञे मेलि।
अमृत तेजि किये हलाहल पीयल
सम्पद विपदहि भेलि॥" (७७०)
"निधुवने रमनी रसरंगे मातल
तोहे भजब कोन बेला" (७७६)

किन्तु शेष वयस में एकान्त आत्मसमर्पण का भाव लेकर कवि कहता है—

"माधव हम परिणाम निराशा
तुहुँ जगतारण दीन दयामय
अतये तोहारि विशोयासा" ॥ (८६६)
"साँझक वेरि सेव कोन मागई
हेरइते तुअा पाय लाजे ॥" (७७०)
"माधव बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसी तिल देह सोंपल
दया जनु छोड़वि मोय।" (७७१)

इन तीनों पदों की आन्तरिकता में कौन विश्वास नहीं करेगा ?

अवश्य माधव के साथ साथ उन्होंने शिव के पास भी प्रार्थना भेजी है (७७५ और ७७६ पद): क्योंकि हरि और हर में उन्होंने कोई पार्थक्य नहीं देखा है। ७८२ पद में उन्होंने स्पष्ट कहा है—

एक शरीर लेल दुइ बास।
खने वैकुण्ठ खनहि कैलास॥

और वृद्धावस्था की असहायता में गाते हैं

हरिहर पय पंकज सेवह ते न रह अवसादा (६१३ पद)।

२२-१०-५१
हरप्रसाद दास जैन कौलेज, आरा।

श्री विमानविहारी मजुमदार

नेपाल पोथी के पदों का निर्घण्ट (क)

पहली संख्या नेपाल पोथी की और दूसरी संख्या मित्र-मजुमदार संस्करण की है।

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण	नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण	नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण	नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
मालव राग		मालव राग		मालव राग		घनछी (घनेश्री) राग	
१	२६८	२६	५८०	५१	५२१	७६	४३६
२	३३२	२७	भूमिका पादटीका	५२	४३७	७७	३११
३	५१०	२८	३०६	५३	५०४	७८	५६२
४	२३२	२९	५३२	५४	४५५	७९	३८
५	११३	३०	परिशिष्ट, ग १	५५	३३९	८०	५४३
६	२७१	३१	५२४	५६	परिशिष्ट, ग ४	८१	१७८
७	२५६	३२	४४०	५७	२६४	८२	४३९
८	१६०	३३	४२०	५८	४५२	८३	५४७
९	२६२	३४	५	५९	६००	८४	२४२
१०	४८१	३५	३६८	६०	परिशिष्ट, ग ५	८५	३१२
११	२६१	३६	५१६	६१	५४८	८६	२६७
१२	४२६	३७	५६७	घनछी (घनेश्री) राग		८७	५८९
१३	४१६	३८	५१३	६२	५९२	८८	२५४
१४	५७४	३९	३६६	६३	४९१	८९	४२१
१५	५१७	४०	५७२	६४	५८०	९०	५५०
१६	१६०	४१	परिशिष्ट, ग २	६५	३२८	९१	५१८
१७	३५८	४२	४५९	६६	३२३	९२	३२७
१८	४३	४३	५९३	६७	१३४	९३	२५९
१९	९१	४४	२७२	६८	२९५	९४	३६२
२०	१८३	४५	४४१	६९	३४६	९५	४०६
२१	४२	४६	५९५	७०	३८६	९६	४१२
२२	३८१	४७	३९३	७२	२४१	९७	३८४
२३	३२३	४८	परिशिष्ट, ग ३	७३	२६१	९८	५८२
२४	४५६	४९	१७२	७४	५९३	९९	४१९
२५	५०१	५०	३५३	७५	१२९	१००	२६९

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
धनछी (धनेश्री) राग	
१०१	४११
१०२	३७१
१०३	१९३
१०४	५८४
१०५	१७०
१०६	२९३
१०७	४३४
१०८	भूमिका पादटीका
१०९	१८७
११०	४९४
१११	३५९
११२	३०२
११३	१३५
११४	४५
११५	११४
११६	५५
११७	४२३
११८	४०८
११९	४५१
१२०	४११
१२१	४२४
१२२	३०२
१२३	२७४
१२४	४३२
१२५	२६५
१२६	३९४
१२७	५१२

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
धनछी (धनेश्री) राग	
१२८	४२२
१२९	३५१
१३०	परिशिष्ट, ग,६
१३१	५०६
१३२	परिशिष्ट, ग, १५
१३३	८०४
१३४	८०९
१३५	६१५
१३६	२४८
१३७	३९०
१३८	४३८
१३९	२७६
१४०	५६५
१४१	६१४
आसावरी राग	
१४२	३३०
१४३	४६०
१४४	३८५
१४५	१०८
१४६	परिशिष्ट ग ७
१४७	१५९
मलारी (मल्हार) राग	
१४८	७०
१४९	५०५
१५०	३१७
१५१	५००
१५२	४२५

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
मलारी (मल्हार) राग	
१५३	४०५
१५४	२६२
१५५	२७१
१५६	५६६
१५७	५२१
१५८	५३४
१५९	४६४
१६०	भूमिका पादटीका
अहिराणी (आहिरी) राग	
१६१	३२२
१६२	२३४
१६३	३७३
१६४	५१८
१६५	५७७
१६६	१९८
१६७	७४
केदार (केदारा) राग	
१६८	४४३
१६९	३६९
१७०	परिशिष्ट ग, ८
१७१	५४०
कोलाव (?) राग	
१७२	८०५
कानन (कानेड़ा) राग	
१७३	६६
१७४	४०२
१७५	परिशिष्ट ग ९

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
कानन (कानेड़ा) राग	
१७६	४१८
१७७	२११
१७८	३२५
१७९	परिशिष्ट, ग १०
कोलाव (?) राग	
१८०	१७७
१८१	५५७
१८२	५३०
१८३	५९०
१८४	४५८
१८५	४४४
१८६	३८९
१८७	३२३
१८८	२५२
१८९	८०६
१९०	५०
१९१	१८०
१९२	३
१९३	५०६
१९४	३७७
१९५	४९७
१९६	३६३
१९७	५११
१९८	५६३
१९९	४६३
२००	३७८
२०१	५६२

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
फोलाच (?) राग	
२०२	५८३
२०३	२६३
२०४	भूमिका पादटीका
२०५	३३६
२०६	५६१
२०७	५७६
२०८	परिशिष्ट, ग ११
२०९	४२८
२१०	४१३
२११	४६१
२१२	२८१
२१३	६३
२१४	२६७
सारङ्ग राग	
२१५	२४०
२१६	४८६
२१७	२३३
२१८	२३१
२१९	३३४
२२०	५०१
२२१	४
२२२	५५०
२२३	३४४
गुर्ज्जरी राग	
२२४	परिशिष्ट, ग १२

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
गुर्ज्जरी राग	
२२५	३१०
२२६	४८९
२२७	२९९
२२८	४६२
२२९	८२
२३०	८१
२३१	४५७
वराणी (?) राग	
२३२	४८५
२३३	३५२
२३४	३१५
२३५	२९
२३६	१९२
२३७	४०९
२३८	४२
२३९	३३१
२४०	२५५
२४१	४७७
२४२	४५४
२४३	३९७
२४४	३६०
२४५	१७०
२४६	१९६
२४७	५८२
२४८	४७६

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
वराणी (?) राग	
२४९	४८३
२५०	२६५
२५१	१२०
२५२	४७५
२५३	३४५
ललित राग	
२५४	३८३
२५५	४८७
२५६	२८३
२५७	१६४
२५८	१३९
नाट राग	
२५९	५७१
२६०	१०४
विभास राग	
२६१	८८
२६२	९८
२६३	५१७
२६४	३६१
२६५	३६५
२६६	४३३
२६७	४१६
२६८	४९५
२६९	परिशिष्ट ग १३
२७०	परिशिष्ट ग १४

नेपाल पोथी	मित्र-मजुमदार संस्करण
विभास राग	
२७१	३०४
२७२	३०७
२७३	३०६
२७४	४०७
२७५	३३५
धनछी (धनेश्री) राग	
२७६	५९९
राग उल्लिखित नहीं है	
२७७	६०८
२७८	६०२
२७९	७७७
वसन्त राग	
२८०	६०४
२८१	८१०
२८२	५७८
२८३	४१५
२८४	६०५
२८५	४८२
२८६	४७८
२८७	५३३

पदकल्पतरु में विद्यापति-नामाङ्कित पदों का निर्घण्ट (ख)

प्रथम संख्या पदकल्पतरु की और द्वितीय संख्या नगेन्द्र गुप्त संस्करण की है। ❀ चिह्न का प्रयोग इस अर्थ में हुआ है कि यह पद मिथिला अथवा नेपाल में पाया जाता है। तृतीय संख्या मित्र-मजुमदार संस्करण की है।

पदकल्पतरु	नगेन्द्रगुप्त संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	पदकल्पतरु	नगेन्द्रगुप्त संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
४९	१३२	५६१	१९७	३४	९३८
५७	५१	६२८	२०१	४४	३१
५९	३६	६२९	२०७	३७	२३२❀
६१	८१	९२३	२०८	३९	६३३
६३	१०६	६७१	२०९	३८	६३८
६४	१३५	६७६	२११	४१	?
६६	१५८	६७७	२१५	×	× एकदम बंगला
८०	१२	कुछ मिलता			पद
		हुआ २३५❀	२२२	१४१	६७८
८२	३	६२०	२२६	×	× एकदम बंगला
८३	९	६१६			पद
९२	४०७	६५७	२३७	१९९	×
९६	८८	४४	२३८	७४	×
१०४	४	६१८	२३९	१९७	६९८
१०५	१०	६२२	२४६	३२४	७०१
१०९	९५	६६९	२५०	१९२	×
११०	१०६	६७१	२५१	२००	×
१११	१३४	६७९	२५२	२०२	६९७
११२	१३०	६७५❀	२५३	१८८	६९
१३१	२१३	६९४	२५४	२०१	४९६❀
१९३	४९	२३५❀	२६०	२१४	६९९
१९४	४२	६२४	२७१	२५०	८९
१९५	३१	६३०	३६८	३७४	९३४ ?

पदकल्पतरु	नगेन्द्रगुप्त संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
३८७	४५१	६५३
३९९	५३४	×
४३८	६५९	७१३
४५२	४६०	९३१
४५८	४६३	×
४७३	४६२	६५८
४८४	५३१	६६८
४९३	४४५	६७०
४९४	४२७	६४७
४९७	४२३	६६०
५००	३९९	६५६
५१०	३५९	६५४
५११	३५६	×
५१२	३७०	६५५
५२१	५२५	×
५२४	५३०	६६६
५२८	३७२	×
५३०	३८१	६६३
५३४	३९९	६५६
	(५०० वें पद से अभिन्न)	
५४९	५२४	६५२
६०१	४६८	६४५
६१२	५३५	६६४
६१३	५३२	६६५
६६६	५१७	×
७२१	४०	×
७२६	५५९	×
७२७	५६१	×
७२८	५६८	×
७२९	५६३	७०६

पदकल्पतरु	नगेन्द्रगुप्त संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
७१०	५६२	८०७
७३२	५५८	६९६
७४०	५६०	४९०❀
८३१	६८	६३९
८५५	६९	२'१८, ७११
९११	५४८	७६५
९३९	×	× न० गु० पद ६४२
९४९	२७८	६३७
९५०	६४७	६४९
९६२	३९७	६६७
९६५	४९४	७१२
९६८	७०३	९२६
९६९	७०२	५४१
९७१	७३८	७५५
९७६	२२८	६४२
९७७	२५६	६४४
१०१२	३११	९२८
१०५९	२३	२२
१०६१	२२८	२९
१०७९	५८४	७०३
१०८१	५८३	५०२❀
१०९३	५८०	×
१०९५	५८२	४९८
१०९६	५८५	७०४
१०९९	×	× ६७५
११००	५८१	×
११०३	२०८	×
११०७	८२१	×
१३३६	११७	२३❀

पदकल्पतरु	नगेन्द्रगुप्त संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	पदकल्पतरु	नगेन्द्रगुप्त संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
१३५८	११८	६२६	१६८३	७५२	५४८❀
१४०८	७०४	×	१६८५	७८५	७४६
१४३१	६०४	७१३	१६८६	७४५	७४१
१४३२	६०५	७१८	१६८७	७६१	७५७
१५००	६०६	७१७	१७०१	७५०	७३६
१५०१	६११	११०	१७१२	६६०	७२२
१५०२	६१०	× ढोल की बोल और श्याम नाम	१७१३	७२६	७२०
			१७१४	६७४	७२८
१५२१	३१७	९००	१७१५	७२७	७१९
१६०३	×	×	१७३०	७१३	७२४
१६१७	७४०	७५२	१७३२	×	× नवकवि-शेखर
१६१९	६२१	×			
१६३८	६२४	९२५	१७३५	७१४	७२६
१६३९	६२५	७३९	१७६४	७६५	७६२
१६४१	६७३	७३२	१८२७	७३३	७३५
१६५२	×	परिशिष्ट, बंगाली विद्यापति, २४	१८३२	×	७२३
			१८६१	६६८	७२९
१६७०	६७६	७३३	१८६२	६६४	७३४
१६७२	६५८	×	१८७६	७५९	७५०
१६८०	६४६	×	१८७७	७८६	७४८

ग्रियर्सन द्वारा संगृहीत ८२ पदों का निर्घण्ट (ग)

प्रथम संख्या ग्रियर्सन की, द्वितीय संख्या मित्र-मजुमदार संस्करण की; ग्रियर्सन के जो पद नगेन्द्र बाबू के संस्करण में नहीं हैं उनकी दाहिनी ओर × चिह्न है।

ग्रियर्सन	मित्र-मजुमदार संस्करण	ग्रियर्सन	मित्र-मजुमदार संस्करण
१	२३३—रागत० पृ० ७३, न० गु० तालपत्र (३७)	२	२५९ नेपाल ७, तालपत्र न० गु० ८४
		३	२६६ तालपत्र न० गु० ८५

ग्रियर्सन	मित्र-मजुमदार संस्करण
४	२६४ तालपत्र न० गु० ८०
५	३४६—
६	३६
७	३३७ तालपत्र न० गु० ५२१
८	२६१
९	५८५ ×
१०	१८१—तालपत्र न० गु० ७६६ और ७८४
११	६११
१२	३२४ तालपत्र न० गु० २७६
१३	६४
१४	२५
१५	२४०
१६	२३८ ×
१७	२३६ ×
१८	२४० ×
१९	३१२ तालपत्र न० गु० ३१२
२०	३६८
२१	३४७
२२	२४७
२३	८६५—चन्द्रनाथ की भणिता में मिथिला में पाया गया है।
२४	१७—तालपत्र न० गु० २७
२५	३११, ३१६ रागत पृ० ७८
२६	८६६ भोला झा संगृहीत मिथिला गीत संग्रह में (१ला)
२७	५७
२८	२७६, ३६० क्षणदा गीत चिन्तामणि, पृ० १८
२९	२८३ ×
३०	५६—तालपत्र न० गु० १५०

ग्रियर्सन	मित्र-मजुमदार संस्करण
३१	४६० तालपत्र न० गु० १६२
३२	१८६ तालपत्र न० गु० ७६७
३३	४६८ पदामृत समुद्र, पृ० ६२, पदकल्पतरु १०६५; न० गु० तालपत्र ५२८.
३४	३०५
४५	४८८
३६	३४१ न० गु० तालपत्र ३२०
३७	६००—रागत पृ० ८४-८५ अमियकर भणिता; पदकल्पतरु १५२३ विद्यापति भणिता; क्षणदा गीत चिन्तामणि, पृ० १६६, भणिताहीन न० गु० तालपत्र ३१७
३८	४६६ न० गु० तालपत्र २०१
३९	३५७ ×
४०	७०—नेपाल १४८, तालपत्र न० गु० ३२८
४१	१४६
४२	४६५
४३	४६६
४४	३६६
४५	४०३ न० गु० तालपत्र ४४८
४६	५६६ ×
४७	६०६ ×
४८	४६७
४९	८६७—मिथिला गीत संग्रह में रुद्र झा कृत
५०	४४२
५१	३८०
५२	४६८

ग्रियर्सन	मित्र-मजुमदार संस्करण	ग्रियर्सन	मित्र-मजुमदार संस्करण
५३	४६६	६८	५३६
५४	३८८ न० गु० तालपत्र ४५८	६६	८६८ मिथिला गीत संग्रह में धैरयपति का पद
५५	५०३	७०	५०८
५६	५३१	७१	५०६
५७	५३८	७२	१७० नेपाल १०५ और २४५ न० गु० तालपत्र ६६४
५८	५१६	७३	१६५ न० गु० तालपत्र ६५६
५६	५७६ ×	७४	२७० ×
६०	३२८	७५	१६६
६१	२१७	७७	८५५ ×
६२	५६०	७८	६१२
६३	५८६ ×	७६	५१७
६४	५४६	८०	५६६
६५	२६४	८१	६०६
६६	१६४ नेपाल २५७	८२	६०७
६७	५८१ ×		

निर्घण्ट (घ)

नगेन्द्र बाबू के १३१६ (१९०९ ई०) के संस्करण के पद इस संस्करण की किस संख्या के पद हैं, इसोका इसमें निर्देश है। इससे यह मालूम होगा कि इस संस्करण में कौन कौन पद छोड़ दिये गये हैं। पहली संख्या न० गु० संस्करण को और द्वितोय संख्या मित्र-मजुमदार संस्करण की है।

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
१	८७१	६	६१६	११	२३१	१५	३७
३	६२४	८	६२३	१२	२३७	१७	२५
४	६१८	६	६१६	१३	२३२	१८	८०४
५	६२१	१०	६२२	१४	२२०	२०	२०

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
२१	२१	६१	२४४	९७	४२	१३३	२७६
२३	२२	६२	२४३	९८	२६१	१३४	६७९
२५	२४१	६३	३३	९९	२०९	१३५	६१५
२७	१७	६४	३४	१००	६४०		६७६
२८	४९७	६६	२४६	१०१	२६८	१३८	२७७
२९	३२	६७	६३८	१०३	२६२	१४०	२९३
३०	२३६	६८	६३९	१०४	४३	१४१	६७८
३१	६३०	६९	२५०	१०५	८३२	१४२	२९४
३२	५	७१	२४२	१०६	६७१	१४४	२८१
३४	९३८	७२	८३४	११०	७४९	१४५	२९५
३६	६२९	७३	२५२	११२	२७२	१४६	२९७
३७	२३३	७५	४१	११३	२७१	१४७	८९६
३८	६३२	७६	२२२	११४	७०९	१४८	२७९
३९	६३३	७७	८३१	११५	२७		२९०
४२	६२४	७८	२५१	११६	३०७	१४९	८०६
	६३१	७९	२४९	११७	२३	१५०	५९
४४	३१	८०	२६४	११८	६२६	१५१	२८०
	९३७	८१	९२३	११९	४०	१५२	६८०
४७	८३१	८२	२६०	१२०	२२६	१५३	५७
४९	३९	८३	९३३	१२१	३४४	१५४	६८५
५०	३८	८४	२५९	१२२	४८	१५५	२८३
५१	६२८	८५	२६६	१२३	३४७	१५७	२८९
५२	३८	८७	२६२	१२४	३४९	१५८	६७७
५३	६२७	८८	४४	१२५	४९	१५९	२८५
५४	४ आंशिक	९१	२६५	१२७	५१	१६०	६०
५५	६२५	९२	५५	१२९	२७३	१६१	६८२
५६	६३६	९३	४५	१३०	२७५	१६२	४९०
५७	६३५	९५	६६९	१३१	२५३	१६४	२८६
५८	८३३	९६	८०५	१३२	६७२	१६५	६८७

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
१६६	६९०	२०७	७५	२४१	६४१	२८१	३१८
१६७	६९१	२११	६८१	२४२	१००	२८२	६४२
१६९	६८८	२१२	२९१	२४३	३२५	२८३	९२
१७०	२८८	२१३	६९४	२४४	३०९	२८६	३२२
१७१	६१	२१४	६९९	२४५	९३	२८७	३२२
१७२	६८९	२१५	४६	२४६	९७	२८८	३१३
१७३	६९२	२१६	३५०	२४७	३१७	२८९	३२०
१७४	८३७	२१७	५६	२४८	८८	२९१	३३१
१७५	२१५	२१८	३५१	२५०	८९	३.३	३३३
१७६	२८४	२१९	५२	२५१	३०८	२९४	१०४
१७९	६९३	२२०	५३	२५४	३२६	२९५	३३५
१८०	२९६	२२१	३४८	२५६	६४४	२९७	१०५
१८१	३००	२२२	३४६	२५८	६४३	२९८	८०७
१८२	२९८	२२३	३५३	२५९	३४३	२९९	३३४
१८३	२६	२२४	३५२	२६०	९१	३००	२११
१८४	८३६	२२५	११२	२६१	२५०	३०१	३६१
१८५	३०२	२२६	३०४	२६२	३४२	३०३	८३८
१८६	१८	२२७	९८	२६६	६६	३०४	४५३
१८८	६९	२२८	२९	२६७	३०३	३०५	३६९
१९१	६८	२२९	३१०	२६८	२	३०६	३५९
१९५	३०५	२३०	२५७	२६९	३	३०७	३७०
१९६	३०६	२३१	८०	२७०	७००	३०८	९४
१९७	६९८	२३२	६५	२७१	८३९	३०९	९५
१९८	७०	२३३	४८३	२७२	८९४	३१०	३४०
२०१	४९६	२३४	८५	२७३	३१९	३११	९२८
२०२	६९७	२३५	३३२	२७४	३२९	३१२	३१२
२०४	४९२	२३७	३११	२७८	६३७	३१३	३३९
२०५	७३	२३९	३१३	२७९	३२४	३१५	३३८
२०६	७४	२४०	९०	२८०	८९५	३१७	९००

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
३१८	३२०	३५५	१२१	३९५	३९९	४३५	४२५
३१९	२९९	३५७	३८७	३९७	६६७	४३७	४५२
३२०	३४१	३५८	८४५	३९९	६५६	४३८	२२७
३२१	४८८	३५९	६५४	४००	४४५	४३९	१४७
३२४	७०१	३६१	३८९	४०२	४१६	४४०	४४१
३२६	३५६	३६२	८६२	४०५	२३४	४४१	४४४
३२७	३५५	३६३	३९०	४०६	४१७	४४२	२५४
३२८	७०	३६४	१२२	४०७	६५७	४४३	२६७
३२९	३५४	३६५	८४४	४०८	४१८	४४४	१३४
३३०	१११	३६७	८०८	४१०	४१९	४४५	६६२
३३१	६७४	३६८	८०९	४१२	४४२	४४६	६७०
३३२	६७३	३६९	८९७	४१३	४००	४४७	४३८
३३३	२२५	३७०	६५५	४१४	७१	४४८	४०३
३३४	४३०	३७१	१३०	४१५	४२१	४४९	४०४
३३६	११५	३७३	३९१	४१६	४२०	४५०	१३२
३४०	११६	३७४	९३०	४१७	४२	४५१	४३७
३४१	३८५	३७६	३९२	४१८	४२१	४५२	८४२
३४२	११४	३७७	३२०	४२१	११३	४५३	८४४
३४३	१२७	३७९	९२९	४२२	४२२	४५४	६५०
३४४	३८१	३८१	६६३	४२३	६६०	४५५	११८
३४५	३८२	३८४	३४९	४२४	८४६	४५६	४३६
३४६	३८३	३८६	३९४	४२५	४०१	४५७	४३४
३४७	३८४	३८७	३९५	४२६	४६६	४५८	३८८
३४८	४३९	३८८	४०७	४२८	८४०	४५९	३६५
३४९	४४०	३८९	३९६	४२९	५१७	४६०	९३१
३५०	३८६	३९०	३९७	४३०	३७८	४६१	४३३
३५१	६५३	३९१	४०५	४३१	४२३	४६२	६५८
३५२	६५१	३९२	३४६	४३३	६६१	४६६	४३२
३५४	१३३	३९३	११७	४३४	४०२	४६७	१४८

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
४६८	६४५
४६९	४६८
४७१	४५४
४७२	४५०
४७३	१८९
४७४	४६९
४७५	१५०
४७६	४७०
४७७	१२८
४७८	४६६
४८०	२७४
४८१	४०८
४८२	१०८
४८३	३८३
४८५	७९
४८६	८४१
४८७	४६७
४८८	४०६
४८९	८६९
४९०	४५५
४९१	४५६
४९२	४७२
४९३	४२९
४९४	७१२
४९५	१२९
४९६	३७३
४९७	४६१
४९८	४२८
४९९	४७३

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
५००	१५१
५०२	८४६
५०३	१३५
५०४	५०
५०५	१५२
५०६	४४८
५०७	१५३
५०८	४६५
५१०	५५७
५११	३६२
५१२	४५८
५१३	१५४
५१४	३६०
५१५	३५९
५१७	१५५
५१८	४६२
५१९	४७४
५२०	४४९
५२१	३३७
५२२	३३६
५२४	६५२
५२६	४७५
५२७	४७६
५२८	४७७
५३०	६६६
५३१	६६८
५३२	६६५
५३९	८६०
५४०	३०

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
५४१	८२
५४८	७६५
५५३	५६४
५५६	२४७
५५७	४४७
५५८	६९६
५६०	४८९
५६२	७०७
५६५	२४५
५६६	४८५
५६७	४९५
५६९	८६१
५७०	४९४
५७१	४९३
५७५	८५४
५७९	७६
५८२	४९८
५८३	५०२
५८४	७०३
५८५	७०४
५८७	५००
५८८	४९१
५८९	४९९
	७०२
५९२	८५९
५९४	४८२
५९५	४८४
५९९	७७
६००	१३८

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
६०१	८१०
६०२	८४९
६०३	४०८
६०४	७१३
६०५	७१८
६०६	७१७
६०७	१३९
६०८	४८०
६०९	२२१
६११	११०
६१२	२२०
६१३	१४०
६१४	१४१
६१६	५०५
६१७	१५६
६१८	१५७
६१९	४७९
६२०	५०३
६२४	९२५
६२५	७३९
६२६	१५८
६२७	१५९
६३०	५२०
६३१	५८५
६३२	५८२
६३४	५२३
६३७	५२४
६३८	१६०
६४०	५२६

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
६४१	४४५	६७४	७२८	७०७	५०८	७४०	७५२
६४३	४३५	६७६	७३३	७०९	५७६	७४१	५४७
६४४	१६१	६७७	५३१	७१०	५४३	७४२	५४८
६४५	५२७	६७८	१६६	७११	७२५	७४३	७५३
६४७	६४९	६८०	८५१	७१२	८४७	७४४	७५१
६४८	१६२	६८१	७३६	७१३	७२४	७४५	७४१
६४९	५२८	६८२	५३३	७१४	७२६	७४६	१७६
६५०	५२९	६८३	५३४	७१५	१७१	७४७, ७६४	१७७
६५१	५३०	६८४	८५०	७१७	५११		
६५२	१६३	६८६	८९८	७१८	१७२		
६५३	५२३	६८७	५३५	७१९	१७३	७४८	२१८
६५४	१६४	६८८	५३६	७२०	५४४	७४९	७५०
६५५	१८८	६८९	१६७	७२१	२१०	७५०	७४३
६५६	१६५	६९०	५०७	७२२	५१४	७५२	७४९
६५७	७३७	६९१	१६८	७२३	२१४	७५३	५५२
६५८	७१३	६९२	५३७	७२४	२१९	७५४	५५३
६६०	७२२	६९३	१६९	७२५	२१३	७५५	१७८
६६१	७२१	६९४	१७०	७२६	७२०	७५६	१७९
६६२	८५६	६९५	५१९	७२७	७१९	७५७	५५४
६६३	५०६	६९७	५०९	७२८	नेपाल २५७, ग्रि० ६६	७५८	८५८
६६४	७३४	६९८	५३८			७६०	७४४
६६५	९२४	६९९	५३९	७२९	१७४	७६२	५५५
६६६	४६०	७००	२१७	७३१	७४०	७६३	७
६६८	७२९	७०१	७१५	७३३	७३५	७६५	५३६
६६९	९२७	७०२	५४१	७३५	८५०	७६६	१८०
६७०	५३१	७०३	९२६	७३६	१७५	७६७	५५७
६७१	३७५	७०४	५४५	७३७	७३१	७६८	७४५
६७२	८६३	७०५	३६४	७३८	७५५	७६९, ७८४	१८१
६७३	७३५	७०६	५४२	७३९	५४६		

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
७७०	४४३
७७१	१८२
७७२	१८३
७७३	२६९
७७५	५१३
७७७	६५९
७७९	७४२
७८०	१८४
७८१	८५३
७८२	५५८
७८५	७४६
७८६	७४८
७८७	१८५
७८८	७५४
७९०	६३४
७९१	७५७
७९३	५५९
७९४	३६
७९५	७६२
७९६	५७०
७९७	१८६
७९८	५७१
७९९	८६५
८००	८६६
८०२	१४२
८०३	२२३
८०५	७५९
८०६	७५९
८०७	७६१
८०८	८६८
८०९	८६७
८१०	७६७
८११	६११
८१२	७६६
८१३	५७५
८१६	१३७
८१७	५७२
८१८	१९२
८१९	४८१
८२०	७६३
८२३	७६४
८२७	१८९
८३०	५७०
७३१	८६३
८३२	९३२
८३३	७१०
८३४	७६८
८३५	७७०
८३७	७७१
८३८	७६९
८३९	६१४
८४०	६१५

न० गु० हर गौरी

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
१	१
२	७७२
३	५९८
४	११
५	१०
६	७७३
८	७८२
९	५९९
१०	७८३
११	६०८
१२	७८४
१३	६०७
१४	६०६
१५	७८६
१६	७८७
१७	७८८
१८	७८९
१९	६०२
२०	६०३
२१	७९०
२२	९१९
२३	७९१
२४	७७७, ८०३
२५	७९२
२६	७९३
२७	७९४
२८	७९५
२९	६००
३०	७९६
३१	७९७
३२	६०४
३३	६०१
३४	७९८
३५	१२
३६	७९९
३७	८००
३८	१३
३९	८०१
४१	६०६
४२	७७५
४३	७७६
४४	६१५

गंगा गीत

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
१	६१२
२	७८०
३	९३९

नाना विषयक पद

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
१	८८२
२	६१०
३	१९१
४	३'५
५	८६४
७	२०२
९	८
१०	९
११	९२०
१२	९२१
१३	४६६

न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण	न० गु० संस्करण	मित्र-मजुमदार संस्करण
परकीया नायिका		प्रहेलिका	
१	८८४	२	५६०
२	८८५	३	८९०
३	५८८	४	५८०
४	१६	५	१९४
६	५८९	६	५७८
७	८८६	८	५३३
८	८८७	९	५८७
९	५९०	१०	१९'१
१०	८८८	११	१९६
११	५९६	१२	५७७
१२	५९७	१३	१९८
१३	२०४	१४	१९७
१४	२०३	१५	८९१
१५	६	१६	१९९
		१७	२००
प्रहेलिका		१९	२०१
१	३२८	२०	८९२

नगेन्द्र बाबू के संस्करण में कुल—९३५ पद
उसमें से छोड़े गये—२०३ पद
और लिये गये—७३२ पद
इस संस्करण में नये जोड़े गये—२०७
सब मिलाकर—९३९ पद

उनमें—

नेपाल पोथी से—४६
रामभद्रपुर पोथी से—६७
पदकल्पतरु से— ३
पदामृतसमुद्र से— २
बेनीपुरी संस्करण से—१२
मिथिला गीत संग्रह से—२३
ग्रियर्सन से—१३
रमानाथ झा संग्रह से— ६
पंडित बाबाजी महोदय की पोथी से— ८
विविध—२७

२०७

निर्घण्ट (ङ)

नगेन्द्रगुप्त के संस्करण के जो पद छोड़ दिए गये हैं उनकी तालिका एवं छोड़ने का कारण नीचे दिये जाते हैं।

२ पदकल्पतरु २४७१ संख्यक अज्ञात लेखक का।
७ प० स० (पृ: ३१)।
१६ रातगरंगिणी पृ: ७६, कवि रतनाइ कृत।
१९ ऐ० पृ: ७२, गजसिंह कृत।
२२ बटतला की छपी पुस्तक से, जटिला नाम रहना जाल है।
२४ कीर्त्तनानन्द से लिया गया है, किन्तु उसमें भणिता नहीं है।

२६ पदकल्पतरु २५५५, कविशेखर कृत बंगला पद।
३३ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन।
३५ ऐ०
४० }
४१ } श्यामनाम है।
४३ नेपाल पोथी, धीरेसर कृत।
४५ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन।
४६ ऐ०
४८ रागतरंगिणी कंसनारायण कृत, पृ० ७७।
५९ ऐ० पृ० १०१-१०२ गोविन्ददास भण कंसनारायण।
६० ऐ० पृ० १११, जीवनाथ कृत।
६५ क्षणदा गीत चिन्तामणि, भणिताहीन।
७० पदकल्पतरु, भणिताहीन।
७४ ऐ० २३८, बंगाली विद्यापति का
८६ पदामृतसमुद्र, गोविन्ददास और विद्यापति की भणिता
८९ क्षणदागीत चिन्तामणि, वल्लभकृत।
९० ऐ०
९४ रागतरंगिणी, पृ० १३ "नृपसिंघ कह"।
१०२ कीर्त्तनानन्द भणिताहीन।
१०७ वटतला बंगाली विद्यापति "राहि विकार"।
१०८ पदकल्पतरु, कविशेखरकृत।
१०९ ऐ० भणिताहीन।
१११ कीर्त्तनानन्द, प० त० १८० गोपालदास ? भणिताहीन।
१२६ रागत० भवानीनाथ।
१२८ प० त० कविशेखर।
१३६ क्षणदा वल्लभ।
१३७ बटतला, बंगाली विद्यापति।
१३९ प० त० कविशेखर
१४३ क्षणदा, भणिताहीन।
१५६ ऐ०
१६३ नेपाल, लखिमिनाथ।
१६८ क्षणदा पृ० २३ टीका, कविरंजन।
१७७ क्षणदा, वल्लभ।
१७८ प० त० कविशेखर
१८७ प० त० ऐ०
१८९ ऐ०
१९० विद्यापति का पद तोड़कर अनुकरण
१९२ प० त० २५०
१९३ प० त० कविशेखर
१९४ क्षणदा, वल्लभ
१९९ बटतला, छोटे विद्यापति
२०० प० त० २५१ ऐ०
२०३ कविरञ्जन
२०८ प० त० ११०३ छोटे विद्यापति सुवल शब्द का प्रयोग
२०९ प० त० सुवल
२१० पत० विद्यापति गोविन्ददास
२३६ पत० शेखर
२३८ क्षणदा, भणिताहीन
२४९ पत० कविशेखर
२५२ ऐ०
२५३ पत० शेखर
२५५ पत० शेखर (सुवल)
२५७ क्षणदा, वल्लभ
२६३ कविशेखर (जटिला ललिता)
२६४ पत० कविशेखर
२६५ पत० शेखर

२७५ पत० शेखर सूर्यमन्दिर की पूजा
२७६ पत० कविशेखर
२७७ रसमञ्जरी, भणिताहीन
२८४ क्षणदा, बल्लभ
२८५ कीर्त्तनानन्द, कविरञ्जन
२९० पत० कविशेखर
२९२ ऐ०
२९६ रसमञ्जरी कविरञ्जन
३०२ पत० कविशेखर
३१४ रसमञ्जरी, कविरञ्जन
३१६ पत० १३१० कविशेखर
३२२ नेपाल २२४, भानु
३२३ पत० भणिताहीन
३२५ पत० कविशेखर
३३५ भणिताहीन
३३८ कीर्त्तनानन्द भणिताहीन
३३९ ऐ०
३५३ रागत० भणिताहीन
३५६ पत० ५११ छोटे विद्यापति
३६० रागत० श्रीनिवासमल्ल
३६६ उमापति, पारिजात हरण
३७२ पत० ५२८ छोटे विद्यापति
३७५ पत० ४७८ भूपतिनाथ
३७८ पत० सिंह भूपति
३८० पत० भूपति
३८२ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन
३८३ पत० २०३८, छोटे विद्यापति
३८५ पत० भणिताहीन
३९४ कीर्त्तनानन्द, चम्पति
३९६ पत० ज्ञानदास ४९६ पारिजातहरण
३९८ पत० भणिताहीन

४०१ पत० कीर्त्तनानन्द, चम्पति
४०३ पत० ५०२ भणिताहीन
४०४ पत० कविशेखर
४०९ कीर्त्तनानन्द, जगदानन्द
४११ हरिपति
४१९ पत० ४७९ भूपतिनाथ
४२० पत० ४८०, चम्पति
४२७ पत० ४९४ छोटे विद्यापति
४३६ पत० कविशेखर
४६२ पत० ४५८ छोटे विद्यापति
४६४ मिथिला हरिपति
४६५ कीर्त्तनानन्द कविशेखर
४७० पत० कविशेखर
४७९ नेपाल १०२ कंसनारायण
४८४ रागत० जसोधर
५०१ नेपाल, ११४ रुद्रधर
५०९ नेपाल ३० राजपंडित
५२३ रागत० १०१, दासगोविन्द
५२५ सकीर्त्तनामृत, २९५ छोटे विद्यापति
५२९ पत० भणिताहीन
५३३ पत० कविशेखर
५३४ पत० ३९९ रायशेखर
५३६ पत० भूपति
५३७ पत० कविशेखर
५३८ दासगोविन्द
५४२ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन
५४३ ऐ०
५४४ अज्ञात, भणिताहीन
५४५ पत० ६२८, कविशेखर
५४६ पत० १०५८, कविशेखर
५४७ अज्ञात, भणिताहीन

५४६ क्षणदा, भणिताहीन
५५० पत० कविशेखर
५५२ अज्ञात, कविशेखर
५५४ ऐ०
५५५ ऐ०
५५६ अज्ञात विद्यापति (रायशेखर)
५६१ प० त० ७२७, छोटे विद्यापति
५६३ प० त० ७२६ ऐ०
५६४ अज्ञात विद्यापति (रायशेखर)
५६८ प० त० ७२८, छोटे विद्यापति
५७२ क्षणदा, भणिताहीन
५७३ प० त० चम्पतिपति
५७४ क्षणदा, भणिताहीन
५७६ रागत० पृ० ११५ कृष्णनारायण
५७७ पत० ६६६ विद्यापति (राय)
५७८ मिथिला (हरिपति)
५८० प० त० १०६३ छोटे विद्यापति
५८१ प० त० ११०० ऐ०
५८६ प० त० १०७८ कविरंजन
५६० क्षणदा, वल्लभ
५६१ पत० सिंहभूपति
५६३ कीर्त्तनानन्द कविशेखर
५६६ प० त० कीर्त्तनानन्द विद्यापति गोविन्ददास
५६७ पं० त० कविशेखर
५६८ अज्ञात, कविशेखर
६१० प० त० १५०२ छोटे विद्यापति
६१५ अज्ञात विद्यापति राधामोहन
६२१ प० त० १६१६ छोटे विद्यापति
६२२ कीर्त्तनानन्द भणिताहीन
६२३ ऐ० ऐ०
६२६ ऐ० ऐ०
६३५ मिथिला, रागत, गजसिंह
६३६ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन
६३६ प० त० भणिताहीन
६४२ रागत० प्रीतिनाथ नृप
६४६ प० त० १३८० छोटे विद्यापति
६५८ प० त० १६७२ ऐ०
६६७ प० त० भणिताहीन
६६५ प० त० १६५२ विद्यापति (श्याम)
६७६ मिथिला न० गु० ने स्वीकार किया है कि यह पद विद्यापति का नहीं है।
६८५ अज्ञात कविशेखर
६६६ मिथिला विद्यापति
७०८ नेपाल, कंसनृपतिभण
७१६ अज्ञात, चम्पति
७३० अज्ञात, सिंहभूपति
७३२ मिथिला विद्यापति
७३४ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन
७५१ ऐ०
७५८ प० त० भूपति
७६१ प० त० १७२६ भूपति
७७४ कीर्त्तनानन्द, भणिताहीन
७७६ ऐ०
७७८ अज्ञात, भणिताहीन, वीरनारायण
७८३ तालपत्र, पंचानन कृत
७८६ अज्ञात कविशेखर
७६२ रागत० ६८ पृ० धरणीधर
८०१ तालपत्र राउ (भोगिसर)
८०४ प० त० १६८२ विद्यापति
८१४ अज्ञात भणिताहीन
८१५ प० त० १६८३ भूपतिसिंह
८२१ प० त० ११०७ विद्यापति

८२२	प० त० २००८ गोविन्ददास	४०	नाना-भन जयदेव हरिविषयक
८२४	अज्ञात विद्यापति	६	नाना—दस अवधानभण
८२५	क्षणदा भणिताहीन	८	„ —अज्ञात
८२६	कीर्त्तनानन्द कविशेखर		परकीया
८२७	आतम (नेपाल १६०)	५	×
८२६	रागत लछमिनाथ		प्रहेलिका
८३५	रागत०, मिलता नहीं	७	×
७	हरगौरी-नेपाल कविरतन	१८	×

कुछ छोड़ दिए गए पद—२०२

छोड़े हुए पदों का आकर और न० गु० की संख्या

नेपाल ६ (४३, १६३, ३२२, ४१६, ५०१, ५०६, ७०८, ८२७, हर ७)

रागतरंगिणी १६ (१६, १६, ४८, ५६, ६०, ६४, १२६, ३५३, ३६०, ४८४, ५२३, ५७६, ६४२, ८२६, ७६२, ८३५)

तालपत्र की पोथी १ (७८३)

क्षणदागीत चिन्तामणि १७ (६५, ८६, ६०, १३६, १४३, १५६, १६८, १७७, १६४, २३८, २५७, २८४, ५४६, ५७२, ५७४, ५६०, ८२५)

कीर्त्तनानन्द २८ (२४, ३३, ३५, ४५, ४६, १०२, १११, २८५, ३३८, ३३६, ३८२, ३६४, ४०६, ४६५, ५४२, ५४३, ५५१, ५६३, ५६६, ६२२, ६२३, ६२६, ६३६, ७३४, ७५१, ७७६, ८२६)

रसमंजरी ३ (२७७, २६६, ३१४)

पदकल्पतरु ८४ (२, २६, ७०, ७४, १०८, १०६, १२८, १३६, १४८, १८७, १८६, १६२, १६३, २००, २०८, २०६, २१०, २३६, २४६, २५२, २५३, २५५, २६३, २६४, २६५, २७५, २७६, २६०, २६२, ३०२, ३१६, ३२३, ३२५, ३५६, ३७२, ३७५, ३७८, ३८३, ३८५, ३६६, ३६८, ४०१, ४०३, ४०४, ४१६, ४२०, ४२७, ४३६, ४६३, ४७०, ५२६, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५४५, ५४६, ५५०, ५६१, ५६३, ५६८, ५७३, ५७७, ५८०, ५८१, ५८६, ५६१, ५६६, ५६७, ६१०, ६११, ६३६, ६४६, ६५८, ६६१, ६७५, ७५८, ७६१, ८०४, ८१५, ८२१, ८२२)

निर्घण्ट (च)

नेपाल पोथी के पदों में कृष्ण का कौन नाम पाया जाता है, इसकी तालिका इसमें है।

प्रथम संख्या नेपाल पोथी की, और द्वितीय संख्या वर्त्तमान संस्करण के पदों की है।

नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण	नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण	नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण	नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण
माधव		माधव		मधुसूदन		मधुसूदन	
१	२६८	१९९	४६३	४०	५७२	२६६	४३३
२	३३२	२१२	२८१	४१	४४१	२७३	३०६
१७	३५८	२२७	२९९	६१	५४८		
१९	६१	२२८	४६२	७६	४३६	मुरारी	
२२	३८१	२४१	४७७	१०३	१९३	४१	परि० ग २
२४	४५६	२४२	४५४	११६	५५	७५	१२९
२६	५८०	२४४	३६०	१३७	३९०	९४	३७२
३०	परिः ग० १	२४८	५७९	१५७	५२१	१४३	४६०
३२	४४०	२४९	४८३	१५८	५३४	१५१	५००
४८	परिः ग० ३	२५०	२९०	१६१	३२२	१५४	२६२
७०	३८६	२५२	४७५	१६६	१९८	१७१	५४०
७२	२४५	२५३	३८३	१६७	७४	२२१	४
८३	५४७	२५७	१६४	१६९	३६९	२३१	४१७
१३०	परि ग० ६	२६१	८८	१९८	५६३	गोविन्द	
१४२	३३०	२६७	४१६	२०२	५८३	१३	४१९
१५२	४२५	मधुसूदन		३०३	२४९	१४९	५०५
१६४	५५८	२८५	४८२	२०४	भूमिका पादटीका	कान्ह, कन्हा, कान्हा,	
१६५	५७७	२८६	४७९	२२२	५५०	कान्हु, कन्हाइ	
१६९	३६९	हरि		२३६	१९२	४	२३२
१८०	१७७	२१	४२	२४६	१९७	८	१६०
१८१	५५७	२३	३२३	२४७	५८२	११	२६०
१८२	५३०	२७	भूमिका पादटीका	२५१	१२०	१२	४२९
१९०	५०	२९	५३२	२५९	५७१	१५	४१७
१९४	३७७	३५	३९८	२६३	५१७	१६	१६०
१९५	४१७	३९	३६६	२६४	३६१	३३	४२०

नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण	नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण
कान्ह, कन्हा, कान्हा, कान्हु, कन्हाइ		काान्ह, कन्हा, कान्हा, काहु, कान्हाइ	
३८	५१३	११०	४६४
४३	४६३	११४	४५
५२	४३७	१४०	५६५
५७	२६४	१५२	४२५
६२	५६१	१५६	५६६
६७	१३४	१६८	४४३
६६	३४६	१७३	६६
७२	२४५	१६३	५७६
७३	२६१	१६६	३६३
८१	१७८	२०६	४२८
८६	२६७	२१०	४१३
६६	४१२	२१८	२३१
१०५	१७०	२३६	३३१
१०८	भूमिका पादटीका	२४५	१७०

नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण	नेपाल पोथी	वर्तमान संस्करण
कान्ह, कन्हा, कान्हा, कान्हु, कन्हाइ		गोप	
२५३	३४५	१२८	४२२
२८२	५७८	१२६	३५१
२८७	५३३	१३६	२७६
नन्द के नन्दन		२३०	८१
२१५	२४३	२३७	४०६

रागतरंगिणी के जिन जिन पदों में कृष्ण का नाम है उनकी पृष्ठसंख्या

माधव ८१, ८५, ६४, १०४, १०८, ११६, ११६-७

हरि ५४, ५५, १०४, १०७—४

मुरारि ४७, ७६, ७६—३

मधुसूदन ४७—१

बनवारि ४७—१

कान्ह ४१, ६१, ६४—३

काला ४१—१

रामभद्रपुर की पोथी के जिन जिन पदों में कृष्ण का नाम है उनकी संख्या

माधव—३७, ४० ,४१, ४३, ६१, ६५, ६६, ६७, ७६, १६४, १७१, १८६, ३८२, ३८७, ४०४, ४०६, ४०७, =१७

कान्ह —३१, ३६, ४२, ४६, ६७, १६७, १८८, ४००, ४०६, ४१५=१०

हरि —६६, १६६, ३०५, ३८३, ३८५, ३६६, ४१४, ४१७=८

मुरारि—२८, १५६, ३०५=३

कृष्ण —३८६ (कओहब समाद कृष्ण के मोर) ।

नगेन्द्र गुप्त की तालपत्र पोथी (नगेन्द्र गुप्त के संस्करण की पदसंख्या)

(घ० निर्घण्ट में पाठक वर्त्तमान संस्करण की संख्या पाएँगे)

माधव—६४, ७२, १५७, १८२, २३२, २४८, २५६, २६६, २७१, २६७, ३१७, ३४३, ३४४, ३४६, ४७१, ४८३, ५०७, ५१७, ५१६, ५२०, ५२१, ५२७, ६०२, ६०८, ६५५, ७२५, ७४७, ७५५, ७५७, ७६२, ७६४, ७६५, ७६७, ७६६, ७७१, ७८०, ८१६—३७

कान्ह प्रभृति—१२, २७, ५८, ६३, ७५, ८०, १२५, १४६, १५६, १८१, २१७, २१६, २२५, २४०, २६०, २७३, ३२०, ३२६, ३४२, ३७६, ३६३, ४१३, ४२५, ४६७, ४७६, ४७८, ४८६, ५००, ५५३, ५६६, ६१६, ६३८, ६४८, ६४६, ६८०, ६८६, ६६४, ७५२, ७५३, ७५४, ८१८, ८१७, = ४२

हरि —७६, ६७, ६६, १२७, १६२, २२०, २२१, २८७, ३०३, ३०७, ४२६, ४४६, ५११, ६४५, ६५३, ६५६, ७१८, ७३१, ७३६, ७५२, ७७६, ७८०, ७६७, ८२३, ८१८=२५

मुरारि—१७६, २३४, २७६, ४६२, ४६५, ४६६, ५१६, ५१७, ६३१, ६४० ६६४, ७५२, ७६७=१३

वनमाली—२६५=१

मधुरिपु — ६६=१

मधुसूदन—६०३=१

कृष्ण नाम न रहने पर भी यमुना, गोप, पुरुषोत्तम, राही, प्रभृति शब्द हैं

२४६, ३२७, ४३८, ४५०, ७४१ =५

ग्रियर्सन संगृहीत पदों में कृष्ण का नाम

माधव—७, ६, १०, १४, १६, १७, १८, २०, २१, २६, ३७, ४१, ४३, ५१, ५३, ५५, ५८, ५६,, ६३, ६७, ७४, ७६, ७७=२३

कन्हाई प्रभृति—४, ५, २१, २४, ३४, ३६, ४८, ६३, ७२,= ६

हरि —११, २१, २६, ३१, ३२, ३५, ४८, ५२, ६४, ७३, ७४=११

मुरारि —१२, २०, २३, ६२, ६४, ७२ = ६

मोहन —६८=१

बंगाल के प्राचीन संकलन ग्रन्थों के पदों में कृष्ण का नाम

(पद संख्या वर्त्तमान संस्करण की)

माधव—४७, ६०, १०६, १७६, १७६, १८५, ६१७, ६१६, ६२०, ६२२, ६२३, ६४५, ६४६, ६४७, ६६२. ६६३, ६६८, ६७७, ६७६ ६८६, ६६१, ६६३, ७०६, ७१०, ७१५, ७२०, ७२१, ७३४, ७३५, ७३८, ७३६, ७४१, ७४२, ७४३, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४६, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५५, ७५७, ७६१, ७६३, ७६५, ७६६, ७७१=५०

कान प्रभृति—४४, १७६, १८६, ६१६, ६१८, ६३५, ६३६, ६४१, ६४३, ६४५, ६५५, ६५६, ६५६, ६६४, ६६५, ६६६, ६७०, ६७१, ६७८, ६८२, ६८३, ६८६, ६६८, ७१२, ७१३, ७१६, ७३४, ७३६, ७३६, ७४०, ७४४, ७४६, ७५५, ७५८,=३५

हरि —६१, ८७, ६४१, ६४६, ६५८, ६६६, ६६७, ६७०, ६७३, ६७७, ६८७, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ७२५, ७२६, ७२७, ७३२, ७३४, ७४४, ७४८, ७६१, ७६७, ७७०=२५

शुद्ध-पत्र

[अनेक बार प्रेस-प्रूफ न देखने के कारण प्रथम दो खण्डों में कुछ छापे की भूलें रह गयी हैं। उन्हें अगले संस्करण में दूर करने की चेष्टा की जाएगी। अधिकतर भूलें ऐसी हैं जिन्हें सहृदय पाठक पढ़ते ही समझ जाएँगे, जैसे, चन्द्रविन्दु, अनुस्वार, मात्राओं आदि का छूट जाना या बढ़ जाना, 'ण' का 'न' छप जाना इत्यादि। परन्तु मूल पदों की उन भूलों को ज्यों का त्यों नहीं छोड़ा जा सकता जिनसे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उन्हें नीचे दिया जाता है। अच्छा होता, पाठक पहले उन्हें इस शुद्धिपत्र से मिला कर शुद्ध कर लेते और तब पढ़ते। —हिन्दी रूपान्तरकर्त्ता]

पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	३	असन	अरुन	४१	१८	ततु	तनु
८	४	वेहघ	वेहप्प	४६	१०	रमस	रभस
६	२१	काटि	कोटि	४८	१५	गड़िलो	जड़िलो
१२	८	पाउ	राउ	५८	४	थाहि	ताहि
१५	१	पहुसवो उपरि	पहुसब्रो उतरि	५६	१२	केर	करे
१६	२	गइल	गहल	६२	६	कतपए	कतपर
२०	५	विरोखि	विशेखि	६४	३	धानि	धनि
२२	८	नारि	नाभि	६४	४	एक	कए
२३	८	बान्धे	बांके	६४	६	कश	केश
२४	१	सुख	मुख	६६	१	सङरि	साङरि
२५	१०	वह	कह	६६	१	झङरि	झाङरि
२७	६	अपरुप	अपरुव	६६	३	पँवार	पँड़ार
३०	१	सुन्दर	सिन्दुर	७४	१२	कव	कहव
३०	९	तिभुवन	तिहुअन	७५	४	नागरिजन	नागरिपन
३२	१३	मे	के	८१	२	हरयेँ	हरखेँ
३३	११	निहुर	निठुर	८१	३	शोक	गोरु
३४	८	पासरए	पसारए	८१	७	चिन्हइ	चिन्थह
३५	७	पुरुव	पुरुष	८८	४	अङ्कस	अङ्कुस
३६	११	नुकेलाइ	नुकेलाह	९०	१	मूपुर	नूपुर
३६	१	अन्धर	अम्बर	१००	८	वेटल	वेढ़ल

पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१००	१३	इसि	हसि
१०४	२	दुरवाह	दुरवार
१०४	१७	सिनेह	सन्देह
१०७	२	बन्धु	बन्डु
१०८	१०	पारिअ	पाबिअ
१२१	८	गुनीस	गुणसि
१२१	१३	नहे	नेह
१२६	१	दीअ	रीअ
१३३	८	कटि	कुटि
१३६	८	उपअ	उदअ
१३८	२६	पए	पत्र
१५२	६	दिव	दिन
१५४	१३	अनागति	अनागरि
१६०	१०	रहइ	बरइ
१६१	९	भागिअ	मागिअ
१६१	१६	निरोधिअ	निबोधिअ
१६५	८	गेला	भेला
१६८	११	परय	पबय
१७१	६	वारिअ	वारिस
१७३	३	संभ्रक	सन्अंक
१७७	८	दबन	पबन
१७८	१४	पथ	पख
१८२	८	ताँह	तोँह
१८४	५	तुम	तुअ
१८५	१	सखिजन	सखिगन
१८८	९	रिवारल	रिवाड़ल
१९३	५	वरवस	परवस
१९५	२	गभावसि	गमावसि
१९५	९	तख तख	भख भख
१९६	९	अधिक	अछिक
१९७	२	लोअन	भोअन
१९७	७	रहत	बहत
१९७	१३	देख	सेख
१९७	१४	लहु	हलु
१९८	१०	हेरितरि	हेरितहि
१९८	१५	विहुलिहु	विहिलिहु
२०४	७	लहुरी	लहुड़ी
२०९	४	लानए	जानए
२१२	२	भले	भेल
२१३	१५	आइति	जाइति
२१५	८	पिठके	पिठेक
२१५	९	असु	असुर
२१६	६	रयन	बयन
२१८	७	गव	मन
२१९	१	उतमत	उनमत
२२३	१	बलाहेकँ	बलाहके
२२९	४	ढ़न्द	दन्द
२२९	११	खोन	खीन
		द्वितीय खण्ड	
२३२	८	वायु	वायु
२३२	१०	जओ	जेओ
२३५	२	जानि	जनि
२३६	२	विदम	विद्रुम
२३८	११	पेसाओलि	वैसाओलि
२३८	१७	अपुरुव	अपुरुप
२३८	१९	तय	तप
२४६	१६	आओत	आओव
२४७	२	तइ	भइ
२५०	१२	पथ	पए
२५८	४	वे	वेरि

पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६२	२	दसरने	दरसने
२७१	६	उर	डर
२७८	१	परवाधि	परवोधि
२८७	७	तरवाक	तखाक
३१५	६	कइसे	कहसे
३१७	७	जयावए	जपावए
३३८	१०	अभिमन्द	अभिसन्द
३४२	४	अतिमय	अतिसय
३४८	७	जेटे	जेहे
३४८	१५	भजट	भजह
३५०	१५	टोँढ़ँलु	ढ़ोंढ़लु
३५१	६	बयान	बथान
३५४	१४	भंगे	भंग
३५५	८	उगर	उरग
३५७	१	बुझावए	बुझाएब
३५६	११	दूतहि	दूती
४००	६	तट	तह
४०३	८	आव	जाव
४१४	६	भेलेसो	भेलेओ
४१५	१७	सोहाजूलि	सोहाबुलि
४२४	६	अनुबोधे	अनुरोधे
४३२	१	कहले	सहले
४३४	५	हे	इ
४३७	२	नारि	वारि
४३७	१३	त	न
४३७	१७	दिग	दिन
४३६	१०	परचाव	परताव
४५३	८	रहु	वहु
४५७	५	अरे	अवे
४५६	१४	मन	मान

पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६०	३	सम	रस
४६६	१६	भोर	मोर
४६६	६	करमहित	करमहिन
४७०	१०	रोलि	रोपि
४७२	११	परथार	परथाव
४७५	५	तोअ	होअ
४७६	४	भावनि	भाविनि
४८२	४	रतनि	रअनि
४८३	६	सन्तापलि	सन्भापलि
५०२	७	पिथ	पिय
५०६	६	वहुत	रहुत
५११	४	भनिभनि	भमिभमि
५१२	७	अधिक	अथिक
५१४	२	अन्त	कन्त
५१८	४	वेआधि	वेयाधि
५१८	१०	मिलाएल	मिझाएल
५३८	७	अपरुप	अपरुव
५४०	३	अवे	आवे
५४१	३	उगति	उगुति
५४६	३	जयमाली	जपमाली
५५३	१२	गरुड़	गारुड़
५५६	७	वाला	वाली
५६५	१६	पसाइल	पसाहल
५६१	२	दोद	दोस
५६७	१५	दुध	दुख
५६८	६	न्हि	न्थि
५६६	११	जोवन	जोजन
५७४	२	माधवपुर	माधुरपुर
५७८	४	पठज	पढ़ज
५८०	१०	सुनि	शुनि

पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पदसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८४	१०	चत्र	चख	६०२	७	गंगा	गांग
५८६	१०	पारी	पावी	६०४	९	रोए	टोए
५८७	८	रिप	रिपु	६०५	९	संध्याय	सञ्झाय
५९१	१०	टोल	ढोल	६०६	६	मास	माए
५९७	८	बालभु	बालमु	६०६	१८	भवगाह	अवगाह
६०१	५	दहनबरु	दहनकरु				

विद्यापति

प्रथम खण्ड

राजनामाङ्कित पदावली— कालानुयायी सन्निविष्ट

(१)

विदिता देवी विदिता हो
अविरल केस सोहन्ती ।
एकाएक[1] सहस को धारिनि
जनि[2] रंगा पुरनटी[3] ॥
कज्जलरूप तुअ काली कहिअ[4]
उज्जलरूप तुअ वानी ।
रविमंडल परचण्डा कहिअ ए[5]
गंगा कहिए पानी ॥

ब्रह्माघर ब्रह्मानी कहिए
हरघर कहिअ ए[6] गोरी[7] ।
नारायण घर कमला कहिए,
के जान उत्पति तोरी ॥
विद्यापति कविवरे[8] एहो गाओल
जाचक जनके गती ।
हासिनि देइपति गरुड़नरायण ।
देवसिंह नरपति ॥

रागतः पृ० ८६ न० गु० (हर) १, अ ६११

शब्दार्थ—विदिता हो—जानी जावो, प्रकाशित हो ; एकाएक—अकेली ही ; सहस को—हजारों को; सोहन्ती—शोभायुक्ता ; जनि—कि न० गु० ने 'जरि' पाठान्तर मानकर उसका अर्थ अरि अथवा शत्रु बतलाया है ; परन्तु रागतरंगिनी के 'जनि' पाठ का ही अर्थ अच्छा होता है । रङ्गा—रङ्गस्थल अथवा युद्धक्षेत्र में । पुरनटी—नगरनर्तकी-न० गु० ने 'पुरनन्ती' पाठमान कर पूर्णकारिणी अर्थ बतलाया है और उनके विचार से 'जरि पुरनन्ती' का अर्थ है—'शत्रु के साथ युद्ध में अपनी विभूति द्वारा हजारों सैनिक उत्पन्न करके युद्धस्थल पूर्ण करती हैं'। रागतरंगिनी के 'जनि रङ्गा पुरनटी' पाठ का अर्थ है—'वे युद्धक्षेत्र में नगरनर्तकी के समान सहज ही नृत्य करती हैं । कज्जल—काली ; परचण्डा—प्रचण्डा, भीषण । देवसिंह—शिवसिंह के पिता और भवसिंह के पुत्र ।

विद्यापति ने अपने 'पुरुषपरीक्षा' ग्रन्थ के शेषभाग में भी उनके दान के सम्बन्ध में कहा है—

संकरी पुरसरोवर कर्त्ता हेमहस्तिरथदानविदग्धः
भाति यस्य जनको रणजेता देवसिंह गुणराशिः ॥

पाठान्तर—न० गु० (१) एकानेक (२) जरि (३) पुरनन्ती (४) कहिअ ओ (५) कहिए (६) कहिए (७) गौरी (८) कविवर

अपने 'शैव सर्वस्वसार' ग्रन्थ में उन्होंने देवसिंह के सम्बन्ध में लिखा है—

दत्तं येन द्विजेभ्यो द्विरदमथमहादानमन्यैरशक्यं
का वार्त्ता त्वन्यदाने कनकमयतुलापुरुषो येन दत्तः।
यस्य क्रीड़ातड़ागस्तुलयति सततं शासने वारिराशिं
देवेनऽसौ देवसिंहः क्षितिपतितिलकः कस्य न स्यान्नमस्यः॥

इस प्रकार के दानशील राजा को 'जाचकजनगति' कह कर विद्यापति ने उनकी खुशामद नहीं की है। देवसिंह के आदेश से उन्होंने 'भू-परिक्रमा' नामक ग्रन्थ लिखा। यथा—

देवसिंहनिदेशाच्च नैमिषारण्यवासिनः
शिवसिंहस्य पितुः सूतपीड़निवासिनः॥
पंचषष्टिदेशयुतां पंचषष्टिकथान्विताम्
चतुःखण्ड समायुक्ताभाह विद्यापतिः कविः॥

अनुवाद—हे घनकेशशोभिनि देवि, जानी जावो, ज्ञान में समावो। तुम अकेली ही हजारों को धारण करती हो, मानों युद्धस्थल में नगरनर्तकी के समान सहज ही नृत्य करती हो। तुम काले रंग में काली नाम से परिचित हो और उज्ज्वल में वाणी अथवा सरस्वती। सूर्यमंडल में तुम प्रचण्डा और जलरूप में गंगा कही जाती हो। ब्रह्मा के घर में ब्रह्माणी, शिव के घर में गौरी और नारायण के घर में कमला कहलाती हो। तुम्हारी उत्पत्ति कौन जानता है? कविवर विद्यापति यह गाते हैं—हासिनी देवी के पति, गरुड़ नारायण उपाधि धारण करनेवाले राजा देवसिंह याचकगण के गतिस्वरूप हैं अर्थात् याचक लोग की प्रार्थना पूर्ण करते हैं।

(२)

उधसल केसकुसुम छिरिआएल
खण्डित दशन अधरे।
नयन देखिअ जनि असन कमलदल
मधुलोभे बैसल भमरे॥
कलावति कैतव न करह आज।
कओन नागर संग[1] रयनि गमओलह
कह मोहि परिहरि लाज॥

पीनपयोधर नखरेखसुन्दर
करे बांधह[2] का गोरि
मेरु शिखर नव उगि गेल ससधर
गुपुति न रहलि ए चोरि॥
वेकतओ चोरि गुपुत करि कति खन
विद्यापति कवि भान।
महलम जुगपति चिरे जीवे[3] जीवथु
ग्यासदीन[4] सुरतान।

रागत० पृ० ८१ न० गु० २६८ अ २६१

पाठान्तर—नगेन्द्रबाबू ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह पद रागतरंगिनी से लिया है लेकिन उनके दिए हुए पाठ में और रागतरंगिनी की छपी हुई पुस्तक में निम्नलिखित पार्थक्य पाया जाता है :—(१) संगे (२) राखहु (३) चिरेजिव (४) ग्यासेदव

शब्दार्थ—उधसल—बिखरे हुए; छिरिग्रायल—फैले हुए हैं; कउन—कौन; गमग्रोलह—बिताया है; कैतव—छल, बहाना ; महलम—भगवान जिसके पास कोई विशेष वाणी भेजते हैं उसे फारसी भाषा में महलम कहा जाता है। ग्यासउद्दीन—नगेन्द्र बाबू ने स्टुयर्ट के इतिहास पर निर्भर करते हुए ग्यासउद्दीन की मृत्यु की तिथि १३७३ ई० लिखी है, किन्तु डा० नलिनीकान्त भट्टशाली ने बंगाल के स्वाधीन सुलतानों की मुद्राओं के निरीक्षण के बाद यह सिद्ध किया है कि गियासउद्दीन ने १३९२ में अपने पिता सिकन्दर को युद्ध में मार कर गियासउद्दीन आजमशाह की उपाधि धारण की और १४१० ई० तक शासन किया। शिवसिंह के पिता देवसिंह थोड़े दिन राज्य करके १४१३ ई० के मार्च मास में परलोकवासी हुए। इसलिए गियासउद्दीन ने शिवसिंह और देवसिंह के मिथिला पर राज्य करने के पहले ही बंग देश पर राज्य करना शुरू किया था। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह पद देवसिंह के सिंहासनारोहन के पहले लिखा गया था या बाद में।

गियासउद्दीन अथवा गियासुद्दीन

अनुवाद—केश बिखरे और फूलों की तरह इधर-उधर फैले हुए हैं; अधर दांत से खंडित हैं। देखते हैं कि नयन लाल कमलदल के समान है (जिससे) मधु के लोभ से भ्रमर बैठे हैं अर्थात् रात्रिजागरण के कारण नेत्र लाल हैं और नेत्रों के नीचे काला दाग़ है। कलावति, आज छल (बहाना) मत करो। यह लज्जा छोड़ कर बोलो कि किस नागर के साथ (तुमने) रात गँवायी है। हे सुन्दरि, पीन पयोधर की मनोहर नखरेखा हाथ रख कर क्यों छिपाती हो? मेरूशिखा पर (स्तन) नव शशधर (नखरेखा) उदित होने पर छिप नहीं सकता। विद्यापति कहते हैं कि प्रगट चोरी कितनी देर तक छिपी रहेगी? भगवान के विशेष अनुगृहीत युगपति सुलतान ग्यासउद्दीन दीर्घायु होकर जीवित रहें।

मन्तव्य—इस पद में कहीं भी राधाकृष्ण का उल्लेख नहीं है। यहाँ प्राकृत नायक-नायिका की ओर इशारा है।

(३)

उधसल[1] केसपास लाजे गुपुत हास
रजनि[2] उजागरे[3] मुख न उजला,
नखपद[4] सुन्दर पीन पयोधर
कनकसंभु[5] जनि केसु पूजला ॥
न न न न कर सखि परिनत[6] ससिमुखि
सकल चरित तोर बुझल विसेखी ॥
अलस गमन तोर वचन बोलसि भोर
मदन मनोरथ[7] मोहगता
जृम्भसि पुनु पुनु जासि अरस तनु
आतपे छुइलि मृणाल लता ॥

बास पिन्धु विपरित तिलक तिरोहित
नयन[8] कजर जले अधर भरू।
एत सब लछन संग विचछन
कपट रहत कतखन जे धरू[9] ॥
भनै[10] कवि विद्यापति अरे वर यौवति
मधुकरे पावलि मालति फुलली ॥
हासिनि देवपति देवसिंह नरपति
गरुड़ नरायन संगे भुलली ॥

नेपाल १९२, पृ० ६६क पं० १, न० गु०
तालपत्र २६६, अ० २६२

पाठान्तर—नेपाल की पोथी में—(१) उधकल (२) रयनि (३) उजागरि (४) पीनपयोधर नखदत सुन्दर (५) कलस (६) शारद (७) मनोहर (८) अधर काजर पेसिलु कमलेपरी (९) धरी (१०) नेपाल की पोथी में शेष चार चरण हैं ही नहीं, उसके बदले में "भनइ विद्यापतीत्यादि" है।

शब्दार्थ—उधसल अथवा उधकल—विपर्यस्त। उजागरे—जागने के कारण। नखपद—नख का चिह्न। कनकसंभु—सोने के शिव (स्तन)। केसु—किंशुक का फूल (नख के चिह्न से लाली)। विसेखी—विशेष करके। जृम्भसि—जम्भाई लेती हो। जासि—हुआ है। आतपे—गर्मी में। पिन्धु—पहरी हो। लछन—लक्षण।

अनुवाद—(सखि) तुम्हारे केश बिखरे हैं, लज्जा से हँसी छिपाती हो, रात्रि-जागरण से मुख पीला पड़ गया है (उजला नहीं है)। तुम्हारे पीन पयोधर पर सुन्दर नख चिह्न है (देख कर ऐसा मालूम होता है कि) सोना के शंकर को किसी ने किंशुक का फूल रख कर पूजा हो। हे पूर्णमासी के चन्द्र के समान मुख वाली सखि, तुम्हारे न न न कह कर सिर झुका लेने भी पर तुम्हारा चरित्र खूब समझती हूँ। तुम्हारी चाल थकी हुई है, बोलने में लड़खड़ाती हो, तुम मदन के प्रभाव से मोहग्रस्त हो गयी हो। तुम बार बार जम्हाई लेती हो, तुम्हारा शरीर रसहीन हो गया है, मानों मृणाललता गर्मी में झुलस गयी हो। तुमने उलटा वस्त्र धारण किया है, तुम्हारा तिलक मिट गया है, नेत्रों के काजल का जल अधर पर लगा हुआ है। ये सब लक्षण देखकर मैं खूब समझती हूँ कि तुमने सम्भोग किया है। (छल) बहाना कितनी देर चलेगा? विद्यापति कहते हैं कि हे युवतिश्रेष्ठा मैं समझ गयी कि खिले हुए मालती फूल ने भौंरा प्राप्त किया। हासिनी देवी के पति गरुड़ नारायण देव सिंह नरपति रसरंग में भूले।

(४)

हास विलासिनि दसन देखि जनि तरलित जोती।
सार चुनि चुनि हार मञे गाथब चान्द परिहव मोती॥
दए गेलि दए गेलि दुईहि भोमरा।
पुनु मन कर ततहि जाइअ देखिअ दोसरि बेरा॥
दिवस भमर कमल सूतल सीसि बेड़िललि पाखी।
खंजन नयनि ताहि परिरह तैसनि लोलुमि आँखी॥
भने विद्यापति जे जन नागर तापर रतलि नारि।
हासिनि देविपति देवसिंह नरपति परसन होथु मुरारि॥

नेपाल २२१ पृ० ७६ क प० ५।

शब्दार्थ—दसन—दन्त; जनि—मानो; चुनि चुनि—चुनचुन कर; दए गेलि दए गेलि—दिया गया, दिया गया। दुईहि भोमरा—दोनों काले नयनों का कटाक्ष। दोसरि बेरा—दूसरी बार। 'दिवस भमर कमल' इत्यादि दो चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। रतलि—अनुरक्त हुई।

अनुवाद—हास विलासिनी की दंतपंक्ति देखकर ऐसा मालूम होता है मानो तरलित ज्योति हो। अच्छे-अच्छे मोतियों को चुन कर मैं हार गूथूँगा और चन्द्रमुखी को पहना दूँगा। मुझे दो भ्रमरों के समान काली आँखों से कटाक्ष कर गयी, कर गयी। दिल में आता है फिर वहाँ जाकर एक बार उसे और देखूँ।...............। विद्यापति कहते हैं कि जो व्यक्ति नागर अथवा रसिक है उसके प्रति यह नारी अनुरक्त हुई है। हासिनि देवी के पति राजा देवसिंह के प्रति मुरारि प्रसन्न होवें।

न० गु० की ४४ संख्या का पद इस प्रकार है ; इससे ऊपर लिखे हुए पद के तीन चरणों का सादृश्य है। यह पद शिवसिंह को उत्सर्ग किया गया है और इसका विषय वस्तु भी भिन्न है।

दए गेलि सुन्दरि दए गेली रे दए गेलि दुइ दिठे मेरा।
पुनु मन कर ततहि जाइअ देखिअ दोसरि बेरा॥
सार चुनि चुनि हार जे गाँथल केवल तारा जोती।
अधर रूप अनुपम सुन्दर चान्दे परीहलि मोती॥
भमर मधु पिवि पिवि मातल शिशिरे भीजल पाँखी।
अलप काजरे नयन आँजल ननूमि देखिअ आँखि।
कत जतने दूती पठाओल आनय गुआ पान।
सगर रजनी वइसि गमाओल हृदय तसु पखान॥
भन विद्यापति सुनह नागर ओनहि ओरस जान।
राजा शिवसिंह रूपनरायण लखिमा देवि रमान॥

न० गु० तालपत्र ४४, अ० ७८।

अनुवाद—दे गयी, सुन्दरी दे गयी, दो नयनों का मिलन दे गयी। मन में आता है फिर वहाँ जाएँ, एक बार फिर देखें। (सुन्दरी का रूप देख कर मन में आता है) मानों चुन चुन कर केवल ज्योतिर्मय तारों की माला गूँथी गयी हो। अधररूप अनुपम सुन्दर है मानों चन्द्रमा ने मुक्ता धारण किया हो (दांत से मुक्ता की और चाँद से मुख की तुलना की गयी है)। अल्प काजल से रंजित उसके नेत्र देखकर ऐसा मालूम होता है मानों भ्रमर मधुपान कर मतवाला हो गया है और ओस से उसके पँख भीग गये हों। कितने यत्न करके पान-सुपारी लाने के लिए दूती को भेजा (यदि नायिका पानी-सुपारी भेज दे तो विदित हो जायेगा कि आमन्त्रण स्वीकृत हो गया)। सारी रात बैठकर काट दी, उसका हृदय पत्थर है। विद्यापति कहते हैं कि सुनो नागर वह रस नहीं जानती है। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के पति हैं।

(५)

ससन-परस खसु अम्बर रे देखल धनि देह।
नव जलधर तर चमकए रे जनि बीजुरि रेह॥
आज देखलि धनि जाइते रे मोहि उपजल रंग।
कनकलता जनि संचर रे महि निरअवलम्ब॥
ता पुन अपरुब देखल रे कुच जुग अरविन्द।
विगसित नहि किछु कारन रे सोझा मुखचन्द॥
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझए रसमन्त।
देवसिंह नृप नागर रे हासिनि देवि कन्त॥

रागत० पृ० ४६, न० गु० ३२, अ० ३१।

शब्दार्थ—ससन—श्वसन अर्थात् पवन। खसु—गिर पड़ा। अम्बर—कपड़ा। तर—नीचे। मोहि—मुझे महि—पृथ्वी पर। निरअवलम्ब—बिना सहारा के। सोझा—सामने।

अनुवाद—पवन के स्पर्श से कपड़े गिर गये, मैंने सुन्दरी का शरीर देखा। ऐसा मालूम हुआ मानो नये मेघ के नीचे चमकती हुई बिजली को देखा। सुन्दरी नीली साड़ी पहने हुए थी (नीली साड़ी के साथ नवजलधर की और उसके शरीर के रंग की बिजली से तुलना की गयी है। आज सुन्दरी को जाते देख कर मुझे आनन्द प्राप्त हुआ (उसका चलना देख कर दिल में आया मानों) स्वर्णलता बिना अवलम्ब चल फिर रही है। उसके बाद कमल के समान अपूर्व उसके कुचयुग देखे। वह विकसित नहीं था। (खिले हुए कमल के समान पयोधर सुन्दर नहीं लगते, कमल-कली के समान कुच नवयौवना की शोभा बढ़ाते हैं) इसका कुछ कारण है। (वह कारण यह है कि) सामने मुखरूपी चन्द्रमा है (चाँद रात को उगता है जिस समय कमल नहीं खिलता)। कवि विद्यापति गाते हैं कि रसवन्त ही रस अनुभव करता है। हासिनी देवी के कान्त राजा देवसिंह नागर (अर्थात् रसिक) हैं।

मन्तव्य—नगेन्द्र गुप्त ने 'विगसित नहि किछु कारन रे सोझा मुखचन्द' का अर्थ बतलाया है कि कुछ कारण से सामने उसका मुखचन्द्र विकसित नह हुआ है। परन्तु 'सामने मुखचन्द्र' शब्द निरर्थक से लगते हैं। 'किछु कारने' की व्याख्या करते हुए नगेन्द्र बाबू ने कहा है—हवा से कपड़े हट गये हैं तो सुन्दरी ने आंचल से मुख ढाँक लिया है।'

(६)

हमें धनि कूटनि परिनत नारि।
बैसहु बास न कहाँ विचारि॥
काहु के पान काहु दिअ सान।
कत न हकारि कएल अपमान॥
कय परमाद धिया मोर भेल।
आहे यौवन कतय चल गेल॥
भांगल कपोल अलक भरि साजु।
सञ्कुल लोचने काजर आजु॥
धवला केस कुसुम करु बास।
अधिक सिंगारे अधिक उपहास॥
थोथर थैया थन दुओ भेल।
गरुअ नितम्ब कहाँ चल गेल॥
यौवन सेस सुखाएल अंग।
पाछु हेरि विलुलइते उमत अनंग॥
खने खस घोघट विघट समाज।
खने खने अब हकारलि लाज॥
भनहि विद्यापति रस नहि छेओ।
हासिनि देइपति देवसिंह देओ॥
नेपाल २४, पृ० ९४ क, पं० २, न० गु०
(परकीया) १९, अ १०२६।

शब्दार्थ—बैसहु—उम्र। सान—संकेत। धिया—धिक्कार (गुप्त के विचार से कन्या)।

पाठान्तर—नेपाल की पोथी में पहले ६ चरण नहीं हैं। सात से सोलह चरणों के बदले में नेपाल पोथी में इस प्रकार है—

भागल कपोल अलके लेल साजि।
सोहुरल नयन काजरे आजि॥
पकला केस कुसुम परगास।
अधिक सिंगारे अधिक उपहास॥
अहरिए सकतए चलि गेल।
वर उपताप देखि मोहि भेल॥
थोथल थैआथल दुइ भेल।
गरुअ नितम्ब सेहउ दुरगेल॥
यौवन शेप सुखायल अंग।
पछे हेइलि लुगाए उमत अनंग॥
भनइ विद्यापतीत्यादि

मन्तव्य—नेपाल की पोथी का पाठ संक्षिप्त होने पर भी अधिक व्यञ्जनापूर्ण है। न० गु० के संग्रह में यदि पहले ६ चरण नहीं रहते तो कविता अतीव सुन्दर होती।

अनुवाद – मैं गिरती हुई उम्र की कुटनी स्त्री हूँ। मैं वयस और वासस्थान का बिना विचार किये बात करती हूँ। किसी को पान देती हूँ, किसी को इशारा करती हूँ, और किसी को बुलाकर अपमानित करती हूँ। कितनी भूल मैंने की, लोगों से धिक्कार पाया। हाय, जवानी कहाँ चली गयी।

गाल पिचक गये हैं, उसे बालों से ढाँकने की चेष्टा करती हूँ। आँखें निस्तेज हो गयी हैं तो भी उनमें काजर देती हूँ। पके बालों में फूल खोंसती हूँ। जितना अधिक शृङ्गार करती हूँ, उतना ही अधिक लोग हँसी उड़ाते हैं। दोनों स्तन लटक गये हैं। भारी नितम्ब कहाँ चले गये? यौवन समाप्त हो गया। अंग सूख गया। पीछे घूमकर देखती हूँ कि पागल अनंग लोट रहा है। रह-रह कर लोगों के बीच में घूँघट गिर पड़ता है। किसी के बुलाने पर कभी कभी लज्जा होती है। विद्यापति कहते हैं कि एक बूँद भी रस नहीं है। हासिनी देवी के पति देवसिंह देव हैं।

नेपाल की पोथी के पाठ का अनुवाद—पिचके गालों को बालों से ढाँक लिया, आज आँख में काजल लगा के शृङ्गार किया। पके केश में फूल डाला। जितना अधिक शृङ्गार करती है, उतनी ही अधिक हँसी होती है। सामने से संकेत करके कोई चला जाता है, देखकर मन में बड़ा अनुताप होता है। उसके दोनों स्तन लटक गये हैं, नितम्बों का भारीपन समाप्त हो गया है। यौवन के अन्त में अंग सूख गया है, तथापि पीछे से पागल अनंग उसका पीछा कर रहा है।

(७)

सुपुरुष प्रेम, सुधनि अनुराग।
दिने दिने बाढ़ अधिक दिन लाग॥
माधव हे मथुरापति नाह
अपन वचन अपने निरवाह॥
कमलिनी सूर आने आने अनुभाव।
भमि भमि भमर मदन गुन गाव॥
भनइ विद्यापति एह रस भान।
सिरि हरिसिंघ देव इ रस जान॥

न० गु० ७६२ अ ७२८

शब्दार्थ—सुधनि—अच्छी नायिका। लाग—स्थायी होना। निरवाह—पूर्ण करो। सूर—सूर्य। आने आने—अन्य प्रकार का। हरिसिंह—देवसिंह का भ्राता, भवदेवसिंह का द्वितीय पुत्र और शिवसिंह का चाचा।

अनुवाद सुपुरुष का प्रेम और सुधनि का अनुराग दिनों दिन बढ़ता है, और अधिक दिनों तक रहता है। हे मथुरापति, हे नाथ, हे माधव, अपना वचन पालन करो। कमलिनी का सूर्य के प्रति जो अनुराग है वह असाधारण है। (किन्तु) भ्रमर (एकनिष्ठ न होकर) अपने फूलों पर घूम घूमकर मदन का गुणगान करता है। विद्यापति कहते हैं कि यह रस श्री हरिसिंह देव जानते हैं।

(८)

अनलरन्ध्र कर लक्खन नरव ए
सक समुद्द कर अगिनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ
बार बेहष ए जाउलसी॥
देवसिंहे जं पुहवी छड्डिअ
अद्धासन सुरराए सरु।
दुहु सुरुतान नीन्दे अवे सोअउ
तपन हीन जग तिमिरे भरू॥
देखहु ओ पृथिमी के राजा
पौरुस माझ पुन्न बलिओ।
सतबले गंगा मिलित कलेवर
देवसिंघ सुरपुर चलिओ।
एक दिन सकल जवन बल चलिओ
ओका दिस से जम राए चरू।
दुअओ दलटि मनोरथ पूरेओ
गरुअ दाप सिवसिंहे करू॥
सुरतरु कुसुम घालि दिस पुरेओ
दुन्दुहि सुन्दर साद धरू।
वीरछत्र देखन को कारन
सुरजन सते गगन भरू॥
आरम्भिय अन्तेठ्ठि महामख
राजसूय असमेध जहाँ
पण्डित घर आचार बखानिअ
जाचक काँ घर दान कहाँ॥
विज्जावइ कविवर एहु गावए
मानव मन आनन्द भएओ।
सिंहासन सिवसिंह बइठठो
उच्छवै वैरस विसरि गएओ॥

विनोदविहारी काव्यतीर्थ कर्त्तृक १३०१ साल के वंगीय साहित्य परिषद पत्रिका के ३० पृष्ठ में प्रकाशित।
न० गु० (नाना) ६, अ १००७

मन्तव्य—'कीर्तिलता' में व्यवहृत अवहट्ठ भाषा और इस पद की भाषा में भिन्नता नहीं है। मालूम होता है कि विद्यापति ने मैथिली भाषा में पद रचना करके पीछे किसी समय अवहट्ठ भाषा में कुछ लिखा था। क्योंकि जो सब पद देवसिंह को उत्सर्ग किये गये हैं वे देवसिंह के राजत्वकाल में ही लिखे गये थे। इन सब पदों की भाषा मैथिली है। और इस पद में देवसिंह के देहावसान की कथा लखी हुई है, और यह भी कि यह अवहठ्ठ भाषा में लिखी हुई है। इसलिये 'कीर्तिलता' को अवहठ्ठ भाषा में रचित कवि की प्रथम रचना समझने का कोई कारण नहीं है।

पद में उल्लिखित तिथि के विषय में कुछ गोलमाल है। १३२४ शक २९३ लक्ष्मणाब्द हो नहीं सकता। डा० जायसवाल ने प्रमाणित किया है (JBORS,Vol.XX,Pp20-23) कि १६२४ ई० तक लक्ष्मणाब्द १११९-२० ई० से आरम्भ करके गणना करनी होती है। इस हिसाब से १३३४ शक में २९३ लक्ष्मणाब्द का चैत्रमास होता है, १६२४ शक में नहीं। मनोमोहन चक्रवर्ती (JASB1915) ने ज्योतिष की गणना करके पाया है कि चैत्र वदी ६, १३३४ शक में वृहस्पतिवार हुआ था, १३२४ शक में नहीं। इस विरोध का सामञ्जस्य करने के लिए कोई कोई कहते हैं कि पद के द्वितीय चरण में 'कर' शब्द 'पुर' होगा ऐसा होने से १३३४ शक हो जाता है। इस मत को ग्रहण करने से कहा जाता है कि शिवसिंह १४१२ ई० के २३ वीं मार्च को सिंहासनारुढ़ हुए।

प्रवाद—सिंहासनारोहन के समय शिवसिंह की उम्र २०।२१ वर्षों से अधिक नहीं थी। मिथिला के कवि और पंडित चन्दा झा से सुन कर १८९९ ई० में ग्रियर्सन साहब ने लिखा था—"Bhogisvara, when he came to the throne, divided his kingdom with his brother Bhava Sinha Kritti Sinha died childless, and so did his brother, and half of the kingdom which they inherited from Bhogisvara went over to Bhava Sinha's family, the representative of which then was Siva Sinha, who was a youth of fifteen years of age and was then reigning as Yuva-Raja during the lifetime of his father, Deva Sinha, and who from that time governed the whole of Tirhut" (Indian Antiquary, 1899 Page 58) देवसिंह ने कितने वर्षों तक राज्य किया, यह ठीक से जाना नहीं जाता है।

शब्दार्थ—अनल ३ रन्ध्र—६—कर—२, लक्खन नरवए—लक्ष्मणाब्द, समुद्द—४ कर—२ अगिनी—३, ससी—१, चैत कारि छठि—चैत्र कृष्णा षष्ठी, वार वेहप्पस—वृहस्पतिवार, ओका दिस—अन्य दिशा में। विज्जावई—विद्यापति कवि का यह नाम 'कीर्त्तिलता' में पाया जाता है, यथा—

वालचन्द विज्जावई भाषा
दुहु नहिं लागइ दुज्जन हासा ॥

अर्थात वालचन्द्रमा और विद्यापति की भाषा को दुर्जन लोगों की हँसी नहीं लगती।

अनुवाद—२९३ लक्ष्मणाब्द, १३२४ शक के चैत्र मास की कृष्णा षष्ठी ज्येष्ठा नक्षत्र वृहस्पतिवार को संध्याकाल में देवसिंह ने पृथ्वी छोड़कर सुरपुर राज्य का अर्द्धासन प्राप्त किया। दोनों सुलतान (सूर्य और देवसिंह) इस समय निद्रितावस्था को प्राप्त हुए, तपनहीन संसार में अन्धकार छा गया। पृथ्वी के राजा का पौरुषयुक्त पुण्यवल देखो, सत्यवल से गंगा में कलेवर त्याग करके देवसिंह सुरपुर चले। एक तरफ यवनों का सैन्यवल चला, दूसरी दिशा में यमराज का सैन्यवल चला। दोनों दलों ने अपनी इच्छा पूर्ण करनी चाही। शिवसिंह ने प्रचण्ड प्रताप दिखलाया। स्वर्ग के कल्पवृक्ष से पुष्पवृष्टि होने के कारण दशों दिशायें पूर्ण हो गयीं, साथ-साथ दुन्दुभि वजने लगी। वीर-चूड़ामणि को देखने के लिए देवता लोग आकाश में शोभायमान हुए। जो अन्त्येष्ठि क्रिया आरम्भ हुई वह राजसूय, अश्वमेध यज्ञ के समान थी। पण्डितों के घर में आचार की और याचकों के घर दान की प्रशंसा होने लगी। विद्यापति यह गान करते हैं। लोगों के मन में आनन्द हुआ। शिवसिंह सिंहासन पर वैठे। लोग उत्सव में शोक भूल गये।

(६)

दूर दुग्गम दमसि भञ्जेओ
गाढ़ गढ़ गूढ़ीअ गञ्जेओ
पातिसाह ससीम सीमा
समर दरसेओ रे॥

ढ़ोल तरल निसान सद्दहि
भेरि काहल संख नद्दहि
तीनि भुवन निकेत
केतकि सन भरिओ रे॥

कोहे नीरे पयान चलिओ
वायु मध्ये राय गरूओ
तरनि तेअ तुलाधार
परताप गहिओ रे॥

मेरू कनक सुमेरु कम्पिय
धरनि पूरिय गगन झम्पिय
हाति तुरय पदादि पयभर
कमन सहि ओ रे॥

तरल तर तरवारि रंगे
विज्जुदाम छटा तरंगे
घोर घन संघात
वारिस काल दरसेओ रे॥

तुरय काटि चाप चूरिय
चार दिस चो विदिस पूरिय
विसम सार आसार
धारा धोरनी भरिओ॥

अन्ध कुअ कबन्ध लाइअ
फेरवि फफ् फरिस गाइअ
रूहिर मत्त परेत भूत
वेताल विछलि ओ॥

पार भइ परिपन्थि गञ्जिअ
भूमि मण्डल मुण्डे मण्डिअ
चारू चन्द्र कलेर कीत्ति
सुकेत की तुलिओ॥

राम रूपे स्वधम्म खिख् अ
दान दप्पे दधीचि रख्खिअ
सुकवि नव जयदेव
भनि ओ रे॥

देवसिंह नरेन्द्र नन्दन
सत्र भरवइ कुल निकन्दन
सिंघ सम सिवसिंघ राआ
सकल गुनक निधान गनिओ रे॥

न० गु० (नाना) १०, अ० १००८।

शब्दार्थ—दुग्गम—दुर्गम; दमसि—आघात करके; भञ्जेओ—तोड़कर फेकते हैं, सद्दहि—शब्द हुआ। नद्दहि—निनादित हुआ। कोहे—पहाड़ में। कुअ—कूप। लाइअ—फेंका। फेरवि—शृगाल। भइ—हुआ। परिपन्थि—शत्रु।

मन्तव्य—इस पद के साथ कीर्तिलता के पद का युद्ध-वर्णन तुलनीय है।

अनुवाद—दूरस्थित दुर्भेद्य दुर्ग आघात की चोट से टूट कर गिर पड़ा, बादशाह के राज्य की सीमा तक युद्ध दिखा दिया, ढोल का तरल शब्द, भेरी के डंके और शंख की ध्वनि से त्रिभुवन-निकेतन पूर्ण हो गया ('केतकि सन' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं होता)। पर्वत से बहते हुए जल के समान, (प्रबल) हवा के बीच में गरुड़ की गतिके समान, सूर्य्य के तेज के समान प्रताप ग्रहण किया। सुमेरु पर्वत का स्वर्णचूड़ काँप उठा, आकाश के गर्जन से पृथ्वी भर गयी, हाथी, घोड़े और पैदल का भार कौन सहन करेगा? तलवारों का घन घन चलना देख कर ऐसा मालूम होता है मानों वर्षाकाल में घन वारिधारा के बीच में बिजली की छटा तरंगित हो रही हो। करोड़ों घोड़ों के पदाघात से (पृथ्वी) चूर्ण हुई; विषम तीरों की वर्षा से चारो दिशायें भर गयीं; अन्धकूप में कबन्ध निरत हुआ; सियार चीत्कार करके गाने लगे। पार होकर शत्रुदल को साँसत देने लगे, भूमि को मुण्डों से मण्डित कर दिया, सुन्दर चन्द्रकला के समान सुकृति की कीर्त्ति फैली। राम के समान अपने धर्म की रक्षा की; दानगौरव में दधीचि के समान हुए, सुकवि नव जयदेव ने गाया। देवसिंह नरेन्द्र के पुत्र, शत्रु-नरपतिकुल के निर्मूलकारक शिवसिंह राजा के सब गुणों के निधान की गणना करेंगे।

(१०)

कनक-भूधर-सिखरवासिनि
चन्द्रिकाचय चारु हासिनि
दसन कोटि विकासबंकिम
तुलित चन्द्र कले।
क्रुद्ध सुररिपु बलनिपातिनि
महिस शुम्भनिसुम्भ घातिनि
भीत भक्त भयापनोदन
पाटल प्रबले॥
जय देवि दुर्गे दुरिततारिनि
दुर्गमारि विमर्दकारिनि
भक्तिनम्र सुरासुराधिप
मङ्गलायतरे।
गगनमण्डल गर्भगाहिनि
समरभूमिसु सिंहवाहिनि
परसु पास कृपानसायक
संख चक्रधरे॥

अष्ट भैरवि सङ्गमालिनि
सुकर कृत्तकपालकदम्बमालिनि
दनुजसोनित पिसित वर्द्धित
पारना रभसे।
संसारबन्ध निदानमोचिनि
चन्द्भानुकृसानु लोचिनि
योगिनीगन गीत शोभित
नृत्यभूमि रसे॥
जगतिपालन जननमारन
रूपकार्य सहस्र कारन
हरिविरञ्चि महेस-सेखर-
चुम्ब्यमान पदे।
सकल पापकला परिच्युति
सुकवि विद्यापति कृत स्तुति
तोसिते सिवसिंघ भूपति
कामना फलदे॥

न० गु० (हर) ९, श्र ६१४

अनुवाद—सुवर्णपर्वत के (सुमेरु के) शिखर पर वास करने वाली, शरज्ज्योत्सना की नाईं चारुहासिनी, जिसके दशनों के अग्रभाग का वंकिम विकास चन्द्रकला के समान है, जो युद्ध में देवताओं के शत्रु का वल निपात करनेवाली हैं; महिष शुम्भ-निशुम्भ का बध करनेवाली, डरे हुए भक्तों का भय दूर करने में जो पटु और समर्थ हैं, जो पापों से उद्धार करनेवाली हैं, दुर्गम शत्रु का विमर्दन करनेवाली, भक्ति से विनम्र सुर और असुर के पति का (महेश्वर का) कल्याण करनेवाली, (उस) दुर्गादेवी की जय हो। जो गगनमण्डल में गर्भगाहिनी (?) हैं, जो समरभूमि में परसु, पाश, कृपाण, वाण, शंख और चक्र धारण करती हैं और सिंह पर सवार रहती हैं, जिसके संग आठ भैरवी चलती हैं, अपने हाथों से काटे हुए मुण्डों की जो माला धारण करती हैं, जो दानवलोग के रक्त और मांस का भोजन कर परम आनन्द प्राप्त करती हैं, जो संसार के वन्धन को मूल से उखाड़ फेंकती हैं, जिनकी आँखों में चन्द्र, सूर्य्य और अग्नि हैं, जो योगिनियों के गीत द्वारा पूर्ण नृत्यभूमि में आनन्द करती हैं, जो संसार की उत्पत्ति, पालन और प्रलयरूप हैं, सहस्र कार्य्यों की कारणस्वरूप हैं, जिनके पद हरि, विरंचि, और महेश में शेखर द्वारा चुम्ब्यमान हैं, जो सव पापों को क्षमा करती हैं उसी कामनापूर्णकारिणी देवी की यह स्तुति शिवसिंह भूपति को तुष्ट करने के लिए विद्यापति कवि ने की।

(११)

जय जय भगवति भीमा भयानी[1]।
चारि वेदे अवतरु ब्रह्मवादिनी ॥

हरिहर ब्रह्मा पुछइते भमे।
एकओ न जान तुअ आदि मरमे ॥

भनई विद्यापति राए[2] मुकुटमणि।
जिवओ रुपनारायण[3] नृपति धरनि ॥

रागत पृ० १०८, न० गु० (हर) ४, अ ६१२

शब्दार्थ—भमे—घूमते हैं।

अनुवाद—जय जय भगवति भीमा भवानी, तुम ब्रह्मवादिनी हो, तुम चारों वेदों के रूप में अवतीर्ण हुई हो। हरि, हर और ब्रह्मा तुम्हारा तत्व पूछते चलते हैं। एक आदमी भी तुम्हारा आदिमर्म नहीं जानता है। विद्यापति कहते हैं कि राजाओं के मुकुटमणिस्वरूप नृपति रूपनारायण पृथ्वी पर जीवित रहें।

पाठान्तर—न० गु० ने निम्नलिखित पाठ दिया है:—(१) भवाणी (२) राय (३) रूपनारायन

(१२)

बांधए विकटजटा
तथिह[४] चँदिन फोटा।
कत जुग सहस वयसवहि[५] गेला।
उमत महादेव सुमतन भेला।

मौलि मेलए छार।
सहज[६] न तेजए पार ॥
सुकवि विद्यापति गाउ।
जीवओ[७] सिवसिह पाउ ॥

रागत पृ० १०७, न० गु० (हर) ३९, अ० ६४२

अनुवाद—(शिव) विकट जटा बाँधते हैं, उसीसे (कपालपर) चाँद का टीका रहता है। न मालूम कितने हजारों वर्षों की उम्र हुई, तथापि उन्मत्त महादेव को सुमति न हुई । सुकवि विद्यापति गाते हैं कि शिवसिंह राजा जीवित रहें।

(१३)

निते मोयँ जाओँ भिखि आनओ मागि।
कतहुँ न गेल मोरा सगंहु लागि ॥
झोरि आहु लेवाके नहि उसास।
इ पोसि होएत परतरक आस ॥
एहे गउरि मोर कओन दोस।
वइसल जेम गन कओन भरोस ॥
थूल पेट भूमि लड़ए न पार।
सिव देखए न पारह हमर बार ॥
खेदि देहे वरु निकलि जाउ।
मोरे नामे भिखि मागि खाउ ॥

देखह लोक हे अइसनि जोए।
मनुस उपरि कइसे माउग होए ॥
आपना पुत के न जानए काज।
निठुर भइ कत मोहु सय वाज ॥
भनइ विद्यापति देवकि देओ।
करिअ करम जइस हस न केओ ॥
गणपति देखले होअ काज।
राय सिवसिघ एकछत्र राज ॥

न० गु० (हर) ३८, अ ६४५

अनुवाद—(शिव की उक्ति) मैं रोज जाकर भीख माँग कर लाता हूँ, मेरे संग कभी नहीं (गणेश) जाता है। झोली लेने का अवसर नहीं है, दूसरे के भरोसे रहने से उपवास रहना पड़ेगा। इसलिये हे गौरी, इसमें मेरा क्या दोष? गणेश बैठा रहता है, उसका क्या भरोसा? (गौरी की उक्ति) (अहा मेरे वत्स गणेश का) पेट मोटा, (बिचारा) दौड़-धूप नहीं सकता है। मेरे बच्चे को शिव देख नहीं सकते हैं। वरन् उसको निकाल दो, वह बाहर रहकर मेरे नाम से भीख माँग कर खायेगा। संसार में देखो कि पुरुष से स्त्री कितना अधिक श्रेष्ठ है। अपने पुत्र का कार्य्य कौन नहीं जानता है? मेरे साथ निष्ठुर के समान कितना बकवाद करते हैं? विद्यापति कहते हैं, हे देवादिदेव, ऐसा काम मत करें, इससे संसार हँसेगा। गणपति को देखने ही से कार्य्य सिद्धि होती है। राजा शिवसिंह एकच्छत्र राजा हैं।

पाठान्तर—न० गु० (४) तँह थिह (५) विति (६) सहजइ (७) जीव

(१४)

सुखल सर सरसिज भेल भाल।
तरुन तरनि तरु न रहल हाल॥
देखि दरनि दरसाव पताल।
अबहुँ धराधर धरसि न धार।
जल धर जलधन गेल असेखि।
करए कृपा बड़ परदुख देखि॥
पथिक पिआसल आव अनेक।
देखि दुख मानए तोहर विवेक॥

पलट नआसा निरस निहारि।
कहदहुँ कओन होइति इ गारि॥
कओन हृदय नहि उपजए रोस।
ओल धरि करिअ एहँ पए दोस॥
विद्यापति भन बुझ रसमन्त।
राए सिवसिंह लखिमा देविकन्त॥

रांभद्रपुर की पोथी, पद ६०

अनुवाद—सरोवर सूख गया है : कमल के फूल झड़ कर गिरे हुए हैं : सूर्य का तेज प्रचण्ड है ; वृक्षों के पत्ते हरे नहीं रहे। पृथ्वी इतनी फटी हुई है कि मालूम पड़ता है कि पाताल दृष्टिगोचर हो रहा हो। हे मेघ, अभी भी तुम जलधारा की वर्षा नहीं कर रहे हो। दूसरों का दुख देख कर बड़े लोग कृपा करते हैं। इस समय अनेकों पथिक प्यास से व्याकुल हैं, उनको देखकर तुम्हारा चित्त दुखी हो रहा है। यदि ऐसे समय में वह विना जल पाये लौट जाए, तो उसके मन में कितनी ग्लानि होगी (तुम राग किए हुए हो) किसके मन में राग नहीं होता है, लेकिन तुम जरूरत से अधिक राग किये हुए हो। (ओल-सीमा) यह तुम्हारा दोष है। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के कान्त रसमन्त राजा शिवसिंह समझते हैं।

(१५)

पहुसेवो उपरि बोलब बोल
अइसन मन न मानए मोर।
से जदि वचने फले उदास
आप नि छाहरि तेज न पास।
सखि पचारसि मन्दे साथ
हर ओ आदर आपन लाथ।
कैरव सुरुज कमल चन्द
परपुरुष क सिनेह मन्द।

नागरि भए यदि हटेंवि मान
एकहि जनमें इच्छव आन।
सरस भन कवि कण्ठहार
सुन्दरि राख कुल बेवहार।
इ सब रुप नारायन जान
रानि लखिमा देवि रमान॥

रामभद्रपुर की पोथी, पद १८७

मन्तव्य—साधारण तरह से देखने पर यह पद ग्रीष्मवर्णन सा मालूम होता है। किन्तु 'जलधर' और 'रोस' शब्दों के रहने से यह माधव के मान की ओर इशारा करता सा मालूम होता है।

मन्तव्य—परपुरुष के साथ प्रेम की निन्दामूलक कविता विद्यापति की पदावली में दुर्लभ ही है। परन्तु यह कविता उसी प्रकार की है।

शब्दार्थ—छाहरि—छाया ; कैरव—कुमुदिनी ।

अनुवाद—तुम जो नाथ के संग वाद-प्रतिवाद करोगी, वह मुझे अच्छा नहीं लगता है। वह यदि बातचीत या कामकाज में उदासीनता भी दिखलाये तो जिस प्रकार छाया काया का परित्याग नहीं करती है, उसी प्रकार तुम भी करना। सखि, तुम दुष्ट के संग मिल रही हो, वह अपने नाथ के साथ का प्रेम भुला देता है। कुमुदिनी का जिस प्रकार सूर्य से और कमल का जिस प्रकार चन्द्रमा से प्रेम है उसी प्रकार (खराब) प्रेम (कुलनारी का) परपुरुष के संग है। यदि तुम नागरी होकर इज्जत गवाँना चाहो तो एक ही जन्म में अन्य की इच्छा करो। सरस कवि कण्ठहार कहते हैं, हे सुन्दरि, कुल के गौरव की रक्षा करो। रानी लखिमा देवि के रमण रूपनारायण यह सब जानते हैं।

(१६)

कमल मिलल दल मधुप चलल घर
विहग गइल निज ठामे।
अरे रे पथिक जन थिर रे करिअ मन
बड़ पाँतर दुर गामे॥
ननदि रूसिए रहु परदेस बस पहु
सासुहि न सुझ समाजे।
निठुर समाज पुछार उदासीन
आओर कि कहव वेआजे॥
चन्दन चारु चम्प घन चामर
अगर कुङ्कुम घरवासे।
परिमल लोभे पथिक नित संचर
तँइ नहि बोलय उदासे॥
विद्यापति भन पथिक वचन सुन
चिते बुझि कर अवधाने।
राजा शिवसिंह रूपनारायण
लखिमा देई रमाने॥

शब्दार्थ—मिलल—बन्द हो गया। सुझ—अच्छी तरह देखना। समाजे—मिलन में ; यहाँ निकट की वस्तु। वेआजे—अतिरिक्त।

अनुवाद—(संध्याकाल में) कमल के दल बन्द हो गये, भ्रमर घर चला, पक्षीगण अपने अपने स्थान गये। हे पथिक, अपना मन स्थिर करो, गाँव बहुत दूर है, रास्ते में बीहड़ भूमिखण्ड है। (हमारी) ननद हमसे क्रोधित है, स्वामी परदेश में हैं, सास निकट की वस्तु भी ठीक से देख नहीं सकती है। समाज निष्ठुर है, इतना उदासीन है कि हमारी खोज-खबर नहीं लेता। इतना के अतिरिक्त और मैं क्या कहूँ ? चारु चन्दन, चम्पक, घन चामर, अगरु और कुङ्कुम के गन्ध से गृह सुवासित है, परिमल के लोभ से पथिक रोज यहाँ चक्कर लगाते हैं, इसीलिये उनसे मैं उदासीनतापूर्ण नहीं बोलती हूँ। विद्यापति कहते हैं कि हे पथिक, बात सुनो, मन में ठीक समझ कर देखो। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के पति हैं।

(१७)

भल भेल दम्पत्ति सैसव गेल।
चरन चपलता लोचन लेल ॥
दुहुक नयन कर दूतक काज।
भुसन भए परिणत भेल लाज ॥
आव[1] अनुखन देअ आँचर हाथ।
काज[2] सखी सयँ नत कए माथ ॥
हम[3] अवधारलि सुन सुन काह्न।
नागर करथु अपन अवधान ॥
भँउह धनु[4] गुन काजर-रेख।
मार[5] नयन सर पुंख अवशेख ॥
रसमय विद्यापति कवि गाव।
राजा सिवसिंघ बुझ रस भाव ॥

ग्रियर्सन २४, न० गु० २७, अ० ७१

शब्दार्थ—भल—अच्छा ; दम्पत्ति—दोनों तरफ ; शृंगार रस के लिए। अवधान—सावधान हो के, भँउह—भ्रू, अवशेष—अवशिष्ट रहता है।

अनुवाद—दम्पत्ति के लिये (शृंगार रस के लिए) अच्छा हुआ कि शैशव चला गया। चरणों की चपलता लोचन ने ग्रहण की (अर्थात् नयन चंचल हो गये)। अब दोनों के नयन दूत का काम करते हैं (आँखों-आँखों से बातें करते हैं)। लज्जा अब भूषणों में परिणत हुई। अब रह रह कर आंचल में हाथ देती है (छाती पर आँचल खींच लेती है) सखियों से बातें करते करते (लज्जा से) सिर झुका लेती है। हे कन्हाई, सुनो, सुनो, मैं निश्चय करके जानता हूँ कि यह समय नागरों को सावधान हो जाने का है। (नायिका के) भ्रू धनुष हैं, और काजल की रेखा धनुष की डोरी है, वह इस तरह तीर चलाती है (कटाक्ष करती है) कि केवल उसकी पूँछ बाहर रह जाती है (शेष मर्मस्थल में चला जाता है) रसमय कवि विद्यापति गाते हैं, राजा शिवसिंह रस का भाव समझते हैं।

पाठान्तर—न० गु० तालपत्र में (१) आवे (२) बाज (३) हमें अवधारल (४) धनुपि (५) मारवि रहत पोख अवसेष।

(१८)

आज देखलिसि कालि देखलिसि
आजि कालि कत भेद।
सैसव वापुड़े सीमा छाड़ल
जउवने वाँधल फेद॥

सुन्दरि कनक केआ मुति गोरी।
दिने दिने चान्द कला सब्वों वाढ़लि
जउवन शोभा तोरी॥

वाल पयोधर वदन सहोदर
अनुमानिय अनुरागे।
कओने पुरुप करें परसए पाओल
जे तनु जिनल परागे॥

मन्द हासे वङ्किम कए दरसए
चङ्गिम भँउह विभङ्गे।
लाजे वेआकुलि सामुन हेरए
आउल नयन तरङ्गे॥

विद्यापति कविवर एहु गावए
नव जउवन नव कन्ता।
सिवसिंह रजा एहो रस जानए
मधुमति देवी सुकन्ता॥

न० गु० तालपत्र १८६ अ १६०

अनुवाद—आज भी देखते हो, कल भी देखा था, आज और कल में कितना भेद हो गया (अर्थात् अत्यन्त अल्प समय में ही शैशव समाप्त हो गया और यौवन का आगमन हो गया)। वेचारे शैशव ने सीमा छोड़ दी, तथा यौवन ने उसको भगा कर अपना अधिकार जमा लिया। तुम्हारी गौरवर्ण मूर्ति मानों सुन्दर कनक से निर्मित की गयी हो। तुम्हारी यौवनश्री दिन दिन चन्द्रकला के समान वृद्धि पा रही है। ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे नवोद्गत कुच अनुराग से रक्तिम हो कर मुख के समान लाल हो गये हैं। इन्होंने किस पुरुष के कर का स्पर्श पाया है कि अपने सौरभ से तुम्हारे शरीर पर जय प्राप्त कर लिया। मृदुमंद हंस कर, भ्रूभङ्ग करके, कुटिल दृष्टिपात करती तुम अधिक उज्ज्वल दीख पड़ती हो। लज्जा से इतनी आकुल हो कि सामने देख नहीं सकती हो, लेकिन नयन तरङ्गों के द्वारा प्राण आकुल कर देती हो। कवि विद्यापति गाते हैं कि नवकान्ता का नवयौवन है। मधुमति देवी के सुकान्त शिवसिंह राजा यह रस जानते हैं।

पाठान्तर—न० गु० 'वाल पयोधर वदन सहोदर' का पाठान्तर 'वाल पयोधर गिरिक सहोदर' वतलाते हैं। लेकिन नवोद्गत पयोधर गिरि के सहोदर तुल्य नहीं होते। अनुराग में जिस प्रकार वदन लाल होता है, कुचकोरक भी उसी तरह लाल आभायुक्त होते हैं। इसलिये 'वदन सहोदर' पाठ ही उपयुक्त मालूम होता है।

(१९)

कुचजुग धरए कुम्भथल कान्ति
बाँक नखर खत अकुंश भान्ति ।
रोमावलि नगसुण्डके अनरूप
पानी पिअए चल नाभी कूप ॥
देखह माधव कएलिअँ साज
बाला चलति जौवन गजराज ॥
मदन महाउते कएल पसाह
लीला ओ नागर हेरय चाह ॥
पुनु लोचन पथ सीम न आउ
सैसव राजभीति पराउ ॥
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देविकन्त ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ६७

शब्दार्थ—बाँक—बाँका, नगसुण्डके—हाथी का सूँढ़ ।

अनुवाद—कुचयुग कुम्भ (हाथी के मस्तक) के समान हुए, उसपर तिरछा नखक्षत मानों अँकुश के समान दीख पड़ता है। रोमावलि हाथी के सूँढ़ के समान है, वह मानों जलपान करने के लिए नाभी कूप की ओर बढ़ रहा है। माधव, देखो बाला साज-सज्जा करके यौवनरूपी गजराज के समान चाल चलती है। मदनरूपी महावत उसको सजा रहा है। वह लीला में नागर को देखना चाहती है। हे शैशव, अब आँखों के सामने आना भी नहीं। (यौवनरूपी) राजा के डर से भाग जावो। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के कान्त रसमन्त राजा शिवसिंह समझते हैं।

(२०)

अधर सुशोभित वदन सुछन्द ।
मधुरी फुले पूजु अरविन्द ॥
तहु दुहु सुललित नयन सामरा ।
विमल कमल दल वइसल भमरा ॥
विशेखि न देखलि ए निरमलि रमनी ।
सुरपुर सञों चलि आइल गजगमनी ॥
गिम सञों लावल मुकुता हारे ।
कुच-जुग चकेव चरइ गंगाधारे ॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार ।
रस बुझ सिवसिंह नृप महोदार ॥

न० गु० तालपत्र २०, अ० ६४

शब्दार्थ—मधुरी फूल—बान्धुली फूल। सामरा—श्यामल; विशेखि—विशेष; गिम—ग्रीवा; लावल—डोलना; चकेर—चक्रवाक; चरइ—चरता है।

अनुवाद—सुन्दर वदन में अधर सुशोभित (हैं), मानो बान्धुली फूल से कमल की पूजा हो रही हो। उसी जगह पर दो सुललित श्यामल नेत्र हैं (मानों) विमल पद्म पर भ्रमर बैठा है। इस रमणी से श्रेष्ठतरा (रमणी) कभी देखा नहीं; यह मानों सुरपुर से गजगति से चलती हुई आ रही है (इसकी) गर्दन में मोतियों की माला झूल रही है, (उसे देख कर मालूम होता है) कुच (रूपी) दो चक्रवाक गंगाधार (हार) के निकट चरते हुए घूम रहे हैं। कविकण्ठहार विद्यापति कहते हैं कि महोदार शिवसिंह यह रस समझते हैं।

(२१)

चाँद-सार लए मुख घटना करु
लोचन चकित चकोरे ।
अमिय धोए आँचरे धनि पोछल
दह दिश भेल उजोरे ॥

कामिनि कौने गढ़ली ।
रूप स्वरूप मोहि कहइते असम्भव
लोचन लागि रहली ॥

गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए
माझ खीनिम निमाइ ।
भाँगि जाइति मनसिज धरि राखलि
त्रिवली लता अरुझाई ॥

भनइ विद्यापति अदभुत कौतुक
इ सब वचन सरूपे ।
रुपनरायन इ रस जानथि
शिव सिंह मिथिला भूपे ॥

न० गु० तालपत्र २१, अ० ६६

शब्दार्थ—घटना करु—बनाया; धोय—धोकर; निमाइ—निर्माण किया; अरुझाइ—फँसा कर, लपेट कर।

अनुवाद—(विधाता ने) चन्द्र का सार लेकर मुख की सृष्टि की, चकोर की आँखों के समान चंचल नयन (बनाए), जब अमृत से मुख धोकर अंचल से पोंछा (उससे अमृत चारो दिशाओं में फैल गया, जिससे) दशो दिशाएँ आलोकित हो गयीं। कामिनी को किसने गढ़ा है? रूप का स्वरूप कहना हमारे लिए असम्भव है, नयनों में वह रूप लगा रह गया। वह भारी नितम्बों के भार से चल नहीं सकती है। (विधाता ने) मध्य भाग (कटि) को क्षीण बनाया है, (वह) टूट जाएगा इस डर से मदन ने त्रिवली लता से उसे बाँध कर (लपेट कर) रखा है। विद्यापति कहते हैं (यह) अद्भुत कौतुक है, यह सब बातें सच हैं, मिथिला के नरपति शिवसिंह रूपनारायण इस रस से अवगत हैं।

(२२)

सुधामुखि को[1] विहि निरमिल वाला।
अपरूप रूप मनोभव-मङ्गल
त्रिभुवन विजयी माला ॥
सुन्दर वदन चारु अरु लोचन
काजरे रंजित भेला ।
कनक-कमल माझे काल-भुजंगिनि
श्रीयुत[2] - खंजन - खेला ॥
नाभि-विवर सञ्‌ लोम लतावलि
भुजगि निश्वास[3]-पियासा ।
नासा-खगपति-चंचु-भरम-भये
कुच-गिरि-सान्धि[4] निवासा ॥

तिन वाने[5] मदन जितल[6] तिनभुवने
अवधि रहल-दउ वाने ।
विधि वड़ दारुन वंधिते[7] रसिक जन
सौंपल ताहारि[8] नयाने ॥
भनये विद्यापति सुन वर यूवति
इह रस को[9] पये जान ।
राजा शिव सिंह रूपनारायण
लखिमा देवि प्ररमाने[10] ॥

प० त० १०५६, न० गु० २०, अ० ६८

शब्दार्थ—को विहि—कौन विधाता; मनोभव मङ्गल—मदन का कल्याण करनेवाला; अरु—और; सयें—से; भुजगि-निश्वास-पियासा—मानों सर्प निश्वास लेता हो।

अनुवाद—किस विधाता ने इस सुधामुखी वाला का निर्माण किया है? यह मानों त्रिभुवनविजयी माला है अथवा मदन का कल्याण करनेवाली है। वदन सुन्दर, लोचन कज्जल से रंजित, (देख कर मालूम होता है) सोना के कमल (मुख) में काल-भुजंगिनी (कज्जल) रहती हो, और (उसके पास) श्रीयुक्त (सुन्दर) खंजन (नयन) खेल कर रहे हों। नाभिविवर से लोमलतावलि वाहर निकल रही है, मानों भुजङ्गिनी साँस लेने के लिए वाहर जा रही हो, वह (भुजङ्गिनी) मानों नासा को गरुड़ की आँख समझ कर कुचयुग के सन्धिस्थल में छिप गयी। (मदन को पाँच वाण हैं, उनमें से) तीन वाणों से मदन ने तीन लोक जीत लिए, अब दो वाण वाकी रह गये—विधाता इतना निठुर है कि रसिकजनों का वध करने के लिए (उन दोनों वाणों को) तुम्हारे नयनों को सौंप दिया। विद्यापति कहते हैं—हे श्रेष्ठ युवति, यह रस कौन जानता है? रूपनारायण राजा शिवसिंह और लखिमा देवी इसके प्रमाण हैं।

पाठान्तर—न० गु० ने यह पद मिथिला में नहीं पाया, उन्होंने इसे पदकल्पतरु से लिया, परन्तु पद में निम्नलिखित परिवर्तन किया है:—

(१) के (२) शिरियुत (३) निश्वास (४) सन्धि (५) वान (६) तेजल (७) वधइते (८) तोहर (९) केओपय (१०) रमाने

(२३)

रामा अधिक चन्दिम भेल।
कतने जतने कत अदबुद
विहि विहि तोहि देल ॥
सुन्दर वदन सिन्दुर विन्दु
सामर चिकुर भार ॥
जनि रवि ससि संगहि उगल
पाछु कए अन्धकार ॥
चंचल लोचन बान्धे निहारए
अंजन सोभा पाए
जनि इन्दीवर पवले पेलल
अलि भरे उलटाए ॥

उनत उरज चिरे झपावए
पुनु पुनु दरसाए ।
जइअओ जतने गोअए चाहए
हिमगिरि न नुकाए ॥
एहनि सुन्दरि गुनक आगरि
पुने पुनमत पाव ।
इ रस विन्दक रूपनरायन
कवि विद्यापति गाव ॥

न० गु० तालपत्र ११७, प० त० १३३६,
अ० १२० और ४७५

पदकल्पतरु में यह पद निम्नलिखित रूप में पाया जाता है :—

सुन्दर वदने सिन्दुर विन्दु
शाङर चिकुर भार ।
जनु रवि शशि संगहि उयल
पिछे करि अन्धियार ॥
रामा हे अधिक चन्द्रिम भेल।
कत ना यतने कत अदभुत
विहि विहि तोहे देल ॥
उरज अंकुर चिरे झाँपायसि
थोर थोर दरशाय ।

कत ना यतने कत ना गोपसि
हिम गिरि ना लुकाय
चंचल लोचने वंक नेहारणि
अंजन शोभन ताय ।
जनु इन्दीवर पवने पेलल
अलि भरे उलटाय ॥
भन विद्यापति सुनह युवति
एसब एरुप जान ।
राय शिव सिंह रूपनरायण
लखिमा देवि परमान ॥

शब्दार्थ—चन्दिम—उज्जल, शोभायुक्त (प, त, र चन्द्रिम शब्द का अर्थ न समझने के कारण बङ्गाल के शब्द में परिवर्तन)। विहि—विधान, विहि—विधाता, तोहि—तुमको, सामर—श्यामल, पेलल—आन्दोलित हुआ, उनत—उन्नत, उरज—कुच, गोअए—छिपाना चाहती है, आगरि—अग्रगण्या। मैथिल पद में 'जनि' शब्द है, उसका अर्थ इस प्रकार है, बङ्गला में वह 'जनु' में परिवर्त्तित हो गया है, किन्तु जनु का अर्थ यह नहीं है।

अनुवाद—रामा अधिक शोभाशालिनी हुई। न मालूम कितना यत्न करके अद्भुत विधान से विधाता ने तुम्हारा निर्माण किया। सुन्दर वदन पर सिन्दूर का विन्दु और घन के समान काला केशभार देख कर दिल में आता है मानों सूर्य और चन्द्र (सिन्दूरविन्दु और मुख) एक साथ अन्धकार (केश) को पीछे रखकर उदित हुए हैं। चंचल लोचन वङ्किम दृष्टिपात करते हैं, अंजन शोभा पाता है, मानों पवन में आन्दोलित कमल (नयन) भ्रमर (अंजन) के भार से उलट गया है। उन्नत पयोधरों को वस्त्र से छिपाती है, वार-वार दिखलाती है, कितनी भी कोशिश करके छिपाना चाहती है, हिमगिरि (कुच) क्या छिपाया जा सकता है? इस प्रकार की श्रेष्ठा सुन्दरी को पुण्यवान पुण्यवल से प्राप्त करता है। विद्यापति गाते हैं कि यह रस रूपनारायण जानते हैं।

(२४)

सहज प्रसन सुख दरस हृदय सुख
लोचन तरल तरङ्ग ॥
आकास पाताल वस सेओ कइसे भेल अस
चाँद सरोरुह सङ्ग ॥
विधि निरमल रामा दोसरि लाछि समा
भल तुलायल निरमान ॥
कुच मण्डल सिरि हेरि कनक गिरि
लाजे दिगन्तर गेल।
केओ अइसन कह सेओ न जुगुति पह
अचल सचल कइसे भेल ॥

माझ खीन तनु भरे भाँगि जाय जनु
विधि अनुसए भेल साजि।
नील पटोर आनि अति से सुदृढ़ जानि
जतने सिरिजु रोमराजि ॥
भन कवि विद्यापति कामे रमनि रति
कउतुक वुझ रसमन्त।
सरि सिव सिंह राउ पुरुव सुकृते पाउ
लखिमा देवि रानि कन्त ॥

शब्दार्थ— सहज - स्वभावतः, दरस—दर्शन किया; आकाश पातालेवस इत्यादि—चाँद आकाश में एवं सरोरुह (कमल) पाताल में वसते हैं, वे एक साथ कैसे मिले?

अनुवाद—स्वभावतः प्रसन्नमुख दर्शन से हृदय को सुख होता है (नयन की ज्योति मानों) तरल तरङ्ग। चाँद (मुख) आकाश में और कमल (नयन) पाताल में रहते हैं, इन दोनों का एक साथ रहना कैसे हुआ? विधाता ने द्वितीय लक्ष्मी के समान रामा का निर्माण किया, निर्माण के समय अच्छी प्रकार तुलना की थी। कुचमण्डल की शोभा देखकर कनकगिरि (सुमेरु), (कोई कोई कहते हैं कि) लज्जा से दिगन्तर चला गया। लेकिन यह युक्ति मन में नहीं समाती है, यह समझ में नहीं आता है कि अचल सचल कैसे हो गया? कटि क्षीण, देह के भार से यह टूट जा सकता है, (देह) सजाकर विधाता को यही अनुताप हुआ; इसीलिए रेशम के सूत को अतिशय दृढ़ समझ कर उसीसे उन्होंने उसकी रोमराजि की सृष्टि की। विद्यापति कहते हैं, रमणी की काम में आसक्ति है, यह कौतुक रसमन्त समझते हैं। लखिमा देवी रानी के कान्त राजा श्री शिवसिंह ने पूर्व सुकृति के फलस्वरूप (इस प्रकार की रमणी) प्राप्त किया है।

(२५)

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे ।
कतेक जतन विहि आनि समारल
देखलि नयन सरूपे ।
पल्लवराज चरण-युग शोभित
गति गजराजक भाने ।
कनक-कदलि पर सिंह सभारल
तापर मेरु समाने ।
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल
नाल विना रुचि पाई ।
मनिमय हार धार वह सुरसरि
तें नहि कमल सुखाई ।
अधर-विम्ब सन दसन दाड़िम-विजु
रवि ससि उगथिक पासे ।
राहु दूरि वसु[1] नियरो न आवथि
तैं नहि करथि गरासे ॥
सारंग नयन वचन[2] पुन सारंग
सारंग तसु समधाने ।
सारंग उपर उगल दस सारंग
केलि करथि मधुपाने ।
भनइ विद्यापति सुन वर यौवति[3]
एहन जगत् नहिं जाने[4] ॥
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमादइ प्रति भाने[5] ।

ग्रियर्सन १४, न० गु० १७, त्रा० ६२

शब्दार्थ कतेक—कितना, स्वरूपे—प्रत्यक्ष, पल्लवराज—कमल, फुलायल—खिल गया, पाई—पाता है, सुरसरि—स्वर्गगंगा, उगथिक—उदित हुआ है, नियरो—निकट, आवथि—आता है, सारङ्ग नयन—हरिण के समान आँख, वचन पुन सारङ्ग—कोकिल के समान स्वर, सारङ्ग तसु समधाने—उसके कटाक्ष सारङ्ग (मदन) के समान हैं, सारङ्ग ऊपर—कमल तुल्य मुख के ऊपर। उगल—उदित हुआ। दस सारङ्ग—दस भ्रमर तुल्य चूर्ण कुन्तल। सारङ्ग—हरिण, भ्रमर, सर्प, मेघ, मयूर, कोकिल, कामदेव और कमल।

अनुवाद—माधव! सुन्दरी के रूप का वर्णन क्या करें? विधाता ने कितना यत्न करके सजाया है, मैंने अपनी आँखों देखा। उसके दोनों चरण कमल के समान शोभित हैं, उसकी चाल गजराज के समान है। सोना के केले (जंघा) के ऊपर सिंह (कमर) सजाया; उसके ऊपर मेरू के समान पयोधर रखे। मेरु के ऊपर दो कमल खिलाये, वे विना नाल के भी शोभा देते हैं। मणिमय हार गंगा की धारा के समान है, उसीसे कमल सूखने नहीं पाता है। अधर विम्वफल के समान, दाँत अनार के वीज के समान, रवि (सिन्दूर-विन्दु) और चन्द्र (मुख) एक दूसरे के निकट ही उगे हुए हैं। राहु (केश) दूर वास करता है, निकट नहीं आता, इसीसे रवि-शशि को ग्रसता नहीं है। उनके नेत्र

पाठान्तर—न० गु० ने इस पद को तालपत्र की पोथी में नहीं पाया। यह ग्रियर्सन में है। इसलिए न० गु० में निम्नलिखित पाठान्तर पाया जाता है। (१) दूर वस (२) वचन पुनि (३) जौवति (४) इह रस केओ पए जाने (५) लखिमा देइ रमाने।

हरिण के समान और वचन कोकिल के समान है, उसके कटाक्ष में कामदेव निवास करते हैं। कमल तुल्य मुख के ऊपर दस भ्रमर (चूर्ण कुन्तल) केलि करते हुए मधुपान करते हैं। विद्यापति कहते हैं, हे युवतिश्रेष्ठ सुन, यह रस कौन जानता है? लखिमादेवी के पति रूपनारायण शिवसिंह यह जानते हैं।

(२६)

साजनि अकथ कहि न जाए।
अवल अरुन ससिक मण्डल
भीतर रह नुकाए॥
कदलि उपर केसरि देखल
केसरि मेरु चढ़ला।
ताहि उपर निशाकर देखल
किरता उपर वइसला॥
कीर उपर कुरंगिनी देखल
चकित भमए जनी।
कीर कुरंगिनी उपर देखल
भमर उपर फणी।

एक असम्भव आओर देखल
जल विना अरविन्दा।
वेवि सरोरुह उपर देखल
जइसन दूतिअ चन्दा॥
भन विद्यापति अकथ कथा
इ रस केओ केओ जान।
राजा शिव सिंह रुपनरायण
लखिमा देइ रमान।

न० गु० तालपत्र १८३, अ० १८७

शब्दार्थ—अकथ—अकथ्य, आश्चर्य; अवल अरुण—बालारुण, आरक्त पदतल। ससिक मण्डल भीतर रह नुकाए—पैर का प्रत्येक नख चन्द्र के समान, दसों नख मानों चन्द्रमा के मण्डल हैं, उसके भीतर पदतलरूपी अनुदित सूर्य छिप के रहता है। किर-कीर—सुग्गा (नासा से तुलना है)। वइसला—बैठा हुआ है। कुरंगिनी—हरिणी (नयन); वेवि—दो; दूतिअ—द्वितीया का।

अनुवाद—सखि, इतनी आश्चर्यजनक बात देखी कि कहा नहीं जाता है। बलहीन अरुण (अनुदित सूर्य के समान लाल पदतल) शशिमण्डल (पदनख) के मध्य में छिपा हुआ है। कदली (जंघा) के ऊपर सिंह (कमर) देखा, उसके ऊपर मेरु (कुच) चढ़ा हुआ है। सुग्गा (नासा) के ऊपर हरिणी (नयन) देखी, भ्रमर (चूर्ण कुन्तल) के ऊपर सर्प (वेणी) देखा, एक और आश्चर्यजनक वस्तु देखी, जल के बिना कमल खिला हुआ है, (पयोधर से मतलब है) दोनों कमल के ऊपर मानों द्वितीया का चन्द्रमा (नख के चिह्न) है। विद्यापति कहते हैं इस आश्चर्यजनक बात का रस कौन जानता है? राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के पति।

(२७)

चरणकमल कदली विपरीत।
हास कला से हरए साँचीत ।।
के पति आओब एहु परमान।
चम्पकेँ कएल पुहवि निरमान ।।
एरे माधव पलटि निहार ।
अपरुप देखिअ युवति अवतार ।।
कूप गभीर तरंगिनी तीर ।
जनमु सेमार लता विनु नीर ।।
चहकि चहकि दुइ खञ्जन खेल ।
कामकमान चाँद उगि गेल ।।
उपर हेरि तिमिरेँ करू वाद ।
धमिलँ कएल ताकर अवसाद ।।
विद्यापति भन बूझ रसमन्त ।
राए सिव सिंह लखिमा देवि कन्त ।।

रामभद्रपुर की पोथी, पद ४३

शब्दार्थ—साँचीत—सहृदय, पुहवि—पृथ्वी; धमिल—केशकलाप।

अनुवाद—दोनों चरण कमल स्वरूप हैं और (दोनों जंघा) उलटे हुए केला के पेड़; हास्यकला इतनी सुन्दर है कि रसिकों का मन हर लेती है। इस बात का कौन विश्वास करेगा कि पृथ्वी चम्पा फूलों के द्वारा तैयार की गयी है? (नायिका के पैरों तले की भूमि चम्पा के समान शोभा देती है अथवा पृथ्वी से यह नारी चम्पा फूलों के द्वारा बनायी गयी है।) हे माधव, फिर कर देखो, कितनी अपूर्व सुन्दर नारी दीख रही है। नदी (त्रिवली) के किनारे मानों एक गम्भीर कूप (नाभी) है, वहाँ जल नहीं है, तौभी सेवार (रोमावली) जमा हुआ है। (नयनरूपी) दो खंजन पक्षी मानों चहक चहक कर क्रीड़ा कर रहे हैं। (भ्रू द्वय) मानों कामधनुष की डोरी हैं। उसका मुख चन्द्रमा के तुल्य है; (उसके आविर्भाव से मालूम होता है मानों चन्द्रमा उग गया हो)। (मुखचन्द्र के) ऊपर अन्धकार के समान केशपाश है; चन्द्र और तिमिर में विवाद बढ़ा (केशकलाप मुखचन्द्र को ढक देता है इसीलिये) तिमिर की ही विजय हुई। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के पति राय शिवसिंह यह रस समझते हैं।

(२८)

ओहु राहुभीत एहु निसङ्क
ओहु कलङ्की इ न कलङ्क ।।
सम बोलाइते अनुचित मन जाग
सोनाक तुरना काग कि नाग ।।
ए सखि पिआ मोरा बड़ अगेआन
बोलथि बदन तोर चाँद समान ।।
चान्दहु चाहि कुटिल कुटाख
तञे कामिनि विकिरए राख ।।
उथि अच्छ सुधा, इथि अच्छ हास
एत वा अच्छ किधु तुलना भास ।।
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार
तनिका दोसर काम प्रहार ।।
राजा रुपनराएन भान
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमान ।।

रामभद्रपुर की पोथी, पद ४०२

शब्दार्थ— तनिका —उसका ।

अनुवाद—वह (चन्द्र) राहुभीत, यह (तुम्हारा मुख) निःशङ्क; चन्द्रमा में कलङ्क है, तुम्हारा मुख निष्कलंक। इन दोनों को तुल्य कहना अनुचित है, जिस प्रकार सोना के साथ काग अथवा साँप की तुलना करना अन्याय है। हमारे पिया वड़े अज्ञानी हैं, इसीलिए तुम्हारे मुख की तुलना चाँद से करते हैं। कामिनी कुटिल कटाक्ष चलाती है, चाँद से यह नहीं हो सकता, इसीलिए कामिनी दयित को किंकर बना के रखती है। इसमें सुधा है, तुम्हारे मुख में हँसी है, इन दोनों में कुछ कुछ समता यहाँ दीख पड़ती है। विद्यापति कविकण्ठहार कहते हैं कि उसमें (नायिका में) कामोद्दीपन करने की शक्ति का अधिक भाग है। लखिमादेवी के रमन रूपनारायण राजा शिवसिंह को यह ज्ञान है।

(२६)

आँचरे वदन झपावह गोरि
राजसुनैच्छिअ चाँदक चोरि।
घरघरे पे हरि गेलच्छ जोहि
एपने दूषण लागत तोहि॥
बाहर सुतह हेरह जनु काहु
चाँन भरमे मुख गरसत राहु।

निरभि निहारि फाँस गुन तोलि
बान्धि हलत तोहँ खञ्जन बोलि।
भनहि विद्यापति होहु निशंक
चाँन्दहुँ काँ किछु लागु कलंक॥
रागत० पृ० ४६, नेपाल २३४ पृ० ८४ क,
न० गु० तालपत्र २२८, प० त० १०६१।

यह पद बहुत प्रसिद्ध है। लेकिन भिन्न भिन्न पोथियों में इसका रूप भिन्न भिन्न है। नेपाल की पोथी में—

अम्बरे वदन झपावह गोएरि
राज सुनइछि चान्दक चोरि॥
घरे घरे पहरी गेल अछ जोहि
अबही दुसल लागत लागत तोहि॥
सुन सुन सुन्दरि हित उपदेश
स्वपनेहु जनु हो विपदक लेश॥
हास सुधा रस न कर जोर
धनिके बनिके धन बोलब मोर॥
अधर समीप दसन कर जोति
सिन्दूर सीम बैसाउलि मोति॥

भनइ विद्यापतीत्यादि

न० गु० तालपत्र—प्रायः नैपाल की पोथी के अनुरूप ही पाठ है। चतुर्थ चरण में दो बार 'लागत' नहीं है। ५म और ६ठे चरण में परिवर्त्तन है:—

कतए लुकाएब चाँदक चोर
जतहि लुकाओब ततहि उजोर।

८वें चरण में 'जोर' के स्थान में उजोर और' घन' के स्थान में 'धन' है। पदकल्पतरु के पाठ में 'भनइ' के पहले दो चरण और हैं—

चान्दक आछये भेद कलङ्क
ओ ये कलंकित तहुँ निष्कलंक ॥

अनुवाद—हे गौरी! वस्त्र से वदन ढक कर रखो, राजा ने सुना है कि चाँद चोरी चला गया है। घर-घर पहरेदार घूम रहे हैं और खोज रहे हैं, इसमें तुम्हारा ही दोष होगा (कि तुम्हीं ने चाँद चोरी की है, नहीं तो तुम्हारा मुख चाँद के समान हुआ कैसे) जिसने चाँद की चोरी की है उसे कहाँ छिपा के रखा जा सकता है, जहाँ छिपा के रखोगी, वहीं उजाला हो जाएगा। हँसीरूपी सुधारस (दन्तपँक्ति) उज्ज्वल मत करो, क्योंकि वणिक और धनी लोग कहेंगे कि यह धन (दशनरूपी मुक्ता) उन्हीं लोगों का है। अधर की सीमा पर दशन की उज्ज्वल ज्योति होगी, सिन्दूर के (अधर के) प्रान्त में मानों मुक्ता बैठाया हुआ हो। विद्यापति कहते हैं कि निडर होवो, चाँद में कुछ कलङ्क है।

नैपाल के पद में दो अतिरिक्त चरणों का अर्थ है—सुन्दरी, हितउपदेश सुनो, स्वप्न में भी तुम्हें लेशमात्र विपद नहीं आवेगा।

रागतरङ्गिनी के पंचम से अष्टम चरण तक का अनुवाद—

बाहर सोती हो, कोई तुमको इस तरह से देख न ले, (देखने से) राहु के समान तुम्हारे मुखचन्द्र का ग्रास कर लेगा। शिकारी जाल लेकर घूम रहा है, तुम्हारे खञ्जन नेत्र देख कर बाँध लेगा। विद्यापति कहते हैं, निःशङ्क होवो, चाँद में भी कुछ कलंक है।

(३०)

कुसुमवान विलास कानन केस सुन्दर रेह।
निविल नीरद रुचिर दरसए अरुण जनि निअ देह॥
आज देखु गजराजपति वरजुअति त्रिभुवन सार।
जनि कामदेवक विजयवल्ली विहलि विहि संसार॥
सरद ससधर सरिस सुन्दर वदन लोचन लोल।
विमल कंचन कमल चढ़ि जनि खेल खंजन जोर॥
अधर नव पल्लव मनोहर दसन दालिम जोति।
जनि निविल विद्र मदलें सुधारसे सीचि धरु गजमोति॥
भत्त कोकिल वेणु वीणावाद तिभुवन भास।
जनि मधुर हाक पसाहि आनन करए वचन विकास॥
कमर भूधर सम पयोधर महघ मोतिमहार।
हेम निर्म्मित्त शंभुशेखर गंग निर्मल धार॥
वेरभ कोमल कर सुसोभन जंघजुग आरम्भ।
जनि मंदनमल्ल वेश्राम कारने गढ़ल हाटक थम्भ॥
सुकवि एहु कण्ठहारे गाओल रूप सकल सरूप।
देवि लखिमा कन्त जानए सिरि सिवए सिहँ भूप॥

—रागत ४२ पृ० न० गु० तालपत्र १४०, अ० ११२

शब्दार्थ—कुसुमवान—कामदेव, रेह—रेखा, निविल—निविड़, विहलि—विहि (विधि) शब्द क्रियारूपमें व्यवहृत हुआ है, अर्थ सृष्टि की लोल—चंचल, जोल—जोर, जनि—मानों।

अनुवाद—मदनदेव के विलास कानन स्वरूप केश में (सुन्दर) सिन्दूर की रेखा, मानों सुन्दर घने मेघ के भीतर से सूर्य्य अपनी देह दिखा रहा हो। आज त्रिभुवन की सार गजेन्द्र गमना श्रेष्ठ युवती को देखा। मानों उसकी विधाता ने संसार के कामदेव की विजयलता के रूप में सृष्टि की है। उसका मुख शरद्काल के शशधर के समान सुन्दर और नयन चंचल, उसे देख कर मालूम पड़ता है मानों खञ्जन युगल विशुद्ध सोना से बने कमल पर चरता हुआ क्रीड़ा कर रहा हो। उसके अधर नवपल्लव के समान सुन्दर हैं, दशन में दाड़िम की ज्योति है मानों सुधारस से सिक्त विमल प्रवालदल में गजमोती रखा हुआ हो। उसकी वचनविलास के समय मधुर हँसी देख कर मालूम होता है मानों त्रिभुवन में मत्तकोकिल, वेणु और वीणाध्वनि एकसंग सजा कर रखे गये हों। सुमेरुतुल्य पयोधर के ऊपर बहुमूल्य मुक्ताहार देख कर मालूम होता है मानों सोना के बने हुए शिव के ऊपर गंगा की निर्मल धारा हो। करभ के कोमल सूँढ़ के समान सुशोभित जंघायुगल का आरम्भ देख कर मालूम होता है मानों मदनरूपी पहलवान ने व्यायाम के लिए सोना का खम्भा गाड़ा हो। सुकवि कण्ठहार रूप का यथायथ वर्णन करते हुए इसको गाते हैं। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह यह जानते हैं।

(३१)

यब गोधुलि समय बेलि[१]
धनि मन्दिर बाहिर भेलि
नव जलधर[२] विजुरि-रेहा
दन्द पसारि[३] गेलि
धनि अलप वयेस[४] बाला
जनि गाँथनि पुहप माला।
थोरी दरसने आश न पूरल
बाढ़ल मदन-जाला॥

गोरि कलेवर नूना[५]
जनु आँचरे उजोर सोना।[६]
केसरि जिनिया माझहि खीन
दुलह लोचन-कोना॥
इसत हासिनि सने
मुझे हानल नयन वाने।
चिरजीव रहु पञ्च गौड़ेश्वर
कवि विद्यापति भने॥

—प० त० २०१, रागदा पृ० ११, कीर्त्तनानन्द पृ० १३२, न०४५, अ० ४२

कीर्त्तनानन्द के प्रारम्भ में—'धनि गो मो देखिलि यब मन्दिर बाहिरे भेलि'

भनित के लिए—'नगिर माहु सने मुझे हानल मदन बाने।
चिरजीव रहु पञ्च गौड़ेश्वर कवि विद्यापति भाने।'

पाठान्तर—रागदा में पद के शुरु में 'धनि गो आजु' है। (१) गेलनु बाला गेलि। (२) जलधरे (३) धरा बड़ाइया (४) (मे गे) अलपवयसि (५) नूना (६) आगरे उजोर सोना।

न० गु० कहते हैं—"पदकल्पतरु में भनित में रूपनारायण शब्द के बदले में पञ्च गौड़ेश्वर है लेकिन उससे छन्द भङ्ग होता है। मिथिला में रूपनारायण ही संशोधित पाठ में है, लेकिन वह भी मूल पाठ नहीं है। मूल पाठ कीर्त्तनानन्द में पाया जाता है।"

मन्तव्य—पञ्च गौड़ेश्वरः—साधारणतः राढ़, वरेन्द्र, वङ्ग, वागरी, और मिथिला में इनको पञ्चगौड़ कहा जाता है। किन्तु स्कन्धपुराण में है—

सारस्वत कान्यकुब्जा गौड़ मैथिलिकोत्कला
पञ्चगौड़ा इति ख्याता विन्धोह्स्योत्तर वासिनः।"

नगेन्द्र बाबू ने पद के भनित में रूपनारायण दिया है, और पदकल्पतरु में पञ्च गौड़ेश्वर और कीर्त्तनानन्द में नसीर साह लिखा हुआ है। नगेन्द्र बाबू ने स्वयं भी रूपनारायण पाठ को असली नही माना है। किन्तु वे कहते हैं नसीर साह अथवा नसरत साह वङ्गाल सूबा के पठान राजा को ही पंचगौड़ेश्वर की उपाधि उपयुक्त है।" वङ्गाल के स्वाधीन सुलतानों में हाजी इलियास साहब के पौत्र, नासीर-उद-दीन महमूद शाहने १४४२ ई० से १४६० ई० तक राज्य किया (Advanced History of India by Majumdar, Roy Choudhury and Dutt, 1946 पृ० ३४५ और पृ० ६०५) ; द्वितीय नासीर-उद-दीन महमूद शाह ने १४८६ ई० से १४६० ई० तक राज्य किया और सैयद अलाउद-दीन हुसेन शाह के पुत्र नासिर-उद-दीन नसरत शाह ने १५१८ से १५३३ तक राज्य किया। देवसिंह और गियास्-उद्-दीन आजम शाह (१३६२-१४१०) को जिस कवि ने पद उत्सर्ग किया उसके लिये १५१८ ई० में सिंहासन आरोहणकारी नासिरुद्दीन नसरत शाह को पद उत्सर्ग करना सम्भव नहीं है। द्वितीय नासिर-उद्-दीन महमूद शाह ने केवल एक वर्ष तक राज्य किया तथा वह दुर्बल राजा था। इसलिए यदि कीर्त्तनानन्द के भनिता को प्राकृतिक समझा जाय तो यह कहा जा सकता है कि यह पद हाजी सामस्-उद्-दीन इलियास शाह (१३४५-१३५१) के पौत्र प्रथम नासिर-उद्-दीन महमूद शाह को (१४४२-१४६० ई०) उत्सर्ग किया गया है। यह अनुमान यदि यथार्थ माना जाए तो कालानुयायी सन्निविष्ट पदावली में इसका स्थान राजनामाङ्कित पदावली के अन्त में देना उचित है; क्योंकि विद्यापति का १४४२ ई० के बाद का कोई पद लिखा हुआ नहीं पाया जाता है।

अनुवाद—गोधूलि समय में जब सुन्दरी घर से बाहर हुई, (तब देखा मानों) नवजलधर और विद्युतरेखा में विवाद बढ़ गया। (सतीशचन्द्र राय की व्याख्या—गोधूली के अन्धकारावृत जलधर के समान श्यामल अंग में उज्ज्वल गौराङ्गी नायिका की देह-कान्ति क्षीण विद्युतप्रभा की नाईं दीप्ति विस्तार करती है और उसके द्वारा गोधूलि का अन्धकार कुछ कुछ दूर हो जाता है और विद्युत के विवाद रूप में इस स्थान पर उत्प्रेक्षा की गयी है)। यह सुन्दरी अल्पवयसी बाला है, मानों गूँथे हुए फूलों की माला है ; अल्प देख कर आशा मिटी नहीं, मदन ज्वाला बढ़ गयी। उसका शरीर छोटा और गौरवर्ण है, और उसके आँचल में मानों सोना (कुच) है। उसकी कमर में मानों सिँह है एवं दुर्लभ नयन-कोण है। थोड़ा-थोड़ा मुस्कुराते हुए उसने मुझे नयन-वाण मारा। कवि विद्यापति बोलते हैं कि पंच गौड़ेश्वर चिरंजीवी होवें।

(३२)

चिकुर निकर तम सम
पुनु आनन पुनिम ससी।
नअन पङ्कज के पतिआओव
एक ठाम रहुवसी॥
आजे मोयेँ देखलि वारा
लुवुध मानस चालक मअन
कर की परकारा॥

सहज सुन्दर गौर कलेवर
पीन पओधर सिरी।
कनअलता अति विपरीत
फलल जुगल गिरी॥
भन विद्यापति विहिक घटन
मे न अदवुद जाने।
राए सिवसिँह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥

न. गु. तालपत्र २१, अ २८

शब्दार्थ—चिकुर निकर—केशपास ; पुनिम ससी—पूर्णिमा का चाँद, पतिआओव– विश्वास करेगा ; मअन—मदन ; परकारा—सुधार करना ; सिरी—श्री, शोभा ; फलल—फले हुए।

अनुवाद—(सुन्दरी का) केशकलाप अन्धकार के समान, किन्तु मुख पूर्णिमा के चाँद के समान और नयन कमलतुल्य। कौन विश्वास करेगा कि (अन्धकार, पूर्णचन्द्र और पङ्कज) एक जगह साथ ही साथ रह सकते हैं? आज मैंने वाला को देखा। मन लुब्ध हो गया, मदन उसको चलानेवाला था, मैं किस प्रकार रोक सकता था? सहज सुन्दर गौरवर्ण कलेवर, उसपर पीन पयोधर शोभा पा रहे हैं, मानों कनकलता पर आश्चर्यजनक भाव से दो गिरि फल गये हों। विद्यापति कहते हैं कि विधाता के काम अद्भुत होते हैं, कौन नहीं जानता? रूपनारायण राजा शिवसिँह लखिमा देवी के रमण।

(३३)

जमुनक तिरे तिरे साँकड़ि वाटी।
उवटि न भेलिहु संग परिपाटी॥
तरुतर भेटल तरुन कन्हाइ।
नयन तरङ्गे जनि गेलिहु सनाइ॥
के पतिआएत नगर भरला।
देखइते-सुनइते मोर हृदय हरला॥

पलटि न हेरल गुरुजन लाजे।
नयन मोये चुकिलिहु सखिन्हि समाजे॥
एतदिन अछलिहु अपने गेयाने।
आवे मोरा मरम लागल पचवाने॥
निठुर सखि विसवास न देइ।
परक वेदन पर घाटि न लेइ॥

भनइ विद्यापति एहु रसमाने।
राए सिवसिंह लखिमा देइ रमाने॥

न० गु० तालपत्र ६३, अ १०

शब्दार्थ—साँकड़ि—संकीर्ण ; वाटी—बाट, पथ ; उबटि—फिर कर ; परिपाटी—अच्छी तरह से ; सनाइ—स्नान करके ; चुकिलहु—भूल हुई ; बिसवास—विश्वास ।

अनुवाद—यमुना के तीर पर संकीर्ण (टेढ़ा-मेढ़ा) रास्ता है ; (इसलिए) फिर कर ठीक से सङ्ग नहीं हुआ अर्थात् देखा नहीं गया । तरुण कन्हाइ से जब वृक्षतले देखा-देखी हुई, उस समय वह मानों मुझे नयनतरङ्ग से स्नान करा गया । कौन विश्वास करेगा कि इस जनाकीर्ण नगरी के बीच में देखते देखते मेरा हृदय हर के ले गया । गुरुजनों की लज्जा से फिर पलट कर नहीं देखा । सखियों के संग बातचीत करते समय मुझसे भूलें होने लगीं । इतने दिनों तक मैं अपने ज्ञान (होश) में थी, अब मेरे मर्मस्थल में पंचबाण लग गया । निष्ठुर सखी विश्वास नहीं करती है, दूसरे का दुख दूसरा बाँटता नहीं है । विद्यापति कहते हैं कि यह रस लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह जानते हैं ।

(३४)

अवनत आनन कए हम रहलिहु
वारल लोचन-चोर ।
पिया मुखरुचि पिवए धाओल
जनि से चाँद चकोर ॥
ततहु सञें हठे हटि मोयेँ आनल
धएल चरन राखि ।
मधुप मातल उड़ए न पारए
तइअओ पासरए पाँखि ॥

माधवे बोलालि मधुर वानी
से सुनि मुदु मोयेँ कान ।
ताहि अवसर ठाम वाम भेल
धरि धनु पचवान ॥
तनु पसेव पसाहनि भासलि
पुलग तइसन जागु ।
चूनि चुनि भए काँचुअ फाटलि
वाहु वलआ भागु ॥

भनविद्यापति कम्पित कर हो बोलल बोल न जाय ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन साम सुन्दर काय ॥

न० गु० तालपत्र ६४, अ० ११

शब्दार्थ—रहलिहु—रही । वारल—रोका । पिवए—पान करने के लिए । धावल—दौड़ पड़ा । जनि—मानों । ततहु—उसी स्थान पर । सँय—से । धएल—पकड़ कर । वाम—बैरी । पसेव—पसीना । पसाहनि सजाना । तइसन—उसी प्रकार । चुनि चुनि—चुन चुन शब्द करके । काँचुअ—कंचुकि, चोली ।

अनुवाद—(माधव से जब मिलन हुआ तब) मैं मुख नीचे किए रही, लोचन-चोर को मना किया, रोका (नयन चोरी से उनको देखना चाहते थे, मैंने नयन को रोका) परन्तु जिस प्रकार चकोर चाँद की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार मेरे नेत्र प्रिय के रूप का पान करने के लिए दौड़ पड़े । उस स्थान से बलपूर्वक नेत्रों को हटाया, चरणों की ओर उन्हें रखे रही । मधुपान से उन्मत्त मधुकर जिस प्रकार उड़ नहीं सकता है, लेकिन पँख पसारता है (उसी प्रकार मेरे नयन चरणों पर लगे रहने पर भी माधव का मुख देखने के लिए बार-बार चेष्टा करने लगे) माधव कुछ बोले, मैंने सुन कर कान बन्द कर

लिए। उसी समय पञ्चबाण मदन ने धनुष धारण करके मेरे प्रति शत्रुता की अर्थात् हमको घायल कर दिया। पसीने से सारा शरीर का शृंगार भींग गया, इस प्रकार रोमाँच हुआ कि चोली चुन चुन शब्द करके मसक गयी, वलय बाहर भाग गया। विद्यापति कहते हैं कि हाथ काँपते हैं, कहने की बात कही नहीं जाती। रूपनारायण राजा शिव सिंह श्यामसुन्दर शरीरवाले हैं। नगेन्द्र बाबू ने अमरुशतक का निम्नोद्धृत श्लोक उद्धृत किया है—

> तद्वक्त्राभिमुखं विनमितं दृष्टिः कृता पादयोः
> तस्यालाप कुतुहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया।
> पाणिभ्याञ्चतिरस्कृतः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः
> सख्यः किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके सन्धयः॥

विद्यापति ने अमरु से यह भाव ग्रहण किया हो, किन्तु पिया मुखरुचि पिवए धाओल, जनि से चाँद चकोर, 'मधुप मातल उड़ए न पार तइअओ पसारए पाँखि' प्रभृति वाक्य नूतन रस की सृष्टि करते हैं।

(३५)

नील कलेवर पीत वसन धर
चन्दन तिलक धवला।
सामर मेघ सौदामिनी मंडित
तथिहि उदित ससिकला॥
हरि हरि अनतए जनु परचार।
सपने मोए देखल नन्दकुमार॥
पुरुब देखल पय सपने न देखिअ
ऐसनि न करबि बुधा।
रस सिंगार पार के पाओत
अमोल मनोभव सिधा॥
भनइ विद्यापति अरे वर जोवति
जानल सकल मरमे।
सिवसिंघ राय तोरा मन जागल
कान्ह कान्ह करसि भरमे॥

न० गु० (नाना) ८, अ, १००६

शब्दार्थ—अनतए—अन्यत्र। जनु परचार—प्रचार मत करना। सिधा—सिद्धि। अमोल—अमूल्य।

अनुवाद—नीलकलेवर, पीतवसन धारी, श्वेत चन्दन का तिलक, मानों श्यामलमेघ विद्युत (पीतवसन) से मंडित हुआ हो और उसपर शशिकला (चन्दनतिलक) उदित हुई हो। हरि हरि, अन्य किसी से यह मत कहना, आज मैंने स्वप्न में नन्दकुमार को देखा। पहले कहीं देखा था, स्वप्न में नहीं देखा, ऐसा मत सोचना। शृंगार रस का अन्त कौन पाता है? मदन की सिद्धि अमूल्य है। विद्यापति कहते हैं, हे युवति श्रेष्ठ, मैं तुम्हारा सकल मर्म जानता हूँ। राजा शिव सिंह तुम्हारे मन में जाग गए हैं, तुम भ्रमवश कान्ह कान्ह कर रही हो।

(३६)

सरस वसन्त समय भल पाओलि
दखिन पवन वहु धीरे।
सपनहुँ रूप वचन एक भाखिए
मुख सो दूरि करु चीरे।
तोहर वदन सम चान होअथि नहि
जइओ जतन विहि देला।
कए वेरि काटि वनाओल नव कए
तइओ तुलित नहि भेला।
लोचन तुअ कमल नहि भए सक
से जग के नहि जाने।
से फेरि जाए नुकेलाइ जल-भय
पंकज निज अपगाने।
भनइ विद्यापति सुनु वर यौवति
ई सव लछमी समाने।
राजा सिवसिंघ रूपनारायन
लखिमा देइ पति भाने।
—ग्रियर्सन ६, न० गु० ७१४,अ ७१९

शब्दार्थ—पाओलि—पाया। सपनहुँ रूप—मानों स्वप्न में।

अनुवाद—सरस वसन्त का समय पाया। दक्षिण पवन धीरे-धीरे वह रहा था। स्वप्न में मानों एक पुरुष ने कहा कि तुम अपने मुख पर से कपड़ा हटावो। यद्यपि विधाता ने बहुत चेष्टाएँ की, परन्तु तुम्हारे मुख के समान चाँद को न बना सके। कितनी बार चाँद को काट काट कर नया बनाया, तथापि चाँद (तुम्हारे) मुख के समान नहीं हो सका। कमल जो तुम्हारे नेत्रों के समान न हो सका—यह संसार में कौन नहीं जानता है? पंकज अपने अपमान की लज्जा से जल के भीतर जा कर छिप गया। विद्यापति कहते हैं, हे श्रेष्ठ युवति, यह सव लक्ष्मी के समान है। लखिमा देवी के पति राजा शिव सिंहँ रूपनारायण इसको जानते हैं।

(३७)

लघु लघु सञ्चर कुटिल कटाख।
दुअओ नयन लइ एक होक लाख॥
नयन वयन दुइ उपमा देल।
एक कमल दुइ खञ्जन खेल॥
कन्हाइ नयना हलिअ निवारि।
जे अनुपम उपभोग न आवए
की फल ताहि निहारि॥
चाँद गगन वस अओ तारागन
सूर उगल परचारि।
निचय सुमेरु अधिक कनकाचल
आनव कओने उपारि॥
जे चुरु कय सायर सोखल
जिनल सुरासुर मारि।
जल थल नाव समहि सम चालए
से पावए एहि नारि॥
भनइ विद्यापति जनु हरड़ावह
नाह न हियरा लाग।
दूती वचन थिर कए मानव
राए सिवसिंह वड़ भाग॥

न० गु० तालपत्र १९, अ ६०

शब्दार्थ—हलिअ—जाओ ; सूर—सूर्य्य ; चुरु—अञ्जलि ; सायर—सागर ; हरड़ावह—व्यस्त ; हियरा—हृदय ।

अनुवाद—धीरे धीरे कुटिल कटाक्ष करती है, मालूम होता है दोनों नयन मिल कर एक ही निशाना लगाते हैं। नयन और वदन इन दोनों की यही उपमा होती है कि एक कमल (वदन) और दूसरा खंजन (नयन)। एक कमल में दो खञ्जन क्रीड़ा करते हैं। हे कन्हाई, उस ओर देखा नहीं, यह अनुपम (सुन्दरी) उपभोग के लिए नहीं आवेगी, उसको देखने से क्या फल ? आकाश में चाँद और तारे हैं, सूर्य के उगने से सब प्रकाशित हो जाता है। सुमेरु निश्चय कनकाचल है, (उसको) उठा कर कौन ले आएगा ? जो अञ्जलि से समस्त सागर को सोख सकता है, सुरासुर को मार कर जय प्राप्त कर सकता है, जल और स्थल में एक समान ही नौका चला सकता है, वही इस नारी को पा सकता है। विद्यापति कहते हैं, व्यस्त मत होवो, हृदय में (अभीतक) नाथ लगा ही नहीं अर्थात् अभी तक इस नारी को अनुराग हुआ ही नहीं। दूती का कथन स्थिर हो कर मानेगी। राजा शिवसिँह अति भाग्यवान हैं।

(३८)

सहजहि[१] आनन सुन्दर रे
भँउह सुरेखलि आँखि।
पङ्कज मधुपिवि मधुकर
उड़ए पसारए पाखि।
ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जतहि[२] गेलि वर नारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे
कृपनक पाछु भिखारि ॥
ईंगित नयन तरङ्गित देखल
वाम भँउह भेल भङ्ग।
तखने ना जानल तेसरे
गुपुत मनोभव रङ्ग ॥
चन्दने चरचु पयोधर
गृम गजमुकुताहार।
भसमे भरल जनि शङ्कर
सिर सुरसरि जलधार ॥

वाम चरण आगुसारल
दाहिन तेजइते लाज।
तखन मदन सरे पूरल
गति गञ्जए गजराज ॥
आज जाइते पथ देखलि रे
रूप रहल मन लागि।
तेहि खन सयँ गुन गौरव रे
धैरज गेल भागि ॥
रूप[३] लागि मन धाओल रे
कुच कंचन गिरि सांधि।
ते अपराधे मनोभव रे
ततहि धएल जनि बांधि ॥
विद्यापति कवि गाओल रे
रस[४] बुझ रसमन्ता।
रूपनरायन[५] नागर रे
लखिमा देविक कन्ता ॥

न० गु० तालपत्र ४२, नेपाल ७४, पृ० २८ क पं ४, रागत० ३४८, (अभिसारिका) अ० ७६

पाठान्तर—नेपाल की पोथी में—(१) 'ततहि धाओल दुहु लोचन रे' प्रभृति से इसका आरम्भ हुआ है। किन्तु 'सहजहि आनन' प्रभृति 'कृपनक पाछु भिखारि' के बाद है। (२) जेहि पथे (३) रूप लागि मन धाओल रे (४) गुन रसिक सुजान (५) राजा रूपनराएन रे लखिमा देवी रमाने। नेपाल पोथी में—'ईंगित नयन' से 'गञ्जए गजराज' तक नहीं है।

शब्दार्थ—भँउह—भ्रू। सुरेखलि—सुरेखायुक्त ; तेसरे—तीसरे आदमी। गृम—ग्रीवा।

अनुवाद—सहज सुन्दर मुख और भ्रू की सुरेखायुक्त आँख (देख कर मालूम होता है मानों) भ्रमर (भ्रू) पंकज का (वदन का) मधुपान करके उड़ने के लिए पंख (आँख के पलक और पत्र) पसार रहा हो। जहाँ अथवा जिस पथ से वह सुन्दर नारी गयी है, उसी तरफ हमारे दोनों नयन दौड़ पड़े जिस प्रकार आशालुब्ध भिक्षुक कृपण के पीछे पीछे दौड़ता है। (मुझे) इशारा करने के लिए नयन तरङ्गित और बायीं भ्रू वंकिम हुए, उस समय कोई तीसरा आदमी अनंग का रहस्य नहीं जान सका। उसके चन्दन चर्चित पयोधर और गला में गजमुक्ताहार (देख कर मालूम होता है मानों) शंकर (कुच) भस्म लपेटे हुए हैं और उनके सिर पर गँगा की धारा है (मुक्ताहार)। उसने बायाँ चरण आगे बढ़ाया, दाहिना उठाने में लाज लगी (नायिका की जाने की इच्छा नहीं थी, इसीलिए दाहिना पैर बढ़ाने में उसे लाज लगी, परन्तु 'दाहिन' शब्द में 'दाक्षिण्य' की व्यञ्जना हो सकती है ; वैसा होने से अर्थ होगा कि वह दाक्षिण्य त्याग करने में लजाती थी इसीलिए आगे बाँया चरण बढ़ाया)। गजराज को मात करनेवाली गति (देखते देखते) मदन ने तीर सँवारा। आज उसको रास्ते में जाते देखा, उसका रूप मन में लग गया। उसी समय से गुण का गौरव और धैर्य भाग गये। रूप के लिए मन कुचरूपी कंचनगिरि के सन्धिपथ में दौड़ गया। उसी अपराध में मनोभव ने उसी स्थान पर मन को बाँध कर रख लिया। विद्यापति कवि गाते हैं, हे रसमन्त रस बूझ। लखिमा देवी के पति रूपनारायण नागर हैं। ❀

(३६)

अन्धर विघटु[1] अकामिक[2] कामिनि
करे कुच झाँपु सुछन्दा[3]।
कनक-सम्भु सम अनुपम[4] सुन्दर
दुइ पङ्कज[5] दस चन्दा॥
कत रूप कहव बुझाइ[6]।
मन मोर चंचल लोचन विकले
ओ ओ अनइते जाइ[7]॥

❀ क्षणदा गीतचिन्तामणि का पद नीचे दिया जाता है—इससे यह पता लगता है कि विद्यापति का पद बंगाल में कितना रूपान्तरित हुआ।

सहजइ आनन सुन्दर रे भाउ-सुरेखलि आँखि
पंकज मधुकर पिवि मधुरे उड़ये पसारलि पाखि॥
आजु पेखनु धनी जाइते रे रूपे रहल मन लाइ।
कोटि सुधाकर वदन मंडल आँखि तिरपित नाहि पाइ।
अतए धाओल मोरि लोचन रे जहि जहि गेलि वरनारी।
आशालुब्ध नाहि तेजय रे कृपण को पाछे भिखारि।
अनए रहल मन मो रहु रे कनया कुच गिरि साँधि।
ते अपराधे मनोभव रे जोरि राखल मन बाँधि॥

पद नं० ३९ कीर्त्तनानन्द का पाठान्तर—(अधिकांश स्थल पर अशुद्ध और अर्थहीन है) (१) विघुचुह (२) आकामुक (३) सम्बन्धा (४) कुचयुग निरुपम (५) पँकजे (६) कि आर कत रूपे कहव बुझाइ (७) उह आनिते इह जाइ।

आड़ बदन कए[८] मधुर हास दए
सुन्दरी रहु सिर लाइ।
अओँधा[९] कमल कान्ति नहि पूरए
हेरइत जुग वहि जाइ॥

भनइ[१०] विद्यापति सुन वर जउवति
पुहवी नव पचवाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने॥

न० गु० तालपत्र ४० कीर्त्तनानन्द पृ० १२२ अ० ७४

शब्दार्थ—विघटु—हट गया, खिसक गया। अकामिक—अकस्मात्। सुच्छन्दा—सुन्दरतापूर्वक। अनइत—दूसरे के पास। लाइ—नीचा करके। अओँधा—उल्टा, नतमुख। पुहवी—पृथ्वी।

अनुवाद—एकाएक कामिनी का वस्त्र खिसक गया। उसने (दोनों) हाथ देकर (कुचद्वय को) सुन्दरता पूर्वक ढाँक लिया, मानों कनक-शम्भु (कुच) को अनुपम सुन्दर दो पङ्कज (कर) और दस चन्द्रमाओं (नखों) से ढाँका गया हो। किस तरह से समझा कर कहें? हमारा मन चंचल और लोचन आकुल हो गए, ये दोनों मेरे वश से बाहर चले गए। मुख को छिपा कर, मधुर हँसी हँस कर सुन्दरी ने सिर नीचा कर लिया मानों उल्टे कमल की कान्ति पूर्णरूप से देखे बिना ही (देखते देखते) युग बीत गया। विद्यापति कहते हैं—हे युवति श्रेष्ठा सुन, लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिँह रूपनारायण पृथ्वी के नये कामदेव हैं।

(४०)

जनि हुतवह हवि आनि मेराओल
ता सम भेल विकार।
दुअओ नयन तोर विसम मदन सर
शालय हृदय हमार।
हरि हरि का लागि सुमुखि विहुसि हसि
हेरलह जीवन परल सन्देह॥
पीन पयोधर अपरुब सुन्दर
उपर मोतिम हार।

जनि कनकाचल उपर विमल जल
दुइ बह सुरसरि धार॥
भनइ विद्यापति सुन वर नागर
सबहु होएत परकार।
राजा सिवसिंघ गाओल-एन
लखिमा देवी उदार॥

रागत० पृ० ४५ न० गु० ११६, अ० १२२

शब्दार्थ—हुतवह—अग्नि। मेराओल—मिला दिया। शालए—छेद करता है। विहुसि हसि—मुस्कुरा कर। जनि—मानों।

अनुवाद—जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से ज्वाला और भी प्रबल हो उठती है उसी प्रकार मेरा विकार भी बढ़ा। विषम कामदेव के तीर के समान तुम्हारे दो नयनों ने मेरा हृदय छेद दिया। हरि, हरि, किस कारण सुमुखि ने

पाठान्तर—(८) आड़ बदने करे [illegible] हासि रहे सुन्दरी [illegible] (९) अओंधे कमल [illegible] हेरइते जुग वहि जाइ। (१०) विद्यापति कवि गाइये [illegible] रसमन्ता। राजा शिव सिंह रूप नारायण [illegible] रमन्ता।

मुस्कुराहट के साथ मेरी ओर नजर फेंकी, मेरे जीने में सन्देह हो गया। तुम्हारे पीन पयोधरों के ऊपर अपूर्व सुन्दर मोतियों की माला मानों कनकाचल (कुच) के ऊपर स्वर्गसरिता की दो निर्मल जलधाराओं के समान लगती है। विद्यापति कहते हैं—हे श्रेष्ठ नागर, सुन, सब कुछ का बदला होता है। राजा शिव सिंह एवं उदार लखिमादेवी इसी प्रकार गाते हैं।

(४१)

जखने दुहुक दीठि बिछुड़लि
दुहु मने दुख लागु।
दुहुक आसा दीप मिझाएल
मदन आँकुर भाँगु ॥
विरह दहन दुहु सँतावए
दुहु समीहए मेलि।
एकक हृदय अओक न पाओल
तेँ नहि फाउलि केली ॥
वाम नयना जओं भेल दूते
ओ दाहिन रहु लजाइ।
चेतन चेतन गुपुति पिरिति
पर कहहु न जाइ ॥
जइ नवचन्द पुरन्दर अन्तर
चन्दन तासु समाने।
दसमि दसा पथ अँगिरओं
न करओं तेसर काने ॥

मोहन सर मनोभवे साजल
तनु पसाहल आगी।
विनु अवसर की सखि वोलनि
पुनु दरसन लागी ॥
सीतलि उकुति जेहो जुगुति
समदल छल आने।
अव सओँना जानि कन्हाई
मानि हल धनि धाने ॥
दप्पन मुख प्रतिविम्ब नाओी
वेकत भेल विकारे।
पुनुक आसा काम पुरावओ
भने कवि कण्ठहारे ॥
हरि सरीसे जगत जानिअ
रूपनरायन रन्ता।
राए सिवसिंघ सुचिरे जीवओ
लखिमा देवी सुकन्ता ॥

न० गु० ७५, तालपत्र आ० ३

शब्दार्थ—दीठि—दृष्टि। विछुड़लि—बिछुड़ गये। मिझाएल—बुझ गया। आँकुर—अंकुर। भाँगु—टूट गया। सँतावए—जलाता है। समीहए—इच्छा करता है। फाउलि—पाया। साजल—सन्धान किया। पसाहल आगी—अग्नि में फेंक दिया। मानि—मान कर, समझ कर। हल—जाता है। धाने—नजदीक।

अनुवाद—जिस समय दोनों की आँखें बिछुड़ीं, उस समय दोनों के मन में दुख हुआ। दोनों के आशा-दीप बुझ गए, मदन का अँकुर ही टूट गया। दोनों विरह की अग्नि में जलने लगे, दोनों ने मिलने की इच्छा की। एक का हृदय दूसरे ने पाया ही नहीं, इसलिए केलि भी न हो सकी। मानों वामनयना अपनी ही दूती हो गयी, नायक दक्षिण (अनुकूल) होकर भी लज्जित होकर रह गया। चुपचाप चालाकी से गुप्त प्रणय हुआ, दूसरे को कहा भी नहीं जाता है। जिस प्रकार पुरन्दर के अन्तर में नवचन्द है (इन्द्र ने गुरुपत्नी का हरण किया था, इसीलिए वह सहस्राक्ष अथवा

सहस्र नवचन्द्र की रेखा के समान रेखाओं से अँकित हुआ, उसके भीतर चन्द्रमा शीतल न होकर भयङ्कर ज्वालायुक्त हुआ था) उसी प्रकार चन्दन दुखदायक हुआ, दसवीं दशा स्वीकार कर लेते हैं, तो भी तीसरे व्यक्ति के कान में (प्रेम की कथा) नहीं पड़ी। कामदेव ने मोहन शर सन्धान किया, मानों शरीर में अग्निदाह समा गया। किन्तु फिर दर्शनलाभ का मौका न पाने से सखी को क्या बोलें! दूसरे के द्वारा शीतल उक्तियों से जो सब युक्तियों की बातें सम्वादरूप में भेजा था, उसका मर्मार्थ समझ कर धनी के निकट यदि कन्हाई आवें, तभी उसे चतुर समझेंगे। दर्पण में जिस प्रकार मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार विकार व्यक्त हुआ। कवि कण्ठहार कहते हैं, फिर दर्शन की आशा कामदेव पूरा करेंगे। राजा रूपनारायण को जगत में हरिस्वरूप समझना। लखिमा देवी के सुकान्त राजा शिव सिंह दीर्घजीवी होवें।

(४२)

लाख[1] तरुअर कोटिहि[2] लता
जुवति कत न लेख।
सब[3] फूल मधु[4] मधुर[5] नाही[6]
फूलहु फूल विसेख॥
जे फूल[8] भमर निन्दहु सुमर
बास[9] न बिसरए पार।
जाहि[10] मधुकर उड़ि उड़ि पड़
सेहे सँसारक सार॥
सुन्दरि, अवहु वचन सुन।
सबे परिहरि तोहि इथ्र हरि
आपु मराहहि[7] पुन॥

तोहरे[11] चिन्ता तोहरे कथा[11]
सेजहु तोरिए चाओं।
सपनहु[12] हरि पुनु पुनु कए
लए उठ तोरिए नाओं॥
आलिङ्गन दए, पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन कोर।
अकथ[13] कथा आपु अवथा
नयने तेजये नोर॥
राहि राही जाहि मुँह मुनि
ततहि अपूपए कान।
सिरि सिवसिंघ इ रस जानए
कवि विद्यापति भान॥

रागत० पृ० २०४, तालपत्र; न०गु ६७; नेपाल २१, पृ० ६ क पं ५ (मनः विद्यापतीत्यादि) भ० १०६

नेपाल की पोथी में पाठान्तर—(१) लाखे (२) कोटिहि कोटिहि (३) सबहि (४) फूलामधु (५) मधुरस (६) मधु मधु विनोद—"माली फूलहु फूल विसेख" के बदले में (७) मराहसी (८) मधु (९) बासि (१०) पुनि मधुकर उड़ि डाउपल सोहि संसारक सार
(११) तोहि [illegible] तोहिए चिन्ता, तो मधुर तोहिए [illegible]। सपनेहु तोहि [illegible] पुनु [illegible] उठ तोहिए नाम॥
(१२) [illegible] कथा [illegible] कथा [illegible] न तेजये नोर।
रागत० के अनुसार पाठान्तर—[illegible] में "[illegible]" (१३) तोहिए चिन्ता तोहि [illegible] तोहिए [illegible] (१४) [illegible] हरि तोहिन [illegible] उठ तोहिए नाम (१५) देखी।
(१२) [illegible] कथा [illegible] न [illegible] नोर।
भणिता में है—"[illegible] हरि [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]।"
[illegible] नेपाल की पोथी में
"[illegible]—[illegible]" नहीं है

शब्दार्थ—तरुअर—तरुवर। विसेख-विशेष। निन्दहु—नींद में भी। सुमर—स्मरण करता है। इछ—इच्छा करता है। सराहहि—प्रशंसा करता है। नाओं—नाम। आपु अवथा—अपनी अवस्था।

अनुवाद—(जिस प्रकार) लाखों वृक्ष और करोड़ों लतायें हैं उसी प्रकार कितनी युवतियाँ हैं इसकी गणना नहीं हो सकती। सब फूलों का मधु मधुर नहीं होता, फूलों में भी कुछ विशेष होते हैं। जिस फूल का गन्ध भ्रमर भूल नहीं सकता हैं, नींद में भी जिसकी कथा स्मरण करता है, जिसके पास वार वार उड़ उड़ कर जाता है, वही फूल संसार में श्रेष्ट है। सुन्दरि, अब भी वात सुन। सबों का त्याग करके हरि तुम्ही को (पाने की) इच्छा करते हैं; तुम्हारी ही प्रशंसा करते हैं। हरि तुम्हारी ही चिन्ता करते हैं, तुम्हारी ही वातें करते हैं, शय्या पर भी तुम्हीं को चाहते हैं। स्वप्न में भी हरि तुम्हारा ही नाम ले लेकर वार-वार उठते हैं, आलिङ्गन करते हैं, पीछे फिर-फिर कर देखते हैं, परन्तु तुम्हारे विना उनकी गोद सूनी है। उनकी हालत कही नहीं जाती है, नयनों से जल वहता ही रहता है। जहाँ 'राइ' 'राइ' शब्द सुनते हैं, वहाँ ही कान देते हैं; कवि विद्यापति कहते हैं कि श्री शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(४३)

आसाये[1] मन्दिर[2] निसि गमावए
सुखे न सूत सँयान
जखन जतए[3] जाहि निहारए
ताहि ताहि तोहि भान॥
मालति ! सफल जीवन तोर।
तोर[5] विरहे भुवन भमए
भेल मधुकर भोर॥
जातकि केतकि कत न अछए[6]
सवहिं[7] रस समान।
सपनहू[8] नहि ताहि[9] निहारए
मधु कि करत पान॥
वन उपवन कुञ्ज कुटीरहि
सवहि तोहि[10] निरूप।
तोहि विनु पुनु पुनु मुरुछए
अइसन प्रेम स्वरूप[11]॥

साहर नवह सउरभ न सह
गुजरि गीत न गाव।
चेतन पापु चिन्ताए आकुल
हरख सवे सोहाव॥
जाकर हृदय[12] जतहि रतल
से धसि ततहि जाए।
जइओ जतने वाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए॥
इ रस राए सिवसिंह जानए
कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देवि वल्लभ
सकल गुन निधान॥

न० गु० १०४ तालपत्र नेपाल १८, पृ० ८ क, पं १ (भने विद्यापतीत्यादि)अ० ११६

पाठान्तर—(नेपाल की पोथी के अनुसार) (१) आसा (२) मन्दिर वैस (३) जखने जतने (४) तुअ (५) तोरे (६) अछ पेम (७) कुसुम तोरे (८) सपनकु (९) काहु (१०) तोर (११) पेम (१२) इसके वदले में नेपाल की पोथी में है :

"जाकर हृदय जतए रहल धसि पए ततहि जाए
गेअओ जतने वान्धि निरोधिअ निमन नीर समाए।"

शब्दार्थ—आसायें—आशा से। गमावए—बिताता है। जतए—जहाँ। भुअन—भुवन। भोर—विह्वल। साहर—आम। नवह—नया। सोहाव—शोभा पाता है। धसि—वेग के साथ।

अनुवाद—आशा से घर रात बिताता है, सुख से सेज पर सोता नहीं है, जब जो जिस स्थान पर देखता है, वहाँ तुम्हारी ही बात मन में आती है। हे मालति, तुम्हारा जीवन धन्य है, तुम्हारे विरह में संसार में भ्रमण करता हुआ भ्रमर विह्वल हो गया। जातकी, केतकी, न जाने कितने फूल हैं, सबों का रस समान है। स्वप्न में भी तुमको नहीं देखते हैं, तो किस प्रकार मधु का पान करें? वन, उपवन, कुञ्ज, कुटी सब स्थानों में तुम्हीं को खोजते हैं। तुम्हारे विरह में बार-बार बेहोश हो जाते हैं, यही प्रेम का स्वरूप है। नया आम सौरभ सह नहीं सकता है, गूंज कर गाना नहीं गाता है, चतुर पाप की चिन्ता से व्याकुल होता है, आनन्द में सब शोभा देते हैं अर्थात् चतुर मनुष्य दुश्चिन्ता से आकुल होता है, परन्तु आनन्द के समय सब वस्तुएँ ही अच्छी लगती हैं। जिसका हृदय जिस स्थान का अनुरागी होता है, वह उसी स्थान पर तेजी से दौड़ता है। कितने भी यत्न से पानी को रोक कर ठहराया जाए, वह नीची दिशा में ही स्थिर होता है। कवि विद्यापति कहते हैं, रानी लखिमा देवी के स्वामी सकल गुणनिधान राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(४४)

ए धनि कर अवधान।	आकुल अति उतरोल।
तो विने उनमत कान॥	हा धिक हा धिक बोल॥
कारण विनु खेने हास।	काँपए दुरबल देह।
कि कहए गद्गद भास॥	धरइ ना पारइ केह॥

विद्यापति कह भाखि।
रूपनरायन साखि॥

पं ३६६; न० गु० ८८, अ० ९८

अनुवाद—हे धनि, सुनो, तुमको न पाने से कन्हाई पागल के समान हो गए हैं। बिना कारण कभी हँसते हैं और कभी गद्गद स्वर में जाने क्या बोलते हैं। व्याकुल होकर उत्कण्ठा के साथ 'हा धिक्, हा धिक्' बोलते हैं। उनका दुर्बल शरीर काँपता रहता है, किसी प्रकार (कम्पन को) रोक नहीं सकते हैं। विद्यापति कहते हैं कि रूपनारायण इसके साक्षी हैं।

शब्दार्थ—बेरि-वारवार; धन्धे-सशंयमूलक कार्य्य; महघ पसार—बहुमूल्य द्रव्य ; परतारि—प्रतारणा करके।

अनुवाद—वह कन्हाई गोकुल में प्रसिद्ध नागर है और नगर के सारे लोग तुम्हें नागरी कहते हैं। हे सखि, कितनी बार तुमसे कहा कि संशययुक्त कार्य्य करने से धर्मनष्ट होता है। सुन्दरि, रूपगुण से श्रेष्ठ आद्यन्त बहुमूल्य वस्तु (शुरु से अन्त तक) और नहीं हो सकती। तुमको सच कहती हूँ, मुझे इस प्रकार ठग कर (कन्हाई के पास) मत भेजो। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के कान्त श्री शिवसिंह रसमन्त इसको समझते हैं। नगेन्द्र गुप्त और उनके ही अनुसार अमूल्य विद्याभूषण ने इस पद का अर्थ इस प्रकार लगाया है—

गोकुल में कन्हाई अति नागर (रसिक) हैं, नगर में तुम्हीं (प्रधान) नागरी हो, यह सब कोई जानते हैं। सखि, कितनी बार समझा कर कहूँ (कार्य) करने से धर्म के विषय का संशय दूर हो जायगा अर्थात् कार्य धर्मविरुद्ध है कि नहीं, यह संशय दूर हो जाएगा। सुन्दरि, रूपगुण का सार (तुमको है), बहुमूल्य वस्तु का आदि अन्त नहीं होता अर्थात् बहुत मँहगे दाम में तुम्हारा रूप-गुण बिकेगा। स्वरूप देख-भाल कर तुमको समझाया। हमको ठग कर (श्रीकृष्ण के पास) मत भेजो। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के पति रसिक श्री शिवसिंह इसे समझते हैं। इस अनुवाद में शृंखला का अभाव दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि नगेन्द्र बाबू ने इसे पहले ही दूती की उक्ति माना है और ७वें और ८वें चरणों के अनुवाद में लिखा है—"सत्य बात देख-भाल कर तुम्हें समझाती हूँ, मुझे इस तरह ठग कर मत भेजो। (माधव को ठगने के लिए मिथ्या आशा देकर मुझे उनके निकट मत भेजो)।" माधव को मिथ्या आशा देकर दूती भेजने का पूर्वाभास पद में पहले नहीं मिलता है।

(४६)

पिया परवास आस तुअ पासहि
तेँ कि बोलह जदि आन।
जे पतिपालक से भेल पावक
इथी कि बोलत आन॥

साजनि अघटन घटावह मोहि।
पहिलहि आनि पानि पियत मैं गहि
करे धरि सोपलिहु तोहि॥
कुलटा भए जदि पेम बढ़ाइअ
तेँ जीवने की काज।
तिला एक रंग रभस सुख पाओब
रहत जनम भरि लाज॥
कुल कामिनि भए निज पिय बिलसए
अपथे कतहु नहि जाइ।
की मालती मधुकर उपभोगए
किबा लताहि सुखाइ॥
विद्यापति कह कुल रखले रह
दूति वचने नहि काज।
राजा शिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि समाज॥

रागत पृ० १२, न० गु० २१९, अ० २१६

शब्दार्थ—आस-आशा। पावक-दहनकारी, भक्षक। गहि-लेकर। कतहु—कभी भी। सुखाइ—सूख जाता है।

अनुवाद—प्रिय प्रवास में हैं (इसी कारण) आशा तुम्हारे पास है, इसलिए दूसरी बात क्या बोलती हो? जो रक्षक है वही अगर भक्षक हो गया तो क्या और कहा जाए? सजनि, जो न होना चाहिए वही मेरे साथ होगा, पहले तुमने (मेरा) हाथ पकड़ कर प्रियतम के हाथ में समर्पण कर दिया। कुलभ्रष्टा हो कर अगर प्रेम बढ़ावें, तो जीवन किस काम का? एक तिल अर्थात् क्षण भर रंग-रस में सुख पाऊँगी, (उससे) जीवन भर लज्जा रहेगी। कुलकामिनी हो कर अपने प्रियतम के साथ विलास करे, कभी भी कुपथ पर पैर नहीं रखे अर्थात् अन्यासक्ता न हो। मालती के समान केवल भ्रमर से ही उपभुक्त हो अथवा लता ही रह कर सूख जाए (तथापि दूसरे के प्रति आसक्त न हो)। विद्यापति कहते हैं, कुल रखे रहो, दूती की बात कान मत करो। राजा शिवसिंह रूपनारायण (लखिमा देवी के सामने) यह बात कहते हैं।

(४७)

गगनक चान्द हाथ धरि देयलुँ
कत समुझायल निति।
यत किछु कहल सबहु ऐछन भेल
चीतपुतली समरीति॥
माधव बोध ना मानइ राइ।
बुझइते अबुझ अबुझ करि मानए
कतए बुझायबि ताइ॥

तोहारि मधुर गुन कतहि थापलु
सबहु कठिन करि माने।
यैछन तुहिन बरिखे रजनी
कर कमल नासइए पराने॥
विद्यापतिवाणी सुन सुन गुनमणि
आपे करह पयान।
राजा सिवसिंह रूप नरायण
लखिमा देइ रसगान॥

(पंडित बाबूजी की पोथी पद ४८)

शब्दार्थ—चीतपुतलीसम—चित्रित पुतली के समान। थापलु—स्थापन (प्रमाण) किया। पयान—प्रयाण, चले जाना।

(४८)

तोरए मोञें गेलहु फूल ।
मोति मानिके तूल ॥
साजनि साजि अछोरसि मोरि ।

गरुवि गरुवि आरति तोरि ।
दिठि देखइत दिवस चोरि ॥
एत कन्हाइ परधन लोभ ।
जे नहि लुबुध सेहे पय सोभ ॥
निकुंज केर समाज ।
इथी नही मुख लाज ॥
ढाँकि वोवे¹ न अपजस रासि ।
से करे कान्हु जेन लजासि ।
जखने नागर नगर जासि ।

पीन पयोधर भार ।
मदन राय भण्डार ॥
रतने गड़िलो ता हरि माथ ।
मलिन होयत न देहे हाथ ॥
कवि भन कण्ठहार ।
वस एत ए के पार ।
सिरि सिवसिंह जानए तन्त ।
रतन सन लखिमा कन्त ॥
सब कलारस जे गुनमन्त ॥

रागत पृ० ६१, न० गु० १२२, अ० १२५

शब्दार्थ—तोरए—चुनने के लिए; अछोरसि—छीन लिया; गरुवि गरुवि आरति तोरि—तुम्हारी दुहाई; गरुवि गरुबि—भारी भारी; आरति—आर्त्ति। न० गु० ने० 'तोरि' का अर्थ 'टूटा' किया है।

अनुवाद—मुक्ता माणिक्य के समान फूल चुनने गयी, मेरी डलिया छीन ली (साजनि शब्द का अर्थ सखी है, किन्तु यहाँ उसका अर्थ सखा रखने से ठीक होता है क्योंकि यह समस्त पद राधा ने कृष्ण को कहा है)। सखी के प्रति राधा की उक्ति हुई "हाथ मत देना, स्तन मलिन हो जाएगा" इस उक्ति की सार्थकता नहीं रहती है)। तुम्हारी दुहाई, मैं हाथ जोड़ती हूं, पैर पड़ती हूं, तुम्हारे समीप व्याकुलता प्रकाश करती हूँ। तुम क्या दिन-दोपहर आँख के सामने चोरी करोगे ? कन्हाई, दूसरे के धन के लिए तुम्हें इतना लोभ है ? जो लोभी नहीं हैं वही शोभा पाता है। निकुञ्ज के निकट इस प्रकार का काम करते तुम्हें लज्जा नहीं होती ? अपयशराशि ढँकी नहीं रहती। कन्हाई, तुम इस प्रकार का काम कर रहे हो कि तुम्हें नगर के सभ्य समाज में जाते लज्जा लगेगी। पीनिपयोधर का भार राजा मदन का भण्डार है, उसके सिर पर रत्न का हार जड़ा रहता है, इसलिये हाथ मत लगावो, मलिन हो जायेगा। कवि कण्ठहार कहते हैं—इस जगह पर कौन रह सकता है ? रत्नतुल्य लखिमा के कान्त श्री शिवसिँह सकल कलारस के गुणवान हैं, वे यह पद्धति जानते हैं।

पाठान्तर—न० गु० ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह पद राग तरंगिणी से लिया है। किन्तु (१) मुद्रित पोथी में 'वोवे' के स्थान पर रहे न' कर दिया है)।

(४६)

तुअ गुन गौरव सील सोभाव।
सेहे लए चढ़लिहु तोहरी नाव।
हउ न करिअ कन्हु कर मोहि पार।
सब तह बड़ थिक पर उपकार॥
भल मन्द जानि करिअ परिणाम।
जस अपजस दुइ रह गए ठाम॥
हमे अबला कत कहब अनेक।
आइति पड़ले बुझिअ विवेक॥

आइलि सखि सबे साथ हमार।
से सबे भेलि निकहि विधि पार॥
हमरा भेलि कान्हु तोहरे ओ आस।
जे अंगिरिअ तो न होइअ उदास॥
तोहें पर नागर हमे पर नारि।
काँप हृदय तुअ प्रकृति विचारि॥
भनइ विद्यापति गावे।
राजा सिवसिंह रूपनारायन
इ रस सकल से पावे॥

न० गु० तालपत्र १२५, रागत० पृ० ६४, अ० १२८

न० गु० के पाठ का अनुवाद—तुम्हारा गुणगौरव और सुशील स्वभाव जानकर मैं तुम्हारी नौका पर चढ़ी हूँ। कन्हाई, हठ मत करना, हमको पार कर दो, सब से उत्तम काम परोपकार है। हमारे साथ जो सखियाँ आई थीं वे सब भलीभाँति पार हो गयीं। कन्हाई, हम तुम्हारे भरोसे हैं, जिसको अङ्गीकार किया है, उसके प्रतिपालन में उदासीन मत होवो। परिणाम अच्छा होगा कि तुम समझ कर काम करना, यश और अपयश दोनों यहाँ ही (इसी संसार में रह जाते हैं)। हम अबला हैं, और अधिक क्या कहूँ, तुम्हारी शरण में आयी हैं, जिसे विवेकपूर्ण कार्य समझो, वही करो। तुम पर-पुरुष हो और हम पर-नारी हैं; तुम्हारी प्रकृति विचार करने से हमारा हृदय काँपता है। विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह रूपनारायण यह सब रस पावेंगे।

राग तरंगिनी के पाठ का अनुवाद—मैं अपना गुण, गुणगौरव, शील और स्वभाव सब लेकर तुम्हारी नौका पर चढ़ी हूँ। मैं डरती हूँ, और कितना कहूँ? समझती हूँ कि अविवेक के कारण मैं पड़ कर बैठी हूँ (अवशिष्ट अंश न० गु० से ही अनुरूप है)।

(५०)

दिवस मन्द भल न रहए सब खन
विहि न दाहिन रह[1] बाम लो ॥
सोह पुरुषवर जेहे धैरज कर
सम्पद विपदक ठाम लो ॥
माधव बूझल सवे अवधारि लो।
जस अपजस दुअओ चिरे थाकए
आओर दिवस[2] दुइ चारि लो ॥
अपन करम अपनहि भुँजिअ
विहिक चरित नहि वाध लो।
काएर[3] पुरुष हृदय हारिमर
सुपुरुष सह अवसाद लो ॥
तीनि भुवन मही अइसन दोसर नहीं
विद्यापति कवि भाने[4]।
राजा सिवसिंह नराएन
लखिमा देवि रमाने[5] ॥

नेपाल १६०, पृ० ६८ क, पं ३, न० गु० ४०४, अ० ४१८

शब्दार्थ—दाहिन—अनुकूल; वाम—प्रतिकूल; काएर—कापुरुष; हारिमर—हार कर मरता है, अवसन्न हो कर बैठ जाता है; मही—बीच में।

अनुवाद—सब समय अच्छे और बुरे दिन नहीं रहते, ब्रह्मा भी सदा अनुकूल अथवा प्रतिकूल नहीं रहते। सम्पद और विपद के रहते हुए जो धैर्य धारण करके रहता है वही पुरुष श्रेष्ठ है। माधव! सब सोच समझ कर यही समझा है कि यश और अपयश यही दोनों चिरकाल तक रहते हैं और सब चीजें दो चार दिन रहती हैं। अपना कर्म अपने ही भोग करता है; विधाता का काम रोका नहीं जा सकता। कापुरुष का हृदय अवसन्न हो जाता है, सुपुरुष अवसाद सहन करता है। कवि विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिँह के समान तीनों भुवन में और दूसरा कोई नहीं है।

(५१)

कुच नख लागत सखि जन देख।
गिरि कइसे नुकाएत नव ससि रेख ॥
आरति अधिक न करिअ लोभ।
सब राखए पहिलहि मुख सोभ ॥
न हर न हर हरि हृदयक हार।
दुहु कुल अपजस पहिल पसार ॥
खर कए खेव लेह निअ दान।
रसिक पए राख गोपीजन मान ॥
तोंहि जदुकुल हम कुलिन गोआलि।
अनुचित वाट न कर वनमालि ॥
भनइ विद्यापति अरेरे गोआरि।
बड़े पुने सम्भव आदर मुरारि ॥
राजा रूपनरायन जान।
राए सिवसिंघ सुखमा देर रमान ॥

तालपत्र न० गु० १२७, अ० १३०

पाठान्तर—(पद न० ५०)—न० गु० ने यह पद नेपाल की पोथी से लिया है, परन्तु उन्होंने निम्नलिखित पाठान्तर किया है—(१) न सेहे (२) दिन (३) कातर (४) भान लो (५) रमान लो।

शब्दार्थ—नुकाएत—छिपेगा; नवससिरेख—नखक्षत स्वरूप नूतन शशिरेखा; मुखसोभ—लोकलज्जा; पहिल पसार—प्रथम विक्रय सामग्री। खर—समुचित; खेय—उतराई; अनुचित बाट—अन्याय पथ अथवा अन्याय कार्य्य।

अनुवाद—कुच में नख लगेगा (तो) सखियाँ देखेंगी, गिरि किस प्रकार नवीन शशिरेखा को छिपावेगा? अधिक आरति का (अनुराग का) लोभ नहीं करना चाहिये, सबकोई सब के आगे मुखशोभा (लोकलज्जा) रखते हैं। हे हरि, हृदय का हार मत छीनो। पहले ही विक्रय में (दूकान की प्रथम सामग्री में) अर्थात् नवीन यौवन में ही दोनों कुल में अपयश होगा। जो उचित खेवा (उतराई) हो वही लो। हे रसिक गोपीजन का मान रखो। तुम यदुवंश के पुरुष हो और मैं सतकुल की गोपी हूँ, हे वनमाली, अनुचित पथ (व्यवहार) मत करो। विद्यापति कहते हैं, अरे गोपी, मुरारी का आदर बड़े पुण्य से प्राप्त होता है। सुषमादेवी के पति राजा शिवसिंह रूपनारायण यह जानते हैं।

(५२)

राहु तरासे चाँद हम मानि।
अधर सुधा मनमथे धरु आनि॥
जिव जन्यों जोगाएब धरब अगोरि
पिवि जनु हलह लगति हम चोरि॥
सहजहि कामिनि कुटिल सिनेह।
आस पसाह बाँक ससिरेह॥
की कन्हु निरखह[1] भमुक[2] भंग।
धनु हमे[3] सँपि गेल अपन अनंग॥
कंचने कामे गढ़ल कुच कुम्भ।
भंगइत मनव देइत[4] परिरम्भ[5]॥
कैतव करथि कलामति नारि।
गुन गाहक पहु बुझथि विचारि॥
भनइ विद्यापति न करहि बाध।
आसा वचने पुरहि धनि साध॥
गरुड़नरायन नन्दन जान।
राए सिवसिघ लखिमा देइ रमान॥

नेपाल २५३, पृ० ६२ क, पं १ (भनइ विद्यापतीत्यादि) न० गु० २१६, तालपत्र अ० २२०

शब्दार्थ—जिवजन्यों—प्राण के समान। जोगाएब—जोगा कर रखेंगे; सावधानी से रखेंगे। धरब अगोरि—अगोर कर रखेंगे; भमुक-भंग—भ्रू भंग। भंगइत—टूट जाना; परिरम्भ—आलिङ्गन; कैतव—छल, बहाना। मनव—मालूम होगा।

अनुवाद—हमारे मुख को राहुभीत चन्द्र समझ कर मन्मथ ने अधर में सुधा लाकर रखा है। जीवन के समान इसे जोगा कर और अगोर कर रखूँगी, पान करके मत जाना, हमें चोरी लगेगी। स्वाभावतः ही रमणी का स्नेह बंकिम होता है (उस पर) मुख पर बंकिम शशिरेखा है अर्थात् मुख पर तिलक लगा हुआ है। हे कन्हाई (मेरी) भ्रू भङ्गिमा क्या देखते हो, मन्मथ ने अपना धनुष मुझे दान कर दिया है। कन्दर्प ने मेरा कुचकुम्भ सोना से निर्माण किया है, आलिङ्गन करने से मालूम होगा कि टूट जाएगा। गुणग्राही प्रभु विचारने से समझेंगे कि सुकौशली रमणी कौतुक कर रही है। विद्यापति कहते हैं. बाधा मत दो, हे सुन्दरि, आशा के वचन से साध पूर्ण करो। गरुड़ नारायण के पुत्र लखिमा देवी के पति शिवसिंह जानते हैं।

पाठान्तर—नेपाल, पद—'की कन्हु निरखह—से आरम्भ हुआ है। (१) निरेखह (२) भौह विभंग (३) मोहि (४) देइते (५) परिरम्भ के बाद नेपाल की पोथी में ये दो चरण हैं—"चतुर सखिजन सारथि नेह, आसेप माहि बंक शशिरेह।" इसके बाद—"राहु तरासे—ससिरेह" है।

(५३)

हठे न हलव मोर भुज-जुग जाति।
भाँगि जाएत विस किसलय काँति ॥
हठ न करिय हरि न करिय लोभ।
आरति अधिक न रह सुख-सोभ ॥
हटिए हलिय निञ नयन-चकोर।
पीवि हलत धसि ससिमुख मोर।
परसि न हलवे पयोधर मोर।
भाँगि जाएत गिरि कनक-कटोर ॥
भनइ विद्यापति इ रस भान।
लखिमा पति सिवसिंघ नृप जान ॥

न० गु० तालपत्र २२०, अ० २२१

शब्दार्थ—हठे—हठ करके ; हलव—जाना ; जाति—दवा कर ; विस—विष, मृणाल; किसलय काँति—किसलय कान्ति; हटिए हलिय—जल्दी से हटावो।

अनुवाद—हठ करके मेरे दोनों हाथों को दवा कर मत रखो, किसलय-कान्ति मृणाल टूट जाएगा। हे हरि, वल प्रकाश मत करो, लोभ मत करो, अधिक आसक्ति से सुख-शोभा नहीं रहती। अपने नयन-चकोरों को जल्दी-जल्दी हटावो, वे वेग से आके मेरा मुख-शशि पान करने लगेंगे। मेरा कुच स्पर्श करने मत जाना, पर्वत के समान सोना का कटोरा टूट जाएगा। विद्यापति कहते हैं, लखिमापति राजा शिवसिँह इस रस का भाव जानते हैं।

(५४)

कतएक हमे धनि कतए गोयाला।
जले थरे कुसुम कैसनि हो माला।
पवन न सह दीपक जोती
छुइलेहु मलिनि हो मोती।
कि बोलिवो अरे सखि कि वोलिवो...
अव आवह पुनु एसना कासे।
काञे निवदसि कुमति स आनी
सव भन मधुर तीन्ति वड़ि वानी
परव न नीत करए सव कोइ
करिए पेम जञो विरह न होइ।
नागरि जन के चचहुँ विनासा
रुपेहु वचने राखि गेलि आसा
भनइ विद्यापति एह रस जाने
राए शिवसिंह लखिमा देवी रमाने।

रामभद्रपुर की पोथी पद ४०३

शब्दार्थ—कतए—कहाँ ; थरे—स्थल पर ; नीत—नित्य ; चचहुँ—चोली से।

अनुवाद—कहाँ हमारे समान सुन्दरी और कहाँ ग्वाला। जल और थल के फूलों को लेकर माला कैसे गूँथी जा सकती है? दीप की शिखा पवन नहीं सह सकती, मोती छूने से ही मलिन हो जाता है। हम, हे सखि और क्या बोलें—तुम स्वयं चतुरा हो, कुमति की बातें क्यों बोलती हो? तुम्हारी सब चीजें मधुर हैं, केवल बातें तीती हैं। कोई नित्य पर्व (उत्सव) नहीं करता है (यह बात ठीक है); परन्तु प्रेम करने से विरह नहीं होता (प्रेम का उत्सव नित्य ही होता है)।

(कवि कहते हैं) नागरी की बातों से विमुखता है परन्तु क्रुद्ध वचन से भी आशा दिला गयी। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंहँ यह रस जानते हैं।

(५५)

से अति नागर[1] तञें सब सार।
पसरओ मल्ली पेम पसार॥
जौवन[3] नगरि वेसाहब रूप।
तते मुल[2] इहह जते सरूप॥
साजनि रे[4] हरि रस वनिजार।
गोप भरमे जनु बोलह गमार॥
विधि-बसे[5] अधिक कर जनु मान।
सोरह[6] सहस गोपीपति कान्ह॥
तोह हुनि उचित रहत नहि भेद।
मनमथ मधथे करब परिछेद।

—नेपाल ११६, पृ० ४१, पं ४; रामभद्रपुर पद १६३; न० गु० ६२ अ १०२।
नेपाल पोथी में भनइ विद्यापतीत्यादि

अनुवाद—वह अति नागर अर्थात् अत्यन्त रसिक और तुम सकल की सार हो। हे मल्लिका, प्रेम की सामग्रियाँ सजा दो। यौवन की नगरी में रूप का व्यवसाय करने से जो उपयुक्त मूल्य होगा, वही मिलेगा। हे सजनि, हरि रस का वणिक है, गोप के भ्रम में (उनको) मूर्ख मत समझ लेना। विधिवश अधिक मान मत करना—कन्हैया सोलह सहस्र गोपियों के पति हैं। तुममें और उनमें इस प्रकार का भेदाभेद रहना उचित नहीं है। मन्मथ बीच में समझौता करा देगा अर्थात् मूल्य निर्धारण कर देगा।

(५६)

कउड़ि पठओले पाव नहि घोर।
घीव उधार माँग मति भोर॥
वास न पावए माँग उपाति।
लोभक रासि पुरुख थिक जाति॥
कि कहब आज कि कौतुक भेल।
अपदहि कान्हक गौरव गेल॥
आएल वइसल पाव पोआर।
सेजक कहिनी पुछए विचार॥
ओछाओन खण्डतरि पलिआ चाह।
आओर कहब कत अहिरिनि-नाह।
भनइ विद्यापति पहु गुनमन्त।
सिरि सिवसिंघ लखिमा देइ कन्त॥

न० गु० तालपत्र २१७, अ० २१८

(१) पोथी में 'नागरि' है, परन्तु उससे अर्थसङ्गति नहीं होती। इसलिये नगेन्द्र बाबू ने 'नागर' लिखा है। (२) उन्होंने 'इहह' को 'होइह' किया है। रामभद्रपुर की पोथी का पाठान्तर—"से अति नागर तए रससार; पसरओ वीथी पेम पसार।" यह पाठ नेपाल की पोथी के पाठ से उत्कृष्टतर है। (३) जौवन नगर वेसाहत रूप (४) गे (५) अबे करब नहि मान (६) जइअओ सोलह सहस पति कान्ह (७) तन्हि तोहँ उचित बहुत सो भेल "मन्मथ—परिछेद" इसके बाद रा० भ० पो० में है। भनइ विद्यापति एहु रस जान। राए सिवसिंघ लखिमा देवि रमान।

शब्दार्थ—कउड़ि—कौड़ी ; घोर—घोल; घीव—घृत ; माँग—चाहना ; मतिभोर—भ्रष्टमति ; थिक—है ; अपदहि—वेजगह ; ओछाओन—बिछावन ; खण्डतरि—फटी चटाई।

अनुवाद—मूल्य भेजने से भी घोल नहीं मिलता, मतिभ्रष्ट उधार घी चाहता है, पुरुष जाति लोभ की राशि है, बैठने का स्थान नहीं मिलता, खाने की सामग्री चाहता है। क्या कहूँ, आज क्या कौतुक हुआ, वेजगह कन्हैया का गर्व चूर हो गया। आए, और पैर के निकट बिछावन (पुआल) पर बैठे और पूछने लगे कि सेज कहाँ है। (जिस का) शय्या चटाई है, यह पलंग की बात पूछता है, (उस) ग्वालिनों के नाथ की बात क्या कहूँ। विद्यापति कहते हैं, प्रभु गुणवान हैं, श्री शिवसिंह लखिमा देवी के पति हैं।

(५७)

प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पासे।
हृदय अधिक भेल लाज तरासे॥
ठारि भेलिहि धनि आँगो न डोले।
हेम मुरत सनि मुखहुँ न बोले॥

कर दुहु धय पहु पाश वैसाए।
रूसलि छलि धनि वदन सुखाए॥
मुख हेरि ताकय भमर झाँपि लेल
अङ्कम भरि कँ कमलमुखि लेल॥

भनइ विद्यापति दइह सुमति मति।
रस बुझ हिन्दुपति हिन्दुपति॥

—ग्रियर्सन न० २७ न० गु० १९२, अ० ४७६

शब्दार्थ—ठारि भेलिहि—खड़ी रही; आँगो न डोल—शरीर ज़रा भी नहीं हिलता है; सनि—समान; धर—पकड़ कर ; पहु—प्रभु; रूसलि—क्रोध में; ताकए—देखना; अङ्कम—गोद में।

अनुवाद—जिस समय सुन्दरी पहले पहल प्रियतम के पास गयी, उसका हृदय लज्जा और भय से व्याकुल हो गया। सुन्दरी जाकर खड़ी हो गयी, उसका शरीर ज़रा भी नहीं हिलता-डुलता था, सोना की प्रतिमा के समान वह मूक खड़ी रही। प्रभुने उसके दोनों हाथ पकड़ कर पास बैठा लिया; (उससे) मानों सुन्दरी ने क्रोध किया, उसका मुख सूख गया। भ्रमर (नायक) ने उसके मुख को एकटक से निहारना शुरु किया, यह देख कर उसने मुख छिपा लिया। (उस समय नायक ने) कमलमुखी को भुजाओं में कस लिया (हृदय से लगा लिया)। विद्यापति कहते हैं, सुमति सम्मति दो, हिन्दुपति हिन्दुपति रस समझते हैं।

मन्तव्य—हिन्दुपति मिथिला के राजाओं की उपाधि थी। मैथिली भाषा में लिखित "पारिजात हरण" नाटक में प्रायः पाया जाता है—

सुमति उमापति भाने
महेसरि देइ पति हिन्दुपति जाने।

इस पद के भनिता में भी 'सुमति' और 'हिन्दुपति' शब्द हैं। इस पद को ग्रियर्सन साहब ने लोगों के मुख से सुन कर सङ्कलित किया था। उमापति के पद से विद्यापति के भनिता का प्रभावित होना असम्भव नहीं है।

(५८)

न बुझए रस नहि बुझ परिहास
नहि आलिंगन, भउह विलास।
सब रस तहि खने चाहह ताहि
सागर कओने पएवेही थाहि।
माधव, सखि मोरि सहज अआनि
रस बुझति तओ होइति सआनि।

अनुभवि बुझति जखने सम्भोग
ताहि खन कापहुँ करवाँ जोग।
एखनक आरति हर पए दन्द
मुन्दला मुकुल कतए मकरन्द
विद्यापति कह नव अनुराग
बड़ पुनमन्त पाव पए भाग

रूपनराएन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त।

रामभद्रपुर की पोथी, पद १७१

अनुवाद—यह रस, परिहास, आलिंगन, भ्रू विलास प्रभृति कुछ भी नहीं समझती है। (इस प्रकार की मुग्धा के पास) तुम सब रस चाहते हो। सागर की गम्भीरता जिस प्रकार नापी नहीं जा सकती उसी प्रकार इसके पास सब रस की आशा नहीं की जा सकती। माधव, हमारी सखी स्वभावतः अज्ञान है। जब उसकी उम्र होगी तब वह रस समझेगी। जब वह अनुभव के द्वारा सम्भोग समझ सकेगी, उस समय उसपर क्रोध करना (इस समय नहीं) इस समय यदि अभिलापा प्रकट करोगे तो केवल कलह होगा। बन्द मुकुल में पराग कहाँ? विद्यापति कहते हैं कि पुण्यमन्त लोग नये अनुराग के पात्र हैं। लखिमादेवी के कान्त रूपनारायण राजा शिवसिँह रसमन्त हैं वे इसको समझते हैं।

(५९)

कत अनुनय अनुगत अनुबोधि[1]।
पतिगृह सखिन्हु सुताओलि[2] बोधि॥
विमुखि सुतलि धनि सुमुखि न होए[3]।
भागल दल बहुलावए कोए[4]॥
बालमु वेसनि विलासिनि छोटि।
मेल[5] न मिलए देलहु हिम कोटि॥
वसन झपाए[6] वदन धर गोए।
वादर[7] तर ससि वेकत न होए॥

भुज जुग चाँप जीव जौं साँच।
कुच कञ्चन कोरी फल काँच॥
लग नहिं सरए करए कसि कोर।
केर कर वारि करहि कर जोर॥
एतदिन सैसव लाओल साठ।
अब भए मदन पढ़ाओव पाठ॥
गुरुजन परिजन दुअओ नेवार।
मोहर मुदल[8] अछि मदन-भँडार

भनइ विद्यापति इहोरस भान[9]।
राए सिवसिंघ लखिमा विरमान।

तालपत्र न० गु० ६२०, ग्रियर्सन ३०, अ० १२६

पाठान्तर—(१) अनुरोधि (२) सोहाओलि (३) होइ (४) कोइ (५) मेलि (६) छपाए वदन धन गोए (७) 'वादरतर' से 'अब भए मदन पढ़ाओव पाठ' तक ग्रियर्सन में नहीं है। (८) सुनल (९) रसज्ञान।

यह पद पंडित बाबाजी की पोथी में इस प्रकार है:—

अनुवाद—कितना अनुनय करके, कितनी सान्त्वना देकर, पीछे पीछे चल कर सखियों ने (नायिका को) स्वामी के घर में सुलाया। कोई सुन्दरी विमुख होकर (अर्थात् मुख फिरा कर) सोई, सम्मुख होकर नहीं सोई। जो (सेना—) दल भाग गया, उसको कोई लौटा सकता है? प्रिय कामुक और प्रिया अल्पवयसा, विलासिनी बालिका, कोटि सुवर्ण देने से भी मिलती नहीं है (मिलन की सम्मति नहीं देती है) मुख को वस्त्र से ढाँप कर छिपा कर रखती है, मेघ के नीचे चन्द्र प्रकाशित नहीं रहता अर्थात् नीलवस्त्र के नीचे मुखशशि प्रकाश नहीं देता। नये कच्चे सोने के (निर्मित) पयोधरों को दोनों हाथों से दबा कर प्राण के समान रखा करती है। जोर करके गोद में लेने से भी पास नहीं आती, हाथ के ऊपर हाथ रख कर हाथ जोड़ लेती है। इतने दिनों तक शैशव साथ था, अब मदन आकर पाठ पढ़ावेगा। आत्मीय स्वजन और गुरुजन दोनों के मना करने से कन्दर्प का भाण्डार मुहर करके मुद्रित है अर्थात् बन्द है। विद्यापति कहते हैं—लखिमा-रमण राजा शिवसिँह को यह रस-ज्ञान है।

(६०)

पहिलहि राधा माधव भेट।
चकितहि चाहि वयन करु हेट॥
अनुनय काकु करतहि कान्ह।
नवीन रमनि धनि रस नहि जान॥
हरि हरि नागर पुलक भेल।
काँपि उठु तनु, सेद बहि गेल॥
अथिर माधव धरु राहिक हाथ।
करे कर बाधि धर धनि माथ॥

भनइ विद्यापति नहि मन आन।
राजा सिवसिंघ लखिमा रमान॥

न० गु० (बटतल की छपी पुस्तक से) १६०, अ० १६५

पद नं ५६

बालम्भु रसिक विलासिनी छोटी।
मेरून मिलय दिनहिँ धन कोटी॥
कत अनुरोधि आनलो परबोधि।
रतिगृहे सखिनी सुतायले बोधि;
सुतली विमुखि धनि अति खिन हइ।
भाँगल दरवहुँ भारइ कइ॥
आचरे चापि वदन धरु गोइ।
बादर डरे शशि बेकत न हइ।
नगनाहि सरये शुनये नाहिं बोल।
कर एक बेरि करहि करयोर॥
दुहु भुज चापि जीवधन साँचे।
कुच काञ्चन कोरि फल काँचे॥
दरशन परशन दुयये निवारे।
मुइरे मुद्रल आछे मदन भाण्डारे॥
एतदिन सखीसब आछलि ठाठे।
अबगहिँ सरए मदन पढ़ायल पाठे॥

सुकवि विद्यापति रस भाने।
इह रस लखिमा देइ परमाने॥

शब्दार्थ—दरवंग—शंख; नगनाहि—निकट; साँचे—सञ्चय; कोरिफल काँचे—कच्चा बेर का फल। न० गु० पाठ के 'बेसनि' शब्द का अर्थ कामुक है।

अनुवाद—माधव के प्रथम दर्शन में ही राधा ने चकित होकर (चाह कर) मुख नीचा कर लिया। कन्हाई अनुनय-विनय करने लगे, नवीन रमणी (सुन्दरी) रस नहीं जानती। (उसको देखकर) नागर हरि को पुलक हो गया, शरीर काँपने लगा, पसीना छूट गया। अस्थिर माधव ने राधा का हाथ पकड़ा; हाथ में हाथ लेकर राधा ने (माधव का हाथ) सिर पर रखा अर्थात् सिर की शपथ दिलायी, समझाया, हमको छोड़ दो। विद्यापति कहते हैं, मन में अन्यथा कुछ नहीं है अर्थात् मन में अनिच्छा नहीं है। राजा शिवसिँह लखिमा देवी के पति हैं।

(६१)

निवि-बन्धन हरि किए कर दूर।
एहो पए तोहर मनोरथ पूर॥
हेरने कओन सुख न बुझ विचारि।
बड़ तुहु ढीठ बुझल बनमारि॥
हमर सपथ जौँ हेरह मुरारि॥
लहु लहु तब हम पारब गारि॥

विहर से रहसि हेरने कौन काम।
से नहि सहवहि हमर परान॥
कहाँ नहि सुनिए एहन परकार।
करए विलास दीप लए जार॥
परिजन सुनि सुनि तेजव निसास।
लहु लहु रमह परिजन पास॥

भनइ विद्यापति एहो रस जान।
नृप सिवसिंघ लखिमा-विरमान॥

न० गु० (अज्ञात) १७१, अ० १७६

शब्दार्थ—ढीठ—धृष्ट; शठ। लहु लहु—धीमे स्वर में। जार—उपपति।

अनुवाद—हे हरि, नीवि बन्धन दूर क्यों करते हो? ऐसा करके अर्थात् नीवि बन्धन मुक्त न करके ही तुम अभिलापा पूर्ण करो। देखने में क्या सुख है समझ में नहीं आता, वनमाली, मैं समझती हूँ, तुम बड़े धृष्ट हो। मेरी कसम, हे मुरारि, तुम इस प्रकार मत देखो, (यदि देखोगे) तो मैं धीरे-धीरे गाली दूँगी। चुपचाप विहार करो, देखने से क्या काम? मेरा हृदय उसको नहीं सहेगा। ऐसा कहीं नहीं सुना, (कि) दीप जला कर उपपति विलास करें। परिजन लोग सुन कर अर्थात् उसके पास है कि नहीं जान कर निश्वास त्याग करेंगे। परिजन लोग निकट ही हैं, धीरे-धीरे विलास करो। विद्यापति कहते हैं, लखिमा देवी के पति राजा शिवसिँह यह रस जानते हैं।

(६२)

तोहि नव नागर हाम भीति रमानि।
केलि करब दुय बल जानि॥
अधिक माचन के सहये पार।
कोमल हृदय वहु भार॥
तखनेइ हरि लेल काँचु चोरि।
कतपए जुगति कयल अंग मोरी॥

तरवनक ढीठिपन कहइ न जाय।
लाजे विमुखी धनि रहलि लजाए॥
करे न मिझायल दूबर दीपे।
लाजे ना मर नारि कठ जीवे॥
भन विद्यापति अयनक भान।
कलये जानल पुन हउत विहान॥

राजा भूपति रूपनारायण जान।
लछिमा देइ रहे विरमान ॥

पंडित बाबाजी की पोथी का ७५वाँ पद

अनुवाद—तुम नवीन नागर हो, मैं डरी हुई रमणी हूँ, दोनों का बल जान कर केलि करूँगी। अधिक अत्याचार कौन सह सकता है? हमारा हृदय कोमल है———भार अधिक है। उसी समय चोली चोरी कर ली (लज्जा निवारण के लिए) अंग मोड़ कर कितने उपाय किए। उस समय का निर्लज्ज व्यवहार कहा नहीं जाता है। लज्जा से सुन्दरी ने मुँह फेर लिया। (नायकने) दुर्बल दीप को हाथ बढ़ा कर बुझाया नहीं; नारी का जीवन कठिन है, इसीलिए लज्जा से मरी नहीं। विद्यापति कहते हैं कि उस समय की बात क्या बोलें। कलकाकली से ही जाना गया कि प्रातःकाल हुआ। लखिमा देवी के पति राजा रूपनारायण भूपति जानते हैं।

(६३)

जामिनि दूर गेलि लुकि गेल चन्द।
भेलिहु सिद्धि न बढ़ाइअ दन्द ॥
तसु छलधुनि सुनि जीव मोर काप।
मञे जाएब जमुना जोरि झाप ॥
हठ तेज माधव जाए वा देह
राखल चाहिअ गुपुत सिनेह ॥
जागि जाएत पुरपरिजन मोर।
फाब चोरि जओ चेतन चोर ॥
मञे जानल पि म।
उसठ न कर सठ बढ़ाओल पेम ॥
धनि परिरोधलि हरि रस राखि।
बोलिलि ए वचन सुधामधु माखि ॥
भनइ विद्यापति इ रस जान।
राए सिवसिंघ लखिमा देवी रमान ॥

रामभद्रपुर की पोथी पद ४०६

शब्दार्थ—जोर—जोरि लगा कर; उसठ—नीरस।

अनुवाद—रात बहुत बीत गयी, चाँद छिप गया; तुम्हारा काम हो गया, अब अधिक कलह मत बढ़ाना। तुम्हारी छलभरी बात सुन कर मेरा हृदय काँपता है। मैं जोर लगा कर (जबरदस्ती जा कर) जमुना में कूद पड़ूँगी। हे माधव, यदि प्रेम गुप्त रखना चाहते हो तो हठ छोड़ो। हमारे घर के लोग जान जाएँगे। चालाक चोर चोरी में सिद्ध होता है। मैं जान गयी—वृद्धिप्राप्त प्रेम को नीरस मत बनाना। हरि ने अमृत और मधु के समान वचन बोल कर रस की रक्षा की और नायिका को प्रबोध दिया। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(६४)

चारि पहर राति संगहि गमाओल अबे पहु भेल भिनसारा।
चान्द मलिन भेल नखत मण्डल गेल हम देहु मुकुति गोपाला।
माधव धानि समदह उठि जागी
एसनि एक परिबोधि पठइहह पुनु आवए अनुरागी।

जे किछु पिआ देल कञ्चुआ झापि लेल हृदय कएल नि-वासे।
कश रुझाएल, अधर सुखाएल, सखिन्हि कर बड़ उपहासे।
भनइ विद्यापति सुनु वर यौवति दण्ड निकट परमाने।
राजा सिवसिहँ रुपनराएन लखिमा देवी रमाने।

रामभद्रपुर की पोथी पद ४०४ (क)

शब्दार्थ—भिनसारा – प्रभात; (समदओ—निवेदन करता है) समदल—सम्वाद दिया था; परमान—प्रमाण।

अनुवाद—(नायिका के साथ जो दूती आयी थी वह कहती है), प्रभु, सारी रात तो एक साथ काटी, अब प्रभात हो गया, चाँद मलिन हो गया, नक्षत्रमण्डल छिप गया; गोपाल, अब हमलोगों को छोड़ दो। माधव, जाग उठो और नायिका को विदा दो। इस तरह उसे समझा कर भेजो कि वह फिर अनुराग के वश आवे। प्रियतम ने जो कुछ भी दिया (नखक्षत) उसे चोली से ढाँक लिया, एवं हृदय में छिपा लिया। उसके केश अस्तव्यस्त हो गये हैं, अधर सूख गये हैं, सखियाँ देख कर बहुत हँसी उड़ावेंगी। विद्यापति कहते हैं हे वर युवति, यह प्रमाणित हो गया कि तुमने दण्ड पाया है। रूपनारायण राजा शिवसिँह लखिमा देवी के रमण हैं।

(६५)

उठ उठ माधव कि सुतसि मन्द।
गहन लाग देखु पुनिमक चन्द॥
हार-रोमावलि जमुना-गंग।
त्रिवली त्रिवेनी विप्र अनंग॥
सिन्दुर-तिलक तरनि सम भास।
धुसर मुख ससि नहि परगास॥

एहन समय पूजह पँचवान।
होअ उगरास देह रतिदान॥
पिक मधुकर पुर कहइत बोल
अलपओ अवसर दान अतोल॥
विद्यापति कवि एहो रस भान।
राए सिवसिंघ सब रसक निधान॥

तालपत्र न० गु० २३२, अ० २२३

अनुवाद—(प्रथम समागम में आयी हुई नायिका का मुख विवर्ण हो गया है। सखी अथवा दूती इसी विवर्ण मुख की तुलना चन्द्रग्रहण से करती हुई कहती है) माधव, इस समय चुपचाप क्यों सोये हुए हो ? देखो पूर्णिमा के चाँद (नायिका के मुखचन्द्र) को ग्रहण लग गया है। उसका मुक्ताहार गंगा की धारा के समान है, रोमावली यमुना है, त्रिवली त्रिवेणी के समान और कामदेव पुरोहित है। सिन्दूरविन्दु सूर्य के समान है, (ग्रहण लगने से) मुख धूसर (विवर्ण), चन्द्र की कान्ति उसमें नहीं है। ऐसे समय में तुम मदन की पूजा करो, नायिका को रतिदान दो, चन्द्र राहु मुक्त हो (अर्थात् सम्भोग काल में नायिका के मुख की विवर्णता दूर हो जाएगी और चेहरा खिल जाएगा)। इस समय कोकिल और भ्रमर गुञ्जन कर रहे हैं। ऐसा सुयोग बहुत कम समय रहेगा, इसी के बीच में अतुलनीय दान (रतिदान) करना होगा। विद्यापति कवि यह रस जानते हैं। राजा शिवसिँह सब रस के आधार हैं।

(६६)

अरुन लोचन घुमि घुमाएल।
जनि रतोपल पवने[1] पाओल ॥
आकुल चिकुरे[2] वदन झापल।
जनि तमाचयें[3] चाँद चापल ॥
माधव कके[4] जाइति वासा।
देखि सखीजन हो[5] उपहासा ॥

फुजलि नीवी आनि मेराउलि।
जनि सुरसरि उतरे[6] धाउलि ॥
नखखत[7] देल कुच सिरीफल।
कमले झाँपि कि हो कनकाचल ॥
भन[8] विद्यापति कौतुक गाओल।
इ रस राए सिवसिंघ पाओल ॥

नेपाल १७३, पृ० ६१ ख, पं४ तालपत्र न० गु० २६६, अ० २५६

शब्दार्थ—घुमि घुमाएल—बार बार घूमना, चंचल होना (निद्रा की कमी से आँखें लाल हो गयीं, कहीं केलि का रहस्य प्रकाशित न हो जाए, इस आशंका से नेत्र चंचल हो गए); रतोपल—लाल कमल; तमाचयें—अन्धकार राशि।

अनुवाद—(रात्रि जागरण से) लोचन लाल हैं और (इधर उधर) घूमते हैं (केलि रहस्य प्रकट होने की आशंका से), मानों रक्तकमल हवा में डोलने लगा। बिखरे केशों ने मुख ढाँक लिया, मानों अन्धकारपुञ्जने चाँद को ढाक लिया हो। माधव किस तरह (सखी) घर जाएगी, देखकर सखियाँ उपहास करेंगी। खुले हुए नीविबन्धन को लाकर मिलाया मानों गंगा उत्तर दिशा में प्रवाहित हुई। कुचरूपी श्रीफल पर नखक्षत दिया है (हस्तकमल से क्या वह ढाँका जा सकता है) कनकाचल क्या कमल से ढाँका जा सकता है? विद्यापति कौतुक करते हुए गाते हैं कि यह रस राजा शिवसिंह पा गए।

(६७)

इ दसिहालल दखिन चीर
हीराधार हराएल हीर।
अइसन नीरज देलए जोलि
बलअ मांगल बाँह ममोलि।
भलि परिणति भेलि मुरारि
भल कए राखलि कुलक गारि।
बकुलमाला गान्तल नाथे
मोहि पिन्धओलुहुँ अपने हाथें।

सासुँ समारल फुजल बार
ननदे गान्तल टूटल हार।
सरस कवि विद्यापति गाव
मनक पाहुन मदन भाव
राजा रूपनरायन जान
सिवसिंह लखिमा देवी रमान।

रामभद्रपुर की पोथी पद १७०

पाठान्तर—(नेपाल की पोथी के अनुसार) (१) पवन (२) चिकुर आनन (३) तमाचयें (४) के से (५) होइ (६) उतधे (७) "नख देखे देखल कुच करतल, कमले झाँपि कि हो कनकाचल।"

(८) सुकवि भने विद्यापति गाओल
इ रस रूपनारायने पाओल

शब्दार्थ—नीरज—कमल; ममोलि—मुरक गया।

अनुवाद—यह दक्षिणदेश की साड़ी फट गयी; हीरा का हार टूट गया, (जिसके कारण) हीरा खो गया। इस प्रकार कमल की माथा गूँथी कि इसको पहनते ही (सोहाग का) मगंल वलय टूट गया। मुरारि! खूब परिणति हुई, कुल की ग्लानि अच्छी तरह छिपायी। नाथ ने अपने हाथों बकुल की माला गूंथ कर पहना दी। सासु ने बिखरे केश बाँध दिए। ननद ने टूटे हार को गूँथ दिया। सरस कवि विद्यापति गान करते हैं। कामभाव आज मन में अतिथि हुआ है। लखिमा देवी के रमण राजा रूपनारायण शिवसिंह जानते हैं।

(६८)

सामरि हे झामरि तोर देह।
की कह के सयँ लाएलि नेह॥
नीन्द भरल अछ लोचन तोर।
अमिय भरमे जनि लुबुध चकोर॥
निरस धुसर करू अधर-पँवार।
कौन कुबुधि लुटु मदन-भँड़ार॥
कोन कुमति कुच नख-खत देल।
हाय हाय सम्भु भगन भए गेल॥
दसन-लता सम तनु सुकुमार।
फूटल बलय टूटल गृम-हार॥
केस कुसुम तोर सिरक सिन्दूर।
अलक तिलक हे सेउ गेल दूर॥

भनइ विद्यापति रति-अवसान।
राजा सिवसिंघ ई रस जान॥

तालपत्र न० गु० १६१, अ० १६३-२

शब्दार्थ—सामरि—हे श्यामा; झामरि—मलिन; सँय—सहित; लाएलि नेह—प्रेम किया; अधर-पँवार—अधररूपी प्रवाल; दसन—द्रोणपुष्प; गृम—गला का।

अनुवाद—हे श्यामा, तुम्हारा शरीर मलिन हो गया है; बोलोगी नहीं कि किसके साथ प्रेम कर आयी हो? तुम्हारी आँखें नींद से भरी हुई हैं, मानों चकोर अमृत से लुब्ध हो गया हो। तुम्हारे प्रवाल के समान अधर को रसहीन और धूसर कर दिया है; वह कौन कुबुद्धि है जिसने तुम्हारे मदन के भाण्डार को लूट लिया है। किस कुमति ने तुम्हारे कुच में नख का दाग दिया है, हाय हाय, लगता है शिव (कुच) टूट गये हैं। तुम्हारा शरीर द्रोणलता के समान सुकुमार है, किन्तु तुम्हारा वलय टूट गया है, गला का हार टूट-फूट गया है। तुम्हारे केश का फूल, माथा का सिँदूर और अलक का तिलक सब मिट गये हैं। विद्यापति कहते हैं रति का अवसान हुआ है। राजा शिवसिँह यह रस जानते हैं।

(६६)

कह कथि सुन्दरि झंगरि देहा।
कोन पुरुख सयँ नयलि नेहा॥
अधर सुरंग जनु निरस पँवार।
कोन लुटल तुअ अमिया भाण्डार॥
रंग पयोधर अति भेल गोर।
माजि धरल जनु कनय कटोर॥
ना जाइह सोपिया तहि एकगूते।
फेरि आएलि तुहुँ पुरुखक पूते।

कवि विद्यापति इह रस जाने
राजा सिवसिंघ लछिमा परमाने।

प० त० २२३, न० गु० १८८, अ० १६१

अनुवाद—(हे सखि) देखती हूँ तुम्हारा शरीर अग्नि में झुलसा हुआ सा श्यामवर्ण का हो गया है, यह कैसे ? किस पुरुष के संग प्रेम कर आयी हो ? तुम्हारे सुरंजित अधर नीरस प्रवाल के समान हो गए हैं। किसने तुम्हारा अमृत भाण्डार लूट लिया है ? तुम्हारे गौरवर्ण पयोधर अतिशय रंजित (लोहित) हो गए हैं; मानों सोना का कटोरा मल कर रखा हुआ है। उस कान्त के निकट और मत जाना, क्योंकि उसके पास से (एकमात्र दया के) गुण और पूर्व के पुण्यफल से लौट कर आयी हो। कवि विद्यापति यह रस जानते हैं, राजा शिवसिंह और लखिमा देवी इस विषय के प्रमाण हैं।

(७०)

ननदी सरूप निरूपह दोसे।
बिनु विचार वेभिचार बुझओवह[1]
सासु करतन्हि[2] रोसे॥

कौतुक कमल नाल सयँ[3] तोरल
करए[4] चाहल अवतंसे।
रोस कोस सयँ मधुकर आओल[5]
तँहि अधर करू दंसे॥
सरवर-घाट वाट कन्टक-तरू
देखहि[6] न पारल आगू।
साँकरि वाट उवटि कहु[7] चललहु
तेँ कुच कन्टक लागू॥
गरूअ कुम्भ सिर थिर नहिं थाकए
तें उधसल केस पास।

सखिजन सयँ हम पाछे पड़लिहु
तें भेल दीघ निसास॥
पथ अपवाद[8] पिसुन परचारल
तथिहु उतर हम देला।
अमरख चाहि[9] धैरज नहि रहले
तें गद गद सर भेला।
भनइ विद्यापति सुन वर यौवति
ई सभ राखह गोई।
ननदी सयँ रस-रीति बढ़ावह[10]
गुपुत वेकत नहि होई।

नेपाल १४८, पृ० ५२ ख, पं ५, न० गु० तालपत्र ३२८, ग्रियर्सन ४०, झा० ३२२

पाठान्तर –ग्रियर्सन में (१) बुझैवह (२) करयवह (३) हम तोड़लि (४) करय चाहलि (५) धाओल (६) हेरि नहि सकलहुँ (७) साँकर (८) अपराध (९) ताहि (१०) बचाओव

सरोवर याइ निकट संकट
तरुहे वहिल पारले आगु॥
सङ्कलि वाट उवटि चलि भेलहु
तेहु चकथ कलाशु। ध्रुव
ननन्द हे सरूप निरुपिअ रोस।
बिनु विचारे विहुचार बुझओलह
सासु करलह रोस॥
कौतुक कमल लालसओं तोलज
करए चाहल अवतंस
रोसे कोपसओं मधुकर धाओल

तेहि अधर कर दंस
कगरु अकुमु सिर थिर नहिथावए
तेउ धसल केसपास
आतव दोसे रोसे चलि आगलिह
खरतर भेल लिसास॥
वेकत विनास कओने तब छायार
विद्यापति कवि भान
राजा सिवसिंव रूपनरायन
लखिमा देवि रमान॥

शब्दार्थ—सरुप—स्वरुप, आकृति; तोरल—तोड़ी; अवतंस—सिर का गहना; रोखे—क्रोध से; कोपसजों—कोप से; साँकरि—संकीर्ण; उधसल—बिखर गया; पिसुन—दुष्ट लोग; अमरख—अमर्ष, क्रोध।

अनुवाद—हे ननद, (मेरी) आकृति देख कर (तुम) मुझे दोष लगा रही हो। बिना समझे-बूझे यदि मुझे तुम व्यभिचारिणी बतलावोगी तो सासु जी क्रोधित होवेंगी। कौतुकवश होकर मैंने मृणाल से कमल तोड़ कर शिरोभूषण बनाना चाहा; क्रुद्ध मधुकर ने कमल के कोष से निकल कर मेरे अधर को डँस लिया। सरोवर के घाट के रास्ते पर काँटेदार वृक्ष आगे था, मैं देख नहीं सकी। संकीर्ण पथ में देह मोड़ कर चली उसी से पयोधर में काँटा लग गया। जल से भरी हुई कलसी सिर पर स्थिर नहीं रह सकी, इसीसे हमारे केश अस्तव्यस्त हो गए। मैं सखियों के पीछे पड़ गयी थी, इसीलिये (दौड़कर आने से) दम फूल गया। रास्ते में दुष्टों ने मेरा निन्दा-प्रचार किया, मैंने उनको जवाब दिया क्रोध के वश धैर्य नहीं रहा, इसी से हमारा कंठस्वर गद्गद् हो गया है। विद्यापति कहते हैं—हे वर युवती, यह सब छिपा कर रखो। ननद के साथ रसरीति बढ़ाने से गुप्त बातें व्यक्त नहीं होंगी।

(७१)

की कुच अंचले राखह गोये।
उपचित कतए तिरोहित होए॥
उपजलि प्रीति हठहि दुरगेलि।
नयनके काजरे मुख मसि भेलि॥

तें अवसादे अवस भेल देह।
खत खरिआ सन भेल सिनेह॥
जवों बाजलि तवों ससअ गेलि।
आनि नवओ निधि जनि देलि॥

भनइ विद्यापति एहु रस जान।
राजा सिवसिंघ रुपनरायन लखिमा देइ रमान॥

तालपत्र न० गु० ४१४, अ० ४१०।

शब्दार्थ—बाजलि—बोली।

अनुवाद—जो बढ़ गया है वह छिपाया नहीं जा सकता, पयोधर क्या आँचल में छिपाए जा सकते हैं? तुम्हारे मन में प्रेम उत्पन्न हुआ, तुम (मेरे निकट से मन ही मन) दूर चली गयी। जो तुम्हारे नेत्र का काजल था, वह मानों तुम्हारे मुख की स्याही हो गया। (अर्थात् तुम्हारा गुप्त प्रेम तुम्हारे कलंक का कारण हुआ—यह प्रणय छिपा नहीं)। अनुराग के फलस्वरूप तुम्हारा शरीर अवसाद से अवसन्न हो गया, तुम्हारा गुप्त प्रेम जले पर नमक के समान दुखदायी हो गया। अभी तुमने सारी बातें हमसे खोल कर कहीं, इससे हमारा संशय दूर हो गया, मानों किसी ने हमको नया रत्न लाकर दिया। विद्यापति कहते हैं लखिमा देवी के पति रूपनारायण राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(७२)

प्रथमपि हाथ पयोधर लागु
पुलके प्रमोदे मनोभव जागु।
नीविबन्ध के जान कि भेला
चेतन पन ·················।
कि सखि कहब मञे, कहल न जाइ
हरिक चरित कहइते रहञो लजाइ।

धाम्मिल धरइ अधरमधु पीवे
वह ························ जावे
दहन न माने, दोष न जाने
गहवर गाढ़ आलिंगन दाने॥
अइसनि काहिनी न कहिअ आ···
···············कह दोर पराने।

भनइ विद्यापति एहु रस जाने
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमाने।

रामभद्रपुर की पोथी, पत्र ४१७।

शब्दार्थ—दहन—दैन्य।

अनुवाद—पहले ही (माधव के) हाथों ने पयोधरों को स्पर्श किया, न जाने, पुलकानन्द से मदन जागरित हुआ उस समय नीवि बन्धन क्या हुआ?····· सखि, तुमको क्या कहें, कहा नहीं जाता है और हरिचरित कहने में भी लज्जा आती है। केश पकड़ कर वह अधरमधु पान करते हैं। मेरी दीनता दिखलाने पर भी वह नहीं मानता है। गाढ़ आलिङ्गन देने को कोई दोष नहीं मानता है। विद्यापति कहते हैं कि लखिमादेवी के रमण राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(७३)

रामा तोरि बढ़ाउलि केलि।
कतय देखलि नवि नलिनी
मत मतंगज मेलि॥
गोर सरीर पयोधर कोरी
परसे अरुन भेल।
कनक बलरि जनि रतोपले
मुकुले उदय देल।
छैल जन जदि दैने न पाइअ
ताहेरि हृदय मन्द।
खने खने रति रभसे आगर
दिने दिने नव चन्द॥

सबें नवीना पिया सआना।
कुपुत कुसुमवान॥
केसरि कर करिनी पड़लि
तासु सहते छोड़ान॥
से जे अवसर मनन थिराए
नयन चलए नीर।
सिरिसि कुसुम खगे खेलोलन्हि
भमर भरे जे भीर॥
भन विद्यापति सुनह यौवति
पेमक गाहक कन्त।
राजा सिवसिंह रुपनरायन
सुरस विन्द सुतन्त॥

तालपत्र न० गु० २०५, अ २०६।

शब्दार्थ—कतए—कहाँ; नवि—नवीना; मत—मत्त; कोरी—नया; वलरी—वल्लरी; रतोपल—रक्तोत्पल; छैल—रसिक; आगर—श्रेष्ठ; सयाना—वयस्क; महते—कठिनता से; विन्द—जानते हैं; सुतन्त—सुतत्त्व।

अनुवाद—(नायिका सखीरूप में दूती से कहती है) रामा, तुम्हारे द्वारा ही केलि बढ़ी (जो कुछ भी केलि हुई है उसका जिम्मा तुम्हीं को है); कहाँ तुमने देखा है कि नयी नलिनी मतवाले हाथी से मिलती है? हमारा गौरवर्ण का शरीर और नये पयोधर (नायक के) स्पर्श से लाल हो गए, मानो कनकलता में लाल कमल का मुकुल उदित हो गया हो। रसिक लोग यदि दीनता भी प्रकाशित न करने पाते हैं तो उनका हृदय क्षुब्ध होता है। दिनों दिन जैसे नया चन्द्रमा वृद्धि पाता है, उसी तरह रति रभस भी क्षण-क्षण (दिनों दिन) श्रेष्ठता पाता है (किन्तु नायक एकबार से अधिक की अपेक्षा नहीं करता है यही अभियोग है)। मैं नवीना हूँ और प्रिय वयस्क तथा रति के लिए मतवाला है। सिंह के कौर में यदि हथिनी पड़ जाए तो उसको छुड़ाना मुश्किल है। वह इस समय भूला नहीं जाता है, नयन से नीर बहता है। जो शिरीष का फूल भ्रमर से भी डरता है उससे पक्षी ने क्रीड़ा की। विद्यापति कहते हैं, सुन युवति, कान्त प्रेम के ग्राहक हैं। राजा शिवसिंह रूपनारायण सुरस का सकल तत्त्व जानते हैं।

(७४)

पहलुक[१] परिचय पेमक संचय[२]
रजनी आध[३] समाजे।
सकल कलारस सँभरि[४] न भेले
वैरिनि भेलि मोरि लाजे॥
साए[५] साए अनुसए रहलि बहूते
तन्हिहि[६] सुबन्धु के कहिए[७] पठाइअ
जौँ[८] भमरा होअ दूते॥
खनहि[९] चीर धर खनहि चिकुर गह
करए चाह कुच भङ्गे।
एकलि नारि कत अनुरंजव
एकहि बेरि सब[१०] रंगे॥
तखन[११] विनय जत से सब[१२] कब कत
कहए[१३] चाहल कर जोली।
नव[१४] रस-रंग भंग भए गेल सखि
ओर धरि भेल न बोली॥
भनइ[१५] विद्यापति सुन बर-यौवति
पहु अभिमत अभिमाने।
राजा सिवसिंघ रूपनारायण
लखिमा देइ बिरमाने॥

नेपाल १६७, पृ० ४८ ग, तालपत्र न० गु० २०६, अ० २०७

पाठान्तर—नेपाल की पोथी का (१) पहिलुकि (२) संशय (३) आधक (४) सँटालि नह नवे (५) 'साए साए—बहूते' यह चरण नहीं है। (६) कुलिहि (७) लिखए (८) भमरा जौं हो (९) कबहु हरिकर कबहुँ चिकुर गह कबहुँ हृदय कुचभंगे (१०) सबे रंगे (११) आगोर (१२) सबे (१३) बोलए चाहिअ (१४) नवए रंग सने तहु भइए नेले (१५) ओ नव नागर सुनहु सुचेन विद्यापति कवि भाने।"

शब्दार्थ—पहिलुकि वा पहलुक—प्रथम; रजनी आध समाजे—अर्ध रात्रि का मिलन; सँभरि–ठीक से; साए साए—सखि सखि; अनुसए— अनुताप; गह—ग्रहण करता है; एकहि बेरि—एकहि समय में; कर जोली—हाथ जोड़ कर; ओल–सीमा।

अनुवाद—प्रथम परिचय में प्रेम का संचय होता है, अर्ध रात्रि का मिलन, सकल कलारस समाप्त नहीं हुआ, लज्जा हमारी वैरिन बन गयी। हे सखि, बहुत अनुताप रह गया, यदि मधुकर दूत हो जाए तभी उस बन्धु श्रेष्ठ को बुला भेजूँगी। कभी वस्त्र पहन लेता है कभी केश पकड़ लेता है, हाथ से पयोधर को तोड़ देना चाहता है। मैं अकेली रमणी ठहरी, एक ही समय सब रंगों में कैसे अनुरंजन कर सकती हूँ। उस समय जितनी विनय हुई उसे क्या कहें, हाथ जोड़ कर उसने कहना चाहा, नया रस-रंग यहीं पर टूट गया, आखिर तक बातें नहीं हुईं। विद्यापति कहते हैं, हे युवती श्रेष्ठ, सुनो, नाथ का अभिमान युक्तिपूर्ण है। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के पति हैं।

(७५)

पिय रस पेसल प्रथम समाजे
कत खन राखब अखंडित लाजे॥
कह गजगामिनि जत मन जागे।
अपन नागरिजन पिय अनुरागे॥
आचर चीर धरह हसि हेरी।
नहि नहि वचन भनव कति वेरी॥
दुहु मन पुरल उभय रतिरंगे।
तइअओ से धनुगुन न छाड़ अनंगे॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
नृप सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु० २०७, प्र २०८।

शब्दार्थ—पेसल—कोमल; प्रथम समाजे—प्रथम मिलन में; अखंडित लाजे—लज्जा बिना तोड़े रखना, लज्जित रहना। चीर—कपड़ा; कति वेरी—कितनी दफा।

अनुवाद—(सखी के प्रति नायिका की उक्ति) प्रथम मिलन में प्रियतम का कोमल रस उपभोग किया। अब कितने दिनों तक लज्जा को बिना तोड़े रहूँगी अर्थात् लज्जितावस्था में रहूँगी! हे मन्दगामिनि, तुम्हीं कहो) प्रियतम के प्रेम से अपना नागरीपना मन में कब जागता है। (मुझे) देख कर हँस कर कपड़ा और अंचल पकड़ लेता है। अब कितनी बार ना, ना, करूँगी? रतिरंग में दोनों का मन पूर्ण हो गया, उसपर भी कामदेव धनुष की डोरी ढीली नहीं करता है अर्थात् रतिरंग से निवृत्त नहीं होता है। विद्यापति कहते हैं कि लखिमादेवी के पति राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(७६)

साँझक वेरा जमुनाक तीरा
कदम्बेरि बन तरु तरा।
अकमि[1] कानरा कि कहब काला[2]
सोझाँहि[3] जूझल सखि कुसुमसरा॥
मोहि भेटल कान्हु।
अनतए कहिनी कहह जनु॥

उर चिर हरी करे कुच धरी
अधर पिबए मुख हेरी॥
पुनु पुनु भोरा परस कुच मोरा
निधने पाओल जनि कनय कटोरा।
अरेरे[4] जुवती बुझली जुगति
दोसर मधुर मधुपती॥

तोरे अनुमाने विद्यापति भाने
राए सिवसिंह लखिमा देइ रमाने॥

रागतरंगिनी पृ० ४१; न० गु० ४७६, अ० ५८६।

अनुवाद—सन्ध्या का समय, यमुना का तीर, कदम्ब बन में वृक्ष के नीचे, क्या कहें, कोई काला (मनुष्य) मुझे गोद में रख कर मदन युद्ध में प्रवृत्त हो गया। कन्हैया के साथ मेरी मुलाकात हुई थी, यह बात कहीं अन्यत्र मत कहना। वह हमारी छाती का कपड़ा छीन (हटा) कर, हाथों से कुच को पकड़ कर, मेरा मुख देखते हुए अधर (सुधा) पान करने लगा। वार वार विह्वल होकर (उसने) मेरा कुच स्पर्श किया, जैसे किसी गरीब ने सोने का कटोरा पा लिया हो। हे युवति, मर्मकथा समझ गया, मथुरापति भ्रमर के स्वरूप हैं। इसी अनुमान के अनुसार विद्यापति कहते हैं कि राय शिवसिंह लखिमा देवी के रमण हैं।

(७७)

सामर पुरुसा मझु घर पाहुन
रंगे विभावरी गेली।
काचा सिरिफल नख मूति लओलन्हि
केसु पखुरिया भेली॥
से पिया दए गेल केसु पखुरिया
धरय न पारल मोंवें रे॥

ससि नव छन्दे अनुरागक आँकुर
धएल मोञें आचरे गोइ
काजरे कार सखीजन लोचन
दीठिहु मलिन जनु होइ॥
नूतन नेह ससारक सीमा
उपचित कइसनि चोरी।
व्याध कुसुम सर सवों विघटाउलि
रंग कुरंगिनी मोरी॥

चारि भावे हमें भरमलि अछलाह
समदि न भेले मोहि सेवा।
कान्ह रूप सिरि सिवसिंह आएल
कवि अभिनव जयदेवा॥

न० गु० तालपत्र ४६६, अ० ६०५

पाठान्तर—न० गु० ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह पद रागतरंगिनी से लिया है, किन्तु उन्होंने निम्नलिखित पाठान्तर दिया है (१) अद्भमि (२) ममरा (३) सोंझहि (४) अरे युवती, बुझमि जुगुति, दोसरे मधुप मथुरपती।

शब्दार्थ—सामर—श्यामल; पाहुन—अतिथि; काचा सिरिफल—कच्चा बेल; केसु पखुरिया—किंशुक के फूल के दल के (समान रंग का); आचरे गोइ—आँचर में छिपा कर; ससारक सीमा—संसार में श्रेष्ठ; उपचित—वृद्धिमान; विघटाउलि—नष्ट किया; चारि भावे—स्वेद, स्तम्भ, रोमांच और स्वरभंग इन्हीं चार भावों से; समदि—सम्पूर्ण रूप से।

अनुवाद—श्यामवर्ण का पुरुष मेरे घर अतिथि हुआ, रास-रंग में रात बीत गयी। उसने कच्चे बेल पर (पयोधर पर) नखमूर्त्ति दी, मानो किंशुक की कली हो गयी। वह प्रियतम किंशुक-कलिका (रक्तवर्ण नखक्षत) दे गया, मैं निवृत्त नहीं कर सकी। नवराशि के समान अनुराग का अंकुर (नखचिन्ह) मैंने आँचल में छिपा के रखा। सखियों की आँखें तो काजल से काली हैं, उनकी दृष्टि भी उसी प्रकार मलिन हो जाए (जिससे वे कुच का नखचिन्ह देखने न पाएँ)

नया प्रेम संसार का सार होता है; जो बढ़ गया वह किस प्रकार छिपाया सकता है ? मदन रूपी व्याध के हाथ से मेरा कुरंगिनी रूपी रंग नष्ट हो गया [मदन की उत्तेजना से मैं अत्यन्त चंचल हो गयी थी, इसीलिए आनन्द का उपभोग नहीं कर सकी)। मैं चारों भाव से (स्वेद, स्तम्भ, रोमाँच और स्वरभंग) पूर्ण हो गयी थी, मेरे द्वारा उनकी सेवा ठीक से न हो सकी] कवि अभिनव जयदेव (कहते हैं कि), श्री शिवसिंह देव कृष्णरूप आये हैं।

७८

कि कहब रे सखि आजुक रंग।
सहजे पड़ले हाम गोयारक संग॥
अबुझ ना बुझ भालके कहे मन्द।
पोआ पिवइ काँहा कुसुम मकरन्द॥
अन्धारक वरन कभु नहे आन।
वानरे मुखे कभु ना सोभइ पान॥

ताकर संगे काहाँ पिरिति रसाल।
वानर गले काँहा मोतिम माल॥
जाति सुललित परकित हिन।
अधमक पिरिति रहइ कतदिन॥
अधक पिरिति ना करिये मान।
सुजनक पिरिति काञ्चन समान॥

भनये विद्यापति इह रस जान।
सिवसिंह नरपति लछिमा परमान॥

पंडित बाबाजी की पोथी का ६५ वाँ पद

शब्दार्थ—पोआ—कीड़ा; सुललित—सुन्दर। रसाल-मधुर।

अनुवाद—सखि, आज के रस-रंग की बात क्या बोलें ? आज सहज ही में एक (गँवार) ग्वाले के संग पड़ गयी। जो अबुझ है वह तो समझेगा नहीं, अच्छा को मन्द बताएगा। कीट कहीं कुसुम का मकरन्द पान करता है ? जिसका रंग काला है, वह अन्यरूप का नहीं हो सकता। वानर के मुख में कभी भी पान शोभा नहीं देता। उसके संग किस प्रकार प्रेम मधुर हो सकता है ? वानर के गले में क्या मोतियों की माला शोभा देती है ? अधम का प्रेम कितने दिनों तक रहता है ? अधम का प्रेम का आदर नहीं करना चाहिये; सुजन का प्रेम कंचन के समान होता है: विद्यापति यह रस जानते हैं; शिवसिंह नरपति और लछिमादेवी इसके प्रमाण हैं।

७६

कुन्तल कुसुम निमाल न भेल।
नयनक काजर अधर न गेल॥
कनक धराधर नहि ससिरेह।
कोने परि कामे प्रकासल नेह॥
ए सखि ए सखि पुरुस अग्यान।
भुजग भनावथि रंग न जान॥
दुरसौं सुनिअ समय पचवान।
परतख चाहि नहि के अनुमान॥
उपगति भेलिहु इ भेलि साति।
अनुसय छितहि पेहाइलि राति॥
भनइ विद्यापति एहु रस भाने।
राय सिवसिंह लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु०-४८१, श्र ४११

शब्दार्थ—निमाल—निर्माल्य, चूर्ण अथवा दलित; कनक धराधर—सोना का पहाड़; ससिरेह—शशिरेखा, नखक्षत; भुजंग भनावथि—लोग कहते हैं कि सर्प के समान तीव्र। दुरसौं—दूर से। परतख—प्रत्यक्ष; उपगति—निकट में; साति—शान्ति; अनुसय—आशय, छितहि—रहतेही।

अनुवाद—(सखी की उक्ति)—कुन्तल का कुसुम चूर नहीं हुआ, नयनों का काजल अधर में लगा नहीं (आलिंगन के फलस्वरूप यह होना चाहिए था), पयोधरों पर नखक्षत नहीं है, काम ने किस प्रकार स्नेह प्रकाशित किया (काम ने निर्दय भाव से युद्ध नहीं किया)। (नायिका का उत्तर) हे सखि, हे सखि, पुरुष अज्ञान हैं, लोगों से कहने के लिए तो सर्प के समान तीव्र है (किन्तु) रंग नहीं जानता। दूर से सुना जाता है कि पंचवान का समय है। प्रत्यक्ष न चाह कर कौन अनुमान कर सकता है? (अर्थात् प्रत्यक्ष देखती हूं कि कामदेव का कोई भी प्रभाव नहीं है)। नजदीक में उपस्थित हुई, यही शान्ति हुई। आशा मिटी भी नहीं कि रात बीत गयी। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के रमण राए शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(८०)

सिरिहि मिलिल देहा न कुचे चान रेहा
धामे न पिउल सुगन्धा।
अधर मधुरि फुल देखिय तोहरि[1] तुल
धयेलहि[2] अछ मकरन्दा॥
रामा अइलि हे पिया विसराइ।
पुरुप केसरि जनि दमन-लता धनि
छुअइत जा असिलाइ॥
गेलहि[3] कयलह मान की अवसर आन
की सिसु वालँभू तोरा।
मुसए गेलिहे धन जागल परिजन
लगहि कलाओक चोरा॥
भनइ विद्यापति सुन वरजौवति
इ रस केओ केओ जाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देवि[4] रमाने॥

रागत पृ० ६७, न० गु० २३६, श्र० २३२।

पद न० ८० —न० गु० का पाठान्तर—(१) तन्हिक (२) धयलहि (३) गेलिहि (४) देइ।

शब्दार्थ—सिरिहि—शिरीष; चानरेहा—चन्द्ररेखा, नख का दाग; पिउल—पान किया; मधुरि—बान्धुली; विसराइ—भूल कर; केसरि जनि—सिंह के समान; असिलाइ—म्लान हो जाना; वालँभू—वल्लभ; मुसए—चोरी करने।

अनुवाद—शरीर शिरीष पुष्प के समान है, पयोधरों पर चन्द्ररेखा नहीं है, पसीना ने अभी सुगन्ध पान नहीं किया है, अर्थात् देह पहले जिस प्रकार शिरीष फूल के समान कोमल थी अभी भी वैसी ही है उसमें कोई मलिनता नहीं आयी है, स्तनों पर नख-रेखा नहीं खिंची देह के स्वेद का गन्ध अभी मिटा नहीं है। अधर माधुरी अथवा बान्धुली फूल के समान दिखायी पड़ते हैं अर्थात् अधरों की लाली अभी नष्ट नहीं हुई। मधु (भी) अभी पड़ा ही है, अर्थात् अधरों का मधु किसी ने अभी तक पान नहीं किया है। रामा (क्या तुम) प्रियतम से विस्मृत हो गयी? पुरुष मानों सिंह होता है और सुन्दरी मानो द्रोणलता, स्पर्श करते ही म्लान हो जाती है। जाते ही क्या तुमने मान किया था, अथवा बिना अवसर की बात कही थी? अथवा क्या तुम्हारे कान्त शिशु हैं? सम्पत्ति हरण करने गयी थी (उसी समय) परिजन लोग जाग उठे (इसीलिए) चोर की कालिमा लगी (चोरी करने गयी, लेकिन करने नहीं पायी), पकड़ी गयी और चोरी का कलंक लगा। विद्यापति कहते हैं, हे युवती श्रेष्ठा सुनो, इस रस को कोई कोई जानता है, राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के कान्त हैं।

(८१)

हसि निहारल[१] पलटि हेरि लाजे कि बोलब साँझक बेरि।
हरखेँ आरति हरल[२] चीर, सून पयोधर, काँप शरीर॥
सखि कि कहब कहइते लाज शोक चिन्ह ए गोपक काज।
निवि निरासलि, फूजलि आस[३], ततेओ देखि न आवए पास॥
अओ कत कहब मधुर बानि[४], काजर दूधेँ, पखालल जानि[५]।
सखि बुझावए धरिए हाथ गोप बोलावथि[६] गोपी साथ॥
तोहेँ न चिन्हइ रसक भाव बड़े पुने पुनमति[७] पाव।
भन[८] विद्यापति सुन तञेँ नारि पहुक दूषण दिअ विचारि।
राजा रुपनराएन जान सिवसिंह लखिमा देवि-रमान।

रामभद्रपुर ३०, नेपाल २३०, पृ० ८२ ख, पं ४।

शब्दार्थ—फुजलि—मुक्त किया।

अनुवाद—संध्या की वेला (थी), (उसने) घूम कर देखा और फिर हँसते हुए देखा, लाज की बात क्या कहूँ। हर्ष में विमूढ़ होकर वस्त्र हरण कर लिया, पयोधर व्यक्त हो गए, शरीर काँपने लगा। सखि, क्या कहूँ, बोलते लज्जा

पद नं० ८१—नेपाल की पोथी में पाठान्तर—(१) निहारए (२) आरति हउ हरलन्हि (३) वास (४) आओर कि कहब सिनेह वानी (५) आनि (६) बोलावए (७) पुनमत (८) भनविद्यापति के पहले—आने कि कहह तन्हिकि वाणी, कसि कसौटी अएलाहु—जानि।

मालूम होती है, गाय पहचानना गोप का काम है। निविवन्धन खोल दिया, आशा का संचार किया। (अथवा नेपाल की पोथी में—वस्त्र खोल दिया) तथापि देखकर भी वह पास नहीं आता। और क्या मधुर बात कहूँ, काजल किस दुख से धुल गया। आज, हे सखि, गोपियों के बीच में हाथ पकड़ कर समझाने लगा—तुम रस का भाव नहीं समझती हो, बहुत पुण्य से पुण्यवती को पाया जाता है। विद्यापति कहते हैं, हे नारी सुन, विचार करने के बाद प्रभु को दोष देना। लखिमा देवी के रमण रुपनारायण राजा शिवसिंह इसे जानते हैं।

(८२)

कुन्द भमर संगम[1] संभासन
नयने जगाओव[2] अनंगे।
आसा दए अनुराग बढ़ाओव
भंगिम[3] अंग विभंगे॥
सुन्दरी[5] हे उपदेस धरिए धरि
सुन सुनु सुललित बानी।
नागरिपन[6] किछु कहवा चाह
कहलहु बुरुए सयानी॥
कोकिल कूजित कण्ठ बइसाओव[7]
अनुरंजव रितुराजे।
मधुर हास मुखमण्डल मण्डव
घड़ि एक तेजव लाजे॥

कैतव कए कातरता दरसव
गाढ़ आलिंगन दाने।
कोप कइए परबोधल मानव
घड़ि[8] एक न करव माने॥
सम पसेवनि सह तनु दरसव
मुकुलित लोचन हेरी।
नखें हनि पिया मनिठाम छोड़ाओव
सुरत बढ़ाओव केली[9]॥
जुझल मनमथ[10] पुन ये जुझाएव
घोलि[11] वचन परचारी।
गेल भाव जे पुनु पलटावए
सेहे कलामति नारी॥

सुख सम्भोग सरस कवि गावए।
बुझ समय पचवाने॥
राजा सिवसिंह रूपनारायण।
विद्यापति कवि भाने॥*

—रागत पृ० ६२; नेपाल २२१, पृ० ८४ क, पं २; न० गु० ५४१, अ ५५३

शब्दार्थ—नागरिपन—नागरियों की छलकला; सयानी—चतुरा; कैतव कए—छल करके; पसेवनि—पसीना; परचारी—प्रचार करके।

पाठान्तर—नेपाल पोथी का— (१) भरम संभ्रम सम्भावन। (२) जगाए (३) लंगिम (४) कोप कलाप केन मान मानव अधिक न करवे माने।" (५) कामिनि तोहे उपदेश धरव। जे सुन सुनु सुनु सुललित बानी॥ (६) नागरपन किछु रस बाढ़ चाहिअ (७) बढ़ाओ (८) निज (९) घेरि कहलेओ बुझए सयानी॥ (१०) पुनु जझोअव (११) केलि रभस परचारी। *इसके अन्तिम चारो चरण नेपाल की पोथी से लिए गये हैं।

अनुवाद—कुन्द जिस प्रकार भ्रमर का मिलन के लिए आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम नयनों (के कटाक्ष) से अनंग को जगाना; अंग की भंगिमा द्वारा आशा देकर अनुराग बढ़ाना। सुन्दरी कुछ उपदेश लो, सुललित वाणी सुनो, कुछ नागरियों की छलकला बतलाना चाहती हूँ, जो चतुरा होती है, वह कही हुई बात सुनती है (उसी के अनुसार काम करती है)। कण्ठ से कोकिल कूजन के समान स्वर भरना, ऋतुराज (वसन्त) की शोभा बढ़ाना। मुँह मे मधुर हँसी लाना, कुछ क्षणों के लिए लज्जा त्याग करना। गाढ़ आलिंगन के समय ऐसा दिखलाना जैसे तुम्हें लज्जा आती हो; क्रोध करना, फिर प्रबोध मानना, कुछ क्षणों के लिए मान मत करना। अर्द्धमीलित नयनों से (नागर को) देख कर तुम्हारे अपने शरीर में जो पसीना हो उसे दिखलाना। प्रियतम को नखाघात करके मणिबन्ध छुड़ा लेना, सुरत में केलि बढ़ाना। मन्मथ का जो युद्ध हो गया हो, उस युद्ध को (रस की) कथा-वार्त्ता कहके जो फिर जारी कर दे, जो भाव शेर हो गया हो, उसे फिर ला सके, वह नारी कलावती है। सरस कवि सुख सम्भोग की कथा गान करते हैं, विद्यापति कवि कहते हैं कि हे रूपनारायण राजा शिवसिंहँ, पंचवाण का समय समझना।

(८३)

विरला के भल खिरहर सोपलह दुध बहलि, अच्छडाढ़ो
दधि दुध घोर घीव सओरव एक सगरि रअनि सुखे
खपलक काढ़ी ॥

जत न अबहुँ न चेतह अपाने
अपुनक कुगति अपने नहि जानह की उपदेस अआने ॥
वटइ गराम्वर बाँधि पठओलह भानस तेलक माझे।
तेहि विरल बाओँ सुख मुखे खाएल राति दिवस दुहु साँझे ॥
मुन्दहर घर मुन्दहरिआ कएलह मुस मानु सब छाड़ी।
काटि संखा विख ———— वेधप्रलक गाड़ी।
धेन्दुल वान्धि पटो वाँ धएलह अइसनि तुअ परिपाटी।
पतरागी जओ खण्डे खण्डे कएलक मुस मुखे हतलक काटी।
गोबरेँ वान्धि वीच्छ घर मेललह एकर होएत परिणामे।
राजा सिवसिहँ रुपनरायण लखिमा देवि रमाने।

रामभद्रपुर की पोथी ; पद ६४

अनुवाद—(सखीरुपी दूती नायिका द्वारा नायक के पास भेजी गयी थी, वहाँ उसने स्वयं नायक के संग सम्भोग किया : अन्य सखी नायिका को सावधान करती हुई कहती है) तुमने बिल्ली को दूध की रक्षा का भार दिया था, दूध बह गया; दधि, दूध, घोल, घी, वाहर करके उसने सारी रात सुख से खाकर काटी। अब भी तुम सावधान होवो। जो अपनी दुर्गति स्वयं नहीं समझता उस अज्ञान को उपदेश देने से क्या लाभ ? वटइ (मछली) कपड़ में बाँध कर तेल में छोड़ दिया। बिड़ाल ने उसे सुख से दिन रात दोनों वेला खाया। बन्द घर में सब को

छोड़ कर चूहे को रक्षक रखा ।.........उसे बाँध कर रेशमी साड़ी रख दी ऐसी तुम्हारी परिपाटी है। चूहे ने उसे टुकड़े टुकड़े कर के उसमें बँधी सिठाई को मुख भर खाया । गोबर में बाँध कर विच्छू को घर में फेंक दिया। इसका परिणाम भोग करना होगा । राजा शिवसिहँ लखिमा देवी के रमण हैं ।

(८४)

"दूति सरुप कहवि तुहुँ मोहे ।
मुञि निज काजे साजि तुया भूखण
विरचि पठाओल तोहे ॥
मुखज ताम्बुल देइ अधर सुरंग लेइ
सो काहे भेल धुमेला ।"
'तुआ गुण कहइते रंसना फिराइते
ततिहूँ मलिन भै गेला ॥"
"मुञि निज कर देइ सिमन्त सोडवरलूँ
सो काहे भेल कुवेशा ।"
"तुया इथे लागि पाओ ढुहु पड़इते
ततहि उधसि भै केशा ॥"
"विनहि छरमे उर, धकधक धकि कर उससि उससि भै शासा ।
"तोहारि वचन देइ उनक वचन लेइ तुरिते आयलुँ तुया पाशा ॥"
"अपन वसन देइ उनक वसन लेइ आयलि कोन चरीते ।'
"गेलि न गेलि यव हि उपजायव आनलूँ तुया परतीते ।"
भनहु विद्यापति सुन वर यौवति कहइते होये खखेरा ॥
राजा शिवसिहँ रुपनारायण दूतिक ईह उपचारा ॥

अ० ८४१ [सा० प० २०१ सं पोथी से]

शब्दार्थ—धुमेला—धूसर; उधसि—विखरे हुए; छरमें—मिहनत से; खखेरा—कलंक ।

अनुवाद—(नायिका के साथ दूती का कथोपकथन) हे दूति, हमसे सच कहो; मैंने अपने काम से तुम्हें सजा कर भेजा । मुंह में पान देकर अधरों को सुरञ्जित करके भेजा, वह धूमिल कैसे हुआ ? "तुम्हारा गुण-कथन करने में जीभ चलानी पड़ी, इसीसे मुख मलिन हो गया ।" "मैंने अपने हाथों से तुम्हारा केश सजा कर भेजा था, वह इस प्रकार विखर कैसे गया ?" "तुम्हारे लिए (नायक के) पैर पड़ने पड़े, इसीसे केश विखर गए ।" "विना परिश्रम के ही तुम्हारी छाती धकधक करती है, गम्भीर दीर्घ श्वास लेती हो ।" "तुम्हारी बात उससे कह कर फिर उसकी बात तुमसे कहने के लिए जल्दी जल्दी आना पड़ा ।" "अपना कपड़ा उसे देकर उसका कपड़ा स्वयं लेकर आयी हो, यह तुम्हारा कैसा व्यवहार है ?" "गयी थी कि नहीं यही तुमको दिखलाने के लिए उसका कपड़ा ले आयी ।" विद्यापति कहते हैं हे वरयुवती सुनो, कहने में कलंक लगता है । दूती का यह व्यापार राजा शिवसिंह समझते हैं ।

मन्तव्य—इस पद में विद्यापति की कोई मौलिकता नहीं है। संस्कृत उद्भट पद में ठीक यही भाव पाया जाता है:—

कस्मात् दूति श्वससि विषमं सत्वरावर्तनेन ।
भ्रष्टो रागः किमधरपुटे [illegible] ॥
लुप्तो रागः किमु कुचतटे तत्पदे गुण्ठनेन ।
सामस्तस्य त्वयि फर्थमिदं प्रत्यार्थं तवैव ॥

(८५)

वारि विलासिनि आनवि काँहा।
तोँहि कान्ह वरू जासि ताँहा॥
प्रथम नेह अति भिति राही।
कत जतने कते मेराउवि ताही॥
जा पति सुरत मने असार।
से कइसे आउति जमुना पार॥
पथहुं कण्टक जाह विसूर।
चरन कोमल पथ विदूर॥

अति भआउनि निविलि राति।
कइसे अँगीरति जीवन साति॥
एत गुनि मने ताहि तरास।
मधु न आव मधुकर पास॥
पाइअ ठाम वइसले न नीधि।
जे कर साहस ता हो सीधि॥
भन विद्यापति सुन मुरारि।
वेरस पललि अछ से नारि॥

नृप सिवसिंह इ रस जान।
रानि लखीमा देवि रमान॥

तालपत्र न० गु० २३४, अ० २३५

शब्दार्थ—वरू—वरन्; नेह—स्नेह; मेराउवि—मिला दूँगी; जा पति—जिसके प्रति; मने—विवेचना करे; आउति—आयेगा; विसूर—भुलाकर; भआउनि—भयानक, निविलि—निविड़; अँगीरति—अङ्गीकार करेगी; पललि—पड़ी।

अनुवाद—विलासिनि बालिका को कहाँ लावें? हे कन्हाई, अच्छा हो तुम्हीं वहाँ जावो। प्रथम प्रेम; राधिका अत्यन्त भीरु है, कितना यत्न करके उसको किस स्थान पर मिलावें? जिसके प्रति सुरति का कुछ मूल्य नहीं है, वह किस प्रकार यमुना के पार आवेगी? रास्ते के काँटे भूल जाते हो? पद कोमल है और पथ दूर। अतिशय भयंकर गाढ़ अन्धकारपूर्ण रात्रि, किस प्रकार जीवन की शान्ति स्वीकार करेगी? यही सब चिन्ता करके उसके मन में भय होता है। मधु भ्रमर के निकट नहीं आता है। एक स्थान पर बैठे रहने से निधि प्राप्त नहीं होती है, जो काम में साहस करता है उसीको सिद्धिलाभ होता है। विद्यापति कहते हैं, हे मुरारि, सुनो, वह रमणी, विरस होकर पड़ी है। नृप शिवसिंह लखिमा देवी के वल्लभ, यह रस जानते हैं।

(८६)

काछिड़ काछिअ इ वड़ि लाज विनु नव्वले न छुटए काज।
काछिअ जेहे बहाइअ सेह तवे से मिलए दुलभ नेह॥
साजनि झाँटे कर अभिसार चोरी पेम संसारेरि सार।
किछु न गुनय पथक संका सिनी पलल वैरि कलंका।
तोर गतागत जीवन मोर आसा पलल कन्हाइ तोर।
तन्हि पटओ लाहुँ तोहर ठाम दाहिन वचन—वाम।
तइअओ तन्हिकि तहि पिआरि दूती कएलए जनि सिआरि।
नागरिं हसलि दूती हेरि टूटल वोलव मञे कत वेरि।
भन विद्यापति इ रस जानि रानि लखिमा देवि रमान।

रामभद्रपुर की पोथी पद ५८

शब्दार्थ—काछिड़—नदीतट की निम्नभूमि; काछिअ—इच्छा करते हुए; सिआरी—रसज्ञा।

अनुवाद—नदी के किनारे चुपचाप बैठ कर (स्थान की) इच्छा करना बड़ी लाज की बात है, विना झुके कार्य की सिद्धि नहीं होती। इच्छा करके जो (प्रेम का) स्रोत वहा सकता है, वही दुर्लभ प्रेम प्राप्त कर सकता है। सखि, शीघ्र अभिसार करो, गुप्त प्रेम संसार का सार है। पथ की विपत्ति की कथा मन में मत लाना...............। तुम्हारी आने की आशा ही हमारा जीवन है (क्योंकि) कन्हाई तुम्हारी आशा में रहते हैं... ..... ।

(८७)

प्रथमइ दुति पढ़ायलि आखि।
दोयजहिं मन्द हासि भेल साखि॥
तेयजहि पुरल पुलकित देह।
वंक नयने हरि बुझये सेह॥
कामिनी कोरे परसायल हाथ
पुन पुन केश उतारये माथ॥
ताहे जानल हों निशि आन्धिआर।
आपन कान्ह करव अभिसार॥
भनये विद्यापति इह रस जान।
सिंह भूपति लछिमा परमान॥

पंडित वावाजी की पोथी का १०४ वाँ पद

शब्दार्थ—पढ़ायलि आखि—आँख से इशारा किया; दोयजहिं—दूसरे; तेयजहि—तीसरे; कोरे—गोद में; परसायल—स्पर्श करवाया।

अनुवाद—दूती ने पहले ही आँख से इशारा किया; दूसरे (राधा की) मन्द हँसी साक्षी हुई; तीसरे उसका शरीर पुलक से भर गया; वङ्किम दृष्टि निक्षेप करके उसने हरि को समझाया। कामिनी ने अपनी छाती पर हाथ दिया और वार वार सिर का केश झुकाया। उससे यह मालूम हुआ कि अन्धकार निशीथ में कन्हाई स्वयं अभिसार करें। विद्यापति कहते हैं यह रस जानते हैं। सिंह भूपति और लछिमा इसके प्रमाण हैं।

(८८)

सुरुज सिन्दुर-विन्दु चाँदने लिखए[1] इन्दु
तिथि कहि गेलि तिलके।
विपरित अभिसार अमिय वरिस धार[2]
अद्भुत कएल अलके॥
माधव भेटलि पसाहनि[3] वेरी।
आदर हेरलक[4] पुछिओ न पुछलक
चतुर सखि जन मेरी॥
केतकि दल दए[6] चम्पक फुल लए[5]
कवरिहि थोएलक आनी।
मृगमद कुंकुम[7] अंगरुचि कएलक
समय निवेद सयानी॥
भनइ विद्यापति सुनह अभयमति[8]
कुहु निकट परिमाने।
राजा सिवसिंघ रूपनराएन
लखिमा देइ विरमाने[9]॥

—रागत पृ० ८५ नेपाल २६१, पृ० ९५ क, पं० १ (भनइ विद्यापतीत्यादि)

न० गु० तालपत्र २४८, श्र० २४८

नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) चान्दने लिखए (२) अमिय गलए धार। (३) पसाहन (४) हरलक (५) लए (६) दल दए (७) चन्दने कुंकुमे। रागत० के अनुसार पाठान्तर—(८) अभयमति (९) देवि रमाने।

शब्दार्थ—चान्दने—चन्दन से; विपरित अभिसार—नायिका नायक के लिए अभिसार करेगी; पसाहनि वेरी—प्रसाधन के समय; कुहु—अमावस्या।

अनुवाद—(दूती राधा के साथ अभिसार का सँकेत करके माधव को बतलाती है) सिन्दूर विन्दू के द्वारा सूर्य, चन्दन के द्वारा चन्द्रमा बताकर तिलक के द्वारा (तिलकों की संख्या द्वारा) तिथि बतलायी (मानों त्रयोदशी तिथि के अभिसार के संकेत के लिए तेरह तिलकविन्दु धारण किया)। विपरीत अभिसार मानों अमृत की धारा-की वर्षा करता है। अलक को (मदन को दमन करने के लिए) अंकुश दिया; माधव, उसके संग जब वह श्रृंगार कर रही थी, मुलाकात हुई; हमको उसने आदर से देखा। चतुरा सखियों के संग थी इसीलिए कोई बात अच्छी तरह पूछी नहीं। बालों में केतकी का फूल देकर और चम्पक का फूल देकर और मृगमद कुंकुम का अंगराग लगाकर चतुरा ने समय बतलाया (मृगमद कुंकुम काले रंग का होता है; इससे यह मालूम हुआ कि अन्धेरी रात में केतकी और चम्पा का फूल फूटने के समय अभिसार होगा यही संकेत हुआ)। विद्यापति कहते हैं कि अभयमति (शायद कोई राज-अमात्य था) सुनो, अमावस्या सचमुच ही निकट है। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के पति हैं।

(८६)

करिवर राजहँस जिनि गामिनि[1]
चललिहुँ[2] सङ्केत गेहा।
अमला तड़ितदण्ड हेमसञ्जरि
जिनि अति सुन्दर देहा॥
जलधर तिमिर चामर जिनि कुन्तल
अलका[3] भृंग सैवाले।
भाभूलता धनु भ्रमर भुजंगिनि
जिनि आध विधुवर भाले।
नलिनि चकोर सफरि वर[4] मधुकर
मृगि खजंन जिनि आखी।
नासा तिनफुल गरुड़-चंचु जिनि
गिधिनि स्रवण विसेखी॥
कनक-मुकुर ससि कमल जिनिया मुख
जिनि विन्दु अधर पवारे[5]।
दसन मुकुता जिनि कुन्द करग-वीज
जिनि कम्वु-कण्ठ आकारे॥
वेल तालजुग हेम-कलस गिरि
कटोरि जिनिआ कुच साजा।
बाहु मृणाल पास बल्लरि जिनि
डमरु[6] सिंह जिन माझा॥
लोम लतावलि सैवल कज्जल
त्रिवलि तरंगिनिरंगा।
नाभि सरोवर सरोरुहदल जिनि
नितम्ब जिनिआ गजकुम्भा॥
उरुजुग कदलि करिवर-कर जिनि
स्थल पङ्कज जिनि[7] पदपानी।
नख दाड़िम बीज इन्दुरतन जिनि
पिकु जिनि अमिया बानी॥

भनइ विद्यापति अपरुप मूरति[8] राधारूफ अपारा।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन एकादस अवतारा॥

प० त० २१६, प० स० पृ० ४६, न० गु० २५०, अ० २४६

पाठान्तर—(१) प० स० के अनुसार राजहंस गति गामिनि (२) प० स० के अनुसार 'चललिह' यही पाठ शुद्ध है, क्योंकि चलिलहु कहने से चलती हूँ अर्थ होता है तब इस पद में साधारण रूप वर्णन रहता है (३) अलक (४) सर (५) 'प्रबाले' किन्तु 'प्रभारे' पाठ परवर्ती चरण के 'आ' कार से मिलता है। (६) डम्वरु (७) 'जिनि' शब्द नहीं है। (८) युवति।

अनुवाद—करिवर (और) राजहंस की गति को पराजित करती हुई (राधा) संकेत-गृह चली। निर्मल विद्युद्-दण्ड और हेम-मञ्जरी से बढ़ कर (उसका) अति सुचारु शरीर है। कुन्तल मेघ, अन्धकार (और) चामर (एक विशेष जाति की गाय) से बढ़ कर, अलक मधुकर (और) शैवाल से बढ़ कर। भ्रू कन्दर्प के धनुष, मधुकर और सर्प से बढ़ कर कपाल अर्द्ध चन्द्र से बढ़ कर। आँख कमलिनी, चकोर, मछली, भ्रमर, मृगी, खंजन सबों से बढ़ कर। नासा तिलफुल, गरुड़ और चँचु से बढ़ कर; श्रवण गृधिनी से भी श्रेष्ठ। मुख स्वर्ण मुकुर, चन्द्र (और) कमल से श्रेष्ठ; अधर विम्ब (और) प्रवाल से बढ़ कर, दाँत मुक्ता, कुन्द (और) करकबीज (दाडिम बीज) से बढ़ कर कण्ठ की आकृति कम्बु से बढ़ कर स्तन बेल, ताड़ (फल), स्वर्णकलश, गिरि और कटोरा से बढ़ कर बाहु मृणाल, पास और वल्लरी से बढ़कर; मध्य (कमर) डमरु और सिंह से बढ़ कर; लोम लतागुच्छ, शैवाल और कज्जल से बढ़ कर; त्रिवली रंगिनी तरंगिनी से बढ़कर। नाभि सरोवर पद्मदल से बढ़कर, नितम्ब हस्ति-कुंभ से बढ़कर। उरुद्वय कदली (और) हस्तिशुंड से बढ़कर; पद और हस्त स्थल-कमलसे बढ़कर; नरवर करकबीज, चन्द्र (और) रत्न से बढ़कर; वचन कोकिल और अमृत से बढ़कर। विद्यापति कहते हैं राधा का सौन्दर्य अपार है। राजा शिवसिंह रुपनारायण ग्यारहवें अवतार हैं।

(६०)

नूपुर रसना परिहर[१] देह।
पीत वसन हे जुवति पिधि लेह॥
सिथिल विलम्बे होएत हास।
नहि गए होएत कान्हक पास[२]॥
गमन करह सखि वल्लभ गेह।
अभिमत होएत इथि न सन्देह[३]॥
कुंकुम पङ्क पसाहह देह[४]।
नयन-जुगल दुअ[५] काजर रेह॥
अवहि उगत तम पिरिकहु चन्द[६]।
जानि पिसुन जन[७] बोलव मन्द॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
अभिनव नागर रुपे मुरारि॥

रामभद्रपुर; पदसंख्या ४००; तालपत्र न० गु० २४० अ० २४०

शब्दार्थ—परिहरि—छोड़ कर; पिधि—पहन कर।

अनुवाद—नूपुर और कमरधनी शरीर से त्याग दो (नहीं तो अभिसार के समय आवाज होगी); हे युवति! पीला कपड़ा पहन लो। शिथिलता के कारण विलम्ब होने से उपहास होगा; कन्हाई के निकट जाना नहीं होगा। सखि, वल्लभ के घर चलो, इच्छा पूर्ण होगी, इसमें सन्देह नहीं है (रामभद्रपुर की पोथी के अनुसार—तुम्हारी इच्छानुसार सकल स्नेह अर्थात् प्रेम वासना चरितार्थ होगी)। कुंकुम चन्दन से शरीर सजाओ; दोनों आँखों में काजल की रेखा दो। अभी ही अन्धकार को पान कर चन्द्रमा उदित होगा। (तुमको अभिसार में जाने देर पर दुष्ट लोग निन्दा करेंगे)। विद्यापति कहते हैं, हे रमणी श्रेष्ठ, सुनो, मुरारि अभिनव नागर रूप में आते हैं। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रुपनारायण यह रस जानते हैं।

(पद न० ६०) *रामभद्रपुर पोथी का पाठान्तर*—(१) परिहरि (२) गए नहि होएत कान्हक पास (३) पुरत अभिमत सकल सिनेह (तालपत्र की पोथी के पाठ से यह पाठ अनुपम है) (४) कुंकुमे लयोन पसाहहि देह। (५) नय। (६) अवहि उदित होत तम पिबि चन्द। (७) जते (८) भनिता के शेष में ये पद हैं—"रसकासकुन एहु रस जान, राए सिवसिंह लखिमा देवि रमान।"

(६१)

पुरल पुर पुरजन[1] पिसुने[2]
जामिनी आध अँधार।
वाहु[3] तरि हरि पलटि जाएव
पुनु जमुना पार॥
ए कुल कुल-कलंक डराइअ
ओ कुले आरति तोरि।
पिरिति लागि पराभव सहब[4]
इथि अनुमति मोरि॥
कान्हा[5] तेज भुज गिम पास।
पहु जनले दुरन्त वाढ़त
होएत रे उपहास[6]॥

जगत कत न जुव जुवती[7]
कत न लावए प्रेम।
बापू पुरुष विचखन[8] चाहिअ
जे कर आगिल खेम॥
गोचर एक मोर पए राखव
राखवि दुअओ लाज।
कवहु मुख मलान न करव
होएत पुनु समाज॥
वालम्भू समदि चललि वाला
कवि विद्यापति भान।
इ रस रानि लखिमा वल्लभ
राय सिवसिंघ जान[9]।

नेपाल १०६, पृ० ८ क०, पं ५: न० गु० तालपत्र २६०, अ० २५६

शब्दार्थ—पुर-नगर; पिसुने—दुष्टलोगों से; वाहुतरि—वाहुवल से तैरकरः वापु पुरुष—श्रेष्ठ पुरुष; आगिल—भविष्य में; खेम—क्षेम, मंगल; समाज—मिलन।

अनुवाद—पुरजनों और दुष्ट लोगों से नगर पूर्ण है, आधीरात, अन्धकार। माधव, बाहु बल से तैरकर फिर यमुना-पार लौट जाऊँगी अर्थात् तैर कर लौटूँगी। इस किनारे पर कुलकलंक की आशंका है और उस किनारे पर तुम्हारा अनुराग। प्रेम के लिए पराजय का सहन करूँगी, यही मेरा अनुमान है। हे कन्हाई, कण्ठ से वाहु-आलिंगन का त्याग करो, स्वामी जानेंगे तो उत्पात बढ़ेगा, उपहास होगा। पृथ्वी पर कितने युवक-युवती प्रेम करते हैं, वही श्रेष्ठ विचक्षण पुरुष है जो भविष्य में मङ्गल चाहता है। मेरा एक निवेदन सुनना, दोनों ओर लज्जा रखना। फिर से मिलन होने पर कभी भी मुख म्लान नहीं करना पड़ेगा। कवि विद्यापति कहते हैं, बाला प्रभु को समझा-बुझा कर चली। रानी लखिमा के वल्लभ शिवसिंह यह रस जानते हैं।

मन्तव्य—नेपाल पोथी में 'भालभू' शब्द देख कर पता लगता है कि करप्रमाद से वह पोथी भी शून्य नहीं है।

नेपाल पोथी के अनुसार *पाठान्तर*—(१) परिजन (२) पिसुन (३) पौरि (४) सहिअ (५) माधव (६) जानव कन्ते दुरन्त के जाएत अछि होएत उपहास (७) जुवजन (८) विचेतन (९) "भालभू समन्दि चलु ससिमुखि कवि विद्यापति भने निगत नेहनि मेधेओ वहुत नइ छुइ छोनेओ जान।"

(६२)

गुरुजन नयन पगार पवन जनों
सुन्दरि सतरि चललि ।
जनि अनुरागे पाछ धरि पेललि
कर धरि काम तिड़ली ॥
कि आरे नवि अभिसारक रीती ।
के जान कओन विधि काम पढ़ाउलि
कामिनि तिहुयन जीती ॥

अम्बर सकल विभषन सुन्दर
घनतर तिमिर सामरी ।
केहु कतहु पथ लखहि न पारलि
जनि मसि बुड़लि भमरी ॥
चेतन आगु चतुरपन कइसन
विद्यापति कवि भाने ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने ॥

तालपत्र न० गु० २८३, अ० २७४

शब्दार्थ—पगार—पार होकर; पवन जनों—पवन के समान; सतरि—सत्वर; पेललि—धक्का दे दिया; तिड़ली—खींच लिया; मसि—अन्धकार; बुड़लि—डूब गया; तिहुयन—त्रिभुवन ।

अनुवाद—गुरुजनों की आँखों को बचाकर सुन्दरी पवन के समान शीघ्र चली, मानों अनुराग ने पीछे से धक्का दिया और काम ने आगे से हाथ पकड़ कर खींचा । अथवा यह अभिसार की नयी रीति है, जाने कन्दर्प ने किस रीति से पढ़ाया, रमणी ने त्रिभुवन जय कर लिया । सारे कपड़े और सुन्दर गहने घोर अन्धकार में काले रंग के हो गए; रास्ते में कोई देख नहीं सका, मानों भ्रमरी स्याही में डूब गयी । कवि विद्यापति कहते हैं, चतुर के पास चतुरपन कैसे (होगा) ? लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण हैं ।

(६३)

प्रणमि मनमथ करहि पाएत ।
मनक पाछे देह जाएत ॥
भमि कमलिनि गगन सूर ।
पेम पन्था कतए दूर
बाध न करहि रामा ।
पुर विलासिनि पियतम कामा ॥
वदने जीनिकहु करसि मन्दा ।
लग न आओन लाजे चन्दा ॥

तोहि सङ्किय पथ उजोर ।
गमन तिमिरहि होएत तोरा ॥
काज संसय हृदय बड़ा ।
कत न उपजए विरह सङ्का ॥
सबहि सुन्दरि साहस सार ।
तोहि तेजि के करए पार ॥
सकल अभिमत सिद्धिदायक ।
नृपे अभिनव कुसुम-सायक ॥

राए सिवसिंघ रस अधार ।
भनए कइ कवि कण्ठहार ॥

नेपाल २१३, पृ० ७६ ग, पं० २; न० गु० २४२ अ० २४[illegible]

शब्दार्थ—करहि पाएत—हाथ में मिलने पर; लग—नजदीक; सङ्किय—भयभीत होकर ।

अनुवाद—कामदेव को प्रणाम; (उनके) प्रसन्न होने से मन के पीछे शरीर जाता है। पृथ्वी पर कमल, आकाश में सूर्य, प्रेम का पथ क्या दूर होता है? रामा, बाधा मत दो, हे विलासिनि, प्रियतम की वासना पूरी करो। तुम मुख के द्वारा (चन्द्रमा को) जय करके म्लान करती हो (इसीसे) लज्जा से चन्द्रमा निकट नहीं आता है। (चन्द्र) पथ को आलोकित करते डरता है, तुम्हारा गमन अन्धकार में ही होगा। काम में द्विविधा और हृदय में खोटापन आने से विरह की शङ्का कैसे दूर होगी? सुन्दरि, साहस सब का सार है, उसकी उपेक्षा करके कौन काम कर सकता है? सरस कवि कण्ठहार कहते हैं कि सब अभीष्टों के सिद्धिदायक रूप में नवकन्दर्प राजा शिवसिंह रस के आधार हैं।

(६४)

कह कह सुन्दरी न कर वेआजे[1]
पुरव सुकृत केदहु पाओल[2]
मदन महासिधि काजे[3] ॥
मृगमद तिलक अगर अनुलेपित
सामर वसन समारि।
हेरह पछिम दिस कखन होयत निस
गुरुजन नयन निहारि ॥

विनु कारन गृह करह गतागत
मुनि नयन अरविन्दा।
अति[4] पुलकित तनु विहसि अकामिक
जागि उठलि सानन्दा ॥
चेतन हाथ लाथ नहि सम्भव
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
सकल कलारस जाने ॥

ग्रियर्सन १३; न० गु० ३०८, झा० २९६

अनुवाद—केदहु—कोई भी; अकामिक—सहसा।

अनुवाद—हे सुन्दरि, छल मत करो, बोलो, पूर्व (जन्म के) सुफल के कारण ही किसी ने मदन के कार्य्य में महासिद्धि लाभ की है? कस्तूरी, तिलक, अगुरु (गन्ध) प्रभृति लगा कर, नील वस्त्र धारण कर गुरुजनों की आँख देख कर अर्थात् गुरुजन सन्देह न करें इसीलिए पश्चिम दिशा में देखती हो कि कब रात हो। नयन-कमल मूँद कर विना कारण घर में आती-जाती हो (अन्धेरे में चलने का अभ्यास करती हो), अत्यन्त पुलकित शरीर से विना कारण हँस कर प्रफुल्ल मन से (शय्या से) उठती हो। विद्यापति कवि कहते हैं, चतुर के साथ बहाना सम्भव नहीं है, अर्थात् सखी चतुरा है, उसके साथ बहाना चलना सम्भव नहीं हैं। राजा शिवसिंह रूपनारायण सकल कलारस से अवगत हैं।

ग्रियर्सन का पाठान्तर—(१) सुन्दरि, कह कह न कर वेआज (२) पाओत (३) आजे (४) 'अति' शब्द नहीं है।

(९५)

सखि हे आज जायव मोही।
घर गुरुजन डर न मानव
वचन चुकव नहीं।
चाँदने आनि आनि अंग लेपव
भूपन कय गजमोती।
अंजन विहुन लोचन जुगल
धरत धवल जोती ॥

धवल वसने तनु झपाओव
गमन करव मन्दा।
जइओ सगर गगन उगत
सहसे सहसे चन्दा ॥
न हम काहुक डीठि निवारवि
न हम करव ओते।
अधिक चोरी पर सँओ करिअ
इहे सिनेहक लोते ॥

भने विद्यापति सुनह जुवति
साहसे सकल काजे।
बुझ सिवसिंह रस रसमय
सोरम देवि समाजे ॥

रागत पृ० ९६, न० गु० ३०९, अ० २९७

शब्दार्थ—वचन चुकव नहि—जो कहा है उसका पालन करूंगी। चाँदने—चन्दन; जइओ—यद्यपि; सगर—सकल; सहसे सहसे—हजारों; डीठि—दृष्टि; ओते—ओट; लोते—अपहृत सामग्री; सओं—से।

अनुवाद—हे सखि, आज मैं जाऊँगी, घर में परिजनों का डर नहीं मानूंगी; वाक्च्युत नहीं होऊँगी। चन्दन लाकर शरीर में लेप करूँगी, गजमोती का गहना पहनूंगी, अंजन नहीं रहने से नयनयुगल धवलज्योति धारण करेंगे। श्वेत वसन से शरीर सजाऊँगी, आकाश में हर तरफ यदि हजारों चन्द्रमा उदय होंगे तब भी धीरे धीरे चलूंगी। (नायिका ज्योत्स्नामयी रजनी में श्वेत वसन धारण करेगी, चन्दन लगायेगी, उजला गहना पहनेगी, इसी डर से आँखों में अंजन धारण नहीं करेगी—यह सब शुक्लाभिसारिका के लक्षण हैं) मैं किसी की भी आँख नहीं बचाऊँगी, कभी भी अपने को नहीं छिपाऊँगी। दूसरे चोर से अधिक अधिक चोरी करनी चाहिये, यही स्नेह (अनुराग) की हृत सामग्री है। विद्यापति कहते हैं, युवति सुन, साहस करने से सब काम की सिद्धि होती है, रसमय शिवसिंह सुरमा देवी के साथ रस समझते हैं।

(९६)

सहज सुन्दर लोचन सीमा काजर अंजने न कर भीमा।
तिलक दए मृगमदमसी वदन सरिस न कर शशी।
चलहिं सुन्दरि तेजि वेआज सुकृते मिल सुपन्थ समाज।
पसर सौरभ की अंगरागे उभय मन उदि अनुरागे।
परिहर मल्लिकेर रंग सुन्दर सुजन कर सँग।
सरस कवि विद्यापति गावे मनक पाहुन मदन भावे।
रूपनारायण ई रस जाने रागि लखिमा देवि रमाने।

रामभद्रपुर की पोथी, पद संख्या ३५

अनुवाद—तुम्हारे नयनों का कोर स्वाभावतः सुन्दर है, इसलिए उनमें काजल का अंजन लगा कर उन्हें भयंकर मत बनाना। कस्तूरी का काला तिलक लगा कर चेहरे को चन्द्रमा के समान मत बनाना, (चन्द्र में कलंक है और तुम्हारा चेहरा निष्कलंक चद्रमा के समान है, इसलिए उसमें मृगमद का तिलक लगाने से वह कलंकी चन्द्रमा के समान हो जाएगा) हे सुन्दरि, इस समय बिना कोई बहाना किए चलो; पुण्यफल से सुपुरुष के साथ समागम होता है। सौरभ (तुम्हारे शरीर का स्वाभाविक सुगन्ध) तो पाया जाता है, यदि दोनों के मन में अनुराग है तो अंगराग से क्या लाभ? सखियों के संग हास-परिहास छोड़ो, (क्योंकि) सुजन को मुखरता शोभा नहीं देती। सरस कवि विद्यापति गान करते हैं कि मन के अतिथि मदनदेव दौड़ते आ रहे हैं। लखिमा देवी के पति रूपनारायण यह रस जानते हैं।

(९७)

मृगमद पङ्क अलका।
मुख जनु करत तिलका॥
निपुन पुनिम के चन्दा।
तिलके होएत गए मन्दा[1]॥
सहजहि[2] सुन्दरि बड़ि राही।
कि करवि[3] अधिक पसाही॥
उजर नयन नलिना।
काजरे न कर[4] मलिना॥
दुधक धोएल भमरा।
मसि बुड़ि जाएत सामरा[5]॥
पीन पयोधर गोरा।
उलटल कनक कटोरा॥
चन्दने धवल न करू।
हिमे बुड़ि[6] जाएत सुमेरु॥
भनइ विद्यापति कवी।
कतए तिमिर जहाँ रवी[7]॥

रागत पृ० १२३; न० गु० तालपत्र २४६, अ० २४६

शब्दार्थ—जनु—मानों; निपुन—सुन्दर; पसाही—प्रसाधन करके; उजर—उजला; मसि—स्याही; बूड़ि—डूब कर; सामरा—काला रंग।

अनुवाद—केशों में मृगमदचन्दन (का लेपन) और मुखपर तिलक मत करना। सुन्दर पूर्णिमा का चन्द्रमा (अर्थात् मुख) तिलक से म्लान होजाएगा। स्वभावतः ही राधा (तुम) अत्यन्त सुन्दरी हो, अधिक सजावट-बनावट क्या करेगी? उज्ज्वल पद्म-लोचन काजल से मलिन मत करना; (तुम्हारे नयन मानों) दूध के धोये भ्रमर हैं (नयनों का आँगन उजला तथा उसकी पुतलियाँ भौंरे के समान काली) (काजल देने से) स्याही में डूबकर कृष्णवर्ण के हो जाएँगे।··· ऊपर किये हुए सोने के कटोरे के समान गौरवर्ण के स्थूल पयोधर हैं। उनको चन्दन के द्वारा उजला मत करना, (ऐसा करने से) वर्फ में (तुपार में) सुमेरु डूब जायगा। विद्यापति कवि कहते हैं कि जहाँ सूर्य है वहाँ अन्धकार कैसे होगा? (रागतरंगिनी की भनिता का अनुवाद—रूपनारायण प्रभु बड़ा-छोटा तौल देंगे)

रागतरंगिनी का पाठान्तर—(१) स पुन पुनिके चन्दा (२) सहजे (३) करति कलंके होएत गए मन्दा।
(४) करु (५) समरा (६) झापि (७) "विद्यापति हेम कवी
कतए तिमिर जहाँ रवी
रुपनाराएन पहु
तोलि हलत गुरु लहु॥"

(९८)

वदन कामिनि हे वेकत न करवे[1]
चउदिस होएत उजोरे॥
चाँदक भरमे अमिय रस लालचे[2]
ऐठँ कए[3] जाएत चकोरे॥
सुन्दरि तोरित चलिअ[4] अभिसारे।
अवहि उगत ससि तिमिरे तेजब निसि
उसरत मदन पसारे॥
अमिय वचन[5] भरमहु जनु वाजह
सौरभ बुझत आने[6]॥
पङ्कज लोभे भमरे[7] चलि आओव
करत[8] अधर मधुपाने॥
तोंहे रसकामिनि[9] मधुके जामिनि
गेल चाहिअ पिय सेवे[10]।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
कवि अभिनव जयदेवे[11]॥

तालपत्र न० गु० २२१, नेपाल २९२, पृ० ९५क, पं० ५, रामभद्रपुर २०६, अ० २२८

शब्दार्थ—लालचे—लोभ से; तोरित—शीघ्र; अवहि—अभी; उगत—उदित होगा; तिमिरे तेजब निसि—रात्रि तिमिर का त्याग करेगी, अर्थात् उजली होगी; वाजह—बोलना; चाहिअ—चाहिये।

अनुवाद—हे रमणि, मुँह मत खोलना, चारो ओर उजाला हो जायगा, चाँद समझ कर अमृत के लालच से चकोर (तुम्हारा मुँह) जूठा कर जाएगा। सुन्दरि, शीघ्रतापूर्वक अभिसार के लिए चलो, अभी चाँद उदित हो जायगा, अन्धकार रजनी का त्याग कर देगा, मदन की दुकान उठ जायगी। अमृतवाणी भूल कर भी न बोलना, दूसरे ढंग से सौरभ दिखलाना, पंकज के लोभ से भ्रमर आ जायगा, अधर का मधुपान करेगा। तुम रसकामिनी हो, मधु (मास की) रात है, प्रियतम की सेवा के लिये जाना उचित है, कवि अभिनव जयदेव, राजा रूपनारायण के सामने कहते हैं।

(९९)

जखने संकेत चलु ससिमुखी तखने छल अन्धार।
आन्तर पान्तर बाट उगि गेल चन्दा करम चण्डार॥
परम पेम पराभवे पाओल देखि गमनेरि बाध।
उतिम वचन जदि बिहुसर आओर की अपराध॥
सजनि मन्दिर भेल असार।
अपन आरति आगु न गुनल जाति छल अभिसार॥
सुन्दर हेतु कतने बिचारब कमले चिन्हल चोर।
आना दरस सुपुरुषे बंचन दूषन लागत मोर॥

पाठान्तर—(नेपाल की पोथी के अनुसार) (१) कामिनी वदन वेकत जनु करिहह (२) 'लालचे' पद नहीं है (३) उठए (४) चललिह (५) अमुके वचने (६) सौरभ जानत आने (७) भमर (८) करय (९) रसभाविनि (१०) जायब चाहिअ पिय सेवा (११) इन दोनों चरणों के स्थान में 'भनइ विद्यापति गावे' है।

न परे पौलिहुँ न घरे गेलिहुँ दुहु कुल भेल हानि।
विधि निकारुण परम दारुन अबे कि करब जानि ॥
संकेत वन-गमन न सम्भव पुनु पलटए न जाए।
युवति वध रे आध पंचसर काहु न कहहु जाए ॥
भने विद्यापति सुन तए युवति अछ ए गुणनिधान।
राए सिवसिंघ रुपनराएन लखिमा देवि रमान ॥

रामभद्रपुर पोथी—पद ३११

जिस समय शशिमुखी ने अभिसार के लिए यात्रा की उस समय अन्धकार था, किन्तु बीच रास्ते के पाँतर में चाण्डाल के समान कार्य करता हुआ चन्द्र उदित हो गया। गमन में बाधा देख कर परम प्रेम ने पराभव मान लिया। उत्तम वचन यदि मान कर चलें तब और अपराध क्या? सखि, ऐसा मालूम होता है मानों घर सूना है। अपने दुख की बातों का ख़याल न करके अभिसार की तैयारी की। सुख के लिए किस प्रकार विचार करेगा, किस प्रकार चोर को पहचानेगा? सुपुरुष को आशा देकर ठगने का दोष मुझे लगेगा। मैं घर भी नहीं जा सकी और न दूसरे के संग मिलन कर सकी। विधाता निर्दय और अत्यन्त निष्ठुर है, इस समय क्या करूँ, समझ में नहीं आता। संकेत के वन में जाना सम्भव नहीं और लौटकर आना बनता नहीं है। हे पंचसर, युवती को अधमरा कर दिया, यह बात किसी से कही नहीं जाती। विद्यापति कहते हैं कि युवती तेरे गुणनिधान हैं। रूपनारायण राजा शिवसिंह लखिमा देवी के रमण हैं।

(१००)

प्रथम पहर निसि जाउ।
निअ निअ मन्दिर सुजन समाउ ॥
तम मदिरा पिवि मन्दा।
अवहि माति उगि जाएत चन्दा ॥
सुन्दरि चलु अभिसारे।
रस सिंगार संसारक सारे ॥
ओतए अछए पिया आसे।
एतए वेटल गिम मनमथ पासे ॥
साहसे साहिअ असाधे।
मिला एक कठिन पहिल अपराधे ॥
से सामर तोवें गोरी।
बीजुरी वलाहक लागति चोरी ॥
हसि आलिंगन देसी।
मन भरि युवति जनक सुख लेसी ॥
सब संका कर दूरे।
कामिनि कन्त मनोरथ पूरे ॥
भनइ विद्यापति भाने।
राए सिवसिंघ लखिमा देवि रमाने ॥

तालपत्र न० गु० २४२, अ० २४२

शब्दार्थ—जाउ—गया; समाउ—प्रवेश किया; माति—मत्त होकर; उगि जाएत—उदित होगा; ओतए—वहाँ; आसे—आशा से; एतए—यहाँ; गिम—ग्रीवा; साहिअ—साधना; असाधे—असाध्य; वलाहक—मेघ; देसी—दो; लेसी—लो।

अनुवाद—रात्रि का प्रथम पहर चला गया। सुजन लोग अपने अपने गृह में प्रवेश कर गये। तमोमदिरा का पान करके मत्त होकर अभी ही मन्द (दुष्ट) चन्द्रमा उदित होगा। हे सुन्दरि, अभिसार के लिए चलो, शृंगार रस संसार का सार है। वहाँ प्रियतम आशा में (बैठा) है। यहाँ मदन का फन्दा गर्दन ऐंठ रहा है। साहस करने से असाध्य का साधन होता है, प्रथम अपराध तिल भर (होने पर) भी कठिन होता है। वह श्यामवर्ण; तुम गोरी, मेघ

अनुवाद—हे सुन्दरि, राधे, *कल-तिलक देकर शरीर को कितना सजा रही हो] . . . . . भूषण दुःख का कारण होगा। इसलिए हे चतुरा सखि, चलो, चलो, जिससे तुम्हारे लिए कन्हैया प्यासे न रहें। अस्फुटित कुमुद के रस का लुब्ध शशी अभी शीघ्र ही उदित होगा। तरुणि, तुम्हारे लिए मैं आयी हूँ, दुष्ट लोगों के नयन तुम्हारे वदन-चन्द्र का रस पान करने के लिए चकोर के समान घूर रहे हैं।

इस जगह आना चाहता है। चरणों के ऊपर नूपुर चढ़ा लो, जो मेखला आवाज कर रही है उसे हाथ देकर बन्द करो, अमूल्य श्याम शरीर को छिपा कर अन्धकारमय पथ पर चलो। विद्यापति कहते हैं कि युवती की रीति को मधुर जान कर विश्वास करो। सुखमा देवी के रमण राजा रूपनारायण जानते हैं।

(१०३)

सगरि ओ रअनि चान्दमय हेरि
मने मने धनि पुलकलि कत वेरि।
कालि दिवससवों होएत आन्धार
अपने सु''''' हे करब अभिसार।
सखि मवें की कहव हृदय जत.वास
अपनहिँ निधि आइलि जनि पास।
एकरूप रह जुग वहि जाए
तेँ गुणगौरव एहे उपाए।
खान्त निसाकर गरसओ राहु
हो नहि दुख विरही जन काहु।
विद्यापति भन सुनु वरनारि
अवसर जानि जे मिलत मुरारि।

राजा रूपनरायन जान
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमान।

रामभद्रपुर पोथी, पद १५६

अनुवाद—(पूर्णिमा की रात को) सारी रात ज्योत्सना देख कर धनी वारम्वार मन ही मन पुलकित हुई। (उसने सोचा) कल से अन्धेरा होगा, अपनी इच्छा के अनुसार अभिसार में जा सकूंगी। हे सखि, हृदय में कितनी आशा है, क्या कहूँ, दिल में आता है मानों निधि स्वयं ही मेरे निकट आगयी। उसका गुणगौरव युग वीत जाने पर भी एक ही रूप से है। चन्द्रमा को राहु ग्रसता है, उससे विरहीजन दुखित नहीं होते हैं। विद्यापति कहते हैं कि हे वरनारि सुन, मुरारि अवसर पर ही मिलेंगे। लखिमा देवी के रमण रूपनारायण राजा शिवसिंह जानते हैं।

(१०४)

रयनि काजर वम भीमभुजंगम[१]
कुलिस परए[२] दुरवाह।
गरज तरज मन रोस वरिस घन[३]
संसअ पड़[४] अभिसार।
सजनी, वचन छड़इत[५] मोहि लाज।
होएत से होओ वरु सव हम अंगिकरु
साहस मन देल आज[६]॥
अपन[७] अहित लेख कहइत परतेख
हृदय न पारिअ ओर।

(पद न० १०३) नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) भुअंगम (२) पलए (३) रागत० के अनुसार 'गरजे तरम्म मन. रोसे वरिस घन' (४) पलु (५) बोलइते (६) रागत० का पाठ-"येहे होएअ से होएअ ओ वरु सवे हामे अंगिकए साहस मन दए आज"। (७) "अपन अहित लेख . . . . सिनेहक कतहुर ओर" नेपाल पोथी में नहीं है, उसमें भनिता के स्थल पर भनइ विद्यापतीत्यादि है

(१०५)

बाट विकट फनिमाला।
चउदिस बरिसए जलधर जाला॥
हे माधव बाहु तरिए नरि भागे।
कतए भीति जौं दृढ़ अनुरागे॥
वन छलि एकलि हरिनी।
व्याध कुसुम सरे पाउलि रजनी॥
विद्यापति कवि भाने।
रुपनरायन नृप रस जाने॥

तालपत्र न० गु० २६१, अ० २८६।

शब्दार्थ—बाट—पथ; फनिमाला—सर्पसमूह; चउदिस—चारो ओर; तरिए—पार हुई; नरि—नदी; भागे—भाग्यवश; कतए—कहाँ; जौं—जब; छलि—थी।

अनुवाद—पथ भयंकर सर्पों से भरा हुआ, चारो ओर मेघ जलवर्षा कर रहे हैं! हे माधव, भाग्यवश नदी हाथ से ही पार कर गयी। जहाँ दृढ़ प्रेम है, वहाँ डर कहाँ? वन में हरिणी अकेली थी, व्याधरूपी कुसुमशर (मदन) ने उसे रात्रि को पाया (विद्ध किया)। विद्यापति कवि कहते हैं, राजा रूपनारायण रस जानते हैं।

(१०६)

घन घन गरजये, घन मेह बरिखये दशदिश नाहि परकासा।
पथ विपथहुँ चिन्हये न पारिये कोन पुरये निज आसा॥
माधव आजु आयलुँ बड़बन्धे।
सुख लागि आयलु बहु दुख पायलुँ पाप मनोमथ संन्धे॥
कन्टक पङ्कये दुय हाम तोरलु जलधर बरिखए माथे।
जत दुख पायलु हृदय हाम जानुलुँ काहाके कहब दुखबाते॥
लाभकि लोभे दुतर तरि आयलुँ, जीउ रहल पुनभागि।
हेरइते ओ सुख विसुरल सब दुख एनेह काहु जानि लागि॥
भनइ विद्यापति सुन वर युवती इह सुख को पय जान।
राजा सिवसिंह रुपनारायन लछिमादेइ परमान॥

पन्डित बाबाजी महोदय की पोथी का ११७वाँ पद।

अनुवाद—घनघन गर्जन हो रहा है, मूसलाधार वर्षा हो रही है, चारो ओर अन्धकार के मारे सूझ नहीं पड़ता। कौन रास्ता और कौन कुरास्ता है, मालूम नहीं पड़ता, किस तरह अपनी आशा पूरी होगी? पाप मनोमय ने (शर) सन्धान किया था, सुख की आशा से आई थी (आने पर) बहुत दुख पाया। काँटा और कीचड़ दोनों में पार करके आई थी, यहाँ पर अब सिर के ऊपर जलधर वर्षा कर रहा है। जो दुख पाया, वह दिल ही जानता है, दुख की बात किससे कहें? लाभ के लोभ से दुस्तर (नदी) पार करके आई, पुण्यबल से प्राण बच गये। (तुम्हारा) वह मुख देखकर सब दुख भूल गयी। इस प्रकार का प्रेम किसी को भी न हो। विद्यापति कहते हैं कि हे युवतीश्रेष्ठा, इस प्रकार का सुख कौन जानता है? रूपनारायण राजा शिवसिंह और लखिमादेवी इसके प्रमाण हैं।

(१०७)

कुसुम बोलि केश परिहल हार
काज़रे वन्धु पयोधर भाल।
एसने ....हन लाग
आरति जानल अधिक अनुराग।
कान्त हे सकल सुधासार
आइति राधा फलल अभिसार।
कुसुम सरासने साजलि को—।
दुलभ अछलि सुलभ भए गेलि।

पुन पुन कन्त कहओ करे ज़ोरि
तत राखव जत आनिअ वोलि।
एक दिस जीवन अओक दिस पेम
एतौ निचा ओटाओल हेम। ६
हटे न धरल कर वचन हमार
आरति धस दए भेलि जौन पार।
सरस अनुराग बुझ यदि केव
अभिमत भने अभिनव जयदेव।

रसमय रुपनरायन जान
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमान।

रामभद्रपुर पोथी, पद ४०६।

अनुवाद—केश में कुसुम समझ कर माला धारण की ; पयोधरों के ऊपर कज्जल लेपन किया। इसीसे...... समझा कि तुम्हारा अनुराग प्रवल है। हे कान्त, तुम सकल सुधा के सार हो, राधा तुम्हारे पास आयी, उसका अभिसार सफल हुआ। कुसुम के शरासन पर सज्जित हुआ.......जो दुर्लभ था, वह सुलभ हुआ। हे कान्त, वार-वार तुमको हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि जो सब वातें कह कर ले आये हो, उसकी रक्षा करना। एक ओर जीवन है, दूसरी ओर प्रेम। ...
सहसा हाथ मत पकड़ना, प्रेम के कारण कूद कर यमुना पार किया। यदि कोई सरस अनुराग समझे तव-अभिनव जयदेव यह अभिमत (वाणी बोल सकें)। लखिमादेवी के रमण रसमय रुपनारायण राजा शिवसिंह जानते हैं।

(१०८)

वारिस निसा मञें चलि अएलहु[१]
सुन्दर मन्दिर तोर।
कत महि अहिं[२] देहे दमसल
चरने तिमिर घोर॥
निज सखि मुख सुनि सुनि
कहवसि[३] पेम तोहार।
हमे अवला सहए न पारल
पचसर परहार॥
नागर मोहि मने अनुताप
कएलाहु साहस सिधि[४] न पारिअ
अइसन हमर[५] पाप॥

तोह सन पहु गुन-निकेतन
कएलह[६] मोर निकार।
हमहु नागरि सवे सिखाउवि
जनु कर अभिसार॥
कत न नागर गुनक सागर
सवे न गुनक गेह।
तोह सन जग दोसर नहि ८
तेँ हमें लाओल नेह[७]॥
केलि कुतूहल दुरहि रहओ
दरसनहु सन्देह।

पाठान्तर—नेपाल पोथी में पाठान्तर—(१) आइलहु (२) कित अहि महि (३) कहवसि (४) सिद्धि (५) अमर (६) कएल। (७) वर (८) कतन नागर गुनक—लाओल नेह' तक नहीं है। (९) इसके वदले में केवल भनइ विद्यापतीत्यादि है।

जामिनि चारिम पहर पाओल
आवे[७] जाओं निज गेह ॥
मोरि ओ सब सहचरि जानति
होइति इ बड़ि साटि।
विहि निकारुन परम दारुन
मरओो हृदय फाटि ॥
भन[८] विद्यापति सुनह युवति
आसा न अवसान।
सुचिरे जीवओ राए सिवसिव
लखिमा देइ रमान ॥

नेपाल १४५, पृ० ५१ ख, पं १, न० गु० तालपत्र ४८२, अ० ४६६

शब्दार्थ—महि—मिट्टी से; अहि—सर्प; कएलाहु—करने पर भी; पाविअ—पाया ; निकार—इनकार, अवज्ञा ; गुनकगेह—गुणधाम ; किन्तु इस स्थान पर गुणग्राहक अर्थ न लगाने से अर्थ सिद्धि नहीं होती ; चारिम —चतुर्थ ; साहि—शान्ति ।

अनुवाद—हे सुन्दर, वर्षा की रात को मैं तुम्हारे मन्दिर चली आई ; पृथ्वी से (निकल कर) कितने सर्पों ने शरीर का दंशन किया, चरणों के तले घोर अन्धकार (इसी कारण सर्पों को न देखने के कारण उनके ऊपर पाँव रख दिया) । अपनी सखी के मुख से तुम्हारे प्रेम की कथा सुन सुन कर मैं अबला अब पचंसर का प्रहार सहन न कर सकी। हे नागर! मेरे मन में यही अनुताप है कि साहस करने पर भी सिद्धि न पा सकी—मैं इतनी पापिन हूँ। तुम्हारे समान गुणनिकेतन प्रभु ने भी मेरी अवज्ञा की। मैं भी सब नारियों को सिखाऊँगी कि वे अभिसार न करें। कितने गुणवान नागर है, किन्तु (दूसरे का) गुण सब समझ नहीं सकते हैं। तुम्हारे समान संसार में और कोई नहीं है, इसीलिए मैंने तुम्हारे साथ प्रेम किया। केलि कौतुक की बात तो दूर रहे, तुम्हारे दर्शन में भी सन्देह है; रात का चौथा पहर हो गया; अब मैं अपने घर लौट रही हूँ। मेरी सखियाँ जब यह बात जानेंगी तो हमारी बड़ी भर्त्सना होगी। विधाता अत्यन्त कठिन और निष्ठुर है, मेरा हृदय फट जाएगा, मैं मर जाऊँगी। विद्यापति कहते हैं, हे युवति सुनो, आशा का अन्त नही होता। लखिमादेवी के वल्लभ राजा शिवसिंह दीर्घजीवी होवें।

(१०६)

दुहुक अभिमत एकन मिलने दूती के अपराधे।
आन आन घने संकेत भुलाएल दुहुक मनोरथ बाधे।
तरुनी कहओ कहा सकल मेने अभिसार।
राधा नयन जरद जओ वरिसए कन्हायी रहल न जाइ।
दूती अपन चतुरपन खाएल चारिम कहहि न जाइ।
दुअओ परम वेआकुल मानल जस राधा तसु कान्ह।
एक मनोभव परिभव दाता दुअहु समहि समधान।
भनइ विद्यापति एहु रस जानए रायनि मह रसमन्ता।
सिवसिंह राजा रुपनराएन लखिमा देवी कन्ता।

रामभद्रपुर पोथी, पद ३११

शब्दार्थ—चारिम—चतुर्थ।

अनुवाद—दोनों की अभिमत मिलन की साध दूती के अपराध से पूरी न हो सकी। दूती ने भूल से दोनों को भिन्न-भिन्न समय का निर्देश कर दिया, इसीसे दोनों के मनोरथ में बाधा हो गयी। तरुणी ने कहा कि अभिसार क्यों सफल नहीं हुआ? राधा-नयन बादल के समान बरसने लगे, कन्हायी भी स्थिर न रह सके। दूती अपनी चतुरता खो बैठी यह बात किसी चौथे आदमी को (राधा, कृष्ण, और दूती को छोड़ कर) कही नहीं जाती। दोनों अत्यन्त व्याकुल हुए, जैसी राधा, वैसे ही कन्हायी। एक ही मदन ने दोनों को एक ही समय (शर-प्रहार से) पराजित किया। विद्यापति कहते हैं कि यह रस राजाओं में लखिमादेवी के कान्त रूपनारायण राजा शिवसिँह जानते हैं।

(११०)

ऋतु-पति-राति रसिक-वरराज।
रसमय रास रभस-रसमाझ॥
रसवति रमनीरतन धनि राहि[१]।
रास-रसिक सह रस अवगाहि[२]॥
रंगिनिगन रस रंगहि नटई।
रनरनि कङ्कन किंकिनी रटई॥

रहि रहि राग रचये रसवन्त।
रतिरत-रागिनि-रमन वसन्त॥
रटति रबाब महति कपिनाश[३]।
राधारमन करु मुरलि-विलास॥
रसमय विद्यापति कवि भान।
रूपनरायन भूपति जान॥

प० त० १५०१; न० गु० ६११, अ० ६१७

अनुवाद—वसन्त की रात में रास के रसमय आनन्दरस के मध्य में रसिक-श्रेष्ठ (माधव) विराजते हैं। रसवती रमणीरत्न, धनि राइ (राधा) रसिक के साथ रास के रस में अवगाहन करती हैं। रंगिनियाँ रसरंग में नाच रही हैं, किंकिनी और कंकण रन-रन शब्द कर रहे हैं। ठहर ठहर कर रसवन्त राग की सृष्टि कर रहे हैं। वसन्त रतिरस की उद्दीपन कारिणीरागिनियों का रमण (वल्लभ) है। रबाब, महती (वीणा) और कपिनाश (वाद्ययन्त्रविशेष) बज रहे हैं। राधारमण मुरली बजा रहे हैं। रसमय कवि विद्यापति कहते हैं कि नृपति रूपनारायण जानते हैं।

(१११)

खनरि खन महथि भइ किछु अरुन नयन कइ
कपटे धरि मान सम्मान लेही।
कनक जयँ पेम कसि पुनु पलटि बांक हसि
आधि सयँ अधर मधु-पान देही॥
अरेरे इन्दुमुखि अइ न कर पिय हृदय खेद हर
कुसुम-सर रंग संसार सारा॥

पाठान्तर—पद कल्पतरु का पाठ—(१) राइ (२) अवगाइ (३) महति कपिलास अथवा महति कपिनास है। मिथिला में यह पद नहीं पाया जाता।

वचने वस होसि जनु ससरि भिन होइह तनु
सहजे वरु छाड़ि देव सयन-सीमा।
प्रथमे रस भंग भेले लोभे मुख सोभ गेले
बाँधि भुज-पास पिय धरव गीमा॥
जदि नयन कमलवर मुकल कर कान्ति धर
खर-नखर-घात कइ सेहे बेला।
परम पद लाभ सम मोदे चिर हृदय रम
नागरी सुरत-सुख अमिय मेला॥
सरसकवि सुरस भने चारुतर चतुरपने
नारि आराहिअइ पंचवाना।
सकल जन सुजनगति रानि लखिमाक पति
रुप नारायन सिवसिंघ जाना॥

तालपत्र न० गु० ३३०, अ ३२७

शब्दार्थ—खनखिन—कुछ क्षणों के लिए; महधि—महार्घ्य; कसिकस धर; होसि होगा; ससरि—हट कर; गीमा—ग्रीवा; मोद—आनन्द।

अनुवाद—कुछ क्षणों के लिए महार्घ्य होकर, कुछ लाल आँखें कर के (कृत्रिम क्रोध कर के) छलपूर्ण मान करके अधिक सम्मान लेना (प्राप्त करना)। (कसौटी पर) कसे हुए सोना के समान प्रेम (प्रेम की मानों परीक्षा कर लेना), फिर पलट कर बंकिम हँसी हँस कर आधे अधर का मधुपान करने देना। ऐ चन्द्रमुखि, छल मत करना, प्रियतम के हृदय का खेद हरना, कुसुमशर (कन्दर्प) का रंग (केलि) संसार का सार है। वचन से वश में मत होना, सरक कर अलग हो जाना इस प्रकार सरकने की चेष्टा करना जिससे प्रत्येक अंग स्पर्श न होने पावे); वरन् सहज ही शय्या की सीमा छोड़ देना (शय्या पर से उठ जाना)। प्रथम रसभंग होने पर; लोभ में उनकी मुखशोभा जाने से (अपहृत होने से) प्रियतम भुजपाश में बाँध कर गले लगावेंगे। यदि नयनकमलवर मुकुल की कान्ति धारण करेंगे (चक्षु अर्द्ध मुद्रित होंगे) तो उसी समय प्रियतम खर नखरघात करेंगे। परम पद के लाभ के समान आनन्दित हृदय से चिरकाल रमण (आनन्द सम्भोग) करो, हे नागरि, सुरतसुख अमृत मिलन है। सरस कवि यह सुरस कहते हैं, हे नारि, चारुतर चतुरपन के साथ पंचवाण मदन की आराधना करो। सकल सुजन लोगों की गति, रानी लखिमा के पति, रूपनारायण शिवसिंह जानते हैं।

(११२)

वड़ कौसलि तुअ राधे।
किनल कन्हाई लोचन आधे॥
ऋतुपति-हटबए नहि परमादी।
मनमथ-मधथ उचित मूलवादी॥
द्विज-पिक-लेखक मसि मकरन्दा।
काँप भमर पद साखी चन्दा॥
वहि रति-रंग लिखापन माने।
श्री सिवसिंघ सरस-कवि भाने॥

तालपत्र न० गु० २२९, अ० २२६

शब्दार्थ—हटवए—दुकानदार ; नहि परमादी—प्रमाद (भूल) नहीं करता ; मधथ—मध्यस्थ ।

अनुवाद—हे राधे, तुम बड़ी छलनामयी हो; आधे नयन से ही (तुमने) कन्हायी को खरीद लिया । ऋतुपति दुकानदार प्रमादी नहीं हैं अर्थात् भूल करने वाला नहीं है; न्याय-मूल्यवादी समझ कर (उसने) कामदेव को ही मध्यस्थ बनाया है । द्विज कोकिल लेखक, मधु स्याही, भ्रमर के पद कलम और चन्द्रमा साखी है अर्थात् कामदेव को मध्यस्थ मानकर, चन्द्रमा को साक्षी मान कर, स्याही-कलम ठीक करके लिखा-पढ़ी होगयी (मान अवस्था से बाहर होने को) अनुनय, केलि रहस्य, मान-अनुभव-प्रकाशक सरस कवि श्री शिवसिँह को कहते हैं ।

(११३)

तोहर वचन अमिअ ऐसन[१]
तें मति भुललि मोरि ।
कतए देखल भल मन्द होअ
साधु न फाबए चोरि
साजनि आवे कि बोलब आओ ।
आगे[२] गुनि जे काज न करए
पाछे हो पचताओ ॥
अपनि हानि जे कुलक[३] लाघव
किछु न गुनल तवे ।
मने मनमथ वानहिं लागल[४]
आओव गमाओल हमें ॥

जतने कत न के न बेसाहए
गुँजा के दहु कीन ।
परक वचने कुवें धस देअ
तैसन के मतिहीन ॥
नागर[५] भमर सबे केओ बोलए
मने[६] धनि जानल मोर ।
पढ़े गुनि हमें सबे विसरल
दोस नहि किछु तोर ॥
भन[७] विद्यापति सुन तोवें जुवति
हृदय न कर मन्द ।
राजा रुपनारायन नागर
जनि उगल नव चन्द ।

नेपाल ५, पृ० ३, पं २; न० गु० ४२६, अ० ४१७

शब्दार्थ—कतए—कहीं भी ; फावए—सजता है; पचताओ—पश्चाताप; वेसाहए—विक्रय करता है ; कुवें—कूप; धसदेअ—कूदपड़े; विसरल—भूल गया ।

अनुवाद—तुम्हारी बातें अमृत के समान हैं, इसीसे हमारी मति भूल गयी । अच्छी-बुरी होकर किधर देखती हो ? साधु व्यक्ति को चोरी अच्छी नहीं लगती है । सजनि, अभी और क्या कहें ? जो भविष्य की विवेचना करके काम नहीं करता उसको पीछे पछताना पड़ता है । अपनी हानि की कि उस समय कुल के गौरव की कुछ विवेचना नहीं की । मन में मन्मथ का तीर लग गया, मैं भविष्य भूल गयी । कितना भी यत्न से कोई बेचे, कोई गुंजा भी खरीदता है ? दूसरे की बात से कुआँ में कूद पड़े, ऐसा मतिहीन कौन है ? नागर को सब कोई भ्रमर कहता है, हे धनि, मैं तो मन में यही जानती हूँ ; पढ़-लिख-समझ कर मैं सब कुछ भूल गयी, तुम्हारा कुछ दोष नहीं है । विद्यापति कहते हैं कि युवती, तुम सुनो मन में दुख मत करना । रसिक राजा रूपनारायण (शिवसिंह) मानों नये चन्द्रमा के समान उदित हुए ।

नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) एसन (२) आगु (३) कुलके (४) मन मनमथ वानिहि लागल (५) भमर (६) मनें (७) "दोष नहि किछु तोर" इसके बाद भने विद्यापतीत्यादि है ।

(११४)

मनसिज वाने मोर हरल गेआने।
वोलसह तोहे मोरि दोसरि पराने।
वचनहु चुकलासि आवे की छड़ा॥
समुह निहारसि साहस वड़ा॥
कि तोहि वोलिओं कान्ह कि वोलिबओं तोही।
वेरि वेरि कत परिपंचसि मोही
भाँगिले भासा तोलिले आसा।
अवे ककें करसि तोर्य मुख परगासा।
लाजक अपगमे चीन्हली जाती।
पेम करह अनतए गेलि राती॥
खण्डित जुवति कवि विद्यापति भाने।
पेयसि वचने लजाएल कान्हे
रुपनराएन एहु रस जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने।

—न० गु० तालपत्र ३४२, अ० ३३६

शब्दार्थ—चुकलासि—वचनभङ्ग किया ; छड़ा—छोड़ा हुआ, बाकी; समुह—सम्मुख ; परिपंचसि—प्रपंच करता-ठगता है; भाँगिले भाषा—वचन नही रखा; ककें—क्यों ; अनतए—अन्यत्र ।

अनुवाद—मनसिज के बाण ने हमारा ज्ञान हरण कर लिया, तुमने मुझको (अपना) दूसरा प्राण कहा (बतलाया)। वचनभङ्ग किया, अब (और) क्या बाकी है ? सम्मुख देखते हो, (आँख की ओर प्रेमपूर्वक देखते हुए वचन बोलते हो) कितना साहस है ! तुमको क्या कहूँ, कन्हायी, तुमको क्या कहूँ ? बार बार मुझको कितना ठगते हो। वचन तोड़ कर, आशा चूर कर, अब क्यों मुख की ओर देखते हो ? (तुम्हारी आँखों की) लज्जा दूर हुई (तुम्हारी) जाति (स्वभाव) जान गयी, गत रात्रि को अन्यत्र जाकर प्रेम किया था। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे खण्डिता युवती, प्रेयसी के वचन सुन कर कन्हाई को लज्जा हुई। लखिमा देवी के रमण रुपनारायण राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(११५)

कुंकुम लओलह नख-खत गोइ।
अधरक काजर अएलह धोइ॥
तइओ न छपल कपट-बुधि तोरि।
लोचन अरुन वेकत भेल चोरि॥
चल चल कान्ह वोलह जनु आन।
परतख चाहि अधिक अनुमान॥
जानओं प्रकृति बुझओं गुनसीला।
जस तोर मनोरथ मनसिज-लीला॥
धनसौं जउवन छइलओ जाती,
कामिनी बिनु कइसे गेलि मधुराती॥
वचन नुकावह वकतओ काज।
तोय हँसि हेरह मोय वड़ लाज॥
अपथहु सपथ बुझावह रावे।
कोन परि खेओम सठ अपरावे॥
भनइ विद्यापति पिय अपराव।
उदघट न कर मनोरथ साध
देवसिंह सुत एह रस जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने॥

न० गु० ३३६, अ० ३३४

शब्दार्थ— गोई—छिपा कर; धोई—धोकर; तइओ—तथापि; धनसौं—धन से; छइलओ—रसिक; कोन परि—किस प्रकार; खेओम—क्षमा करूँगी ।

अनुवाद—नखक्षत को छिपाने के लिए तुमने कुंकुम का लेपन किया है; अधर का काजल धोकर आए हो; तथापि तुम्हारा कपट छिपा नहीं रहा; तुम्हारे लाल लोचनों ने चोरी प्रकट कर दी । जावो जावो, कन्हायी, अब कोई दूसरी बात मत बोलो । आँख से देखने से अधिक अनुमान (का महत्व) है (आँखों से तुम्हें पररमणीसङ्ग करते न देखा तो भी अनुमान से सब जान गयी) । तुम्हारी प्रकृति जानती हूँ, गुणशील भी समझती हूँ । कामकेलि में यशलाभ हो यही तुम्हारी मनोगत इच्छा रहती है । रसिक जाति का पुरुष धन से अधिक यौवन चाहता है । वसन्त काल की रात तुमने कामिनी छोड़ कर कैसे काटी ? बात से छिपाना चाहते हो, लेकिन काम से प्रगट हो रहा है । तुम हँसते हो लेकिन मुझे लज्जा हो रही है । अन्यायपूर्ण कार्य्य करके अब शपथ के द्वारा राधा को समझा रहे हो, शठ का अपराध किस प्रकार क्षमा करूँगी । विद्यापति कहते हैं कि कान्त के अपराध का उद्‌घाटन करके मन की साध में बाधा मत डालना । देवसिंह के पुत्र, लखिमा देवी के वल्लभ राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं ।

(११६)

सहस रमनि सौं भरल तोहर हिय
करु तनि परसि न त्यागे ।
सकल गोकुल जनि से पुनमति धनि
कि कहब तन्हिक भागे ॥
पदजावक हृदय भिन अछ
अरु करज खत तोहे ।
जाहि जुवति सँगे रअनि गमौलह
ततहि पलटि बरु जाहे ॥

नयनक काजर अधरें चोराओल
नयन अधरकहु रागे ।
बदलल बसन नुकाओब कतखने
तिला एक कैतव लागे ॥
बड़ अपराध उतर नहि सम्भव
विद्यापति कवि भाने ।
राजा सिवसिंघ रुपनरायन
सकल कलारस जाने ॥

तालपत्र न० गु० २४०, अ० ३३१

शब्दार्थ—सहस—सहस्र; सौं—सहित; तनि—उसका; परसि—स्पर्श; तन्हिर भागे—उसके भाग्य की बात; पदजावक—पाँव की मेंहदी; करज—नख ।

अनुवाद—तुम्हारा हृदय सहस्र रमणियों से पूर्ण है । (किन्तु) उसका (उस रमणी का) संग त्याग नहीं करते हो । गोकुल की समस्त नारियों में वह भाग्यवाली है, उसके भाग्य की बात क्या कहें । पद की मेंहदी का चिन्ह और वक्ष पर नख-रेखा अलग अलग हैं; जिस युवती के संग रात काटी है, वहीं फिर कर चले जावो । नयनों का काजल अधर ने छीन लिया है और अधर की लालिमा नयनों ने । कपड़े बदल गए हैं, कितनी देर छिपावोगे ? छलना एक तिल (थोड़ी देर तक) रहती है । विद्यापति कहते हैं कि महान अपराध में उत्तर सम्भव नहीं । राजा शिवसिंह रूपनारायण सकल कला रस जानते हैं ।

(११७)

सखि हे बुझल कान्ह गोआर।
पितरक टाँड़ काज दहु कओन लह
उपर चकमक सार॥
हम तो कएल मन गेलहि हएत भल
हम छलि सुपुरुख भाने।
तोहर वचन सखि कएल आँखि देखि
अमिय भरम विष पाने॥
पसुक संग हुन जनम गमाओल
से कि बुझथि रतिरंग।
मधु जामिनि मोर आजु विफल गेलि
गोप गमारक संग॥
तोहर वचन कूप धस जोरल
तै हमें गेलिहु अवाटे।
चन्दन भरम सिमर आलिगल
सालि रहल हिय काटे॥
भनइ विद्यापति हरि वहुवल्लभ
कएल वहुत अपमान।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमापति रस जान॥

तालपत्र न० गु० ३६२, अ० ३६०

शब्दार्थ—गोआर—ग्राम्य व्यक्ति, मूर्ख; टाँड़—हाथ का एक प्रकार का गहना; कूप धस जोरल—कूएँ में कूद पड़ी; अवाटे—अपथ में; सिमर—शिमूल; सालि—विद्ध हुई।

अनुवाद—सखि, हमने समझा, कन्हायी मूर्ख है; पीतल का टाँड़ क्या किसी काम से शोभा पाता है? केवल ऊपर चकमक का सार है। मेरे दिल में हुआ था, जाने से लाभ होगा, समझा था वह सुपुरुष है। सखि, तुम्हारी वात से आँख से देखते हुए अमृत के भ्रम में विषपान किया। पशुओं के संग जिसने जन्म कटाया, वह रतिरंग क्या समझेगा? आज मूढ़ गोप के संग हमारी मधुयामिनी निष्फल चली गयी। तुम्हारी वात से मैं कूएँ में कूद पड़ी। उसके लिए अपथ पर गया, चन्दन के भ्रम में शिमूल का आलिंगन किया, हृदय में काँटे गड़ गये। विद्यापति कहते हैं, हरि वहुवल्लभ हैं, अत्यन्त अपमान किया। लखिमापति राजा शिवसिंह रूपनारायण रस जानते हैं।

(११८)

पुनु चलि आवसि पुनु चलि जासि।
बोलओ चाहसि किछु बोलइते लजासि॥
आस दइए हरि कहु किए लेसि।
अधराओ वचने उतरो न देसि॥
सुन दूती तोवे सरुप कह मोंहि।
संग सवों कपट हमर भेल तोहि॥
तन्हिकरि कथा कहसि काँ लागि।
जूड़िहु हृदय पजारसि आगि॥
तन्हिकर कउसल मोरा पअ दोस।
कहलेओ कहिनी वाढ़य रोस॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमान॥

शब्दार्थ—आवसि—आती है; जासि—जाती है; हरिकहु—हरण करके; अधराओ—आधी वात; तन्हिकरि—उसका; जूड़िहु—जुड़ाना, शीतल होना; पजारसि—लगाती है।

अनुवाद—एकवार चलकर फिर आती है और आकर फिर जाती है, कुछ बोलना चाहती है, परन्तु (बोलने में) लज्जा होती है। आशा देकर क्यों (उसे) छीन लेती है। आधी वात (कहने पर भी) भी उत्तर में नहीं बोलती है।

सुन दूति, मैं तुम्हें सत्य कहती हूँ, तुम्हारे ही कारण कपट का मेरा साथ हुआ। उसकी बात किस लिए बोलती है? जो हृदय शीतल हो गया है उसमें आग क्यों सुलगाती है? उसका कौशल और मेरा अपराध (वह चातुरी करेगा और अपराध मेरा माना जाएगा)। वे सब बातें कहने से क्रोध बढ़ता है। विद्यापति कहते हैं यह रस समझ। लखिमा देवी के वल्लभ राजा शिवसिंह हैं।

(११९)

गुरुजन दुरजन परिजन वारि
न गुनल लाघव कुलके गारि।
जीव कुसुम कए पूजल नेह
भरि उमकल अबे तोहर सिनेह।
... . वास
सखि जानव जओं बड़ उपहास।
पुनु जनु आवह हमर समाज
मओं नहि रखवे आंखिक लाज।

मुनिहुक काज पलए परमाद
हम राहुँ जनु से पल अपवाद।
सुन्दरि वचने हलल सिर झालि;
नागर न सह कुगइआ गारि।
जत अनुराग दूर सब गेल,
मोतिक पुतरी विषधर भेल
विद्यापति कह सुन वरनारि
पहु अवलेपिअ दोस विचारि।

राजा रुपनराएन जान
सिरि सिवसिंह लखिमा देवि रमान।

—रामभद्रपुर पोथी, पद १६९

शब्दार्थ—अवलेप—गर्व।

अनुवाद—गुरुजनों; दुर्जनों, और परिवार के सब लोगों को अग्राह्य माना, अपने सम्मान को लाघव अथवा कुल की ग्लानि की कथा की विवेचना न की (किन्तु) अभी थोड़े ही दिनों में तुम्हारा स्नेह मन्द पड़ गया।... ... . सखियाँ जानेंगी तो बड़ा उपहास होगा। अब मेरे सँग मिलने के लिए मत आना, आने पर मैं चक्षुलज्जा नहीं रखूँगी। मुनियों के कार्य्य में भी प्रमाद होता है, मुझे भी अब अधिक कलंक न लगे। सुन्दरी की बात को सिर हिलाकर नागर ने अस्वीकार किया। नागर असभ्यतापूर्ण गाली सहन न करेगा। जितना अनुराग था, सब दूर हुआ, मोती की पुतली मानों विषधर सर्प हो गई। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि; सुन, दोष विचार करके प्रभु को............। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इसे जानते हैं।

(१२०)

हरि विसरल वाहर गेह।
वसुह मिलल सुन्दर देह॥
साने कोने आवे बुझए वोल।
मदने पाओल आपन तोल॥
कि सखि कहव कहेते धाख।
खखन्दे जओ वा कतए राख॥
अपथ पथ परिचय भेल।
जनम आँतर वेड़ा देल॥

गमने कैतवे करसि ओज।
परे ओ परक करए खोज॥
ओछे ओ जाति जोलहा जे ओ।
ओले धरि नहि बुलए से ओ॥
देखल सुनल कहव तोहि।
पुनु कि वोलि पठाउति मोहि॥
सहु हि गमन सरस भान।
इ रस रुपनराएन जान॥

—नेपाल २४१, पृ० ८१ ख, पं ४

शब्दार्थ—बिसरल—विस्मृत हुआ; वसुह—पृथ्वी पर; साने—सङ्केत से; कोने—किस तरह; तोल—तुल्य, अपने उपयुक्त; धाख—दुख; खखन्दे—सङ्केत रुप; जनम आंतर—जन्म अन्तर; ओज—छलना, आपत्ति; ओछेओ—तुच्छ; ओल—सीमा; बुलए—भ्रमण करे।

अनुवाद—हरि सङ्केतस्थान भूल गए, पृथ्वी पर (कहाँ उसका) सुन्दर शरीर मिला। अब किस प्रकार सङ्केत की बात समझी जाएगी? मदन ने उनको अपने समान जोड़ीदार पाया है। सखि, क्या बोलें, बोलने से दुख होता है। सङ्केतरूप में कितना भी न कहा जाए। मेरा धर्मबहिर्भूत (अपथ) पथ से परिचय हुआ; जीवन के अन्तर में काँटा पड़ गया। छलना करके जाने में तो आपत्ति करती हो, लेकिन दूसरा भी तो दूसरे की खोज करता है। तुच्छ जाति का जो जुलाहा है, वह भी शेष सीमातक नहीं जाता। तुमने जो देखा सुना, वही बोलना, अब हमें क्या कह कर भेजोगी! सरस कवि सखी के गमन की बात कहते हैं, रुपनारायण यह रस जानते हैं।

(१२१)

वदन चाँद तोर नयन चकोर मोर
रुप अमिय-रस पीवे[1]।
अधरि मधुर फुल पिया मधुकर तुल
बिनु मधु कत खन जीवे॥
मानिनि मन तोर गढ़ल पसाने[2]।
कके न रभसे हसि किछु न उतर देसि
सुखे जाओ निसि अवसाने॥

पर मुखे न सुनसि निअ मने न गुनीस
न बुझसि लइलरी वानी।
अपन अपन काज कहइत अधिक लाज
अरथित आदर हानी॥
कवि भन विद्यापति अरेरे सुनु जुवति
नहे नूतन भेल माने।
लखिमा देइ पति सिवसिंघ नरपति
रुपनरायन जाने॥

रागत पृ० ६४ न० गु० तालपत्र ३५१, अ० ३५२

अनुवाद—तुम्हारा वदन चन्द्रमा (तुल्य), मेरे नयन चकोर (तुल्य), (तुम्हारा) रुपामृत पान करेंगे। अधर बन्धुली का फूल, प्रिय मधुकर तुल्य हैं, मधु बिना कितनी देर जीता रहेंगे? हे मानिनि, तुम्हारा मन पाषाण से गढ़ा हुआ है। रस-लीला में हँस कर कुछ उत्तर क्यों नहीं देती? (हँस, ऐसा कर कि) सुख से रात कट जाए। दूसरे के मुख से बातें नहीं सुनती, अपने मन में विवेचना नहीं करती। रसिक की बात नहीं समझती। अपने काम में स्वयं अपने ही उपयाचक होकर बोलने में अत्यन्त लज्जा और आदरहानि (होती है)। विद्यापति कहते हैं कि युवति, सुन, मान से प्रेम फिर नवीन हो गया। लखिमापति राजा शिवसिंह रुपनारायण यह जानते हैं।

रागत० के अनुसार पाठान्तर—(१) पावे (२) 'पसाने' इसके बाद रागत० के पाठ में बहुत पार्थक्य है। *यथा*—

अपने रभसे हसि किछुओ उतर देसि सुखे जाओ निसि अवसाने
निअमने न गुनसि परबोल न सुनसि न छैल बिरानी।
अपन अपन कजा कहेतें परम लजा अरथित आदर हानी॥
भनइ विद्यापति सुनु वरयुवति सवे खन न करिओ माने।
राजा सिवसिंघ रुपनरायन लखिमा देवि रमाने॥

(१२२)

मानिनि मान आबहु कर ओड़।
रयनि वहलि हे रहलि अछ थोड़॥
गुनमति भन गुन न धरिअ गोए।
सुपुरुस दाने अधिक फल होए॥
वेरा एक हेरह मन ताप।
पेमलता तोड़ले बड़ पाप॥
लोचन भरम हमरे करु आस।
तुअ मुख पङ्कज करओ विलास॥
भनइ विद्यापति मने गुनि भान।
सिवसिंघ राए रसिक रस जान॥

तालपत्र न० गु० ३६४; अ० ३६१

शब्दार्थ—ओड़—सीमा; वहलि—कट गयी; रहलि अछ—रही; गोय—छिपा कर; तोड़ले—तोड़ने से।

अनुवाद—मनिनि, अब मान का अन्त करो, रात कट गयी, थोड़ी सी है। गुणवती होकर गुण छिपा कर मत रखना, सुपुरुप को दान करने से अधिक फल होता है। एक वार (हमारे) मन का दुख देखो, प्रेमलता तोड़ने से बड़ा पाप होता है। मेरा लोचन भ्रमर तुम्हारे मुखपङ्कज पर विलास करने की आशा करता है। विद्यापति मन में विवेचना करके यह वात कहते हैं कि रसिक राजा शिवसिँह रस जानते हैं।

(१२३)

नव रतिपति नव परिमल नव मलयानिल धार।
नवि नागरि नव नागर विलसए पुन कले सवे सवे पार॥
मानिनि आव कि मान तोहार।
अपन मान पावक भए पइसल लुलए मन भण्डार।
एत दिन मान भलेहुँ तोहेँ राखल पंचवान छल थोल।
अवे अनंग हे सरीरी देखिअ समय पाय की वोल॥
विद्यापति कह के वसन्तसह मुनिहुँक मन ही लोभे
लखिमा देविपति रूपनराएन पट्ऋतु सवे रस संभे।

रामभद्रपुर पोथी—३४

शब्दार्थ—पुन कले—पुण्य करने से; पइसल—प्रवेश किया; लुलए—ज्वाला से।

अनुवाद—नवीन काम, नूतन परिमल, नव नागर, और नूतन मलयानिल। नव नागर नवीना नागरी के साथ विलास कर रहा है। पुण्य करने से सव कोई सव कुछ पा सकता है। मानिनि, अव क्यों मान किये हुई हो? तुम्हारा मान अग्नि का आकार धारण करके तुम्हारे मन के भाण्डार में ज्वाला जगा रहा है। इतने दिनों तक जो मान की रक्षा कर रही थी, उसका कारण है कि काम कम था। इस समय (वसन्त ऋतु पाकर) मानों अनंग को भी अंग हो गया। समय उपस्थित है, फिर शायद न हो। विद्यापति कहते हैं कि वसन्त काल में मुनियों का मन भी हरण हो जाता है। लखिमा देवी के पति रूपनारायण को छवों ऋतुओं का रस शोभा देता है।

(१२४)

तन्हिकरि धसमसि विरहक सोस
तञे दिढ़ कए कैतव पोस।
सोलह सहस गोपी परिहार
तन्हिकाहुँ कुल भेलि सिरनिजार।
मञे कि बोलव सखि बोलइच्छ कान्ह
सब परिहरि नागरि तोहि मान।

समयक वसे नहि सब अनुराग
भलाहुक मन मन्दोअपद जाग।
पिअरी दरसने नागर दुल
धान्हू गुने वन तुलसी फूल।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त।

रामभद्रपुर पोथी, पद ३६

शब्दार्थ—तन्हिकरि—उसका; धसमसि—मानसिक चाञ्चल्य; सोस—शुष्कता।

अनुवाद—उसका (नायक का) मन व्याकुल हो रहा है; विरह में वह शुष्क हो रहा है; इसीलिए तुम दृढ़ होकर छलना किये बैठी हो (वैसा होने से नायक निश्चय ही तुम्हारे पास आवेगा)। उसने सोलह हज़ार गोपियों का परित्याग किया है, उसका मस्तक नत हो गया है। सखि, मैं और क्या कहूँ, कन्हायी ने स्वयं कहा है कि सब कुछ छोड़ कर वह तुम्हीं को मान देते हैं। सकल अनुराग समय नहीं मानता, अच्छे लोगों का भी मन मन्द हो जाता है। प्रिया के दर्शन की अभिलाषा नागर को है। विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह लखिमा देवी के कान्त यह रस जानते हैं।

(१२५)

पुरुष भमरसम कुसुमे कुसुमे रस
पेअसि करए कि पारे।
डर न राखल पहु परतख भेलनहु
ओर धरि भेल विचारे।
भल न कएल तोहें सुमुखि सरुप कोहोंउ
लेपन पिअ अपराधे।
सेहे सआनी नारि पिअगुन परचारि
वेकतओ दोष नुकावे।
निसि निसि कुमुदिनि ससधर पेम जिमि
अधिक अधिक रस पावे।
भनइ विद्यापति अरे रे वर जुवति अवहु करिअ अवधाने।
राजा सिवसिंह रुपनरायन लखिमा देवि रमाने।

रामभद्रपुर पोथी, पद ४०४ (ख)

शब्दार्थ—वेकतओ दोस—दोष व्यक्त होने पर भी।

अनुवाद—पुरुष भ्रमर के समान फूल फूल पर मधु पाता चलता है, प्रेयसी क्या कर सकती है? सामना होने पर भी प्रभु ने कुछ डर भय नहीं रखा, उनका विचार (ज्ञानबुद्धि) सीमा के बाहर चला गया है। सुमुखि, तुमने

अच्छा काम नहीं किया, सत्य जो कुछ भी हो, प्रिय को अपराध देना उचित नहीं है। वही चतुरा नारी है जो पति के व्यक्त दोष को भी छिपा कर गुण का प्रचार करे। (उससे) प्रति रात्रि में चाँद और कुमुदिनी के प्रेम के समान रस पावोगी। विद्यापति कहते हैं, हे वरयुवति, अब भी सावधान होवो। रूपनारायण राजा शिवसिंह लखिमा देवी के रमण हैं।

(१२६)

करहुँ कुसुम कन्दुक दीअ
भरि कामिनि मानिनि मान लीअ।
जमुन तट भए दिअ पसार
राध गेनदे खेलन देखि निभार।
लघु लघु लघु मदन कटार बाट
परिपाटि सिखावए चाटे चाट
निअ बल्लभ परिहरि जुवति धाव
मअे पअेले कारन किछु न भाव।
सब बोलेहिं पुछए कान्ह कान्ह
गाहकि मअे जोहल कि नतमान।
रस बुझि विलस सिवसिंह देव
लखिमादेवि पति-चरण-सेव।

रामभद्रपुर पोथी, पद ४२

शब्दार्थ – रीअ—लेकर; निभार—मनोयोग पूर्वक देखना; जोहल—खोजा।

अनुवाद—हाथ में फूल का कन्दुक लेकर उसके द्वारा मानिनियों का मान दूर कर दिया। यमुना किनारे खेल हुआ; राधा मनोयोगपूर्वक कन्दुकक्रीड़ा देखने लगी। (कृष्ण) हाथ से चटाचट कन्दुक मार कर धीरे धीरे किस प्रकार कामदेव का वाण चलता है सिखलाने लगे। अपने अपने पतियों का त्याग करके युवतियाँ क्यों दौड़ती हैं इसका कारण समझ में नहीं आता है। पूछने से सब केवल कान्ह कान्ह कहती हैं। ऐसा मालूम होता है मानों मान धोकर मानिनियाँ माधव को खोजती हैं। लखिमादेवी के पति शिवसिंहदेव रस समझ कर विलास करते हैं और मैं उनकी चरण-सेवा करता हूँ।

(१२७)

परिजन पुरजन वचनक रीति।
पेम लुबुध मन भेलि परतीति॥
निअ अपराध वोलत की आने।
कुमुदहि भेल कमलके भाने॥
एहि अनुभवि बुझल सरुपे।
नयन अछइत निमजलिहु कूपे॥
जदि तोहे माधव सहज विरागी।
लोचन गीम कएल कथि लागी॥
पुनु जनु बोलह अइसनि भासा।
काहुक कउतुके काहुक निरासा॥
नहि नहि बोलह दरसह कोपे।
जतने जनाए करइछइ गोपे॥
परतख गोपव के पति आउ।
वरु मनमथ सरे जीवन जाउ।
भनइ विद्यापति एहु रस भाने।
पुहविहि अवतरु नव पचँवाने।
रूपनराअन एहु रसमन्ता।
गुननिवास लखिमा देइ कन्ता।

तालपत्र न० गु० ३४३, अ० ३४०

शब्दार्थ—परतीति—विश्वास; गीम—ग्रीवा; गोपे—गोपन; पतिआउ—विश्वास करेगा; पुहविहि—पृथ्वी पर।

अनुवाद—परिजन एवं पुरजनों की बातों की रीति से मेरे प्रेमलुब्ध मन में विश्वास हुआ। अपना अपराध है, दूसरे को क्या कहें? कुमुद में कमल का भ्रम हुआ। अनुभव करके इसे सच कहके समझती हूँ कि आँख रहते कुएँ में निमग्न हुई। माधव, यदि तुम स्वभावतः ही विरागी हो तो मेरी ग्रीवा के प्रति नयन-निक्षेप क्यों किया? फिर ऐसी बात बोलना भी मत। किसी की निराशा और किसी का कौतुक। गा ना कहते हो, क्रोध दिखलाते हो। (पहले) आदर जनाकर अब उसको छिपाते हो। प्रत्यक्ष छिपाने से क्या विश्वास करेगा? मन्मथ के शर से जीवन चला जाए यह अच्छा है। विद्यापति कहते हैं कि इस रस से अनुमान होता है कि पृथ्वी पर नवीन मदन अवतीर्ण हुए हैं। लक्ष्मीदेवी के कान्त गुणनिधान रूपनारायण इस रस के रसिक हैं।

(१२८)

गगन गरज घन[1] जामिनि घोर।
रतनहुँ लागि न संचर चोर॥
एहना तेजि अएलाहुँ निअ गेह।
अपनहु न देखिअ अपनुक देह॥
तिला एक माधव परिहर मान।
तुअ लागि संसय परल परान॥
दुसह जमुना नरि एलिहुँ[2] भाँगि।
कुचयुग तरल तरनि तँ लागि॥
देह अनुमति[3] हे जुझओ पंचवान।
तोंहे सन नगर नागर नहि आन॥
भनइ विद्यापति नारी सोभाव।
अपनुक अभिमत उकुति बुझाव[4]॥
राजा रूपनराएन जान।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमान॥

रागत पृ० १२६; न० गु० ४७७, अ० ४६१

शब्दार्थ—रतनहुँ लागि—रत्न के लिए भी। संचर—चलता है। एहना—ऐसे समय में। नरि—नदी। तरल—पार हुई। तरनी—नाव। जुझओ—युद्ध करें।

अनुवाद—घोर (अन्धकार) यामिनी, आकाश में मेघ गरज रहा है। रत्न के लोभ से भी चोर घर से बाहर नहीं जाएगा। ऐसा समय है कि अपना शरीर अपने को ही नहीं सूझता है। अपना घर छोड़कर आई। माधव, एक मुहूर्त के लिए भी तो मान का त्याग करो, तुम्हारे लिए प्राण संशय में पड़ गए हैं। उसी कारण (विरह के कारण प्राण का संशय होने से) दुसह जमुना नदी को कुचयुग की नौका द्वारा भाग्य से पार कर आयी हूँ। (हे माधव) अनुमति दो, पंचवाण से युद्ध करें। नगर में तुम्हारे समान और नागर नहीं है। विद्यापति कहते हैं कि नारी का यह स्वभाव है कि अपनी अभिलाषा उक्ति द्वारा (स्पष्टरूप से) प्रकट करती है। लखिमा देवी के वल्लभ रूपनारायण राजा शिवसिंह यह जानते हैं।

मन्तव्य—श्रीमद्भागवत के १०वें स्कन्ध के २९वें अध्याय में श्रीकृष्ण ने अभिसारिका गोपियों के प्रति जैसी कपट-उदासीनता दिखलायी थी, यहाँ भी वैसा ही देखा जाता है।

पाठान्तर—न० गु० ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह पद रागतरंगिनी से लिया है, किन्तु (१) 'घन' की जगह पर 'मेघा' (२) 'एलिहुँ' की जगह अइलिहुँ (३) अनुमत के स्थान पर अनुमति तथा (४) 'बुझाव' की जगह पर 'जनाव' लिखा है।

(१२९)

दुरजन वचन न लह[1] सब ठाम।
बुझए[2] न रहए जावे परिनाम॥
ततहि दूर जा जतहि विचार[3]।
दीप देले घर न रह अँधार[4]॥
हमरि विनति सखि कहवि मुरारि[5]।
सपहु रोस कर दोस विचारि॥

से नागरि तोहे गुनक निधान।
अलपहि माने बहुत अभिमान।
कके विसरलहि[6] हे पुरुव परिपाटि।
लाड़लि लतिका की फल काटि॥
भनइ विद्यापति एह रस जान।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमान॥

नेपाल ७५, पृ० २७ घ, पं ३; न० गु० तालपत्र ४६५, अ ५०६

अनुवाद—सब जगह दुर्जनों की बात ठीक नहीं होती है। परिणाम तक (देखने से) समझने में कुछ बाकी नहीं रहता है। जितना विचार करेगा, उतना ही दूर जाएगा। दुर्जन की बात जितनी विचारी जाएगी, उतनी ही मिथ्या मालूम होगी। घर में दीप जलाने से अन्धकार नहीं रह जाता है। सखि, मेरी यही विनती मुरारी से कहना कि सुप्रभु विचार करके रोष करते हैं। (उनसे कहना कि) वह नागरी और तुम गुणनिधान हो, अल्प कारण से बहुत अभिमान (शोभा नहीं देता)। पूर्व की परिपाटी (पहले कैसा प्रेम हुआ था) कैसे भूल गए? लता (प्रेम-लता) का लालन-पालन करने के बाद काटने से क्या फल? विद्यापति कहते हैं कि लखिमादेवी के वल्लभ राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(१३०)

अरे अरे भमरा तोव्हें हित हमरा
वँडसि आनह गजगामिनि रे।
आजु कि रुसलि कालि जञों वँडसवि
तीति होइति मधु जामिनि रे॥
तीति रजनिआँ तिनि जुगे जनिआँ
दीठिहुक ओत देसाँतर रे।
सरोवर सोखे कमल असिलाएल
नगर उजलि भेल पाँतर ते॥

एकसर मनमथ दुइ जिव मारए
अपन अपन भिन वेदन रे।
दुइ मन मेलि कमने बेकताओव
दारुन प्रथम निवेदन रे॥
मानक भंजन जसु गुन रंजन
विद्यापति कवि गाओल रे।
लखिमा देइ पति सिवसिंघ नरपति
पुरुव जनम तये पाओल रे।

तालपत्र न० गु० ३७१, अ० ३६८

नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) हए (२) बुझला (३) 'ततहि दूर जतहेहि विचार' यह पाठ नेपाल की पोथी में है परन्तु किसी ने आधुनिक बंगला अक्षरों में काट कर 'ततहि दूर जा जतहि विचार' बना दिया है। (४) नाइ रह वर अन्धार (५) मधुर वचने सखि कहब मुरारि (६) विसरलि (७) भनिता के स्थान पर केवल भनइ विद्यापतीत्यादी है।

…र्थ—हित—हितैषी; बँउसि—मान तोड़ कर; रुसलि—क्रोध किया; तीति—तिक्त; देसाँतर—देशान्तर।
…का; माह—मे… रे भ्रमर, तू मेरा हितैषी है, गजगामिनी का मान भङ्ग कर उसे ले आता है। आज क्रोध करके
—अर्द्ध। …हो तो (… होने से) मधुयामिनी तिक्त हो जाएगी। नीरस रजनी (त्रियामा) मानों तीन
…ग के स्नवाद—शरद्काल के चन्द्रमा के समान …नी से देशान्तर (सा लगता है), सरोवर के सूख जाने से कमल म्रियमान
… गया, …पिपासा मिट जाएगी। मानिनि, अपने ही … मन्मथ दो प्राणियों का बध करता है—उससे अपनी अपनी वेदना
भेद मिलावे, (इस समय … मिलन प्रकाश करे (मिल सके)। प्रथम निवेदन अत्यन्त
…न है (दोनों के मन में …आधा आधा करके कुचयुगल का …ही झगड़े का घर है)। कवि विद्यापति गाते हैं, जिसे
रजन करने का गुण है, वही मान का भंजन करेगा। …द्यापति कहते हैं, …स्या से लखिमा देवी ने शिवसिँह नरपति
को पतिस्वरूप पाया है। … को आ

(१३१)

वाढ़िक पानि काढ़ि जा जानि।	जातकि केतकि मालति सार।
ठाम रहल गए जे निज मानि॥	रमणी भए जदि करए बिहार॥
अइसनहुँ सुमुखि करह तोहे रोस।	मधु लए के घर मधुपक संग।
पुरुसक की दिअ एतवाहिं दोस॥	थावर गौरव इ बड़ रंग॥
दह दिसँ भमर करओ मधुपान।	पर-अनुराग रागे गेल मोहि।
थिर भए चाहिअ अपन गेयान॥	से मये छड़ले सुमझए तोहि॥

भनइ विद्यापति बुझ रसमन्त।
राए सिवसिंह लखिमादेविकन्त॥

रामभद्रपुर पोथी, पद १६६

शब्दार्थ—वाढ़िक—नदी का; काढ़ि—बाहर करके।

अनुवाद—(नायक ने एक बार अन्य नायिका के प्रति प्रेम दिखलाया था, इससे नायिका रुष्ट हो गयी थी; नायक नायिका को रोष परित्याग करने का अनुरोध करता हुआ कहता है) नदी का जल बाहर हो गया है किस जलाशय का अपना पानी) अपनी जगह रहता है, उसी प्रकार सुमुखि तुम वृथा पुरुष को इतना दोष देती हो और क्रोध करती हो (सहसा किसी नारी से मिलन हो गया था, किन्तु मोह कटते ही फिर तुम्हारे ही पास आ गया); भ्रमर दश दिशाओं में मधुपान करता हुआ फिरता है, तुम स्थिर होकर विचार करो। जातकि केतकि मालति प्रभृति रमणी; वे क्या विहार करती फिरती हैं? मधु लेकर कौन मधुप के साथ दौड़ता है? वे एक ही जगह स्थिर होकर बैठती हैं (स्थावर); (मधुप ही उनके पास आता है) यही उनका गौरव है—यह बात बहुत ही कौतुककरी है। अत्यन्त अनुराग दिखा कर मुझे भुला दिया था। लेकिन तुम तो समझती हो कि मैंने उसे छोड़ दिया है। विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के कान्त रसमन्त राजा शिवसिँह समझते हैं।

(१३२)

चाहइते अधर निअल नहि लिसि	सुपहु सिनेहे न केलि रति भंगलए
धरइते मोललए बाँही।	तोहि सनि पापिनि नाही॥

(१३७)

अधर सुधा मिठी दूधे धवरि डिठि
मधु सम मधुरिम वानी रे।
अति अरथित जे जतने न पाइअ
सवे विहि तोहि देल आनि रे।
जनु रुसह भाविनि भाव जनाइ।
तुअ गुने लुबुधल सुपहु अधिक दिने
पाहुन आएल मधाइ॥

जसु गुन भखइते भामरि भेलि हे
रयनि गमओलह जागि रे।
से निधि विधि अनुरागे मिलन तोहि
कान्हु सम पिया अनुरागि रे॥
भनइ विद्यापति गुनमति राखए
वालभूके अपराध रे।
राजा सिवसिंह रुपनाराएण
लखिमा देइ अराध रे॥

तालपत्र न० गु० ८१६, अ० ८१७

शब्दार्थ—दूधे धवरी डिठि—दूध के समान धवल दृष्टि; अरथित—प्रार्थित; जनु रुसह—क्रोध मत करना; पाहुन—अतिथि; भखइते—शोक करते; वालभूके—वल्लभ का।

अनुवाद—अधरों में मीठी सुधा, दूध के समान धवल दृष्टि, मधुतुल्य मधुर वाणी, यत्न से अत्यन्त प्रार्थना करने पर भी जो पायी नहीं जाती है, विधाता ने तुमको सब कुछ लाकर दे दिया। भाविनि, भाव जानकर मान मत करना। तुम्हारे गुण से लुब्ध होकर बहुत दिनों के बाद सुप्रभु माधव अतिथि होकर आए हैं। जिसका गुण श्रवण करके शोक करते करते शरीर मलिन हो गया, रात जाग जाग कर काटी, वही कन्हायी के समान अनुरागी प्रियरत्न विधि की कृपा से तुम्हें प्राप्त हुआ। विद्यापति कहते हैं कि गुणवती वल्लभ के अपराध की रक्षा (मार्ज्जना) करती है। राजा शिवसिंह रुपनारायण लखिमा देवी के आराध्य हैं।

(१३८)

माघ मास सिरि पंचमी गँजाइलि
नवए मास पंचम हुरुआई।
अति घनपीड़ा दुख बड़ पाओल
वनसपती के वधाइ हे[1]॥
सुभ खन वेरा सुकुल पक्ख हे
दिनकर उदित-समाई।
सोलह[2] सँपुने वत्तिस लखने
जनम लेल रितुराई हे॥

नाचए जुवतिगण हरखित जनमल
वाल मधाई हे।
मधुर महारस मंगल गावए
मानिनि मान उड़ाई हे॥
वह मलयानिल ओत उचित हे
वन घन भओ उजियारा।
माधवि फूल भल गज मुकुता तुल
ते देल वन्दनेवारा॥

पाठान्तर—न० गु० ने रागत० से लिया है, परन्तु पाठ दिया है (१) वनस्पति भेलि धाइ हे (२) सोरह सँपुने

(१३५)

जति जति धमिअ अनल
अधिक विमल हेम ।
रभस कोप कोप कएलहु नागर
अधिक करए पेम ॥
साजनि मने न करिअ रोस ।
आरति जे किछु बोलए बालभू
तँ नहि तन्हिक दोस ॥
कत न तुअ अनाइति दरसि
कत कए नहि दीव ।
ओ नहि अनंग अथिक भुजंग
पवन पीवि जे जीव ॥
सरस कवि विद्यापति गाओल
रस नहि अवसान ।
राजा सिवसिंघ रुपनराएन
लखिमा देवि रमान ॥

नेपाल ११२, पृष्ट ४० ब, पं ४, न० गु० नेपाल ५०३, अ ५१७

शब्दार्थ—जति—जैसे; धमिअ—जलेगी; रभस—आनन्द; आरति—आर्त्ति; अनाइति—अनायत्त; दीव—दिव्य; शपथ ।

अनुवाद—जैसे जैसे अग्नि ज्वलित होएगी, वैसे वैसे सोना अधिक निर्मल होगा। नागर कौतुक करके कोप करके अधिक प्रेम करता है। सजनि, मन में रोष न करना, वल्लभ आर्त्त होकर जो कुछ भी कहे उसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। तुमको जाने कितना अनायत्त (दूसरे के वश नहीं है ऐसा) दिखलाया, कितना दिव्य (शपथ) किया, (तभी भी तुमने मान परित्याग नहीं किया)। (कृष्ण) अनंग नहीं है (अर्थात् उसको तो शरीर है) भुजंग नहीं है कि वायु पान करके जीवन धारण करेगा। (उसको शरीर है, इसलिए वह शरीर का मिलन चाहता है)। सरस कवि विद्यापति गाते हैं, रसका अवसान नहीं हुआ। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के वल्लभ हैं।

(१३६)

मानिनी मान मौन मन साजि
माधव मनसिज मनमथ झाँझि ।
वि......से केलि मेलि रसवाध
तेसरा माथें सवे अपराध ।
दूती भए जनु जनमए नारि
विनु भेले भेंलिहुँ गोआरि
एत एक कोसले .....मन्द
तरणिक उपअ लहत की चन्द ।
पर अनुरोधें वोध दूर जाए
नाथ वराह दुअओ हल वाए।
विद्यापति भन वुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देविकन्त

रामभद्रपुर ५९

अनुवाद—मानिनी मौनव्रत लेकर मानरक्षा करती है, माधव का...रसभंग करती है, किन्तु समस्त अपराध का बोझ तीसरे आदमी पर लादा जाता है। कौन नारी (मानों) दूती होकर न जन्म लेती है? मैं ग्राम्या नारी न होकर भी गाँव में प्रतिपन्न हुई हूँ। इतने कौशल से काम करने पर भी मन्द फल प्राप्त हुआ। सूर्य उदित होने पर क्या चन्द्रमा दृष्टिगोचर होता है? दूसरे के अनुरोध से (काम करने से) बुद्धि का काम नहीं होता। ......विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के कान्त रसमन्त राजा शिवसिंह समझते हैं।

(१३७)

अधर सुधा मिठी दूधे धवरि डिठि
मधु सम मधुरिम वानी रे।
अति अरथित जे जतने न पाइअ
सवे विहि तोहि देल आनि रे।
जनु रुसह भाविनि भाव जनाइ।
तुअ गुने लुबुधल सुपहु अधिक दिने
पाहुन आएल मधाइ ॥

जसु गुन झखइते झामरि भेलि हे
रयनि गमओलह जागि रे।
से निधि विधि अनुरागे मिलन तोहि
कान्हु सम पिया अनुरागि रे॥
भनइ विद्यापति गुनमति राखए
वालभूके अपराध रे।
राजा सिवसिंह रुपनाराएण
लखिमा देइ अराध रे॥

तालपत्र न० गु० ८१६, अ० ८१७

शब्दार्थ—दूधे धवरी डिठि—दूध के समान धवल दृष्टि; अरथित—प्रार्थित; जनु रुसह—क्रोध मत करना; पाहुन—अतिथि; झखइते—शोक करते; वालभूके—वल्लभ का।

अनुवाद—अधरों में मीठी सुधा, दूध के समान धवल दृष्टि, मधुतुल्य मधुर वाणी, यत्न से अत्यन्त प्रार्थना करने पर भी जो पायी नहीं जाती है, विधाता ने तुमको सब कुछ लाकर दे दिया। भाविनि, भाव जानकर मान मत करना। तुम्हारे गुण से लुब्ध होकर वहुत दिनों के बाद सुप्रभु माधव अतिथि होकर आए हैं। जिसका गुण श्रवण करके शोक करते करते शरीर मलिन हो गया, रात जाग जाग कर काटी, वही कन्हायी के समान अनुरागी प्रियरत्न विधि की कृपा से तुम्हें प्राप्त हुआ। विद्यापति कहते हैं कि गुणवती वल्लभ के अपराध की रक्षा (मार्ज्जना) करती है। राजा शिवसिंह रुपनारायण लखिमा देवी के आराध्य हैं।

(१३८)

माघ मास सिरि पंचमी गँजाइलि
नवए मास पंचम हुरुआई।
अति घनपीड़ा दुख वड़ पाओल
वनसपती के वधाइ हे[1] ॥
सुभ खन वेरा सुकुल पक्ख हे
दिनकर उदित-समाई।
सोलह[2] सँपुने वत्तिस लखने
जनम लेल रितुराई हे॥

नाचए जुवतिगण हरखित जनमल
वाल मधाई हे।
मधुर महारस मंगल गावए
मानिनि मान उड़ाई हे॥
वह मलयानिल ओत उचित हे
नव घन भओ उजियारा।
माधवि फूल भल गज मुकुता तुल
ते देल वन्दनेवारा ॥

पाठान्तर—न० गु० ने रागत० से लिया है, परन्तु पाठ दिया है (१) वनस्पति मेलि धाइ हे (२) नोरह सँपुने

पीअरी पाँउरि महुअरि गावए
काहरकार धतूरा ।
नागेसर-कलि संख धूनि पूर
तगर ताल समतूला ॥
मधु लए मधुकरे वालक दएहलु
कमल-पखुरिआ झुलाइ ।
पौअनाल तोरिकरि सुत बाँधल
केसु कएलि वधना ॥

नव नव पल्लव सेज ओछाओल
सिर देल कदम्बक माला ।
वेसलि भमरी हर उदगावए
चक्का चन्द निहारा ॥
कनए केसुआसुति-पए लिखिए हलु
रासि नछए कए लोला ।
कोकिल गनित-गुनित भल जानए
रितु वसन्त नाम थोला ॥

बाल वसन्त तरुण भए धाओल
वेढ़ए सकल संसार ॥
दखिन पवन घन आग उगारए
कुवलए कुसुम-परागे ।
सुललित हार मजरि घन कज्जल
आखितओ अंजन लागे ॥
नव वसन्त रितु अनुसर जौवति
विद्यापति कवि गाया
राजा सिवसिंघ रुपनराएन
सकल कला मनभाया ॥

रागत० पृः ६२ ; न० गु० ६००, अ० ६०६

अनुवाद—माघ मास की श्रीपंचमी के दिन पूर्णगर्भ (प्राप्त होने से) नवें मास के पंचम दिन बहुत रोयी। अत्यन्त यन्त्रणा, बड़ा दुख पाया। वनस्पति धात्री हुई, प्रसवकाल में अत्यन्त दुख और पीड़ा हुई। [नगेन्द्र बाबू ने लिखा है 'इस पद के गजाइलि और रुआइ शब्दों का अर्थ नहीं लग सका।' गजाइलि का अर्थ बेणीपुरी ने 'पूर्णगर्भा हुई' बतलाया है। नवम मास पंचम दिन को प्रसूति ने पूर्ण गर्भ प्राप्त किया। चैत्र वैसाख को वसन्त काल मान लेने से ज्येष्ठ से गिनने पर माघ मास नवम मास होता है। 'पंचमहु रुआइ' के स्थान पर पंचम हरुआइ-पाठान्तर (बेणीपुरी) = पंचम दिन होने पर।]

शुभलग्न वेला, शुक्लपक्ष, सूर्योदय के समय सोलहो अंग से सम्पूर्ण बत्तीसों सुलक्षणों के साथ ऋतुराज ने जन्म लिया। युवतियाँ हर्षित होकर नृत्य करने लगीं, शिशु वसन्त ने जन्म ग्रहण किया। मधुर महारसयुक्त माङ्गलिक गीत गान करने लगा, मानिनी का मान उड़ गया (भंग हो गया)। मलयानिल बहने लगा, शिशु को हवा से ओट में रखना उचित है। (इसी लिए आकाश में) नये मेघ प्रकाशित हुए। माधवी का फूल मुक्ता के समान हुआ। इसी ने मानों चन्दनवार (फाटक) तैयार किया। पीतवर्ण के पाटलि फूल ने 'महुयरी' गान आरम्भ किया, धतूरा सुरवादक हुआ। नागेसर की कली उसके साथ ताल मिला कर शंखध्वनि उत्पन्न करने लगी [महुयरी गीत विशेष को कहते हैं (बेणीपुरी)]

कमलकली से मधु लेकर मधुकर ने शिशु (वसन्त) को दिया, पद्मनाल तोड़ कर (वालक की) कमर में सूत बाँधा एवं किंशुक फूल का बाघनख बनाया। [युवजन हृदय विदारण मनसिज नखरुचि किंशुक जाले।—गीतगोविन्द प्रथम सर्ग) [शिशु के अमङ्गल के निवारणार्थ बाघनख पहनाने की रीति है।] नये नये पल्लवों का सेज विछाया (वालक के लिए), मस्तक पर कदम्ब की माला दी। (उसी से) भ्रमरी बैठ कर लोरी गाने लगी। चक्राकार (पूर्ण) चन्द्र दिखायी पड़ा। [हरउद-शिशु के पालना का गीत—वेणीपुरी] राशि नक्षत्र स्थिर करके कनकवर्ण केशरपत्र पर लिखा। कोकिल गणित शास्त्र अच्छी तरह गिनना जानती है, ऋतु वसन्त नाम रखा। वालक वसन्त तरुण (युवक) होकर दौड़ने लगा, सकल संसार वढ़ने लगा। दक्षिण पवन किसलय और कुसुम-पराग वहन करता हुआ शरीर में मलने लगा, मंजरी का सुललित हार हुआ, घन कज्जल लेकर आँखों में अंजन दिया। विद्यापति कवि गान करते हैं, हे युवति, नव वसन्त का अनुसरण करो। राजा शिव सिंह रूपनारायण के मन में सकल कला शोभा पाती है।

(१३६)

आएल वसन्त सकल रस मण्डल
कुसुम भेल सानन्द।
फुलली मल्ली भूखल भ्रमरा
पीवि गेल मकरन्द ॥
भाविनी आवे कि करह समाधाने।
नहि नहि कए परिजन परवोधह
लखन देखिअ आवे आने ॥

नख पद केसु पयोधर पूजल
परतख भए गेल लोते।
सुमेरु सिखर चढ़ि उगल ससधर
दह दिस भेल उजोते ॥
विनु कारने कुन्तल कैसे आकुल
एहओ जुगति नहि ओछी।
कुमकुमकेर चोरि भलि फाउलि
काँध न भेलिए पोछी ॥

भनइ विद्यापति अरे वर यौवति
एहु परतख पँचवाने।
राजा सिवसिघ रुप नरायन
लखिमा देइ रमाने ॥

नेपाल २५८, पृ० ६४ क, पं १ (भनइ विद्यापतीत्यादि)
न० गु० तालपत्र ६०७, अ० ६१२

पाठान्तर—नेपाल पोथी के पाठ के साथ न० गु० के तालपत्र का पाठ कहीं कहीं नहीं मिलता है।
पद न० १३९—नेपाल पोथी का पाठ सम्पूर्ण नीचे दिया हुआ है :—

आएल वसन्त सकल वन रजक
कुसुमवान सानन्दा।
फुललि मालि भूलल भमरा
पिवि गेल मकरन्दा।
मानिनि आवे कि करिअ अवधाने
नहि नहि कए परिजन परिवोधह

जुगुति देखओं तरि आने
विनु कारने कुन्तल कैसे आकुल
करओं जुगति किछु ओछी
कुम ताकेरि चोरिडलि फाउलि
काँचन अएलाह पोछी ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—मालि, मल्ली—मल्लिका; ओछी—अच्छी; फाउलि—पाया; केसु—नागकेशर का फूल (यहाँ रक्तवर्ण)।

अनुवाद—सकल रस-भूषित वसन्त आ गया। कुसुम आनन्दित हुए। फूली हुई मल्लिका का मधु क्षुधित भ्रमर पान करने लगा। भाविनि, अब क्या समाधान करोगी? ना ना करके परिजनों को प्रबोध देती है, अब दूसरा ही लक्षण देखती हूँ। नखों के रक्तराग के द्वारा पयोधरों की पूजा हुई है, (जो) गुप्त (था वह) प्रकट हो गया। सुमेरु के शिखर पर शशधर का उदय हुआ है, दशों दिशायें उज्ज्वल हो गयीं। विना कारण कुन्तल कैसे आकुल हुआ, यह युक्ति अच्छी नहीं है। कुंकुम की चोरी अच्छा प्रकाश पा गयी है, स्कन्ध से पोछी नहीं गयी। विद्यापति कहते हैं, हे युवतीश्रेष्ठ, लखिमा देवी के कान्त राजा शिवसिंह रूपनारायण प्रत्यक्ष मदन हैं।

(१४०)

अभिनव पल्लव वइसक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल॥
करु मकरन्द मन्दाकिनि पानि।
अरुन असोग दीप दहु आनि॥
माइ हे आज दिवस पुनमन्त।
करिए चुमाओन रांय वसन्त॥
सपुन सुधानिधि दधि भल भेल।
भमि भमि भमिरिह हँकारइ देल॥
केसु कुसुम सिंदूर सम भास।
केतकि-धूल विथुरलहु परवास॥
भनइ विद्यापति कवि कन्ठहार।
रस बुझ सिवसिंघ सिव अवतार॥

तालपत्र न० गु० ६१३; अ० ६१६

शब्दार्थ—वइसक—बैठने के लिए; पुरहर—मांगलिक पात्र, वरण डाली; असोग—अशोक; दहु—दिया; चुमाओन—वरण; सपुन—सम्पूर्ण; केसु—किंशुक; विथुरलहु—विस्तार किया; भास—दीप्ति; परवास—पट्टवस्त्र।

अनुवाद—बैठने के लिए अभिनव पल्लव दिया, धवल कमल मांगलिक पात्र हुआ। मकरन्द मन्दाकिनी (गंगा) का जल हुआ, अरुण अशोक ने दीप लाकर दिया। सखि, आज पुण्यमन्त दिवस है, वसन्तराज का वरण करें। पूर्णचन्द्र अच्छा दही हुआ (दही का तिलक चन्द्रमा के समान लगता है) भ्रमर ने घूम घूम कर (मंगल कार्य में सबों का) आवाहन किया। किंशुक के फूलने सिन्दूर की दीप्ति प्राप्त की, केतकी को धूलि (पराग) ने पट्टवस्त्र विस्तार किया। विद्यापति कवि कण्ठहार कहते हैं, शिव अवतार शिवसिंह रस समझते हैं।

(१४१)

दखिन पवन वह दस दिस रोल।
से जनि वादी भासा बोल॥
मनमथ कोँ साधन नहि आन।
निरसावल से मानिनि मान॥
माइ हे शीत वसन्त विवाद।
कवने विचारब जय-अवसाद॥
दुहु दिश मधथ दिवाकर भेल।
दुजवर कोकिल साखिता देल॥
नवपल्लव जयपत्रस भाति।
मधुकर—माला आखर—पाति॥
वादी तह प्रतिवादी भीत।
सिसिर-विन्दु हो अन्तर शीत॥
कुन्द—कुसुम अनुपम विकसन्त।
सतत जीति वेकताओ वसन्त॥
विद्यापति कवि एहो रस भान।
राजा सिवसिंघ एहो रस जान॥

न० गु० ६१४, अ० ६२०

शब्दार्थ—वादी—मुकद्दमा का दावीदार ; निरसावल—नीरस किया ; कवने—कौन ; मधथ—मध्यस्थ ; दुजवर—द्विजवर ; जयपत्रस—जिस पत्र में जय लिखी जाती है ; तह—से ; जीति—जय ; वेकताओ—व्यक्त करता है।

अनुवाद—दखिन पवन वह रहा है, चारों ओर शब्द हो रहा है। वह (दखिन पवन) मानों (अदालत में) वादी की भाषा कह रहा है। मन्मथ को अन्य साधन नहीं हैं, उसने मानिनी का मान निःशेष किया (मदन के उत्पात से मानिनी का मान सहसा दूरीभूत हो गया)। सखि, शीत-वसन्त का विवाद है, जय पराजय का विचार कौन करेगा ? दिवाकर दोनों पक्षों का मध्यस्थ हुआ, द्विजवर कोकिल ने साखी दी। नवपल्लव जयपत्र के समान हुआ, मधुकरमाला अक्षरपंक्ति हुई। वादी (वसन्त) से प्रतिवादी (शीत) डरा हुआ है, शिशिरविन्दुमात्र में परिणत (अतिक्षुद्र) होकर अन्तर्हित (अन्तर) हुआ। अनुपम कुन्दकुसुम विकसित होकर सतत वसन्त की जय व्यक्त कर रहा है। विद्यापति कवि यह रस कहते हैं, राजा शिवसिँह यह रस जानते हैं।

(१४२)

सुरभि समय भल चल मलआनिल
साहर सउरभ सार लो।
काहुक वीपद काहुक सम्पद
नाना गति संसार लो॥

कोइली पंचम रागे रमन गुन सुमरओ
कुसले आओत मोर नाह लो।
आज धरिये हमे आसहि अछलिहु
सुमरि न छाड़ल ठाम लो।

भमर देखि भवेँ भावे पराएल
गहए सरासन काम लो।
भनइ विद्यापति रुपनराएन
सिरि सिवसिंघ देव नाम लो॥

तालपत्र न० गु० ८०२, अ० ८०३

शब्दार्थ—साहर—सहकार ; कोइली—कोकिल; सुमराओ—स्मरण कराती है ; नाह—नाथ ; परायल—भागी ; गहए—ग्रहण किया।

अनुवाद—उत्तम सुरभि के समय मलयानिल वह रहा है, सहकार का सार सौरभ है। किसी को विपद्, किसी को सम्पद्, सँसार की नाना गति है। कोकिल पंचम राग से वल्लभ का गुण स्मरण करा रही है, हमारे नाथ कुशल से आवेंगे। आज तक मैं आशा से ही थी, स्मरण करके ही स्थान (गृह) न छोड़ा। भ्रमर देख कर उर से भागी (भ्रमर वसन्त का दूत, मदन का उद्दीपक है) काम ने शरासन ग्रहण किया। विद्यापति कहते हैं, रुपनारायण का नाम श्री शिवसिँह देव है

(१४३)

कोकिल गावए मधुरिम वाणि
ऋतु वसन्त हे अमिअ रस सानि।
असमय पसि आलाना पाये
चेओ चेओ करिअ काहुन सोहाये।
साजनि अवेकत देह असवास
कान्हे जाएब मोहि पास।
गुरु सुमेरु तह सुपुरुप बोल
कुलक धरम छड़लें की भोर।
करमक दोसे विघटि गेलि साटि
अगिला जनम बुझवि परिपाटि।
विद्यापति भन न कर विराम
अवसर जानि धरतओ काम।
रुपनराएन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंघ लखिमा देवि कन्त।

रामभद्रपुर पोथी, पद १८८

शब्दार्थ—भोर—विह्वल ; विघटि—विपरीत ; साटि—शास्ति।

अनुवाद—अमियरस में डुबा कर वसन्त ऋतु में कोकिल मधुरगान कर रही है। असमय में यदि पिंजरे में (पक्षी) चेओं चेओं करे तो वह शोभा नहीं पाता है। सखि, मेरे वस्त्रादि संयत कर दो, मुझे कन्हायी के निकट जाना होगा। सुपुरुष की वाणी सुमेरु पर्वत के समान गुरु होती है, उसी से विह्वल होकर मैंने कुलधर्म छोड़ा। मेरे कर्मफल से विपरीत हुआ, मैंने शास्ति पायी। अगले जन्म में परिपाटी समझूँगी। विद्यापति कहते हैं, विरत मत होवो, सुयोग देखकर काम प्रमाद विस्तार करेगा। लखिमा देवी के कान्त रसमन्त रूपनारायण राजा शिवसिंह यह रस समझते हैं।

(१४४)

तोहराँ लागि धनि खिनी भेलि तोहे वड़ बोल छड़ कान्ह।
रुपलोभे भेल, देह दूर गेल, से थिर छाड़ल भाव।
माधव, सुन्दरि समन्द ए रोए
जदि तोहें चंचल सुनह सकन भए अपना धन्ध न खोए।
आस दइअ परपेअसि आनलि कुलसवों कुलमति नारि॥
से ततवाहि गेलि, डाइन सकल भेल, दुहु हल हृदय विचारि,
दूती वोलइते कान्ह लजाएल विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रुपनराएन लखिमा देवि रमाने।

रामभद्रपुर पोथी, पद ३१

शब्दार्थ—समन्द ए—सम्वाद भेजा ; सकन—सावधान ; डाइन—निन्दाकारिणी।

अनुवाद—हे कन्हायी, तुम्हारे प्रेम में धनी क्षीण हो गयी है, किन्तु तुम अनेक छलनापूर्ण बातें कर रहे हो। तुम्हारे रूप में उसके लोभ का जन्म हुआ, शरीर की सुधि वह भूल गयी, (चित्त की) स्थिरता खो गयी।

माधव, सुन्दरी ने रोकर सम्वाद भिजवाया है। यद्यपि तुम चंचल हो, तथापि सावधान हो कर सुनो, हमें (ठीक) कहने में कुछ भय नहीं है। मैं आशा देकर कुल के साथ कुलवती परस्त्री लायी थी। उसके बाहर आते ही सब स्त्रियों ने उसकी निन्दा शुरु की, यह बात मन में विचार करके देखो। दूती की बात से कन्हायी को लज्जा हुई। कवि विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के रमण हैं।

(१४५)

..........हिनि बाला
कत सहवि कुसुम सरधारा।
नयन निरन्तर नोरे
वामा करतल मिलल कपोले ॥
अवधि समय लेखि लेखी
रुप रहल अछु तनु अवसेखी ॥

दखिन पवन वह संका
हृदहुँ हार भुअंग ससंका ॥
कवि विद्यापति कह आधी
जुवति अन्त भेल विरह वेआधी ॥
रुपनराएन जाने
राए सिवसिँघ लखिमा देवि रमाने ॥

रामभद्र पोथी, पद २०४

अनुवाद—विरहिणी बाला और कितना कुसुमशर का प्रहार सहन करेगी? उसके नयनों से अविरल जलधारा बहती है, गाल पर हाथ दिए वह सर्वदा बैठी रहती है। नाथ आने की जो अवधि दे गए थे उसको गिन कर लिखते लिखते वह अत्यन्त क्षीण हो गयी है। मलय पवन उसको दग्ध करता है, हृदय का हार भी सर्प के समान लगता है। विद्यापति कहते हैं कि विरह-व्याधि ही युवती का काल हुई। लखिमा देवी के रमण रूपनारायण राजा शिवसिँह जानते हैं।

(१४६)

चिन्तावेँ आसा कवललि मोरि।
कानकटु भेलि कहिनी तोरि ॥
मनओ फेदाएल अइसना काज।
पावनि दीप मिझायल आज ॥
साजनि कह कत कहिनी धन्ध।
वालाबान्ध छुटल अनुबन्ध ॥

तवेँ जनितसि आओ दोसर कान्ह।
तेसर जनइत हमर परान ॥
जत अनुराग राग कें गेल।
मही गोप वधभाजन भेल ॥
विद्यापति मन बुझ रसमन्त।
राए शिवसिँघ लखिमादेविकन्त ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३६

शब्दार्थ—कवललि—कवलित हुई; फेदाएल—निवृत हुआ; मिझाएल—बुझा।

अनुवाद—चिन्ता करते करते ही मेरी आशा नष्ट हो गयी। तुम्हारी बात अब मुझे अच्छी नहीं लगती (कर्णकटु लगती है)। इसी प्रकार के काम से मन को भी निवृत्त किया है; आज पवित्र (आशारूप) दीप को बुझाया। सखि, और कितनी वृथा आशा देती हो, उस बन्धु का प्रेम टूट गया है। तुम जानती हो, और दूसरे कन्हायी जानते हैं और तीसरे मेरे प्राण जानते हैं। इस गोप ने जितना प्रेम दिखाया, उसके फल से वह मेरे वध का कारण हुआ। विद्यापति के दिल की बात लखिमा देवी के कान्त रसमन्त राजा शिवसिँह समझते हैं।

(१४७)

अपनेहि पेम[1] तरुअर वाढ़ल
कारन किछु नहि भेला।
साखा पल्लव कुसुमे वेआपल
सौरभ दह दिस गेला[2]॥
सखि हे दुरजन दुरनय पाए।
मर जञो मूड़हि सञो भाँगल
अपदहि गेल सुखाए॥

कुलक धरम पहिलहि अलि आओल[3]
कओने देव पलटाए।
चोर जननि जञो मने मने झाखिञोँ
रोञोँ[4] वदन झपाञ॥
अइसना देह गेह न सोहावए
वाहर वम जनि आगि।
विद्यापति कह[5] अपनहि आउति[6]
सिरि सिवसिंघ लागि[7]॥

—नेपाल १०६, पृष्ठ ३६ ख, पं० १, रामभद्रपुर १६८, न० गु० ४३६, अ० ४३४

शब्दार्थ—तरुअर—तरुवर; वेआपल—व्याप्त हुआ; दुरनए—दुष्टनीति; मूर—मूल; जञो—जैसे; अपदहि—अस्थान पर; कओने—कौन; पलटाए—फिरा कर; झाखिञे—शोक करती है; सोहावए—शोभा पाना; वम-उदगीरण; आगि—अग्नि; आउति—आयगा।

अनुवाद—प्रेम तरुवर स्वयं (अथवा पहले) बढ़ा, कुछ कारण नहीं था (अकारण); शाखा पल्लव कुसुम में व्याप्त हुए, सौरभ दशों दिशाओं में गया। हे सखि, दुर्जन की दुर्नीति पाकर (उसी कारण से) मानों मूल शीर्ष सहित टूट गया, अस्थान पर (गिर कर) सूख गया। कुल के धर्म पर पहले ही भौंरा आया (भ्रमर मधुपान कर गया) क्या उसको लौटा दोगी? चोर की माँ के समान मन ही मन शोक करती हूँ, मुख ढाक कर रुदन करती हूँ। शरीर का यह हाल है, घर अच्छा नहीं लगता, वाहर मानो अग्नि वरस रही है। विद्यापति कहते हैं कि श्रीशिवसिँह के लिए (अनुरोध से नायक) स्वयं आवेगा।

(१४८)

एक दिन छल पिया तोह हम जेहे हिया
सीतल सील कलापे।
तोहे न कान धरु विनति दूर करु
दुरजन दुरित अलापे॥

मोहि पति भल भेल ओतहि ओहओ गेल
कि फल विकल कए देहे।
करिअ जतन पए जञो पुनु जोलि-हो
टूटल सरल सिनेहे॥

रामभद्रपुर पोथी का पाटान्तर - (१) पहिलहि पेमक (२) सौरभे दिस भरि गेला (३) सनिआओल (४) [illegible] (५) नम (६) [illegible] (७) सिरि सिवसिंघ रस लागि।

सुनु कान्हु हे जतने रतन दहु परिहर के ॥
दिन दस जौवन तेहि अनाएत
मन तहु पुछु परकारे।
तुअ परसाद विखाद नयन जल
काजरे मोर उपकारे ॥
तेँ तञो करवि मसि मअन पास वैसि
लिखि लिखि देखवासि तोही।
तार हार घनसार सार रे सेओलव
सन्ताओत मोही ॥

कामिनि केलि भान थिक माधव
आओ कुमुदिनि सञो चाँदे।
दुरहु दुरहु तोँहे पहु तञो बुझह दहु
दरसने कत आनन्दे ॥
भनइ विद्यापति अरे वर यौवति
मेदिनि मदन समाने।
लखिमा देविपति रूपनरायण
सुखमा देइ रमाने ॥

न० गु० तालपत्र ४६७, अ० ४६२

शब्दार्थ—हिआ—हृदय; सीलकलापे—शील समूह में; दूरित—पाप; पति—प्रति; ओतहि—छिपे हुए; ओहओ—वह भी; जोलि—जोड़े; दहु—क्या; परिहर—त्याग; अनाएत—अनायत्त; परसाद—प्रसाद; विखाद—विषाद; मअन—मदन; देखवासि—दिखाएगा; घनसार—चन्दन; सन्ताओत—सन्तापित करता है।

अनुवाद—प्रियतम, इतने दिनों तक शीतल सत्स्वभाव से तुम्हारा हमारा (एक) हृदय था, दुर्जन की अनिष्ट कारिणी बातों से (हमारी) विनती दूर की, कान नहीं दिया। हमारे पक्ष में अच्छा हुआ, वह भी छिप गया (हमारा सम्मान गया) शरीर विकल करने से क्या फल? जो सरस प्रेम टूट गया है, क्या वह फिर यत्न करने से जोड़ा जा सकता है? हे कन्हायी, सुनो, यत्न से प्राप्त किया हुआ रत्न क्या कोई त्याग करता है? यौवन दस दिनों का है वह भी परवश। मन से पूछो, इसका क्या उपाय करेगा? तुम्हारा प्रसादरूप विषाद (जनित) नयन जल (मिश्रित) कज्जल ही मेरा सार (उपकार) हुआ। उसीसे (मेरे नयनजल से सिक्त कज्जल से) तुम स्याही बनाना, मदन के निकट बैठकर लिख लिख कर दिखलाना। ताड़, हार, और चन्दनलेप धारण किया, किन्तु मुझे सन्तप्त कर रहा है (कुछ अच्छा नहीं लगता)।

माधव, कामिनी की केलि और कुमुदिनी के साथ चाँद का सम्बन्ध एक समान मालूम होता है। तुम, प्रभु, दूर दूर रहते हो तथापि क्या समझते हो कि दर्शन में क्या आनन्द है? विद्यापति कहते हैं, हे वरयुवति, लखिमा देवी के पति सुषमा देवी के वल्लभ रूपनारायण पृथ्वी पर मदन के समान हैं।

(१४६)

माधव, वचन करिये प्रतिपाले।
बड़ जन जानि सरन अवलम्बलि
सागर होएत सताले ॥
भुवन भमिए भमि तुअ जस पाओलि
चौदिसि तोहर बड़ाइ।
चित अनुमानि बुझि गुन गौरव
महिमा कहलो न जाइ ॥

आगा सभ केओ शील निवेदय
फल जानिये परिनामे।
बड़ाक वचन कवहु नहि विचलय
निसिपति हरिन उपामे ॥
भनइ विद्यापति सुन वर यौवति
एह गुन कोउ न आने।
राए सिवसिंघ रूपनारायन
लखिमा देइ प्रति भाने ॥

ग्रियर्सन ४१; न० गु० ४७२, अ० ४८७

शब्दार्थ—प्रांतपाले—प्रतिपालन; सताल—गम्भीर; ग्रियर्सन और न० गु० के मत से हृद, किन्तु उससे अर्थ होता है 'तुमको हृदपूर्ण सागरतुल्य शरण समझ कर आश्रय लिया था'। बड़ाइ—महत्त्व; आगा—आगे; सभकेओ—सब कोई; निवेदय—जनाता है; बड़ाक—बड़े लोगों का।

अनुवाद—माधव, (अंगीकृत) वचन पालन करना। तुमको बड़ा समझ कर तुम्हारी शरण का अवलम्बन लिया था। सागर गम्भीर ही होता है (अर्थात् जो बड़े हैं उनकी प्रकृति कभी भी चंचल अथवा लघु नहीं होती)। भुवन में घूम घूम कर तुम्हारा यश, चारो ओर तुम्हारा महत्त्व (सुना) पाया; (तुम्हारा) गुणगौरव चित्त में अनुमान करके समझती हूँ (किन्तु) महिमा कही नहीं जाती। पहले सब कोई विनय जानते हैं, परिणाम से फल जाना जाता है; बड़े लोगों का वचन कभी खाली नहीं जाता है। उपमा के लिए चाँद और हरिण। चन्द्रमा जिस प्रकार कलंक का कदापि भी त्याग नहीं करता, महान व्यक्ति भी उसी प्रकार दिए हुए वचन का कभी भी त्याग नहीं करता। विद्यापति कहते हैं, हे वरयुवति सुन; यह गुण और किसी में नहीं है लखिमा देवी के प्रति राजा शिवसिंह रुपनारायण कहते हैं।

(१५०)

रोपलह पहु लहु लतिका आनि।
परतह जतने पटवितह पानि॥
तँइ अरथित उपचित भेलि से।
तोहें बिसरलि भल बोलत के॥
माधव बुझल तोहर अनुरोध।
हेरितहु कएलह नयन निरोध॥
एकहु भवन वसि दरसन बाध।
किछु न बुझिअ पहु की अपराध॥
सुपुरुस वचन सबहुँ विधि पूर।
अमरखे विमरख न करिअ दूर॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान।
राए बुझ सिवसिँघ लखिमा देइ रमान॥

रागत पृ० ८१, न० गु० ४७५, अ० ४८६

शब्दार्थ—रोपलह—रोपण किया; लहु—लघु, छोटा, परतह—प्रत्यह; पटवितह—पटाना अथवा सींचना; अरथित—अर्पित, तुम्हारे लिए; उपचित—वर्द्धित।

अनुवाद—प्रभु छोटी लतिका लाकर रोपण किया, प्रत्यह यत्नपूर्वक (उसे) जल से सींचा। उसी लिए (तुम्हारे मन में) वह (प्रेमलतिका) बढ़ी; तुमसे विस्मृत होने पर (यदि तुम उसे भूल जावो तब) कौन (उसे) अच्छा कहेगा? माधव, तुम्हारा अनुराग समझ गयी, (मुझे) देखते ही नयन निरोध कर लिया (फिरा लिया)। एक ही घर में रहकर दर्शन का निषेध है (अर्थात् देख नहीं पाती), हे प्रभु, क्या अपराध है, यह नहीं समझ सकती। सुपुरुष की बात सब विधि पूर्ण होती है ('क्रूर' न होकर 'पूर' होने से अर्थ अधिक संगत होता है) अमर्ष (क्रोध) विमर्ष को दूर नहीं करता (यदि तुम्हें मेरा दुःख होने का कारण है तो क्रोध क्यों करते हो? क्या क्रोध करने से दुःख का कारण दूर हो जायगा?)। विद्यापति कहते हैं कि वे यह रस भी जानते हैं; लखिमा देवी के रमण राय शिवसिंह समझते हैं।

(१५१)

की हमे साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक ससी।
इथि दुहु माझ कओन मोर आनन
जे पहु हेरसि न हँसी॥
साय साय कहह कहह कन्हु कपट करह जनु
कि मोरा भेल अपराधे॥
न मोयँ कवहु तुअ अनुगति चुकलिहु
वचन न बोलल मन्दा।
सामि समाज पेमे अनुरञ्जिय
कुसुदिनि सन्निधि चन्दा।
भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति
मेदिनि मदन समाने।
राजा शिवसिँह रुपनरायन
लखिमा देवि रमाने॥

तालपत्र न० गु० ५००, अ ५१४

शब्दार्थ—एकसरि—एकेश्वरी; भादव—भाद्र; चौठिक—चतुर्थी का; साय—सइ, सखि; चुकलिहु—भूली समाज—निकट।

अनुवाद—मैं क्या संध्या का एकेश्वर तारा हूँ अथवा भादो की चतुर्थी का चाँद ? इन दोनों में मेरा मुख किसके समान है कि प्रभु एकवार भी हँस कर (मेरे मुख की ओर) नही देखते। [संध्या का एक तारा और भादो की चतुर्थी का चाँद देखे नहीं जाते] सखि, सखि, कृष्ण को कहो, कहो, वे कपट न करें, मुझसे क्या अपराध हुआ ? (कहना) मैं कभी भी उनकी अनुगति नही भूली (कभी भी) मन्द नहीं बोली। स्वामी के संग प्रेम को अनुरंजित किया (वढ़ाया), (जिस प्रकार) चन्द्रमा के साथ कुमुदिनी (करती है)। विद्यापति कहते हैं, हे वरयुवति सुन, लखिमा देवी के वल्लभ राजा शिवसिँह रुपनारायण मेदिनी पर मदन के समान हैं।

(१५२)

से भल जे वरु वसए विदेसे।
पुछिअ पथुक जन ताक उदेसे॥
पिया निकटहि बस पुछिओ न पुछइ।
एहन विरह दुख के दहु सहइ॥
धनि धैरज कर पिया तोर रसिया।
अवसउ दिव एक देत विहुसिया॥
मधुरि ओ वचन सून नहि काने।
आव अवसेओ हमें तेजब पराने॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु० २०२, अ० २१६

शब्दार्थ—वरु—कहीं; पथुक—पथिक; उदेसे—हाल; के दहु—कौन; अवसउ—अवश्य; विहुसिया—मुस्करा कर।

अनुवाद—(नायिका की उक्ति) जो विदेश में रहता है वह कहीं अच्छा है, पथिकों से भी उसका हाल पूछा जा सकता है। प्रियतम के निकट वस कर भी पूछे नहीं (कोई सम्वाद नहीं ले), इस प्रकार का विरह दुख कौन सहन कर सकता है ? (सखि का उत्तर) धनि, धैर्य धर, तेरा प्रियतम रसिक है, अवश्य एक दिन हँस कर (तुमसे आनन्द) देगा। (राधा की उक्ति) मधुर (अरवास) वाणी भी कान से नहीं सुनी, अब मैं निश्चय ही प्राण त्याग करूँगी। विद्यापति कहते हैं, लखिमा देवी के वल्लभ राजा शिवसिँह यह रस समझते हैं।

(१५३)

धन जउवन रस रंगे।
दिन दस देखिअ तलित तरंगे॥
सुघटेओ विहि विघटावे।
बांक विधाता की न करावे॥
माधव हे तुअ भलि नहि रीती।
हठे न करिअ दुर पुरुव पिरीती॥
सचकित हेरए आसा
सुमरि समागम सुपहुक पासा॥

नयन तेजए जलधारा।
न चेतए चीर न परिहए हारा॥
लख जोजन बस चन्दा।
तइअओ कुमुदिनि करए अनन्दा॥
जकरा जा सओं रीती।
दूरहुक दुर गेले दो गुन पिरीती॥
विद्यापति कवि गाहे।
बोलल बोल सुपहु निरवाहे॥

रुपनराअन जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु० ४०७, अ० ४२१

शब्दार्थ—तलित तरंगे—तड़ित् स्रोत के; सुघटेओ—सुसंयोग; विघटावे—कुघटित करता है, नष्ट करता है; आसा—आशा; सुमरि—स्मरण करके; चेतए—सावधान करती है; परिहए—पहरती है।

अनुवाद—धनयौवन रस रंग दस दिनों तक तड़ित् स्रोत के समान (शोभाशाली और क्षणस्थायी) रहते हैं। सुसंयोग को भी विधाता नष्ट कर देता है विधाता वाम होकर क्या नहीं करता है? माधव, तुम्हारी यह रीति अच्छी नहीं है, हठ करके पूर्व की प्रीति दूर मत करना (भुलाना मत)। सुप्रभु के पास (सहित) समागम स्मरण करके सचकित हो आशा (पथ) देख रही है। नयनों से जलधारा बहती है, वस्त्र धारण करने में सावधानता नहीं रखती, हार पहनती नहीं। लख योजन (दूर) चन्द्रमा वास करता है, तथापि कुमुदिनी आनन्द (प्रकाश) करती है जिसके संग जिसकी रीति है, दूर होने पर भी, दूर जाने पर भी दुगुनी प्रीति (होती है)। विद्यापति कवि गाते हैं, दिए हुए वचन का प्रभु पालन करते हैं। लखिमादेवी के वल्लभ राजा शिवसिंह रुपनारायण (रस) समझते हैं।

(१५४)

जसु मुख सेंगक पुनिमक चन्दा।
नयनक नेओछन नव अरविन्दा॥
अधर निमाल मधुरि फुल थाका।
तोहि करें पाडलि अमिअ सलाका॥
आइलि कलावति तुअ रति साधे।
तोहे परिहरलि कओन अपराधे॥
भमहुक चानुचर मनमथ चापे।
दिन दिन परिपन्थि अलापे॥

जा सयँ विहुसि दरस अनुरागे
अनल झाँपते कएल पआगे॥
अनुभवि भंगुर भाव तोहारे।
संसअ न तेजए हृदय हमारे॥
की से अनागति कि तोहेँ अकामी
सहज तोहर वा परजन्तगामी॥
भनइ विद्यापति न बोल सन्देहा।
सुपुरुष वचन पसानक रेहा॥

नृप सिवसिंघ देव पहु रस जाने।
सोभागे आगरि लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु० ४१३, अ० ४२७

शब्दार्थ—नेओछन—पोंछनी; निमाल—निर्माल्य; मधुरीफूल—बान्धुली का फूल; थाका—स्तवक; ककें—क्यों; परिपन्थि—शत्रु; पआगे—प्रयाग; अनागरि—अरसिका; परजन्तगामी—पर्यन्तगामी, अवसानशील।

अनुवाद—पूर्णिमा का चन्द्रमा जिसके मुखमण्डल की सेवा करता है (भृत्यरूप में), नव अरविन्द जिसके नयन की पोंछनीमात्र है (अर्थात् अरविन्द केवल इसी योग्य है कि उससे आंखों की मैल-कीचड़ पोंछ कर उसे फेंक दिया जाए), अधरों की तुलना में बान्धुली के फूल का स्तवक निर्माल्य है (पूजा के बाद जिस फूल का परित्याग कर दिया जाता है), तुमने कहाँ अमृत की शलाका (बत्ती) पायी (जिसके लिए इतनी रूपवती राधा की उपेक्षा की)? कलावती तुम्हारी रति की आशा में आई, तुमने किस अपराध से (उसका) परिहार किया? मदन का धनुष जिसके भ्रूयुगल का अनुचर है, कोकिल का पंचम गान जिसके मधुर कण्ठस्वर का प्रतिद्वन्द्वी है, जिसके दर्शनानुराग को तुमने प्रयागतीर्थ समझ कर अनल-झम्प किया (अर्थात् आग में कूदने के समान आवेग से डूब गयी।) [प्रयाग अथवा त्रिवेणी संगम भ्रूभंगी, कलकंठ और मनोहर रूप]। तुम्हारा भंगुर भाव अनुभव करके मेरे हृदय से संशय दूर नहीं होता। क्या वह अरसिका है, अथवा तुम्हीं कामनालेशशून्य हो अथवा तुम्हारा स्वभाव अवसानशील है (अधिक दिनों तक तुम्हारे मन में एक भाव नहीं रहता)? विद्यापति कहते हैं, सन्देह की बात मत बोलना, सुपुरुष का वचन पाषाण की रेखा होती है। सौभाग्य में अग्रगण्य लखिमादेवी के वल्लभ नृप शिवसिँह देव यह रस जानते हैं।

(१५५)

वचन रचन दए आनलि राही।
अवसर जानि विसरलहु ताही॥
तोंहे बड़ नागर ओ बड़ि भोरी।
अमिय पियओलहु विस सौं घोरी॥
चल चल माधव भल तुअ काजे।
जत बोललह तत सकल वेआजे॥
सुपुरुख जानि कएल विसवासे।
के पतिआएत फुलल अकासे॥
पुरुख निठुर हिय परिचय भेल।
पर धन लागि निजओ दुर गेल॥
निअ मने न गुनल न पुछल केओ।
अपना चरन अपने देल छेओ॥

भनइ विद्यापति एह रस जान।
राए शिवसिंह लखिमा देइ रमान॥

तालपत्र न० गु० ४१७, अ० ४३१

शब्दार्थ—रचन दए—रचना करके; विसरलहु—भूल गया; भोरी मुग्धा; सौ—सहित; घोरी—मिलाकर; वेआजे—छलना से; विसवासे—विश्वास; पतिआएत—प्रत्यय करना, विश्वास करना; फुलल अकासे—आकाश कुसुम को; छेओ—छेद, घाव।

अनुवाद—वचनों की रचना करके (अनेक प्रकार की बातें करके) राधा को लिवा लाई, सुयोग समझ कर उसको भूल गए? तुम बड़े नागर और वह बड़ी मुग्धा है, विष घोलकर अमृत पान करवाते हो? जावो, जावो, माधव, तुम्हारा काम बड़ा अच्छा है, जो कुछ भी बोलते हो सब छलनामय। सुपुरुष जान कर (राधा ने) विश्वास किया, आकाश-कुसुम का कौन विश्वास करता है? पुरुष के निष्ठुर हृदय का परिचय हुआ, दूसरे के धन के लिए अपना भी

(धन) दूर गया। अपने मन में विवेचना नहीं की, किसी से पूछा भी नहीं, अपने पैर में अपने ही घाव दिया। विद्यापति कहते हैं, लखिमादेवी के वल्लभ राजा शिवसिँह यह रस जानते हैं।

(१५६)

सखि हे वालंभ जितव विदेसे।
हम कुलकामिनि कहइत अनुचित
तोहवू दे हुन्हि उपदेसे॥

इन विदेसक वेलि।
दुरजन हमर दुख न अनुमापव
ते तोँहे पिया गेल एलि॥
किछुदिन करथु निवासे।
हमें पूजल जे से-हे पए भुंजव
राखथु पर उपहासे॥
होय तोहे किए वधभागी।
जहि खन हुन्हि मने माधव चिन्तव
हमहु मरब धसि आगी॥
विद्यापति कवि भाने
राजा सिवसिंघ रुपनराएन
लखिमा देइ रमाने॥

रागत पृ० ११८, न० गु० ६१७ अ० ६३२

शब्दार्थ—वालंभ—वल्लभ; जितव—जीतेंगे; जाएँगे। देहुन्हि—दो; वेलि—समय; अनुमापव—समझेंगे; गेलएलि—भिजवाया; पए—अव्यय; राखथु—रखें; होयतोहे—होगा; हुन्हि—उनको; धसि—कूद पड़ना; आग में।

अनुवाद—हे सखि, वल्लभ विदेश जाएँगे, मैं कुलकामिनी (उसको कहना) मेरे लिए अनुचित होगा, तुम्हीं उनको उपदेश दो। यह विदेश जाने का समय नहीं है। दुर्जन मेरा दुख नहीं समझेंगे, इसीलिए तुमको प्रियतम के निकट भेजा। कुछ दिन (यहाँ) निवास करें। मैंने जिस प्रकार पूजा की है उसी प्रकार भोग करूँगी। दूसरों (शत्रुओं) के उपहास से मेरी रक्षा करें। (वे) क्यों (मेरा) वधभागी होंगे? जैसे ही माधव उसकी (पररमणी की) चिन्ता करेंगे (वैसे ही) मैं अग्नि में कूद कर मर जाऊँगी। विद्यापति कवि कहते हैं, लखिमादेवी के रमण राजा शिवसिंह रुपनारायण हैं।

(१५७)

दखिन पवन वह मन्द।
माजरि झर मकरन्द॥
तखने हलब मनमारि।
लोचन हलब निवारि॥
पिय हे जदि तोहे जायब विदेस
कहब हमर उपदेस॥
मधुकर जदि कर गाव।
तदि पिक पंचम गाव॥
तखने करब अनुमान।
मुदि रहब बरु कान॥
परतिरि मानव तीति।
विरजे मनोभव जीति॥
राखब आपन परान।
हमके करब जलदान॥
सुकवि भनथि कण्ठहार।
के सह काम परहार॥

नृप सिवसिंघ रस जान।
लखिमा देइ रमान॥

न० गु० ६१८, अ० ६२५

शब्दार्थ—माजरि—मञ्जरी; हलव—रखेंगे; मनमारि—मन का दमन करके; वरु—वरन् ; परतिरि—परस्त्री; तीति—तिक्त; धिरजे—धैर्य के साथ।

अनुवाद—जब दक्षिण पवन धीरे बहे, मञ्जरी से मकरन्द झड़े (अर्थात् जब वसन्तागम हो) तो मन का दमन करना, आँखों का निवारण करना (किसी युवती की इच्छा मत करना)। हे प्रियतम, यदि कोकिल पंचम तान अलापे, उस समय अनुमान करना (कि वसन्त आ गया) वरन् कान बन्द किए रहना। परस्त्री को तिक्त समझना, धैर्य के द्वारा कन्दर्प की विजय करना। अपने प्राणों की रक्षा करना। हमको जलदान देना। (तुम्हारे विदेश जाने से मैं मर जाऊँगी, मेरी शान्ति के लिए एक अंजलि जल देना)। सुकवि कण्ठहार कहते हैं, काम का प्रहार कौन सहन कर सकता है? लखिमादेवी के रमण नृप शिवसिँह यह रस जानते हैं।

(१५८)

कालि कहल पियाए साँझहिर
जाएब मोये मारुअ देस।

मोयँ अभागलि नहि जानल रे
संगहि जइतँह सेह देस॥

हृदय बड़ दारुन रे
पिया विनु विहरि न जाये॥

एकहि सयन सखि सुतल रे
अछल वालभ निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेलरे
विछुरल चकेवा जोर॥
सून सेज हिय सालये रे
पियाए बिनु मरब मोयेँ आजि।
विनति करओो सहिलोलिनि रे
मोहि देहे अगिहर साजि॥

विद्यापति कवि गाओल रे
आए मिलल पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे
राए सिवसिंघ नहि भोर॥

रागत० पृ० ७५, न० गु० ६२६, अ० ६३२

शब्दार्थ—साँझहि—सन्ध्या ही को; मारुअ—मथुरा; जइतँह—जाऊँगा; विहरि—विदीर्ण होकर; वालभ—वल्लभ; विछुरल—अलग हुआ; जोर—जोड़ा; सालये—विदीर्ण करता है; सहिलोलिनि—सहचरी; अगिहर—अग्नि।

अनुवाद—कल संध्या समय ही प्रियतम ने कहा कि मथुरा जाऊँगा। मैं (अभागिनी) ने नहीं जाना (जानने से) वही देश संग जाती। (मेरा) हृदय अत्यन्त कठिन है कि अब भी प्रिय के विरह में विदीर्ण नहीं हो रहा है। सखि, रात में मेरे वल्लभ एक शय्या पर (मेरे साथ) सोए हुए थे, किस समय छोड़ कर चले गये, (मैंने) नहीं जाना; चक्रवाक का जोड़ा विच्छिन्न हो गया। आज हमारे घर प्रिय नहीं है, शून्य शय्या हृदय विदीर्ण करती है, प्रिय के विरह में आज मैं मरूँगी। सखि, विनती करती हूँ, मेरा शरीर अग्नि से सजा दो। विद्यापति कवि गाते हैं, तुम्हारे प्रिय आके मिलेंगे, लखिमादेवी के सुन्दर पति राजा शिवसिँह नहीं भूलते हैं।

(१५६)

दहए बुलिए बुलि भमरि करुना कर
आहा दइ आइ की भेल।
कोर सुतल पिया आन्तरो न देअ हिया
के जान कओन दिग गेल॥
अरे कैसे जीउब मओरे
सुमरि वालभू नव नेह॥

एकहि मन्दिर बसि पिया न पुछए हसि
मोरे लेखे समुदक पार।
इ दुइ जौवना तरुन लाख लह
से आवे परस गमार॥
पट गुनि गुनि गुनि मोति सरि किनि किनि
मोरे पियाजें गाथल हार।
लाख लेखि तन्हि हम हरवा गाथल
से आवे तोलत गमार॥

अरेरे पथिक भइआ समाद लए जइह
जाहि देस वस मोर नाह।
हमर से दुख सुख तन्हि पिया कहिह
सुन्दरि समाइलि वाह॥
भनइ विद्यापति अरे रे जुवति
अवे चिते करह उछाह।
राजा सिवसिंह रुपनरायन
लखिमा देवि बर नाह॥

नेपाल १४७, पृ० ४२ क, पं ४ ; न० गु० (नेपाल) ६२७, अ० ६३३

शब्दार्थ—दहए—दसो दिशाओं में; बुलिए—घूम कर; दइ—देवी; आन्तरो-व्यवधान, रुकावट; सुमिरि—याद करके; नवनेह—नूतन प्रेम; लेखे—भाग्य की लेखा; समुदक पार—समुद्र के पार; गमार—मूर्ख; समाद—सम्वाद; समाइलि—प्रवेश किया; वाह—बाढ़; उछाह—उत्साह।

अनुवाद—दसों दिशाओं में घूम घूम कर भ्रमरी विलाप (करुणा) करती है, हाय देवि, आज क्या हुआ? प्रियतम (मुझे) गोद में सुलाकर हृदय से अलग नहीं करते थे, (वही) कौन जाने किधर चले गये। वल्लभ का नूतन प्रेम स्मरण कर मैं किस प्रकार जीवन धारण करूँगी? एकही घर में बस कर भी प्रियतम मेरी बात नहीं पूछते, मेरे लिए वे समुद्र के पार चले गए। मेरे इस यौवन के (चिन्ह स्वरूप) दोनों (पयोधर) लाखों (तरुणियों) से तरुण हैं; उन्हें क्या मूर्ख स्पर्श करेगा। छोटे छोटे मोती खरीद कर (रेशम) पट्ट का सूत चुन चुन कर मैंने प्रियतम के लिए हार गूँथा। उनके लिए मैंने लाखों हारों की अपेक्षा श्रेष्ठ हार गूँथा, उसे क्या मूर्ख तोड़ कर फेंकेगा। हे पथिक भाई, जिस देश में जाकर हमारे प्रियतम बसे हैं सम्वाद ले जाओ। मेरा सुख-दुख प्रियतम से कहना। (कहना कि) सुन्दरी बाढ़ में प्रवेश कर गयी। विद्यापति कहते हैं, हे युवति, अब मन में उत्साह करो, राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के सुन्दर स्वामी हैं।

(१६०)

मन्ने छलि पुरुव पेम भरे भोरी।
भान अछल पिया आइति मोरी॥
ए सखि सामी अकामिक गेला।
जिवहु अराधन न अपन भेला।
जाइत पुछलन्हि भलेओ न मन्दा।
मन वसि मनहि वढ़ाओल दन्दा॥
सुपुरुष जानि कएल हमे मेरी।
पाओल पराभव अनुभव वेरो॥
तिला एक लागि रहल अछ जीवे।
विनु सिनेहे रहइ जनि दीवे॥
चाँद वदनि धनि न झाँखह आने।
तुअ गुन सुमरि आओव पुनु कान्हे॥

भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिघ लखिमा देइ रमाने॥

नेपाल पद ८, पृ० ४ क, भनये विद्यापतीत्यादि पद १६, पृ० ७ क, पं० २ (भनये विद्यापतीत्यादि);
न० गु० (तालपत्र और नेपाल) ६३८ः अ० ६४४।

शब्दार्थ—छलि—थी; भोरी—मुग्धा; आइति—वशीभूत; अकामिक—अकस्मात्; अराधन-आराधनाः पुछलन्हि—पूछा नहीं; मेरी—मिलन; सिनेहे—स्नेह के, (यहाँ) तेल के; दीवे—दीप; न झाँखह—शोक मत करना।

अनुवाद—मैं पूर्व-प्रेम में मुग्ध थी, (मुझे) ऐसा मालूम होता था मानों प्रियतम मेरे वशीभूत हैं। हे सखि, स्वामी (प्रभु) अकस्मात चले गए, प्राण देकर भी आराधना करने से अपने नहीं हुए। जाने समय अच्छा बुरा कुछ भी नहीं पूछा, मन में रह कर मन ही में संशय पैदा कर गए। सुपुरुष जान कर मैंने मिलन किया, अनुभव के समय पराभव पार्या। एक तिल भर के लिए प्राण हैं, जैसे तेल के विना दीपक (क्षणमात्र) जलता है। (कवि कहता है) चन्द्रवदनि, अन्यथा (दूसरी बात समझ कर) शोक मत करना, तुम्हारा गुण याद कर कन्हाई फिर आवेंगे।

उद्धृत पद के साथ नेपाल पोथी का आठवाँ पद थोड़ा-बहुत मिलता है। किन्तु १६वें पद में प्रायः सब यही भाव रहने पर भी बहुत सी नयी बातें हैं। नीचे नेपाल का १६वाँ पद दिया जाता है:—

मवें सुधि पुरुव पेम भरे भोरी।
भलि अछल पिया आइति मोरी॥
जाएखने पुछलन्हि भलेओ न मन्दा।
मन वसि मनहि बढ़ओलन्हि दन्दा॥
ए सखि सामि अकामिक गेला।
जीवकु सुविधी न अपन न भेला॥
सुपुरुष जानि कैलि तुअ सेवी।
पाओल पराभव अनुभव वेवी॥
तिला एक लागि रहल अछ जीवे।
जनि अन्धार वरइ घर दीवे॥
सुखजन मातए सुरत सपना।
सुन भेले नीन्दगुन दरसि अपना॥
पाइ सुपुरुष कैके वोलिव आइ।
अनुसए पाओल वचन वड़ाइ॥
वचन रभस नहि सुख नहि हासे।
भागिले विचए भव्व विलासे॥
हृदय नउवे रइ हेतु जनाइ।
कवोने परिसेओव निठुर कन्हाइ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

नेपाल के १६वें पद के ग्यारवें से अठारहवें चरण और भनिता का अनुवाद:—
जब सुधी उसके ध्यान में स्वप्न में मत्त होती है, निद्रा शून्य होकर अपना गुण दिखलाती है। सखि, उसे

सुपुरुष कैसे कहा जाए ? उसने बात बना कर अपनी कार्य-सिद्धि की। (इस समय उसकी) बातों में रस नहीं है, हँसी में सुख नहीं है, भ्रू-विलास में——। (१६वें और १७वें पदों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता)। निष्ठुर कन्हायी की सेवा कौन करेगा ? विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के वल्लभ राय शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(१६१)

पहिलि पिरीति परान आँतर
तखने अइसन रीति।
से आबे कबहु हेरि न हेरथि
भेल निम सनि तीति॥
साजनि जिवथु सए पचास।
सहसे रमनि रयनि खेपथु॥
मोराहु तन्हिक आस॥
कतने जतने गउरि अराधिअ
भागिअ स्वामि सोहाग।
तथुहु अपन करम भुञ्जिय
जइसन जकर भाग॥

समय गेले मेघे बरीसब
कीदहु तेँ जलधार।
सित समापले बसन पाइअ
तेँ दहु की उपकार॥
रयनि गेले दीपे निरोधिअ
भोजन दिवस अन्त।
जउवन गेले जुवति पिरिति॥
की फल पाओत कन्त॥
धन अछइत जे नहि भोगए
ता मने हो पचताव।
जउवन जीवन बड़ निरापन।
गेले पलटि न आव॥

भन विद्यापति सुनह जउवति
समय बुझ सयान।
राजा सिवसिंघ रुपनारायण
लखिमा देइ रमान॥

तालपत्र न० गु० ६४४, अ० ६९०।

शब्दार्थ—आँतर—अन्तर; अइसन—ऐसी; आबे—अब; कबहु—कभी भी; हेरि न हेरथि—देख कर भी नहीं देखते; तीति—तिक्त; सए पचास—सौ पचास; सहसे—सहस्र; रयनि—रजनी; खेपथु—बितावें; गउरि—गौरी; आराधिअ—पूजा कर; तथुहु—तथापि; बरीसब—बरसे; कीदहु—क्या; बसन—वस्त्र; पचताव—पश्चात्ताप; निरापन—जो अपना नहीं है।

अनुवाद—प्रथम प्रीति में प्राण अन्तर (उस समय परस्पर प्राण स्वतंत्र हैं, यह असत्य मालूम होता था), उस समय ऐसी रीति थी। वे इस समय देख कर भी नहीं देखते (मैं उनके लिए) नीम के समान तीती हो गयी। सखि, वे सौ पचास वर्ष तक जीवें, हजारों रमणियों के साथ रात काटें, मुझे उन्हीं की आशा है। अनेक यत्न से गौरी की आराधना की और तथापि अपना कर्म भोग रही हूँ, जिसका जैसा भाग्य (वह वैसा ही फल पाता है)। समय व्यतीत होने पर यदि मेघ बरसे तो उस जलधारा से क्या लाभ ? शीत समाप्त होने पर यदि वस्त्र पाया जाए तो क्या

-उससे कुछ उपकार होगा ? रात बीतने पर दीप जलाया, दिन बीतने पर भोजन किया (क्या फल होगा ?) युवती का यौवन समाप्त हो जाने पर प्रीति से कान्त को क्या फल मिलेगा ? धन रहते जो भोग नहीं करता उसके मन में पश्चात्ताप होता है। यौवन जीवन अपने नहीं हैं (बिगाने हैं) जाने पर लौट कर नहीं आते। विद्यापति कहते हैं, युवति सुन, चतुर समय बूझते हैं (समय पर चतुर कान्त आवेंगे)। राजा शिवसिँह रूपनारायण लखिमादेवी के कान्त हैं।

(१६२)

अविरल परए मदन सरधारा।
एकल देह कत सहत हमारा॥
सपनहु तिला एक तन्हि सञों रंगे।
निन्द विदेसन तन्हि पिया संगे॥
कान्ह कान लागि कहिहि भमरा।
तोँञे जानसि दुख अहनिसि हमरा॥
एतवा बोलि कहब मोरि सेवा।
तिरथ जानि जल अञ्जुलि देवा॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु० ६४८, अ० ८६८।

शब्दार्थ—सरधारा—शरधारा; सपनेहु—स्वप्न में; तन्हि—उन्हें; सञों—सङ्गमें; निन्द—निद्रा में; विदेसल—विदेश गयी; एतवा—इतना।

अनुवाद—मदन की शरधारा (-मेरे ऊपर) अविरल पड़ रही है, मेरा यह अकेला शरीर कितना सहन करेगा ? वप्न में भी यदि एक तिल (के लिए) उनके संग रंग (केलिकौतुक) होता ! (किन्तु वह नहीं होता क्योंकि) मेरी नींद उनके संग विदेश चली गयी (जिस दिन से प्रियतम विदेश में रहने लगे, मेरी नींद में भी मेरा परित्याग कर दिया, इसीलिए स्वप्न में भी उनका दर्शन दुर्लभ हो गया)। हे भ्रमर, तुम मेरा दिन-रात का दुख जानते हो, कन्हायी के कान में कहोगे, इसीलिए तुमसे कहती हूँ। यह कह कर मेरा निवेदन उनसे सुनाना जिससे वे तीर्थ देखकर मेरे नाम से जल की अंजलि दे (तुम्हारे उनके निकट पहुँचते पहुँचते ही मेरी मृत्यु हो जाएगी, इसीलिए जल-अर्पण की प्रार्थना करती हूँ)। विद्यापति कहते हैं, लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिँह यह रस जानते हैं।

(१६३)

सरसिज विनु सर सर विनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन विनु तन तन विनु जौवन
की जौवन पिय दूरे॥
सखि हे मोर वड़ दैव विरोधी।
मदन वेदन वड़ पिया मोर वोल छड़
अवहु देहे परवोधी॥
चौदिस भमर भम कुसुमे कुसुमे रस
नीरसि माजरि पिवइ।
मन्द पवन वह पिक कुहु कुहु कह
सुनि विरहिनि कइसे जीवइ॥
सिनेह अछल जत हम भेल न टूटत
वड़ वोल जत सवेइ थीरे॥
अइसन कए वोलदहु निअसिम तेजि कहु
उछल पयोनिधि नीरे॥
भनइ विद्यापति अरेरे कमलमुखि
गुन गाहक पिया तोरा।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
सहजे एको नहि भोरा॥

न० गु० ६१२, अ० ७६७।

शब्दार्थ—सूर—सूर्य; बोल—बात; छड़—छोड़ दिया, नहीं रखा; देहे—देती हो; परबोधी—प्रबोध; नीरसि—नीरस कर के; मौंजरि—मञ्जरी; हम भेल—मेरी धारणा थी; न टूटत—नहीं टूटेगा; थीरे—स्थिर; बोलदहु—बोले; कहु—कभी भी।

अनुवाद—पद्म बिना सरोवर, सरोवर बिना पद्म, अथवा सूर्य बिना पद्म (शोभा नहीं पाता); यौवन-शून्य देह, देह-शून्य यौवन अथवा प्रियतम के दूर रहने पर यौवन (शोभा नहीं पाता)। सखि, विधाता मेरे प्रति बड़े विमुख हैं, मदन बहुत वेदना देता है, मेरे प्रियतम ने बात नहीं रखी, (आने का वचन देकर नहीं आए), अब भी (तुम मुझे) प्रबोध देती हो? भ्रमर चारो दिशाओं में भ्रमण कर रहा है, फूल-फूल पर रम रहा है, मंजरी का मधु जी भर पी रहा है, धीर पवन बह रहा है, पिक कुहु कुहु गा रहा है, सुन कर विरहिणी कैसे धीर धारण करे? इतना प्रेम था कि मेरी धारणा थी कि कभी नहीं टूटेगा, बड़े लोग जो कहते हैं वह स्थिर (ध्रुव) रहता है। इस प्रकार की बात कोई नहीं करता कि समुद्र अपनी सीमा छोड़कर कभी उद्वेगित होता है। विद्यापति कहते हैं कि हे कमलमुखि, राजा शिवसिंह रूपनारायण एवं तुम्हारे गुणग्राहक पिया दोनों में से कोई भी स्वभावतः भूलने वाले नहीं हैं।

(१६४)

माधव मास तीथि भउ माधव[1]
अवधि कइए पिया गेला।
कुचयुग शंभु परसि करे बोललन्हि
ते परतीति मोहि भेला॥
सखि हे कतहु न देखिअ मधाइ
काँप सरीर थिर नहि मानस
अवधि निध भेल आगी[2]॥

चान्दन अगरु मृगमद कुंकुम[3]
के बोले[4] शीतल चन्दा।
पिया विसलेखे अनल जवों वरिसये
विपति चिह्निअ भल मन्दा॥
भनइ[5] विद्यापति अरेरे कलामति
अवधि समापिल आजि।
लखि देविपति पूरिह मनोरथ
आविह सिवसिंह राजा॥

नेपाल २८०, पृ० ६३ ग, पं० २; न० गु० (मिथिला का पद) ६५४, अ० ७६८. इस पद के साथ ग्रियर्सन का [illegible] न० गु० ७२८, अ० ७२३ का आधा से अधिक अंश मिलता है। पद के अनुवाद के बाद उद्धृत हुआ।

शब्दार्थ—माधव मास—वैशाख मास; माधवतिथि—शुक्ला एकादशी; अवधि—निश्चित की हुई सीमा की तिथि; बोललन्हि—कहा था; परतीति—प्रत्यय, विश्वास; कतहु—कहीं भी; अवधि निअर भेल आइ—अवधि (लौटने का दिन) आज निकट आयी; अवधि निध—निधि पर्यन्त; भेल आगी—अग्नि के समान अनुभव हुआ; विसलेखे—विश्लेष में; वरिसये—बरसे; चिह्निअ—पहचानी जाती है।

पाठभेद—न० गु० में—(१) न० गु० में 'सखि हे कतहु न देखिअ मधाइ' से आरम्भ और पंचम चरण में 'माधव मास तीथि' [illegible] है। (२) अवधि निअर भेल आइ। (३) मृगमद चानन परिमल कुंकुम (४) बोल
(५ भनइ विद्यापति सुन वर जौवति चित जनु झाँखह आजे।
पिय [illegible] [illegible] भेटत [illegible] [illegible] समाजे॥

अनुवाद—(आज) वैशाख मास की शुक्ला एकादशी आ गयी। प्रिय अवधि निश्चित करके गए थे। (मेरा) कुचयुग शंभु स्पर्श करके कहा था, इसी से मुझे विश्वास हुआ था। सखि, माधव को कहीं भी नहीं देखती हूँ। शरीर काँप रहा है, मन स्थिर नहीं है; निधि अथवा सम्पद् तक अग्नि के समान लगती है (अथवा पाठान्तर में—प्रियतम के लौटने की निधि आज निकट आयी)। चन्दन, अगुरु और मृगमद कुंकुम तथा चन्द्रमा को कौन शीतल कहता है ? प्रिय वियोग में मानों चन्द्रमा अनल की वर्षा करता है। विपत्ति आने पर ही भले-बुरे की पहचान होती है। विद्यापति कहते हैं, अरे कलावति, आज अवधि शेष हुई। लखिमादेवी के पति शिवसिंह आएँगे, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। [अथवा पाठान्तर में विद्यापति कहते हैं, सुन युवतिश्रेष्ठ, आज मन में शोक मत करना, प्रिय के विरह का क्लेश मिटेगा, वल्लभ के साथ विलास होगा।]

माधव मास तीथि छल माधव अवधि करिये पहु गेला[1]।
कुचयुग शंभु परसि हसि कहललि तेँह परतीति मोहि भेला[2] ॥
अवधि ओर भेल समय वेयापित जीवन वहि गेल आशे[3]।
तखनुक विरह युवती नहि जीउति कि करत माधव मासे[4] ॥
छन छन कचकइ दिवस गमाओलि दिवस दिवस कय मासे[5]।
मास मास कइ वरस गमाओलि आव जीवन कोन आशे[6] ॥
आम मजर धरु मन मोर गहर कोकिल शवद भेल मन्दा[7]।
एहन वयस तेजि पहु परदेश गेल कुसुम पिउलि मकरन्दा[8] ॥
कुमकुम चानन आगि लगाओलि केओ कहे शीतल चन्दा[9]।
पहु परदेश अनेक कइ राघखि विपति चिन्हिये भलमन्दा[10] ॥
भनहि विद्यापति सुन वर यौवती हरिक चरण करु सेवा[11]।
परल अनाइत तेँइ छथि अन्तर वालभु दोप न देवा[12] ॥

इस पद का संकलन ग्रियर्सन साहब और नगेन्द्र बाबू ने मिथिला के लोगों के मुख से सुन कर किया है। यह पद किसी ने नेपाल के २४७वें पद में तृतीय से लेकर अष्टम चरण तक का भाग किसी दूसरे पद से मिला कर तैयार कर दिया है। नेपाल का पद संक्षिप्त और भावघन है।

तृतीय से लेकर अष्टम और दशवें चरण तथा भनिता का अनुवाद—निर्दिष्ट समय बीत गया; समय बीत जाता है; जीवन आशा ही आशा में कट गया। (माधव के न आने से) माधव मास में क्या होगा; उस समय विरह में युवती नहीं बचेगी। क्षण क्षण करके दिवस काटा, दिन दिन करके मास, मास मास करके वर्ष, अब और जीवन की क्या आशा है। आम के वृक्ष में मंजर आ गए, मेरा मन विषाद से भर गया, कोकिल का शब्द अच्छा नहीं लगता। इस वयस में प्रभु (मुझे) त्याग कर विदेश गए; कुसुम ने (अपना) मकरन्द (स्वयं ही) पान किया। बहुतों के प्रभु विदेश रहते हैं, विपत्ति काल में ही अच्छे-बुरे की पहचान होती है। विद्यापति कहते हैं, हे युवतीश्रेष्ठ सुन, हरिचरण की सेवा कर। (तुम्हारे) वल्लभ वाध्य होकर (पराधीन होकर) दूर रह गए हैं, इस कारण उन्हें दोष मत दो।

(१६५)

प्रथमहि उपजल नव अनुरागे।
मनकर प्रान धरिअ तसु आगे॥
आर दिने दिने भेल प्रेम पुराने।
भुगुतल कुसुम सुरभि कर आने॥
हरिके[1] कहब सखि हमरी विनती[2]।
बिसरि न हलविए पुरुब[3] पिरिती॥
रभस समअ पिआ जत कहि गेला।
अध राहु आध सेहओ दुर गेला[4]॥
भनहि विद्यापति एहो रस भाने[5]।
राए सिवसिंघ लखिमादेइ रमाने[6]॥

तालपत्र न० गु० ६९६; ग्रियर्सन ७३, अ० ८७४

शब्दार्थ—तसु—उसका; भुगुतल कुसुम—उपभुक्त—पुष्प; हलविए—जाएगा; अधराहु आध—आधे का आधा।

अनुवाद—जब (तुम्हारा) नव अनुराग का जन्म हुआ, उस समय मन में होता था (नायिका के) सम्मुख प्राण रख दें (प्राण उत्सर्ग कर दें); अब दिनो दिन प्रेम पुराना हो गया, उपभुक्त पुष्प का सौरभ दूसरे ही प्रकार का लगता है। सखि, मेरी विनती हरि से कहना, जिससे वे पूर्व की प्रीति न भूल जाएँ। केलि के समय जितना कहकर प्रियतम गए उसके आधे का भी आधा दूर गया। विद्यापति कहते हैं कि लखिमादेवी के कान्त राय शिवसिंह इस रस के ज्ञाता है।

(१६६)

केओ सुखे सुतए केओ दुखे जाग।
अपन अपन थिक भिन भिन भाग॥
कि करति अबला न चेतए हार।
एकहि नगर रे बहुत बेवहार॥
माजरि तोरि भ्रमर मधु पीव।
से देखि पथिक कण्ठागत जीव॥
कन्ता कन्त मनोरथ पूर॥
विरहिनि विरहे बेआकुलि झुर॥
विद्यापति भन एहु रस जान।
राए सिवसिंघ रुपिनि देवि रमान॥

तालपत्र न० गु० ६७८, अ० ६७३

शब्दार्थ—थिक—है; भिन भिन—भिन्न भिन्न; भाग—भाग्य; न चेतय हार—चेतना नहीं जाती; [नगेन्द्र बाबू [illegible] हार [illegible] नहीं करता; परन्तु यह बात यहाँ लागू नहीं होती; अबला यदि चेतना खो [illegible] नहीं होता] तोरि—तोड़ कर।

अनुवाद—कोई सुख से सोता है और कोई दुख से जागता है। अपना अपना भिन्न भिन्न भाग्य है। अबला [illegible] नहीं [illegible]। एक ही नगर में बहुत प्रकार का व्यवहार है। मंजरी तोड़ कर भ्रमर मधुपान [illegible], [illegible] पथिकों का प्राण कण्ठागत होता है। [illegible] कान्ता का मनोरथ पूरा करता है, विरहिनी विरह में [illegible]। विद्यापति कहते हैं, रूपिनी देवी के [illegible] राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं।

[illegible] (ग्रियर्सन में) (१) हरिसँ (२) [illegible] विनीती (३) [illegible] (४) [illegible] आध सेहओ दूरि गेला (५) [illegible] (६) [illegible]।

(१६७)

सखि हे मोरे बोले पुछब कन्हाइ।
हमर सपथ थिक बिसरि न हलवे
गए तेजि अवसर पाइ॥
हुन्हि सयँ पेम हठहि हमे लाओल
हित उपदेस न लेला।
तृनतरुअर छायातर वैसलाहु
जइसन उचित से भेला॥

एक हमे नारि गमारि सबहु तह
दोसरे सहज मतिहीनी।
अपनुक दोष दैवके कि कहब
ओ नहि भेलाहे चिन्ही॥
अकुलिन बोल नहि ओड़ धरि निरवह
धरए अपन वेवहारे।
आगिल दुर कर पाहिल चित धर
जइसन बड़ि कुसियारे॥

भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
चिते जनु मानह आने।
राजा सिवसिंघ रुपनारायन
सकल कलारस जाने॥

तालपत्र न० गु० ६८६, अ० ६८४

शब्दार्थ—थिक—हैं; बिसरि न हलवे—भूल मत जाना; गए—चले गए; तेजि—त्याग करके; हुन्हि—उनका; सय—सहित; हठहि—हठकारिता करके; लाओल—किया; तृनतरुअर—ताड़वृक्ष; छायातर—छायातल; गमारि—ग्राम्या; दोसरे—द्वितीयतः; अकुलिन—अकुलीन; साधारण लोग; ओड़—सीमा; आगिल—जो आगे होगा; पाहिल—प्रथम, जो सम्मुख रहता है; कुसियारे—ईख।

अनुवाद—हे सखि, मेरी ओर से कन्हायी से पूछना, मेरी कसम रही, भूल मत जाना, (वे) अवसर पाकर त्याग करके चले गए। उनके संग-हठ करके-(किसी की बात न मान कर) प्रेम लगाया, हित-उपदेश नहीं सुना। ताड़ वृक्ष की छाया के नीचे बैठी, जो उचित है, वही हुआ (ताड़ के नीचे बैठने से धूप में जलना पड़ता है, सिर पर ताड़ के फल के गिरने की भी सम्भावना है)। एक तो मैं सबों की अपेक्षा ग्राम्या नारी हूँ, दूसरे स्वभावतः मतिहीन, अपना दोष है तो विधाता को क्या कहें, इनको (अल्प बुद्धि के कारण) पहचाना नहीं। साधारण लोगों की बात अन्त तक निबहती नहीं है, अपना व्यवहार धारण करते हैं (नीच कुल के उपयुक्त कार्य करते हैं)। पूर्व की बातों को दूर करके वर्त्तमान को ही चित्त में धारण करते हैं जैसे कुसियार के साथ होता है (जड़ को काट फेंक कर अग्रभाग ही रोपा जाता है)। विद्यापति कहते हैं, हे युवतीश्रेष्ठ, सुनो, दिल में दूसरी बात मत लाना, (ऐसा मन मत करना)। राजा शिवसिंह रुपनारायण सकल कलारस जानते हैं।

(१६८)

नमित अलकें बेढला
मुखकमल सोभे।
राहु क बाहु परसला[1]
ससिमण्डल लोभे॥
मदन सरे मुरछली
चिर[2] चेतन बाला।
देखल से धनि हे
बासि मालति[3] माला॥

कलस कुच लोटाइली
घन सामरि बेनी।
कनय परय सूतली
जनि कारि नागिनी॥
भने विद्यापति भाविनी
थिर थाक न मने।
राजाहुँ सिवसिंघ रुपनराएन
लखिमा देइ रमाने॥

रागत पृ० ६०, न० गु० (मिथिला का पद) ६६७, अ० ६८६

शब्दार्थ—सोभे—शोभा पाता है; परसला—स्पर्श किया; (पाठान्तर पसारला—प्रसारित किया) चिर चेतन बाला—जो बाला स्वभावतः चेतन है (न० गु० के पाठ में 'चिते चेतन बाला'; उनका दिया हुआ अर्थ—'बाला का चित्त और चेतना मूर्छित होते हैं, परन्तु चित्त और चेतना में एक ही भाव की पुनरावृत्ति है; रागतरंगिनी का 'बासि मालती माला' पाठ भी न० गु० के 'बासि निमालिनी माला' की अपेक्षा अधिक सुन्दर है। कनय—कनक, स्वर्ण; कारि नागिनी—कृष्णसर्पिणी।

अनुवाद—नमित अलकों से वेष्टित मुखमण्डल शोभा पाता है, शशिमण्डल के लोभ से राहु की बाँह स्पर्श की। चिर चेतन बाला मदन के शर से मूर्छित हो गयी। उस सुन्दरी को देखा (मानों) बासी मालती की माला के समान पड़ी हुई है। घन कृष्णवेणी कुचकलश पर लोट रही है, जैसे सोने के पहाड़ पर कृष्णसर्पिणी लोट रही हो। विद्यापति कहते हैं, भामिनी का मन स्थिर नहीं है (विरह में अस्थिरचित्ता हो रही है) राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमादेवी के रमण हैं।

(१६९)

[illegible] सुन पहु परदस भेल सजनी
[illegible] नलिन मल-मन्द।
मनमथ [illegible] [illegible] [illegible] बिनु सजनी
[illegible] [illegible] निरानन्द॥
[illegible] बिछुर [illegible] [illegible] सजनी
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सजनी
[illegible] न [illegible] [illegible]॥

जँ दुरजन कटु भाषय सजनी
मोर मन न होए विराम।
अनुभव राहु पराभव सजनी
हरिन न तेज हिमधाम॥
जउओ तरणि जल सोखय सजनी
कमल न तेजय पाँक।
जे जन रतन जाहि मँ सजनी
कि करत विहि भय बाँक॥

[illegible] — (१) पसारल (२) चित (३) निमालिनी।

विद्यापति कवि गाओल सजनी
रस बूझय रसमन्त।
राजा सिवसिंह मन दय सजनी
मोदवती देइ कन्त॥

—ग्रियर्सन ७५ : न० गु० ६६३ : ६८८ अ०

शब्दार्थ—गुन—जादूमन्त्र ; पहु—प्रभु ; तनिक—उनका ; निसिचन्द—निशीथचन्द्र; बिसुन—दुष्टलोग ; सत अवगुन—शतनिन्दा ; रेख पखान—पत्थर की रेखा ; मेटए—मिटता है ; जइओ—यद्यपि ; वाँक—वाम।

अनुवाद—सजनी, किस जादूमन्त्र के द्वारा प्रभु परवश हुए? (अब) उनका अच्छा-बुरा (गुण-अवगुण) समझ रही हूँ। उनके विना (विरह में) कन्दर्प मेरा मन मथ रहा है (मुझे कष्ट दे रहा है), रात में चन्द्रमा मेरा शरीर जलाता है। दुष्ट लोग (उनकी) अनेक निन्दा करते हैं तौभी उनके समान मेरा कोई नहीं है। कितने भी यत्न से मिटाया जाए, पत्थर की रेखा मिटती नहीं है। दुर्जन लोग जो कटुवाणी कहते हैं उससे भी मेरा मन विरत (अनुरागविहीन) नहीं होता। चन्द्रमा राहु के द्वारा पराभव अनुभव करने पर भी (काटे जाने पर भी) हरिण (कलंक) का परित्याग नहीं करता। हे सजनि, यद्यपि सूर्य जल सोखता है तथापि कमल पंक का त्याग नहीं करता। जो जिस-पर अनुरक्त हुआ है (उसके प्रति) विधाता वाम होकर क्या करेंगे? विद्यापति कवि कहते हैं कि मोदवती देवी के कान्त रसज्ञ राजा शिवसिंह मन देकर रस समझते हैं।

(१७०)

करतल लीन सोभए मुखचन्द।
किसलय मिलु अभिनव अरविन्द॥
अहनिसि गरए नयन जलधार।
खञ्जने गिलि उगिलत[1] मोतिहार॥
कि करति ससिमुखि कि बोलत[2] आन।
विनु अपराधे विमुख भेल कान॥

विरह विखिन तनु भेल हरास।
कुसुम सुखाए रहल अछि[3] वास॥
झखइति[4] संसय परल परान।
कबहु न उपसम कर पचबान॥
भनहि विद्यापति सुन वर नारि।
धैरज धैरहु मिलत मुरारि[5]॥

नेपाल १०५—पृ: ३६ क, पं ३
२४५—पृ: ८८ ख, पं ४

न० गु० ६६४ तालपत्र
ग्रियर्सन ७२ ; अ० ६६५

पाठान्तर—(पद-१७०) दिया हुआ पाठ ग्रियर्सन में से है। न० गु० का पाठान्तर—(१) खञ्जने मिलि उगलिल (२) बोलब (३) अछ (४) झखइते (५) धैरज धए रह मिलत मुरारि।

नेपाल का १०५वाँ पद (धनछी राग में गेय)

करतले नीर सोभए मुखचन्द[1]।
किसलय मिलु अभिनव अरविन्द॥
कि कहभि[1] ससिमुखि कि पुछसि आन।
बिनु अपराधे विमुख भेल कान्ह॥
अहनिसि नयने गलए जलधार।
खञ्जने मिलिउल[2] मोतिहार॥
विरहे विखिन तनु भेलह वास[3]।
कुसुम सुखाए रहल अछ वास॥
कम्पइते संशय पलल परान।
अन[1] विदिस वसल देय, गोजिले
विदिसे वैराउरे॥ ध्रु०

एहरि जति तोहे परवस पेमे विरत रस
वचन दए राखए राहीरे।
कुन्त तनय भोजन सुत सुन्दरि,
मुख ससि अवनत भेलारे।
सास समीर बाजजनि भुजग
हरि बिनु अहहदल बोलरे।
समन्दनि ससिमुखि सात वरण देलोख
तेज सरुप सुदिढ़ जानिरे।
राजा सिवसिंह रुपनराएण,
विद्यापति कवि वाणी रे॥

अनुवाद—(ग्रियर्सन और न० गु० का) करतललीन मुखचन्द्र शोभता है, (मानों) अभिनव अरविन्द से किसलय मिल गया हो (चिन्ताग्रस्ता होने के कारण सुन्दरी करतल पर गाल रखे बैठी है)। अहर्निश अश्रुधारा बह रही है, मानों खंजन मुक्ताहार निगलकर उगल रहा हो। शशिमुखी क्या करेगी, और क्या कहेगी? विना अपराध के ही कन्हाई विमुख हो गये। विरह में खिन्नतनु शीर्ण हो गया; कुसुम सूख गया (केवल) सुवास मात्र रह गया है। सोच ही सोच में (रहने के कारण) प्राण में संशय हो गया, पंचवाण (मदन) कभी भी उपशम नहीं करता, (मदन की पीड़ा कभी भी निवारित नहीं होती)। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, सुन, धीरज धर, मुरारि मिलेंगे।

(१७१)

मेदुर मंजे कोकिल अलिकुल वारब
कराकुन झमकाई।
चन्दन समीर धवलागिरि वरिसब
मनमथ कपोत उगाई॥

गगन गरज न सुनि मन संकित
वारिश्र हरि कहु रावे।
दखिन पवन सौरभे जदि सतरब
दुहु मन दुहु बिछुरावे॥

से गुनि जुवति जीव जदि राखनि
सुन विद्यापति वानी।
राजा सिवसिंघ रुपनराएन विन्दक
मदने मोहि देवि आनी॥

शब्दार्थ—खेदव—भगा दूँगी ; वारव—मना करूँगी ; झमकाई—झम झम वजा कर ;

अनुवाद—मैं कोकिल को भगा दूँगी, भ्रमरदल को कर कङ्कण बजा कर बजा कर मना कर दूँगी, (किन्तु) धवला गिरि से आकर जब जलद वर्षा करेगा तब कौन उपाय है? आकाश में मेघ गरज रहे हैं सुन कर मन शङ्कित है, वर्षा का मेघ पुकार रहा है। दक्षिण पवन यदि सौरभयुक्त हो सन्तरण करेगा (तब) दोनों जन किस प्रकार मन ही मन एक दूसरे को भुला कर रहेंगे। यह सब (मेघ गर्जन प्रभृति) सुन यदि प्राण धारण करोगी तो (हे) युवति, विद्यापति की बात सुनो। राजा शिवसिंह यह रस जानते हैं, मदन को समझा कर (तुम्हारे प्रियतम को) ला देंगे।

(१७२)

वसन्त रयनि[१] रंगे पलटि खेपवि[२] संगे
परम रभसे[३] पिअ गेल कहि।
कोकिल पचम गाव तइअओ न सुबन्धु आव
उतिम वचन वेभिचर नहि॥
साए[४] उगलि वेरथा॥
अवहु न अएले कन्ता नहि भल परजन्ता[५]
मो पति पछिम[६] सुर उगि गेला।
साहर सौरभे[७] दिसा चाँद उजोरि निसा
तरुतर मधुकर पसरला॥
इ रस हृदय धरि तइअओ न आव हरि
से जदि पुरुब पेम विसरला॥
कवि भन विद्यापति सुन वर जउवति
मानिनि मनोरथ सुरतरु।
सिरि सिवसिंघ देवा चरन कमल सेवा
महादेवि लखिमा देइ वरु[८]॥

नेपाल ४६, पृ० १६ क, पं ३ (विद्यापतिभन इत्यादि) न० गु० तालपत्र ७१८, ग्र० ७१६।

शब्दार्थ—रयनि—रजनी; पलटि—लौट आ कर; तइअओ—तथापि; उतिम—उत्तम; वेभिचर—व्यभिचार; वेरथा—वृथा। परिजन्ता—परिणाम; मोपति—मेरे पक्ष में; (पति—प्रति); पसरला—फैला; विसरला—भूल गया।

पाठान्तर—(नेपाल पोथी के अनुसार)—(१) रजनि (२) खेपलि (३) रभस (४) साए साए (५) "नहि भेल परजन्त" नहीं है। (६) पछिमे (७ मजरा (८) "तरुतर ... .देइ वरु" नहीं है, केवल "विद्यापति भन इत्यादि" है।

अनुवाद—प्रियतम बहुत आनन्द से कह गए, लौट आकर वसन्त – रजनी एकसंग रास-रंग में काटेंगे। कोकिल पंचम गा रही है तथापि सुबन्धु नहीं आया, उत्तम व्यक्ति के वचन का व्यतिक्रम नहीं होता। समय वृथा बीत गया। कान्त अभी भी नहीं आए, परिणाम अच्छा नहीं हुआ, मेरे लिए सूर्य पश्चिम में उदित हुए। सहकार के सौरभ से दिशाएँ (भर गयीं), निशा चन्द्रालोक से उज्ज्वल है, वृक्षतल मधुकर छाए हैं। यह रस हृदय में धरती हूँ (हृदय में प्रेम संचित करती हूँ), तथापि हरि नहीं आते हैं, यदि वे पूर्व प्रेम विस्मृत करके रहेंगे (तो) विद्यापति कवि कहते हैं, हे गुणीश्रेष्ठ गुण, महादेवी लखिमा मानिनी के मनोरथ के कल्पतरु स्वरूप श्री शिवसिंह देव के चरणकमल की सेवा वरण करती हैं।

(१७३)

माहर सउरभ गगन भरे ।
भमरि भमर दुहु वाद करे ॥
लोभक संभ्रम सङ्कक दन्द ।
बहुल पियासल थोर मकरन्द ॥
से देखि रितुपति आएल चली ।
जाकर सो मन मंजा छली ॥
कोमल माजरि कोकिल खाए ।
मानिनि मान पिबि ओ न अघाए ॥

जावे न आंग तरुनत भेल ।
तावे से कन्त दिगन्तर गेल ॥
परहित अहित सदा विहि वाम ।
दुइ अभिमत न रहए एक ठाम ॥
धन कुल धरम मनोभव चोर ।
केओ न बुझाव मुगुध पिआ मोर ॥
विद्यापति कवि एहो रस भान ।
राजा सिवसिंघ लखिमा देइ रमान ॥

तालपत्र न० गु० ७१६, अ० ७१५

शब्दार्थ—माहर—महकार; आम; सउरभ—सौरभ; जाकर—जिसका; माजरि—मंजरी; अघाए—तृप्त होता है; थोर—थोड़ा।

(१७४)

मास अखाढ़ उन्नत नव मेघ।
पिया विसलेखे रहओं निरथेघ॥
कोन पुरुव सखि कओन सेह देस।
करब मोए तहाँ जोगिनि वेस॥
मोर पिया सखि गेल दुर देस।
जौवन दए गेल साल सन्देस॥
साओन मास बरिस घन बारि।
पन्थ न सझे निसि अँधिआरि॥
चौदिस देखिअ विजुरी रेह।
से सखि कामिनि जिवन सन्देह॥
भादव मास बरिस घन घोर।
सभ दिस कुहुकए दादुल मोर॥
चेउकि चेउकि पिया कोर समाय।
गुनमति सूतलि अङ्कम लगाय।
आसिन मास आस धर चीत॥
नाह निकारुन नै भेलाह हीत॥
सरवर खेलए चकवा हास।
विरहिनि वैरि भेल आसिन मास॥
कातिक कन्त दिगन्तर वास।
पिय पथ हेरि हेरि भेलाहु निरास॥
सुखे सुख राति सबहु का भेल।
हम दुख साल सोआमि दे गेल॥
अगहन मास जीवके अन्त।
अबहु न आओल निरदय कन्त॥
एकसरि हमे धनि सतओं जागि।
नाहक आओत खाअत मोहि आगि॥
पूस खीन दिन दीघरि राति।
पिया परदेस मलिन भेलि काति॥
हेरओं चौदिस झखओं रोय।
नाह बिछोह काहु जनु होय॥
माघ मास घन पड़ए तुसार।
झिलमिल केचुआँ उनत थन हार॥
पुनमति सूतलि पिअतम कोर।
विधिवस दैव वाम भेल मोर॥
फागुन मास धनि जीव उचाट।
विरह-विखिन भेल हेरओं बाट॥
आओल मत्त पिक पंचम गाव।
से सुनि कामिनि जिवहु सताव॥
चैत चतुरगुन पिया परवास।
माली जाने कुसुम विकास॥
भमि भमि भमरा कर मधु पान
नागर भइ पहु भेल असयान॥
वैसाखे तवे खर मरन समान।
कामिनि कन्त हनए पँचवान॥
न जुड़ि छाहरि न बरिस वारि।
हम जे अभागिनि पापिनि नारि॥
जेठ मास उजर नव रंग।
कन्त चहए खलु कामिनि संग॥
रुप नरायन पूरथु आस।
भनइ विद्यापति बारह मास॥

मिथिलाः न० गु० ७२६, अ० ७२१

शब्दार्थ—अखाढ़—आषाढ़; विसलेखे—वियोग में; निरथेघ—निरवलम्ब; सूझे—दिखाई पड़े; दादुल—दादुर; र—मयूर; कोर—क्रोड़। समाय—प्रवेश करता है; एकसरि—अकेली; सतूओं जागि—जागती सोती रहती हूँ;

दिवस रहओँ हेरि रअनि वइरिनि भेलि
विसम कुसुम सर भावे।
नअन नीर गल मुरछि धरनि पल
निरदए कन्त नहि आवे॥

समअ माधव मास पिआ परदेस वस
ताहि देस वसन्त न भेला।
फुलल कदव गाछ हाट वाट सेहो अछ
मोरे पिआएँ सेओ न देखला॥

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
अछ तोकें जीवन अधारे।
राजा सिवसिंघ रुप नराएन
एकादस अवतारे।

तालपत्र न० गु० ७३६, अ० ७३२।

शब्दार्थ—साए साए—हे सखि, हे सखि; विरमाओल—ठहराया, रोका; विसवास—विश्वास; कदव—कदम्ब।

अनुवाद—जब हरि आवें, (उनके) चरण धरे रहूँगी, अरविन्द (मेरा करपद्म) द्वारा चन्द्र (माधव के चरण) की पूजा करूँगी। उत्तम कुसुमशय्या पर सुरत-क्रीड़ा करूँगी, दोनों के मन आनन्दित होंगे। सखि, सखि मेरे प्राणनाथ को किसने रोक लिया (ठहरा लिया)? जीवन को कितना विश्वास दूँगी (प्राणनाथ अब आवेंगे, इस विश्वास पर कितने दिन जीती रहूँगी)? दिन में उनका पथ देखती हूँ, रजनी शत्रु हुई, कुसुमशर विषम लगता है, नयनों से अश्रु गिर रहे हैं, मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हूँ, निर्दय कान्त आता ही नहीं। समय माधवमास है, प्रियतम विदेश में निवास कर रहे हैं, उस देश में क्या वसन्त नहीं होता? पुष्पित कदम्ब गाछ, *वह भी हाट हाट में है, मेरा प्रियतम उसे भी नहीं देखता। विद्यापति कहते हैं, युवती श्रेष्ठा सुन, तुम्हारे जीवनाधार एकादश अवतार राजा शिवसिंह रुपनारायण है।

(१७६)

की कहब माधव कि करब[1] काजे।
पेखलूँ[2] कलावति प्रिय सखी माझे॥
आछइते आछल काञ्चन पुतला।
त्रिभुवने[3] अनुपम रुपे गुने कुसला॥

एव भेल त्रिपरित झामर देहा।
दिवसे मलिन जनु चाँदक रेहा॥
वाम करें कपोल लुलित केस-भार।
कर-नखे लिख[4] महि आँखि-जलधार॥

विद्यापति भन सुन वरकान्ह।
राज सिवसिंघ इथे परमान॥

पदामृत समुद्र (पोथी) पृ० १२१, पदकल्पतरु १८८९ न० गु० ७४६ अ० ७४१

---

* वसन्त काल में कदम्ब गाछ में फूल नहीं खिलते, वर्षा में खिलते हैं।

पं० स के अनुसार पाठान्तर—(१) कहब (२) पेखल (३) भुवने (४) लिखु।

अनुवाद—माधव, क्या कहूँ, कहने से क्या काज (लाभ)? कलावती को प्रिय सखियों के बीच देखा। पहले वह त्रिभुवन में अतुलनीया, रूपगुण में कञ्चन की पुतली थी, अब वह उसके विपरीत हो गई है। दिवस में जिस प्रकार चन्द्र की रेखा मलिन हो जाती है, उसी प्रकार उसका शरीर मलिन हो गया है। उसके गाल हाथ पर, केशभार [illegible], आँसों के जल से करनख से जमीन पर लिखती रहती है। विद्यापति कहते हैं कि हे कन्हायी सुनो, [illegible] निर्विवाद इसके प्रमाण हैं।

(१७७)

माधव कठिन हृदय परवासी।[१]
[२]तुअ पेयसि मोयं देखल वियोगिनि[३]
अबहु पलटि घर जासी॥
हिमकर हेरि[४] अवनत कर आनन
कर करुनापथ हेरी[५]।
नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद
भय रह ताहेरि सेरी[६]॥

दखिन[७] पवन वह से कैसे जुवति सह
कर कवलित तनु अंगे।[८]
गेल परान आस दए राखए
दस नख[१०] लिखइ भुजंगे॥
मीन केतन भय[११] सिव सिव सिव कए
धरनि लोटावए देहा[१२]।
करे रे कमल[१] लए कुच सिरिफल दए
सिव पूजए निज देहा[२]।

परभृतके डरे पाअस लए करे
वायस निकट पुकारे।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
[illegible] [११]॥

अनुवाद—हे माधव प्रवासी कठिन-हृदय। तुम्हारी प्रेयसी को मैंने दीना देखा, (तुम) इसी समय घर लौट जावो। (वह) चन्द्र देख कर मुख नीचे कर लेती है। (अनत कर आनन—पाठान्तर; मुख अन्य ओर कर लेती है)। (एवं तुम्हारा) पथ देखती हुई कातरोक्ति करती है। नयनों के काजल से राहुमूर्ति चित्रित करती है और उसकी शरण में स्थान लेती है (चन्द्रमा के भय से)। दखिन पवन वह रहा है, युवती सहन कैसे कर सकती है! (मलय) उसका सुकुमार शरीर ग्रास करता है। गत (जीवन्मृत) प्राण को आशा देकर बचा रखती है। दसों नख से सर्प का चित्र खींचती है (सर्प वायु का भक्षण करता है,—दक्षिण पवन के विनाश के लिए सर्प का चित्र अङ्कित करती है)। मीनकेतन के डर से शिव शिव शिव कहती हुई धरणी पर लोटती है। (शिव ने मदन को भस्म किया था) कररूप-कमल और कुच-श्रीफल देकर और अपने शरीर द्वारा शिव की पूजा करती है। परभृत (कोकिल) के डर से हाथ में पायस लेकर वायस को निकट बुलाती है। राजा शिवसिंह रूपनारायण विरह की शान्ति (प्रतिकार) करेंगे।

(१७)

गगन गरज मेघा उठए धरनि थेघा[१]
पचसर[२] हिय गेल सालि।

से धनि देखलि खिन जिवति आजुक दिन[३]
के जान कि होइति कालि॥

माधव मन दए सुनह सुबानी[४]।

कुजन निरुपि सुजन सखि संगति
जे किछु कहए सयानी[४]॥

की हमे साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक चन्दा।

ऐसन कए पियाए मोर मुख मानल
मो पति जीवन मन्दा॥

वामहु गति जत समदि पठौलनि[७]
से सबे कहि कहि गेलि।

तेरसि तिथि ससि सामर पथ निसि
दसमि दसा मोरि भेलि[५]॥

भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
मने जनु मानह आने
राजा सिवसिंघ रुपनरायन
लखिमा पति रस जाने[८]॥

न० गु० तालपत्र ७५५, रागत पृ० ११४, नेपाल ८१, पृ० ३० क, पं० १, अ० ७५०

पद सं—१७८—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) गगन भरल मेघ उठलि धरनि थेवे (२) पचसरे (३) जेअ ओसे देह चीण जिउति आछक दिन। (४) कन्हायी अवहु विसर सवे रोपे
पुरुप लखिए कलाखरा पारिअ नाधिक ठाहिम देस।
(५) कोपेहु गुतिसवे समाद पठावाथ
दुति कहि से गेलि
तेअ सित तिथे सामर पथ ससि
तइक सनिद सामोरि भेलि।"

रागत के अनुसार पाठान्तर—(३) सुमुखि देह खिन जिउत आजिक दिन (६) सुनु तसु वानी (७) पठओलन्हि (८) लखिमा देवि रमने।

(१८०)

खने सन्ताप सीत जर[1] जाड़ ।
की उपचरब सन्देह न छाड़ ॥
उचितओ भूसन मानए भार ।
देह रहल अछ सोभासार ॥
ए हरि तोरित करिअ अवधारि[2] ।
जे किछु समदलि सुन्दरि नारि[3] ॥
वेदन मानए चानन[4] आगि ।
वाट हेरए तुअ अहनिसि जागि ॥
जीनल वदन इन्दु[5] तेँ ताव ।
की दहु होइति[6] एहि परथाव ॥
नव आखर गद गद सर रोए ।
जे किछु सुन्दरि समदल गोए ॥
कहए[7] न पारिअ तसु अवसाद ।
दोसरा पद अछ सकल समाद ॥
भनइ विद्यापति एहो रस जान ।
अबुझ न बुझए बुझए मतिमान ॥

राजा सिवसिंघ परतख देओ ।
लखिमा देइ पति पुनमत सेओ ॥

—नेपाल १६१, पृ० ६८ घ, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि तालपत्र न० गु० ७६६, अ० ७६० ।

शब्दार्थ—सीत—शीत; जर जाड़—ज्वर जलाता है; अवधारि—निश्चय; समदलि—सम्वाद दिया; चानन आगि—अग्नितुल्य चन्दन; वाट—पथ; तेँ—इसी कारण; ताव—तापित करता है; परथाव—प्रस्ताव ।

अनुवाद—क्षण में शीत सन्तापित करता है, (क्षण में) (विरह) ज्वर जलाता है, किस प्रकार उपशम होगा, निर्णय नहीं किया जाता । अभ्यस्त भूषण को भी भार मानती है, देहमात्र ही शोभासार रह गई है । हे हरि, सुन्दरी बाला ने कुछ सम्वाद भेजा है, शीघ्र अवधारण करो । चन्दन में अग्नि (तुल्य) वेदना (यातना) अनुभव करती है, अहर्निशि जाग कर तुम्हारा पथ देखती है । मुख ने चन्द्रमा की जय की थी, इसी कारण वह तप्त करता है (बदला ले रहा है) । इस प्रस्ताव से क्या होगा ? (इस अवस्था में पड़ कर उसका क्या होगा ?) । सुन्दरी ने रुदन करके गद्गद् स्वर से नव अक्षर में गोपन करके जो कुछ भी सम्वाद दिया (तुमको कह रही हूँ) । उसका अवसाद कह नहीं सकती (वर्णन नहीं कर सकती) । द्वितीय पद में सब सम्वाद है (की उपचरब सन्देह न छाड़—इसी में सब सम्वाद है—अर्थात् तुम्हारे विना गये और किसी उपाय से उसके सन्ताप का उपशम नहीं हो सकता । विद्यापति कहते हैं, इस रस का आभास—अबुझ न समझेगा, मतिमान ही समझेगा राजा शिवसिंह प्रत्यक्ष देवता, वे पुण्यवान (और) लखिमा देवी के पति हैं ।

पद-सं० १८० नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) जल (२) ए सखि तुरित कहइ अवधारि (३) ते वर नारि (४) भेदल मानए चान्दन (५) इन्दु वदन (६) होएत की दहु (७) कहइ । "दोसरा—समाद" के बाद भनइ विद्यापतीत्यादि है ।

विद्यापति कहते हैं, सुन युवतिश्रेष्ठ, मन में शोक मत करना। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमादेवी के रमण हैं।

ग्रियर्सन के पाठ का "हरि हरि" से लेकर शेष तक का अनुवाद—

हरि हरि बोलती हुई जमीन पर भार देकर फिर उठती है, रात्रि जाग कर काटती है, तुम्हारा प्रेम तुमको जीवन में ही फेर देगी, इसी लिए धनी बची हुई है। विद्यापति कहते हैं कि हे मथुरापति, सुनो, जाने में विलम्ब मत करना, जाकर उसको अधर सुधारस पान करवाओ, तब उसके प्राण बचेंगे।

(१८२)

कत कत भमि पुरुस देखल
कत कलावति नारि।
जिव सयँ पेम पलके उपजइ
सबे से बुझ विचारि॥
तकरि आसा देखि देखि तबे
मोहि न रह गेआन।
जाहि बधतव से जेहेन कर
ताँह चाहि नहि आन॥
माधव कहओँ तोहि बुझाइ।
से अब मरन सरन जानलि
तोहर विरह पाइ॥

धरनि सयन मुदल नयन
नलिन मलिन समे।
कते जतने बोलिकहु धनि तोरि
बइसाउलि हमे॥
तैअओ जदि पुछले न वाजलि
वचन न सुन आघे।
सुमरि से सखि तोह मोह गेलि
विधि वसे भेलि वाधे॥
पीरिति गुन विपरीत होए साए
विसरि न कर नाह।
दिवस दोसे से की नहि सम्भव
पेम परानहु चाह॥

भनइ विद्यापति सुनु तयँ जुवति
रस नहि अवसान।
राजा सिरि सिवसिंघ जिवओ
लखिमा देइ रमान॥

तालपत्र न० गु० ७७१, अ० ७६६।

शब्दार्थ—जिवसयँ—प्राण से; तकरि— उसका; आसा—मुख; जाहि—जिसको;

अनुवाद—भ्रमण करके कितने पुरुष और कलावती नारियों को देखा। प्राण से प्रेम पलक में उत्पन्न होता है,

(१८१)

माधव जानल न जिवति राही।
जतवा जकर लेले छलि सुन्दरि
से सबे सोपलक ताही॥
सरदक ससधर मुखरुचि सोपलक
हरिन के लोचन लीला।
केसपास लए चमरिके सोपल
पाए मनोभव पीला॥

दसन दसा दालिव के सोपलक
बन्धु अधर रुचि देली।
देहदसा सउदामिनि सोपलक
काजर सनि सखि भेली॥
भऊँहेरि भङ्ग अनङ्ग चाप दिहु
कोकिलके दिहु बानी।
केवल देह नेह अछ लओले
एतवा अएलाहु जानी॥

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
चिते जनु झाँखह आने।
राजा सिवसिंघ रुपनराअन
लखिमा देइ रमाने॥

तालपत्र न० गु० ७६६, ७८४ (दोबार मुद्रित), ग्रियर्सन १०, अ० ७६५, ८७६ (दो बार मुद्रित)

शब्दार्थ—जतवा—जो कुछ; जकर—जिसका; लेले छलि—लिया था; सोपलक—सौंप दिया; ताही—उसी को; मनोभवपीला—कामवेदना; दालिव के—दाड़िम को; नेह—स्नेह, प्रेम; जनु झाँखह—शोक मत करना।

अनुवाद—माधव, जान गई कि राधा अब और नहीं बचेगी। सुन्दरी ने जिससे भी जो कुछ लिया था उसे वह लौटा दिया। मनोभव की पीड़ा पाकर (विरह-व्यथित होकर) शरद् के चन्द्रमा के समान मुखशोभा चाँद को, लोचन-लीला हरिण को और चामरी को केशपाश लौटा दिया। दाड़िम को दन्तशोभा, वान्धुलि को अधर-रुचि, सौदामिनी को देहरुचि लौटा दी और सखी काजल के समान (मलिन) हो गयी। भ्रूभंग अनंग के धनुष को दे दिया, कोकिल को कंठस्वर दे दिया; केवल उसका शरीर प्रीतिमात्र लेकर रह गया है; यह सब जानकर आई हूँ।

पद न० १८१—पाठान्तर—ग्रियर्सन में इस पद का निम्नलिखित पाठान्तर पाया जाता है—

माधव आव न जीउति राही।
जतवा जनिवार लेने छलि सुन्दरि
से सबे सोपलक ताही॥

चानक शशिमुखि शशि केँ सोपलन्हि
हरिनके लोचन लीला।
केसक पास चामरु काँ सोपलन्हि
पाए मनोभव पीड़ा॥
दसन नीज दाड़िम केँ सोपलन्हि
पिक के सोपलन्हि वाणी।
देहदसा दामिनि केँ सोपलन्हि
इ सम एलहुँ जानी॥

हरि हरि कय पुनि उठति धरणि धरि
रैन गमावय जागी।
तोहर सिनेह जीवदय जायथि
रहलिहि धनि एत लागी॥
भनहिँ विद्यापति सुनु मधुरापति
गमन न पुरिए विलम्बे।
जाइ पिआविए अधर सुधारस
तो पय जीवथि जीवे।

न० गु० ने इस पद को तालपत्र से लिया है; किन्तु एक ही पद दो बार छपा है। उनका ७८४वाँ पद "सरदक ससधर मुखरुचि" से आरम्भ हुआ है और उसके बाद 'माधव, जानल न जिवति राही आदि है।

विद्यापति कहते हैं, सुन युवतिश्रेष्ठ, मन में शोक मत करना। राजा शिवसिँह रुपनारायण लखिमादेवी के रमण हैं।

ग्रियर्सन के पाठ का "हरि हरि" से लेकर शेष तक का अनुवाद—

हरि हरि बोलती हुई जमीन पर भार देकर फिर उठती है, रात्रि जाग कर काटती है, तुम्हारा प्रेम तुमको जीवन में ही फेर देगी, इसी लिए धनी बची हुई है। विद्यापति कहते हैं कि हे मथुरापति, सुनो, जाने में विलम्ब मत करना, जाकर उसको अधर सुधारस पान करवाओ, तब उसके प्राण बचेंगे।

(१८२)

कत कत भमि पुरुस देखल
कत कलावति नारि।
जिव सयँ पेम पलके उपजइ
सबे से बुझ विचारि॥
तकरि आसा देखि देखि तबे
मोहि न रह गेआन।
जाहि वधतव से जेहेन कर
ताँह चाहि नहि आन॥
माधव कहओँ तोहि बुझाइ।
से अब मरन सरन जानलि
तोहर विरह पाइ॥

धरनि सयन मुदल नयन
नलिन मलिन समे।
कते जतने बोलिकहु धनि तोरि
बइसाउलि हमे॥
तैअओ जदि पुछले न वाजलि
वचन न सुन आधे।
सुमरि से सखि तोह मोह गेलि
विधि वसे भेलि वाधे॥
पीरिति गुन विपरीत होए साए
विसरि न कर नाह।
दिवस दोसे से की नहि सम्भव
पेम परानहु चाह॥

भनइ विद्यापति सुनु तयँ जुवति
रस नहि अवसान।
राजा सिरि सिवसिंघ जिवओ
लखिमा देइ रमान॥

तालपत्र न० गु० ७७१, अ० ७६६।

शब्दार्थ—जिवसयँ—प्राण से; तकरि— उसका; आसा—मुख; जाहि—जिसको;

अनुवाद—भ्रमण करके कितने पुरुष और कलावती नारियों को देखा। प्राण से प्रेम पलक में उत्पन्न होता है,

उसे सब विचार कर समझते हैं। उसका मुख देखते देखते मेरा ज्ञान नहीं रहा, जिसका बध करोगे, चाहे जो कुछ भी करो, उसका तुम्हें छोड़ कर अन्य कोई नहीं है। माधव, तुमको समझा कर कहती हूँ, वह तुम्हारा विरह पाकर अब मरण की शरण जान गई है। धरणी पर शयन, मुँदे हुए नयन, मलिन नलिनी के समान। कितना यत्नपूर्वक समझा कर तुम्हारी धनी को बैठाया। तथापि पूछने पर नहीं बोलती; आधी बात भी नहीं सुनती, तुमको स्मरण करके सखी मोहप्राप्त हुई, विधि-वश बाधा पायी (उसने दुख पाया)। सखी के पक्ष में प्रीति का गुण विपरीत हुआ, हे नाथ, उसको विस्मृत मत करना। समय के दोष से क्या सम्भव नहीं है, प्रेम प्राण ही चाहता है। (प्रेम के लिए वह प्राण दे रही है)। विद्यापति कहते हैं, हे युवति सुन, रस का अवसान नहीं हुआ। लखिमादेवी के वल्लभ राजा श्री शिवसिँह जीवित रहें।

(१८३)

मोरी अविनए जत पललि खेओँब तत
चिते सुमरबि मोरि नामे।
मोहि सनि अभागिनि दोसरि जनु होअ
तन्हि सम पहु मिल कामे॥
माधव मोरि सखि समन्दल सेवा।
जुवति सहस संगे सुख विलसब रंगे
हम जल आजुरि देवा॥
पुरब प्रम जत निते सुमरब तत
सुमर जत न होअ सेखे।
रहए सरिर जवों कीन भुँजिअ तवों
मिलए रमनि शत संखे॥
पेअसि समाद सुनिए हरि विसमय
करु पाए ततहि वेरा।
कवि भने विद्यापति रुपनराएन
लखिमा देइ सुसेना॥

नेपाल २०; न० गु० ७७२: नेपाल २०, पृ ६ क, पं १; अ० ७६६।

शब्दार्थ—अविनय—अपराध; खेओंब—क्षमा करेंगे; मोहि सनि—हमारे समान; दोसरि जनु होअ—कोई दूसरा न होवे; समन्दल—निवेदन किया; आजुरि—अञ्जलि; निते—नित्य; सुमरब—स्मरण करेंगे; विसमय—विस्मय।

अनुवाद—मुझ से जितना अविनय (अपराध) हुआ, सब क्षमा करेंगे, चित्त में मेरा नाम स्मरण करेंगे। मुझ समान अभागिनी और कोई दूसरा न होवे, उनके समान प्रभु कामना करने ही से (मानों) मिल जाए। माधव, मेरी सखी ने सेवा निवेदन किया है (पूर्वोक्त बात कह कर राधा ने सखी को कृष्ण के पास भेजा था। इसके बाद की बात भी राधा ही की है)। सहस्र युवतियों के संग रंग-विलास करेंगे, मुझे जल-अञ्जलि देंगे। पूर्व प्रेम नित्य स्मरण करेंगे, वह (मानों) समाप्त ही नहीं होगा। यदि शरीर रहे अथवा भोग करे, लाखो रमणियाँ मिलेंगी। प्रेयसी का सम्वाद सुन हरि विस्मित हो गए, उसी समय लौटने का उपाय किया। विद्यापति कवि कहते हैं, राजा रूपनारायण लखिमा देवी के सुशरण हैं।

(१८४)

करहि मिलल रह मुख नहि सुन्दर
जनि खिन दिवसक चन्दा[1]
प्रकृति न रह थिर नयन गरञ[2] निर
कमल गरए[3] मकरन्दा ॥
हे माधव तुम गुने झामरि रामा[4] ।
दिने दिने[5] खिन तनु पिड़ए कुसुमधनु
हरि हरि ले पए नामा ॥
निन्दञ चन्दन परिहर भुसन
चाँद मानए जनि आगी ।
दसमि दसा अब ते धनि पाओल[6]
वधक होएवह[7] तोँहे भागी ॥
अवसर वहला[8] कि नेह बढ़ाओव
विद्यापति कवि भान ।[9]
राजा सिवसिंघ रुप नराअन
लखिमा देइ रमान[10] ॥

तालपत्र न० गु० ७८०, रामभद्रपुर ६६, अ० ७८१ ।

शब्दार्थ—जनि—जैसे; खिन—क्षीण; गरए निर—जल गिरता है; झामरि—मलिन; पिड़ए—पीड़ा देना; अवसर बहला—समय बीत गया; नेह बढ़ाओव—स्नेह बढ़ावेंगे ।

अनुवाद—(सर्वदा) करतललग्न मुख में सौन्दर्य नहीं है, जैसे दिवस का चन्द्रमा हो। प्रकृति स्थिर नहीं है, नयनों से अश्रु जारी है (जैसे) कमल से मधु झर रहा है। हे माधव, तुम्हारे गुण से सुन्दरी मलिन (हो गयी है), दिन-दिन शरीर क्षीण हो रहा है, मदन पीड़ा दे रहा है, हरि हरि नाम ले रही है। चन्दन की निन्दा करती है, भूषण का त्याग करती है, चन्द्रमा को मानों अग्नि समझती है। अब धनी ने दसवीं दशा प्राप्त की है, तुम वध के भागी होवोगे। विद्यापति कवि कहते हैं, अवसर बीत जाने पर क्या प्रेम बढ़ावेंगे? राजा शिवसिँह रुपनारायण लखिमादेवी के रमण हैं।

प. स. १८४ –रामभद्रपुर पोथी का पाठान्तर—(१) जनि अवसिन दिन चन्दा (२) गलए (३) झरए (४) वामा (५) दिन दिन (६) तेँ धनि दसमि-दसा लग पाओल (७) होएव (८) गेले (९) भाने (१०) "राजा सिवसिंघ......" प्रभृति नहीं है।

(१८५)

सखिजन कन्दरे थोइ कलेवर
घर सवे वाहिर होय[१] ।
विनि अवलम्वने उढइ न पारइ
अतये निवेदलूँ तोय ।।
माधव कत परवोधव तोय ।
देह दिपति गेल हार भार भेल
जनम गमाओल रोय[२] ।।

अङ्गुरि वलया भेल कामे पिन्धायल
दारुन तुया नव नेहा ।
सखिगन साहसे छोइ न पारइ
तन्तुक दोसर देहा ।
नवमि दसा गेलि[३] देखि आओलूँ[४] चलि
कालि रजनि अवसाने ।
आजुक एतखन गेल सकल दिन
भाल मन्द विहि पए जाने ।।

केलि कलपतरु सुपुरुख अवतरु
नागर गुरुवर रतने ।
भनइ विद्यापति सिवसिंघ नरपति
लखिमा देइ परमाने[५] ।।

पं० त० १६३० प० स० पृ १४०; न० गु० ७८७, अ० ७७८

शब्दार्थ—कन्दरे—कन्धा पर; घरसवे—घर से; अतये—अतएव; गमाओल—काटा; पिन्धायल—पहनाया; तन्तुक दोसर देहा—देह सूत के समान हुई।

अनुवाद—सखियों के कन्धे पर शरीर रख कर घर से वाहर होती है; विना सहारा के उठ नहीं सकती; इसीलिए तुम से निवेदन कर रही हूँ। माधव, तुमको कितना प्रवोध दें (समझावें)? उसकी देह-दीप्ति चली गयी, हार भार हुआ, रोते-रोते जीवन वीत रहा है। अङ्गुरी-वलय हुआ, तुम्हारा नवीन प्रेम दारुण है, काम ने उसे पहनाया (वलय)। सखियाँ साहस करके भी उसे छू नहीं सकती हैं, सूत के समान शरीर हो गया। कालरात्रि का शेष देख आयी हूँ (विरह में) नवमी दशा हो गयी है। आज अभी तक समस्त दिन वीत गया, अच्छा बुरा (वची है कि मर गयी है) विधाता ही जानें। विद्यापति कहते हैं, लखिमा देवी के वल्लभ सुपुरुष हैं, रत्ननागरों में श्रेष्ठ गुरु शिवसिंह नरपति केलि कल्पतरु (के रूप में) अवतीर्ण हुए हैं।

प. त. १८५—प. स. के अनुसार पाठान्तर—(१) होइ (२) रोइ (३) गेइ (४) आओलों
(५) राजा सिवसिंघ रुपनाराएन लछिमा देवि परमाने।

(१८६)

करे कुचमण्डल रहलिहुँ गोए[1]
कमले, कनक-गिरि झाँपि न होए ॥
हरख सहित हेरलन्हि[2] मुख-काँति ।
पुलकित तनु मोर धर कत भाँति ॥
तखने[3] हरल हरि अञ्चल मोर ।
रस भरे ससरु कसनिकेर डोर[4] ॥

सपना एकि सखि देखल मोयँ[5] आज
तखनुक कौतुक कहइते लाज ॥
आनन्दे नोरे[6] नयन भरि गेल ।
पेमक आँकुरे[7] पल्लव देल ॥
भनइ विद्यापति सपना सरूप ।
रस बुझ रुपनरायन भूप ॥

तालपत्र न० गु० ७६७, ग्रियर्सन ३२, अ० ७६८।

शब्दार्थ—गोए—छिपा कर; झाँपि न होए—झाँपा नहीं जाता; हरख—हर्ष; मुख-काँति—मुख की कान्ति; ससरु—शिथिल हुआ; कसनिकेर डोर—कसनी की डोर, नीविबन्ध।

अनुवाद—हाथ रख कर कुचमण्डल को छिपा कर रखा, किन्तु (कर) कमल से (कुचरूप) कनकगिरि ढाँका नहीं जा सकता। उसने मेरे मुख का सौन्दर्य आनन्दसहित देखा, मेरे पुलकित शरीर ने कितना भार सहन किया। उसी समय हरि ने मेरा आँचल छीन लिया, रस से भरे हमारे नीवि-बन्धन खुल गए। सखि, आज मैंने एक स्वप्न देखा; उस समय का कौतुक कहते लज्जा होती है। आनन्दाश्रु से नयन भर गए प्रेम का अङ्कुर पल्लवित हुआ। विद्यापति कहते हैं, स्वप्न सत्य है, रुपनारायण भूप रस समझते हैं।

(१८७)

जँओ हम जनितहुँ तनि तह
उपजत मदन वेयाधि।
बाहु फास लए फसितहुँ
हसितहुँ अभिमत साधि ॥
सुमुखि भइए हसि हेरितहुँ
फेरितहुँ सखि तन खेद ।
मनसिज सर नहि सहितहुँ
रहितहुँ हमे निरभेद ॥

परसनि भइ रति सजितहुँ
वजितहुँ लाज निवारि ।
कय परिरम्भन गवितहुँ
भरितहुँ गुन अवधारि ॥
अजस सुजस कय गुनितहुँ
सुनितहुँ नहि उपहास ॥
मनओ नहि हरि परिहरितहुँ
करितहुँ मन न उदास ॥

नारि मनोरथ अभिमत
सत सत रहस निरुप।
कवि विद्यापति गाओल
रस बुझ सिवसिंघ भूप ॥

न० गु० ८२८ (मिथिला का पद): अ० ८२८।

ग्रियर्सन का पाठान्तर— १) करि कुचमण्डल रखलहुँ गोए (२) हेरलहुँ (३) तखन ४) रस भर समरु कसनि केर डोर (५) देखलि में (६) आनन्दनोर (७) प्रेमक आँकुर (८) विद्यापति कवि कौतुक गाव। राजा सिवसिंघ बुझ रसभाव॥

शब्दार्थ—जँओ—यदि; तनि—उससे; तह—से; उपजत—उपजेगा; फास—पाश; फसितहुँ—बाँधती; भये—होकर; फरितहुँ—दूर करती; निरखेद—अभेद; परसनि—प्रसन्ना; बजितहुँ—कहती; परिरम्भन—आलिंगन; गवितहुँ—गाती; परिहरितहुँ—छोड़ती।

अनुवाद—यदि मैं जानती कि उससे मदन-व्याधि उत्पन्न होगी, (तो) बाहुपाश में बाँधती और अभिलाषा पूर्ण करके हँसती। (उसके) सामने फिर कर हँस कर देखती, सखि, देह की यातना दूर करती। कन्दर्प का शर सहने नहीं करती, मैं (उसके साथ) अभेद होकर रहती। प्रसन्न होकर रतिसज्जा करती, लज्जा निवारण करके बातें कहती, आलिंगन करके गान करती, गुण अवधारण करके धारण करती। अयश को सुयश समझती, उपहास की परवाह नहीं करती, मन से भी हरि का परिहार नहीं करती, मन को उदास नहीं करती। नारी के अभिमत मनोरथ से सैकड़ों रहस्य का निरूपण होता है। विद्यापति कवि गाते हैं कि शिवसिंह भूप रस समझते हैं।

(१८८)

साहर मजर भमर गुजर
केकिल पंचम गाव।
दखिन पवन विरह वेदन
निठुर कन्त न आव॥
साजनि रचह सेहे उपाए।
मधु मास जन्वों माधव आवए
विरह वेदन जाए॥
अछल अंगज भेल अनंगज
धनु रिवारल हाथ।
नाह निरदय तेजि पड़ाएल
ओड़ल हमर माथ॥

एक बेरि हरे भसम कएलाहे
दुसह लोचन आगी।
पुनु अहिर कुल जनम लेलह
विरहि वधए लागि॥
जन्वों तोहि पावओं अरे विधाता
बाँधि मेलओं अन्ध कूप।
जाहेरिँ नाह विचखन नाही
ताकेँ काँ दिय रूप॥
आनकइ रूप हित पए करए
हमर इ भेल काल।
दिने दिने दुख सहए पारन्वो
पड़ए अधिक भार॥

तालपत्र न० गु० ६५५, अ० ८७३।

शब्दार्थ—साहर—सहकारः मजर—मञ्जुरित; न आव—नहीं आता; रचह—रचना करो; अछल अंगज भेल अनंगज—इसका शब्दगत अर्थ है 'पहले अंगजात था, अब अनंग जात हुआ' किन्तु नगेन्द्र गुप्त ने अर्थ किया है—"काम अंगज था, अंगशून्य (आकार शून्य) हुआ।" रिवारल—जल्दी की; पड़ाएल—भागा। ओड़ल—दिखा दिया। दुसह लोचन आगी—दुसह नयनाग्नि के द्वारा; आहिर—गोप; मेलओं—निक्षेप करती हूँ; जाहेरि—जिसका; काँ—क्यों; आनक—अन्य का।

पद न० १८८—*मन्तव्य*—यह पद किसी भी प्राचीन पुस्तक में नहीं पाया जाता। न० गु० ने इसका लोगों के मुख से सुन कर संग्रह किया था। इसी लिए इसकी भाषा नवीन है।

अनुवाद—सहकार मञ्जुरित हो गया, भ्रमर गुंजन कर रहा है। कोकिल पंचम गान कर रहा है। दक्षिण पवन विरह-वेदना वहा कर ला रहा है, निष्ठुर कान्त नहीं आता। हे सखि, ऐसा कोई उपाय करो जिससे मधुमास में माधव आ जाय और विरह-वेदना मिट जाय। ('अछल अंगज भेल अनंमज' इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसी प्रकार के किसी दूसरे पाठ का अर्थ है—जो अनंग था, वह अंगयुक्त हुआ)। हाथ में धनुशर लेकर (दौड़ा), निर्दय नाथ मुझे छोड़ कर भाग गए. मदन ने मुझे पकड़ लिया। एक बार हर ने दुसह लोचनाग्नि के द्वारा भस्म किया था, फिर विरहियों का वध करने के लिए गोपकुल में जन्म ले लिया। अरे विधाता, यदि तुमको पावें, बाँध कर अन्धकूप में गिरा दें, जिसका नाथ विचक्षण नहीं है, उसको रूप क्यों देते हैं? अन्य के पक्ष में रूप मङ्गल करता है, (परन्तु) मेरा (पक्ष में) काल हुआ। दिन दिन दुख सहन नहीं कर सकती, अधिक भार हुआ।

निकुँज मन्दिर गुँजरे भ्रमर
कोकिल पंचम गाव।
दखिन पवन विरह वेदन
निठुर क़ान्त न आव॥
सजनि रचह हेन उपाय।
मधुमासे जव माधव आओव
विरह वेदन जाय॥

अनंग जे छिल अङ्ग भइ गेल
धनु शर करि हाथ।
नाह निरदय भाजि पलाओल
चढ़ल हमारि माथ॥
ये कुले विरह भसम करिल
तिसर लोचन आगि।
पुन हरि कुले जनम लभिल
हमारि वधक लागि॥

भने विद्यापति सुनह युवति
आकुल न कर चित।
राजा शिवसिंह रूप नारायण
लछिमा देवि सहित॥

इस पद में मैथिल पद का "साहर मंजर" 'निकुंज मन्दिरे' हो गया, सम्भवतः वैष्णवीय आवेष्टनी सृष्टि की चेष्टा के लिए अथवा साहर मजर (सहकार मजुंरित) शब्द का अर्थ ही नहीं लगा। 'तेजि पड़ाएल' शब्द पढ़ा नहीं गया अथवा श्रुति का दोष हुआ अथवा ग्राम्यतादोष दुष्ट 'भाजि पलाओल' हो गया है [जिसका अर्थ करने से होता है—नाथ अनंग के भय से भाग गए—अमूल्य विद्याभूषण और खगेन्द्र मित्र के संस्करण के ८४८ वें पद का अनुवाद। 'एक वेरि हरि भसम कएलाहे' प्रभृति संगतिहीन, 'ये कुले विरह' एवं 'पुनह अहिर कुल जनम लेलह' अर्थहीन 'पुन हरि कुले जनम लभिल' के रूप में अन्तरित हुआ है। बंगाल के प्रचलित पद में मैथिल पद का शेष चार चरण अर्थात् 'जनों तोहि पावओं अरे विधाता' इत्यादि नहीं है। मैथिलपद में भनिता नहीं पायी जाती, लेकिन बंगाल में है।

मन्तव्य और पाठान्तर—यह सुन्दर पद बँगाल देश में किस तरह विकृत हुआ था यह पदरत्नाकर का २३वाँ पद और अमूल्य विद्याभूषण के संस्करण का ८४८ वाँ पद पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है। वह इस प्रकार छपा है:—

(१८६)

सखि हे वैरि भेल मोर निन्द।
मदन-खर-शरे देह जरजर
छाड़ि चलल गोविन्द॥

जे पथे गेल मोर प्राण-वल्लभ
से पथ वलहारि याओ।
चाँपा नागेशर कि फुल फुटल
कोकिल घन करे राओ॥

ए कुले गंगा ओ कुले यमुना
माझे चन्दन कोक।
ये कानुर गुणे हिया जरजर
से कानु से दिल शोक॥

भने विद्यापति सुनह युवति
मने न करिह रोख।
राजा शिवसिंह रूपनारायण
याहाँ गुण तहाँ दोख॥

अप्रकाशित पदरत्नावली २ (पदरत्नाकर), अ० ८४१

शब्दार्थ—कोक—चक्रवाक; रोख—रोप।

अनुवाद—हे सखि, निद्रा मेरा शत्रु हुई। मदन के तीक्ष्ण शर से देह जर्जरित, (उस पर भी) गोविन्द छोड़ कर चले गए। जिस पथ से मेरे प्राण वल्लभ गए, उस पथ की (शोभा की) बलिहारी जाऊँ। (उस पथ में) चम्पक, नागेश्वर प्रभृति फूल फूटे एवं कोकिल ने घनरव किया। इस ओर (मानस) गंगा, उस ओर जमुना, बीच में चन्दन और चक्रवाक। जिस कानु के गुण से मेरा हिया जर्जर उसी ने मुझको दुख दिया। विद्यापति कहते हैं, हे युवती, सुन, मन में राग मत करना। राजा शिवसिंह रूपनारायण। जहाँ गुण है, वहीं दोप।

(१६०)

कीर कुटिल मुख न वुझ वेदन दुख
वोल वचन परमाने।
विरह वेदन दह कोक करन सह
सरुप कहन के आने॥

हरि हरि मोरि उरवसि की भेली।
जोहइते आवओ कतहु न पावओ
गुरुहि खसओ कत वेली॥

गिरि नरि तरुअर कोकिल भ्रमर वर
हरिन हाथि हिमधामा।
सभक परओ पय सबे भेल निरदय
केओ न कहे तसु नामा॥

मधुर मधुर धुनि नेपुर रव सुनि
भमओं तरंगिनी तीरे।
मोरे करमे कलहंस नाद भेल
नयन विमुओं नीरे॥

मन्तव्य (पद नं० १८९)—इस पद की भाषा अथवा भाव विद्यापति के समान नहीं है। सम्भवतः पूर्वोक्त (१८८) पद के समान यह पद भी अत्यन्त विकृत होकर इस रूप में आ गया है।

हरि हरि कोन परि मिलति से परसनि
कवि विद्यापति भाने।
लखिमा देइ पति सकल सुजन गति
नृप सिवसिंघ रस जाने ॥

न० गु० (नाना) ३, अ १००१

शब्दार्थ—कीर—सुग्गा; कोक—चक्रवाक; उरवसि—उर्व्वशी; जोहइते—खोजते; वेली—वार; नरि—नदी; हिमधामा—चन्द्र; भमओं—भ्रमण करता हूँ।

अनुवाद—सची बात बोलता हूँ, सुग्गा का कुटिल मुख वेदना का दुख नहीं समझता। चक्रवाक विरह-वेदना से दग्ध है, कातरता सहन करता है, और कौन सची बात कहेगा? हाय, हाय, हमारी उर्व्वशी क्या हुई? उसको खोजते हुए दौड़ रहा हूँ, कहीं भी नहीं पाता, कितनी बार मूर्च्छित होकर गिर जाता हूँ। गिरि, नदी, तरुवर, कोकिल, भ्रमरवर, हरिण, हस्ति, चन्द्र, सबों का पाँव पड़ रहा हूँ, सब निर्दय हो गए, कोई उसका नाम नहीं कहता। मधुर नूपुर की मधुर ध्वनि सुन कर तरंगिनी के किनारे जाता हूँ, हमारे कपाल(भाग्य) से कलहंस नाद हो जाता है (नूपुर की ध्वनि के भ्रम में जिसका अनुसरण करता हूँ वह कलहंस के रव में परिणत हो जाता है।) नयनों से अश्रु-त्याग करता हूँ। हाय, हाय, वह किस प्रकार प्रसन्न होकर मिलेगी? विद्यापति कवि कहते हैं, लखिमा देवी के पति, सकल सुजन की गति, नृप शिवसिंह रस जानते हैं।

(१६१)

सपने देखल हरि गेलाहुँ पुलके पूरि
जागल कुसुम सरासन रे[1]।
ताहि अवसर गोरि नीन्द भांगलि मोरि
मनहिं मलिन भेल वासन रे[2]।

की सखि पओलह सुतलि जगओलह
सपनहुँ संग छड़ओलह रे।
सामर सुन्दर हरि रहल आँचर धरि
फाअइतें किङ्किनि माला रे[1]।

१९०—मन्तव्य—इतिहास प्रसिद्ध महाराज नन्दकुमार के गुरुदेव राधामोहन ठाकुर ने अष्टादश शताब्दी के मध्यभाग में पदामृत समुद्र में इस पद को विद्यापति का बतलाया है। वे एक प्रसिद्ध पण्डित, कवि, एवं रसज्ञ पुरुष थे; सुतरॉं उनका मतामत खूब श्रद्धा के साथ आलोचना के योग्य है। इस पद की भाषा एकदम बंगला हो गयी है, किन्तु इसका भाव सुन्दर है। विद्यापति को बंगालियों ने कितना आत्मसात् कर लिया है इसका अन्यतम प्रमाण इस पद की भाषा है।

१९१—मन्तव्य—नगेन्द्र गुप्त महाशय ने इस पद को किसी प्राचीन पोथी में नहीं पाया, लोकमुख से सुन कर संकलन किया है। उर्व्वसी के विरह में पुरुरवा का खेद इस पद का विषय है। विद्यापति की रचना शैली के साथ केवल 'गिरिनदी तरुवर कोकिल भ्रमर, हरिण, हस्ती और चन्द्रके' उर्व्वसी की क्या जिज्ञासा में मिलती हैं। नायिका के विभिन्न अंगों से इनकी तुलना की गयी है। अन्यान्य अंश वैशिष्ट्य-हीन है।

आओर कहब कत रस उपजल जत
के बोल कान्ह गोआला रे।
ससरि सअनसिम हरि गहलिहुँ गिम
मुखे मुखे कमल[४] कमल मिलुरे ॥

पुरलि सकल[५] सिधी सहजें आइलि निधि[६]
तोर दोखे दइब आधोलिलिहु रे[७]
भनइ विद्यापति अरे रे वरयुवति
अनुसअ पेम पुराण रे।

राजा सिवसिंह रुपनाराएन
लखिमा देवी रमाना रे।

रामभद्रपुर पोथी, पद ३०५, रागतरंगिनी, पृष्ठ-२४

अनुवाद—स्वप्न में हरि को देखा, मन पुलक से पूर्ण हुआ, मदन जाग उठा, उसी अवसर पर, गोरि, तुमने मेरी नींद तोड़ दी, मन की वासना मलिन हो गयी। सखि जाग, सो कर और क्या पाया? स्वप्न में भी जो मिलन होता था वह भी भंग हुआ। (स्वप्न में देखा था) श्यामल सुन्दर हरि मेरा आँचल धरे हुए हैं, किंकिणी का बन्धन खोल रहे हैं। (मिलन में) कितना रस मिला क्या कहें? कौन कहता है कि कन्हायी ग्वाला (अरसिक) हैं? शय्या के प्रान्त में आकर हरि ने कण्ठ-ग्रहण किया, मुख से मुख मिलाया, मानों भ्रमर कमल पर बैठा है। (रा० त० के पाठमें) सकल सिद्धि का लाभ हुआ, सहज ही निधि हाथ लगी। तुम्हारे दोष से विधाता ने मेरी निधि छीन ली। विद्यापति कहते हैं कि हे वरयुवती! पुरातन प्रेम का अनुसरण करो। लखिमा देवी के रमण रूपनारायण राजा शिवसिंह हैं।

(१९२)

कत न दिवस लए अछल मनोरथ
हरि सयँ वढ़ाओव[१] नेहा।
से सब सकल भेल विहि अभिमत[२] देल
सहजे[३] आएल मझु[४] गेहा ॥

माइ हे[५] जनम कृतारथ भेला।
वदन निहारि अधर मधु पिविकहु[६]
हरि परिरम्भन देला ॥

पीन पओधर हरखि परसि[७] करु
निविबन्ध खोएलन्हि[८] पानी।
पुलकें पुरल तनु मुदित कुसुमधनु
गावए सुललित वाणी[९] ॥

तोयँ धनी पुनमति सब गुन गुनमति
विद्यापति कवि भान।
राजा सिवसिंघ रुपनाराएन
लखिमा देइ रमान ॥

नेपाल २३६, पृ० ८५ क, पं ४: न० गु० तालपत्र ८१८, अ ८१६९

रागत० का पाठान्तर—(१) हे (२) 'ताहि अवसर गोरि' प्रभृति चरण रा० त० में नहीं है एवं इसके परवर्ती चरण में, 'को मनि' के पहले 'आरे' शब्द है। (३) किङ्किनितोरा हे (४) भमर (५) मनक (६) आनि देहलि विहि (७) दैव करोरि लेल है।

रागतरंगिनी में भनितायुक्त चरण नहीं है, अथवा यह विद्यापति की रचना है इसका कोई निर्देश नहीं है; इसीलिए नगेन्द्र बाबू ने इसको अपने संग्रह में स्थान नहीं दिया है।

शब्दार्थ—लए—पकड़ के; सयँ—सहित; कृतारथ—कृतार्थ; पुनमति—पुण्यवती।

अनुवाद—कितने दिनों से मनोरथ था कि हरि के साथ स्नेह बढ़ाऊँ। वह सब सफल हुआ, विधिने अभिलाषा पूर्ण की, (माधव) सहज ही (स्वयं ही) मेरे घर आए। सखि, जन्म कृतार्थ हुआ, मुख निहार के, अधरमधु पान करके हरि ने आलिंगन किया। हर्षित होकर पीन पयोधरों का स्पर्श किया, हाथ द्वारा नीविबन्ध खोला। शरीर पुलक से पूर्ण हुआ, कुसुमधनु मदन आनन्दित होकर सुललित गान कर रहा है। विद्यापति कवि कहते हैं, धनि, तुम पुण्यवती हो, सकल गुण गुणवती। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के वल्लभ हैं।

(१६३)

हरिरव सुनि हरि गोभय गोभरि
गोतम गोधर लोटाइ रे॥

हरि रिपु रिपु सुख विदिसर सलदेय।
गोदिसे विदिसे वैराइ रे।
ए हरि जदि तोहे वरवस पेमे विरत रस।
वचन दए राखिअ राही रे।
कुम्भतनय भोजन सुत सुन्दरि
मुख वसि अवनत भेला रे।
सास समीर वान जनि तुजगी
हरि विनु सुहह हुन बोल रे।
समन्दलि ससिमुखि साते परण देलेखि
तेज सरापद दिय जानि रे
राजा सिवसिंह रुपनराएन
विद्यापति कवि वानि रे॥

नेपाल १०२ पृ० ३८ क, पं ५

इस प्रहेलिका का अर्थ नहीं मिला।

(१६४)

हरि सम आनन हरि सम लोचन
हरि तहाँ हरि वर आगी।
हरिहि चाहि हरि हरि न सोहावए
हरि हरि कए उठि जागी॥
माधव, हरि रहु जलधर छाई।
हरि नयनी धनि हरि-घरिनी जनि
हरि हेरइत दिन जाई॥
हरि भेल भार हार भेल हरि सम
हरिक भजन न सोहावे।
हरिहि पइसि जे हरि जे नुकाएल
हरि चढ़ि मोर बुझावे॥
हरिहि वचन पुनु हरि सयँ दरसन
सुकवि विद्यापति भाने।
राजा सिवसिंह रुपनराअन
लखिमा देई रसाने॥

न० गु० (प्र) १, अ० ६८२

इस प्रहेलिका का अर्थ नहीं मिला।

१९२—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) लाओव (२) से सबे सुफल भेल विहि अभिमत (३) सहजइ (४) मोर (५) सखि हे (६) अधर रस पिउलन्हि (७) दरसि परसलन्हि (८) फोएलन्हि (९) 'तखने उपजु रस भेलिहु परयम बोललन्हि सुललित वानि।' इसके बाद 'भनइ विद्यापतीत्यादि' है।

(१९५)

हरि पति वैरि सखा सम तामसि
　　रहसि गभावसि रोइ।
समन पिता सुत रिपु घरिनी सख
　　सुत तनु वेदन होइ॥
माधव तुअ गुने धनि वड़ि खानि।
पुररिपु तिथि रजनी रजनीकर
　　ताहू तह वड़ि हीनी॥

दिविसद पति सुअ सुअ रिपु वाहन
　　तख तख दाहिन मन्दा॥
ब्रह्मनाद सर गुनिकहु खाइति
　　छाड़ि जाएत सवे दन्दा॥
सारंग साद कुलिस कए मानए
　　विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रुपनराएन
　　लखिमा देइ रमाने॥

इस प्रहेलिका का अर्थ नहीं मिला। न० गु० (प्र) १०, अ ९८८

(१९६)

अजर धुनी जनि रिपु सुअ घरिनी
　　ता वन्धु न देअए राही।
तेसर दिगपति पतने सतावए
　　वड़ वेदन हरि चाहि॥
माधव तुअ गुने धनि वड़ि खीनी।
महिखातनय भान छिल ता विधु
　　देह दूवरि ता जीनी॥

राजाभसन दवस कण्ठीरव
　　अधिक दहिन सतावे।
लाये तमोर जीवे तवे खाइति
　　जदि न आओब परथावे॥
काकोदर प्रभु रिपु ध्वज किङ्कर
　　विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रुपनराअन
　　लखिमा देइ रमाने॥

इस प्रहेलिका का अर्थ नहीं मिला। न० गु० (प्र) ११, अ ९८९

(१९७)

हरि रिपु रिपु सुअ अविरल भूसन
　　तासु लोअन अछ ठामे।
पंचवदन अरि वाहन रिपु
　　तनु तनु पएले नामा॥
माधव कत परबोधी रामा।
　　सुरभिन तनय पति निरोमनि
भुवन गहन जनम धरि ठामा॥

　　कत दिन राखवि आसे।
कि हर धाम वेद गुनि खाइति
　　जदि न आओव ताहें पासे॥
सुरतनया गत दए परबोधलि
　　बाढ़ति कओन बड़ाइ।
अम्बर देख लेख दए आसीप
　　विहि लहु भगर छड़ाइ।

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
तोहँ अछ जीवन अधारे।
राजा सिवसिंघ रुपनाराएन
एकादस अवतारे॥

—नेपाल २४६, पृ० ८६ क, पं २: न० गु० (प्रहेलिका) १४, अ ६६२

नेपाल पोथी में शेष चारो पँक्तियाँ नहीं हैं, केवल 'विद्यापतीत्यादि' है। न० गु० ने इसे कहीं पाकर जोड़ दिया है। इस पद का अर्थ उपलब्ध नहीं है।

(१६८)

हरि रिपु प्रभु तनय
से घरिनी से तुलनारूप रमनी
विबुधासन सम वचन सोहाओन
कमलासन सम गमनी॥
साए साए जाइते देखलि मग
जिनए आइलि जग
विबुधाधिप पुर गोरी॥

घटज असन सुत देखिअ तइसन मुख
चंचल नयन चकोरा।
हेरितरि सुन्दरि हरि जनि लए गेलि
हरिरिपुवाहन मोरा॥
उदधितनय सुत सिन्दुरे लोटाएल
हासे देखलि रजकान्ति॥
षटपदवाहन कोस वइसाओल
विहुलिहु सिखरक पाँती॥

रविसुततनय दइए गेलि सुन्दरि
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रुपनराअन
लखिमा देइ रमाने॥

नेपाल १६६, पृ० ५६ क, पं० ३ न० गु० (प्र) १३, ६६१

नेपाल पोथी का भनिता चरण अपूर्ण है। सम्भवतः इसके बाद 'राजा शिवसिंघ रूपनराएन लखिमा देवि रमाने' था। यही अनुमान करके नगेन्द्र बाबू ने ये दो चरण जोड़ दिए। पद का अर्थ उपलब्ध नहीं होता।

(१६९)

पंकजबन्धुवैरि को बन्धव
तसु सम आनन साँभे।
नयन चकोर जोड़ जनि संचर
तथिहु सुधारस लोभे॥
सखि हे जाइते देखलि वर रमनी।
हरकङ्कन आनन सम लोचन
तसु वर वाहन गमनी।

सैसव दसा दोने परिपाललि
तसु सम बोलइते बानी।
गिरिजापति रिपु रूप मनोहर
विहि निरमाउलि सयानि॥
सिन्धु बन्धु गिरि तात सहोयर
पीन पयोधर भारा।
दुइ पथ छाड़ि तेसर नहि संचर
हारा सुरसरि धारा॥

अपुरुब रूपे जे विहि निरमाउलि
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनराअन
लखिमा देइ विरमाने ॥

न० गु० (प्र) १६, अ० ६६५

(२००)

हर रिपु तनय तात रिपु भूसन
ता चिन्ता मोहि लागी।
तासु तनअ सुत ता सुत वन्धव
उठलि चतुर धनि जागी ॥

माधव तें तनु खिनि भेलि वाला।
हरि हेरइते चिन्ताएँ मने आकुलि
कठिन मदन सर साला ॥

पुनु चिन्तह हरि सारंग सवद सुनि
ता रिपु लए पए नाम।
तासु तनअ सुत ता सुत वन्धव
अपजस रह निज ठाम ॥

तरनि तनअ सुत ता सुत वन्धव
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनराअन
लखिमा देइ रमाने ॥

न० गु० (प्र) १७, अ० ६६९

इसका अर्थ नहीं मिला।

(२०१)

माधव देखलि मोयँ सा अनुरागी।
मलयज रज लए सम्भु उकुति कए
उरज पुजए तुअ लागी ॥

भव हित अरि भगिनी पति जननी
तनय तात बन्धु रूपे।
नागनिरज सिर सोभ दुरज सम
देखल वदन सरूपे ॥

खगपति पतिप्रिय जनक तनय सम
वचने निरूपलि रमनी।
सुरपति अरि दुहिता वरवाहन
तनु अगमन सम गमनी ॥

तुअ दरसन लागि उपजल विसधर
सुकवि विद्यापति भाने।
राजा सिवसिंघ रुपनराअन
लखिमा देइ रमाने॥

न० गु० (प्र) १६, अ० ६६७

(२०२)

साजनि निहुरि फूकु आगि।
तोहर कमल भ्रमर देखल
मदन उठल जागि॥

जो तोह भाविनि भवन जैवह
ऐवह कोनँहु वेला।
जौं ई सङ्कट जो वाँचत
होयत लोचन मेला॥

भन विद्यापति चाहथि जे विधि
करथि से से लीला।
राजा सिवसिंघ बन्धन मोचन
भखन सुकवि जीला॥

न० गु० (नाना) ७, अ० १००५

शब्दार्थ—निहुरि—झुक कर; फूकु—फूँकती है; जैवह—जावोगी; ऐवह—आवोगी।

अनुवाद—सखि, झुक कर आग फूकती हो। तुम्हारा (कुच) कमल भ्रमर ने देखा, मदन जाग उठा। भाविनि, यदि तुम घर जावोगी, किस समय आवोगी? यदि इस संकट से जीवन की रक्षा हो गयी, तो नयनों का मिलन होगा। विद्यापति कहते हैं, विधाता जो चाहते हैं वही लीला करते हैं। राजा शिवसिंह का बन्धन मोचन होगा तभी सुकवि फिर जीवन प्राप्त करेंगे।

(२०३)

मोराहि जे अँगना चन्दनकेर गाछे।
सौरभे आवए भमर पचासे॥
अरे अरे भमरा न फेरू कवारे।
आँचर सुतल अछ पदुम कुमारे॥

संगहि सखिए सुत देहरि भइसुरे।
कइसे कए वाहर होएत वाजत नेपूरे॥
गोड़हुक नेपुर भेल जिव काले।
नहु नहु पएर दओ उठ झँझकारे॥

माइ वापे दए हलु नेपुर गढ़ाइ।
नेपुर भगवइते जिव अँकुराइ॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा रमाने॥

न० गु० (परकीया) १४, अ १०२४०

मन्तव्य—इस पद में शिवसिंह के कैद होने का उल्लेख है। यह पद किसी पुरातन पोथी में नहीं पाया जाता। यदि पाया जाता तो शिवसिंह के कैद होने का निःसंदिग्ध प्रमाण मिलता।

अपुरुव रूपे जे विहि निरमाउलि
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनराअन
लखिमा देइ विरमाने॥

न० गु० (प्र) १६, अ० ६६५

(२००)

हर रिपु तनय तात रिपु भूसन
ता चिन्ता मोहि लागी।
तासु तनअ सुत ता सुत वन्धव
उठलि चतुर धनि जागी॥

पुनु चिन्तह हरि सारंग सवद सुनि
ता रिपु लए पए नामा।
तासु तनअ सुत ता सुत वन्धव
अपजस रह निज ठामा॥

माधव तें तनु खिनि भेलि वाला।
हरि हेरइते चिन्ताएँ मने आकुलि
कठिन मदन सर साला॥

तरनि तनअ सुत ता सुत वन्धव
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनराअन
लखिमा देइ रमाने॥

न० गु० (प्र) १७, अ० ६६५

इसका अर्थ नहीं मिला।

(२०१)

माधव देखलि मोयँ सा अनुरागी।
मलयज रज लए सम्भु उकुति कए
उरज पुजए तुअ लागी॥

भव सिर अरि भगिनी पति जननी
तनय तात बन्धु रूपे।
नागरिवर सिर सोभ कुमज सम
देखल बदन सरूपे॥

खगपति पतिप्रिय जनक तनय सम
वचने निरूपलि रमनी।
सुरपति अरि दुहिता बरवाहन
तसु अगमन सम गमनी॥

तुअ दरसन लागि उपजल विसधर
सुकवि विद्यापति भाने।
राजा सिवसिंघ रूपनराअन
लखिमा देइ रमाने॥

न० गु० (प्र) १६, अ० ६६७

(२०२)

साजनि निहुरि फूकु आगि।
तोहर कमल भ्रमर देखल
मदन उठल जागि॥

जो तोह भाविनि भवन जैवह
ऐवह कोनँहु बेला।
जौं ई सङ्कट जी बाँचत
होयत लोचन मेला॥

भन विद्यापति चाहथि जे विधि
करथि से से लीला।
राजा सिवसिंघ बन्धन मोचन
भखन सुकवि जीला॥

न० गु० (नाना) ७, अ० १००९

शब्दार्थ—निहुरि—झुक कर; फूकु—फूँकती है; जैवह—जावोगी; ऐवह—आवोगी।

अनुवाद—सखि, झुक कर आग फूकती हो। तुम्हारा (कुच) कमल भ्रमर ने देखा, मदन जाग उठा। भाविनि, यदि तुम घर जावोगी, किस समय आवोगी? यदि इस संकट से जीवन की रक्षा हो गयी, तो नयनों का मिलन होगा। विद्यापति कहते हैं, विधाता जो चाहते हैं वही लीला करते हैं। राजा शिवसिंह का बन्धन मोचन होगा तभी सुकवि फिर जीवन प्राप्त करेंगे।

(२०३)

मोराहि जे अँगना चन्दनकेर गाछे।
सौरभे आवए भमर पचासे॥
अरे अरे भमरा न फेरू कवारे।
आँचर सुतल अछ पदुम कुमारे॥

संगहि सखिवए सुत देहरि भइसुरे।
कइसे कए बाहर होएत बाजत नेपूरे॥
गोड़हुक नेपुर भेल जिव काले।
नहु नहु पएर दअो उठ झँझकारे॥

माइ बापे दए हलु नेपुर गढ़ाइ।
नेपुर भगवइते जिव अँकुराइ॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिंघ लखिमा रमाने॥

न० गु० (परकीया) १४, अ १०२५०

मन्तव्य—इस पद में शिवसिंह के कैद होने का उल्लेख है। यह पद किसी पुरातन पोथी में नहीं पाया जाता। यदि पाया जाता तो शिवसिंह के कैद होने का निःसंदिग्ध प्रमाण मिलता।

शब्दार्थ—अँगना—आँगन; चन्दन केर—चन्दन का; पचासे—पचास; ने फेरु— न खोलो; कवारे—कपाट; देहरि—द्वार पर; भइसुरे—भासुर (पति का ज्येष्ठ भ्राता); गोड़हुक—पैर का; दएहलु—क्रिया; अंकुराइ—व्याकुल होता है।

अनुवाद—मेरे आँगन में जो चन्दन का वृक्ष है उसके सौरभ से पचासो (अनेको) भ्रमर आते हैं। अरे भ्रमर, कपाट मत खोलना, आँचल में पद्मकुमार शयन कर रहा है। सखी मेरे साथ ही सोती है, भासुर द्वार पर है, किस प्रकार बाहर जाऊं ? नूपुर बजेगा। पैर का नूपुर जीव का काल हो गया। धीरे-धीरे पैर रखने पर भी झम झम करने लगता है। माँ-बाप ने यह नूपुर गढ़ा दिया था, (इसीलिए) नूपुर टूटते ही प्राण व्याकुल होने लगते हैं। विद्यापति कहते हैं कि लखिमावल्लभ शिवसिंह यह रस जानते हैं।

(२०४)

मोराहिरे अंगना पाकड़ी सुनु बालहिआ।
पटेवा आउस वास परम हरि बालहिआ॥
पटेवा भइआ हीत नीत सुन बालहिआ।
चोलरि एक बिनि देहि परम हरि बालहिआ॥
जय हमे चोलरि बीनहि सुन बालहिआ।
काह बिनउनी देह परभ हरि बालहिआ॥

लहुरी देउ रातासना सुन बालहिआ।
ननद बिनउनी देअँ परम हरि बालहिआ।
चोलरि पहिरि हमे हाट गये सुन बालहिआ॥
चोर परीखन लागु परभ हरि बालहिआ।
विद्यापति कवि गाविआ सुन बालहिआ।
राय सिवसिंघ गुन जान परम हरि बालहिआ॥

न० गु० (पर. १२, अ० १०२४

शब्दार्थ—पाकड़ी—पाकुड़ का वृक्ष; बालहिआ—बाल्यसखी; पटेवा— पटुआ; चोलरि— चोली; बिनिदेहि—बुन दो; रातासना—रात के खाने के लिए; परीखन लागु—परीक्षा करने लगे। परम हरि—कहने का मात्रा (केवल गाने के लिए)। लडुआ—लड्डू।

अनुवाद—हे बाल्यसखि, सुन, मेरे आँगन में पाकुड़ का वृक्ष है। सखि, पटुया आया। भाई पटुया, हित नीति-कथा सुन। एक चोली बुन दो। (पटुआ की उक्ति) यदि मैं चोली बुन दूं तो बुनने का मूल्य क्या दोगी ? रात को खाने के लिए लड्डू दूंगी। ननद बुनने का मूल्य देगी। चोली पहन कर मैं बाजार गयी। चोर चोली की परीक्षा करने लगे। विद्यापति कवि गाते हैं, राजा शिवसिंह गुण जानते हैं।

(२०५)

[illegible] [illegible] [illegible] घीर
[illegible] दिन [illegible] मीर।
[illegible] देखश्रो अभिसारी मान।
[illegible] [illegible] उमाइ परान॥

जोग जुगुति सुनह धिआ।
नहि परवस होअ पिआ॥
गुरु गुरुर अओर बहला।
माकर माच्छी मण्डप चेला॥

शानि महेसर जारव आगि।
पहु हुङ्कव तोरा लागि॥
खंजन आँखि परेवा पीत।
होएवह धिअ जमाइक हीत॥

नयन काजरे करब पान्ति।
हाकद पहु परेवा भान्ति॥
भणे विद्यापति कहल सार।
जोगव वान्धक थिक संसार॥

राजा रुपनराअन जान
सुखे सुखमादेवि रमान॥

—पण्डित रमानाथ झा संग्रहीत पद—Journal of the Ganganath Jha Research Institute-Vol II Page 403.

शब्दार्थ—सीर—मूल। धिअ—कन्या। माकर—मकड़ा। हुंकरव—हुँ हुँ करना (हाँ हाँ करते जाना)। पीत—पित्त (Liver)

अनुवाद जो केला का वृक्ष अकेले उत्पन्न हुआ तो उसका मूल ··· और जयन्ती का मूल बराबर बराबर हर्रे के साथ पीस देना। ऐसा करने से कन्या दामाद के प्राणस्वरूप हो जाएगी। ऐ कन्या, जोग की युक्ति सुनो। वैसा होने से पिया दूसरे के वश नहीं होंगे। गुड़, गुगुल, वहेरा, मकड़ा, मछली, मण्डपचेला (३) मिला कर अग्नि में जलाना। ऐसा करने से तुम्हारे प्रभु तुम्हारी सारी बातों में हाँ में हाँ मिलाएँगे। आँख में खंजन पक्षी का पित्त लगाना। ऐसा करने से कन्या पति की हितकारिणी होगी।········विद्यापति सार कहते हैं, जिस जोग में संसार बँधा रहता है उसे सुखमादेवी के रमण राजा रूपनारायण जानते हैं।

(२०६)

साँझहि चाँद उगिय गेल दिन सम निरमलि राति।
कत परिबोधह आगे सखि कओने अंगिख मोरि साति॥
आजे हमे क······हठ परलाहुँ कहिलहुँ नहि परकार।
एतएक एसनि कजगति······ए अरतल बर नाह॥
उभएहु संसार परलाहुँ के जान कइसने सिरबाह॥
विद्यापति भने सुन्दरि अचिरे होएत समधान।
राजा रुपनरायन लखिमादेवि रमान॥

—पण्डित रमानाथ झा संग्रहीत पद

शब्दार्थ—कजगति—कार्य के लिए। अरतल—व्याकुल हुआ।

अनुवाद—आज साँझ ही को चन्द्रमा उग गया, रात्रि दिन के समान निर्मल, हे सखि, कितना प्रबोध दोगी? अपनी शास्ति मैं किस प्रकार ग्रहण करूँ? आज मैं······हठ करके विपद् में पड़ गयी। कौन जानता है कि किस प्रकार निर्वाह होगा। विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरि, इसका समाधान शीघ्र ही होगा। राजा रूपनारायण लखिमा देवी के रमण हैं।

मन्तव्य—यह जोग अथवा दामाद को वशीभूत करने के लिए तन्त्र-मन्त्रवाला पद है।

(२०७)

मन जनमा अरि तिलक वैरि
वैरि ता वैरि आनन दसा।
तोहरि वहु जत पाए मरति तत
केवल तोहर उदेसा ॥
माधव दुसह पचवाने।
चरिमे दोपे पाड़लि सेहे
वाला स्त्री वध कर...धाने ॥
की देवागण आनन धसि
पैसि मरति से अनल धसाइ।
सुमरि सिनेह अन्तपुर जाइति
जुग जुग तुअ सुध ला×॥
××× जनमा बाहन आहवगण
ते जानल जिय साथी।
भणइ विद्यापति शिवसिंह नरपति
अवसर हालह बुझाइ।

—पण्डित रमानाथ झा संग्रहीत पद

इसका अर्थ नहीं लगता है।

(२०८)

एकहि वेरि अनुराग वड़ाओल पंचवाण भेल मन्दा।
अधर विम्बवत जेति न पलिच्छए न होअए दिवसक चन्दा।
माधव तुअ गुन लुबुधलि राही
पिअ-विसरन मरनहुँ तह आगर तोँह नागर सब चाही।
दुइ मनरभस तेसर नहि जानए परदए समन्दए न जाइ।
चिन्ताए चेतन अधिक वेआकुल रहलि, सुमुखि रहलसिर लाइ।
भनइ विद्यापति सुनइ मधुरपति तोहें छड़ि गति नहि आने
विसयानदेविपति रम का विन्दक नृपति पटुमसिँह जाने।

रामभद्रपुर पोथी, पद ६१

अनुवाद—[illegible] एक बार अनुराग दिखाया (उसके बाद तुम्हारा) काम शिथिल पड़ गया। (नायिका के) अधर जब [illegible] बिम्ब के समान शोभा नहीं पाते, दिवस में चाँद शोभा नहीं पाता (विरह में नायिका खिन्ना हो गयी है)। माधव, तुम्हारे गुण से राधा लुब्ध हो गयी थी। प्रियतम यदि भूल जाए तो (यह कष्ट) मरण से भी अधिक होता है, ([illegible]) तुम सर्वश्रेष्ठ नागर हो। दो जनों के मन का आनन्द तीसरा नहीं जानता, दूसरे को [illegible] भी नहीं दिया जाता। सुन्दरी चिन्ता से (उद्वेग में) अत्यधिक व्याकुल हो गयी है, सिर नीचे किए रहती है। [illegible]

(२०६)

हेरितहि दीठि चिन्हसि हरि गोरी ।
चाँद किरन जइसे लुबुधि चकोरी ॥
हरि बड़ चेतन तोरि बड़ि कला ।
तेसर न लानए दुइ मन मेला ॥
मोजे तजों भाव लागि भल दुजना ।
मनसिज - सर - सन्धान तरुना ॥
जीवन माह, जौवन दिन चारी ।
तथिहि सकल रस अनुभव नारी ॥

भनइ विद्यापति बुझ रसमन्त ।
राए अरजुन कमला देइ कन्त ॥

तालपत्र न० गु० ६६ अ० १११

शब्दार्थ—हेरितहि दीठि—आँखों देखते ही; गोरी—गौरी; चेतन—चतुर; तेसर—तीसरा आदमी; मोजे—मैं तजों—उसी से; माह—बीच में ।

अनुवाद—सुन्दरि, नयनों ने देखते ही हरि को पहचान लिया, जैसे लुब्ध चकोरी चन्द्रकिरण को (पहचान लेती है)। हरि बड़े चतुर हैं, तुममें बड़ी कला है, दोनों के मन का मिलन तीसरा नहीं जानता। मैं इसीलिए समझती हूँ कि दोनों का भाव (प्रेम) अच्छा लगा। मनसिज का शरसन्धान तरुण (प्रवल)। जीवन के मध्य में यौवन चार दिनों का है अर्थात् अल्पकालवासी है, उसी के बीच में नारी सकल रस का अनुभव करती है। विद्यापति कहते हैं, रसिक (व्यक्ति) समझ, राजा अर्जुन कमलादेवी के पति हैं।

(२१०)

ललित लता जनि तरू मिलती ।
तन्हि पिअ कण्ठ गहए जुवती ॥
आजु अपन मन थिर न रहे ।
मधुकर मदन समाद कहे ॥

भनइ सरल कवि रस सुजान ।
त्रिपुरसिंघ सुत अरजुन नाम ॥

तालपत्र न० गु० ७२१ अ० ७२०

शब्दार्थ—जनि—जैसे; तन्हि—जिस प्रकार; गहए—ग्रहण करता है ।

अनुवाद—ललिता लता जिस प्रकार तरुवर से मिलती है, उसी तरह युवती प्रियतम के कंठ का आलिंगन, करती है। आज मेरा मन स्थिर नहीं रहता, मधुकर मदन का सम्वाद कह रहा है। सरस कवि (विद्यापति) कहते हैं, त्रिपुरसिंह के पुत्र अर्जुन रस उत्तम जानते हैं।

मन्तव्य—शिवसिंह के पिता देवसिंह के सहोदर भाई का नाम त्रिपुरसिंह; त्रिपुरसिंह के पुत्र अर्जुन थे; शिवसिंह के राज्यावसान के बाद कवि ने अर्जुन सिंह की शरण ली; लेकिन वहाँ अधिक दिन तक नहीं रह सके।

(२११)

निसि निसिअर भम भीम भुअंगम[1]
जलधर[2] विजुरि[10] उजोर।
तरुन तिमिर निसि[3] तइअओ चललि[11] जासि
बड़ सखि साहस तोर॥
सुन्दरि कओन[4] पुरुस धन जे तोर[12] हरलमन
जसु लोभे चलु अभिसार।[5]

आतर दुतर नरि[6] से कइसे जएवह[7] तरि
आरति न करिअ भाप[8]।
तोरा अछ[13] पचसर ते तोहि नहि डर
मोर हृदय वरु काँप।[9]

भनइ विद्यापति अरे वर जउवति
साहस कहहि न जाए।
अछए जुवति गति कमलादेइ पति
मन बस अरजुन राए॥

तालपत्र न० गु० ३००; नेपाल १७७, पृ० ६३ क, पं० ४, रामभद्रपुर पद ४१८, अ० २८९

शब्दार्थ—निसिअर—निशाचर; भम—विचरण करता है; तरुण—प्रबल; आतर—अन्तर; दुतर—दुस्तर; नरि—नदी; जएवह—जाएगी; भाप—गोपन।

अनुवाद—रात में निशाचर और भीषण सर्प घूमते हैं; मेघ विद्युत् चमका रहा है, रात्रि गम्भीर अन्धकारमय है तभी तू चली जा रही है। सखि, तुझ में बहुत साहस देखती हूँ। सुन्दरि, वह पुरुष-रत्न कौन आदमी है जिसने तुम्हारा मन हरण किया है और जिसके लोभ से तुम अभिसार में जा रही हो। बीच में दुस्तर नदी है, उसे किस प्रकार पार करोगी? आरति (प्रेम) मत छिपाओ। तुम्हें पंचशर है, इसीलिए तुम्हें डर नहीं लगता किन्तु मेरा हृदय काँप रहा है। विद्यापति कहते हैं, हे युवतीश्रेष्ठ, साहस की बात कही नहीं जाती, अर्थात् असीम साहस है, कमलादेवी के पति (जो) अर्जुन राय के अन्तःकरण में वास करते हैं (वे) युवती की गति हैं।

२०९.- नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) भुअंगम (२) जलधरे (३) गति तेअय चलि जासि (४) साजनि कमन (५) जा हेरि उपेमे अभिसार (६) [illegible] जौवुन (७) जाएब (८) आरति देवइ आगे (९) "काँपे"—इसके बाद भनइ विद्यापतीत्यादि है।

रामभद्रपुर पोथी का पाठान्तर--(१) भुअंगम (१०) विजु (११) चलल (४) सुन्दरि कमन (१२) तोहर (५) जा हेरि उपेमे अभिसार (६) आगे गमो तीन नरि (१३) अछि।

(२१२)

सहज सितल छल चन्द
सवतहु से भले मन्द।
विरह सहाइअ नारि
जिवैकके न हनिअ मारि।
सखि हे पिआ के कहब हम लागी
अबहु मिझइअ आगी।
परसओ पेम बढ़ाए
धनि कुल धम्म छड़ाए।

इ सबे कएल हमे मोहि
इथि सब कारण तोहि।
अनुसर मलय समीर
मनयथ सोभ समीर।
भल जन मन्द विकार
तथि नहि कओन परकार।
सुकवि भनथि कण्ठहार
होएब विरहनरि पार।

राम अरजुन रस जान
गुणा देवि रमान।

रामभद्रपुर पोथी, पद ४०८

अनुवाद—चन्द्र सहज शीतल था, अब सब प्रकार मन्द हुआ; नारी के प्राण न लेकर विरहयन्त्रणा भोग कर रहा है। सखि, प्रिय को मेरी ओर से कहना कि अब भी आग बुझा दें। सुन्दरी का कुलधर्म छुड़ा कर दूसरे के संग प्रेम करा दिया। यह सब काम उन्हीं के लिए मुग्ध होकर मैंने किया। मलयसमीर का अनुसरण करो। अच्छे लोग जब बुरे हो जाते हैं तो किसी प्रकार संशोधन नहीं हो सकता है। सुकवि कण्ठहार कहते हैं, विरह नदी पार होवेगी। गुणादेवी के पति अर्जुन राए यह रस जानते हैं।

(२१३)

सरोवर मझि समीरन विथरओ
केवल कमल परागे।
माधविका मधु पिवहि न पारए
कोकिल दे उपरागे॥
साजनि साजनि साजनि साजनि
सुनहि साजनि मोरी।
बालम्भु साँ मझु दीठि मिलावहि
होइहों दासी तोरी॥

पाड़रि परिमल आसा पूरअ
मधुकर गावए गीते।
चाँदिनि रजनी रभस बढ़ावए
मो पति सबे विपरीते॥
हृदयक वाउलि कहिअ पर जनु
तोंहों कहौं सयानी।
विनु माधव रे मधु-रजनी आइति
मीन कि जीव विनु पानी॥

विद्यापति कविवर एहु गावए
होउ उपदेसौ रसमन्ता।
अरजुन राय चरण पए सेवहि
गुना देई रानि कन्ता॥

तालपत्र न० गु० ७२८, अ० ७२१

शब्दार्थ—मज्जि—नहा कर; वियरश्रो—फैलाता है; उपराग—भर्त्सना; मिलावहि—मिला दिया; पाड़रि—पाटल फूल; मोपति—मेरे प्रति; वाउलि—वातुलता।

अनुवाद—सरोवर में नहा कर समीरण केवल कमल-पराग विकीर्ण करता है। कोकिल माधवी पुष्प का मधुपान नहीं कर पाती है (इसीलिए) उपराग (मृदु भर्त्सना) देती है। सजनि, वल्लभ के संग मेरी नजर मिला दो (तो) तुम्हारी दासी हो जाऊँगी। पाटली पुष्प के परिमल की आशा पूर्ण कर मधुकर गीत गाता है। ज्योत्स्ना-पूर्ण रात्रि आनन्द बढ़ाती है (किन्तु) मेरे प्रति सब विपरीत हैं। अपने मन का पागलपन तुम्हें कहती हूँ, तू चतुरा है, और किसी दूसरे से मत कहना, माधव विना क्या मधुरजनी कहती है? मछली क्या जल बिना जीती रहती है? कविवर विद्यापति यह गाते हैं, रसज्ञ (व्यक्ति) उपदिष्ट होवे, मुनादेवी रानी कान्त अर्जुन की चरण-सेवा करती हैं।

(२१४)

कानने कानने कुन्द फूल।
पलटि पलटि ताहि भमर भूल॥
पुनमति तरुनि पिया संग पाव।
बरिसे बरिसे ऋतुराज आव॥

रअनि छोटि हो दिवस बाढ़।
जनि कामदेव करवाल काँढ़।
मलयानिल पिव जुवति मान।
विरहिन-वेदन के ओ न आन॥

भन विद्यापति रितु वसन्त।
कुमर अमर ज्ञानो-देई कन्त॥

तालपत्र न० गु० ७२३, अ० ७१८

शब्दार्थ—करवाल—तलवार; काँढ—निकालता है।

अनुवाद—जंगल जंगल में कुन्दफूल (फूटता है), फिर फिर कर भ्रमर उस पर भूलता है। पुण्यवती तरुणी प्रियतम का संग पाती है, वर्ष वर्ष ऋतुराज वसन्त आता है। रात्रि छोटी हुई, दिवस बढ़ा, मानो कामदेव ने तलवार निकाली। मलयानिल युवती का मान निःशेष करता है। विरहिनी के वेदना कोई नहीं जानता। विद्यापति वसन्त ऋतु की कथा कहते हैं, ज्ञानदेवी के कान्त कुमार अमर हैं।

(२१५)

जाइत यामुन तेज नहान।
जाइत गा . ... नन
जाइत या? पीठरी नाव
जाइत [illegible] दले लागाव॥
जाइ [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

... .
पिठके जाइ सेहू ओ लहू वथि
अनल फुकिअ हेरि अमु
सिसिर पावि सेहू ओ भेल दूर॥
बुझि (?)... ... ...
जाइत वीर के से होएत बाहर।

[illegible]—[illegible] पोथी में कुमर [illegible] का नाम नहीं है।

मनहि मनक विअने आव केओ नहि ऐसन जाउछ भाव ॥
तेसन सिह तइसन सिआरा ॥ सकल जगत जाउ छरण
सरस कवि विद्यापति गाव। कुमर अमरसिंह सर।

—रामभद्रपुर पोथी, ४१०वाँ पद

बहुत से अक्षर पढ़े-नहीं जाते, इसीलिए व्याख्या न हो सकी।

(२१६)

कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत[1] देखल तत कहए[2] न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा[3] ॥

हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम[4]
पिक बुझल अनुमानी।
नयन रयन परिमल गति[5] तनु-रुचि
अओ अति सुललित बानी।
कुच-युग पर चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु उपर मिलि ऊगल
चाँद विहिन सब तारा[6]।

लोल कपोल ललित मनि-कुण्डल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह भ्रमर, नासापुर सुन्दर
से देखि कीर लजाई[7]।
भनइ विद्यापति से वर नागरि[8]
आन न पावए कोई।
कंसदलन नारायन सुन्दर
तसु रंगिनी पए होई[9]।

रा० ग० त० पृ० ८४, न० गु० तालपत्र १४, अ० ४६

शब्दार्थ—पारिअ—सकना; छओ—छवो; अओ—और; फुजि—खुल कर; पसरल—फैल गया; अरुझायल—उलझ गया; उगल—उदय हुआ; कीर—शुकपक्षी।

---

२१६ न० गु० त० के अनुसार *पाठान्तर*—'की आरे' नहीं है। (१) जेत (२) कहि (३) बामा (४) हिम (५) वरण परिमलच्छवि (६) विहुनि सबे तारा (७) 'लोल कपोल—लजाई' तक नहीं है। (८) सुन वड़ यौवति (९) तासुर मान पए होई।

मन्तव्य—३२१ ल० स० (१४४०-४१ खृष्टाब्द) में लिखित सेतुदर्पणी में धीरसिंह को रिपुराज कंसनारायण कहा गया है, लक्ष्मीनाथ कहते हैं "संग्राम में रिपुराज-कंस-दलन—प्रत्यक्ष नारायण" (3 A, R. B. Vol. XI, P. 426)। विद्यापति ने धीरसिंह को दुर्गाभक्ति उत्सर्ग की है। उक्त ग्रन्थ के छठे श्लोक में विद्यापति ने धीरसिंह को कंसदलन प्रत्यक्ष नारायण कहा है। सुतरां इस पद में उल्लिखित "कंसदलन नारायण सुन्दर" उपाधि द्वारा विद्यापति ने धीरसिंह ही को पुकारा है, ऐसा माना जा सकता है।

अनुवाद—अहा, कितना सुन्दर यौवन है। जो देखा उसको कह नहीं सकता, छवो अनुपम (पदार्थ) एक ही स्थान पर (हैं)। हरिण, चन्द्र, कमल, हस्तिनी, स्वर्ण और कोकिल : अनुमान करके समझा (कि ये छवो) नयन, आनन, (शरीर) का सुगन्ध, गमन, देह की कान्ति और सुमधुर वाणी (अर्थात रमणी मृग-नयनी, चन्द्रवदनी, कमल-गन्धा, गजगामिनी, स्वर्णकान्तिमयी और कोकिलकण्ठा है। स्तन युगल के ऊपर केश खुल कर फैले हुए हैं, उनमें हार उलझ गया—मानो सुमेरु (पर्वत के) ऊपर चन्द्रविहीन सब तारे उगे हुए हैं। सुन्दर मणिमाला, कुण्डल कपोल पर झूल रहे हैं, अधर देख कर बिम्ब लज्जित हो जाता है (लालिमा देख कर)। भ्रू भ्रमर के समान, सुन्दर नासापुट देख कर शुक लज्जित होता है। विद्यापति कहते हैं, उस श्रेष्ठ नागरी को और कोई नहीं पा सकता, वह कंसदलन सुन्दर नारायण की रङ्गिनी होगी।

(२१७)

मन परबस भेल परदेश नाह।
देखि निसाकर तन उठि दाह[१]॥
मदन वेदन दे मानस अन्त।
कहि कहब दुख परदेस कन्त॥
सुमरि सनेह गेह नहि भाव[२]।
दारुण दादुर कोकिल राव॥
सुमरि सुमरि खसु नीविबन्ध आज[३]।
बढ़ मनोरथ घर पहु न समाज॥
भनइ विद्यापति सुनु परमान।
बुझ नृप राघव नव पचबान॥

ग्रियर्सन ६१ न० गु० ७००, अ० ६६८

शब्दार्थ—नाह—नाथ; दे मानस—देह और मन; सुमरि—याद करके; भाव—अच्छा लगना; समाज—संग।

अनुवाद—मन मदन [illegible] के अधीन हुआ, (इसीलिए) नाथ विदेश में हैं; चन्द्रमा को देख कर शरीर दग्ध हो जाता है। मदन की वेदना से शरीर और मन का अन्त हो रहा है; कान्त विदेश में हैं, दुख किससे कहूँ। उनको स्नेह याद करके घर अच्छा नहीं लगता। कोकिल और दादुर का शब्द दारुण (प्रतीत होता है)। (पूर्व प्रेम) स्मरण करके [illegible] नीविबन्ध खुल खुल जाता है, मनोरथ प्रबल हो जाता है, पर घर प्राणनाथ का संग नहीं है। विद्यापति कहते हैं, [illegible] सुनो, नृप राघव को नव पंचबाण समझना।

२१७—[illegible] पाठान्तर—(१) [illegible] (२) [illegible] (३) सुमरि सुमरि [illegible] निविबन्ध [illegible] (४) पचबान।

(२१८)

माधव देखलि वियोगिनि वामे।
अधर न हास विलास सखी संग
अहनिस जप तुअ नामे ॥
आनन सरद सुधाकर सम तसु
बोले मधुर धुनि बानी।
कोयल अरुन कमल कुम्भिलायल[1]
देखि गव अइलहु[2] जानी ॥

हृदयक हार भार भेल सुवदनी[3]
नयन न होए निरोधे।
सखि सब आए खेलाओलि रंग करि
तसु मन किछुओ न बोधे ॥
रगड़ल चानन मृगमद कुंकुम
सभ तेजलि तुअ लागि।
जनि जलहीन मीन जक फिरइछि
अहोनिस रहइछि जागि ॥

दूति उपदेस सुनि गुनि सुमिरल
तइखन चललहि धाई।
मोदवती पति राघव सिंघ गति
कवि विद्यापति गाई ॥

ग्रियर्सन ७६; न० गु० ७४८; अ ७४३

शब्दार्थ—वामे—वामा को; कुम्भिलायल—म्लान हुआ। ग्रियर्सन ने कुम्भिलायल का अर्थ 'प्रस्फुटित' बतलाया है, परन्तु अर्थसंगति नहीं होती।

अनुवाद—माधव, मैंने विरहिनी वामा को देखा। अधर पर हँसी नहीं थी, सखियों के संग विलास (रहस्यालाप) नहीं (होता था), रात-दिन तुम्हारा नाम जप रही है। शरद् के चन्द्र के समान उसका मुख (पाण्डुवर्ण और मलिन) हो गया है। वक्षहार भार (के समान बोध होता) है, सुमुखि के नयन कभी रुकते ही नहीं (सर्वदा बहते रहते हैं)। सखियाँ आकर रंग करती हुई (उसे साथ लेकर) खेलने लगीं (किन्तु) उसका मन किसी तरह भी प्रबोध नहीं मानता। चन्दन, कस्तूरी, और कुंकुम उसने पोंछ फेका, सब कुछ तुम्हारे लिए त्याग दिया; जिस प्रकार जलहीन मीन पागल हो दौड़ती फिरती है, (छटपटाती है), रात दिन (वह भी) जाग कर काटती है। दूती का उपदेश सुनकर उन्होंने गुणशालिनी का स्मरण किया तथा उसी समय दौड़ पड़े। कवि विद्यापति गाते हैं कि मोदवती के पति राघवसिंह गति (आश्रय) हैं।

(२१९)

फिरि फिरि भमरा उलमत वल।
कानन कानन केसु फूल ॥
मोहि भान लागल कहओं काहि।
रितुपति वेकताएल असकसाहि ॥

चन्दा उगि चण्डाल भेल।
द्विजराज धरमता विसरि गेल ॥
भनई विद्यापति बुझ रसमन्त।
राघव सिंघ सोनमति देइ कंत ॥

न० गु० ७२४ (मिथिला का पद) अ ७१९

२१८—*ग्रियर्सन का पाठान्तर*—(१) कोमल कमल अरुण कुम्भिलाएल (२) एलहुँ (३) सुभधनि (४) समजाय।

२१९*मन्तव्य*—राघवसिंह धीर सिंह के पुत्र थे, शिवसिंह के चचा हरिसिंह के पुत्र थे नरसिंह, नरसिंह के पौत्र राघवसिंह; यह पद कवि के अन्तिम वर्षों में लिखा सा प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—उन्मत—उन्मत्त; वल—विचरण करता है; केसु फूल—नागकेशर फूल; मोहि—मेरा; भान लागल—मन में हुआ; बेक्ताएल—व्यक्त हुआ; असकलाहि-दुर्निवार।

अनुवाद—उन्मत्त भ्रमर घूम घूम कर जंगल जंगल नागकेशर के पुष्प पर विचरण करता है। मेरे मन में हुआ किसको कहूँ, दुर्निवार वसन्त व्यक्त हुआ। चन्द्रमा उदय होकर चाण्डाल हुआ, द्विजश्रेष्ठ का धर्म भूल गया (चन्द्रमा का धर्म है शीतल करना एवं द्विजश्रेष्ठ का धर्म है क्षमा करना; वह न करके चन्द्रमा चाण्डाल के समान मुझे यातना दे रहा है) [चन्द्रमा का एक नाम द्विजराज भी है]। विद्यापति कहते हैं सोनमती देवी के कान्त रसज्ञ राघव सिंह समझते हैं।

(२२०)

मलय पवन वह।	तरुन तरुनि संगे।
वसन्त विजय कह॥	रइनि खेपवि रंगे॥
भमर करइ रोल।	विरहि विपद लागि।
परिमल नहि ओर॥	केसु उपजल आगि॥
ऋतुपति रंग हेला।	कवि विद्यापति भान।
हृदय रभसं भेला॥	मानिनी जीवन जान॥
अनंग मंगल मेलि।	नृप रुद्र सिंघवरु।
कामिनी करथु केलि॥	मेदिनि कलप तरु।*

तालपत्र न० गु० ६१२, अ ६१८

शब्दार्थ—वह—बहता है; कह—कहता है, नहीं ओर—सीमा नहीं है; रइनि—रजनी; केसु—किंशुक फूल; जान—जानता है।

अनुवाद—मलयपवन बहता है, वसन्त की विजय कहता है (घोषणा करता है)। भ्रमर रोल करता है, परिमल की सीमा नहीं है। ऋतुपति ने रंग दिया, हृदय में आनन्द हुआ। मिल कर अनंगमंगल (गान करती हुई) कामिनियाँ केलि करती हैं। तरुणी तरुण के संग में रजनी रंग में काटेगी। विरही की विपद् के लिए मानों किंशुक फूल में आग लगा है (प्रस्फुटित हो गये)। कवि विद्यापति कहते हैं, मानिनी का जीवन (वसन्त का प्रभाव) जानता है। नृपश्रेष्ठ रुद्रसिंह मेदिनी का कल्पतरु है।

---

*[illegible]—राघव सिंह के [illegible] के पाँच पुत्रों में चौथे का नाम रुद्रनारायण था। रुद्रसिंह का [illegible] हरिसिंह के [illegible] (हरिसिंह के पुत्र नरसिंह—नरसिंह के पुत्र [illegible]—[illegible] के पुत्र [illegible]—उनके पुत्र रुद्रनारायण)। पाँचपुरुष का [illegible] करने में कवि के पक्ष में यह [illegible] नहीं जाती है, किन्तु विद्यापति की आयु का [illegible] नहीं था, एक म[illegible], [illegible] (पदावली १६०, न० गु० ६४४)

(२२१)

लता तरुअर मण्डप जीति[1]।
निरमल ससधर धवलिए भीति[2]।
पउँअ नाल अइयपन भल भेल।
रात परीहन पल्लव देल॥
देखह माइ हे मन चित लाय।
वसन्त-विवाह कानन-थलि आय[3]॥
मधुकरि-रमनी[4] मंगल गाव।
दुजवर कोकिल मन्त्र पढ़ाव॥

करु मकरन्द हथोदक नीर।
विधुवरिआती धीर समीर॥
कनक किंसुक सुति तोरन तूल[5]।
लाबा विथरल बेलिक फूल॥
केसर कुसुम[6] करु सिन्दुर दान।
जउतुक पाओल मानिनि मान॥
खेलए कउतुक[7] नव पँचवान।
विद्यापति कवि दृढ़ कए भान॥

अभिनव नागर बुझय वसन्त[8]।
मति महेस रेनुका देइ[9] कान्त॥

न० गु० तालपत्र ६०१: अ ६१२: रा० ग० त० पृ: ५७६:

शब्दार्थ—तरुअर—तरुवर; जीति—जय की; भीति—भित्तिः पउँअ— पद्म; परीहन—परिधान; दुजवर—द्विजवर; हथोदक—हस्तोदक, हाथ का जल;, वरिआती—वरयात्री; विथरल—विस्तार किया, छीटा।

अनुवाद—लता ने तरुवर का आच्छादन करके मण्डप की जय की, निर्मल शशधर ने भित्ति धवल की: (मानों ज्योत्सनालोक से चूना पोत दिया)। मृणाल का उत्तम अइपन बना; पल्लव ने निशीथ वस्त्र दिया। हे सखि, स्थिरचित्त से देखो, वनस्थली में आज वसन्त का विवाह है। भ्रमरीगण मंगल गा रही है, पुरोहित कोकिल मन्त्र पढ़ा रहा है। मकरन्द हस्तोदक नीर हुआ। चन्द्रमा और समीरण वराती बने। कनकवर्ण के किंशुक फूल के वृक्ष ने तोरण निर्माण किया। बेल फूल ने लावा छीटा। किंशुक फूल ने सिन्दूर दान किया, मानिनी के मान ने दहेज पाया। विद्यापति दृढ़ होकर कहते हैं, नव पंचवाण कौतुक में खेल कर रहा है। रेणुकादेवी के कान्त मन्त्री महेश अभिनव नागर वसन्त को समझते हैं।

(२२२)

आइलि निकट बाटे छुइलि सदन साटे
दृढ़ बान्धे दरसिल केस।
रमन भवन बेरि पलटि पाछु हेरि
आलि दिठि दए गेलि सन्देस॥
आओर कि करति सखि परिनत ससिमुखि
कान्हु जदि न बुझ विसेप॥

पद २२१। रागत के अनुसार पाठान्तर—(१) दीअ (२) भिति धवलीअ (३) गावह माई हे मंगल आए वसन्त विआह बने पए जाए (४) मधुकर-रमनी (५) वलय केआसुति तोरण तूल (६) केस (७) केलि कुतूहल (८) बुझए रसमन्त (९) देवि।

भन कवि विद्यापति अभिनव रतिपति
सकल कलारस जान।
राजवलभ जिवओ मति सिरि महेसर
रेनुक देवि रमान॥

आचर धरइत करे लउलि लाज भरे
नमइत मुँहक उपाम।
न जानओं कमन जओं कमल नाल सओं
कमल ममोलल काम॥

न० गु० तालपत्र ७६, अ० ४

शब्दार्थ—बाटे—रास्ता में; साटे—चाबुक; रमन—कान्त; आलि दिठि—वक्रदृष्टि; लउलि—झुकी; कमन जओं—किस प्रकार; ममोलल—मरोड़ दिया।

अनुवाद—(राधा) रास्ते में (चलने के समय) निकट आयी, (और) मदन के चाबुक के समान दृढ़बन्ध केश स्पर्श कर दिखाया। कान्त के घर एक बार फिर लौट कर आयी और पीछे देखकर वक्रदृष्टि से संकेत कर चली गयी। सखि, यदि कन्हायी विशेष न समझ सके (तो) पूर्णचन्द्रमुखी (राधा) और क्या करे? हाथ में आँचल धरते ही (राधा) लज्जा से भरकर नत हो गयी; झुके हुए मुख की उपमा क्या होगी? न जाने किस प्रकार कमल के नाल सहित काम ने कमल को मरोड़ दिया? कवि विद्यापति कहते हैं, अभिनव रतिपति, राजा के प्रिय, रेणुका देवी के वल्लभ, मन्त्री (मति) श्री महेश्वर सकल कलारस जानते हैं, वे दीर्घजीवी हों।

(२२३)

सामर चन्दा उगलाह रे
चान्दे पुन गेलाह अकास।
एतबहि पिहाके अएवा रे
पलटत विरहिनि साँस॥
सुनिये दुरहि निहरवा रे
जनि दूर हियरा धाव।
कि करत हियरा आकुला रे
अगिहि बान न पाव॥

गगन बलाहकेँ छाड़ल रे
बारिस काल अतीत।
चरित्र तिनति सौं ए आयब
जनि बिनु तिहुयन तीत॥
आबहो गुनति मंदानिनि रे
बाट निहारय जाँऊ।
एहना सब दिन नहि रह
गुनितम मन हरबाऊ॥

विद्यापति कवि गएवा रे
रस जनिए रसमन्त।
मति महेसर सुन्दर रे
रेनुक देवि कन्त॥

अनुवाद—मेघों से आकाश शून्य हो गया; वर्षाकाल बीत गया, (मिनति) प्रार्थना करती हूँ कि वे यहाँ आवें, जिनके बिना त्रिभुवन तिक्त (अप्रिय) (लगता) है। हे सुमति सखि, आवो चल कर पथ निरीक्षण करें। सब दिन कुदिन नहीं रहता, अच्छे दिन में हर्षित होता है। श्याम-चन्द्र उदित हुआ, चन्द्र आकाश में लौट गया। इतना ही प्रियतम के आने का सम्वाद पाकर विरहिणी की साँस लौट आयी (मानो उसके प्राण लौट आए। शयन करके (विरहिणी राधा) दूर से देखेगी, जितनी दूर हृदय दौड़ सकता है। क्या करे, अग्नि वायु नहीं पा रही है (वायु न पाकर जिस प्रकार अग्नि बुझ जाती है उसी प्रकार माधव के दर्शन न पाकर राधा म्रियमाण हो रही है। विद्यापति कवि कहते हैं, रसिक रस समझते हैं। मन्त्री महेश्वर सुन्दर, रेणुका देवी के कान्त हैं।

(२२४)

नगरक वानिनिओ रे हरि पुछहरि पुछा
किए किए हाट विकाए।
हिरमनि मानिक औरे अनुपम
अनुपमा नाना रतन पसार।
एक लागु दुइओ ले
सिरिफर सिरिफला सोना केर समान।

अधरा सिरिफलओ रे आंचर आंचरा
अधरा अधिक विकाए।
विद्यापति कविओ गाविहा गाविहा
झुमरि बुझ रसमन्त।
सिरि महेसर महेसर हे जुड़म देवि सुकन्त।

—रामभद्रपुर पद ४६४

शब्दार्थ—वानिनिओ इस शब्द का अर्थ नहीं लगा।

अनुवाद—हरि, तुमसे पूछती हूँ, बोलो हाट में क्या क्या बिक्री होता है।—हीरा मणि, माणिक प्रभृति नाना अतुलनीय रत्न विक्रय होते हैं। एक ही साथ दो सोना के समान श्रीफल अधर है और आँचल में श्रीफल है। अधर का ही दाम अधिक है। विद्यापति गाते हुए कहते हैं कि जुड़मदेवी के सुकान्त रसिक श्रीमहेश्वर झूमर गाने का रस समझते हैं।

मन्तव्य—झूमर नामक गाना में एक ही शब्द बारबार आता हैं। विद्यापति का केवल एक यही झूमर पाया गया है।

(२२५)

कोप करए चाह नयने निहारि रह
धरिअ न पारय हासे।
न वोल परुस वाक न मुख अरुन थाक
चाँद कि जलइ हुतासे॥
ए सखि मान करिवा न जाने।
कत खन सिखाउवि आने॥

न न न न न न भन पियके नखरें हन
जेओ जान तथिहु लजाइ।
न कर भौंह भंग न धरि मोलइ अंग
खनहि सुलभ भए जाइ॥

अपने अधिक सुधि न धर परक बुधि
विसम कुसुमसर माया।
विरह सोस भेले भल हो अधर देले
रौद सुहाउनि छाया॥

भनइ विद्यापति होइह दून रति
पुजयते पंचवाने।
रुपिनि देइ पति मति सिरि रतिधर
सकल कला रस जाने॥

तालपत्र न० गु० ३२३, अ० ३३०

शब्दार्थ—परुस—कठिन; वाक—वाक्य; पियके—प्रियतम को; सोस—शुष्क; दून—दुगुना;

अनुवाद—रोष करना चाहती है, (किन्तु) आँखों से निहारती ही रह जाती है (उनको देख कर भूल जाती है), [illegible] रोष नहीं करती। कठोर वचन बोल नहीं सकती, मुख लाल वर्ण (क्रोध को सूचित करने वाला) का नहीं रह पाता, [illegible] के समान जलना है? सखि, मान करना नहीं जानती, कितने दिनों तक दूसरा सिखावेगा? ना, ना, ना, ना, [illegible] हुई प्रियतम पर नखाघात करना जानती हुई भी लज्जा पाती है (लज्जित होती है)। भ्रूभंग ([illegible]), नहीं करती, अंग मोड़ कर नहीं रखती, क्षणमात्र में ही सुलभ हो जाती है। अपनी विवेचना है, दूसरे की बुद्धि नहीं ग्रहण करती, काम की माया विषम है। विरह में शुष्क होने पर अधर (पान) देना अच्छा होता है, धूप के छाया सुन्दर होती है। विद्यापति कहते हैं, पंचवाण की पूजा करने से दुगुनी रति होगी। रुपिणी देवी के पति मन्त्री श्री रतिधर सकल कलारस जानते हैं।

(२२६)

सुन्दरि तकर तोर विवेक।
बिनु परीचये पेमक आंकुर
पल्लव भेल अनेक॥

[illegible] [illegible] मुकुल दिवस
वदन देखब तोर।
[illegible] दिवस भुजल भमर
चित घार चकोर॥

भन विद्यापति सुन रमापति
सकल गुननिधान।
निरे जिये जियओ राए दामोदर
रमा सए अवधान॥

(२२७)

अपथ सपथ कए कह कत फूसि।
खन मोहेँ तखने रहत रूसि॥
मोञें न जएवे माइ दुजन संग।
नहि सरलासय सामरंग॥
अवलोकब नहि तनिक रूप।
आँखि अछइत कइसे खसव कूप॥
विद्यापति कवि रभसे गाव।
मलिक वहारदिन बुझ इ भाव॥

तालपत्र न० गु० ४३८; अ० ४३३

शब्दार्थ—अपथ—बुरा काम; सपथ—शपथ; फूसि—झूठी बात; दुजन—दुर्जन; सामरंग—श्यामवर्ण का आदमी; खसव—कूदूँगी।

अनुवाद—बुरा काम (छिपाने के लिए) कसम खाकर कितना झूठ बोलता है (बाद में) थोड़ी ही देर बाद मुझसे रूठ जाता है। माँ री, मैं दुर्जन के साथ नहीं जाऊँगी; जो बहुत काला है, वह कभी भी सरलचित्त नहीं होता। उसका रूप नहीं देखूँगी, आँख रहते किस प्रकार कुएँ में कूद सकती हूँ? विद्यापति कवि आनन्द में गाते हैं मल्लिक वहारदीन यह भाव समझते हैं।

(२२८)

ब्रह्मकमण्डलु वास सुवासिनि
सागर नागर गृह वाले।
पातक महिस विदारन कारन
धृत करवाल वीचि-माले॥
जय गंगे जय गंगे।
सरनागत भय भंगे॥
सुरमुनि मनुज रचित पूजोचित
कुसुम विचित्रित तीरे।
त्रिनयन मौलि जटाचय चुम्बित
भूति भूसित सित नीरे॥
हरिपद कमल गलित मधुसोदर
पुन्य पुनित सुर लोके।
प्रविलसदमरपुरी-पद दान—
विधान विनासित सोके॥
सहज दयालुतया पातकिजन
नरकविनासन निपुने।
रुद्रसिंघ नरपति वरदायक
विद्यापति कवि भनित गुने॥

अनुवाद—ब्रह्मकमण्डलरूपी वासभवन में सुख से वास करती हो—समुद्ररूपी नागर की गृहस्वामिनी (हो)। पापरूपी महिष को विदीर्ण करने के लिए तुमने वीचिमाला रूपी तलवार धारण किया है। तुम्हारा तीर सुर-मुनि-मनुष्य द्वारा रचित पूजा के कुसुमों से विचित्रित है। त्रिनयन (शिव) के मस्तक का जटानिचय चुम्बन करके तुम्हारा जल विभूति-भूषित होकर श्वेत हो गया है। हरिपादपद्म-विगलित मधुर-न्याय (तुम्हारे वारि के द्वारा) सुरलोक पवित्र हो गया है। विलासमयी अमरपुरी से वासस्थान दान करके तुम (जीवों के) शोक का विनाश करती हो। तुम्हारा स्वाभाविक दयागुण पापी लोगों का नरक विनाश करने में निपुण है। रुद्रसिँह नृपति के अभीष्ट की वरदात्री (गंगा) का गुण कवि विद्यापति गाते हैं।

(२२६)

यब गोधुलि समय बेलि
धनि मन्दिर बाहिर भेलि।
नव जलधर बिजुरि रेहा
दन्द पसारि गेलि॥
धनि अलप बयेस बाला
जनु गाँथनि पुहप-माला।
थोरि दरशने आशा ना पूरल
बाढ़ल मदन-जाला॥
गोरि कलेवर नूना
जनु आँचरे उजोर सोना।
केशरि जिनिया माझहि खीन
दुलह लोचन कोणा॥
नसीर शाह भाने
मुझे हानल नयन बाने।
चिरँ जीव रहु पंच गौड़ेश्वर
कवि विद्यापति भाने॥

(२३०)

आनन लोनुअ वचने बोलए हँसि ।
अमिअवरिस जनि सरद पुनिमा ससि ॥
अपरुब रूप रमनिआँ
जाइते देखलि गजराज गमनिआँ ।
काजरे रंजित धवल नयन वर
भमर मिलल जनि अरुन कमल दल ।
भान भेल मोहि माँझ खीनि धनि
कुच सिरिफल भरे भाँगि जाति जनि ॥
कविशेखर भन अपरुब रूप देखि
राए नसरद साह भजलि कमल मुखि ॥

(रागतरंगिनी पृ० ४४-४५, इति विद्यापतेः)

पदकल्पतरु १६७, न० गु० ३४

अनुवाद—सुन्दर वदन, हँस कर बात करती है, (मालूम होता है मानो) शरद् पूर्णिमा का चन्द्रमा अमृतवर्षा कर रहा हो। अपरुप रूपवती गजेन्द्रगमनी रमणी को जाते देखा। सुन्दर धवल नेत्र काजल से रँजित थे, मानो विमल कमल पर भ्रमर बैठा हो। सुन्दरी का मध्यप्रदेश क्षीण उसे देख कर मेरे मन में हुआ कि वह) कुचरूपी श्रीफल के भार से टूट जाएगा। कविशेखर कहते हैं कि उसका अपूर्व रूप देखकर राए नसरद शाह कमलमुखी का भजन करने लगे।

पाठान्तर—पदकल्पतरु का पाठ—

नतुत्ता—वदनि धनि वचन कहसि हसि ।
अमिया वरिखे जनु शरद पुणिम शशी ॥
अपरुप रुप रमणि-मणि ।
याइते पेखलुँ गजराजगमनि धनि ॥
सिंहँ जिनि माझा खिनि तनु अति कमलिनि ।
कुच—छिरिफल भरे भाँगिया परए जानि ॥
काजरे रंजित चनि धरल नयनवर ।
भ्रमर भुलल जनु विमल कमल पर ॥
भणये विद्यापति सो वर-नागर ।
राइ-रूप हेरि गर-गर अन्तर ॥

द्वितीय खण्ड

(मैथिल पोथियों से प्राप्त पद)

(२३१)

भौंह भांगि लोचन भेल आड़।
तैअओ न सैसव सीमा छाड़॥
आवे हसि हृदय चीर लए थोए।
कुच कंचन अंकुरए गोए॥

हेरि हल माधव कए अवधान।
जौवन-परसे सुमुखि आवे आन॥
सखि पुछइत आवे दरसए लाज।
सींचि सुधाओ अध बोलिअ बाज॥

एत दिन सैसवे लाओल साठ।
आवे सवे मदने पढ़ाउलि पाठ॥

नेपाल २१८, पृ० ७८ ख, पं० १; भनई विद्यापतीत्यादि, न० गु० ११, अ० ५६।

(१) नेपाल पोथी के 'मधुर हास मुखमण्डित अभिक्रता नाले कुशेशय'' का अर्थ समझ में नहीं आता और छन्द भी ठीक नहीं रहता। इसीलिए उसे नगेन्द्र बाबू ने छोड़ दिया है।

शब्दार्थ—भौंह—भ्रू; आड़—वक्र; तैअओ—तथापि; चीर—वस्त्र; गोए—छिपाकर; आन—अन्यरूप; सींचि सुधाओ—सुधा से सींच कर; बोलिअ बाज—बोलता है; साठ—संग।

अनुवाद—भ्रू भंग करना सीखा है इसीलिए नयन वक्र हुए; तथापि शैशव उसकी सीमा (अधिकार) नहीं छोड़ता। अब वह हँस कर वक्ष पर कपड़ा देती है; कंचनवर्ण कुचांकुर छिपाती है। देख माधव बूझ सूझकर चल; यौवन के स्पर्श से सुमुखी अब अन्यरूप की हो गई है; सखी के पूछने पर लज्जा दिखलाती है; सुधावर्षण करके आधी बात बोलती है। इतने दिनों तक शैशव उसके संग लगा था, अब मदन ने समस्त पाठ पढ़ाया।

(२३२)

जेहे अवयव पुरुब समय
निचर बिनु विकार।
से आवे जाहु ताहु देखि झापए
चिन्हिमि न वेवहार॥
कन्हा तुरित सुनसि आए।
रूप देखत नयन भुलल
सरुप तोरि दोहाए॥

सैसव वायु बहीरि फेदाएल
यौवने गहल पास।
जओ किछु धनि विरुह बोलए
से सेओ सुधासम भास॥
जौवन सैसव खेदए लागल
छाड़ि देहे मोर ठाम।
एत दिन रस तोहे विरसल
अवहु नहि विराम॥

नेपाल ४, पृ० २ स, पं ३; भने विद्यापतीत्यादि, न० गु० १२: अ २८

(ग)

ग्रियर्सन का पाठ

कामिनि करु असनाने
हेरइत हिये हनल पचमाने।
तितल वसन तन लागु
मनिहुक मन समस्त भय जागु॥
चिकुर वहै जलधारे
जनि शशि विनु मोहि लगत अन्धारे॥
कुच जुग चारु चकेवा
निज कर कमल जानि दुख देवा॥
तें सँसे भुज फाँसे
वाधि धरिअ उड़ि लागत अकासे।
भनहिँ विद्यापति भाने
सुपुरुख कबहु न होयत नदाने॥

(घ)

पदकल्पतरु पाठ

कामिनि करइ सिनान।
हेरइते हृदये हानल पाँचवान॥
चिकुरे गलये जलधार।
मुख-शशि भये किये रोये आन्धियार॥
तितल वसन तनु लागि।
मुनिहुक मानस मनमथ जागि॥
कुचयुग चारु चकेवा।
निजकुले आनि मिलायल देवा॥
तेन्हि शङ्का भुज-पाशे।
वान्धि धरल जनु उड़ल तरासे॥
कवि विद्यापति गाओये।
गुनवति नारि रसिक जन पाओये॥

शब्दार्थ—गरए—गिरता है ; चारु—सुन्दर ; चकेवा—चक्रवाक।

अनुवाद—कामिनी स्नान कर रही है, देखते ही पंचवाण (मदन) ने हृदय में शर मारा (नेपाल पोथी के अनुसार—मदन ने मन चोरी कर ली)। चिकुर (केशपाश) से जलधारा वह रही है, मानों मुखशशि के भय से (केशपासरूपी) अन्धकार रुदन कर रहा है। रागतरंगिनी के अनुसार—मुखशशि के लिए मानों अन्धकार रो रहा है—इस पाठ का अर्थ अच्छा नहीं लगता। ग्रियर्सन के पाठ का अर्थ 'शशिहीन होकर मानो अन्धकार अवसादग्रस्त हो गया है'—भी संगत नहीं है, क्योंकि अन्धकार तो चन्द्रमा का शत्रु है। बंगाल में मैथिल शब्द विकृत होने पर भी भाव की विशुद्धता रक्षित हुई थी इसका प्रमाण यह पद है)। कुचयुग मानो एक सुन्दर चक्रवाक का जोड़ा है मानों किसी ने (अथवा किसी देवता ने) अपने कुल से लाकर उन्हें मिला दिया है। उनके पीछे कहीं वे भी आकाश में न उड़ जाएँ इसी भय से उन्हें बाहुपाश में बाँध कर रखा है (अर्थात् सुन्दरी दोनों हाथों से वक्षस्थल छिपाए हुए है)। भींगा वस्त्र शरीर में सट गया है ; उसको देखकर मुनियों के मन में भी मन्मथ जाग जाता है। विद्यापति गाते हुए कहते हैं कि गुणवती धनी को पुण्यवान व्यक्ति ही पाता है।

(२३४)

जमुनातीर युवति केलि कर
उठि उगल सानन्दा।
चिकुर सेमार हार अरुझायल
जूथे जूथे उग चन्दा॥

भ्रमरदल से पूर्ण हो गया [बारम्बार कटाक्ष पात करने से आँख का तारा इतस्ततः संचालित हुआ जिससे मालूम हुआ मानों भ्रमर से आकाश भर गया [आँख की उपमा तारा से है]। किसकी सुन्दरी है कौन जानता है? किन्तु मेरे प्राण आकुल कर गयी। लीला कमल के द्वारा मानों कमल को (कटाक्ष को) रोक कर सुन्दरी चकित हो देखती हुई चमक कर चली गयी। उससे (हाथ से कमल को तोड़ते समय) पयोधर की शोभा व्यक्त हुई। कनक कमल देखकर किसको नहीं लोभ होता? आधा ढँका, आधा खुला कुचकुम्भ अपनी आशा कह गए। वह सब अमूल्य निधि का स्वाद दे गया, रसका कुछ भी अवशेष नहीं रखा। विद्यापति कहते हैं, दोनों के मन में (दोनों) जाग गये हैं; विषम कुसुमशर किसी को भी न लगे।

(२३६)

अमिअक लहरी बम अरविन्द।
विद्रुम पल्लव फुलल कुन्द॥
निरखि निरखि मैं पुनु पुनु हेरु।
दमन-लता पर देखल सुमेरु॥
साँच कहओं मैं साखि अनंग।
चान्दक मण्डल जमुना तरंग॥

कोमल कनक केआ मुति पात।
मसि लए मदने लिखल निज बात॥
पढ़हि न पारिअ आखर-पाँति।
हेरइत पुलकित हो तनु काँति॥
भनइ विद्यापति कहओं बुझाए।
अरथ असम्भव के पतिआए॥

न० गु० तालपत्र ३०; अ २१।

शब्दार्थ—बम—उद्गीरण करता है; विद्रुम—प्रवाल; साखि—साक्षी; कनककेआ—कनक निर्मित; पात—पत्र; आखर पाँति—अक्षर पँक्ति; तनुकाँति—देहकान्ति, अरथ—अर्थ; पतिआए—विश्वास करेगा।

अनुवाद—पद्म (मुख) अमृतलहरी का उद्गीरण करता है, प्रवाल पल्लव में (अधर में) कुन्द फूल (दन्तराजि) फूटा। चुप चुप मैंने बार बार देखा, द्रोणलता के ऊपर सुमेरु रहता है। अनंग को साक्षी रख कर मैं सच कहती हूँ कि चन्द्रमण्डल में (त्रिवली) यमुनातरंग देखा। कोमल स्वर्णनिर्मित मूर्तिरूप पत्र में मदन ने मसि (रोमावलि) लेकर अपनी कथा लिखी। अक्षर-पँक्ति पढ़ नहीं सकी, देख कर देहकान्ति पुलकित हुई। विद्यापति कहते हैं समझा कर कहते हैं, असम्भव अर्थ कौन विश्वास करेगा?

(२३७)

पीन पयोधर दूबरि गता।
मेरु उपजल कनक-लता॥
ए कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाइ।
अति अपूरुब देखलि साइ॥
मुख मनोहर अधर रंगे।
फुललि मधुरी कमल संगे॥

लोचन-जुगल भृंग अकारे।
मधुक मातल उड़ए न पारे॥
भँउहेरि कथा पूछह जनू।
मदन जोड़ल काजर-धनू॥
भन विद्यापति दूति वचने।
एत सुनि कान्हु करत गमने॥

क्षणदा पृ० २२२ : न० गु० तालपत्र १२ : अ० २०

(रति) के समान (है)। सुरपति (इन्द्र) के अरि (हिमालय) की कन्या (पार्वती) के पति (शिव) के वैरी (कामदेव) की अपेक्षा अधिकतर अनुपम। (उसकी) मुखकान्ति, अदिति के तनयों (देवताओं) के वैरी (दैत्यगण) के गुरु (शुक्र) के बाद जो चौथा है (अर्थात् चन्द्रमा) उसके समान (है)। कुम्भ के पुत्र (अगस्त्य), उनके अशन (अथवा खाद्य समुद्र) के तनय (मुक्ता), उसका रत्न बैठाया है अर्थात् उसने मुक्ताहार पहन रखा है। नन्द की घरनी (यशोदा) -की, कन्या (माया अथवा दुर्गा) के वाहन (सिंह) के समान उसके मध्यदेश (कमर) की क्षीणता (है)। कामधेनु के पति (वृष) के पति (शिव) के प्रिय फल (विल्वफल) के समान उसके उरज गोल हैं। विद्यापति कहते हैं, हे युवतीश्रेष्ठागण, सुनो, उसके रूप का रंग अनूप है। रावण के अरि (राम) की पत्नी (सीता) के पिता (जनक) की तपस्या के समान तपस्या करने से यह रूप प्राप्त हो जायगा।

(२३९)

माधव देखलहुँ तुअ धनि आजे ॥

भुतल-नृपति-सुत तसु तनया पति-
तातक तातक रामा।
तसु तातक सुत तनिकर उपमेय
सेहो थिक ओहि ठामा ॥

दीस निगम दुइ आनि मिलाविय
ताहि दिअ विधि मुख आधो।
से लै आदि आधि रस मँगैअछि
एहन रमनि तुअ माधो ॥

पण्डितकाँ पठ जड़का पाहन
ई गित गोरख धनहारी।
भनहि विद्यापति सैह चतुर जन
जैह बुझत अवधारी ॥

ग्रियर्सन १७।

शब्दार्थ और अनुवाद—(हे) माधव, आज तुम्हारी सुन्दरी को देखा। भूतल के नृपति (वलि) के सुत (वाणासुर) की कन्या उषा के पति (अनिरुद्ध) के पिता (प्रद्युम्न) के पिता (कृष्ण) की पत्नी (लक्ष्मी) के पिता (समुद्र) के पुत्र (चन्द्र) के समान सादृश्य मैंने उसमें देखा। दश दिशा और निगम (वेद) के सहित विधि (ब्रह्मा) के मुखों का आधा देकर (१० + ४ + २) सोलहों लावण्यश्री तथा अन्यान्य श्री से भूषित होकर (हे) माधव, तुम्हारी रमणी तुम्हारे रस (प्रेम) की प्रार्थना करती है। यह गीत गोरख धनहारी अर्थात् अत्यन्त जटिलार्थ युक्त (सुरतां) पंडितों के लिए पाठ्य (एवं) मूर्ख लोगों के लिए पत्थर के समान कठिन है। विद्यापति कहते हैं कि वही चतुर आदमी है जो इसे अवधारण करके समझे।

(२४०)

माधव जाइति देखलि पथ रामा।
अवला अरुन तरा गन वेढ़लि
चिकुर चामरु अनुपामा ॥

शब्दार्थ—जाइति—जाते ; आगरि—अग्रगण्या ; सनि—सदृश ; विहि—विधि ; जकाँ—मानों ; जनिकर—जिसका ; पदारथ चारि—चारो पदार्थ वा चतुर्वर्ग ; समारि—सम्भाल कर ; पाँखि—पँख ; पसारि—पसार कर ; केहरि—केशरी, ह ।

अनुवाद—हे सजनी, सुचतुरा सुबुद्धियों में अग्रगण्या नागरी को पथ में जाते देखा। सुवर्ण-लता के समान सुन्दरी (रमणी) को विधाता निर्मित कर लाया। हे सजनि, हस्ति-गमन तुल्य (अर्थात्) धीरे धीरे चलते देखा। देखने में राजकुमारी (के समान) ; जिसकी ऐसी सुहागिनी (रमणी) है, उसने चारो पदार्थ (चतुर्वर्ग) पा लिया। उसपर भ्रमर पंख पसार कर रस पान कर रहा है, शरीर कपड़े से घिरा (ढका) है, सिर पर चिकुर सजाए है (अर्थात् विक्षिप्त केशराशि हवा लगने के कारण उड़ते हुए भ्रमर के समान दृष्टिगोचर हो रही है)। हे सजनि, (उसकी) कटि सिंहँ के समान, लोचनों ने मानों अम्बुज धारण किया हो। विद्यापति कवि गाते हैं, (सुन्दरी ने) निश्चित गुण (सकल कलारस) पाया है।

(२४२)

आध नयन कए[1] तहुकर आध।
कतवे सहब मनसिज अपराध॥
का लागि सुन्दरि दरसन भेल।
जेओ छल जीवन सेओ दूर गेल॥
हरि हरि कओने कएल हमे पाप।
जे सबे सुखद ताहि तह ताप॥
सब दिस कामिनि दरसन जाए।
तइअओ बेआधि विरह अधिकाए
कओनक कहब मेदिनि से थोल।
सिव सिव एहि जनम भेल ओल॥

नेपाल ८४, पृ० ३६ क, पं २ ; भनइ विद्यापतीत्यादिः न० गु० ७१: अ० २४

अनुवाद—आधनयनों से मानों उसको आधा ही देखा (अर्थात् आधे नयन करके उसको भी आधा ही देखा—अपांग दृष्टि से उसको क्षण भर के लिए देखा)। मनसिज का अपराध अब और कितना सहन करूँगी ? किस लिए सुन्दरी को देख पाया ? जो भी जीवन था वह दूर चला गया। हरि हरि, मैंने कौन पाप किया है ? जो सब सुखद (पदार्थ) थे उनके सामने आने से ताप उत्पन्न होता है। जिस तरफ देखता हूँ उसी ओर मानों सुन्दरी को पाता हूँ, तथापि विरह-व्याधि बढ़ रही है। किसको कहें, इस पृथ्वी पर (दर्दी लोग) बहुत कम हैं, शिव शिव, इस जीवन का शेष हो गया।

(१) नेपाल पोथी में किसी ने 'कए' का 'क' के रूप बनाकर ऊपर आधुनिक बंगला हस्ताक्षर में 'द' लिख दिया है।

(२४३)

सामर सुन्दर एँ बाट आएल
ताँ मोरि लागलि आँखि।
आरति आँचर साजि न भेले
सबे सखीजन साखि॥
कहहिँ मो सखि कहहि मो
[1]कथा ताहेरि बासा।
दूरहु दुगुन एड़ि मैं आवओं
पुनु दरसन आसा॥

कि मोरा जीवने कि मोरा जौवने
कि मोरा चतुर पने
मदन-वाने मुरुछलि अछओं
सहओं जीव अपने॥
आध पदे[2] यो धरइते मोर देखल
नागर जनसमाजे।
कठिन हिरदय भेदि न भेले
जाओ रसातल लाजे॥

सुरपति-पाए लोचन मागओं
गरुड़ मागओं पाँखी।
नन्देरि नन्दन मैं देखि आवओं
मन मनोरथ राखी॥

नेपाल २१५, पृः ७७ क, पं० ५ : भनई विद्यापतीत्यादि : न० गु० ६२

शब्दार्थ—सामर—श्यामल। वाट—पथ। आरति—अनुराग। साखि—साक्षी। सुरपति—सहस्राक्ष, इन्द्र।

अनुवाद—श्यामल सुन्दर इस पथ से आए, इसीलिए मेरी आँखे लग गयीं। अनुराग-प्राबल्य से आँचर (अंग) सजाया नहीं जा सका—सब सखियाँ साक्षी हैं। सखि, मुझे कहो, मुझे कहो, उसका अधिवास (वासस्थान) कहाँ है? दुगुनी दूर होने पर भी फिर दर्शन की आशा से मैं पथ का अतिक्रम करूँगी। मेरे जीवन, यौवन और चतुरपना का क्या प्रयोजन है? मदन-वाण से मूर्छित होकर रहती हूँ, किस प्रकार जीवन का भार सहन कर रही हूँ। उस नागर ने जनसमाज अर्थात् लोकजन के सामने मुझे अपनी ओर आधा पद आगे बढ़ाते देखा। (मेरा) कठिन हृदय भिन्न नहीं हुआ, लज्जा रसातल में चली गयी। इन्द्र के चरणों में लोचन के लिए प्रार्थना करती हूँ, गरुड़ से पंख की याचना करती हूँ। मन-मनोरथ रख कर नन्द के नन्दन को देख आती हूँ।

(२४४)

हमे हसि हेरला थोरा रे
सफल भेल सखि कौतुक मोरा रे॥
हेरि तहि हरि भेल आने रे।
जनि मनमथे मन वेधल वाने रे॥
लखल ललित तसु गाते रे।
मन भेल परसिअ सरसिज पाते रे॥

तनु पसरल विन्दु रे।
नेउछि नड़ाओल सनखत इन्दु रे।
काँपल परम रसाले रे।
जनि मनसिज गरइ जपेलु तमाले रे॥
विद्यापति कवि भाने रे।
करत कमलमुखि हरि सावधाने रे॥

मिथिला का पद न० गु० ६१

(१) नगेन्द्र वाबू ने अपने मन से 'कत तक अधिवास' पाठ कर दिया है। (२) नगेन्द्र वाबू ने 'धरइते मात्र' लिखा है।

शब्दार्थ—हेरला—देखा। आने—अन्यमना। बेधल—विद्ध किया। लखल—लक्ष्य किया। पसरल—फैल गया। विन्दु—स्वेदविन्दु। नड़ाओल—फेंक दिया। गरइ—गल गया। जपेलु—जप करते करते।

अनुवाद—हे सखि, (उन्होंने) हँस कर मुझे थोड़ा सा देखा, (उससे) मेरा कौतूहल पूर्ण हुआ। (मुझे) देखते ही हरि अन्यमना हो गए, मानों मन्मथ ने (उनके) मन को बाण-विद्ध किया। उनके सुन्दर अंग को लक्ष्य किया, मालूम हुआ मानो पद्म-पत्र का स्पर्श कर रही हूँ। शरीर पर स्वेद विन्दु फैल गये; (मानों) तारका-वेष्टित चन्द्र को नेवछ कर फेंक दिया। परम रसाल होकर काँप उठा, मानों तमाल मनसिज का जप करते करते गल गया। विद्यापति कवि कहते हैं कि हरि कमलमुखी को चेतना दे रहे हैं (उसके मन में काम का जागरण कर रहे हैं)।

(२४५)

दरसने लोचन दीघर धाव।
दिनमनि तेजि कमल जनि जाव॥
कुमुदिनी चाँद मिलन सहवास।
कपटे नुकाविअ मदन विकास॥
साजनि माधव देखल आज।
महिमा छाड़ि पलाएल लाज॥
नीवी ससरि भूमि पलि[1] गेलि।
देह नुकाविअ देहक सेरि[2]।
अपनोवें हृदय बुझावए आन।
एकसर सब दिस देखिअ कान्ह॥

नेपाल ७२; पृ० २६ क, पं० ७, भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० २६२

शब्दार्थ—दीघर—दीर्घ। महिमा—गौरव। ससरि—खुल कर।

अनुवाद—दर्शन के लिए लोचन दीर्घ (दूर तक) दौड़े; मानों दिनमणि कमल का त्याग कर जा रहा हो (उनको देखने के बाद) कुमुदिनी और चन्द्र का मिलन और सहवास हुआ। कपट करके मदन का विकाश (आविर्भाव) गोपन किया। सजनि, आज माधव को देखा, लज्जा ने महिमा त्याग कर पलायन किया। नीवि खुल कर पृथ्वी पर गिर गयी; (मेरा) शरीर (उनके) शरीर की शरण में छिप गया। अपना हृदय क्या दूसरे को समझाया जा सकता है? सब दिशाओं में अकेले कन्हायी को देखती हूँ।

(२४६)

विके गेलिहुँ माथुर मधुरिपु
भेटल साथे।
तहि खने पंचसर लागल विधिवसे
के करु बाधे॥
हार भार भेल तहि खने
चीर चाँदन भेल आगी।
दखिनेवों पवन दुसह भेल
मोहि पापिनि बध लागी॥
कतने जतने धर अएलाहु
केकर दधि दुध काजे।
मनहु न मधुरिपु विसरिअ
तेजल गुरुजन-लाजे॥
भनइ विद्यापति सुवदनि दुइ दिठे
होएत समाजे।
मनक मनोरथ पूरत मधुरिपु
आओत आजे॥

न० गु० तालपत्र० ६६

नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) पड़ि (२) सेरि (३) अपनेवें दिया है।

शब्दार्थ—विके—बेचने। बाधे—बाधा देगा ? तेइखने—उसी समय। समाजे—मिलन।

अनुवाद—मथुरा (दुग्ध) बेचने गयी, (वहाँ) मधुसूदन को देखा—उसी समय विधिवश पंचसर लगा, कौन बाधा देता ? उसी समय (गला का) हार भार (बोध) हुआ, चीर और चन्दन अग्नि के समान लगे, मैं पापिनी हूँ, मुझे वध करने के लिए मलयसमीर भी दुसह हुआ। कितने यत्न से घर आया, किसके काम में दही-दूध लगेंगे ? मधुसूदन को भूल नहीं सकी—गुरुजनों की लज्जा छोड़ दी। विद्यापति कहते हैं, हे सुबदनि, दोनों आँखें मिलेंगी, मधुरिपु आज आएँगे, मन का मनोरथ पूर्ण होगा।

(२४७)

कानन कान्ह कान हम सुनल
तइ गेल आनक आने।
हेरइति संकररिपु मोहि हरलन्हि
कि कहव तनिक गेयाने[1]।

चानन चान आंग हम लेपलि
तँइ बाढ़ल अति दापे।
अधरक लोभे सँ विसधर ससरल
धरइ चाह फेरि साँपे॥

भनइ विद्यापति दुहुक मुदित मन
मधुकर लोभित केली।
असह सहथि कत कोमल कामिनी
जामिनि जीव दय गेली।

ग्रियर्सन २२ ; न० गु० २६१।

अनुवाद—जंगल में कन्हाइ आए हुए हैं यह बात मैंने कानों सुनी, (यह सुनकर) मैं एक दूसरे ही प्रकार की हो गयी (न जाने किस प्रकार की हो गयी)। जिस समय कन्हाई को देखा, मदन ने मेरा (ज्ञान) हरण कर लिया, मदन की बुद्धि की बात और क्या कहें ? (अच्छी प्रकार रूप भी देखने न दिया)। कपूरमिश्रित चन्दन (चन्द्र-कपूर) मैंने शरीर में लेपन किया, उससे ताप अत्यन्त बढ़ गया। अधर के लोभ से विषधर (वेणी) ससरता हुआ आया, फिर (मैंने) साँप को पकड़ना चाहा। (वेणी) खुल कर मुख के निकट पड़ गयी, मैंने हाथ से पकड़ कर फिर बाँध दिया। विद्यापति कहते हैं, दोनों के मन पुलकित हैं, मधुकर केलिलुब्ध (हुआ है)। कोमल कामिनी असह्य (मदनानल) का कितना सहन करेगी ? यामिनी रात दे गयी (रात्रि को मिलन हुआ)।

१—*पाठान्तर*—ग्रियर्सन के प्रथम चार चरणों के बाद है—

सात पाँच हम लेखि पठाओलि
बहु विधि लिखलि बनाइ।
से पुनि नाथ पाँच कय रखलन्हि
दुइ फेरि देलन्हि मेटाइ।

अर्थात् मैंने उसे बहुत प्रकार से लिखकर भेजा कि मैं सात (बिख खय मरब—विष खाकर मरूँगी) और पाँच (नहि आएब—यदि तुम नहीं आवोगे)। मेरे नाथ ने पाँच (नहि आएब) लिखकर फिर उसमें से दो मिटा दिया (नहीं) अर्थात् 'आउँगा' लिखा। I wrote him seven (बिखखाए मरब) and five नहि आएब will you not come) in many varying forms. But my lord agreed to five (नहि आएब) out of which he rubbed out two (नहि).

(२४८)

लुबधल नयन निरलि रहु ठाम।
भरमहु कबहु लेव नहि नाम॥
अपने अपन करब अवधान।
जञों परचारिअ तञों परजान॥
एरे नागरि मन दए सून।
जे रस जानत करब उ पून॥
जइअओ हृदय रह मिलिए समाज।
अधिकेओ वहबएँ विभए लाज॥
कण्ठे घटी अनुगत फेम।
नागर लखत हृदय गत प्रेम॥

नेपाल १३६, पृ० ४८ क, पं० ५: भनइ विद्यापतीत्यादि

शब्दार्थ—लुवधल—लुब्ध; निरलि —निवृत्त करके; भरमहु—भ्रम से भी; परचारिअ—प्रचार; रह—गोपन; समाज—प्रियसंग।

अनुवाद—लुब्ध नयनों को निवृत्त कर लो; भ्रम से भी उसका नाम कभी मत लेना। अपने ही अपने को सावधान कर रखो; जिससे प्रकाश हो जा सकता है उससे दूर ही रहना चाहिए। हे नागरि! मन देकर सुनो, जिस रस का स्वरूप जानती हो, उसी को फिर करना। यदि हृदय में गोपन रहेगा तब (कहीं) मिलन होगा। अधिक व्यक्त होने से लज्जा (कुत्सा) होती है। ('कण्ठे घटि अनुगत फेम' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता) नागर हृदयगत (गुप्त) प्रेम लक्ष्य करता है।

(२४९)

सपनेहु न पुरल मनक साधे।
नयने देखल हरि एत अपराधे॥
मन्द[२] मनोभव मन जर आगी।
दुलभ पेम भेल पराभव लागी[१]।
चाँद वदनी धनि चकोर नयनी।
दिवसे[४] दिवसे भेलि चउगुन मलिनी॥
कि करति चाँदने की अरविन्दे।
विरह[५] विसर जञों हुतिअ निन्दे॥
अबुध[६] सखीजन न बुझए आधी।
आन औषध कर आन वेयाधी॥
मनसिज मनके मन्दि वेवथा[७]।
छाड़ि कलेवर मानस वेथा॥
चिन्ताए विकल हृदय नहि थीरे।
वदन निहारि नयन वह नीरे॥

नेपाल २०३, पृ० ७३ क, पं २: भनइ विद्यापतीत्यादि: न० गु० ७६, तालपत्र और नेपाल

पाठान्तर—(नेपाल पोथी का)—(१) सपनेहु न पुरले मनलोभे
भले परिभव भागी एके साधे॥
(२) पंक (३) दुलभ लोभे भेल परिभव भागी।
(४) विरह वेदने तह भेल चतुर रमणी।
(५) नेह (६) अबुल
(७) मदन वान के मन्दि वेवथा।
कि मोरा चान्दने कि मोरा अरविन्दे॥

शब्दार्थ—विके—वेचने। बाधे—बाधा देगा ? तेइखने—उसी समय। समाजे—मिलन।

अनुवाद—मथुरा (दुग्ध) वेचने गयी, (वहाँ) मधुसूदन को देखा—उसी समय विधिवश पंचसर लगा, कौन वाधा देता ? उसी समय (गला का) हार भार (वोध) हुआ, चीर और चन्दन अग्नि के समान लगे, मैं पापिनी हूँ, मुझे वध करने के लिए मलयसमीर भी दुसह हुआ। कितने यत्न से घर आया, किसके काम में दही-दूध लगेंगे ? मधुसूदन को भूल नहीं सकी—गुरुजनों की लज्जा छोड़ दी। विद्यापति कहते हैं, हे सुबदनि, दोनों आँखें मिलेगी, मधुरिपु आज आएँगे, मन का मनोरथ पूर्ण होगा।

(२४७)

कानन कान्ह कान हम सुनल
तइ गेल आनक आने।
हेरइति संकररिपु मोहि हरलन्हि
कि कहव तनिक गेयाने[1]।

चानन चान आंग हम लेपलि
तँइ बाढ़ल अति दापे।
अधरक लोभे सँ विसधर ससरल
धरइ चाह फेरि साँपे॥

भनइ विद्यापति दुहुक मुदित मन
मधुकर लोभित केली।
असह सहथि कत कोमल कामिनी
जामिनि जीव दय गेली।

ग्रियर्सन २२ ; न० गु० २९८।

अनुवाद—जंगल में कन्हाइ आए हुए हैं यह वात मैंने कानों सुनी , (यह सुनकर) मैं एक दूसरे ही प्रकार की हो गयी (न जाने किस प्रकार की हो गयी)। जिस समय कन्हाई को देखा, मदन ने मेरा (ज्ञान) हरण कर लिया, मदन की बुद्धि की वात और क्या कहें ? (अच्छी प्रकार रूप भी देखने न दिया)। कपूरमिश्रित चन्दन (चन्द्र-कपूर) मैंने शरीर में लेपन किया, उससे ताप अत्यन्त वढ़ गया। अधर के लोभ से विषधर (वेणी) ससरता हुआ आया, फिर (मैंने) साँप को पकड़ना चाहा। (वेणी) खुल कर मुख के निकट पड़ गयी, मैंने हाथ से पकड़ कर फिर बाँध दिया। विद्यापति कहते हैं, दोनों के मन पुलकित हैं, मधुकर केलिलुब्ध (हुआ है)। कोमल कामिनी असह्य (मदनानल) का कितना सहन करेगी ? यामिनी रात दे गयी (रात्रि को मिलन हुआ)।

१—*पाठान्तर*—ग्रियर्सन के प्रथम चार चरणों के वाद है—

सात पाँच हम लेखि पठाओलि
वहु विधि लिखलि वनाइ।
से पुनि नाथ पाँच कय रखलन्हि
दुइ फेरि देलन्हि मेटाइ।

अर्थात् मैंने उसे वहुत प्रकार से लिखकर भेजा कि मैं सात (विख खय मरव—विष खाकर मरूँगी) और पाँच (नहि आएव—यदि तुम नहीं आवोगे)। मेरे नाथ ने पाँच (नहि आएव) लिखकर फिर उसमें से दो मिटा दिया (नहीं) अर्थात् 'आऊँगा' लिखा। I wrote him seven (विखखाए मरव) and five नहि आएव will you not come) in many varying forms. But my lord agreed to five (नहि आएव) out of which he rubbed out two (नहि).

(२४८)

लुबधल नयन निरलि रहु ठाम ।
भरमहु कबहु लेब नहि नाम ॥
अपने अपन करब अवधान ।
जञों परचारिअ तञों परजान ॥

एरे नागरि मन दए सून ।
जे रस जानत करब उ पून ॥
जइओ हृदय रह मिलिए समाज ।
अधिकेओ बहबएँ बिभए लाज ॥

कएठे घटी अनुगत फेम ।
नागर लखत हृदय गत प्रेम ॥

नेपाल १३६, पृ० ४८ क, पं० ५: भनइ विद्यापतीत्यादि

शब्दार्थ—लुबधल—लुब्ध; निरलि —निवृत्त करके; भरमहु—भ्रम से भी ; परचारिअ—प्रचार; रह—गोपन ; समाज—प्रियसंग ।

अनुवाद—लुब्ध नयनों को निवृत्त कर लो ; भ्रम से भी उसका नाम कभी मत लेना । अपने ही अपने को सावधान कर रखो ; जिससे प्रकाश हो जा सकता है उससे दूर ही रहना चाहिए । हे नागरि ! मन देकर सुनो, जिस रस का स्वरूप जानती हो, उसी को फिर करना । यदि हृदय में गोपन रहेगा तब (कहीं) मिलन होगा । अधिक व्यक्त होने से लज्जा (कुत्सा) होती है । ('कएठे घटि अनुगत फेम' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता) नागर हृदयगत (गुप्त) प्रेम लक्ष्य करता है ।

(२४९)

सपनेहु न पुरल मनक साधे ।
नयने देखल हरि एत अपराधे ॥
मन्द[२] मनोभव मन जर आगी ।
दुलभ पेम भेल पराभव लागी[३] ।
चाँद वदनी धनि चकोर नयनी ।
दिवसे[४] दिवसे भेलि चउगुन मलिनी ॥

कि करति चाँदने की अरविन्दे ।
विरह[५] विसर जञों हुतिअ निन्दे ॥
अबुध[६] सखीजन न बुझए आधी ।
आन औषध कर आन बेयाधी ॥
मनसिज मनके मन्दि वेवथा[७] ।
छाड़ि कलेवर मानस वेथा ॥

चिन्ताए विकल हृदय नहि थीरे ।
वदन निहारि नयन वह नीरे ॥

नेपाल २०३, पृ० ७३ क, पं २ : भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० ७९, तालपत्र और नेपाल

पाठान्तर— (नेपाल पोथी का)—(१) सपनेहु न पुरले मनलोभे
भले परिभव भागी एके साधे ॥
(२) पंक (३) दुलभ लोभे भेल परिभव भागी ।
(४) विरह वेदने तह भेल चतुर रमणी ।
(५) नेह (६) अछल
(७) मदन बान के मन्दि वेवथा ।
कि मोरा चान्दने कि मोरा अरविन्दे ॥

शब्दार्थ—बिके—बेचने। बाधे—बाधा देगा? तेइखने—उसी समय। समाजे—मिलन।

अनुवाद—मथुरा (दुग्ध) बेचने गयी, (वहाँ) मधुसूदन को देखा—उसी समय विधिवश पंचसर लगा, कौन बाधा देता? उसी समय (गला का) हार भार (बोध) हुआ, चीर और चन्दन अग्नि के समान लगे, मैं पापिनी हूँ, मुझे वध करने के लिए मलयसमीर भी दुसह हुआ। कितने यत्न से घर आया, किसके काम में दही-दूध लगेंगे? मधुसूदन को भूल नहीं सकी—गुरुजनों की लज्जा छोड़ दी। विद्यापति कहते हैं, हे सुबदनि, दोनों आँखें मिलेंगी, मधुरिपु आज आएँगे, मन का मनोरथ पूर्ण होगा।

(२४७)

कानन कान्ह कान हम सुनल
तइ गेल आनक आने।
हेरइति संकररिपु मोहि हरलन्हि
कि कहव तनिक गेयाने[1]।

चानन चान आंग हम लेपलि
तँइ बाढ़ल अति दापे।
अधरक लोभे सँ विसधर ससरल
धरइ चाह फेरि साँपे॥

भनइ विद्यापति दुहुक मुदित मन
मधुकर लोभित केली।
असह सहथि कत कोमल कामिनी
जामिनि जीव दय गेली।

ग्रियर्सन २२; न० गु० २९५।

अनुवाद—जंगल में कन्हाइ आए हुए हैं यह बात मैंने कानों सुनी, (यह सुनकर) मैं एक दूसरे ही प्रकार की हो गयी (न जाने किस प्रकार की हो गयी)। जिस समय कन्हाई को देखा, मदन ने मेरा (ज्ञान) हरण कर लिया, मदन की बुद्धि की बात और क्या कहूँ? (अच्छी प्रकार रूप भी देखने न दिया)। कपूरमिश्रित चन्दन (चन्द्र-कपूर) मैंने शरीर में लेपन किया, उससे ताप अत्यन्त बढ़ गया। अधर के लोभ से विषधर (वेणी) ससरता हुआ आया, फिर (मैंने) साँप को पकड़ना चाहा। (वेणी) खुल कर मुख के निकट पड़ गयी, मैंने हाथ से पकड़ कर फिर बाँध दिया। विद्यापति कहते हैं, दोनों के मन पुलकित हैं, मधुकर केलिलुब्ध (हुआ है)। कोमल कामिनी असह्य (मदनानल) का कितना सहन करेगी? यामिनी रात दे गयी (रात्रि को मिलन हुआ)।

१—*पाठान्तर*—ग्रियर्सन के प्रथम चार चरणों के बाद है—

सात पाँच हम लेखि पठाओलि
बहु विधि लिखलि बनाइ।
से पुनि नाथ पाँच कय रखलन्हि
दुइ फेरि देलन्हि मेटाइ।

अर्थात् मैंने उसे बहुत प्रकार से लिखकर भेजा कि मैं सात (विख खय मरब—विष खाकर मरूँगी) और पाँच (नहि आएब—यदि तुम नहीं आवोगे)। मेरे नाथ ने पाँच (नहि आएब) लिखकर फिर उसमें से दो मिटा दिया (नहीं) अर्थात् 'आउँगा' लिखा। I wrote him seven (विख खाए मरब) and five नहि आएब will you not come) in many varying forms. But my lord agreed to five (नहि आएब) out of which he rubbed out two (नहि).

(२४८)

लुबधल नयन निरलि रहु ठाम ।
भरमहु कवहु लेव नहि नाम ॥
अपने अपन करव अवधान ।
जञों परचारिअ तञों परजान ॥
एरे नागरि मन दए सून ।
जे रस जानत करव उ पून ॥
जइअओ हृदय रह मिलिए समाज ।
अधिकेओ वहवएँ विभए लाज ॥
कएठे घटी अनुगत फेम ।
नागर लखत हृदय गत प्रेम ॥

नेपाल १३६, पृ० ४८ क, पं० ५: भनइ विद्यापतीत्यादि

शब्दार्थ—लुबधल—लुब्ध; निरलि —निवृत्त करके; भरमहु—भ्रम से भी ; परचारिअ—प्रचार; रह—गोपन ; समाज—प्रियसंग ।

अनुवाद—लुब्ध नयनों को निवृत्त कर लो ; भ्रम से भी उसका नाम कभी मत लेना । अपने ही अपने को सावधान कर रखो ; जिससे प्रकाश हो जा सकता है उससे दूर ही रहना चाहिए । हे नागरि ! मन देकर सुनो, जिस रस का स्वरूप जानती हो, उसी को फिर करना । यदि हृदय में गोपन रहेगा तब (कहीं) मिलन होगा । अधिक व्यक्त होने से लज्जा (कुत्सा) होती है । ('कएठे घटि अनुगत फेम' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता) नागर हृदयगत (गुप्त) प्रेम लक्ष्य करता है ।

(२४९)

सपनेहु न पुरल मनक साधे ।
नयने देखल हरि एत अपराधे ॥
मन्द[२] मनोभव मन जर आगी ।
दुलभ पेम भेल पराभव लागी[३] ।
चाँद वदनी धनि चकोर नयनी ।
दिवसे[४] दिवसे भेलि चउगुन मलिनी ॥
कि करति चाँदने की अरविन्दे ।
विरह[५] विसर जञों सुतिअ निन्दे ॥
अबुध[६] सखीजन न बुझए आधी ।
आन ओषध कर आन वेयाधी ॥
मनसिज मनके मन्दि वेवथा[७] ।
छाड़ि कलेवर मानस वेथा ॥
चिन्ताए विकल हृदय नहि थीरे ।
वदन निहारि नयन वह नीरे ॥

नेपाल २०३, पृ० ७३ क, पं २ : भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० ७६, तालपत्र और नेपाल

पाठान्तर— (नेपाल पोथी का)—(१) सपनेहु न पुरले मनलोभे
भले परिभव भागी एके साधे ॥
(२) पंक (३) दुलभ लोभे भेल परिभव भागी ।
(४) विरह वेदने तह भेल चतुर रमणी ।
(५) नेह (६) अछल
(७) मदन वान के मन्दि वेवथा ।
कि मोरा चान्दने कि मोरा अरविन्दे ॥

शब्दार्थ—विके—बेचने। बाधे—बाधा देगा? तेइखने—उसी समय। समाजे—मिलन।

अनुवाद—मथुरा (दुग्ध) बेचने गयी, (वहाँ) मधुसूदन को देखा—उसी समय विधिवश पंचसर लगा, कौन बाधा देता? उसी समय (गला का) हार भार (बोध) हुआ, चीर और चन्दन अग्नि के समान लगे, मैं पापिनी हूँ, मुझे वध करने के लिए मलयसमीर भी दुसह हुआ। कितने यत्न से घर आया, किसके काम में दही-दूध लगेंगे? मधुसूदन को भूल नहीं सकी—गुरुजनों की लज्जा छोड़ दी। विद्यापति कहते हैं, हे सुबदनि, दोनों आँखें मिलेगी, मधुरिपु आज आएँगे, मन का मनोरथ पूर्ण होगा।

(२४७)

कानन कान्ह कान हम सुनल
तइ गेल आनक आने।
हेरइति संकररिपु मोहि हरलन्हि
कि कहब तनिक गेयाने[1]।

चानन चान आंग हम लेपलि
तँइ बाढ़ल अति दापे।
अधरक लोभे सँ विसधर ससरल
धरइ चाह फेरि साँपे॥

भनइ विद्यापति दुहुक मुदित मन
मधुकर लोभित केली।
असह सहथि कत कोमल कामिनी
जामिनि जीव दय गेली।

ग्रियर्सन २२; न० गु० २९९।

अनुवाद—जंगल में कन्हाइ आए हुए हैं यह बात मैंने कानों सुनी, (यह सुनकर) मैं एक दूसरे ही प्रकार की हो गयी (न जाने किस प्रकार की हो गयी)। जिस समय कन्हाई को देखा, मदन ने मेरा (ज्ञान) हरण कर लिया, मदन की बुद्धि की बात और क्या कहें? (अच्छी प्रकार रूप भी देखने न दिया)। कपूर्रमिश्रित चन्दन (चन्द्र-कपूर) मैंने शरीर में लेपन किया, उससे ताप अत्यन्त बढ़ गया। अधर के लोभ से विषधर (वेणी) ससरता हुआ आया, फिर (मैंने) साँप को पकड़ना चाहा। (वेणी) खुल कर मुख के निकट पड़ गयी, मैंने हाथ से पकड़ कर फिर बाँध दिया। विद्यापति कहते हैं, दोनों के मन पुलकित हैं, मधुकर केलिलुब्ध (हुआ है)। कोमल कामिनी असह्य (मदनानल) का कितना सहन करेगी? यामिनी रात दे गयी (रात्रि को मिलन हुआ)।

१—पाठान्तर—ग्रियर्सन के प्रथम चार चरणों के बाद है—

सात पाँच हम लेखि पठाओलि
बहु विधि लिखलि बनाइ।
से पुनि नाथ पाँच कय रखलन्हि
दुइ फेरि देलन्हि मेटाइ।

अर्थात् मैंने उसे बहुत प्रकार से लिखकर भेजा कि मैं सात (विख खय मरब—विष खाकर मरूँगी) और पाँच (नहि आएब—यदि तुम नहीं आवोगे)। मेरे नाथ ने पाँच (नहि आएब) लिखकर फिर उसमें से दो मिटा दिया (नहीं) अर्थात् 'आउँगा' लिखा। I wrote him seven (विखखाए मरब) and five नहि आएब will you not come) in many varying forms. But my lord agreed to five (नहि आएब) out of which he rubbed out two (नहि).

(२४८)

लुबधल नयन निरलि रहु ठाम ।
भरमहु कबहु लेब नहि नाम ॥
अपने अपन करब अवधान ।
जवों परचारिअ तवों परजान ॥
एरे नागरि मन दए सून ।
जे रस जानत करब उ पून ॥
जइअओ हृदय रह मिलिए समाज ।
अधिकेओ वहबएँ विभए लाज ॥
कण्ठे घटी अनुगत फेम ।
नागर लखत हृदय गत प्रेम ॥

नेपाल १३६, पृ० ४८ क, पं० ५: भनइ विद्यापतीत्यादि

शब्दार्थ—लुबधल—लुब्ध; निरलि—निवृत्त करके; भरमहु—भ्रम से भी; परचारिअ—प्रचार; रह—गोपन; समाज—प्रियसंग।

अनुवाद—लुब्ध नयनों को निवृत्त कर लो; भ्रम से भी उसका नाम कभी मत लेना। अपने ही अपने को सावधान कर रखो; जिससे प्रकाश हो जा सकता है उससे दूर ही रहना चाहिए। हे नागरि! मन देकर सुनो, जिस रस का स्वरूप जानती हो, उसी को फिर करना। यदि हृदय में गोपन रहेगा तब (कहीं) मिलन होगा। अधिक व्यक्त होने से लज्जा (कुत्सा) होती है। ('कण्ठे घटि अनुगत फेम' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता) नागर हृदयगत (गुप्त) प्रेम लक्ष्य करता है।

(२४६)

सपनेहु न पुरल मनक साधे ।
नयने देखल हरि एत अपराधे ॥
मन्द[२] मनोभव मन जर आगी ।
दुलभ पेम भेल पराभव लागी[३] ।
चाँद वदनी धनि चकोर नयनी ।
दिवसे[४] दिवसे भेलि चउगुन मलिनी ॥
कि करति चाँदने की अरविन्दे ।
विरह[५] विसर जवों सुतिअ निन्दे ॥
अवुध[६] सखीजन न बुझए आधी ।
आन औषध कर आन वेयाधी ॥
मनसिज मनके मन्दि वेवथा[७] ।
छाड़ि कलेवर मानस वेथा ॥
चिन्ताए विकल हृदय नहि थीरे ।
वदन निहारि नयन वह नीरे ॥

नेपाल २०३, पृ० ७३ क, पं २ : भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० ७६, तालपत्र और नेपाल

पाठान्तर— (नेपाल पोथी का)—(१) सपनेहु न पुरले मनलोभे
भले परिभव भागी एके साधे ॥
(२) पंक (३) दुलभ लोभे भेल परिभव भागी ।
(४) विरह वेदने तह भेल चतुर रमणी ।
(५) नेह (६) अकुल
(७) मदन वान के मन्दि वेवथा ।
कि मोरा चान्दने कि मोरा अरविन्दे ॥

अनुवाद—स्वप्न में भी मन की साध पूरी न हुई, आँखों से हरि को देखा, बस इतना ही अपराध हुआ। मन्द मदन मन में अग्नि जलाता है। पराभव के लिए ही दुर्लभ प्रेम हुआ। चकोरवदनी चाँदवदनी सुन्दरी दिनोंदिन चौगुना मलिन होने लगी। चन्दन और पद्म क्या करेंगे? यदि लेटने से निद्रा आ जाती तो विरह विस्मृत हो जाता। अबुझ सखियाँ आधि भी नहीं समझतीं; अन्य व्याधि में अन्य औषधि देती हैं। मनसिज के मन की व्यवस्था ही मन्द है, कलेवर छोड़ कर मन को व्यथा देता है। चिन्ता से विकल, हृदय स्थिर नहीं, मुख देखकर नयनों से नीर बहने लगता है।

(२५०)

कत न वेदन मोहि देसि[१] मदना।
हर नहि बला मोहि[२] जुवति जना॥
विभूति-भुषन नहि चान्दनक रेनू।
बघछाल नहि मोरा नेतक वसनू[७]॥
नहि मोरा जटाभार चिकुरक वेनी।
सुरसरि नहि मोरा कुसुमक सेनी[३]॥
चान्दनक विन्दु मोरा नहि इन्दु गोटा[४]।
ललाट पावक नहि सिन्दुरक फोटा॥
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु[५]।
फनिपति नहि मोरा मुकुता हारु॥
भनइ विद्यापति सुन देव कामा।
एक पथ दुपन अछ ओहि नामक वामा[६]॥

राग त पृ० ७०, न० गु० ६६, तालपत्र

शब्दार्थ—मोहि—मुझको; देसि—देता है; सेनी—श्रेणी; गोटा—एक।

अनुवाद—मदन तू मुझको कितनी वेदना दे रहा है। मैं महादेव नहीं—युवती नारी हूँ। विभूति भूषण (मेरा) नहीं है, यह चन्दन की धूल है, बाघछाल नहीं, यह नया वस्त्र है। चिकुर की वेणी है, यह जटाभार नहीं है, यह सुरसरि नहीं, कुसुमों की श्रेणी है। यह मेरा चन्दन का विन्दु है—चन्द्रमा नहीं। मेरे कपाल में पावक नहीं—सिन्दूर का विंदु है। यह मेरा कालकूट नहीं—चारु मृगमद है। यह मेरा फणीन्द्र नहीं—मुक्ता का हार है। विद्यापति कहते हैं—कामदेव, क्षमा करो। बस मेरा एक ही दोष है—मेरा नाम वामा है (महादेव का एक नाम वामदेव है)।

पाठान्तर—तरंगिनी का पाठान्तर—(१) देहे (२) मोर्ने (३) नहि मोहि जटाजूट चिक[illegible] ... सुरसरि नहि कुसुमक सेनी॥
(४) चाँद तिलक मोहि नहि इन्दु छोटा।
(५) कण्ठ गरल नहि मृगमद चारू।
(६) एक दोष अछ ओहि नामक वामा।
(७) 'विभूति......वसनु' तक नहीं है।

मन्तव्य—यह पद गीतगोविन्द के निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद है।

हृदि विपलता हारो नायं भुजंगम नायकः।
कुवलय दल श्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः॥
मलयजरजोनेदं भस्म प्रियारहिते मयि।
प्रहर न हरभ्रान्त्यानंग क्रुधा किमुधावसि।

(२५१)

कर किसलय सयन रचित
गगन मंडल पेखी।
जनि सरोरुह अरुन सुतल
विनु विरोधे उपेखी ॥
नव घन जवों निर वरीसए
नयन उज्जल तोरा।
जनि सुधाकर करें कवलित
अमिय वम चकोरा ॥
कह कमलवदनी।
कमने पुरुसे हर अराधिअ
जसु कारने तोवे खिनी ॥

उत्तुंग पीन पयोधर उपर
लखिअ अधर छाया।
कनक गिरि पवार उपजल
वापू मनोभव माया ॥
तौं पुनु से नारि विरहे झामरि
पलटि परलि वेनी।
साँस समीरन पिवए धाउलि
जनि से कारि नगिनी ॥
भन विद्यापति सुनह जउवति
सरुप मोर वचना।
अपन मना थिर पए चाहिअ
परे विवचन कोना ॥

न० गु० तालपत्र ७८

शब्दार्थ—सयन— शयन, शय्या। मंडल—मण्डल। जनि—मानो। जवों—जैसे। लखिअ—देखती हूँ। पवार—प्रवाल। वापू—श्रेष्ठ। तौं पुनु—इसलिए फिर। झामरि—मलिन। कारि—कृष्णवर्ण। नगिनी—सर्प।

अनुवाद—किसलय के समान हाथ पर मुख रख कर गगनमण्डल देख रही हो—मानो कोई विरोध न रहते हुए भी उपेक्षा करके कमल (मुख) अरुण पर (कर की रक्तिम आभा से उपमित) शयन कर रहा हो। तुम्हारे उज्ज्वल नयन—नवमेघ के समान वारि वर्षण कर रहे हैं, मानों चन्द्रकिरणों से कवलित हो चकोर अमृत उद्‌गीरण कर रहा हो। हे कमलवदनि, बोलो किस पुरुष के लिए शिव की आराधना कर रही हो और चीण हो रही हो? तुम्हारे उत्तुंग पीन पयोधरों के ऊपर अधर की छाया देख रही हूँ, मानों मदनदेव की श्रेष्ठ माया से कनकगिरि के ऊपर प्रवाल उत्पन्न हुआ हो। इसीलिए फिर विरह में मलिना रमणी की वेणी उलट कर पड़ी है, मानों काल-नागिनी निःश्वास समीरण पान करने के लिए दौड़ पड़ी हो। विद्यापति कहते हैं, हे युवति, मेरी सत्य बात सुन, अपना मन स्थिर रखना चाहिए—दूसरे की विवेचना क्या है?

(२५२)

प्रथमहि हृदय बुझओलह मोहि।
वड़े पुने वड़े तपे पौलिसि तोहि ॥
काम-कला रस दैव अधीन।
मवें विकाएव तवें वचनहु कीन ॥

दूति दयावति कहहि विसेखि।
पुनु वेरा एक कइसे होएत देखि ॥
दुर दुरे देखलि जाइते आज।
मन छल मदने साहि देव काज ॥

ताहि लए गेल विधाता वाम।
पलटलि दीठि सुन भेल ठाम ॥

नेपाल १८८, पृ० ६७ ख, पं २; भनइ विद्यापतीत्यादि। न० गु० ७२

शब्दार्थ—पौलिसि—पाया। बचनहु कीन—बात द्वारा खरीदोगी। विसेखि—विशेष करके।

अनुवाद—तुमने पहले मेरे हृदय को (मन को) समझाया कि (मैंने) बड़े पुण्य से, बड़े तप से उसे पाया है। कामकला रस दैव के आधीन है! मैं बिकूँगी, तुम बातों से खरीद लेना। हे दयावती दूति, ठीक से कहो, फिर एक बार उससे मिलन किस प्रकार होगा? आज उसको दूर दूर से ही जाते देखा, दिल में हुआ, मदन कार्य सिद्ध कर देगा। परन्तु प्रतिकूल विधाता उसको ले गया—नजर फिरा कर देखा तो वह स्थान शून्य था।

(२५३)

अपनहि नागरि अपनहि दूत।
से अभिसार न जान बहूत॥
की फल तेसर कान जनाए।
आनव नागर नयने बझाए॥
ए सखि राखहिसि अपनक लाज।
परक दुअ रे करह जनु काज॥
परक दुआरे करिअ जओं काज।
अनुदिने अनुखने पाइअ लाज॥
दुहु दिस एक सयँ होइक विरोध।
तकरा बजइत कतए निरोध॥

नेपाल ७१, पृ० २७ क, पं ५; भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० १३१।

शब्दार्थ—बहुत—अधिक लोग। तेसर—तीसरा। बझाए—फँसा कर। बजइत—कहते। निरोध—बाधा।

अनुवाद—नागरी यदि स्वयं अपनी दूती बने, तो (उस अवस्था में) उस अभिसार की बात कोई नहीं जान सकता। तीसरे कान को जनाने से क्या फल? नागर को नयन के (कटाक्ष पाश में) पाश में बाँध कर लाएगी। सखि, तुम अपनी लज्जा बचाओ, दूसरे के द्वारा कार्य मत करवाना। दूसरे से कार्य करवाने से अनुदिन अनुक्षण लज्जा प्राप्त करोगी। जब दोनों में (नागरी और दूती में) विरोध होगा, तब उस गोपनीय बात के कहने में क्या बाधा रहेगी।

(२५४)

पहिलहि सुनिअ भेलि महादेइ
कनके नावे ओकान।
गगन परसि रह समीरन
सूप भरि के आन॥
सुन्दरि अवेकी देखह देह।
बिनु हटवइ अरथ विहुन
जैसन हाटक गेह।
अपथ पथ परिचय भेले
वसि दिन दुइ चारि।
सुरत रस खन एके पारिअ
जाव जीव रह गारि॥

नेपाल ८८, प० ३२ ख, पं० २; भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४४२।

मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'ओकान' के स्थान पर 'वोकान' और 'पारिअ' के स्थान पर 'पाविअ' कर दिया है।

शब्दार्थ—पछा सुनिअ—पहले सुना था। हटवइ—दुकानदार। अरथविहुन—अर्थविहीन।

अनुवाद—महादेवि, पहले सुना था कि नाव भर कर सोना लाया जाता था। (किन्तु) जो हवा गगन स्पर्श करती हुई विराजती है, उसे सूप में भर कर कौन ला सकता है? सुन्दरि, अब शरीर क्या देखती हो? (नायक के विरह में तुम्हारे शरीर का क्या मूल्य है)? हाट में का घर जिसप्रकार दुकानदार के न रहने से अर्थ शून्य हो जाता है, तुम्हारा शरीर भी वैसे ही निरर्थक है। कुपथ का परिचय होने से उसपर दो चार दिन ही चला जाता है। सुरतरस क्षणमात्र पावोगी, किन्तु कलंक आजीवन रहेगा।

(२५५)

अघट घट घटावए चाह स
वचन बोलसि हसी
आनहि आन ह पेम वचना
तवें सखि रसल रसी ॥
सुन्दर देहा, विजुरी रेहा, गगनमण्डल सोभे ॥
जतन लेअउ, जे नहि पारिअ
तकके करिअ लोभे ॥
सुन्दरि तोको बोलवों पुनु पुनु
खेराएक परिहासे मवें खेंओल ओबोल बोलह जनु ॥
कथा असी कथाओसी पार ओ आरि वासा।
जे निरबाहक रए नहि पारिअ ताक के दीअए आसा ॥
कामिनिकुलक धरम निवाजें कैसे अगिरति पास
सुरत सुख निमेपरे वाजाव जीव उपहास ॥

भने विद्यापतीत्यादि

नेपाल २४०, पृ० ८६ ख, पं ३;

अनुवाद—तुम अघटन को घटाना चाहती हो, हँस हँस कर बातें करती हो, कितनी भी प्रेम की बातें करो—सखि, तुम वही रसिका हो, रस से भरपूर। विद्युत की रेखा के समान सुन्दर शरीर गगनमण्डल में ही शोभा पाता है; यत्न करने पर भी जो पाया न जाए उसके लिए कौन लोभ करे! केवल एक परिहास के लिए ही मैंने सब खो दिया, यह बात मत कहना। (परवर्ती चरण—कथाअसी प्रभृति का अर्थ मालूम नहीं होता)। जो निर्वाह नहीं कर सकता है, उसको कौन आशा दे? कामिनी कुल का धर्म मिटा कर किस प्रकार नायक के पास जाएगी? सुरतसुख क्षण भर के लिए ही है, किन्तु लोकापवाद अथवा उपहास जीवनभर रहता है।

(२५६)

थिर पद परिहरिए जे जन अथिर मानस लाव।
सब चाहिन दिने दिने खेलरत परतर पाव।
साजनि थिर मन कए थाक।
हटें जे जखने करम करिअ भल नहि परिपाक।
बुधजन मन बुझि निवेदए सबे संसारेरि भाव।
जखने जते विभव रहए तखनें तेहिँ गमाव।
भन विद्यापति सुन तन्वें जुवति चितें न झाँषहि आन।

रामभद्रपुर पोथी, पद ४४।

शब्दार्थ—परतर—समान अथवा परलोक।

अनुवाद—स्थिर वस्तु को छोड़ कर जो अस्थिर के प्रति मन देता है उसकी तुलना उस आदमी से दी जाती है जो घर छोड़ कर सारे दिन खेल में लगा रहता है। सखि, मन स्थिर करके रहो। सहसा कोई काम करने से उसका फल अच्छा नहीं होता। विद्वज्जन संसार की सब बातें खूब समझ-बूझ कर कहते हैं। जब जितना अर्थ अ[illegible] रुपया-पैसा रहता है उतने ही से (संसार) चलाना पड़ता है। विद्यापति कहते हैं, हे युवति, तुम मन में दूसरे की चिन्ता मत लाना। (अर्थात् तुम्हारा जो पति मिला है उसीसे सन्तुष्ट रहो)।

(२५७)

कंचन गड़ल हृदय हथिसार।
ते थिर थम्भ पयोधर भार॥
लाज-सिकर धर दृढ़ कए गोय।
आनक वचन हलह जनु कोए॥
दूर कर आगे सखि चिन्ता आन।
जओबन-हाथि करिअ अवधान॥
मनसिज-मदजल जओं उमताए।
धरिहसि पियतम-आँकुस लाए॥
जावे न सुमत तावे अगोर।
सुसइते मनिहसि मानस-चोर॥
भन विद्यापति सुन मतिमान।
हाथि महत नव के नहि जान॥

तालपत्र न० गु० २३०।

शब्दार्थ—कंचन—कांचन; हथिसार—हस्तिशाला। सिकर—सीकर; गोए—छिपा कर; उमताए—उन्मत्त होता है। धरिहसि—रखेगा, आँकुस—अङ्कुश। सुसइते—चोरी करके; मनिहसि—मना करेगी।

अनुवाद—हृदय की हस्तिशाला सोना की बनी हुई है, उसमें कुचभार स्थिर स्तम्भ है। लज्जा की छींटों द्वारा कठिन करके (बन्धन) छिपा कर रखेगी। दूसरे किसी आदमी से बातें कह मत देना। हे सखि, अन्य भावना छोड़ो, यौवन के ही हाथी को स्थिर करो। यदि मदन मदजल से उन्मत्त हो, प्रियतम (उसे) अंकुश लगा कर पकड़ेगा। जितने दिनों तक सुमति नहीं होती तभी तक अगोरो, हृदय का अपहरण जब चोर करेगा तो क्या मालूम होगा? विद्यापति कहते हैं, हे धीमान्, सुन, हाथी महावत के सामने झुकता है, यह कौन नहीं जानता?

(२५८)

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरुतरे
धिरे धिरे मुरलि बोलाव[1]।
समय सन्केत निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव॥
सांमरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि॥

जमुनाक तिर उपवन उदवेगल
फिरि फिरि ततहि निहारि।
गोरस विके निके अवइते जाइते[2]
जनि जनि पुछ बनवारि[3]॥

तोंहे मतिमान सुमति मधुसूदन
वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति
वन्दह नन्दकिसोरा॥

रागत० ८० : ४७; न० गु० १।

शब्दार्थ—बोलाव—बजा कर; बेरि बेरि—बार बार; बोलि—आह्वान। पठाव—भेजकर। उदवेगल—उद्विग्न हुए।

अनुवाद—नन्द के नन्दन कदम्ब के वृक्ष के नीचे (बैठकर) धीरे धीरे मुरली बजाते हैं। संकेत-समय जान कर कुञ्ज में बैठे और बार-बार सम्वाद (वंशीध्वनि) भेजने लगे। हे श्यामा (सुन्दरि), तुम्हारे लिए मुरारि अनुक्षण विकल हैं। यमुना के तीर पर उपवन में उद्विग्न होकर बार-बार फिर-फिर कर देखते हैं। वनमाली गोरस बेचने के लिए आने-जाने वाली प्रत्येक गोपसखी से (तुम्हारी बात) पूछते हैं। तुम बुद्धिमती हो; माधव भी सुमति हैं; (अतएव) मेरी कुछ बात सुन। विद्यापति कहते हैं, नन्दकिशोर की वन्दना करो।

नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) बलाव (२) विके अवइते जाइते (३) बनमारि लिखा है।

(२५६)

कण्टक माझ कुसुम परगास[१]।
भमर विकल नहि पावए पास[१]॥
भमरा भेल घुरए सब ठाम[४]।
तोइ बिनु मालति नहि बिसराम॥
रसमति[८] मालति पुनु पुनु देखि।
पिबए चाह मधु जीव उपेखि॥
ओ मधुजीवी तोंहीं[२] मधुरासि[९]।
साँचि धरसि मधु मने[३] न लजासि[१०]॥
अपनेहु मने गुनि बुझ अवगाहि।
तसु[६] दूसन वध, लागत काहि[११]॥
भनइ विद्यापति तौं पय जीव।
अधर सुधारस जौं पय पीव[१२]॥

नेपाल ७, पृ० ४ क, भनइ विद्यापतीत्यादि, पुनरायः ६२, पृ० २४ क ; ग्रियर्सन २, क्षणदा पृ० ३८३ ; न० गु० तालपत्र ८४

अनुवाद—काँटों के बीच में फूल का प्रकाश होता है, विकल भ्रमर निकट वास नहीं कर सकता (आ सकता) भ्रमर सब जगह घूमता फिरता है, हे मालति, तुम्हारे बिना विश्राम नहीं पाता। रसवती मालती को बार-बार देख कर जीवन की उपेक्षा करके मधुपान करना चाहता है। वह मधुजीवी, तुम मधुराशि! मधु संचय करके रखती हो, मन में लज्जा नहीं होती! अपने मन में अच्छी प्रकार विवेचना करके देखो—उसके (भ्रमर के) वध का दोष किसको लगेगा? विद्यापति कहते हैं—यदि अधर सुधारस पान करे तो बच जायगा?

पाठान्तर—(क) नेपाल पोथी का पाठ—(१) पास (२) तञें (४) तञें (४) भमरा भमए कतहु ठाम यह पाठ नेपाल में ६२वें पद के अनुसार है। नेपाल के ७वें पद के अनुसार—भमरा विकल भमए सब ठाम।' ७वें पद में 'पिबए चाह मधु जीव उपेखि' के बाद ही भमरा विकल—प्रभृति है। ६२वें पद के अनुसार तञें न लजासि' और इसके बाद 'भमरा भमए कतहुँ ठाम' है। ७वां पद मालव राग में गेय है, ६२ वां पद धनछी मे गेय है। (५) धनि (६) तोहर।

(ख) गीतचिन्तामणि का पाठान्तर

(७) कण्टक माझे कुसुव परकाश
भमरा विकल ना पाओए पाश
(८) रसवति
(९) पिवति चाहे मधु जीउ उपेखि
ऊह मधुजीवित तुहु मधुरासि
(१०) साँचि धरसि तबहु न जासि
(४) भमरा विकल नाहि ठाम
तोआ विने मालति नाहि विसराम।
(११) आपनेहि मने धनि बुझ अवगाहि
ओः तो पुरुषवध लागय काहि॥
(१२) दोनओ भनिता नाइ

(ग) ग्रियर्सन का पाठान्तर

कण्टक माँह कुसुम परगासे।
विकल भमर नहि पावनि पासे।
भमरा भर मे रमे सभ ठामे।
तुअ बिनु मालति नहि बिसरामे॥
ओ मधुजीव तोंहँ मधुरासे।
संचि धरिए मधु मनहि लजासे॥
अपनहुँ मन दय बुझ अवगाहे।
भमर मरत वध लागत काहे॥
भनहि विद्यापति तौं पय जीवे।
अधर सुधारस जौं पय पीवे॥

(२६०)

जहि खने निअर गमन होअ मोर।
तहि खने कान्हु कुसल पुछ तोर॥
मन दए बुझल तोहर अनुराग।
पुनफले गुनमति पिआ मन जाग॥
पुनु पुछ पुनु पुछ मोर मुख हेरि।
कहिलिओ कहिनी कहवि कत वेरी॥
आन वेरि अवसर चाल आन।
अपने रभसे कर कहिनी कान॥

लुबुधल भमरा कि देव उपाम।
वाधल हरिन न छाड़ए ठाम॥

नेपाल ११, पृ० ५ क, पं० ५, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ८२

शब्दार्थ—जहि—जो। निअर—निकट। कहिलिओ—जो कहा जा चुका है।

अनुवाद—जैसे (उसके पास) मेरा गमन होता है, वैसे ही कन्हायी तुम्हारा कुशल-प्रश्न पूछते हैं। तुम्हारे प्रति (उसका) अनुराग (हुआ है), मैं समझ गयी हूँ। पुण्यफल से पुण्यवती प्रिय के हृदय में जागती है। मेरा मुख देखकर पुनः पुनः (तुम्हारी वात) पूछते हैं—कही हुई वात और कितनी बार कहूँ? अन्य समय (अन्य) उपाय से कन्हायी अपने रहस्य की वात कहते हैं अर्थात् सर्वदा किसी न किसी उपाय से तुम्हारी वातें करते हैं। लुब्ध भ्रमर की क्या उपमा दूँ—बँधी हरिणी स्थान नहीं छोड़ती अर्थात् जिस स्थान पर बाँधी जाती है, छोड़ती नहीं।

(२६१)

सरुप कथा कामिनि सुनु।
परहि आगे कहह जनु॥
तोँह अति निठुरि ओ अनुरागी।
सगरि निसि गमावए जागी॥
ए रे राधे जानि न जान।
तोरि विरहे विमुख कान्ह॥
तोरि ए चिन्ता तोरिए नाम।
तोरि कहिनी कहए सब ठाम॥
अरु की कहव सिनेह तोर।
सुमरि सुमरि नयन नोर॥
निते से आवए निते से जाए।
हेरइत हसइत से न लजाए॥

न पिन्ध कुसुम न वान्ध केस।
सवहि सुनाव तोर उपदेश॥

नेपाल ७३, पृ० २६ क, पं १, विद्यापतीत्यादि न० गु० ६८

शब्दार्थ—सरूप कथा—सच्ची वात। परहि आगे—दूसरे से। कहह जनु—मत कहना। सगरि—समस्त। गमावए—काटे। पिन्ध—पहने।

अनुवाद—कामिनि, सच्ची वात सुनो, दूसरे के सामने मत कहना। तुम अत्यन्त निष्ठुर हो, वह अनुरागी है। सारी रात वह जाग कर काटता है। हे राधे, तुम जानकर भी नहीं जानती, तुम्हारे विरह में कन्हायी विमुख (म्लान मुख) हैं। तुम्हारी ही चिन्ता, तुम्हारा ही नाम, तुम्हारी ही वात सब जगह करते हैं। तुम्हारे (प्रति) स्नेह की वात और क्या बोलें : तुम्हारी वातें याद कर करके उसकी आँखों से अश्रु बहने लगते हैं। वह रोज आता है और रोज जाता है तथा (दूसरे द्वारा) देखने अथवा हँसे जाने पर भी उसे लज्जा नहीं आती। (वह) फूल नहीं पहनता, केश नहीं बाँधता अर्थात् जूड़ा ठीक नहीं करता, सब को तुम्हारी वातें कहता रहता है।

(२६२)

तोहे कुल मति रति कुलमति नारि।
वांके दसरने भुलल मुरारि॥
उचितहुँ बोलइत अवे अवधान।
संसय मेलतहु तन्हिक परान॥
सुन्दरि की कहब कहइत लाज।
भोर भेला से परहु सयँ बाज॥
थावर जंगम मनहिं अनुमान।
सबहिक विसय तोहर होअ भान॥
अरु कहिअ की बुझओविसि तोहि।
जनि उधमति उमताबए मोहि॥

नेपाल १५४, पृः ५५ क, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० १०२

शब्दार्थ—वांके दरसने—कटाक्ष द्वारा। भोर भेला—विह्वल हुआ। परहुँ सय बाज—दूसरे से कहना। विसय—विषय। उधमति—उन्मत्त।

अनुवाद—तुम कुलवती रमणी हो, कुल ही के अनुसार तुम्हारी मति और अनुराग हैं, तुम्हारी तिरछी नज़र से मुरारि भुला गये। उचित बात कहती हूँ जिसे मन लगा कर सुनो, उसके प्राण संशय में पड़ गए हैं। सुन्दरि, क्या कहें, कहने में लज्जा होती है, वह दूसरे से बातें करने पर भी विह्वल हो जाता है। स्थावर जंगम का मन में अनुमान करने से भी तुम्हारा ही ख़याल होता है, अर्थात् जो कुछ भी देखता है, समझता है कि तुम्हीं को देख रहा है। और क्या कह कर तुमको समझावें ? मानो कोई उन्मत्त (माधव) मुझको भी पागल बना रहा हो।

(२६३)

कत अछ युवति कलामति आने।
तोहि मानए जनि दोसरि पराने॥
तुअ दरसन विनु तिलाओ न जीवइ।
दारुन मदन वेदन कत सहइ॥
सुनु सुन गुनमति पुनमति रमनी।
न कर विलम्ब छोटि मधु रजनी॥
सामर अम्बर तनुक रंगा।
तिमिर मिलओ ससि तुलित तरंगा॥
सपुन सुधाकर आनन तोरा।
पिउत अमिय हसि चान्द चकोरा॥

नेपाल ६, पृ० ४ ख; पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ८७।

शब्दार्थ—कलामति आने—अन्य कितनी कलावतियाँ हैं। तिला ओ—एकक्षण भी। सामर—श्याम। तनुक रंगा—शरीर का रंग। सपुन—सम्पूर्ण।

अनुवाद—कितनी कलावती युवतियाँ हैं, (परन्तु) तुमको दूसरे प्राण के समान समझता है अर्थात् अन्य कितनी सुन्दरियाँ हैं, परन्तु उनमें प्रेम नहीं करता, केवल तुम में ही अनुरक्त है। तुम्हारे दर्शन के बिना क्षण भर भी प्राण नहीं रहते—दारुण मदन-वेदना कितना सहे ? हे गुणमयी, पुण्यवती रमणि, सुन, सुन, मधु (चैत्र) की रजनी छोटी है, विलम्ब मत करना, तुम्हारे श्याम अम्बर में तुम्हारे शरीर का रंग मिल कर ऐसा मालूम होता है मानों तिमिर में आच्छन्न (मेघों से ढका) चन्द्रमा हो। तुम्हारा मुख पूर्णचन्द्र है, चकोर (नागर) हँस कर चन्द्र का अमृत पान करेगा।

(२६४)

ए सखि ए सखि न बोलह आन।
तुअ गुने[1] लुबुधल निते आव[2] कान॥

निते[3] निते निअर आव बिनु काज।
वेकतओ हृदय नुकावए लाज[4]॥
अनतहु जाइत[5] एतहि निहार।
लुबुधल नयन हटए[6] के पार॥
से अति नागर तोवें तसु तूल।
एक नले गाँथ दुइ जनि फूल॥
भनइ[7] विद्यापति कवि कण्ठहार।
एक सर मनमथ दुइ जिव मार॥

तालपत्र न० गु० ८०; ग्रियर्सन ४।

शब्दार्थ—निते आव—नित्य आता है। निते निते—रोज रोज। अनतहु—अन्यत्र। एतहि—इसी ओर। निहार—देखता है।

अनुवाद—हे सखि, हे सखि, दूसरी बात मत कहना, अर्थात् मेरी बात अस्वीकृत मत करना। तुम्हारे गुण से प्रलुब्ध होकर कन्हायी रोज आता है। बिना काम रोज निकट आता है; हृदय (मनोभाव) व्यक्त होने पर भी लज्जा से छिपाता है। अन्य स्थान पर जाते हुए भी इधर ही देखता है—लुब्ध नयनों को कौन रोक सकता है? वह नागर श्रेष्ठ है, तुम उसी के समान हो, मानों एक वृन्त में दो फूल गुँथे हुए हों। कवि कण्ठहार विद्यापति कहते हैं, मानों मन्मथ एक तीर से दो जीव वध कर रहा हो।

(२६५)

प्रथम सिरिफल गरवे[1] गमओलह
जौं गुन-गाहक आवे[2]।
गेल जौबन पुनु पलटि न आवए
केवल रह पछतावे[3]॥
सुन्दरि, वचने करह समधाने[4]।
तोह सनि नारि दिवस दस[5] अछलिहु
ऐसन उपजु मोहि[6] भाने॥
जौवन रुप तावे धरि छाजत[7]
जावे मदन अधिकारी।
दिन दस गेले सखि सेहओ पड़ाएत[8]
सकल जगत परचारी॥
विद्यापति[9] कह जुवति लाख लह
पड़ल पयोधर—तूले।
दिन दिन अगे सखि ऐसनि होयवह
घोसिनी घोरक मूले॥

नेपाल १२४, पृ० ४४ पं ३, न० गु० ६१ तालपत्र।

पद न० २६४—ग्रियर्सन का पाठान्तर—(१) गुन (२) अव।
पद न० २६४—(३) नितनित (४) वेकतए हृदय लुकावए लाज (५) जाइते (६) हटए (७) भनहि
पद न० २६५—नेपाल पोथी के अनुसार पाठान्तर—(१) गरध (२) गेनुन गाहक आवे (३) किछुदिन या पचतावे। (४) मोरे बोले करब अवधाने (५) दोसरि हमे (६) हाम (७) जौवन सिरि घता वेवह सुन्दरि (८) छाड़ि पलाएत (९) विद्यापति कह हरति लाख नह
पलन पयोधर—हूले
दिने दिने भावे तोहे तैसने होयवह
घोसि नाघोरकमूले॥

शब्दार्थ—सिरिफल—श्रीफल, पयोधर, यहाँ पर यौवन; पछतावे—पश्चाताप; सनि—समान; छाजत—शोभा पाता है; पड़ाएत—भागता है; घोसिनी—ग्वालिन; घोरक—मट्ठा का।

अनुवाद—जब प्रथम यौवन आया, उस समय गुणग्राहक के आने पर भी, उसे (यौवन को) गर्व में ही काट दिया, अर्थात् उसकी ओर प्रेम भरी आँखों से देखा नहीं। यौवन एक बार चले जाने पर फिर नहीं लौटता, केवल पश्चात्ताप रह जाता है। सुन्दरि, मन लगा के सुन; मैं भी कभी तुम्हारे ही समान कुछ दिनों के लिए युवती थी, इसी से ऐसा सोचती हूँ। यौवन और रूप उतने ही दिन शोभा पाते हैं जितने दिनों तक मदन उनका अधिकारी रहता है। थोड़े ही दिनों बाद, सखि, वह भी भाग जाता है—यह सारा संसार जानता है। विद्यापति कहते हैं कि लाखों-लाख युवतियाँ पयोधर-तूल में पड़ी हैं। ग्वालिन के मट्ठा के मूल्य के समान युवतियों का गौरव भी दिनों-दिन कम होता जाता है;

(२६६)

अपना[1] काज कओन नहि बन्ध।
के न करए निअ पति अनुबन्ध॥
अपन अपन हित सब केओ चाह।
से सुपुरुस जे कर निरवाह[2]
साजनि ताक जिवन थिक सार।
जे मन दए कर पर उपकार॥
आरति अरतल आवए पास।
अछइत बथु नहि करिअ उदास[3]॥
से पुनु अनतहु गेले पाव॥
अपना मन पए रह पचताव॥
भनइ विद्यापति दैन न भाख।
बड़ अनुरोध बड़े पए राख।

न० गु० तालपत्र ८९, ग्रियर्सन ३।

शब्दार्थ—बन्ध—बद्ध, लिप्त। निअ पति—अपने प्रति; आरति—आर्त्ति; अरतल—अनुरक्त।

अनुवाद—(नायक की दूती नायिका को मिलन के लिए राजी करने के लिए कह रही है) सब तो अपने काम में लिप्त रहते हैं, अपनी भलाई की चेष्टा कौन नहीं करता? अपना अपना भला सब चाहते हैं, वही सुपुरुष है जो कार्य उद्धार कर सके। (किन्तु) सखि, उसी का जीवन सार (धन्य) है जो दूसरे का उपकार करता है। तुम्हारे अनुराग के वश आर्त होकर वह तुम्हारे पास आता है; तुम्हारे पास तो (उसकी इच्छा पूर्ण करने वाली) वस्तु है, उसे निराश मत करना। (यदि उसे लौटा दो, तब) वह अन्यत्र जाकर प्रार्थित वस्तु पाएगा, लेकिन उस समय तुम्हारे मन में पश्चात्ताप होगा। विद्यापति कहते हैं, दैन्य की बात मत कहना, (तुम्हारे पास नहीं है, अथवा दे नहीं सकती, ऐसा मत कहना)। बड़ों का अनुरोध बड़े ही रखते हैं।

पाठान्तर—ग्रियर्सन—(1) अपन (2) निबाह (3) वस्तु न करिअ निरास।

(२६७)

तिन-तुल अरु तो तह भए लहु
मानिअ गरुवि आहि।
अछइत जे बोल नहीं अछए
से लहु सबहु चाहि॥
साजनि कइसन तोर गेआन।
जउवन रतन[२] तोर सोआधिन
कके न करसि दान॥
जावे से जउवन तोर सोआधिन
तावे परवस होए।
जउवन गेले विपद भेले
पूछि न पुछत कोए॥

एहि मही आवे[१] अथिर जीवन
जउवन अलप काल।
इथी जत जत न विलसिअ
से रह हृदय साल॥
तोर धन धनि तोराहि रहत
निधन होएत आन।
दानक धरम तोराहि होएत[३]
कवि विद्यापति भान॥

नेपाल २१४, पृ० ७७ क, पं २:
न० गु० ४४३ तालपत्र।

शब्दार्थ—तिन—तृण। तुल—तुल्य। सोआधिन—स्वाधीन। तावे—तावत्, तब तक।

अनुवाद—तृण एवं तुला—इनसे भी लघु होकर तुम अपने मन में अपने को भारी समझती हो। जो रहने पर भी नहीं कह देता है, वह सबों से लघु है। सखि, तुम्हारा ज्ञान ऐसा है। यौवन-रत्न तुम्हारे अपने आधीन है, दान क्यों नहीं करती? जब तक यौवन तुम्हारे अपने आधीन है, तभी तक दूसरे तुम्हारे आधीन होंगे: यौवन जाने पर, विपद् आने पर कोई पुकारने पर भी पूछने नहीं आवेगा। इस पृथ्वी पर अद्ध जीवन अनिश्चित है, यौवन अल्पकाल स्थायी है: इसमें जो विलास नहीं करता, उसके हृदय में कॉटा (दुख) रह जाता है। धनि, तुम्हारा धन तुम्हारा ही रहेगा, दूसरा ही निधन होगा (उसका हृदय तुम्हीं ही हरण कर लोगी), कवि विद्यापति कहते हैं तुम्हीं को दान का धर्म भी होगा।

(२६८)

जदि अवकास कइए नहि तोहि।
काँ लागि ततए पठओलए मोहि॥
तोहर हृदय वचन नहि थीर।
नलिनी पात जइसन बह नीर॥
आवे कि कहब सखि कहइत अकाज।
अथिरक मधथ भेल सम काज॥
आसा लागि सहत कत साठ।
गरुअ न हो अमड़ा काँ काठ॥

तोहे नागरि गुन रुपक गेह।
अनुदिन बुझल कठिन तुअ नेह॥
तन्हिक सतत तोहर परथाव।
जनि निरधन मन कतए न धाव॥
भनइ विद्यापति इ रस गाव।
मगले कानठ के नहि पाव॥

न० गु० १०१ तालपत्र।

२६७—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) आर (२) सम्पद (३) तोहति पाओब। प्रथम पाँच चरण "तिन तुल अरु से लेकर तोर गेआन' तक एवं 'जावे से—पूछए कोए' तक नहीं है।

शब्दार्थ—कइए—कभी भी ; पठश्रोलए—भेजा; मोहि—मुझे ; थीर—स्थिर ; अथिरक—अस्थिर मति का ; मधथ—मध्यस्थ ; साठ—शास्ति ; नेह—स्नेह ; तन्हिक—उनका ; परथाव—प्रस्ताव, प्रसंग ; कानट—फटा वस्त्रखंड।

अनुवाद—यदि तुम्हें कभी भी अवकाश नहीं है तो किस लिए मुझे वहाँ भेजा ? तुम्हारा हृदय और वचन स्थिर नहीं हैं, जिस प्रकार पद्म के पत्ते पर से जल वह जाता है। अब क्या कहें, कहने से हानि होती है, अस्थिर मत के मध्यस्थ के समान काम हुआ। वह आशा के लिए कितनी शास्ति सहेगा ? आमड़ा का काठ भारी नहीं होता (अर्थात् तुम्हारा मन आमड़ा के काठ के समान हल्का है)। तू नागरी है, रूप-गुण का घर, दिनों-दिन समझ रही हूँ कि तुम्हारा प्रेम बड़ा कठिन है। उसके मुख में सर्वदा तेरा ही प्रसंग रहता है, जिस प्रकार निर्धन का मन (धन की ओर छोड़ कर) कहीं भी नहीं दौड़ता। विद्यापति यह रस गाते हुए कहते हैं कि माँगने पर फटा हुआ वस्त्रखंड कौन नहीं पाता है ?

(२६९)

घटक विहि विधाता जानि।
काचे कंचने छाउलि आनि[1]॥
कुच सिरिफल संचा पूरि।
कुँदि वइसाओल (कनक कटोरि)[2]॥
रूप कि कहब मञें विसेखि।
गए निरूपिअ झटित देखि॥
नयन नलिन सम विकास।
चान्दह तेजल विरह भास॥
दिने रजनी हेरए वाट।
जनि हरिनी बिछुरल ठाट॥

नेपाल १००, पृ० ३६ क, पं ५
भने विद्यापतीत्यादि, न० गु० ७७२

शब्दार्थ—घटक—घड़ा का ; विहि—विधाता ; संचा—छाँच ; गए—जाकर ; वाट—पथ ; ठाट—यूथ।

अनुवाद—विधाता ने घट निर्माण की विधि जान कर कच्चा कंचन लाकर सजाया। कुच श्रीफल का छाँच निकाल कर सोना के कटोरे में कसकर भरा। मैं विशेष क्या कहूँ, तुम शीघ्र जाकर देखो और निरूपण करो। दोनों नयन कमल के समान विकसित हो गए हैं ; चाँद ने भी विरह का भाव त्याग दिया है (अर्थात् कमल के विकास पाने पर भी चाँद मलिन अथवा अस्तमित नहीं हुआ है)। दिवानिशि तुम्हारा पथ देखती है, मानों हरिणी झुंड से अलग हो गयी हो।

(२७०)

माधवकि कहब ताही।
तुअ गुन लुबुधि मुगुध भेलि राही॥
मलिन वसन तनु चीरे।
करतल कमल नयन ढरु नीरे॥
उर पर सामरि वेनी।
कमल कोप जनि कारि लगेनी॥
केओ सखि ताकय निशासे।
केओ नलनी दल करय बतासे॥
केओ बोल आयल हरी।
ससरि उठलि चिर नाम सुमरी॥
विद्यापति कवि गावे।
विरह वेदन निअ सखि समुझावे॥

ग्रियर्सन ७४

शब्दार्थ—कारि नगेनी—कृष्ण सर्पिणी।

अनुवाद—माधव, उसको क्या कहूँ ? तुम्हारे गुण से लुब्ध हो कर राइ (राधा) मुग्धा (ज्ञानसून्या) हो गयी है। उसके अंग में मलिन वसन; करतल पर मुख रखे बैठी रहती है ; नयनों से अश्रुधारा बहती रहती है। वक्ष पर कृष्णवेणी पड़ी रहती है मानों कमलकोष में कृष्णसर्पिणी हो। कोई सखी यह देखती है कि (वह) निःश्वास ले रही है कि नहीं, और कोई सखी नलिनीदल से हवा करती है। (उसे होश है कि नहीं इसकी परीक्षा करने के लिए) कोई कहती है कि हरि आ गये ; उसी समय तुम्हारा नाम स्मरण करके जल्दी-जल्दी उठ बैठती है। विद्यापति कवि गाते हैं, अपनी सखी विरह-वेदना समझाती है।

(२७१)

अविरल नयन गरए[१] जलधार।
नव-जल-विन्दु सहए के पार॥

कि कहब सजनी तकर कहिनी।
कहए न पारिअ देखलि जहिनी॥
कुच-जुग[२] उपर आनन[३] हेरु।
चाँद राहु उर चढ़ल सुमेरु॥
अनिल अनल वम मलयज वीख।
जेहु छल सीतल सेहु भेल तीख[४]॥
चाँद सतावए[६] सविताहु जीनि।
नहि जीवन एकमत भेल तीनि॥
किछु उपचार मान नहि आन।
ताहि बेआधि भेषज पँचवान[७]।
तुअ दरसन विनु तिलओ[८] न जीव।
जइऊ[९] कलामति पीऊख पीव॥

नेपाल ६, पृ० ३ ख, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादिः न० गु० ११२ तालपत्र

शब्दार्थ—गरए—पड़ता है। सहय—सहन करना। अनिल अनल वम—हवा आग उगलती है। मलयज—चन्दन। वीरन—विष। तीख—तीक्ष्ण, वेदनादायक। सतावए—सन्तप्त करता है। सविताहु जीनि—सूर्य को भी जीत कर : पीऊख—पीयूष।

अनुवाद—नयनों से अविरत जलधारा बहती है। नूतन जलविन्दु कौन सहन कर सकता है ? सजनि, उसकी बात क्या कहूँ ? जो देखा उसे कह नहीं सकती। कुचयुगल के ऊपर मुख है, देख कर लगता है मानों चन्द्रमा (मुख) राहु के भय से सुमेरू (कुच) पर्व्वत पर आरोहण कर गया हो। वायु अग्नि उगलती है, चन्दन विष (उगलता है)। जो शीतल था वह भी तीव्र हो गया। चन्द्र सूर्य्य से भी अधिक सन्तापित करता है। तीनों, अर्थात् वायु, चन्दन, और चन्द्रमा एकमत हो गये (इसीलिए) जीवन नहीं रहता। अन्य कोई उपचार नहीं मानती अर्थात् अन्य कुछ से भी काम नहीं होता। उसकी व्याधि की औषधि पचवाण है। यदि वह कलावती पीयूष भी पान करे, तथापि तुम्हारे दर्शन के विना तिलमात्र भी बच नहीं सकती।

२७१। नेपाल पोथी का *पाठान्तर*—(१) पलए (२) कुचदुहु (३) आननहि (४) अनल अनिल (५) जो छल सीतल से भेल तीख (६) चाँद सन्तावए (७) किछु उपचारन मानए आन (८) तिलाओ (९) जेओ एहि बेआधि अथिक पचवान।

(२७२)

नयनक नीर चरन तल गेल।
थलहुक कमल अम्भोरुह भेल[1]॥
अधर अरुन निमिसि नहि होए[2]।
किसलय सिसिरे छाड़ि हलु धोए[3]॥
ससिमुखि नोरे ओल नहि होए।
तुअ अनुरागे सिथिल सब कोए[4]॥

नेपाल ४४, पृ० १७ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि
रामभद्रपुर १८६ : न० गु० ११२

अनुवाद--नयनों का जल चरणतले चला गया। स्थलकमल जलकमल हो गया। (रक्तिम पदतल की साधारणतः स्थलकमल से तुलना की जाती है, किन्तु जल से भींग जाने पर उसे जलकमल ही कहना उचित है)। अधर निमिष मात्र के लिए भी अरुण नहीं होता; (मानों) किसलय को शिशिर ने धो छोड़ा हो। शशिमुखी के अश्रुओं की सीमा नहीं है। तुम्हारे अनुराग में सब शिथिल हो गया है।

(२७३)

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिव जोख नागर दे दस लाख॥
देओ दे हास सुधा सम नीक।
जइसन परहोंक तइसन बीक॥
तुअ सुन्दरि नव मदन-पसार।
जनि गोपहि आओव बनिजार॥
रोस दरस रस राखब गोए।
धएले रतन अधिक मूल होय॥
भलहि न हृदय बुझाओब नाह।
आरति गाहक महँग बेसाह॥
भनइ विद्यापति सुनहु सयानि।
सुहित वचन राखब हिय आनि।

न० गु० तालपत्र १२६

शब्दार्थ—जीव—जीवन; जोख—तौल कर; नीक—अच्छा, सुन्दर; परहोंक—पहली बिक्री, बोहनी; आओब बनिजार—सौदागर आवेगा; नाह—नाथ; वेसाह—विक्रय।

अनुवाद—सुन्दरि! प्रथम कुटिल कटाक्ष देखकर नागर मानों दस लाख बार भी जीवन त्यागने को प्रस्तुत हो जाता है। तेरी हँसी सुधा के समान [illegible] लगता है; जिस प्रकार की बोहनी होती है, वैसी ही बिक्री होती है। सुन्दरि,

२७२। रामभद्रपुर पाठ—(१) थलक कमल (२) अधर [illegible] लागि नहि होए। (३) सिसिरे किसलय छाड़ु जनि धोए। (४) [illegible] होए। ससिमुखि नोर ओल नहि होए॥
[illegible] सिथिल [illegible]। [illegible] विद्यापति [illegible] जानि॥
[illegible] इसी के बाद पन्ना समाप्त हो गया है, और बाद का पन्ना नहीं पाया जाता। [illegible] होगा।

सुन, मदन की नयी दुकान तुम ढाँक कर मत रखना ; सौदागर आवेगा। (कृत्रिम) कोप दिखाकर रस छिपाना, क्योंकि रत्न को रखे रहने से उसका मूल्य बढ़ जाता है। नाथ को अच्छी प्रकार हृदय का अभिप्राय मत समझाना, क्योंकि ग्राहक का आग्रह बढ़ा सकने से वस्तु अधिक दाम पर बिकती है। विद्यापति कहते हैं, हे सुचतुरे सुन, सुहृद् का वचन मन में रखना।

(२७४)

तोहेँ कुल-ठाकुर हमे कुल-नारि।
अधिपक अनुचिते किछु न गोहारि॥
पिसुने हसब पुनु माथ डोलाए।
बराक कहिनी बड़ि दुर जाए॥
सुन सुन साजन वचन हमार।
अपद न अंगिरिअ अपजस भार॥
परतह परतिति आविअ पास।
वड़ बोलि हमहु कएल विसवास॥
से आवे मने गुनि भल नहि काज।
वाजू राखए आँखिक लाज॥

नेपाल १२३, पृ० ४४ क, पं० १, भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० ४८०

शब्दार्थ—अधिपक—राजा का ; गोहारि—नालिश : पिसुन—दुष्टलोग ; अपद—अस्थान पर, अयोग्य प्रस्ताव से ; परतह—प्रत्यह ; परतिति—विश्वास।

अनुवाद—तुम कुल के ठाकुर, मैं कुलनारी, राजा के अन्यायपूर्ण काम की नालिश कहीं नहीं होती (सही, परन्तु) खललोग सिर झुका कर हँसेंगे, बड़े लोगों की बातें दूर तक फैल जाती हैं। सखे, मेरी बात सुनो, अयोग्य प्रस्ताव स्वीकार करके अपयश भार अङ्गीकार मत करना। प्रत्यह विश्वास करके नजदीक आकर बैठो, मैं भी बड़ा समझ कर तुम्हारा विश्वास करती हूँ। इस समय मन लगा कर देखती हूँ कि काम अच्छा नहीं हुआ। हाथ (वाजू) क्या आँखों की लज्जा ढाँक सकता है?

(२७५)

प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि।
चंचल लोचन काजरे आँजि[1]॥
जाएब वसने आँग लेब गोए[2]।
दूरहि रहब तें अरथित होए॥
मोरि बोलब सखि रहब लजाए[3]।
कुटिल[4] नयने देब मदन जगाए॥
झापब कुच दरसाओब कन्त।
दृढ़ कए बाँधब निवहुक कन्त॥
मान करए[5] किछु दरसब भाव।
रस राखब तें पुनु पुनु आव॥
हम कि सिखओबि अओर रस-रंग[7]।
अपनहि गुरु भए कहत अनंग॥
भनइ विद्यापति इ रस गाव।
नागरि कामिनि भाव बुझाव॥

नेपाल ६८, पृ० २१ क, पं ४ भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० १२० तालपत्र

२७५। नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) काजरे चंचल लोचन आँजि।(२) वसने जाए वहे आगसवे गोए (३) सुन्दरि प्रथमहि रहब लजाए। (४) कुटिले (५) आध झाँपब कुच दरसाओब आध
खने खने सुदृढ़ करब निवी बाँध।
(६) कइए (७) 'सुन्दरि मये सिखओबि सिआओर से रंग'।

अनुवाद--पहले अलक-तिलक सजा लेना। चंचल लोचन कज्जल से अंकित करना। वसन से अंग छिपा कर जाना। दूर रहना (उसी से) वह प्रार्थी होगा। मुँह फिरा कर, सखि, बातें बोलना और लज्जित हो रहना अर्थात् लज्जा दिखाना। कुटिल नयनों से मदन जगा देना। कुच ढाँकना, कान्त को दिखाना, अर्थात् कुच छिपाने का छल करते हुए उसे कान्त को दिखा देना। दृढ़ करके नीवि का प्रान्त बाँधना। (नेपाल पोथी का पाठ—आधा कुच छिपाना, आधा दिखाना, क्षण क्षण नीविबन्ध दृढ़ करके बाँधना) मान करके कुछ भाव दिखाना। रस (भविष्य के लिए) रखना, ऐसा होने से (वह) बार बार आएगा। मैं और क्या रस-रंग सिखाऊँ? अनंग स्वयं गुरु होकर कहेगा। विद्यापति कहते हैं, मैं यह रस गाता हूँ; चतुरा स्त्री का भाव समझाता हूँ।

(२७६)

तोहर साजनि पहिल पसार।
हमर वचन करिअ बेवहार॥
अमिअक सागर अधरक पास।
पओले नागरे करब गरास॥
लहु लहु कहिनी कहब बुझाए।
पिउत कुगयाँ गोमुख लाए॥
पहिल पढ़ओंक भलाके हाथ।
ते उपहास नहि गोपी साथ॥
मन्दा काज मन्दे कर रास।
भल पओलेहि अलपहि कर तोस॥

नेपाल १३६, पृ० ४६ क, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० [illegible]

अनुवाद—(हे) सजनि, तुम्हारी पहली दुकान है। मेरी सलाह के अनुसार काम (सौदा) कर। अधर के समीप ही अमृत का सागर पाकर नागर ग्रास करेगा। मृदु मृदु वाणी से समझाकर कहना। कुग्रामवासी ही (मूर्ख गँवई ही) गौ के समान मुख डाल कर पीता है। अच्छे आदमी से ही पहली बोहनी होनी चाहिए, नहीं तो गोपियाँ उपहास करेंगी। बुरे काम से बुरा व्यक्ति ही प्रेम करता है। अच्छे लोग थोड़ा पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

(२७७)

नगन घरात्रहि पावे[1]।
दुर कर से नव सकल नभावे॥
सुर अननन तेज लाजे।
[illegible] चरन [illegible] आसे[2]॥
रामा मद दिआ पाले।
अभिनव संगम तेजहि नरासे॥
पिया सयँ पहिलकि मेली।
होउ कमलके अलि केली॥
तरतम तबें कर दूरे।
केल इअहि छोड़ह सार चीर॥
विद्यापति कवि भासा।
अभिनव संगम तेजह तरासा॥

नेपाल १२२, पृ० ४५ ख, पं २०, न० गु० १३८

२७७ - नगेन्द्र बाबू ने पाठ लिया है--(१) मीन नहि पावे (२) चरन बेभासे।

शब्दार्थ—तरतम—द्विधाभाव। छेल—रसिक। इछहि—कामना करता है।

अनुवाद—शय्या छोड़कर चल जाना चाहती हो : अब वह सब स्वभाव छोड़ो। मुख नीचे किए हुई हो, किन्तु लज्जा छोड़ो। पृथ्वी पर पैर रख कर पाँव की उँगली से कितना लिख रही हो। रामा, प्रियतम के पास रहो, अपूर्व मिलन में भय का त्याग करो। प्रियतम के संग प्रथम मिलन मानों पद्म के साथ भ्रमर की केलि के समान होता है। तुम द्विधाभाव त्याग करो, रसिक (तुम्हारी) कामना करता है, मेरा वस्त्र छोड़ दो। कवि विद्यापति कहते हैं, अभिनव मिलन है, त्रास त्याग करो।

(२७८)

सबहु सखि परबोधि कामिनि आनि देलि पिया पास।
जनु बाँधि व्याधा विपिन सयँ मृग तेज तीख निसास॥
बैठलि सयन समीपे सुवदनि जतने सम्मुहिं न होइ।
भेल मानस बुलए दहोदिस देल मनमथे फोइ॥
सकल गात दुकूल दृढ़ अति कतहु नहि अवकास।
पानि परस परान परिहर पूरति की रति आस॥
कठिन काम कठोर कामिनि मान नहि परबोध।
निविड़ नीविबन्ध कठिन कंचुक अधरे अधिक निरोध॥
करब की परकार आबे हमे किछु न पर अवधारि।
कोपे कौसले करए चाहिअ हठहि हल हिअ हारि॥
दिवस चारि गमाए माधव करब रति समधान।
बड़हिक बड़ होय धैरज सिंघ भूपति भान॥

रागत पृ० ७४ (सिंह भूपति) प० स० पृ० ४४ (विद्यापति भनिता) पत ११४ : न० गु० १७५

अनुवाद—सब सखियाँ सान्त्वना देकर रमणी को प्रियतम के निकट ले आयीं, व्याध वन से हरिण को बाँध कर ले आया (वह इस प्रकार) तीक्ष्ण निश्वास त्याग करता है अर्थात् रमणी उसी प्रकार तीक्ष्ण निश्वास त्याग कर रही है। शय्या के समीप सुन्दरी बैठ गयी, यत्न करने पर भी सामने मुँह नहीं करती अर्थात् लाखों यत्न करने पर भी मुख पीछे फिरा कर बैठती है। मन में आया, बन्धन खोल देने से मदन दसों दिशाओं में भ्रमण करता है। सकल अंग में वस्त्र सुदृढ़, कहीं भी अवकाश नहीं। कर स्पर्श से जीवन त्याग करती है, रति-अभिलाषा कैसे सफल होगी? कठिन काम, रमणी कठोरा, प्रबोध नहीं मानती, नीविबन्ध सुदृढ़, कंचुक कठिन, अधर पर निरोध और भी अधिक। क्या उपाय करें अभी तक निश्चित नहीं कर सकता, छल करके राग दिखाना चाहता हूँ, बल-प्रदर्शन करने की अभिलाषा नहीं होती। हे माधव, चार दिन अर्थात् कुछ दिन बीत जाने पर रति समाधान करना, सिंह नरपति कहते हैं, बड़ों लोगों का धैर्य बड़ा होता है।

(२७६)

अहे सखि अहे सखि लए जुनि जाहे।
हम अति बालिक आकुल नाहे॥
गोट गोट सखि सब गेलि बहराय।
बजर किवाड़ पहु देलन्हि लगाय॥
तेहि अवसर पहु जागल कन्त।
चीर सम्भारलि जिउ भेल अन्त॥

नहिँ नहिँ करए नयन ढर नोर।
काँच कमल भमरा झिकझोर॥
जइसे जगमग नलनिक नीर।
तइसे डगमग धनिक सरीर॥
भन विद्यापति सुनु कवि राज।
आगि जारि पुनि आगक काज॥

चणदा पृ० १८; ग्रियर्सन २८ : न० गु० १४८; मिथिला गीतसंग्रह, २रा खंड पृ० २८-२९

शब्दार्थ—नहि—नाथ; गोट-गोट-एक-एक।

अनुवाद—हे सखि, हे सखि, मुझे मत ले जावो, मैं नितान्त बालिका और नाथ कामाकुल है। एक एक करके सब सखियाँ बाहर चली गयीं; प्रभु ने वज्र-कपाट लगा दिया। उसी समय प्रभु जागे अर्थात् कामासक्त हुए, वस्त्र संभालने में जीवनान्त हुआ। न न करते करते आँखों से जल गिरने लगा, भ्रमर पद्मकलि (लेकर) झकझोरने लगा। जिस प्रकार पद्म के ऊपर जल ढलमल करता है उसी प्रकार धनी का शरीर डगमग करने लगा। कविराज विद्यापति कहते हैं, सुन, अग्नि को फिर जलाने के लिए अग्नि की ही आवश्यकता होती है।

(२८०)

धनी बेयाकुलि कोमल कन्त।
के न परबोधब सखि परजन्त॥
सखी परबोधि सेज जब देल।
पिया हरसि उठि कर धए लेल॥

नहि नहि करय नयन ढरु नोर।
सूति रहलि धनि सेजक ओर॥
भनइ विद्यापति हे जुबराज।
सभ सयँ बड़ थिक आँखिक लाज॥

न० गु १२१ (मिथिला का पद)

२७९—पाठान्तर—चणदा गीत चिन्तामणि में इसी भाव का एक पद पाया जाता है।

ए सखि ए सखि [illegible] धनि याह।
मुद [illegible] बालिक [illegible] नाह॥
[illegible] भय [illegible] मोग [illegible]।
[illegible]॥

दूसर देह मोर झाँपल चीर।
पनु डगमग परे नलिनि को नीर॥
मा दूहे की सहए [illegible] साथी।
कोन विधि सिरजिले पापिनी राती॥

भनए विद्यापति [illegible] भान।
सो न [illegible] होन [illegible]॥

शब्दार्थ—परजन्त—प्रर्यन्त; शेष अवधि : ओर—किनारा।

अनुवाद—कोमलांगी धनी व्याकुल (हो गयी है), शेपावधि सखी को कौन प्रबोध देगा ? सखी समझा बुझा कर जब शय्या पर ले आयी तो प्रिय ने हर्ष से हाथ पकड़ लिया। न न कहते कहते आँखों से जल प्रवाहित होने लगा, धनी शय्या के किनारे सोयी रही। विद्यापति कहते हैं, हे युवराज, चचुलज्जा ही सबसे बड़ी है।

(२८१)

कोमल तनु पराभवे पाओव
तेजि न हलवि ते हु।
भमर भरे कि माजरि भाँगए
देखल कतहु वेहु॥
माधव, वचन धरव मोर।
नही नहि कय न पति आएव
अपद लागत भोर॥

अधर निरसि धूसर करव
भाव उपजत भला।
उने खन रति रभस अधिक
दिने दिने ससि कला॥

—नेपाल २१२, पृ० ७६ क, पं० ४ भनइ विद्यापतीत्यादि : न० गु० १४४

शब्दार्थ—पराभव पाओव—हार पावेगा; न हलवि—न जाना; माजरि—मञ्जरी; पतिआएव—विश्वास करना; अपद—अनुपयुक्त चेत्र में; भोर—भ्रम : निरसि—रस शून्य करके।

अनुवाद—सुकुमार अंग हार मान जाएगा ऐसा सोच कर त्याग मत करना; क्योंकि किसी ने कहीं देखा है कि भ्रमर के भार से मञ्जरी टूट जाती है। माधव, मेरी बात सुन, अर्थात् रख। न, न, करने का विश्वास मत करना, जिस स्थान पर भूल होनी उचित नहीं वहाँ भी भूल होगी। अधर रसशून्य करके धूसर करना, अच्छा भाव उत्पन्न होगा, दिनो-दिन चन्द्रकला की वृद्धि के समान चण-चण रति-सुख अधिक होगा।

(२८२)

वदर सरिस कुच परसव लहुँ।
कत सुख पाओव करित उहुँ उहुँ।
वाहुक वेढ़े परस निवार।
नीवि-मोप करए के पार॥
माधव अनुभव पहिलुक संग
नहि नहि करति इहे वथु रंग

अधर पाने से हरति गेयान
कमलकोप कए धरति पराण।
वैरी डीठि निहारति तोहि।
जनु भमरसि पुछिहिसि मोहि।
नूतन रस संसारक सार
विद्यापति कह कवि कण्ठहार

रामभद्रपुर पोथी, पद १६४

शब्दार्थ—लहु—धीरे। निवार—रोकना। वथु—बड़ा। जनु—नहीं।

अनुवाद—वदरी के समान कुच धीरे धीरे स्पर्श करना, जब वह उहुँ उहुँ कहेगी तब तुम्हें कितना आनन्द मिलेगा। बाहुओं के आलिङ्गन के मध्य भी वह निवारण की चेष्टा करती है, उसका नीविबन्धन कौन खोल सकता

है ? माधव, तुम प्रथम समागम का आनन्द अनुभव करो। नायिका ! ना, ना, करेगी, यही बड़ा रंग है। अधर पान करते ही वह होश खो देगी, पद्मकली के समान वह किस प्रकार जीवन रक्षा करेगी। तुमको वैरी दृष्टि से देखेगी। मोहवश उसको भ्रमर के समान डंक मत मारना। कवि कण्ठहार विद्यापति कहते हैं कि नूतन रस संसार का सार है।

(२८३)

अधर मँगइते अओंध कर माथ।
सहए न पार पयोधर हाथ॥
विघटलि नीवि कर धर जान्ति।
अन्कुरल मदनें धरए कत भान्ति॥
कोमल कामिनि नागर नाह।
कओने परि होयत केलि निरवाह॥

कुच-कोरक तवे (डरे)[1]।
काच वदरि अरुनिम रुचि भेल॥
लावए चाहिअ नखर विसेख।
भौँहनि आटए चान्दक रेख[2]॥
तसु मुख सौं लोभे रहु हेरि।
चान्द झपाव वसन कत वेरि॥

नेपाल २५६, पृ० ९३ क, पं० ३ भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० १५५

शब्दार्थ—अओंध—अवनत; विघटल नीवि—उन्मुक्त नीविबन्ध; भान्ति—भाँति, शोभा; नागर नाह—नाथ वा नायक रति-विद्याविशारद; आटए—भ्रू द्वारा मानों शरसन्धान में उद्यत हो।

अनुवाद—अधर (चुम्बन) चाहने पर सिर झुका लेती है। कुच पर हाथ सहन नहीं करती। खुले नीविबन्ध हाथ देकर दबा कर रखती है। अंकुरित कन्दर्प कितने प्रकार का रूप धारण करता है। रमणी कोमला, नाथ नागर (रतिविद्याविशारद), किस प्रकार केलि सम्पन्न होगी ? कुचकोरक हाथ में धारण किया, कच्चा वैर रक्तवर्ण हुआ। कुच पर नखरचिह्न देखकर नायिका चाँद की रेखा के समान भ्रू कुंचित करती है। उसके मुख को बार बार लोभ से (नायक ने) देखना चाहा, चन्द्रमा को कितनी देर तक कपड़े से ढाकेगी ? अर्थात् नागर उसका मुख बार-बार देखना चाहता था, परन्तु वह बार-बार छिपा लेती थी।

(२८४)

परसे वुझल तनु सिरिसक फूल।
वदन सुसौरभ सरसिज तूल॥
मधुर वानि सरे कोकिल साद।
पिउल अधर मुख अमिय सवाद॥
सुन्दरि वूझ तोहर विवेक।
चारि जेँओल भरि भूखल एक॥

वासर देखहि न पारिअ सूर।
दुतिक वचने अएलाहुँ एत दूर॥
पओलह सीतल पानि विसेखि।
हरह पियास कि करवह देखि॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
नयनक आतुर रहल मुरारि॥

तालपत्र न० गु० १७

पाठान्तर—(२८३) नगेन्द्र बाबू ने छन्द मिलाने के लिए 'गहि लेल' जोड़ दिया है। (२) नगेन्द्र बाबू का पाठ है—"भौंह न आवए चान्दक रेख" लेकिन पोथी में स्पष्ट आटए है।

शब्दार्थ—सिरिसक—शिरीष का; सरसिज तुलें—कमल के समान; चारि जें ओल—चारो (स्पर्श, घ्राण, श्रवण, पान) भोजन किया; वासर—दिन की वेला में; सूर—सूर्य।

अनुवाद—स्पर्श से अनुभव किया कि अंग शिरीष पुष्प के समान, मुख का सुन्दर सौरभ कमलिनी के सदृश। मधुर कण्ठस्वर कोकिल के स्वर के समान, अधरसुधा पान करके अमृत का स्वाद पाया। सुन्दरि, तुम विवेचना से रक्षा कर देखो। चारो प्रकार का उपभोग मिला अर्थात् हाथ ने स्पर्श किया, नासिका ने आघ्राण पाया, कर्ण ने श्रवण किया, और जिह्वा ने पान किया, (किन्तु) एक (चक्षु) भूखा रह गया अर्थात् राधा ने अंधकार में आगमन किया। (नायिका का उत्तर) दिवस में भी सूर्य देख नहीं सकती, दूती के कहने से इतनी दूर चली आयी। विशेष करके शीतल जल (तुमने) पाया, पिपासा हरण करो, देख कर क्या करोगे? विद्यापति कहते हैं, हे रमणीप्रवर, श्रवण करो, मुरारि नयनों से आतुर होकर रह गए।

(२८५)

एके अवला अओके सहजक छोटि।
कर धरइत करुना कर कोटि॥
आंकम नामे रहए हिअ हारि।
जनि करिवर तर खसलि पद्मोनारि॥
नयन नीर भरि नहि नहि बोल।
हरि डरे हरिन जइसे जिव डोल॥

कौसले कुच-कोरक करे लेल।
मुख देखि तिरिवध संसअ भेल॥
वारि विलासिनि वेसनी कान्ह।
मदन कउतुकिआ हटल न मान॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
अति रति हठे नहि जीवए नारि॥

न० गु० तालपत्र १२६

शब्दार्थ—अओके—और भी; आंकम—अंक, आलिंगन; हिअ हारि—अवसन्न हृदय; खसलि—गिर गयी; पद्मोनारि—पद्मनाल; जिव डोले—प्राण काँपते हैं; वेसनी—वयस्क; न मान—नहीं मानता।

अनुवाद—एक तो (नायिका) बलहीना, उसपर भी अल्पवयसी, हाथी धरते ही कोटि अनुनय करती है। अंक अथवा आलिंगन के नाम से हृदय अवसन्न होता है; मानों हाथी के (पैरों) तले मृणाल पड़ गया हो। आँखों में आँसू भर कर ना, ना, कहती है, मानों सिंह के भय से हरिण के प्राण काँपते हों। कौशल से कुच कोरक हाथ में ले लिया, मुख देखने से स्त्री-वध का सन्देह हुआ। विलासिनी छोटी और कन्हायी युवा, कुतूहली मदन बाधा नहीं सुनता। विद्यापति कहते हैं, मुरारि सुन, अतिरिक्त बल प्रकाश से नारी नहीं बचती।

(२८६)

अवला अँसुक वालम्भु लेला।
पानि-पलव धनि आँतर देला॥
हठ न करिअ पहु न पूरत कामे।
प्रथमक रभस विचारक ठामे॥
मदन भण्डार सुरत रस आनी।
मोह रे मुन्दल अछ असमय जानी॥

मुकुलित लोचन नहि परगासे।
काँप कलेवर हृदय तरासे॥
आवे नव जौवन समय निहारी।
अपनहि वेकत होएत परचारी॥
भनइ विद्यापति नव अनुरागी।
सहिअ पराभव पिय-हित लागी॥

रागत पृ० ९६, न० गु० तालपत्र १६१

शब्दार्थ—अँसुक—वसन; आँतर—अन्तर; मोहरे—मोहर द्वारा; मुन्दल—बन्द है।

अनुवाद—वल्लभ ने अबला का वसन ले लिया, सुन्दरी ने कर पल्लव द्वारा अन्तर दिया (छिपाया) प्रभु, बल प्रकाश मत करना, तुम्हारा काम पूरा नहीं होगा। प्रथम रभस विवेचना करके भोग करना होता है। कामदेव के भाण्डार से सुरत रस लाने का उपयुक्त समय नहीं होने से मोहर देकर वह बन्द रखा जाता है। मुकुल के समान अर्द्ध निमीलित चक्षु विकसित नहीं होता, शरीर कम्पित होता है, हृदय भय पाता है। अभी नवीन यौवन है, समय निरीक्षण करके अपने ही व्यक्त होकर विकसित हो जाएगा। विद्यापति कहते हैं नव अनुरागी प्रियतम के लिए सुन्दरी पराभव स्वीकार करती है।

(२८७)

कमल कोष तनु कोमल हमारे
दिढ़ आलिगन सहए के पारे।
चापि चिबुक हे अधर मधुपीवे
कओने जानल हमेउ धरब जीवे।
पुरुष निठुर हिअ सहजक भावे
नानुआ अंग मोरा नखखत लावे।

तरवाक————मञे
मरितहुँ ताहि तिरिवध लाइ।
ए कपटिनि सखि कि बोलिबों तोही
हाथ बान्धि बुअं मेललह मोही।
भनइ विद्यापति सुनहु मुरारि
पहु अबलेपए दोस विचारि।

रामभद्रपुर पोथी, पद ९९

शब्दार्थ—नानुआ—कोमल;

अनुवाद—मेरा शरीर कमल की कली के समान कोमल, दृढ़ आलिङ्गन कौन सह सकता है? चिबुक पकड़ कर अधरमधु पान किया, कौन जानता है मैं जीती रहूँगी कि नहीं। पुरुष स्वभावतः ही निष्ठुर हृदय होता है, इसीलिए उसने मेरे कोमल शरीर पर नखक्षत दिया। इस समय ही.........मैं मारी जाऊँ और उसे स्त्री वध का पाप लगे। ऐ कपटिनि सखि, तुम्हें क्या कहें? तुमने मेरा हाथ बाँध कर कुएँ में फेंक दिया। विद्यापति कहते हैं हे मुरारि सुन, विचार करके प्रभु को दोप दे रही है।

(२८८)

हमें अबला तोंहे बलमत नाह।
जीवक बदले पेम निरवाह॥
पठि मनसिज मत दरसह भाव।
कउतुके करिवर करिनि खेलाव॥
परिहर कन्त देह जिव दान।
आज न होएत निसि अवसान॥

दइन दया नहि दारुन तोहि।
नहि तिरिवध-डर हृदय न मोहि॥
रमन सूखे जयँ रमनी जीव।
मधुकर कुसुम राखि मधु पीव॥
भनइ विद्यापति पहु रसमन्त।
रतिरस रभस होएत नहि अन्त॥

न० गु० तालपत्र १७०

शब्दार्थ—वलमत—वलवान; नाह—नाथ; पढि—पढ कर; खेलाव—खेलाता है; दइन—दैन्य।

अनुवाद—मैं अवला (बलहीना), हे नाथ, तुम वलवान, इस प्रकार प्रेम करते हो कि मेरा जीवन जाता है। मन्मथ का मन्त्र पढ़ कर भाव-प्रदर्शन करते हो। कौतुक से हस्तिप्रवर हस्तिनी के संग क्रीड़ा करता है। हे नाथ मुझे छोड़ो, प्राण दो। आज रात्रि समाप्त ही नहीं होगी। तुम दारुण (निष्ठुर) हो, भिक्षा माँगने पर भी दया नहीं दिखलाते। रमणी-वध का भी डर तुम्हें नहीं होता। यदि रमणी जीती रहे तभी रमण का सुख है, पुष्प की रक्षा करता हुआ भ्रमर रसपान करता है। विद्यापति कहते हैं प्रभु रसिक हैं, रतिरभस का आनन्द समाप्त ही नहीं होता।

(२८६)

वामा नयन नयन वह नोर।
काँप कुरंगिनि केसरि कोर॥
एके गह चिकुर दोसरे गह गीम।
तेसरे चिवुक चउठे कुच-सीम॥
निविवन्ध फोएक नहि अवकास।
पानि पचमके वाढ़लि आस
राधा माधव प्रथमक मेलि।
न पुरल काम मनोरथ केलि॥
भनइ विद्यापति प्रथमक रीति।
दिने दिने वाला वुझति पिरीति॥

न० गु० तालपत्र १९७

शब्दार्थ—एकेगह चिकुर—एक हाथ से केशपाश। फोएक—खोलने का। पानि पचमके—पाँचवें हाथ के लिए। वाढ़लि आस—आशा बढ़ी।

अनुवाद—वामा के मुख और आँखों से जल वह रहा है, कुरंगिनी केशरी की गोद में काँप रही है। पहले हाथ से चिकुर, दूसरे से ग्रीवा, तीसरे से चिवुक और चौथे से पयोधर प्रान्त ग्रहण किया। नीविवन्धन खोलने का अवसर अब नहीं रहा, पाँचवें हाथ की आशा बढ़ी अर्थात् आकाँक्षा हुई। राधा-माधव का प्रथम-मिलन, क्रीड़ा में काम की आकांक्षा पूरी नहीं हुई। विद्यापति कहते हैं प्रथम मिलन का यही नियम (रीति) है। दिन-दिन (वीतने पर) वालिका प्रीति समझने लगेगी।

(२६०)

आहे सखि, आहे सखि, लय जनु जाहे।
हम अति बालक निरदय मोर नाहे॥
बोल भरोस दय सखि गेलीय लेआय।
पहुक पलंग पर देलन्हि वैसाय॥
गोटे गोटि सखि सभ गेली वहराय।
वज्र कवाड़ हुनि देलन्हि लगाय॥
एहि अवसर सखि अयलन्हि कन्त।
चीर सम्हारैत भेल जीवक अन्त॥
नहि नहि करिअ नयन भरु नोर।
काँप कमल पर भमर झिकझोर॥
भनहि विद्यापति तखनुक रीति।
जुग जुग वाढ़ओल पहु संग प्रीत॥

मि० गी० स० २रा खंड, पृ: २८-२६: मि० २८ न० गु० १४८

मन्तव्य—इस पद में माधव के चतुर्भुज रूप का वर्णन है। अन्यत्र श्रीकृष्ण के द्विभुज रूप का ही वर्णन हुआ है।

(२६१)

देखलि कमलमुखी कोमल देह।
तिला एक लागि कत उपजल नेह॥
नूतन मनसिज गुरुतर लाज
वेकत पेम कत करय वेयाज॥

खन परितेजय खन आवय पास।
न मिलय मन भरि न होय उदास॥
नयनक गोचर चिर नहिँ होए।
कर धरइत धनि मुख धरु गोए॥

भनहिँ विद्यापति एहो रस गाव।
अभिनव कामिनि उकुति बुझाव॥

ग्रि० ८; न० गु० २१२

अनुवाद—कोमलांगी कमलमुखी को देखा, एक तिल के लिए कितनी ममता उत्पन्न हुई। मदन नवीन अर्थात् नवीन प्रेम (इसी कारण) अत्यन्त लज्जा, प्रेम व्यक्त, (तथापि) कितनी छलना करती है। क्षण ही में छोड़ देती है और क्षण ही में पास आती है, मन भर मिलती नहीं, (और) उदासीन भी नहीं होती। चक्षु की दृष्टि स्थिर नहीं होती, हाथ पकड़ने से ही सुन्दरी मुख छिपाती है। विद्यापति कहते हैं, मैं यह रस गान करती हूँ, नवीन रमणी इसी प्रकार सम्मति प्रकाशित करती है।

(२६२)

माधव सिरिस कुसुम सम राही।
लोभित मधुकर कौसल अनुसर
नव रस पिबु अवगाही॥
पहिल वयस धनि प्रथम समागम
पहिलुक जामिनि जामें।
आरति पति परतीति न मानथि
कि करथि केलक नामें॥

अंकम भरि हरि सयन सुतायल
हरल वसन अविसेखे।
चॉपल रोस जलज जनि कामिनि
मेदनि देल उपेथे॥
एक अधर कै नीवि निरोपलि
दू पुनि तीनि न होई।
कुच-जुग पाँच पाँच ससि उगल
कि लय धरथि धनि गोई॥

अकुल अलप वेआकुल लोचन
आँतर पूरल नीरे।
मनमथि मीन वनसि लय वेधल
देह दसो दिसि फीरे॥
भनहिँ विद्यापति दुहुक मुदित मन
मधुकर लोभित केली।
असह सहथि कत कोमल कामिनि
जामिनि जिव दय गेली॥

ग्रियर्सन २९ अ० ३२०

अनुवाद—माधव, राधिका शिरीष पुष्प के समान कोमल है। लुब्ध मधुकर, कौशल का अवलम्बन करो एवं डूबकर नवीन रस का पान करो। नायिका की यही प्रथम वयस है एवं रजनी के प्रथम प्रहर में यह प्रथम संगम है। अनुराग के प्रति प्रतीति नहीं मानती अर्थात् अनुराग की गाढ़ता नहीं समझती और केलि के नाम से तो कुंठित ही हो जाएगी। परिपूर्ण आलिङ्गन-पाश में बद्ध करके हरि ने (उसे) सुलाया और सारे अंग का वस्त्र हरण कर लिया। कमल के समान कामिनी को दृढ़ता पूर्वक दबाया और उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। राधा ने एक हाथ से अधर को ढाँका और दूसरे हाथ से नीवि बचाये रही। तीसरा हाथ तो है ही नहीं (अब कैसे आत्मरक्षा हो सकती है ?) कुचयुगल पर पाँच पाँच नखचन्द्र उदित हुए। अब किस प्रकार सुन्दरी अपनी रक्षा करे ? श्रीमती आकुल एवं थोड़ी व्याकुल हुईं और उनके नयनकोर में जल भर आए। वे छटपट कर रही थीं मानों मन्मथ ने वंशी द्वारा मछली को नाथ लिया हो। विद्यापति कहते हैं कि लुब्ध मधुकर की केलि, दोनों के मन मुदित हो गए। कोमल कामिनी असह्य का कितना सहन करेगी ? रात्रि मानों प्राण लेकर चली गयी।

(२६३)

जावे न मालति-कर परगास।
तावे न ताहि मधु[1] विलास॥
लोभ परीहरि सूनहि राँक।
धके कि केओ कुइ[2] विपाक॥
तेज मधुकर ए[3] अनुबन्ध।
कोमल कमल लीन मकरन्द॥
एखने इछसि एहन संग।
ओ अति सैसवे न बुझ रंग॥

कर मधुकर तोँहे दिढ़ गेआन।
अपने आरति न मिल आन॥

नेपाल १०६, पृ० ३८ ख, पं १ भने विद्यापतीत्यादि; न० गु० १४०

अनुवाद—जितने दिनों तक मालती (फूल) प्रकाश (विकसित) नहीं होती, उतने दिनों तक भ्रमर उस पर विलास नहीं करता। (वित्त-) शून्य दरिद्र लोभ त्याग करेगा। क्या कोई सहसा विपाक में पड़ता है ? भ्रमर (कन्हायी) इस प्रकार अनुबन्ध (चेष्टा) परित्याग करो, सुकोमल पद्म में मधु विलीन होकर रहता है ! अभी ही उसके संग इच्छा करते हो, वह (नायिका) अतिशय बालिका है, रस नहीं जानती। भ्रमर, तुम अच्छी प्रकार समझ कर देखो, अपनी आर्ति (अनुराग और व्याकुलता) दूसरे में नहीं मिलती।

पाठान्तर—(१) नगेन्द्र बाबू ने छन्द मिलाने के लिए 'मधु' के स्थान पर 'मधुकर' लिखा है। (२) कुअ डूब (३) एहन।

(२९४)

वालि विलासिनि जतने आनलि
रमन करब राखि।
जैसे मधुकर कुसुम न तोल
मधु पिव मुख साखि॥
माधव करब तैसनि मेरा।
विनु हकारेओ सुनिकेतन[1]
आवए दोसरि वेरा॥

सिरिस-कुसुम कोमल ओ धनि
तोहहु कोमल कान्ह।
इंगित उपर केलि जे करब
जे न पराभव जान॥
दिने दिने दून पेम बढ़ाओव
जैसे बाढ़सि सु-ससी।
कौतुकहु किछु बाम न बोलव
निअर जाउबि हसी॥

नेपाल ४७, पृ० २१ ख, पं ४, भने विद्यापतीत्यादि; न० गु० १४२

शब्दार्थ—वालि—वाला; मेरा—मिलन; हकारे—पुकारे; दून—दुगुना; निअर—निकट।

अनुवाद—विलासिनी बाला को यत्न करके ला दिया, रक्षा करते हुए रमण करना, जिस प्रकार भ्रमर फूल तोड़ता नहीं, (फिर भी) मधु पान कर लेता है। माधव, इस प्रकार संगम करना कि फिर बिना बुलाए (अर्थात् स्वेच्छा से) तुम्हारे घर आवे। वह सुन्दरी शिरीष पुष्प के समान कोमल है, तुम भी उसी प्रकार कोमल हो। कन्हायी, इशारा पर केलि करना, जिससे (वह) पराजय न माने। दिन-दिन दुगुना प्रेम बढ़ाना, जिस प्रकार मनोहर चन्द्रमा बढ़ता है कौतुक में भी कोई बुरी बात मत कहना, हँसते-हँसते निकट जाना।

(२९५)

सहजहि तनु खिनि माझ वेवि सनि
सिरसि-कुसुम सम काया।
तोहे मधुरिपुपति कैसे कए धरति रति
अपुरुव मनमथ माया॥
माधव, परिहर दृढ़ परिरम्भा।
भांगि जाएत मन जीव सबें मदन
विटपि आरम्भा॥

सैसव अछल से डरे पलाएल
यौवन नूतन वासी।
कामिनि कोमल पाहुन पंचसर
भए जनु जाह उदासी॥
तोहर चतुर-पन जखने धरति मन
रस बुझति अवसेखि।
एखने अलप-वुधि न बुझ अधिक सुधि
केलि करव जिव राखि॥

तोहे जे नागर मानओ धनि जिव सनि
कोमल काँच सरीरा।
ते परि करव केलि जे पुनु होअ मिलि
मूल राख वनि जारा॥
हमरि अइसनि मति मन दए सुन दुति
दुर कर सब अनुतापे।
जयँ अति कोमल तैअओ न टरि पल
कवहु भमर भरे काँपे॥

नेपाल २५०, पृ० ९० ख, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ११

---

[1] पद २९४—न० गु० 'हकारे तुअ निकेतन'।

शब्दार्थ—देवि—दो; सनि—तुल्य; परिरम्भा—आलिंगन; पाहुन—अतिथि; भए—होकर; मूल राख वनिजारा—वणिक मूलधन की रक्षा करता है।

अनुवाद—स्वभावतः ही क्षीण देह, मध्य (अर्थात् कटि) मानों (टूटकर) दो टुकड़े हो गयी है, और शिरीष पुष्प के समान कोमल काया। तुम मधुरिपुपति, किस प्रकार तुम्हारी रति धारण करेगी, कन्दर्प की माया अभिनव है। माधव, गाढ़ आलिङ्गन का त्याग करो, डर होता है, जीवन के संग मदन-वृक्ष का मूल (आरम्भ ही) टूट जाएगा। शिशुकाल था, वह डर के मारे भाग गया, यौवन नया निवासी है। यह मत भूलना कि कोमल कामिनी के यहाँ पंचशर नया अतिथि है। तुम्हारा चतुरपन जब समझेगी तब ही सम्पूर्ण रूप से रस समझेगी। अभी बुद्धि कम है, समझने की शक्ति नहीं है, प्राण बचाते हुए केलि करना। तुम नागर हो, सुन्दरी के प्राण के समान शरीर भी कच्चा है, ऐसा समझना, उसी तरह से केलि करना जिससे फिर मिलन हो सके। वणिक मूलधन की रक्षा करता है। हे दूति मन देकर सुनो, मेरे मन में भी ऐसा ही होता है, सब अनुताप दूर करो। जो अत्यन्त कोमल है वह भी भ्रमर के डर से हटता नहीं है केवल थोड़ा सा काँपता है।

(२६६)

जाति पदुमिनि सहति कता।
गजे दमसलि दमन-लता॥
लोभे अधिक मूल न मार।
जे मुल राखए से वनिजार॥

अछल जोर सिरीफल भाति।
कएलह छोलङ्ग नारङ्ग काति[1]॥
भनइ विद्यापति न कर[2] लाथ।
भूखल नख[3] दुहू हाथ॥

रा० ग० त० पृ० १०६ : न० गु० १८०

शब्दार्थ—गजे—हाथी से; दसमलि—मसला; दमन-लता—द्रोणलता; मूल—मूलधन; जोरयुगल—यहाँ पर कुचयुगल; छोलङ्ग नारङ्ग—छिले हुए नारङ्गी फल के समान; लाथ—छलना।

अनुवाद—पद्मिनीजाति की नारी कितना सहन करेगी? द्रोणलता हाथी द्वारा दलित हुई। लोभ करके मूलधन नष्ट न करना, जो मूलधन बचाता है वही (अच्छा) वणिक है। (स्तनद्वय) श्रीफल के समान थे (अब) छिले हुए नारङ्गी फल के समान कर दिया है। विद्यापति कहते हैं, छलना मत करना, दोनों हाथ के नख क्षुधित थे अर्थात् क्षुधित नखसमूह ने स्तनयुगल का भक्षण करके उन्हें छोटा बना दिया है (अथवा नारङ्गी फल के समान टुकड़े टुकड़े कर दिया है।)

पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'छोल' (२) 'करह' (३) 'नखा' लिखा है।

(२६७)

प्रथम समागम भुखल अनंग।
धनि बल जानि[1] करब रतिरंग॥
हठ नहि करवे आइति पाए[2]।
बड़ेओ भुखल नहि दुहु कर[3] खाय॥
चेतन कान्ह तोँहहि यदि आथि।
के नहि जान महते नव हाथि॥
तुअ गुन गन कहि कत अनुबोधि[4]॥
पहिलहि सबहि हललि परबोधि॥

हठ नहि[5] करब रति-परिपाटि।
कोमल कामिनि बिघटति साटि॥
जावे रभस सह[6] तावे विलास।
विमति बुझिअ जयँ[7] न जाएब पास॥
धसि परिहरि नहि धरबिए बाहु।
उगिलल चाँद गिलए जनि राहु॥
भनइ विद्यापति कोमल काँति।
कौसल सिरिस-सुमन अलि भाँति॥

नेपाल ८६, पृ० ३६ ख, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादिः न० गु० तालपत्र १४६

शब्दार्थ—आइति पाए—संकट में पाकर; बड़ेओ भूखल—अत्यन्त भूखा आदमी भी; महते—महावत के; न॰—झुक जाना; धसि—ज़ोरों से दौड़ कर।

अनुवाद—प्रथम समागम के समय मदन क्षुधित रहता है, किन्तु सुन्दरी की शक्ति देखकर रतिलीला करना। संकट में पाकर बल प्रकाश मत करना। अत्यन्त भूखा रहने पर भी कोई दोनों हाथों से नहीं खाता। कन्हायी, तुम तो चतुर हो, कौन नहीं जानता कि महावत के निकट हाथी झुक जाता है, अर्थात् महावत हाथी को छल से झुकाता है, बल से नहीं, उसी प्रकार तुम भी कौशल से राधा को वश में करना। तुम्हारा गुणगान करके कितना समझाया, सब सखियाँ पहले ही सान्त्वना दे गयीं। बल प्रयोग करने से रति का क्रमानुयायी आनन्द नहीं होगा; कोमल रमणी की उल्टे सज़ा हो जाएगी। जितनी देर तक वेग सहन हो, उतनी ही देर विलास करना। अनिच्छा समझने पर नज़दीक मत जाना। छोड़ कर फिर जल्दी से हाथ मत पकड़ना, जिस प्रकार राहु चन्द्रमा को छोड़ देने पर फिर शीघ्र ही ग्रास नहीं करता। विद्यापति कहते हैं, सुकोमलांगी शिरीष-कुसुम का भ्रमर के समान कौशल से उपभोग करना।

पद न० २६७—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) रस राखि। (२) लोभ न करवे आइति पाए (३) दुहुइ करे (४) आवलि यतने आवके अनुबोधि (५) कड़ि (६) रह (७) सुजने (८) परिहरि करहु धरवि नहि वान्ध। उगिलि चान्दसम गिलए राहु। इसके बाद भनिता है।

(२६८)

हृदय तोहर जानि[1] भेला।
परक[1] रतन आनि मोयँ देला॥
कएल माधव हमें अकाज।
हाथि मेराउलि सिंह समाज॥
राखह माधव मोरि विनती।
देह[2] परीहरि परजुवती॥
चुम्बने नयन काजर गेला।
दसने अधर खण्डित भेला॥
पीन पयोधर नखर मन्दा।
जनि महेसर सिखर[3] चन्दा॥
न मुख वचन न[4] चित थीरे।
काँप घन हन सवे सरीरे॥
घर गुरुजन दुरजन[8] संका।
न गुनह माधव मोहि कलंका[9]॥
भने विद्यापति दूति भोरि।
चेतन गोपये गूपति चोरि[5]।

नेपाल १, पृः १, पं १, रामभद्रपुर ८०, न० गु० तालपत्र १८२

अनुवाद—तुम्हारा हृदय जाना नहीं जाता, अर्थात् तुम्हारा हृदय कैसा है, समझ नहीं सकती; दूसरे का रत्न मैंने लाकर दे दिया। हे माधव, मैंने कुकर्म किया, सिंह के पास हाथी लाकर रख दिया। माधव, मेरा अनुरोध रखो। परस्त्री का परित्याग करो। चुम्बन से आँख का काजर गया, दाँत से अधर खण्डित खण्डित हुए। स्थूल पयोधरों पर दुष्ट नख लगे, मानों शिव के मस्तक पर चन्द्रमा (उदित हुआ)। मुख से बोली नहीं, चित्त स्थिर नहीं, सारा अंग घन घन काँपता। घर पर गुरुजन और दुर्जनों का भय है, माधव, मुझे कलंक लगेगा, ऐसा मत समझना। कवि विद्यापति कहते हैं, दूती मुग्धा, सुचतुर व्यक्ति गुप्त चोरी छिपा कर रखता है।

(२६९)

परक पेयसि आनले[1] चोरी।
साति अंगिरलि आरति तोरी॥
तोहि नही डर ओहि न लाज।
चाहसि सगरी निसि समाज॥
राख माधव राखह मोहि।
तुरित घर पठावह ओहि॥
तोहे न मानह हमर बाध।
पुनु दरसन होइति साध॥
ओहओ मुगुधि जानि न जान।
संसअ पलल पेम परान॥
तोहहु नागर अति गमार।
हठे कि होइह समुद पार॥

नेपाल २२७, पृः ८१ ख, पं १ भनइ विद्यापतीत्यादिः न० गु० ३१६

पद न० २६८—नेपाल पोथी का *पाठान्तर*—(१) नहि (२) देहे (३) सरद (४) तन (५) न० गु० की भनिता—कवि विद्यापति भान आनक वेदन नइ बुझ आन॥

रामभद्रपुर पाठ—(१) न (६) आनक (७) राख (४) न मर थीरे (८) दुजन (९) लग्रो लहू माधव मोहि कलंका। (५) भन विद्यापति तए दूति भोरि। चेतन गोपए वेकत चोरि॥

"'गूपति' की अपेक्षा 'वेकत चोरि' पाठ अच्छा है।

पाठान्तर—(१) नगेन्द्र बाबू ने 'आनल' की जगह 'आनलि' दिया है।

शब्दार्थ—सासि– शास्ति, कष्ट; अंगिरलि—स्वीकार किया; आरति—आर्त्ति; सगरि—सकल; समाज—मिलन।

अनुवाद—दूसरे की प्रेयसी को चोरी करके ला दिया, तुम्हारी आर्त्ति (व्याकुलता) देख कर कष्ट स्वीकार किया। तुमको डर नहीं, उसको लज्जा नहीं, सकल रजनी मिलन चाहते हो। माधव, मेरी रक्षा करो, उसको शीघ्र घर भिजवावो। मेरी बाधा, अर्थात् निषेध तुम नहीं मानते; फिर देखने की इच्छा होगी, अर्थात् फिर देखना चाहोगे तो नहीं ले आऊँगी। वह मुग्धा है, जान कर भी नहीं जानती, प्रेम में प्राण संशय में पड़ गए। तुम भी अत्यन्त मूर्ख नागर हो, ज़ोर करने से क्या समुद्र पार हो जाता है?

(३००)

आवे न लइति आइति मोरि।
परे परतख लखवि चोरि॥
वेरा एक जीव राख कन्हाइ।
परक पेयसि देह पठाइ॥

चुम्बनि लेपि काजर धार।
अधर निरसि जे तोरलह हार॥
नखक खत कुचजुग लागु।
से कइसे होइति गुरुजन आगु॥

भन विद्यापति रस सिंगार।
संकेत आइलि तेजए के पार॥

तालपत्र न० गु० ११

शब्दार्थ—परतख—प्रत्यक्ष; लखवि—लक्ष्य करेगा; वेरा एक—एक वार।

अनुवाद—अब मालूम होता है मेरा आयत्त (गोपन करने का विषय) वाहर हो गया है। अन्य लोग अब प्रत्यक्ष चोरी लक्ष्य करेंगे। हे कन्हायी, एक वार जीवन-रक्षा करो, दूसरे की प्रेयसी लौटा दो। चुम्बन से काजल की धार धुल गयी है, अधर नीरस हो गए हैं, हार छितरा गए हैं। नखक्षत कुच पर लगे हैं। वह किस प्रकार गुरुजनों के सामने जाएगी? विद्यापति रस शृंगार कहते हैं। संकेत स्थान पर आजाने पर कौन छोड़ता है?

(३०१)

सुरभ निकुंज वेदि भलि भेलि
जनम गेंठि दुहु मानस मेलि।
कामदेव करु कने आदान
विधि मधुपरक अधर मधुपान।
भल भेल राधे भेल निरवाह
पानि-गहन-विधि वोध विआह।

उजर एपन मुकुताहार
नयने निवेदल वन्दने वार।
पीन पयोधर पुरहर भेल
करस झापस नव पल्लव देल।
भनइ विद्यापति रसमय रीति
राधा माधव उचित पिरीति॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ४०७

अनुवाद—सुरभिपूर्ण निकुंज ही विवाह की वेदी हुई; दोनों के मन का मिलन ही ग्रन्थिवन्धन हुआ। कामदेव ने कन्या सम्प्रदान किया, अधरमधु के दान द्वारा मधुपर्क की रीति सम्पन्न हुई। राधे, करधारण करके 'पाणिग्रहण' विधि सम्पन्न होकर अच्छी विधि से विवाह हुआ। मुक्ताहार ही उज्ज्वल एपन हुआ। नयनों ने ही वन्दनाकार का काम किया। पीन पयोधर ही पूर्ण कलस हुए; कलस ढँकने के लिए हाथ ही नवपल्लव बन गए। विद्यापति कहते हैं राधा-माधव की प्रीति रसमय रीति से होती है।

(३०२)

कुच कोरीफल नख-खत रेह।
नव ससि छन्दे अंकुरल नव रेह[1]॥
जिव जयँ जनि निरधने निधि पाए।
खने हेरए खने राख झपाए॥
नवि अभिसारिनि प्रथमक संग।
पुलकित होए सुमरि रति-रंग॥
गुरुजन परिजन नयन निवारि।
हाथ रतन धरि वदन निहारि॥
अवनत मुख कर पर जन देख[2]।
अधर दसन खत निरखि निरेख[3]॥

नेपाल १२२, प० ४३ ख, पं० ३, भने विद्यापतीत्यादी न० गु० १८९

शब्दार्थ—जिव जयँ—जीवनतुल्य। झपाए—छिपाकर रखती है। सुमरि—याद करके।

अनुवाद—नव कुचफल पर नखाघात की रेखा है, मानों नये चाँद की आकृति से नई रेखा अंकुरित हुई हो। जिस प्रकार जीवन के समान निधि पाकर कोई धनहीन उसे एक क्षण देखता और दूसरे क्षण ढाँक कर रखता है (उसी प्रकार नायिका अपना कुच देखती और ढाँक लेती है)। नयी अभिसारिणी, प्रथम मिलन, रति-कौतुक स्मरण कर आनन्द अनुभव करती है। गुरुजन आत्मीयजन की नजर बचा कर अर्थात् उनसे छिपकर हस्तस्थित रत्न-दर्पण में मुख देखती है। दूसरे लोगों को देख कर सिर झुका लेती है, होठों पर का दशनाघात विशेष रूप से देखती है (जिससे कोई अन्य उसे लज्जित न करे)।

(३०३)

अलसे पुरल[1] लोचन तोर।
अमिञें मातल चाँद चकोर॥
निचल भँउह जे[2] ले विसराम।
रस जिनि धनु तेजल काम॥
अरे रे सुन्दरि न कर लथा[3]।
उकुति वेकत गुपुत कथा॥
कुच सिरीफल करज[4] सिरी।
केसु विकसित कनक[5] गिरी॥
वहल तिलक[6] उधसु केस।
हसि परिछल[7] कामे सन्देस॥

नेपाल ११२, पृ० ४० ख, पं० १, भने विद्यापतीत्यादि, न० गु० तालपत्र २६७

३०२—नगेन्द्र बाबू ने (१) रेह की जगह नेह (२) देख की जगह देखि, और (३) निरेख की जगह निरेखि लिखा है।

३०३—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) भरुए (२) न (३) एरे राधे न करह (४) सहज (५) कनका (६) अलक वहल (७) पनिछलु।

शब्दार्थ—निचल—निश्चल। भँउह—भ्रू। विसराम—विश्राम। करज—नख। सिरी—श्री। उधसु—अस्तव्यस्त। परिछल—परीक्षा की।

अनुवाद—तुम्हारे नयन आलस्य से पूर्ण, (मानो) चकोर चन्द्रसुधा (पान करके) मस्त (हो)। निश्चल भ्रू इस प्रकार विश्राम ले रहे हैं कि (मालूम होता है कि) युद्ध में विजय पाकर कामदेव ने धनु त्याग कर दिया हो। अरे सुन्दरि, कौतुक मत करना, बोलने से छिपी बात प्रकट हो जाती है। कुच-श्रीफल पर नखा-घात की शोभा (ऐसी लगती है मानो) स्वर्णाचल पर किंशुक विकसित हुआ हो। तिलक बह गया, केश अस्तव्यस्त हो गये (मानो) कामदेव ने हँस कर सन्देश की परीक्षा की हो।

(३०४)

सांझक बेरि उगल नव ससधर
भरमे विदित सविताहु।
कुण्डल चक्र तरासे नुकाएल
दूर भेल हेरथि राहु॥
जनु बइससि रे बदन हाथ चलाइ।
तुअ मुख चंगिम अधिक चपल भेल
कति खन धरब लुकाई॥
रक्तोपल जनि कमल बइसाओल
नीलि नलिनि दल तहु।
तिलक कुसुम तहु माझु देखिकहु
भमर आवथि लहु लहु॥
पानि-पलव-गत अधर बिम्ब-रत
दसन दाड़िम बिज तोरे।
कीर दूर भेल पास न आबए
भौंह धनुहि के भोरे॥

नेपाल २७१, पृ० ६८ ख, पं० ३, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० २२६

अनुवाद—सन्ध्या समय नवीन चन्द्रमा का उदय हुआ, जिससे सूर्य का ही भ्रम हुआ अर्थात् सूर्यास्त के समय नायिका का आगमन हुआ। कर्णफूल रूपी चक्र के भय से छिप कर राहु दूर होकर देखने लगा। करतले मुख मत ढाँकना, तुम्हारे सुन्दर मुख की शोभा अत्यन्त चपल हो गयी है, कितनी देर छिपाकर रखोगी? रक्तकमल पर (हाथ पर) मानो कमल (मुख) बैठाया हो उसमें नील कमल (चक्षु) उनके बीच में तिलक पुष्प देख कर भ्रमर (नायक) धीरे धीरे आवेगा। करपल्लव में लग्न बिम्बफल तुल्य अधर, दाड़िम बीज के समान दशन देख कर कीर को लोभ होता है, परन्तु भ्रू को धनुष समझने से वह पास नहीं आता।

(३०५)

आज देखिअ सखि बड़ अनुमनि सनि
वदन मलिन मुख तोरा।
मन्द वचन तोहि के न कहल अछि
से न कहिअ किछु मोरा॥
आजुक रयनि सखि कठिन वितल अछि
कान्ह रभस कर मन्दा।
गुन अवगुन पहु एकओ न बुझलनि
राहु गरासल चन्दा॥
अधर सुखाएल केस ओझरायल
घाम तिलक बहि गेला।
बारि विलासिनि केलि न जानथि
भाल अरुन उड़ि गेला॥
भनहि विद्यापति सुन वर जौवति
ताहि कहब किए बाधे।
जे किछु पहु देल आँचर झाँपि लेल
सखि सभ कर उपहासे॥

ग्रियर्सन २४; न० गु० ११९

अनुवाद– हे सखि, आज (तुमको) बहुत उदासीन देखती हूँ, वदन तुम्हारा मलिन (हो गया है), किसने तुम्हे बुरी बातें कही है, क्या कुछ मुझसे न कहोगी ? आज की रात, सखि, बड़े कष्ट से काटी है, कन्हाई ने बुरी तरह रतिक्रिया की है, गुण-अवगुण प्रभु एक भी नहीं समझते (मानो) राहु ने चन्द्रमा को ग्रस लिया। होठ सूख गए, केश उलझ गए, तिलक पसीने में बह गया, बालिका बिलासिनी केलि नहीं जानती, कपाल के सिन्दूर का विन्दु मिट गया। विद्यापति कहते हैं कि हे युवती प्रधान सुन, जो कुछ हुआ है वह कहने में क्या बाधा है ? प्रभु ने जो कुछ भी दिया है, अंचल ढाँक कर ले लेने से (पीछे) सखियाँ निन्दा करेंगी।

(३०६)

प्रथम समागम के नहि जान।
सम कए तौलल पेम परान॥
कसल कसौटा न भेल मलान।
विनु हुतवहे भेल वाहर वान॥
विकलए गेलिहु रतन अमोल।
चिन्हिकहु वणिके घटाओल मोल॥
सुलभ भेल सखि न रहए भार।
काच कनक लए गाँथ गमार॥

भनइ विद्यापति असमय वानि।
लाभ लाइ गेलाहु मुलहू भेल हानि॥

नेपाल २१३, पृ० ६६ ख, पं० १; न० गु० १६६ तालपत्र

अनुवाद—प्रथम मिलन (का होना) कौन नहीं जानता ? प्रेम (और) प्राण को समभाव से तौला। कसौटा पर कसने पर भी मलिन नहीं हुआ। विना अग्नि के अर्थात् विना अग्नि में पड़े ही बारहगुना मूल्य हो गया। अमूल्य रत्न वेचने गयी थी, वणिक (कन्हायी) ने चिन्ह (रतिचिह्न) करके मूल्य कम कर दिया। हे सखि, सुलभ हो गयी, महँगी नहीं रही, मूर्ख काँच और सोना लेकर माला गूँथता है। विद्यापति दुःसमय की कथा कहते हैं, लाभ के लिए गयी थी, मूल भी कम हो गया।

पद न० ३०६—नेपाल पोथी का पाठान्तर—प्रथम दो चरणों के बाद अधिक समता नहीं दिखाई पड़ती। नेपाल का पाठ इस प्रकार है :—

प्रथम समागम के नहि जान।
सम कए तौलल पेम परान॥
मधत हुन बुझलओ अपरिपाटि।
बाउल वणिक घरहि घरसाटी॥
कि पुछह आगे सखि कि कहब आन।
बुझए न पारल हरिक गेआन॥
विकलए आनव रतन अमूल।
देखितहि वलि केह वाओल मूल
सुलभ भेल पहु न लहएहार।
काच तुला दए गहए गमार॥
गुरुतर रजनी वासव छोटि।
पासहु दूती विषय नहि पोटि॥
कसल कसोटी कसोटी न भेल मलान।
विनु हुता से भेल वारह वान॥
भनइ विद्यापति थिर रहु वानि।
लाभ न घटए मूलहु होए हानि॥

(३०७)

पीन पयोधर चीवुक चुम्बए
कीए पटतर देला।
वदन चान्द तरासे लुकाएल
पलटि हेर चकोरा॥
जकर[1] नयन जतहि लागल
ततहि सिथिल गेला।
तकर रूप सरूप निरूपए
काहु देखि नहि भेला॥
कमल वदनि राही जगत तकर।
पुन सराहिय सुन्दरि मीनति जाहीरे॥

नेपाल २७२, पृ० ६६ क, पं ३,
भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ११६

शब्दार्थ—जकर–जिसका। जतहि—जहाँ। सराहिय—प्रशंसा करके। पटतर—परतर, उपमा

अनुवाद—जिसकी आँखें जहाँ लगीं वहीं शिथिल हो गयीं अर्थात् निश्चेष्ट हो गयीं। ऐसा किसी को भी नहीं देखा जो उसका सम्पूर्ण रूप निर्णय कर सके। अर्थात् तुम्हारे जिस अंग पर नज़र पड़ती है, वहीं ठहर जाती है, पूरा शरीर देख नहीं सकती। हे पद्मानना राधिके, जगत में जिसकी विनय है, उसकी फिर प्रशंसा करता हूँ। स्थूल पयोधर चिवुक चुम्बन करते हैं, क्या उपमा दी जाए? वदन चन्द्र मानों भय से छिप गया, (नयनरूपी) चकोर उसको फिर कर देखता है।

(३०८)

कुण्डल तिलके[1] विराजमुख
सोभित सीदुर विन्दु।
हेमलतामे समारु विधि
कवि रवि तारा इन्दु॥
इन्दुवदनि धनि नयन विसाला।
कमल कलित जनि मधुकर माला॥
देखलि कलावति अपुरुव रमनी।
जिनए[2] आइलि सुरपुर गजगमनी॥
वेनी विमल विराज
तनु रस[3] कुसुमावलि हार।
स्याम भुजंगम देखिकहु
कियो काम परहार॥
करु परहार मदन-सर वाला।
कुटिल कटाख वान कनियारा[8]॥
कम्बु कण्ठ मृणाल भुज
वलित पयोधर भार[5]।
कनक कलस रसे पूरि रहु
संचित मदन भण्डार[6]॥
मदन भँडार पयोधर गोरा।
जनि उलटाओल कनक कटोरा।
स्यामा सुलोचनि सुरति रति
अपुरुव भूषनभार[7]।
विद्यापति कविराज कह
सुफले करथु अभिसार॥

रागत पृ० ६६ न० गु० २२१

पद न० ३०७—*मन्तव्य*—नेपाल पोथी में आधुनिक बंगला हस्ताक्षरों में कईएक शब्द जोड़े हुए हैं। (१) पोथी में 'जगत' पाया जाता है।

नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) तिलक (२) जनि (३) वस (४) कनियाला (५) हार (६) भँडार (७) भूषणभार कर दिया है। (८) इसके बाद दो चरण और मुद्रित रागतरंगिनी पुस्तक में पाये जाते हैं।

करु अभिसार मदन-सर बाला। कुटिल कटाख बाण कनिआरा॥

शब्दार्थ—समारु—सजाया; कवि—ब्रह्मा; कनियारा—तीक्ष्ण।

अनुवाद—मुख कुण्डल, तिलक और सिन्दूरविन्दु से शोभित रहता है; मालूम होता है ब्रह्मा ने रवि (सिन्दूर-विन्दु), तारा (कुण्डल), इन्दु (तिलक) को हेमलता में सजाया है। विशालाक्षी चन्द्रवदना सुन्दरी भ्रमरमाला-भूषित पद्म के समान लगती है अपूर्व कलावती नारी को देखा, मानो, गज-गमना देवपुर विजय करके आयी हो। सुचारु वेणी शोभित (हो रही है), शरीर पर फूलदल का हार (है); श्याम सर्प (वेणी) देख कर काम ने आघात किया। बाला ने कन्दर्प पर शर-प्रहार किया; कुटिल कटाक्ष ही मानो तीक्ष्ण शर (है)। कम्बु ग्रीवा, मृणाल बाहु, कुच पर बलित हार, स्वर्ण कलस (स्तन) संचित कामदेव के भाण्डार (के समान) रस से परिपूर्ण। गौरवर्ण स्तन मदन का भाण्डार (है), मानों पलट कर सोना का कटोरा रखा हो। श्यामा सुनयना अपूर्व भूषण सज्जित रति-स्वरूपा (है)। विद्यापति कविराज (श्रेष्ठ) कहते हैं—सुफल अभिसार करो।

(३०६)

चान्द वदनि धनि चान्द उगत जवे।
दुहुक उजोरे दुरहि सयँ लखत सवे॥
चल गजगामिनि जावे तरुन तम।
किम्बा कर अभिसारहि उपसम॥
चाँदवदनि धनि रयनि उजोरि।
कओने परि गमन होएत सखि मोरि॥
तोहे परिजन परिमल दुरवार।
दूर सयँ दुरजने लखव अभिसार॥
चौदिस चकित नयन तोर देह।
तोहि लए जाइते मोहि सन्देह॥
आगरि अएलाहु परआएत काज।
विफल भेले मोहि जाइते लाज॥

नेपाल २८, पृ० १२ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० २४४

शब्दार्थ—दुहुक उजोरे—दोनों (चन्द्रमा और मुख) की उज्ज्वलता से। दुरहि सयँ—दूर ही से। परआएत—पराधीन।

अनुवाद—चन्द्रवदना सुन्दरि, जब चन्द्रमा उदय होगा, दोनों (चन्द्रमा और मुख) की उज्ज्वलता से लोग दूर ही से देख सकेंगे। हे गजगामिनि, जिस समय प्रबल अन्धकार हो उसी समय उपयुक्त अवसर समझ कर चलो, अथवा अभिसार ही उपशम करो। सुन्दरी चन्द्रवदना और रजनी उज्ज्वल हैं, हे मेरी सखि, किस प्रकार गमन करोगी। तुम्हारे अंग का दुर्वार परिमल परिजनों के पास (प्रकाश पायेगा) : दूर ही से दुर्जन लोग तुम्हारा अभिसार लक्ष्य करेंगे। तुम्हारी देह और नयन चारो दिशाओं में चंचल हैं, तुम्हें साथ ले जाने में मुझे द्विधा हो रही है। पराधीन कार्य में अग्रगामिनी होकर आयी हूँ, विफल होकर लौटने में मुझे लज्जा होती है।

(३१०)

लोलुअ वदन-सिरी अछि धनि तोरि।
जनु लागहि तोहि चाँदक चोरि॥
दरसि हलह जनु हेरह काहु।
चाँद-भरम मुख गरसत राहु॥
धवल नयन तोर काजरे कार[1]।
तीख तरल तँहि कटाख धार॥
निरखि निहारि फास गुन जोलि।
वाँधि हलव तोहि खंजन वोलि॥
सागर-सार चोराओल चन्द।
ता लागि राहु करए बड़ दन्द॥
भनइ विद्यापति होउ निसंक।
चाँदहु की कछु लागु कलंक[2]॥

नेपाल २२५, पृ ८० ख पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादिः न० गु० २२६ (मिथिला)

पद न० ३१०—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) धवल नयन तोर काजरे कार (२) नेपाल पोथी का अतिरिक्त चरण:—कतए लोक ओव चान्दक चोरि। यतहि लोकइम ततहि ठजोरि।

शब्दार्थ—लोलुअ-सुन्दर। वदन-सिरी-मुख-श्री। निरवि-उत्तम रूप से।

अनुवाद—तुम्हारी मुख-श्री इतनी सुन्दर है कि डर लगता है कि कहीं लोग यह न बोलें कि तुमने चाँद की चोरी कर ली है। किसी को भी तुम अपना मुख न दिखाना और किसी का भी मुख मत देखना; राहु तुम्हारे मुख को चन्द्रमा समझ कर ग्रास कर लेगा। तुम्हारे शुभ्र नयन काजल के कारण कृष्णवर्ण हैं और उनमें तीक्ष्ण तरल कटाक्षधार है। (व्याध) कहीं तुम्हें अच्छी प्रकार देख और खंजन समझ कर फँसाने की रस्सी लगा कर बाँध न ले। चन्द्रमा ने सागर का सार अमृत की चोरी की थी, इसी कारण राहु बहुत कलह करता है (और तुमने उसी चाँद की चोरी कर ली है)। विद्यापति कहते हैं कि तुम्हे डरने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि चाँद में भी कुछ कलंक है (और तुम्हारा मुख निष्कलंक चन्द्रमा है)।

(३११)

चल चल सुन्दरि शुभ कर आज।
ततमत करइते नहि होए काज॥
गुरुजन परिजन डर कर दूर।
विनु साहसे सिधि आस न पूर॥
विनु जपले सिधि केंओ नहि पाव।
विनु गेले घर निधि नहि आव॥

ओ पर बल्लभ तोँहे परनारि।
हम पथ मध्य दुहु दिस गारि॥
तोँह हुनि दरसन इ हम लाग।
तत कए देखिअ जेहन तुअ भाग॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
जे अंगीरिय ताँ न गुनिअ गारि॥

रागत पृ ७८ न० गु० (मिथिला का पद) २३७, ग्रि० २५

पद न० ३११—ग्रियर्सन का पाठान्तर। केवल प्रथम दो चरणों में मेल है।

चल चल सुन्दरि शुभ करि आज।
ततमत करैति नहि होए काज॥
धनिअ वेआकुल कोमल कन्त।
कोन परबोधय सखि परजन्त॥
सखि परबोधि सेज जब देल।
पीआ हरखि उठि बाँहि धरि लेल॥
नहि नहि करए नयन ढरु लोर।
सुति रहलि धनि सजे आक ओर॥
भनहि विद्यापति हे जुवराज।
सभसँ बड़ थिक आँखिक लाज॥

ग्रियर्सन के पद का अर्थ—हे सुन्दरि, आज शुभ यात्रा करके चलो; इतस्ततः करने से काज नहीं होता। सुन्दरी भी व्याकुल; कान्त भी कोमल; सखि अन्त तक परबोध देती है। सखी ने जब समझा-बुझा कर शय्या के निकट पहुँचा दिया, प्रिय ने आनन्दित होकर बाँहों में ले लिया। सुन्दरी 'ना, ना' करने लगी और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह शय्या के एक कोर पर सो गयी। विद्यापति कहते हैं, हे युवराज! सबों से अधिक आँखों की लज्जा होती है।

अनुवाद—हे सुन्दरि, चल चल, आज मंगल (काज) कर, इधर-उधर करने से काम नहीं होता। गुरुजन-परिजनों की आशंका दूर कर; साहस टूट जाने से सिद्धि नहीं होती, आशा भी पूर्ण नहीं होती। विना जपे कोई सिद्धि नहीं पाता, नहीं जाने से घर पर निधि (धन) नहीं आती। वह दूसरे का स्वामी, तुम दूसरे की रमणी, मैं बीच में (रह कर) दोनों पक्षों से गाली खाती हूँ। तुमसे उनसे मिलन हुआ, समझती हूँ कि जितना तुम्हारे भाग्य में है, उतने दर्शन कर लो। विद्यापति कहते हैं, हे रमणीश्रेष्ठ सुनो, जिसे अंगीकार कर लिया है उसकी गाली की गणना न करनी चाहिए अर्थात् जिसे करना स्वीकार कर लिया है उसे गाली सुनने पर भी पालन करना।

(३१२)

राहु मेघ भए गरसल सूर।
पथ परिचय दिवसहिँ भेल दूर॥
नहि बरसए अवसन[1] नहि होए।
पुर परिजन संचर नहि कोए॥
चल चल सुन्दरि कर गए साज।
दिवस समागम सपजत आज॥
गुरुजन परिजन डर करु दूर।
विनु साहस अभिमत नहि पूर॥
एहि संसार सार वथु एह।
तिला एक संगम जाव जिव नेह॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।
कोटिहु न घट दिवस-अभिसार॥

तालपत्र, न० गु० ३१२; ग्रियर्सन १६

शब्दार्थ—सूर—सूर्य (दूर—दुरुह, कष्टकर) अवसन—अवसान [अवसन पाठ मानने से अर्थ होता है कि वृष्टि का अवसान नहीं होता, इसीलिए पुर-पुरजन कोई बाहर नहीं आता—इस अर्थ में अवश्य ही एक 'नहि' निरर्थक है। नगेन्द्र बाबू ने 'अवसर' पाठ मान कर अर्थ किया है—"वृष्टि नहीं होती, अतएव अवसर (दिवाभिसार का अवसर) नहीं होता (अभी) पुर-पुरजन कोई (पथ पर अथवा बाहर) गमना-गमन नहीं करता (अतएव अभी अवसर है)। जब वृष्टि नहीं होती तो लोग क्यों नहीं चलते, समझ में नहीं आता है। सपजत—सम्पूर्ण। सारवथु—सारवस्तु। जावजिव नेह—यावज्जीवन स्नेह।

अनुवाद—मेघ ने राहु बन कर सूर्य का ग्रास कर लिया, दिवस में ही रास्ते में (लोक) परिचय कठिन हो गया। वृष्टि का अवसान नहीं होता, पुर-परिजन कोई भी बाहर गमनागमन नहीं करता। चल, चल, सुन्दरि, जा कर सज्जा कर, आज दिवा-मिलन सम्पूर्ण होगा। गुरुजन और परिजन का भय दूर कर, विना साहस के अभिलाषा पूर्ण नहीं होती। इस संसार में यही सार वस्तु है, एक तिल के मिलन से यावज्जीवन अनुराग (होता है)। कवि कण्ठहार विद्यापति कहते हैं, करोड़ों विनती से भी दिवा-मिलन नहीं होगा।

ग्रियर्सन का पाठान्तर—(१) अवसर

(३१३)

एके मधु जामिनि सुपुरुख संग।
आइति न करिअ आसा भंग॥
मञें की सिखउवि हे तोहहि सुवोध।
अपन काज होअ पर अनुरोध॥

चल चल सुन्दरि चल अभिसार।
अवसर लाख लहए उपकार॥
तरतमे नहि किछु सम्भव काज।
आसा दए तोहे मने नहि लाज॥

पिया गुन गाहक तञें गुन गेह।
सुपुरुख वचन पासानक रेह॥

नेपाल ८९, पृ० ३१, ख, पं १; भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० २३४

शब्दार्थ—आइति—आने का। अवसर लाख लहए उपकार—सुयोग पाने पर लाखों उपकार हो जाते हैं। तरतमे—द्विधा से। आसा दए—आशा दे कर।

अनुवाद—एक तो मधु (चैत्र मास की) रात्रि, दूसरे सुपुरुष का संग, आशा देकर (अभिसार करने की आशा देकर) भंग मत करना, अर्थात् माधव को तुमने अभिसार में आने की आशा दी है, उसे भंग मत करना। मैं क्या सिखाऊँ, तुम स्वयं ही बुद्धिमती हो, दूसरे के अनुरोध से क्या अपना काम होता है। चल, चल, हे सुन्दरि, अभिसार में चल। सुयोग मिलने से लाखों उपकार हो जाते हैं। संशय में कोई कार्य सम्भव नहीं होता, आशा देने से क्या तुम्हारे मन में लज्जा नहीं होती? प्रिय गुणग्राही, तुम गुणधाम, सुपुरुष का वचन मानों पत्थर की रेखा होती है।

(३१४)

वामा नयन फुरन आरम्भ
पुलक मुकुले पूरल कुचकम्भ।
नीवी निविल ससरते वीधि
सगुणे सुचिहलु साहस सीधि।
चल चल सुन्दरि न कर वेआज
मदने महासिधि पाओबि आज।

विलम्ब न कर अंगिरहि अभिसार
हटें पए फारए काभिक बाण।
ताहि तरुनिकाँ कओन तरंग
जकरा मदन महीपति संग।
विद्यापति कवि कहए विचारि
पुनमन्त पावए गुनमति नारि॥

रामभद्रपुर पोथी, ४२

शब्दार्थ—ससरते—खुल गया।

अनुवाद—(हे सखि) तुम्हारा वायाँ नयन नाच रहा है, कुचकुम्भों के ऊपर रोमांच हो रहा है, नीविबन्धन खुल-खुल जा रहा है, यही सब सुलक्षण तुम्हारे कार्य की सिद्धि की सूचना दे रहे हैं। सुन्दरि, आज वृथा बहाना न करके गमन करो, मदन (यत्न में) आज महासिद्धि लाभ करेगा। विलम्ब न करके अभिसार में चलो। हटकारिता करने से काम का वाण हृदय में भेद करता है। जिसके साथ मदन राजा हैं उस रमणी की क्या चिन्ता? विद्यापति कवि विचार कर कहते हैं कि पुण्यवान गुणमती नारी प्राप्त करता है।

(३१५)

जौवन चाहि कम नहि ऊन
धनि तुअ विसयदेखिअ सव गून।
एकेप भेल विधाता भोर
समकए सामि न सिरिजल तोर।
कि कहब सुन्दरि कहइते लाज
से कइसे पुनु तोह हो काज।
मन्दाकु काज कुति भलि भेलि
ते भए किछु अनुमति तोहि देलि।

जवों तोहे वोलह करवों इथि अंग
चोरी पेम चारिगुन रंग।
दूर कर अगे सखि अइसनि वानि
अमिअ घोअउ विसि साँकरे सानि।
छैलक उकुति कहइते नहि ओर
अरथक गरुअ वचनकें थोल।
जीवन सार जौवन जग रंग
जौवन तवों जवों सुपुरुप संग।

सुपुरुस पेमक बहु नहि छाड़
दिने दिने चान्द कला जवों वाढ़।

नेपाल २३४, पृ० ८२ क, पं ४ भनइ विद्यापतीत्यादि

अनुवाद—तुम्हारा यौवन जिस प्रकार का है वैसा ही रूप भी है (यौवन की अपेक्षा रूप कम नहीं है)। हे सुन्दरी, तुम में सब गुण देखती हूँ। केवल एक विषय में विधाता ने भूल की है—तुम्हारे समान स्वामी की सृष्टि उन्होंने न की। सुन्दरि, क्या बोलूँ, बोलने में लज्जा होती है, फिर भी बोलती हूँ, क्योंकि बोलने से तुम्हारा काम अच्छा होगा। खराब काम कहाँ अच्छा होता है? इसीलिए तुमको कुछ उपदेश देती हूँ। तुम्हारी शपथ करके कहती हूँ, चोरी के प्रेम में चारगुण रंग होता है। सखि, उस प्रकार की बात मत करना। शक्कर में विष मिला कर अमिय खिलावोगी क्या? रसिक की कथा में गुण की सीमा नहीं होती—थोड़ी सी बात से अनेक अर्थ निकलता है। जीवन का सार यौवन का रंग जागता है और वही यौवन सार्थक है जिससे सुपुरुष का संग लाभ होता है। सुपुरुष प्रेम का सम्पर्क कभी भी छिन्न नहीं करता, वह दिनोदिन चन्द्रकला के समान वृद्धि पाता है।

(३१६)

ओ पर वालभू तवे परनारि।
हमे पए दुहु दिस भेलिहु दुहुआरि॥
तोह हुनि दरसन हम लाग।
तत कए सुमुखि जैसन तोर भाग॥

अभिसारिनि तवे सुभकर साज।
ततमत करइते न होअए काज॥
काजके करिले आगुके आह।
अपन अपन भल सावकेओ चाह॥

भनइ विद्यापति दूती से।
इमन जे मेलि करावए जे॥

नेपाल ७७, पृ० २८ घ, पं १: न० गु० २३७ (मिथिला का पद): मि० २९

पाठान्तर—रागतरंगिनी पृ० ७८—'चल चल सुन्दरि शुभकर आज' पद के साथ कुछ समानता मिलती है। वे चरण ये हैं:—चल चल सुन्दरि शुभकर आज। ततमत करइते नहि होए काज॥ न० गु० २३१—इसके आरम्भ में ये दो चरण दिए हुए हैं। किन्तु नेपाल पोथी के पाठ अथवा उसके अर्थ से न० गु० के पद में अन्य विशेष समानता हीं पायी जाती।

अनुवाद—वह दूसरे का वल्लभ और तुम दूसरे की स्त्री। मैं दोनों आदमियों की गाली खाती हूँ। तुम्हारे साथ उसको मिला देना चाहती हूँ। हे सुमुखि, तुम्हारे भाग्य में जैसा है वैसा करो, इतस्ततः करने से काम नहीं होता। काम करना चाहो तो आगे आवो। सब अपना अपना भला चाहते हैं (क्या तुम नहीं चाहती)? विद्यापति कहते हैं, वही दूती है तो इस प्रकार की अवस्था में भी मिलन करा दे।

(३१७)

सहजहि आनन अछल अमूल।
अलके तिलकें ससधर तूल॥
का लागि अइसन पसारल देल।
जे छल रूप सेहेओ दुर गेल॥
अछल सोहाओन कितए गेल।
भूसन कएले दूसन भेल॥
दरसि जयाबए मुनिजन आधि।
नागर का ओ सहज बेयाधि॥
लिहले उपलल आओछाड़ भार।
भेटले भेटत अछ परकार॥

नेपाल १९०, पृ० ४३ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादिः न० गु० २४७

अनुवाद—स्वभावतः वदन अमूल्य था। अलक-तिलक से चन्द्रमा के तुल्य हुआ अर्थात् तुम्हारा मुखावयव अतुलनीय था; अलक-तिलक से वह कलंकयुक्त हुआ। किस लिए ऐसा प्रसाधन किया, जिससे जो रूप था वह भी दूर चला गया। सौन्दर्य था, कहाँ गया? भूषण देकर दूषित किया। दर्शन से मुनिजन को भी आधि उत्पन्न होती है, नागर को तो स्वभावतः ही व्याधि होती है। शेष दो चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। नेपाल पोथी में 'उपलल आओछाड़ भार' है किन्तु नगेन्द्र बाबू ने उसे 'उधसल अवहल भार' के रूप में मुद्रित करवाया है।

(३१८)

घर गुरुजन पुर परिजन जाग।
काहुक लोचन निन्द ओ न लाग॥
कोन परिजुगुति गमन होएत मोर।
तम पिबि वादल चाँद उजोर॥
साहसे साहिअ प्रेम भंडार।
अवहु न आवए करम चन्दार॥
दुहु अनुमान कएल विहि जोर।
पाँखि नहि देल विधाता मोर॥
भनइ विद्यापति जदि मन जाग।
वड़े पुने पाविअ नव अनुराग॥

तालपत्र न० गु० २८१

शब्दार्थ—परिजुगुति—प्रयुक्ति से, विचार से; साहिअ—रक्षा करती हूँ: अवहु न आएव—अभी भी नहीं आता। करम चन्दार—चन्दार शब्द का अर्थ नगेन्द्र बाबू ने चन्द्र का अरि राहु किया है। करमचन्दा का अर्थ लिखा है "अभी भी (मेरे) कपाल में राहु नहीं आया है।" यह अर्थ कष्टकल्पनाप्रसूत मालूम होता है। करम का अर्थ है कर्म, भाग्य, चन्दा का अर्थ है चण्डाल, निष्ठुर भाग्य अभी भी उदित न हुआ। अनुमान कएल—तुल्यरूप विवेचना करके।

अनुवाद—गृह में गुरुजन, पुर में परिजन जाग रहे हैं, किसी की आँखों में भी नींद नहीं है। किस प्रयुक्ति अथवा युक्ति से मेरा जाना हो सकता है? अन्धकार का पान करके चन्द्र की उज्ज्वलता वृद्धि प्राप्त कर रही है। साहस करके प्रेमभंडार की रक्षा कर रही हूँ, अभी भी निष्ठुर भाग्य का उदय नहीं हुआ। दो आदमियों को समान जान कर विधाता ने प्रेमसंघटन किया, किन्तु वह इतना भोला है कि (उड़ कर मिल जाने के लिए) पंख नहीं दिए। विद्यापति कहते हैं, यदि मन में जाग जाए अर्थात् यदि सब समय मन में जागा रहे तो (जानना कि) बड़े पुण्य से नव अनुराग लाभ किया है।

(३१६)

दुर सिनेहा वचने बाढ़ल
मनक पिरिति जानि!
अलप काज बड़ी दुर आँतर
करम पाओल आनि॥
चरन नूपुर घन सबदए
चाँदहु राति उजोरि।
ननन्दि वैरिनि निन्दे न नोअए
आवे अनाइति मोरि॥
दूती बोले बुझावह कान्हु।
आजुक रयनि आए न होएते
हृदय कोपथि जनु॥

चरन नूपुर करे उतारब
सामर बसन तनु।
खेड़हु कउतुके ननन्द बोधबि
विलंब लागए जनु।
ओ भरे लागल नव सिनेहा
एँ भरे कुलक गारि।
सकल प्रेम सम्भारि न होएत
हठे विनासति नारि॥
भन विद्यापति उगन्त सेविअ
मदन चिन्तथु आउ।
पिरिति कारने जिव उपेखब
ए बेरि होउ कि जाउ॥

न० गु० तालपत्र २७३

शब्दार्थ—दुर सिनेहा—दूर का स्नेह—जो प्रिय दूर है उसके प्रति प्रेम; वचने बाढ़ल—दूती के वचन से वृद्धि प्राप्त की; बड़ी दुर आँतर—बहुत दूर का अन्तर; करम पाओल आनि—भाग्य को लाकर उपस्थित किया; अनाइति—आयत्त के बाहर; हृदय कोपथि जनु—मन में क्रोध मत करना; विलंब लागए जनु—जिससे देरी न हो; हठे विनासति नारि—हठपूर्वक नारी का नाश करता है; उगन्त—उद्दीयमान; जिव उपेखब—जीवन की उपेक्षा करूँगी।

अनुवाद—मन की प्रीति की बात (दूती के) वचन से जान कर दूरस्थित प्रियतम के प्रति प्रेम बढ़ गया। (मिलन) थोड़े से काम से ही साधित हो सकता है; परन्तु भाग्य के फल से दोनों के बीच बहुत अन्तर है। चरणों का नूपुर घन शब्द करता है, रात्रि भी चाँद से उज्ज्वल है; वैरिन ननद भी निद्रा में मग्न नहीं होती; अभी सब के सब मेरे आयत्त से बाहर हैं। दूति, कान्ह को समझा कर कहना, यदि आज रात को आना न हो तो वे मन में क्रोध न

करें। मैं चरणों का नूपुर हाथ से खोल दूँगी, काली साड़ी से शरीर ढक लूँगी, ननद को खेल में भुला दूँगी—जिससे अभिसार में देरी न हो। एक ओर नवीन प्रेम, दूसरी ओर कुल का कलंक है। प्रेम सब ओर से सम्भाला नहीं जाता, बलपूर्वक नारी का नाश करता है। विद्यापति कहते हैं कि जो उदीयमान है, उसी की सेवा करो, सबसे पहले मदन को ही चिन्ता करो। प्रेम के लिए जीवन की उपेक्षा करो—इसमें जो कुछ भी होना हो होवे।

(३२०)

प्रथम जउवन नव गरुअ मनोभव
छोटि मधुमास रजनि।
जागे गुरुजन गेह राखए चाह नेह
संसअ पड़लि सजनि॥
नलिनी दल निर चित न रहए थिर
तत घर तत होर बहार।
विहि मोर बड़ मन्दा उगि जनु जाय चन्दा
सुति उठि गगन निहार॥

पथहु पथिक संका पय पय धए पंका
कि करति ओ नव तरुनी।
चलए चाह धसि पुनु पड़ खसि खसि
जालक छेकलि हरिनी॥
साए साए कओन वेदन तसु जाने
निकुंज वनहि हरि जाइति कओन परि
अनुखन हन पंचवाने॥

विद्यापति भन कि करत गुरुजन
नींद नीरुपन लागी।
नयन नीर भरि धीर झपावए
रयनि गमावए जागी॥

तालपत्र न० गु० २८९।

शब्दार्थ—गरुअ—गुरुतर, प्रबल; मनोभव—मदन; राखए चाह नेह—स्नेह रखना चाहती है; पय पय धए पंका—कदम कदम पर पैर में कीचड़ लग जाता है; धसि—बलपूर्वक; जालक छेकलि—जाल का घेरा।

अनुवाद—प्रथम नवयौवन, प्रबल मदन, चैत्रमास की रात छोटी। घर पर गुरुजन जागे हुए हैं, सजनी अभिसार का वचन देकर संशय में पड़ गयी है। कमलपत्र पर जल के समान चित्त स्थिर नहीं रहता, कभी घर पर, कभी घर के बाहर रहता है, विधाता मुझ से बहुत वाम है, चन्द्रमा कहीं उग न जाए, सोते जागते गगन निहारती रहती है। पथ पर पथिकों की आशंका, पदपद पर पैर में कीचड़ लगता है, नवीना युवती क्या करे? जल्दी जल्दी चलना चाहती है, फिर गिर-गिर पड़ती है, जैसे जाल में पड़ी हरिणी। उसकी शत शत व्यथा कौन जानता है, हरि निकुंज वन में (हैं, वहाँ वह) किस प्रकार जाए, पंचवाण सर्वदा ही पीड़ा देता है। विद्यापति कहते हैं, क्या करे, गुरुजन जागे हैं कि नहीं देखने के लिए अश्रुपूर्ण वदन वस्त्र से ढाँक कर रात्रि जाग कर काटती है।

(३२१)

चन्दा जनि उग आजुक राति।
पिया के लिखिअ पठाओब पाँति॥
साओन सयँ हम करब पिरीत।
जत अभिमत अभिसारक रीत॥
अथवा राहु बुझाएब हंसी।
पिबि जनि उगिलह सीतल ससी
कोटि रतन जलधर तोहें लेह।
आजुक रयनि घन तम कए देह॥

भनइ विद्यापति सुभ अभिसार।
भल जन करथि परक उपकार॥

तालपत्र न० गु० २८६।

शब्दार्थ—जनि—मत ; पाँति—पत्र ; साओन सयँ—श्रावण से ; पिबि जनि उगिलह सीतल ससी—शीतल चन्द्रमा का ग्रास करके फिर उसे उगलना मत।

अनुवाद—हे चाँद आज की रात (तुम) मत उगना। पिया को आज पत्र लिखकर (अभिसार का संकेत करके) भेजूँगी। श्रावण से मैं प्रीति करूँगी—वह मेरे अभिसार के अनुकूल सब ठीक कर देगा। अथवा हंस कर राहु को समझाऊँगी कि वह शीतल चन्द्रमा का ग्रास करके फिर उसे नहीं उगले (इससे अन्धकार ही रहेगा और अभिसार में सुविधा होगी)। हे मेघ! तुम को कोटि रत्न दूँगी, आज की रात घोर अन्धकार कर दो। विद्यापति कहते हैं—अभिसार शुभ होगा—अच्छे लोग दूसरों का उपकार करते हैं।

(३२२)

अगमने प्रेमकु गमने कुल जाएत
चिन्ता पंक लागलि करिनि।
मन्ने अबला दह दिसझा भमि झाखओं[१]
जनि व्याध डरे भीरु हरिनी॥
चन्दा दुरजन गमन विरोधक
उगल गगन भरि वैरि मोरा
केपहु आन परबोधी॥[२]

कुहु भरमे पथ पद आरोपल
आए भुलाएल पंचदसी।
हरि अभिसार मार उदवेजक
कओने निवारब कुगत ससी॥

नेपाल २३, पृ० १०क, पं २, भनइ विद्यापती-त्यादि: न० गु० २८८।

अनुवाद—नहीं जाने से प्रेम जाता है और जाने से कुल ; हस्तिनी चिन्तारूपी पंक में निमज्जित हो गयी है, मैं अबला, व्याध के भय से भीरु हरिणी के समान दसो दिशाओं में भटक रही हूँ। दुष्ट चन्द्रमा गमन-विरोधी है, इसने

३२२—नगेन्द्र बाबू का संशोधित पाठ—(१) मन्ने अबला दस दिस भमि झाखओ। (२) नगेन्द्र बाबू ने स्वीकार किया है कि इसे उन्होंने केवल नेपाल पोथी से लिया है। नेपाल पोथी में 'के पहुआन परबोधि" नहीं है।

वह गगन में भरा हुआ उदित हुआ है। प्रभु को समझा कर कौन लावेगा? अमावस्या समझ कर पथ में चरण आरोपण किया, पंचदशी अर्थात् पूर्णिमा आकर उपस्थित हो गयी। हरि के अभिसार में मदन के उद्दीपक अशुभागत चन्द्रमा को कौन रोकेगा?

(३२३)

आज मोय जाएब हरि समागम[1]
कत मनोरथ भेल।
घर गुरुजन निन्द निरुपइत
चन्द[2] उदय देल॥

चन्दा भलि नहि तुअ रीति[3]।
एहि मति तोहे कलंक लागल
किछु न गुनह भीति[4]॥

जगत-नागरि मुख जितल[5] जब
गगन गेला हारि[6]
तहँ ओँ राहु गरास पड़ला[7]
देव तोह[8] कि गारि॥

एक मास विहि तोहि सिरिजए
दए सकलओ वल।
दोसर दिन पुनु पुर न रहसी
एही पापक फल[9]॥

भन विद्यापति सुन तोयँ जुवती
न कर चाँदक साति।
दिना सोरह चाँदक आइति
ताहि पर भलि राति॥

न० गु० २८७ तालपत्र; नेपाल १६१, पृ० ४७ ख, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—निन्द निरुपइत—निश्चित करने के लिए कि निद्रा मग्न हुए कि नहीं। भलि नहे—अच्छा नहीं है; जितल—जय किया; हारि—पराजित होकर। एकमास विहि तोहि सिरिजए—मास में एकदिन विधाता तुम्हारी (पूर्ण रूप में) सृष्टि करते हैं; ताहि पर—उसके वाद; भलि राति—अच्छी रात्रि (अभिसार के पक्ष में)।

अनुवाद—आज मैं हरि-समागम के लिए जाऊँगी—ऐसा सोच कर कितना मनोरथ किया था। किन्तु घर पर गुरुजन सोये हैं कि नहीं, यह निश्चित कर रही थी कि चाँद उग गया। चाँद, तुम्हारी रीति अच्छी नहीं है; इसीलिए तुमको कलंक लगेगा; तभी भी क्या मन में डर नहीं होता? जगत की नागरियों की मुख-शोभा ने जब तुम पर विजय पायी तो तुमने हार कर आकाश में पलायन किया; वहाँ भी राहु ने तुम्हारा ग्रास किया; तुमको और क्या गाली दूँ (ऐसे ही तुम्हारा इतना दुर्भाग्य है)। विधाता मास में केवल एकदिन तुम्हारी पूर्णरूप में सृष्टि करते हैं, दूसरे दिन तुम पूर्ण नहीं रह सकते हो; यह तुम्हारे पाप के ही फल से है। विद्यापति कहते हैं, हे युवती, सुन, चाँद को मत डाँटो। मास के सोलह दिन चाँद को दुख रहता है, उसके वाद रात्रि (अभिसार पक्ष में) अच्छी होगी।

---

३२३ नेपाल पोथी का *पाठान्तर*—(१) आज मञें हरि समागम जाएब (२) चन्दाञ (३) चन्दा कठिन तोहरि रीति (४) तँअओ न मानसि भीति (यह पाठ उत्कृष्टतर है)। (५) मुह जिनइते (६) गेलाहे गगन हारि (७) ततहुँ राहु गरास पलाइ (८) तोहि (९) एके मासे ताहि विहि सिरिजए कतन जतन वरे। दोसर दिना वरए न पारए तही पापक फले॥ भनइ विद्यापतीत्यादि।

(३२४)

कह कह सुन्दरि न कर वेआज।
देखिअ आज अपुरुब साज[१]॥
मृगमद पंक करसि अंगराग।
कोन नागर परिनत होअ भाग॥
पुनु पुनु उठसि पछिम दिसि[२] हेरि।
कखन जाएत दिन कत अछि बेरि॥
नूपुर[३] उपर करसि कसि थीर।
दृढ़ कए[४] परिहरि तम सम चीर॥
उठसि विहँसि हँसि तेजिए सार।
तोर मन भाव सघन अंधिआर[५]॥
भनइ विद्यापति सुनु वर नारि।
धैरज धर मन मिलत मुरारि॥

न० गु० तालपत्र २७६; ग्रियर्सन १२।

शब्दार्थ—वेयाज—व्याज, छलना। परिनत होअ भाग—भाग्य का उदय हुआ; कसि थीर—कस कर स्थिर करती हो; तेजिए सार—सार छोड़कर, अकारण ही।

अनुवाद—सुन्दरि, बोलो, बोलो, छलना मत करो। आज तुम्हारी अपूर्व सज्जा देख रही हूँ। मृगमदपंक से अंगराग कर रही हो। किस नागर के सौभाग्य का उदय हुआ है? बार-बार उठ कर पश्चिम दिशा में देख रही हो—कब दिन शेष होगा, कितनी वेला है। नूपुर ऊपर खींच कर स्थिर कर रही हो, हठ करके कृष्णवर्ण साड़ी पहर रही हो (जिससे नूपुर का शब्द न हो और अन्धकार में तुम दृष्टिगोचर न होवो)। उठकर अकारण हँसती हो। तुम्हारे मन का भाव मानों घोर अन्धकार है ('मोर' पाठ मानने से अर्थ होगा—मेरे मन में घोर संशय हो रहा है)। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, सुन, मन में धैर्य रख, मुरारि मिलेंगे।

(३२५)

चरण नूपुर उपर सारी।
मुखर मेखल करे निवारी॥
अम्बरे सामर देह झपाई।
चलहि तिमिर-पथ समाई॥
समुद कुसुम रभस बसी।
अबहि उगत कुगत ससी॥
आएल चाहिअ सुमुखि तोरा।
पिसुन-लोचन भम चकोरा॥
अलक-तिलक न कर राधे।
अंगे-विलेपन करहि बाधे॥
तयँ अनुरागिनी ओ अनुरागी।
दूषण लागत भूषण लागी॥
भने विद्यापति सरस कवि।
नृपति-कुल सरोरुह रवि॥

नेपाल १७८, पृ० ६३ ख; पं २: न० गु० २४३

३२४ ग्रियर्सन का पाठान्तर—(१) दिखिअ तुअ अपरूप सभ साज (२) दिश (३) नेपुर (४) दृढ़ कय (५) मोर मन भाव सघन अंधकार।

शब्दार्थ—सारी—साड़ी; अम्बरे सामर—श्यामल वस्त्र से; समुद कुसुम—आनन्दित अर्थात् प्रस्फुटित फूल (नगेन्द्र बाबू ने अर्थ किया है—समुद्र और कुसुम (के मिलन के) आनन्द का रसिक (चन्द्रमा के उदय होने से फूल भी खिलता है और समुद्र भी उद्वेलित होता है, इसीलिए उनके दर्शन से चन्द्रमा आनन्द का अनुभव करता है); पिसुन लोचन भम चकोरा—दुष्टों के नेत्र चकोरों के समान हैं (मुख से चन्द्रमा और चकोर से दुष्ट लोगों की उपमा दी गयी है); दूषण लागत भूषण लागी—भूषण धारण करने से दोष लगेगा।

अनुवाद—चरण में नेपुर (उसके) ऊपर साड़ी, मुखर मेखला को हाथ से निवारण करके, नील वस्त्र से शरीर ढाँक कर, अंधकार में प्रवेश करके रास्ता चलो। प्रस्फुटित कुसुमों का मिलन कु—(अशुभ) गत चन्द्रमा अभी उदित होगा। सुमुखि, तुम्हें देख कर दुष्टों की आँखें चन्द्रमा के समान आती हैं। हे राधे, अलक-तिलक अर्थात केशसज्जा और विलेपन मत करो, अंग में विलेपन करने से बाधा अर्थात् विलम्ब होगा। तुम अनुरागिनी, वह अनुरागी, भूषण धारण करने से दोष होगा, अर्थात साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं है। रसिक कवि विद्यापति कहते हैं (राजा शिव सिंह) नृपति कुलसरोज के सूर्य (हैं)।

(३२६)

लहु कय वोललह गुरुतर भार।
दुतर[1] रजनि दूर अभिसार॥
वाट भुअंगम उपर पानि।
दुहु कुल अपजस अंगिरल जानि॥

परनिधि हरलय साहस तोर।
के जान कओन गति करवए मोर॥
तोरे बोले दूती तेजल निज गेह।
जीव सयँ तौलल गरुअ सिनेह॥

दसमि दसाहे वोलव की तोहि।
अमिअ वोलि विख देलहे मोहि॥

नेपाल ६६, पृः २४ ख, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० २५४

शब्दार्थ—वाट भुअंगम—रास्ते में सर्प। जीव सयँ—जीवन के साथ।

अनुवाद—मृदुस्वर से बातें करने पर भी गुरुतर भार है अर्थात् उच्चस्वर के समान सुनाई पड़ता है। दुस्तर रात्रि, अभिसार दूर। पथ में सर्प, ऊपर वृष्टि, जान-सुन कर दोनों कुलों का कलंक स्वीकार किया है। परधन अपहरण करने में तुम्हारा इतना साहस है, कौन जानता है कि हमारी गति क्या होगी। दूति, तेरे कहने से अपने गृह का परित्याग किया। तौल कर देखा, प्राण की अपेक्षा स्नेह अधिक (भारी) है! तुमको क्या कहूँ (मेरी) दसवीं दशा सम्मुख है सुधा कह कर (तुमने) मुझे जहर दिया।

पाठान्तर सम्बन्धी मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने केवल बंगला पद का परिवर्तन करके उसका कल्पित मैथिल रूप देने की भी चेष्टा न की है, नेपाल पद के कितने शब्दों को इच्छानुसार बदल दिया है। इस पद के प्रथम चरण में पाठ ''वोललह'' है, उन्होंने ''वजलह' कर दिया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि इसे उन्होंने नेपाल पोथी से लिया है। (1) नगेन्द्र बाबू ने 'रयनि' कर दिया है।

(३२७)

वाट सुअंगम उपर पानि।
दुहु कुल अपजसे अंगिरल आनि॥
परनिधि हरलए साहस तोर।
के जान कव्योन गति करवए मोर।

तोरे वोले दूती तेजल निजगेह।
जीवसञो तौलल गरुअ सिनेह॥
लहुकए कहलह गुरु वड़ भाग।
अन्तर भर रजनि दूर अभिसार॥

दसमि दसाहे वोलव की तोहि।
अमिअ वोलि विष देलए मोहि॥

नेपाल ६२, पृ० २२ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि

अनुवाद और मन्तव्य—यह पद भी नेपाल पोथी से है, परन्तु इसके वाक्य और अर्थ पूर्व मुद्रित पद के समान ही हैं। पहले पद के प्रथम दोनों चरण पाठान्तरित होकर इसके सप्तम और अष्टम चरण हो गए हैं। इन दोनों चरणों का अर्थ है—तुम इस अभिसार को मामूली वात वताते हो, किन्तु, भाग्यवश देखती हूँ (कि) यह गुरुतर काम है। अभिसार का स्थान दूर है, और हृदय मानो रजनी के अन्धकार से भरा हुआ है।

(३२८)

कुसुमित कानन कुंज वसी।
नयनक काजर घोर मसी॥
नखतँ लिखलि नलिनि दल पात।
लीखि पठाओल आखर सात॥

प्रथमहि लिखलनि पहिल वसन्त।
दोसरें लिखलनि तेसरके अन्त॥
लिखि नहि सकलैहि अनुज वसन्त।
पहिलहि पद अछि जीवक अन्त॥

भनहि विद्यापति अछर लेख।
वुध जन होथि से कहत विसेख॥

ग्रियर्सन ६० : न० गु० (प्र) १,

अनुवाद—कुसुमित कानन-कुंज में वैठकर (राधा ने) नयनों के काजर की स्याही वनायी। नलिनीदल पत्र नख से लिखा। सात अक्षर लिखकर (माधव के पास) भेजा। प्रथम लिखा प्रथम वसन्त (वसन्त का प्रथम मास चैत्र, चैत्रमास का एक और नाम है मधु, अर्थात् 'मधु' यही दो अक्षर पहले लिखे। उसके वाद तृतीय का अन्त लिखा। [Grierson—First she wrote the first day of spring, secondly she wrote that the third day was passed]—(वसन्त के वाद तृतीय ऋतु वर्षा) वर्षा के शेष में हस्ता नक्षत्र; 'कर' का अर्थ है 'हस्त'। 'मधु' इन दो अक्षरों के वाद लिखा 'कर'—मधुकर। वसन्त का अनुज (चैत्र के वाद वैशाख—नामान्तर माधव) लिख नहीं सकी। प्रथम पद (अक्षर) जीवन का अन्त ('म' प्रथम अक्षर—मरण शब्द का आद्याक्षर)

पद न० ३२७—मन्तव्य—ग्रियर्सन ने इसके अनुवाद में लिखा है कि नायिका यहाँ संकेत करके नायक को समझाती है कि वह रजस्वला हो गयी थी अब तीन दिन वीत गये हैं। उनके मतानुसार सात अक्षर होते हैं "कुसुमित कानन" Radha compares herself to a flower grove. First she wrote the First day of spring, secondly she wrote that the third day was passed.

माधव न लिख सकने से मधुकर लिखा।) 'मधुकर मीलवे' यही सात अक्षर लिख कर राधा ने भिजवा दिया। विद्यापति ने संकेत अक्षर लिखा। यदि बुधजन होंगे, तब इसका विशेष सन्धान कर सकेंगे।

(३२९)

जदि तोरा नहि खन नहि अवकास।
परके जतन कते[1] देल विसवास॥
विसवास कइ कके[2] सुतह निचीत।
चारि पहर राति भमह सुचीत॥

करजोरि पँइया परि कहवि विनती।
विसरि न हलविए पुरुव पिरिती॥
प्रथम पहर राति रभसे वहला।
दोसर पहर परिजन निन्द[3] गेला॥

निन्द निरुपइत भेल अधराति।
तावत उगल चन्दा परम कुजाति[4]॥
भनइ विद्यापति तखनुक भाव।
जेह पुनमत से जन पय पाव[5]॥

रागत पः ६६; न० गु० २७४ (नेपाल पोथी)

अनुवाद—(दूती का प्रश्न) यदि तुमको क्षणमात्र समय नहीं है, दूसरे को यत्न करके विश्वास क्यों दिया, अर्थात् तुमको जाने का समय नहीं था तो जाने का वादा करके उसको विश्वास क्यों दिलाया? विश्वास दिला कर निश्चित मन से क्यों सो रही हो? वह सुचित्र अर्थात् सहृदय चार पहर रात तक घूम रहा था अर्थात् तुम्हारे अभिसार का पथ देख रहा था। (नायिका का उत्तर) हाथ जोड़ कर, पाँव पड़ कर, अनुनय करके कहना, पूर्व की प्रीति वे भूल न जायँ। प्रथम पहर तो कौतुक में काट दिया, दूसरे पहर परिजन लोग निद्रामग्न हुए। वे लोग निद्रित हैं कि नहीं, यह देखने में आधी रात हो गयी, उसके बाद अत्यन्त कुजाति चाँद उदित हो गया। विद्यापति उस समय का भाव कहते हैं, जो आदमी पुण्यवान है वही पाता है।

(३३०)

जलधर अम्बर रुचि पहिराउलि
सेत सारंग कर वामा॥
सारंग अदन दाहिन कर मण्डित
सारंग गति चलु रामा॥

माधव तोरे बोले आनल राही।
सारंग भास पास सयँ आनलि
तुरित पठावह ताही॥

पद नं० ३२९—रागतरंगिनी का पाठान्तर—(१) जनने कके (२) दएक के (३) निद (४) निद निरुपइते भेलि अधराति तखने जागल चांदा परम कुजाति" (५) जेहे पुनमत सेहे जन पए पाव॥

सम्भु घरिनी वेरि आनि मेराउलि
हरि सुत सुत धुनि भेला ।
अरुनक जोति तिमिर पिड़ि ऊगल
चाँद मलिन भए गेला ॥

नेपाल १४२, पृ० ५० क; पं० ५: न० गु० ३१८; भनइ विद्यापतीत्यादि

शब्दार्थ—पहिराउलि—पहिराया; सेत सारंग—श्वेत पद्म; सारंग गति—गजेन्द्र गति ।

अनुवाद—रमणी को मेघरुचि वस्त्र पहनाया, उसके बायें हाथ में श्वेत कमल, दाहिने हाथ में पान शोभा देता है, सुन्दरी गजगमन से चली । माधव, तुम्हारी बात से राधा को ले आयी । ('सारंग भास पास सयँ आनलि'-इसका अर्थ नहीं लगता । नगेन्द्र बाबू ने लिखा है—सारंग भास माता (पागल)—राधा को पागल के निकट ले आयी" परन्तु यह अर्थसंगत नहीं मालूम पड़ता । उसे तुरत वापस भेज देना । शम्भु-घरनी के गीत के समय अर्थात् सन्ध्या के समय ला मिलाया, (इस समय) हरि अर्थात् इन्द्र, उसका बेटा जयन्त, उसका बेटा काक बोलने लगा (भोर हो गया) अरुण किरण अन्धकार पान कर उदित हुआ, चन्द्र मलिन हो गया ।

(३३१)

काजरे रांगलि सबे जनि राति ।
अइसन बाहर होइते साति[१] ।
तड़ितहु तेजलि[२] मित अन्धकार ।
आसा संसय परु अभिसार ॥

भल न कएल सबे देल विसवास ।
निकट जोएन सत[(क)] काहुक वास ॥
जलद भुजंगम दुहु भेल संग ।
निचल निसाचर कर रस भंग[३] ॥

मन अवगाहए मनमथ रोस ।
जिवओ देले नहि होयत भरोस ॥
अगमन[४] गमन बुझए मतिमान ।
विद्यापति कवि एहु रस जान ॥

नेपाल २३६, पृ० ८६ क, पं ४: रामभद्रपुर पद ३६ : न० गु० २६१

३३१—रामभद्रपुर का पाठान्तर—(१) काजर रंग बसए जनि राति, ऐसना बाहर हैतहुँ साति (यह पाठ नेपाल पाठ से उत्कृष्टतर है । (२) तेज मिल (उत्कृष्टतर पाठ) । (क) नगेन्द्र बाबू ने 'जोए न सत' के स्थान पर 'जोए नसत' पाठ ग्रहण किया है । "निकट जोए न सत काहुक वास" का अर्थ होता है कन्हायी का वास निकट होने पर भी "जोएन सत" इस अन्धेरी रात में शत योजन प्रतीत होता हैं । नगेन्द्र बाबू ने खींच-खाँच कर 'जोए' माने खोज कर और नसत माने अशक्त मान कर "निकट जाकर भी खोज न सकूँगी" रखा है । मैथिल पण्डित शिवनन्दन ठाकुर ने विशुद्ध विद्यापति पदावली" में नगेन्द्रबाबू का ही अनुसरण किया है । किन्तु नायिका के पक्ष में नायक के वासस्थान के निकट जाने पर भी अन्धकार के कारण उसे खोज कर न पाना लज्जा की बात है ।

शब्दार्थ— अइसन बाहर होइते साति—इस प्रकार की रात्रि में बाहर जाना भी एक कठिन काम है। रामभद्रपुर पोथी के पाठ का अर्थ—रात्रि मानो काजल रंग उदगीरण कर रही है, इस प्रकार की रात्रि में बाहर जाना विडम्बना (अथवा शास्ति) : तड़ितहु तेजलि मित अन्धकार—विद्युत ने भी मानों अपने मित्र अन्धकार का परित्याग कर दिया है, मन अवगाहे—मन मानो डूब गया है।

अनुवाद—रात्रि को मानो काजल का लेप लगा दिया गया है वा (पाठान्तर से) रात्रि मानों काजल उगल रही है। ऐसे समय में बाहर होना भी एक महान कठिन कार्य है। विद्युत ने भी अपने बन्धु अन्धकार का त्याग कर दिया है (अन्धकार के बीच बीच में बिजली भी नहीं चमकती—सुतरां अभिसार का पथ भी दृष्टिगोचर नहीं होता)। अभिसार की आशा में संशय पड़ गया। मैंने (अभिसार में जाने का) विश्वास दिला कर ठीक नहीं किया। कन्हायी का वासस्थान निकट होने पर भी शत योजन सा प्रतीत होता है। मेघ और साँप दोनों ही संगी हुए; निश्चल निशाचर रसभंग करते हैं। मन मन्मथ के रोष में डूब गया; प्राण देने से भी भरोसा नहीं होता। मतिमान आगमन और गमन समझता है (जाने की एकान्त इच्छा होने पर भी जा नहीं सकने को बुद्धिमान जाने ही के तुल्य समझता है ! विद्यापति कवि यह रस जानते हैं।

(३३२)

वारिस जामिनि कोमल कामिनि
दारुन अति अन्धकार।
पथ निसाचर सहसे संचर
घन पर जलधार॥
माधव प्रथम नेहे से भीति।
गए अपनहि सेअ विलोकिअ
करिअ तैसनि रीति॥

अति भयाउनि आतर जउनि
कइसे कए आउति पार।
सुरत-रस सुचेतन वालभु
ता पति सवे असार॥
एत शुनि मन विमुख सुमुखि
तोह मने नहि लाज।
कतए देखल मधु अपने जा
मधुकर समाज।

नेपाल २, पृ० ६, पं० ५, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० २३५

शब्दार्थ—नेहे—स्नेह में, प्रणय में; गए अपनहि—स्वयं जाकर, जउनि—जमुना (नगेन्द्र बाबू के मतानुसार यातायात); आउति पार—पार होकर आवेगी (नगेन्द्र बाबू के अनुसार पार का अर्थ है पार में—आने जाने के पथ में; अति भयानक कान्तार है, किस प्रकार आ सकती है); ता पति सवे असार—उसके निकट यह सब (अर्थात् नायक का सुरतरस सुचेतन होना) असार, क्योंकि वह अभी भी सुरतरस नहीं समझता। (नगेन्द्र बाबू के अनुसार—सुरतरस सुचतुर वल्लभ, उसके बाद सब असार—इतनी विघ्न बाधायें भी राधा के लिए असार हैं, वह केवल वल्लभ को देखने के लिए आतुर है) नगेन्द्र बाबू की यह व्याख्या मानने से पद के पूर्व अंशों से संगति नहीं रहती।

३३२—*रामभद्रपुर का पाठान्तर*—(१) करए तरंग (२) अपगम।

अनुवाद—वर्षा रात्रि, कोमला रमणी, अत्यन्त निदारुण अन्धकार, रास्ते में सहस्रों निशाचर भ्रमण करने निकले हैं, घन जलधारा पड़ रही है। माधव, वह प्रथम स्नेह में शंकिता है, स्वयं जाकर उसे देखो, वैसा ही करोगे, अर्थात् घोर अन्धकार देख कर तुम भी डर जावोगे। वल्लभ तो सुरतरस में चतुर, किन्तु (मुग्धा) नायिका के निकट सुरतवैदग्ध्य असार। सुमुखी यही सब विचार करके मन में निरुत्साह हो गयी है। माधव, तुम्हारे मन में लज्जा नहीं होती। कहाँ देखा है कि मधु स्वयं मधुकर के पास जाता है ? अर्थात् सब जगह प्रेमी ही प्रेमिका के पास जाता है, किन्तु किसने कहाँ देखा है कि प्रेमिका प्रेमी के समीप जाती है ?

(३३३)

आएल पाउस निविड़ अन्धार।
सघन नीर बरिसय जलधार॥
घन हन देखिअ विघटित रंग।
पथ चलइत पथिकहु मन भंग॥
कओने परि आओत वालभु मोर।
आगु न चलइ अभिसारिनि पार॥
गुरु गृह तेजि सयन गृह जाथि।
तिथिकु(१) वधु जन संका आथि॥
नदिआ जोरा भउ अथाह।
भीम भुजंगम पथ चललाह॥

नेपाल १८७, पृ० ६१ क, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० २६३

शब्दार्थ—पाउस—पावस, वर्षा ; घन हन—घन घन बिजली मार रही है ; नदिया—नदी ; जोरा भउ अथाह—जोर, वेगवती और अथाह।

अनुवाद—पावस आगया, घना अन्धकार (है), मेघ सघन वृष्टिधारा कर रहा है। बिजली घन घन चमक रही है, देखती हूँ रंग में (अभिसार में मिलन इत्यादि में) बाधा होगी, पथ चलने में पथिक का भी मन भंग हो रहा है। किस प्रकार मेरा प्रिय आवेगा ? अभिसारिका भी आगे जा नहीं सक रही है। गुरुजनों के गृह से शयनगृह जाने में भी आशंका होती है अर्थात् एक घर से दूसरे घर जाने में भी शंकित हो रही है। नदी वेगवती और अथाह हो गयी है, भयंकर सर्प रास्ते में चल रहे हैं।

(३३४)

जलद वरिस जलधार सर जनो पलए प्रहार
काजरे रांगलि राति[१]

सखि हे अइसनाहु निसि अभिसार।
तोहि तेजि करए के पार॥
भमए भुजंगम भीम।
पंके पुरल चौसीम॥
दिगमग देखिअ घोर।
पएर दिअ विजुरी उजोर[२]।
सुकवि विद्यापति गाव।
महघ मदन परथाव॥

नेपाल २१६, पृ० ७८ ख, पं ८: रामभद्रपुर ३८; न० गु० २६६

---

(१) नगेन्द्र बाबू ने 'तिथिकु' के स्थान 'तथिहु' संशोधित पाठ दिया है।

रामभद्रपुर का पाठान्तर—पद न० ३३४—(१) इसके बाद एक नया चरण है 'बाहर होइते न्माति'।
(२) 'दिगमग—उजोर' के बदले में है :— जलधर बिजु उजोरि। तखने गरज घन घोरि॥

अनुवाद—मेघ जलधारा वर्षण कर रहा है, वृष्टिधारा मानों तीर के समान आघात कर रही है। रात्रि को मानों काजल का लेप दे दिया गया है। हे सखि, ऐसी रात में तुम्हें छोड़ कर और कौन अभिसार कर सकता है? विकट सर्प भ्रमण कर रहे हैं, चारो तरफ पंक छाया हुआ है। घोर संशय देख रही हूँ, बिजली के आलोक में पैर बढ़ा रही हूँ। सुकवि विद्यापति गाते हैं, मन्मथ का प्रस्ताव महार्घ है।

(३३५)

काजरे साजलि राति
घन भए बरिसए जलधर पाँति ॥
बरिस पयोधर धार।
दुर पथ गमन कठिन अभिसार ॥
जमुन भयाउनि नीर।
आरति धसति पाउति नहि तीर ॥
बिजुरी तरंग डराइ।
तौं भल कर जौं पलटि घर जाइ ॥
झाँखथि देव बनमाली।
एहि निसि कोने परि आउति गोयाली ॥
भनइ विद्यापति बानी।
तोहहु तह कान्ह नारी सयानी ॥

न० गु० तालपत्र २६५

शब्दार्थ—साजलि—सजी; आरति—अनुराग के प्राबल्य से: धसति—कूदती है; झाँखथि—शोक करते हैं; तोहहु तह—तुमसे भी।

अनुवाद—रजनी काजल से सज्जित हुई। मेघसमूह घने होकर (वारि) वर्षण कर रहे हैं। मेघ धारा-वर्षण कर रहा है. दूर रास्ते पर अभिसार के लिए जाना कष्टकर है। यमुना का जल भयानक है, अनुराग के प्राबल्य से उसमें कूदी तो तीर मिलना कठिन है। बिजली के तरंग से भय होता है, यदि घर लौट जाए तो अच्छा है। देव घनमाली म्लानमुख से चिन्ता कर रहे हैं, ऐसी रात में गोपी किस प्रकार आवेगी? विद्यापति यह बात कहते हैं, हे कन्हायी, तुम्हारी अपेक्षा नारी अधिक चतुरा है।

(३३६)

निसि निसिअर भम भीम भुजंगम
गगन गरज घन मेघह[1]।
दुतर जमुन नरि से आइलि बाहु तरि
एतबाए तोहर सिनेह[2] ॥
हेरि हल हसि समूह उगय[3] ससि
बरिसओ अमिअक धार ॥
कत नहि दुरजन कत जामिक जन
परिपन्हिअ अनुरागे।
किछु न काहुक डर[4] सुनल जुवति वर
एहि परकिओ अभावे ॥

नेपाल २०५, पृ० ७३ ख, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ५२२

३३६—नगेन्द्र—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) मेह (२) एतबा तोहर नेह (३) उगत लिखा है। (४) नगेन्द्र बाबू के संस्करण में 'डर' 'भर' छप गया है। यह प्रेस की भूल मालूम होती है।

शब्दार्थ—निसिअर—निशाचर; जजून नरि—यमुना नदी ; वाहु तरि —वाहु द्वारा तैर कर; जामिकजन—जो रात्रि के प्रत्येक याम में जाग कर पहरा देता है, पहरुवा ।

अनुवाद—निशीथ में निशाचर भ्रमण कर रहें हैं, भीम भुजंगम, गगन में मेघ गरज रहा है , दुस्तर यमुना नदी, उसे बाहु द्वारा तैर कर आयी है, तुम्हारे प्रति उसका ऐसा प्रेम है। प्रेम से हँसो, सम्मुख चन्द्रमा उदित होवे, अमृत की धारा वर्षण करो। कहाँ नहीं दुर्जन हैं, कहाँ पहरेदार अनुराग के शत्रु होते हैं। युवतीश्रेष्ठा ने किसी का भी कुछ डर न गिना, इसके बाद क्या अभाव (हो सकता है ?)

(३३७)

माधव करिअ सुमुखि समधाने ।
तुअ अभिसार कएल जत सुन्दरि
कामिनि करए के आने ॥
बरिस पयोधर धरनि वारि भर
रयनि महा भय भीमा ।
तइअओ चललि धनि तुअ गुन मने गुनि
तसु साहस नहि सीमा ॥

देखि भवन भिति लिखल भुजगपति
जसु मने परम तरासे ।
से सुवदनि करे झपइत फनिमनि
विहुसि आइलि तुअ पासे ॥
निअ पहु परिहरि संतरि विखम नरि
आंगरि महाकुल गारी
तुअ अनुराग मधुर मदे मातलि
किछु न गुनल वर नारी ॥

इ रस रसिक विनोदक विन्दक
सुकवि विद्यापति गावे ।
काम पेम दुहु एक मत भए रहु
कखने की न करावे ॥

ग्रियर्सन ७ : न० गु० तालपत्र ४२१

शब्दार्थ—रयनि—रजनी; भय भीमा—भयंकर; तइअओ—तथापि; तसु—उसका; भवन भिति—घर की दीवाल लिखल—चित्रित ।

अनुवाद—माधव, सुमुखी की मनोकामना पूर्ण करना। सुन्दरी ने तुम्हारे अभिसार के लिए जितना कष्ट उठाया उतना और कौन नारी उठा सकती है ? मेघ वारि वर्षण कर रहा है, धरणी जल से पूर्ण है; रजनी भयंकर है; तथापि सुन्दरी तुम्हारा गुण मन में स्मरण कर अग्रसर हुई; उसके साहस की सीमा नहीं है। जो घर की दीवाल पर चित्रित सर्प को देख कर डर जाती है, वही सुमुखी सर्प के सिर पर के मणि को हाथ से ढाँक कर (पीछे से उसे कोई देख न ले इस डर से) सस्मित मुख से तुम्हारे पास आयी है। वह अपने स्वामी को छोड़ कर विषम नदी पार कर

और श्रेष्ठ कुल का कलंक अंगीकार कर के तुम्हारे अनुराग में मत्त होकर किसी चीज की भी गणना नहीं करती। इस रस के रसिक कुतूहली सुकवि विद्यापति गाते हैं, काम और प्रेम जब एक साथ मिल जाते हैं तो क्या नहीं करा देते हैं।

(३३८)

जलद वरिस घन दिवस अन्धार।
रयनि भरमे हम साजु अभिसार॥
आसुर करमे सफल भेल काज।
जलदहि राखल दुहु दिस लाज॥
मोयँ कि बोलब सखि अपन गेआन।
हाथिक चोरि दिवस परमान॥

मोयँ दूती मति मोर हरास।
दिवसहु के जा निअ पिया पास॥
आरति तोरि कुसुम रस[1] रंग।
अति जीवले[2] देखिअ अभिमन्द॥
दूती वचने सुमुखि भेल लाज।
दिवस अएलाहु परपुरुस समाज॥

नेपाल ६५, पृ० २४ क, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३१५

शब्दार्थ—आसुर करमे—आसुरिक काम; हरास—ह्रास।

अनुवाद—जलद घन-वर्षण कर रहा है, रात्रि के भ्रम में मैंने अभिसार की सज्जा की। आसुरिक काज सफल हुआ। दोनों दिशाओं की लज्जा मेघ ने रखी। सखि, मैं और क्या बोलूं, तुम स्वयं ही जानो, दिन-दोपहर ही हाथी चोरी हो गया। मैं दूती, मेरी मति (बुद्धि) अल्प, दिवसकाल में कौन अपने प्रियतम के पास जाता है? मदन के रंग में तुम्हारा अत्यन्त अनुराग है; देखती हूँ जीवन में मिथ्या अपवाद हुआ। सुवदनी दूती की कथा से अत्यन्त लज्जित हुई; सोचा, हाय, परपुरुष के पास दिवाभाग में आगमन किया।

(३३९)

गुरुजन कहि दुरजन सयँ वारि।
कौतुके कुन्द करसि फुल धारि[1]॥
कैतव वारि सखीजन संग।
ताहि अभिसार दूर[2] रति रंग॥

ए[3] सखि वचन करहि अवधान।
रात कि करति आरति समधान॥
अन्धकूप सम रयनि विलास।
चोरक मन जनि वसए तरास॥

हरसित होए लंकाके राए।
नागर की करति[4] नागरि पाए॥

नेपाल २५, पृ० २६ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादिः रामभद्रपुर ३२, न० गु० ३१२

---

३३८ - मन्तव्य—(१) पोथी में रम है; नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'रस' बना दिया है। नगेन्द्र बाबू ने 'जीवले' को 'जावन' कर दिया है।

३३९—रामभद्रपुर का पाठान्तर – (१) कौतुके कुटि करसि फुलधारि।

अनुवाद—गुरुजनों को कह कर दुर्जनों का निवारण करना, कौतुक से कुन्द फूल लेकर खेल करना। कैतव (छलना) से सखियों का संग छोड़कर अभिसार में जाना। (शिवनन्दन ठाकुर ने दूर शब्द की व्याख्या में लिखा है—दिनक अभिसार मे सम्भोग दूर धरि पहुँचि जाइत छैक अर्थात् उच्च श्रेणीक छैक)। हे सखि, बात सुनो, रात्रि को अनुराग का समाधान क्या होगा (आँखों और मुख से जो अनुराग फूटता रहता है वह तो दिखायी नहीं पड़ता)? रात्रि का विलास अन्धकूप के समान है, जैसे चोर का मन भय से भरा रहता है। लंका का राजा भी (दिवसाभिसार से) प्रफुल्लित होता है, नागर नागरी को पाकर कितना आनन्द करेगा!

(३४०)

आज पुनिमा तिथि जानि मोय ऐलिहु
उचित तोहर अभिसार।
देह-जोति ससि-किरन समाइति
के विभिनावए पार॥
सुन्दरि अपनहु हृदय विचारे[१]।
आँखि पसारिल जगत हम देखलि
के जग तुअ सम नारि॥

तोहें जनु[२] तिमिर हीत कए मानह
आनन तोर तिमिरारि।
सहज विरोध दूर परिहरि धनि
चल उठि जतए मुरारि॥
दूती वचन हीत कए मानल
चालक भेल पँचवान।
हरि-अभिसार चललि वर कामिनि
विद्यापति कवि भान॥

रागत पृ० ७६; न० गु० ३१०।

शब्दार्थ—ऐलिहु—आयी; समाइति—प्रवेश करेगा; विभिनावए—विभिन्न करने, पार्थक्य समझने; तोहे जनु तिमिर हीत कए मानह—तुम (अन्यान्य अभिसारिकाओं की भाँति) अन्धकार को अपना उपकारी मत मानना (क्योंकि) तुम्हारा मुख तिमिर का शत्रु है (मुखचन्द्र की ज्योति से तिमिर का नाश होता है); जतए—जहाँ।

अनुवाद—आज पूर्णिमा तिथि जान कर आयी हूँ, (आज की रात) तुम्हारे अभिसार के उपयुक्त है। तुम्हारी देह की ज्योति ज्योत्स्ना में मिल जाएगी, (उसमें और ज्योत्स्ना में) पार्थक्य कौन समझ सकता है? सुन्दरि अपने ही हृदय में विवेचना करके देखो, मैंने तो आँख पसार कर संसार को देखा है, तुम्हारे समान स्त्री जगत में कौन है? तुम अन्धकार को अपना उपकारी मत मानना, तुम्हारा मुख अन्धकार का शत्रु है। हे सुन्दरि, सहज ही विरोध-भावना को दूर करके मुरारी के पास उठ कर चलो। दूती की बात को मङ्गल माना, मदन चालक हुआ, विद्यापति कहते हैं कि रमणी-श्रेष्ठ हरि-अभिसार में चली।

३३९—मन्तव्य—(४) नगेन्द्र बाबू ने 'पूर' पढ़ा है। (क) नेपाल पोथी में स्पष्ट लिखा है 'चोरक मन जनि बसए तरास'; किन्तु नगेन्द्र बाबू ने किसी कारण से 'त' अक्षर न पढ़ कर तथा 'तरासेर' के 'र' के स्थान पर 'व' पढ़ कर पाठ माना है 'चोरक मन जनि बसए वास' एवं अर्थ किया है 'चोर के मन में जैसे घर वास करता है'; इसका कोई अर्थ नहीं होता। रामभद्रपुर पोथी में स्पष्ट पाठ है "चोरक मन जनी बसए तरास।"

३३९—रामभद्रपुर का पाठान्तर—(२) अह (३) ए सखि सुमुखि वचन अनुमान (४) करय
रातुक रति आरति समधान।"

३४०—मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) विचारि (२) जनि। नगेन्द्र बाबू की मुद्रित पुस्तक में ये दो चरण हैं।

(३५१)

गाए चरावए[1] गोकुल वास ।
गोपक[2] संगम कर परिहास ॥
अपनहु[3] गोप गरुअ की काज ।
गुपुतहि[4] वोलसि मोहि बड़ि लाज ॥

साजनि[5] बोलह कान्हु सञों मेलि ।
गोप बधू सञों जन्तिका केलि[6] ॥
गामक वसले वोलिअ गमार ।
नगरहु नागर वोलिअ असार[7] ॥

वस[8] बयान - सालि दुह गाए ।
तन्हि की विलसब नागरि पाए ॥

नेपाल १२६ पृ० ४६ क; पं ३; भनइ विद्यापतीत्यादि; रामभद्रपुर ६७; न० गु० २१८

शब्दार्थ—गोपक संगम कर परिहास—वह गोपों के साथ हँसी—मज़ाक करता है । किन्तु रामभद्रपुर के पाठ में है—गोपकसंग जन्हिक परिहास—ग्वालों के संग जिसका हास—परिहास होता है। बथालसालि—ग्वालों का घर ।

अनुवाद—गाए चराता है, गोकुल में वास करता है, ग्वालों के संग हास कौतुक करता है। स्वयं गोप है, कौन भारी काम है, मेरे संग निर्जन स्थान में बातें करता है, मुझे बड़ी लज्जा होती है। सजनि, कन्हायी के संग मिलने को कहती हो, किन्तु उसकी केलि तो गोप रमणियों के संग होती है। संसार (साधारण लोग) कहता है कि ग्राम में वास करने वाले गँवार और नगर में वास करने वाले नागर होते हैं। जो ग्वालों के घर में रहता है, गाए दूहता है, वह नागरी को पाकर क्या विलास करेगा ?

(३५२)

कुटिल विलोक तन्त नहि जान ।
मधुरहु वचने देइ नहि कान ॥
मनसिज भंगे वचन मञे जेओ ।
हृदय वुझाए वुझए नहि सेओ ॥
कि सखि करव कओन परकार ।
मिलल कन्त मोहि गोप गमार ॥

कपट गमन हमे लाउलि वेरि ।
धाहुमूल दरसन हसि हेरि ॥
कुच-युग वसन सम्भरिकहु देल ।
तइअओं न मन तन्हिक वहरि भेल ॥
विमुख होइते आवे पर उपहास ।
तन्हिक संगे कला सहवास ॥

कि कए कि करव हमे झखइत जाए ।
कह दहु अरे सखि जिवन उपाए ॥

नेपाल २३९, पृ० ८२ क; पं ३ भनइ विद्यापतीत्यादि (पृष्ठों की गणना में इस स्थान में भूल है, लिपिकर ने ८४ क के स्थान पर ८२ क लिख दिया है) न० गु० २२४ ।

पद संख्या ३५१—रामभद्रपुर का *पाठान्तर*—(१) चरावइ (२) गोपक संगे जन्हिक परिहास—यह पाठ नेपाल के पाठ से उत्कृष्टतर है। (३) अपनहु (४) गुपुते। (५) दूति वोलसि कान्हु सञों केलि (६) मेलि (७) सँसार (नगेन्द्र बाबू ने 'सँसार' पाठ बैठाया है) (८) वसति बयान झालि दुह गाए। तेँ कि विलसब नागरि पाए ॥

नेपाल पोथी के 'भनइ विद्यापतीत्यादि' के स्थान पर रामभद्रपुर की पोथी में है—

"आदि अन्त दुहु देलक गारि ।
विद्यापति भन बुझल मुरारि ॥"

अनुवाद—गुरुजनों को कह कर दुर्जनों का निवारण करना, कौतुक से कुन्द फूल लेकर खेल करना। कैतव (छलना) से सखियों का संग छोड़कर अभिसार में जाना। (शिवनन्दन ठाकुर ने दूर शब्द की व्याख्या में लिखा है—दिनक अभिसार मे सम्भोग दूर धरि पहुँचि जाइत छैक अर्थात् उच्च श्रेणीक छैक)। हे सखि, बात सुनो, रात्रि को अनुराग का समाधान क्या होगा (आँखों और मुख से जो अनुराग फूटता रहता है वह तो दिखायी नहीं पड़ता)? रात्रि का विलास अन्धकूप के समान है, जैसे चोर का मन भय से भरा रहता है। लंका का राजा भी (दिवसाभिसार से) प्रफुल्लित होता है, नागर नागरी को पाकर कितना आनन्द करेगा!

(३४०)

आज पुनिमा तिथि जानि मोय ऐलिहु
उचित तोहर अभिसार।
देह-जोति ससि-किरन समाइति
के विभिनावए पार॥
सुन्दरि अपनहु हृदय विचारे[1]।
आँखि पसारिल जगत हम देखलि
के जग तुअ सम नारि॥
तोहें जनु[2] तिमिर हीत कए मानह
आनन तोर तिमिरारि।
सहज विरोध दूर परिहरि धनि
चल उठि जतए मुरारि॥
दूती वचन हीत कए मानल
चालक भेल पँचवान।
हरि-अभिसार चललि वर कामिनि
विद्यापति कवि भान॥

रागत पृ० ७६; न० गु० ३१०।

शब्दार्थ—ऐलिहु—आयी; समाइति—प्रवेश करेगा; विभिनावए—विभिन्न करने, पार्थक्य समझने; तोहे जनु तिमिर हीत कए मानह—तुम (अन्यान्य अभिसारिकाओं की भाँति) अन्धकार को अपना उपकारी मत मानना (क्योंकि) तुम्हारा मुख तिमिर का शत्रु है (मुखचन्द्र की ज्योति से तिमिर का नाश होता है); जतए—जहाँ।

अनुवाद—आज पूर्णिमा तिथि जान कर आयी हूँ, (आज की रात) तुम्हारे अभिसार के उपयुक्त है। तुम्हारी देह की ज्योति ज्योत्स्ना में मिल जाएगी, (उसमें और ज्योत्स्ना में) पार्थक्य कौन समझ सकता है? सुन्दरि अपने ही हृदय में विवेचना करके देखो, मैंने तो आँख पसार कर संसार को देखा है, तुम्हारे समान स्त्री जगत में कौन है? तुम अन्धकार को अपना उपकारी मत मानना, तुम्हारा मुख अन्धकार का शत्रु है। हे सुन्दरि, सहज ही विरोध-भावना को दूर करके मुरारी के पास उठ कर चलो। दूती की बात को मङ्गल माना, मदन चालक हुआ, विद्यापति कहते हैं कि रमणी-श्रेष्ठ हरि-अभिसार में चली।

३३८—*मन्तव्य*—(४) नगेन्द्र बाबू ने 'पूर' पढ़ा है। (क) नेपाल पोथी में स्पष्ट लिखा है 'चोरक मन जनि बसए तरास'; किन्तु नगेन्द्र बाबू ने किसी कारण से 'त' अक्षर न पढ़ कर तथा 'तरासेर' के 'र' के स्थान पर 'व' पढ़ कर पाठ माना है 'चोरक मन जनि बसए वास' एवं अर्थ किया है 'चोर के मन में जैसे घर वास करता है'; इसका कोई अर्थ नहीं होता। रामभद्रपुर पोथी में स्पष्ट पाठ है "चोरक मन जनों बसए तरास।"

३३९—रामभद्रपुर का *पाठान्तर*—(२) अह (३) ए सखि सुमुखि वचन अनुमान (४) करय रातुक रति आरति समधान।"

३४०—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) विचारि (२) जनि। नगेन्द्र बाबू की मुद्रित पुस्तक में ये दो चरण हैं।

(३४१)

गगन मगन होअ तारा ।
तइअओ न कान्ह तेजय अभिसारा ॥
आपना सरवस लाथे ।
आनक बोलि लुड़िअ दुहु हाथे ॥
टुटल गृम मोति हारा ।
बेकत भेल अछ नख-खत धारा ॥
नहि नहि नहि पए भाखे ।
तइअओ कोटि जतन कर लाखे ॥

भनइ विद्यापति बानी ।
एहि तीनहु मह दूती सयानी ॥

न० गु० ३२० (तालपत्र)

शब्दार्थ—तइअओ—तथापि ; लाखे—छलना ; लुड़िअ—लोटे ; तीनुहु मह—तीनों के बीच ।

अनुवाद—सब तारागण आकाश में मग्न हुए, तब भी कान्ह अभिसार—शय्या का परित्याग नहीं करता—अर्थात् भोर होने पर भी कान्ह राधा को छोड़ते नहीं। छल-पूर्वक दूसरे के सर्वस्व को अपना कह कर दोनों हाथों से लुटाता है। गला के मोती का हार टूट गया, नखक्षत की धारा प्रकाशित हुई। राधा ना, ना, ना, कहती है परन्तु लाख आदर भी करती है। विद्यापति यह बात कहते हैं कि इन तीनों में (नायक, नायिका, और दूती में) दूती ही चतुरा है। (प्रातःकाल होते देख कर दूती पहले ही घर लौट गयी है)।

(३४२)

परक विलासिनि तुअ अनुबन्ध ।
आनलि कत न वचन कए धन्ध ॥
कोने परि जइति निअ मन्दिर रामा ।
अतिमय चिन्ता भेलि एहि ठामा ॥
निकटहु बाहर डरे न निहार ।
जतने आनलि एत दुर अभिसार ॥
तिला एकओ जब महघ समाज ।
बहलि विभावरि मने नहि लाज ॥
तोहर मनोरथ तन्हिक परान ।
नागर से जो हिताहित जान ॥
नखत मलिन बेकताएत विहान ।
पथ संचरइत लखतइ के आन ॥
पास पिसुन वस कि करति लाथ ।
कोने परि सन्तरति गुरुजन हाथ ॥
भनइ विद्यापति तखनुक भान ।
आदरि आनि न खण्डिअ मान ॥

न० गु० २६२ तालपत्र ।

शब्दार्थ—अनुबन्ध—आग्रह से ; कोने परि—किस प्रकार ; समाज—मिलन ; लखतइ—देखेगा ; सन्तरति—पार कराऊँ ।

अनुवाद—तुम्हारे आग्रह से दूसरे की रमणी कितने कौशल से लायी हूँ। किस प्रकार सुन्दरी अपने घर जायगी, इस विषय में बड़ी चिन्ता होती है। (घर घर) निकट भी वह डर के मारे बाहर नहीं देखती है उतनी दूर अभिसार में इसको मैं, यत्न से लायी हूँ। जिसके साथ एक क्षण का अवस्थान भी महँगा है, उसके साथ सारी रात रहे, उस पर भी मन में लज्जा नहीं होती अर्थात उसको कभी भी नहीं छोड़ते, इससे तुमको लज्जा नहीं होती।

तुम्हारी इच्छा, उसके प्राण, तुमसे मिलने की इच्छा होती है तो उसके प्राणों की आशंका होती है। जिसे मङ्गलामङ्गल का ज्ञान हो वही नागर है। प्रभात मलिन तारिकाओं को व्यक्त कर रहा है, पथ में गमन करते कौन देखेगा ? दुष्ट लोग निकट ही वास करते हैं, क्या छल करेगी ? किस प्रकार गुरुजनों के हाथ से छुटकारा होगा ? विद्यापति उस समय की बात कहते हैं, आदर करके ले आयी हुई नायिका का सम्मान खण्डित मत करना।

(३४३)

अरुन किरन किछु अम्बर देल।
दीपक सिखा मलिन भए गेल॥
हठ तज माधव जएवा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सिनेह॥
दुरजन जाएत परिजन कान।
सगर चतुरमन होएत मलान॥
भमर कुसुम रमि न रह अगोरि।
केओ नहि वेकत करए निअ चोरि॥
अपनयँ धन हे धनिक धर गोए।
परक रतन परकट कर काए॥
फाब चोरि जौं चेतन चोर।
जागि जाए पुर परिजन मोर॥

भनइ विद्यापति सखि कह सार।
से जीवन जे पर उपकार॥

न० गु० २१६ (तालपत्र)।

शब्दार्थ—अम्बर—आकाश ; जइया देह—जाने दो ; सगर—सकल ; होएत मलान—म्लान होगा ; धर गोए—छिपा कर रखता है ; परकट—प्रकट ; फाब—शोभा पाता है।

अनुवाद—आकाश में सूर्य ने कुछ किरणें दीं। दीप की शिखा म्लान हो गयी। माधव, हठ छोड़ो, जाने दो, गुप्त स्नेह छिपा कर ही रखना उचित है। दुर्जनों के द्वारा परिजनों के कान में जाएगा, सारी चतुरता नष्ट हो जाएगी। भ्रमर कुसुम का रमण करने के बाद उसे अगोर कर नहीं रहता है; कोई अपनी की हुई चोरी प्रकाशित नहीं करता। अपना धन धनी छिपा कर रखता है, दूसरे का रत्न क्या कोई व्यक्त करता है ? यदि चोर चतुर होता है तो (उसकी) चोरी शोभा पाती है, मेरे घर परिजन जाग उठेंगे। विद्यापति कहते हैं, सखी सार बात कह रही है, वही जीवन है जो दूसरे के उपकार में लगता है।

(३४४)

भौंह लता बड़ देखिअ कठोर।
अञ्जने आँजि हासि गुन जोर॥
सायक तीख कटाख अति चोख।
व्याध मदन वधइ बड़ दोख॥
सुन्दरि सुनह वचन मन लाए।
मदन हाथ सँहि लेह छड़ाय॥
सहए के पार काम परहार।
कत अभिमव हो कत परकार॥

एहि जग तिनिहु विमल जस लेह।
कुचजुग सम्भु सरन मोहि देह॥

नेपाल २२३, पृ० ८० क, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० १२१।

(३४१)

गगन मगन होअ तारा।
तइअओ न कान्ह तेजय अभिसारा॥
आपना सरवस लाथे।
आनक बोलि लुड़िअ दुहु हाथे॥
टुटल गृम मोति हारा।
बेकत भेल अछ नख-खत धारा॥
नहि नहि नहि पए भाखे।
तइअओ कोटि जतन कर लाखे॥

भनइ विद्यापति वानी।
एहि तीनहु मह दूती सयानी॥

न० गु० ३२० (तालपत्र)

शब्दार्थ—तइअओ—तथापि ; लाखे—छलना ; लुड़िअ—लोटे ; तीनुहु मह—तीनों के बीच।

अनुवाद—सब तारागण आकाश में मग्न हुए, तब भी कान्ह अभिसार—शय्या का परित्याग नहीं करता—अर्थात् भोर होने पर भी कान्ह राधा को छोड़ते नहीं। छल-पूर्वक दूसरे के सर्वस्व को अपना कह कर दोनों हाथों से लुटाता है। गला के मोती का हार टूट गया, नखक्षत की धारा प्रकाशित हुई। राधा ना, ना, ना, कहती है परन्तु लाख आदर भी करती है। विद्यापति यह बात कहते हैं कि इन तीनों में (नायक, नायिका, और दूती में) दूती ही चतुरा है। (प्रातःकाल होते देख कर दूती पहले ही घर लौट गयी है)।

(३४२)

परक विलासिनि तुअ अनुबन्ध।
आनलि कत न वचन कए धन्ध॥
कोने परि जइति निअ मन्दिर रामा।
अतिमय चिन्ता भेलि एहि ठामा॥
निकटहु बाहर डरे न निहार।
जतने आनलि एत दुर अभिसार॥
मिला एकजा सब सहय समाज।
बहलि विभावरि मने नहि लाज॥
तोहर मनोरथ तन्हिक परान।
नागर से जो हिताहित जान॥
नखत मलिन बेकताएत विहान।
पथ संचरइत लखतइ के आन॥
पास पिसुन बस कि करति लाथ।
कोने परि सन्तरति गुरुजन हाथ॥
भनइ विद्यापति तखनुक भान।
आदरि आनि न खण्डिअ मान॥

न० गु० २६२ तालपत्र।

शब्दार्थ—अनुबन्ध—आग्रह से ; कोने परि—किस प्रकार ; समाज—मिलन ; लखतइ—देखेगा ; सन्तरति—[illegible]।

अनुवाद—तुम्हारे आग्रह से दूसरे की रमणी कितने कौशल से लायी हूँ। किस प्रकार सुन्दरी अपने घर जायगी, इस विषय में बड़ी चिन्ता होती है। (घर पर) निकट भी वह डर के मारे बाहर नहीं देखती है उतनी दूर अभिसार में उसको इस ढंग से लायी हूँ। जिसके साथ क्षण भर का अवस्थान भी महँगा है, उसके साथ सारी रात बिताई, तब पर भी मन में लज्जा नहीं होती अर्थात उसको अभी भी नहीं छोड़ते, इससे तुमको लज्जा नहीं होती।

तुम्हारी इच्छा, उसके प्राण, तुमसे मिलने की इच्छा होती है तो उसके प्राणों की आशंका होती है। जिसे मङ्गलामङ्गल का ज्ञान हो वही नागर है। प्रभात मलिन तारिकाओं को व्यक्त कर रहा है, पथ में गमन करते कौन देखेगा? दुष्ट लोग निकट ही वास करते हैं, क्या छल करेगी? किस प्रकार गुरुजनों के हाथ से छुटकारा होगा? विद्यापति उस समय की बात कहते हैं, आदर करके ले आयी हुई नायिका का सम्मान खण्डित मत करना।

(३४३)

अरुन किरन किछु अम्बर देल।
दीपक सिखा मलिन भए गेल॥
हठ तज माधव जएवा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सिनेह॥
दुरजन जाएत परिजन कान।
सगर चतुरमन होएत मलान॥
भमर कुसुम रमि न रह अगोरि।
केओ नहि वेकत करए निअ चोरि॥
अपनयँ धन हे धनिक धर गोए।
परक रतन परकट कर काए॥
फाव चोरि जौं चेतन चोर।
जागि जाए पुर परिजन मोर॥

भनइ विद्यापति सखि कह सार।
से जीवन जे पर उपकार॥

न० गु० २१६ (तालपत्र)।

शब्दार्थ—अम्बर—आकाश; जइवा देह—जाने दो; सगर—सकल; होएत मलान—म्लान होगा; धर गोए—छिपा कर रखता है; परकट—प्रकट; फाव—शोभा पाता है।

अनुवाद—आकाश में सूर्य ने कुछ किरणें दीं। दीप की शिखा म्लान हो गयी। माधव, हठ छोड़ो, जाने दो, गुप्त स्नेह छिपा कर ही रखना उचित है। दुर्जनों के द्वारा परिजनों के कान में जाएगा, सारी चतुरता नष्ट हो जाएगी। भ्रमर कुसुम का रमण करने के बाद उसे अगोर कर नहीं रहता है; कोई अपनी की हुई चोरी प्रकाशित नहीं करता। अपना धन धनी छिपा कर रखता है, दूसरे का रत्न क्या कोई व्यक्त करता है? यदि चोर चतुर होता है तो (उसकी) चोरी शोभा पाती है, मेरे घर परिजन जाग उठेंगे। विद्यापति कहते हैं, सखी सार बात कह रही है, वही जीवन है जो दूसरे के उपकार में लगता है।

(३४४)

भौंह लता बड़ देखिअ कठोर।
अञ्जने आँजि हासि गुन जोर॥
सायक तीख कटाख अति चोख।
व्याध मदन वधइ बड़ दोख॥
सुन्दरि सुनह वचन मन लाए।
मदन हाथ मोहि लेह छड़ाय॥
सहए के पार काम परहार।
कत अभिभव हो कत परकार॥

एहि जग तिनिहु विमल जस लेह।
कुचजुग सम्भु सरन मोहि देह॥

नेपाल २२३, पृ० ८० क, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० १२१।

शब्दार्थ—भौंह—भ्रू ; आँजि—रंजित करके ; चोख—तीक्ष्ण ; दोख—दोष ।

अनुवाद—(नायक की उक्ति)—भ्रूलता को विशेष कठोर देख रहा हूँ, काजल से रंजित करके हँस के गुन (डोरी) जोड़ा गया है। धनुष से अति तीक्ष्ण कटाक्ष—तीर (सन्धान करके) व्याध—मदन (मुझे) मार रहा है, (यह) बड़ा अपराध है।
सुन्दरि, मन देकर मेरी बात सुनो। मदन के हाथ से मुझे छुड़ा लो। काम का प्रहार कौन सह सकता है, किसी की भी पराजय हो, इसका प्रतिकार क्या है? इन तीनों जगत में विमल यश ग्रहण करो, कुचरूपी शम्भु की शरण मुझे दो।

(३४५)

की कान्ह निरेखह भौंह विभंग।
धनु मोहि सोंपि गेल अपन अनंग॥
कञने काने गढ़ल कुचकुम्भ।
भगइते मनत्र देइते परिरम्भ॥
चतुर सखीजन सारथि लेह।
आसेप मोहि बालक ससिरेह॥
राहु तरास चान्द सञों आनि।
अधर सुधा मनमथे धरु जानि॥
जिवजञों राखञों रहञों सुगोधि।
पिवि जनु हलह लागति मोरि चोरि॥
कैतव करथि कलावति नारि।
गुणगाहक पहु बुझथि विचारि।

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल २५३, पृ० ९२ क, पं १।

शब्दार्थ—भौंह विभंग—भ्रू की शोभा। कञने—सोने से। भगइते—टूट जाएगा। पिवि जनु हलह—पान करके फिर फेंकना मत।

अनुवाद—कान्ह, तुम भ्रू की शोभा क्या देख रहे हो? अनंग ने स्वयं मुझको (भ्रूरूपी) धनुष समर्पण किया है। काम ने सोने से कुचकुम्भ का निर्माण किया है, आलिङ्गन देते समय डर होता है कि कहीं टूट न जाए। चतुर सखियाँ सारथी हो गयी हैं (आसेप मोहि बालक ससिरेह—इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं होता)। मन्मथ ने राहु के डर से चाँद के गले से सुधा लाकर अधरों में रखा है। अपने जीवन के समान यत्न करके रखने से मुग्ध तुम्हारे काम होगी। तुम (इसको अधर-सुधा) पान करके फेंकना मत; ऐसा करने से मुझ पर चोरी का कलंक होगा। कलावती नारी छलना कर रही है; गुण-ग्राहक प्रभु विचार करके देखेंगे।

(३४६)

सगर सँसारक सारे।
अछए सुरत रस हमर पसारे॥
छुइ जनु हलह कन्हाइ।
आरति मान न हलिय नड़ाइ॥

दुरहि रहओ मोरि सेवा।
पहिल पढ़ओंक उधारि न देवा ॥
हृदय हार मोर देखी।
लोभे निकट नहि होएव विसेखी ॥

मिलत उचित परिपाटी।
मधथ मनोज घरहि घर साटी।
विद्यापति कह नारी।
हरिसयँ कैसन रौक उधारी ॥

नेपाल ६६, पृ-२५ ख, पं ४. न० गु० २२२।

शब्दार्थ—सगर—सकल ; पसारे—दूकान में ; छुइ जनु हलह—छू मत देना ; आरति—प्रार्थना। न हलिअ नड़ाइ—फेंक मत देना ; नष्ट मत करना (नगेन्द्र बाबू ने आरति शब्द का अर्थ आर्त्ति लगा कर कहा है—"आर्त्तिवश मेरा गौरव फेंक मत देना (नष्ट मत करना) प्रार्थना करती हूँ कि मेरा सम्मान नष्ट मत करना—यह अर्थ अधिक संगत नहीं मालूम पड़ता। पहिल—प्रथम। रौक उधारी—नक्द और उधार।

अनुवाद—सकल संसार का सार मेरी दूकान में है। देखना कन्हायी, छूना मत। प्रार्थना करती हूँ कि मेरा सम्मान नष्ट मत करना। मेरी सेवा अर्थात् नमस्कार दूर ही से स्वीकार करना, प्रथम विक्रय (द्रव्य) उधार न दूँगी। मेरे वक्ष पर हार देख कर विशेष लोभवश निकट मत आना। जो उचित है वह अच्छे कामों से ही पावोगे। मदन मध्यस्थ होकर घर घर शास्ति देता है। विद्यापति कहते हैं, हे नारी, हरि के साथ उधार और नक्द की क्या बात ?

(३४७)

कुंज-भवन सँ चलिभेलि हे
रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बसु माधव हे
जनु कर बटवारी ॥
छाड़ कन्हैया मोर आँचर हे
फाटत नव सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे
जनु करिअ उधारी ॥

सङ्गक सखि अगुआइलि रे
हम एकसर नारी।
दामिनि आय तुलाइलि हे
एक राति अन्धारी ॥
भनहि विद्यापति गाओल हे
सुनु गुनमति नारी।
हरिक संगे किछु डर नहि हे
तुहे परम गमारी ॥

ग्रियर्सन २१, न० गु० १२३।

शब्दार्थ—रोकल—छेका ; बसु—रहकर ; जनु—मत ; तुलाइलि—बढ़ाया।

अनुवाद कुंजभवन से निकल कर बाहर आते ही गिरधारी ने रास्ता रोक लिया। हे माधव, एक ही नगर में वास करते हो, इस प्रकार बटमारी मत करो। कन्हायी, मेरा आँचल छोड़ दो, नयी साड़ी फट जाएगी। सारा संसार तुम्हारे अपयश से भर गया (मुझे) विवस्त्रा मत करना। साथ की सखियाँ आगे चली गयीं, मैं अकेली रमणी, एक तो अन्धेरी रात, दूसरे दामिनी और भी अन्धकार बढ़ा देती है। विद्यापति गाकर कहते हैं, हे गुणमति रमणी, तुम परम मूर्खा हो, हरि के साथ कुछ भय नहीं है।

पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने ग्रियर्सन का पाठ अनेक स्थलों पर परिवर्तित कर दिया है। यथा "कुंजभवन सञे निकसलिरे" 'अन्धारी' के स्थान पर 'अँधारी' 'तुहे' की जगह तोंह।

(३४८)

पहिल पसार संसार सार रस
परहोंक पहिल तोहार हे।
हठे आँचर मोर फेरि न हलब रसें
रस भए जाएत उघार हे॥
हे हरि हे हरि आरति परिहरि
हठ न करिअ पहु बाट हे।
जेटे वेसाहल से कि वेसाइब
उचित मनोभव टाट हे॥

कंचने गढ़ल पयोधर सुन्दर
नागर जीवन अधार हे।
छुअइत रतन तुल न रह अधिक मुल
किनहि न पार गमार हे॥
भनइ विद्यापति सुनहे सुचेतनि
हरि सयं कइसन समान हे।
कपट तेजिकहु भजट जे हरि सओं
अन्त काल होअ ठाम हे॥

तालपत्र न० गु० २२१।

शब्दार्थ—पहिल पसार—प्रथम दूकान। परहोंक—प्रथम विक्रय, बोहनि। रवेँ—रउआ—आप। रसभए जाएत उघार हे—रस (वक्षस्थल) उद्घाटित हो जायगा। पहु—प्रभु। वेसाहल—बिक गया।

अनुवाद—संसार का सार रस का प्रथम बाजार; तुम्हें देने से क्या प्रथम बोहनी होगी? रवें (हे भद्रलोक, [illegible], आप) जोर करके मेरा आँचल फिरा अथवा फेंक मत दीजिएगा; रस (वक्षस्थल) उद्घाटित हो जाएगा। हे हरि, हे हरि मेरी आर्त्ति [illegible] करके रास्ते में जोर मत करना। मदन के हाथ से उचित कार्य ही होता है—जो बिक गया है वह किस प्रकार फिर बिकी होगा। सोने का गढ़ा हुआ सुन्दर पयोधर नागर के जीवन का आधार-स्वरूप। वह रत्न के समान। छूने से अधिक मूल्य नहीं रहता। उसे मूर्ख ग्रामीण लोग खरीद नहीं सकते। विद्यापति कहते हैं, सुचेतनि सुन, हरि के समान किस प्रकार होवोगी? छलना त्याग कर हरि का भजन करो जिससे अन्तिम काल में उनके निकट स्थान पावो।

(३४९)

[illegible] मोहि पारे।
देब मैं [illegible] हारे, कन्हैया॥
सखि सब तेजि चलि गेली।
न जानु कोन पथ भेली, कन्हैया॥

हम न जाएब तुअ पासे।
जाएब ऊघट घाटे, कन्हैया॥
विद्यापति एहो भाने।
गुंजरी भजु भगवाने, कन्हैया॥

ग्रियर्सन २, न० गु० १२४।

शब्दार्थ—देब मैं—मैं दूँगी। ऊघट घाटे—अघट पर। गुंजरी—ग्रियर्सन की राय में, रमणी (damsel)। [illegible] उसका अर्थ किया है गूँजकर (भगवान का भजन करो)—परन्तु इस अर्थ की पूर्ण [illegible] नहीं होती।

अनुवाद—हे कन्हायी, हाथ धर कर मुझे पार कर दो, मैं (तुम्हें) अपूर्व हार दूँगी। हे कन्हायी, मेरी सखियाँ मेरा त्याग करके चली गयीं, न जाने किस रास्ते चली गयीं। कन्हायी, मैं तुम्हारे पास न जाऊँगी अघट घाट पर जाऊँगी। विद्यापति यह कहते हैं, हे रमणी, भगवान कन्हायी का भजन करो।

(३५०)

निधन काँ जञों धन किछु हो
करए चाह उछाह।
सिआर का जञों सींग जनमए
गिरि उपारव चाह॥

दूति बुझलि तोहरि मती।
छाड़रे चन्दा भरइते बुलह
कि तरह ताहे विपती॥

पिपड़ी का जञो पाँखि जनमए
अनल करए झपान।
छोटा पानी चह चह कर पोठी
के नहि जान॥

जइओ जकर मूह पेच सन
दूसए चाहए आन।
हम तह के विसहु आगर
टोँढ़ँलु का थिक भान॥
झरक पानी डोभक कोंई
गरव उपज जाहि।
भन विद्यापति दहक कमल
दूसए चाहए ताहि॥

तालपत्र न० गु० २.६।

शब्दार्थ—निधनका—गरीब को। उछाह—उत्साह। सियार—शृगाल। गिरि उपारव चाह—पहाड़ को उखाड़ कर फेंक देना चाहता है। छाड़रे चन्दा भरइते बुलह—चन्द्रमा यदि निर्दिष्ट भ्रमण का त्याग कर दे। विपती—विपत्ति। पोठी—पोठिया मछली। पेच सन—पेच (?) के समान। विसहु आगर—विष में श्रेष्ठ। टोढ़लु—ढोढ़ा साँप। डोभक—डोबा का! कोंई—कुमुदिनी।

अनुवाद—गरीब को यदि कुछ धन हो जाए तो उसके उत्साह की कोई सीमा नहीं रहती। शृगाल को यदि सींग उपज जाए तो वह पहाड़ को उखाड़ कर फेंक देना चाहता है। दूति, तुम्हारी बुद्धि समझती हूँ। चन्द्रमा यदि अपना निर्दिष्ट भ्रमण त्याग भी दे तो क्या इससे उसे राहु से छुटकारा मिल जाएगा? चींटी को यदि पंख हो जाए तो वह आग में कूद पड़ती है; पोठिया मछली थोड़े पानी में फर फर करती है, यह कौन नहीं जानता? जिसका मुख जितना ही अधिक पेच (?) के समान रहता है वह उतना ही अधिक दूसरों को दूसना चाहता है। ढोढ़ा साँप सोचता है—'मुझे अधिक और किसको विष है? विद्यापति कहते हैं कि डोबा के जल में उत्पन्न कुमुदिन गर्व्वित होती है और दह में उत्पन्न कमल को दोष देना चाहती है।

(३४८)

पहिल पसार संसार सार रस
परहेंक पहिल तोहार हे।
हठे आँचर मोर फेरि न हलब रसें
रस भए जाएत उघार हे॥
हे हरि हे हरि आरति परिहरि
हठ न करिअ पहु बाट हे।
जेटे बेसाहल से कि बेसाहब
उचित मनोभव टाट हे॥

कंचने गढ़ल पयोधर सुन्दर
नागर जीवन अधार हे।
छुअइत रतन तुल न रह अधिक मुल
किनहि न पार गमार हे॥
भनइ विद्यापति सुनहे सुचेतनि
हरि सयं कइसन समान हे।
कपट तेजिकहु भजट जे हरि सञों
अन्त काल होअ ठाम हे॥

तालपत्र न० तु० २२१।

शब्दार्थ—पहिल पसार—प्रथम दूकान। परहेंक—प्रथम विक्रय, बोहनि। रसें—रउआ—आप। रसभए जाएत उघार हे—रस (वक्षस्थल) उद्‌घाटित हो जायगा। पहु—प्रभु। बेसाहल—बिक गया।

अनुवाद—संसार का सार रस का प्रथम बाजार; तुम्हें देने से क्या प्रथम बोहनी होगी? रसें (हे भद्रलोक, महाजनसुन्दर, आप) जोर करके मेरा आँचल फिरा अथवा फेंक मत दीजिएगा; रस (वक्षस्थल) उद्‌घाटित हो जाएगा। हे हरि, हे हरि मेरी आर्त्ति अस्वीकार करके रास्ते में जोर मत करना। मदन के हाथ से उचित कार्य ही होता है—जो बिक गया है वह किस प्रकार फिर बिक्री होगा। सोने का गढ़ा हुआ सुन्दर पयोधर नागर के जीवन का आधार-स्वरूप। यह रत्न के समान। छूने से अधिक मूल्य नहीं रहता। उसे मूर्ख ग्रामीण लोग खरीद नहीं सकते। विद्यापति कहते हैं, सुचेतनि सुन, हरि के समान किस प्रकार होवोगी? छलना त्याग कर हरि का भजन करो जिससे अन्तिम काल में उनके निकट स्थान पावो।

अनुवाद—हे कन्हायी, हाथ धर कर मुझे पार कर दो, मैं (तुम्हें) अपूर्व हार दूँगी। हे कन्हायी, मेरी सखियाँ मेरा त्याग करके चली गयीं, न जाने किस रास्ते चली गयीं। कन्हायी, मैं तुम्हारे पास न जाऊँगी, अघट घाट पर जाऊँगी। विद्यापति यह कहते हैं, हे रमणी, भगवान कन्हायी का भजन करो।

(३५०)

निधन काँ जवों धन किछु हो
करए चाह उछाह।
सिआर का जवों सींग जनमए
गिरि उपारब चाह॥

दूति बुझलि तोहरि मती।
छाड़रे चन्दा भरइते बुलह
कि तरह् ताहे विपती॥

पिपड़ी का जवो पाँखि जनमए
अनल करए झपान।
छोटा पानी चह चह कर पोठी
के नहि जान॥

जइओ जकर मूह पेच सन
दूसए चाहए आन।
हम तह के विसहु आगर
टोढ़ँलु का थिक भान॥
झरक पानी डोभक कोई
गरब उपज जाहि।
भन विद्यापति दहक कमल
दूसए चाहए ताहि॥

तालपत्र न० गु० २.६।

शब्दार्थ—निधनका—गरीब को। उछाह—उत्साह। सियार—श्रृगाल। गिरि उपारब चाह—पहाड़ को उखाड़ कर फेंक देना चाहता है। छाड़रे चन्दा भरइते बुलह—चन्द्रमा यदि निर्दिष्ट भ्रमण का त्याग कर दे। विपती—विपत्ति। पोठी—पोठिया मछली। पेच सन—पेच (?) के समान। विसहु आगर—विष में श्रेष्ठ। टोढ़लु—टोढ़ा साँप। डोभक—डोवा का। कोई—कुमुदिनी।

अनुवाद—गरीब को यदि कुछ धन हो जाए तो उसके उत्साह की कोई सीमा नहीं रहती। श्रृगाल को यदि सींग उपज जाए तो वह पहाड़ को उखाड़ कर फेंक देना चाहता है। दूति, तुम्हारी बुद्धि समझती हूँ। चन्द्रमा यदि अपना निर्दिष्ट भ्रमण त्याग भी दे तो क्या इससे उसे राहु से छुटकारा मिल जाएगा? चींटी को यदि पंख हो जाए तो वह आग में कूद पड़ती है; पोठिया मछली थोड़े पानी में फर फर करती है, यह कौन नहीं जानता? जिसका मुख जितना ही अधिक पेच (?) के समान रहता है वह उतना ही अधिक दूसरों को दूसना चाहता है। टोढ़ा साँप सोचता है—'मुझे अधिक और किसको विष है? विद्यापति कहते हैं कि डोवा के जल में उत्पन्न कुमुदिन गर्वित होती है और दह में उत्पन्न कमल को दोष देना चाहती है।

(३५१)

गाए चराबए[1] गोकुल बास ।
गोपह[2] संगम कर परिहास ॥
अपनहु[3] गोप गरुअ की काज ।
गुपुनहि[4] बोलसि मोहि बड़ि लाज ॥

साजनि[5] बोलह कान्हु सञों मेलि ।
गोप वधू सञों जन्तिका केलि[6] ॥
गामक वसले बोलिअ गमार ।
नगरहु नागर बोलिअ असार[7] ॥

बस[8] बथान - सालि दुह गाए ।
तन्हि की बिलसब नागरि पाए ॥

नेपाल १२१ पृ० ४६ क; पं ३; भनइ विद्यापतीत्यादि; रामभद्रपुर ६७; न० गु० २१८

शब्दार्थ—गोपह संगम कर परिहास—वह गोपों के साथ हँसी—मजाक करता है । किन्तु रामभद्रपुर के पाठ में है—गोपहसंग जन्हिक परिहास—ग्वालों के संग जिसका हास—परिहास होता है। बथानसालि—ग्वालों का घर ।

अनुवाद—गाय चराता है, गोकुल में वास करता है, ग्वालों के संग हास कौतुक करता है । स्वयं गोप है, कौन भारी काम है, मेरे संग निर्जन स्थान में बातें करता है, मुझे बड़ी लज्जा होती है । सजनि, कन्हायी के संग मिलने को कहती हो, किन्तु उसकी केलि तो गोप रमणियों के संग होती है । संसार (साधारण लोग) कहता है कि ग्राम में वास करने वाले गँवार और नगर में वास करने वाले नागर होते हैं । जो ग्वालों के घर में रहता है, गाए दूहता है, वह नागरी को पाकर क्या विलास करेगा ?

(३५२)

कुटिल विलोकन नन्न नहि जान ।
[illegible] वचने भेद नहि कान ॥
[illegible] संगे नयन मनो जेओं ।
[illegible] नहि [illegible] ॥
[illegible] परकार ।
[illegible] गमार ॥

कपट गमन हमे लाउलि बेरि ।
बाहुमूल दरसन हसि हेरि ॥
कुच-युग बसन सम्भरिकहु देल ।
तइअओं न मन तन्हिक बहरि भेल ॥
विमुख होइते आवे पर उपहास ।
तन्हिक संगे कला सहवास ॥

कि कए कि कय हमे [illegible] जाए ।
[illegible] अरे नहि जिवन उपाए ॥

शब्दार्थ—तन्त—तत्त्व; भंगे—भंगी, इंगित; तइश्रश्रो—तथापि; न मने. बाहिर बहरि भेल—उसका मन बाहर नहीं हुआ—मन की इच्छा कार्य से प्रकाश न पा सका। झखइते—अफसोस करते।

अनुवाद—बंकिम कटाक्ष का तत्त्व नहीं जानता, मधुर वचन पर कान नहीं देता। मदन की भंगिमा से जो मैंने मन का भाव समझाया (वह) समझ नहीं सका। सखि, क्या करें, कौन उपाय है, गँवार ग्वाल मेरा कान्ह मिला। समय बूझ कर मैंने चलकर जाने का छल किया; हँस कर बाहुमूल दिखलाया, तथापि उसका हृदय प्रकाश में न आया। अब विमुख होने से, दूसरे लोग हँसी उड़ावेंगे, उसके साथ सहवास में कला अर्थात् रस क्या है ? क्या करके क्या करें, इसी सोच-विचार में मेरा समय कट रहा है, हे सखि, मेरे जीवन का क्या उपाय है, बोल दो।

(३५३)

गुन अगुन सम कय मानए
भेद न जानए पहू।
निअ चतुरिम कत सिखाउबि
हमहु भेलिहु लहू॥

साजनि, हृदय कहवो तोहि।
जगत भरल नागर अछए
विहि छललिह मोहि॥

काम कलारस कत सिखाउबि
पुब पछिम न जान।
रभस बेरा निन्दे बेआकुल
किछु न ताहि गेआन॥

नेपाल ८०, पृ० १६ पं ४, भने विद्यापतीत्यादि न० गु० २२३

शब्दार्थ—निअ—निजे ; चतुरिम—चातुरी ; लहु—लघु, छोटा।

अनुवाद—मेरा नागर ऐसा है कि वह गुण और अवगुण को समान ही समझता है—वह पार्थक्य समझता ही नहीं है। अब स्वयं मैं कितनी छलाकला की चातुरी उसे सिखाऊँ ? मैंने अपने को छोटा बना दिया। हे सजनि, तुम्हें मन की बात कहती हूँ। जगत में इतने नागर हैं, किन्तु विधाता ने मेरे संग छलना की। कामकलारस उसको और कितना सिखाऊँ ? उसे तो पूर्व और पश्चिम का भी ज्ञान नहीं है। रभस के समय वह निद्रा से आकुल रहता है, उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है।

(३५४)

जाहि लागि गेलि हे ताहि कहाँ लइलि हे
ता पति वैरि पितु काहाँ।
अछलि हे दुख सुखे कहह अपन मुखे
भूसन गमओलह जाहाँ॥

सुन्दरि, कि कए बुझाओब कन्ते।
जन्हिका जनम होइत तो हे गेलिहे
अइलि हे तन्हिका अन्ते॥
जाहि लागि गेलाहुँ से चलि आएल
तेँ मोहि भएलाई बुकाई।
से चलि गेल ताहि लए चललाहुँ
ते पथ भेल अनेआई॥
सङ्कर-वाहन खेड़ि खेलाइते
मेदिनि वाहन आगे।
ये सब अछलि संगे से सब चलति भंगे
उबरि अएलाहुँ अछ भागे॥
जाहि दुइ खोज करइछहि सासुन्हि
से मिलु अपना संगे।
भनइ विद्यापति सुन वर जउविति
गुपुत नेह रति-रंगे॥

तालपत्र न० गु० ३२६।

अनुवाद—(ननद की उक्ति) जिसके लिए गयी थी उसे कहाँ ले आयी? उसके पति के शत्रु का पिता कहाँ है? (तू तो घड़े में पानी लाने गयी थी, जल और घड़ा कहाँ है)? जिस स्थान पर अंगराग खो आयी (वहाँ) कुच-युग में (किस प्रकार) थी, अपने मुँह से बोल। [जल का (अधि-) पति समुद्र, उसका वैरी अगस्त्य का जन्म घट से हुआ है।] सुन्दरि, कान्त को क्या करके समझाएगी? [जिसका जन्म होते ही (दिवारम्भ में ही) तू गयी थी, उसके अन्त में (दिवावसान होने पर) आयी है (प्रातःकाल घड़ा लेकर जल लाने गयी थी, सन्ध्या समय लौट कर आयी है)।

(नायिका की उक्ति) जिसके लिए गयी थी वह चला आया (जल लाने गयी थी, रास्ते में वृष्टि आ गयी)। वह चला गया, उसे लेकर चली (वृष्टि रुक गयी, कलसी में जल लेकर घर लौटी), इसी लिए रास्ते में अन्याय (विलम्ब) हुआ। एक वृष क्रीड़ा कर रहा था, सामने सर्प; (रास्ते में आते समय एक ओर वृष और दूसरी ओर एक सर्प देखा)। जो सब साथ थी (सखीगण) वे सब भाग गयी, भाग्य में था (इसीलिए) रक्षा पाकर चली आयी। जिन दोनों की खोज सासु जी कर रही हैं वे अपने संग मिल गए (घड़ा गिर कर फूट गया और मिट्टी में मिल गया, जल निरन्तर वृष्टि के जल से मिल गया)। विद्यापति कहते हैं, हे वर युवति सुन गुप्त स्नेह और रतिरंग (अनुभव हो रहा है)।

(३५५)

कुसुम तोरए गेलाहुँ जाहाँ।
भमर [illegible] [illegible] ताहाँ॥
ते सखि [illegible] जमुना तीर।
[illegible] [illegible] [illegible] चीर॥
[illegible] [illegible] [illegible] मोहि।
[illegible] [illegible] [illegible] मोहि॥
हार मनोहर बेकत भेल।
उजर उगर संसअ गेल॥
तेँ धसि मजुरे जोड़ल झाँप।
नखर गञुल हृदय काँप॥
भने विद्यापति उचित भाग।
वचन-चाटवे कपट लाग॥

तालपत्र न० गु० ३२७।

शब्दार्थ—तोरए—तोड़ने ; चीर—वस्त्र ; सरूप—स्वरूप, यथार्थ ; उजर—उज्ज्वल ; मजुरे—मयूरे ; गाड़ल—विद्ध किया।

अनुवाद—जिस स्थान पर फूल तोड़ने गयी, वहाँ भ्रमर ने अधर खण्डन किया। इसीलिए यमुना-तीर चली आयी, पवन ने हृदय का वस्त्र हरण कर लिया। हे सखि, तुमसे सत्य ही कहा है, अन्य कुछ हमसे न कहना। (वक्ष का वस्त्र हरण हो जाने से) मनोहर हार व्यक्त हुआ, वह उज्ज्वल सर्प के समान मालूम हुआ। इसीलिए मयूर ने वेग से उसे झाँप लिया, नख से विद्ध कर दिया (उससे अभी भी) हृदय कम्पित हो रहा है। विद्यापति कहते हैं, उचित भाग्य (समुचित फल हुआ है), वचन की पटुता से कपट सा मालूम होता है (संशय हो रहा है)।

(३५६)

खरि नरि-वेग भासलि नाइ।
धरए न पारथि वाल-कन्हाइ॥
ते धसि जमुना भेलहु पार।
फूटल वलआ टूटल हार॥
ए सखि ए सखि न वोल मन्द।
विरह वचने वाढ़ए दन्द॥

कुण्डल खसल जमुन माझ।
ताहि जोहइते पड़लि साँझ॥
अलक तिलक तेँ वहि गेल।
सुध सुधाकर वदन भेल॥
तटिनि तट न पाइअ वाट।
तेँ कुच गाड़ल कठिन काँट॥

भन विद्यापति निअ अवसाद।
वचन-कउसले जिनिअ वाद॥

तालपत्र न० गु० ३२६।

शब्दार्थ—खरि—खरस्रोत में ; नरि—नदी ; धरए न पारथि—धर न सके, सम्भाल न सके ; धसि—कूद कर ; जोहइते—खोजने में ; सुध सुधाकर वदन भेल—मुख शुद्ध सुधाकर के समान हो गया (चन्द्रमा में कलंक है, जल लगने से अलक—तिलक बह कर इधर उधर लग गया, उससे जो दाग पड़ा, वही कलंक के समान हुआ ; अथवा शुद्ध अर्थात् विशुद्ध, कलंक विहीन सुधाकर के समान वदन हो गया—अलक तिलक एकदम ही पुछ गया) ; कउसले—कौशल से।

अनुवाद—नदी की तेज धारा में नौका डूब गयी, बालक कन्हायी नौका सम्भाल नहीं सके। इसी लिए जल में कूद कर नदी को पार किया, वलय टूट गया, हार छितरा गया। ए सखि, ए सखि, कोई बुरी बात मत कहना। विरह की कथा से द्वन्द्व बढ़ गया। कुण्डल यमुना में गिर पड़ा, उसे खोजते खोजते सन्ध्या हो गयी। उसी कारण अलक-तिलक बह गया, मुख शुद्ध चन्द्रमा (निर्मल चन्द्रमा के समान) हो गया। तटिनी के तट पर पथ मिल ही नहीं रहा था, इसीलिए कुच में कठिन कण्टक लग गया। विद्यापति कहते हैं कि अपना पराजय (मान गया); वचन-कौशल से अपना मुकदमा जय कर लिया।

(३५७)

सखि हे कि लय बुझाएब कन्ते।
जनिका जन्म होइत हम गेलहुँ
गेलहुँ तनिकर अन्ते॥
जाहि लय गेलहुँ से चल आयल
तें तरु रहलि छपाई।
से पुनि गेल ताहि हम आनलि
तेँ हम परम अन्यायी॥
जैतहिँ नाल कमल हम तोरलि
करय चाह अवशेखे॥
कोह कोहाएल मधुकर धाएल
तेँहि अधर करु दंशे।
लेलि भरल कुम्भ तेँ उर गासलि
ससरि खसल केश पाशे।
सखि दस आगुपाछु भय चललिहि
तेँ उर्ध श्वास न वाके॥
भनहिं विद्यापति सुनु वर जौमति
ई सभ राखु मन गोई।
दिन दिन ननदि सँ प्रीति बढ़ाएब
बोलि बेकत जनु होई॥

ग्रियर्सन ३५१।

शब्दार्थ—हे सखि, किस प्रकार कान्त को समझाऊँ ? जिसका (दिवस का) जन्म (प्रभात) होते ही मैं गयी उसके (दिवस के) अन्त में (सन्ध्या को) आयी। जिसके लिए गयी थी वह आ गया। (जल लाने गयी थी, किन्तु वृष्टि आ गयी), इसीलिए वृक्ष तले माथा बचा कर खड़ी रही। वृष्टि रुकने पर जल लेकर आयी, इसमें मुझ से क्या अन्याय हुआ ? जल लाने के समय कमल का नाल तोड़ने लगी, स्नान करने की इच्छा हुई थी (अवशेख—अभिषेक, स्नान)। जिस समय पोखरे में स्नान कर रही थी, जल उछल पड़ा। उससे मधुकर (हमारी ओर) दौड़ पड़ा और उसने मेरे अधरों का दंशन कर दिया। घड़ा भर कर सिर पर ले आयी, इससे छाती में (दीर्घ) श्वास न रुक सका। केशपाश अस्तव्यस्त हो गया, दस सखियाँ आगे और पीछे चलीं—इसीलिए उनका साथ करने के लिए दौड़ना पड़ा, [illegible] हो गया। विद्यापति कहते हैं, हे वर युवति सुन, यह सब मन में छिपा कर रख। दिन-दिन ननद से प्रीति बढ़ा, जिससे गोपनीय बात व्यक्त न होने पावे।

(३५८)

माधव तोरि राही वासक सज्जा।
[illegible] मधुर चौदिस आपए काने
[illegible] लोभे परिहलि लज्जा॥

सुनिअ सुजन नामे अवधि न चुकए ठामे
जनि वन पसेरल हरी।
से तुअ गमन आसे निन्द न आवे पासे
लोचन लागल देहरी॥

नेपाल ७७, पृ ७ ख, पं २, भने विद्यापतीत्यादि, न० गु० २०६।

शब्दार्थ—सेजा—शय्या; तुअ मेरा—तुम्हारा मिलन : परिनति लजा—केवल लज्जा का ही कारण हुआ; चुकए—भूल जाना ; पसेरल—प्रवेश किया।

अनुवाद—पुष्प से सज्जित शय्या, दीप प्रदीप्त था, अगुरु चन्दन का गन्ध, जैसे जैसे तुम्हारे मिलने का समय व्यर्थ होने लगा, वैसे वैसे मदन ने उसे निपीड़ित करना आरम्भ किया। हे माधव, तुम्हारी राधा वेश-भूषा से सज्जिता है। पद शब्द सुनने के लिए चारो ओर कान देती है। उसके प्रिय-मिलन का लोभ केवल उसकी लज्जा का ही कारण हुआ। सुजन के नाम के बारे में यही सुना है कि ठीक समय पर स्थान नहीं भूल जाते हैं, जिस प्रकार वन में सिंह प्रवेश करता ही है। तुम्हारे आने की आशा से उसके पास नींद आती ही नहीं है, आँखें देहरी पर ही लगी रहती हैं।

(२५६)

ताके निवेदिअ जे मतिमान॥
जलहि गुन फल के नहि जान॥
तोरे वचने कएल परिछेद।
कौआ मुहन भनिअए वेद॥
तोहे बहुवल्लभ हमहि अजान।
तकराहुँ कुलक धरम भेलि हानि॥
कएल गतागत तोहरा लागि।
सहजहि रयनि गमाउलि जागि॥
धन्ध वन्ध सफल¹ भेज काज।
मोहे आवे तन्हि की कहिनी लाभ॥
दूतहि वचन सभहि भेल सार।
विद्यापति कह कवि कण्ठहार॥

नेपाल १११ पृ० ४० क; न० गु० २१५।

शब्दार्थ—मतिमान—बुद्धिमान ; जलहि गुन फल—जल के गुण से ही फल होता है; परिछेद—परिच्छेद ; अजानि—अज्ञानी।

अनुवाद—वह बुद्धिमान है, उससे निवेदन करना ही पड़ेगा। जल के गुण से ही फल होता है यह कौन नहीं जानता? तुम्हारा वचन मैंने सार सत्य समझ कर माना था, किन्तु काक के मुख से कहीं वेद उच्चारित होता है? तुम बहुवल्लभ और मैं मूढ़ा हूँ; उसी मूढ़ता से कुलधर्म की हानि हुई। तुम्हारे लिए आना-जाना किया, अनायास ही रात्रि जाग कर काटी। संशय के काम से ही रोध (बाधा) सफल हुआ। अब उससे और कुछ कहने से क्या लाभ होगा? विद्यापति कवि-कण्ठहार कहते हैं कि दूती की सब बातें हीं सार हुईं।

पाठान्तर—२५६—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'सकल' कर दिया है।

(३६०)

प्रथमहि कत न जतन उपजओल हे[१]
तेँ आनलि पर रामा।
बोललहु[२] आन आन परिनति भेलि
आवे परजन्तक ठामा।

माधव आबे बुझल तुअ रीति।
ए बेरि ठेले चेतन भेलहु
पुनु न करब परतीति॥

बाट हेरि रब नागरि रहलि
सून संकेत निसि जागि।
जे नहि फले निरवाहए पारिअ
से हे करिअ का लागि॥

नेपाल २४४, पृ ८८ ख, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ५१४।

शब्दार्थ—बोललहु आन—कुछ कहा; आन परिनति भेलि—अन्य परिणति हुई; परजन्तक—अवसाद; परतीति—विश्वास।

अनुवाद—पहले न जाने कितना यत्न प्रकाश किया इसीलिए पर-नारी को ले आयी। कहा कुछ और परिणति हुई कुछ और, इस प्रकार अन्त अवसाद हुआ। माधव, अब मैंने तुम्हारी रीति समझी। इस बार (ठोकर लगने से सचेत) चेतन हुआ, अब फिर प्रतीति न करूँगी। पथ देखते देखते शून्य संकेत-स्थान पर नागरी रात भर जागती रही। जिसे तुम अन्त निर्वाह नहीं कर सकते, उसे किस लिए करते हो?

(३६१)

रिपु पचसर जनि अवसर
सरासन[१] साजे।
हेरि सून पथ घटी मनोरथ
के जान कि होइति आजे॥

निफल भेलि जुवती।
हरि हरि हरि राति तेज हरि
पलटलि नहि दूती॥

साजि अभिसारा पड़ि अन्धकारा
उगि जनु जा बोरा।
आरति बेरा जवो हो मेरा
लाख कुन सुअ थोरा[१]॥

नेपाल २६४, पृ १६ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ३०१।

शब्दार्थ—आरति—प्रार्थना ; मेरा—मिलन।

अनुवाद—रिपु पंचसर (मदन) ने समय जान कर शरासन सजाया। (दयित नहीं आ रहा है) पथ शून्य देख रही हूँ ; मनोरथ (मिलन का) व्यर्थ हुआ ; क्या जाने आज क्या होगा ? युवती व्यर्थकामा हुई। हरि हरि, रात्रि को हरि को छोड़ कर दूती फिरी नहीं। अन्धकार होते ही अभिसार के लिए सज्जा की, अब कहीं सूर्य न उग जाए ! जिस समय इच्छा होती है उस समय यदि मिलन हो जाए, तो अल्प सुख भी लाखगुना प्रतीत होने लगता है।

(३६२)

तुअ विसवासे कुसुमे भरु सेज।
वसन्तक रजनी चाँदक तेज॥
मन उतकठित कतए न धाव॥
दह दिस सून नयन भमि आव।

हरि हरि हरि तुअ दरसन लागि।
नागरि रयनि गमाउलि जागि॥
सुपुरुस भए नहि करिअए रोस।
वड़ भए कपटी इ वड़ दोस॥

भनइ विद्यापति गरुबि बोल।
जे कुल राखए सेहे अमोल॥

तालपत्र न० गु०५११।

शब्दार्थ—विसवासे—विश्वास पर ; उतकठित—उत्कण्ठित ; भमि—भ्रमण करके ; अमोल—अमूल्य।

अनुवाद—तुम्हारे विश्वास पर (आशा से) कुसुमों से शय्या पूर्ण की। वसन्त की रात, उज्ज्वल चन्द्रकिरण। उत्कंठित मन कहाँ नहीं दौड़ता है ? शून्य नयन दसो दिशाओं में घूम आते हैं। हाय हाय, तुम्हारे दर्शन के लिए नागरी ने रात्रि जाग कर काटी। सुपुरुष होकर क्रोध नहीं करते। जो बड़े होकर कपटी होते हैं वे बड़े दोष के भागी होते हैं। विद्यापति गुरु (मूल्यवान) बात कहते हैं, जो कुल की रक्षा करता है अर्थात् अपने कुल के उपयुक्त कार्य करता है वही अमूल्य है।

(३६३)

की पर वचने कान्त देल कान।
की मन पलटि कलामति आन।
कि दिन दोसे दैव भेल वाम।
कवोने कारणे पिआ नहिले नाम॥

ए सखि ए सखि देहे उपदेस।
एक पुर कान्ह वस मो पति विदेस॥
आसापासे मदने करु बन्ध।
जिवइते जुवति न तेज अनुबन्ध॥

(३६५)

झाँखि झाँखि न खिन कर ततु।
भमर न रह मालति बिनु॥
ताहि तोहि रिति वाढ़ति पुनु।
टूटल वचन बोलह जनु॥

ऐह राधे धैरज धरु।
वालभु अओताह उछाह करु॥
पिसुन वचने वाढ़त रोस।
वारए न पारिअ दिवस दोस॥

सुजन वचन ट न नेहा।
हाथे न मेट पखानक रेहा॥

नेपाल २६५, पृ० ९६ क, पं ५, भने विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ४२६

शब्दार्थ—झाँखि झाँखि—शोक करके ; टूटलि—टूटा, नैराश्यजनक ; वालभु—वल्लभ ; उछाह—उत्साह ; पिसुन—दुष्टजन ; न मेट—मिटता नहीं है ; पखानक—पाषाण की रेखा।

अनुवाद—शोक कर कर के देह क्षीण मत करना। भ्रमर मालती बिना नहीं रह सकता (वह फिर आवेगा)। तुमसे सम्बन्ध और बढ़ेगा, निराशा की बात मत बोलो। हे राधे, धैर्य धरो, वल्लभ आवेंगे, उत्साह करो। दुष्ट लोगों की बात से क्रोध बढ़ता है। समय विपक्ष है, उसका निवारण किया नहीं जा सकता। सुजन की बात और प्रेम भंग नहीं होते। हाथ की पाषाण की रेखा मिटायी नहीं जाती।

(३६६)

सून संकेत निकेतन आइलि
सुमुखि विमुखी भेलि।
मन मनोरथ वाणी लागलि
रजनि निफले गेलि॥

सुन सुन हरि राही परिहरि
की फल पाओल तोहे।
उचित छाड़ि अनुचित करसि
गेले न करिअ कोहे॥

वारिस वसिल वीसव धारा
धरि जलधर कोपि।
तरुन तिमिर दिग न जानए
अहिसिर गए रोपि॥

विद्यापतीत्यादि, नेपाल ३६, पृ० १६ क, पं १।

शब्दार्थ—सून—शून्य ; वारिस—वर्षा ; वीसव धारा—विषम धारा बरसायी।

अनुवाद—सुन्दरी शून्य संकेत स्थान पर आकर विमुखी हुई। उसके मन की बात मन में ही रह गयी ; रजनी वृथा चली गयी। हे हरि, सुनो, सुनो। राधा का परित्याग करके तुमने क्या पाया? तुम उचित छोड़कर अनुचित कार्य करते हो। किस लिए (मिलन के स्थान पर) नहीं गए? वर्षा की विषमधारा पड़ी ; मानो मेघ रुष्ट हो गया हो। तरुण अन्धकार में दिशा-निर्णय नहीं हो सक रहा है ; (नायिका) साँप के सिर पर पैर रख कर चली थी।

(३६७)

बड़ेँ मनोरथेँ साजु अभिसार, पिसुन नयन वारि।
काज न सीझल तते बढ़ल, हमें अभागलि नारि॥
साजनि, हमर दिवस दोस,
गुरुअ पूरब पाप परार्भाव कओने करेव रोस॥

शब्दार्थ—'पइरि' अथवा 'पएरहि'—तैर कर; तरनि-यमुना; भाग-भाग्य; मोहि-मेरा; दम्पति—यहाँ नायक-नायिका।

अनुवाद—मैं यमुना-तरंग तैर कर आयी, रास्ते में सैकड़ों-हजारों सर्पों को पार कर के आयी (किन्तु ग्रियर्सन के पाठ के अनुसार—पैर में न जाने कितने सर्प लिपट गए)। रात्रि में निशाचर साथ साथ घूमने लगे। भाग्यवशतः किसी ने मेरा हाथ नहीं पकड़ा। इतना करके, प्राणों की उपेक्षा करके आयी, तब भी माधव से मेरा मिलन नहीं हुआ। उन्होंने मनसिज की रीति का पाठ नहीं किया, पिसुनों (दुष्टों) के वचन पर विश्वास कर लिया। दूती (और) दम्पत्ति दोनों बोधहीन (हैं)। कार्य और आलस्य (दोनों) में बड़ा विरोध है। विद्यापति कहते हैं, हे रमणी श्रेष्ठ, सुन, धैर्य धारण करके बैठ, मुरारि मिलेंगे।

(३६६)

पुनि भरमे राहीहि पिआने जाएब कहि
कोप कइए नीन्द गेली।
जागि उठलि धनि देखि सेज सुनि
हरि बोलइते निन्द गेली॥
माधव हे तोर कओन गेआने।
सबे सबतहु बोल, जे सह से बड़
परे बुझावाह अगेआने॥
भल न कएल तोहे, पेअसि अलप कोहे
दुर कर छैलक रीति।
ओछासओ हरि न करिअ सरि परि
ते करब रअनि साति॥
भनइ विद्यापतीत्यादि

नेपाल १६६, पृ. ६० ख, पं १

शब्दार्थ—पुनि—फिर; भरमे—(यहाँ) कौशल करके; राहीहि—(मेरा सम्मान) रखकर, अलप कोहे—अल्प कोप से; नीन्द गेलि—द्वितीय चरण में 'निद्रा चली गयी' और चतुर्थ चरण में 'निद्रा दूर हो गयी'; सरि परि—मिटमिटाव।

अनुवाद—फिर कौशल से मेरे संभ्रम की रक्षा करके प्रियतम को जाकर कहना कि वह कोप करके सो गयी थी; जाग कर उठने पर शय्या को शून्य देखा और हरि के पुकारते ही उसकी निद्रा दूर हो गयी। माधव, यह तुम्हारा कैसा ज्ञान है? कोई जो कुछ भी कहे जो सहन करता है, वही बड़ा है, महान है, अज्ञानी को ही समझाने के लिए दूसरे लोगों की जरूरत होती है, तुमने प्रेयसी के अल्प क्रोध पर ऐसा करके अच्छा नहीं किया। इस समय शहर में रहने वालों की रीति छोड़ो। हे हरि, यदि इस समय तुम मेटमिटाव न करोगे तो वह (फिर) रात्रि को शास्ति देगी।

मन्तव्य:—'ओछासओ' शब्द का अर्थ ठीक नहीं मालूम होता है। ओछाओन का अर्थ है बिछौना। नायिका बिछौना निकट जाकर प्रेम करो, नहीं तो आज रात को भी वह मान करके तुम्हें शास्ति देगी, ऐसा अर्थ हो सकता है।

अनुवाद—कौन कहता है कि प्रेम अमृत की धारा के स्वरूप है। अनुभव से समझा है कि यह भीषण अंगार तुल्य है। विष खाया जाए तभी इसका प्रतीकार हो सकता है। मदन को भयानक मारक के समान देख रही हूँ। इन सब सजल पदार्थों के रहते भी मेरे घर में आग लगी। तुम तो (इसका आस्वादन करने के लिए) ओठ फैलाए हो। किन्तु तुमको और क्या कहूँ? मुझे लेकर अपथ पर पैर मत बढ़ाना। तुम्हारा धर्म-कर्म साचो है, पड़ोसिन से रख कर मन्द (गोपनीय) को उद्घाटित करते हो।

(३७२)

हृदय कपट भेल नहि जानि।
पर पेअसि देलिह आनि॥
सुपुरुप वचन समय वेवहार।
खत खरि आदए सीचसि खार॥
आवे हमे कान्ह बोलव की बोल।
हाथक रतन हराएल मोर॥
कके परतारणि नागरि नारि।
वचन कौसल छले देव मुरारि॥
पलटि पचावह तन्हिके ठाम।
केओ जनु माधव धसएह गाम॥
हरि अनुरागी तठमा जाह।
से आवे अपन मनोरथ चाह॥

लघु कहिनी भल कहइते आन।
देले पाइअ के नहि जान॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

नेपाल ६४, पृ० ३४ क, पं ५।

शब्दार्थ—खत खरि - कटे पर; सीचसि—छींटते हो; खार—अशोधित लवण; कके—क्यों; परतारनि—प्रतारणा की।

अनुवाद—तुम्हारे हृदय में जो कपट था उसे न जानकर मैंने तुम्हें दूसरे की प्रेयसी लाकर दी। सुपुरुष जो वचन देते हैं, समय पर उसको व्यवहार में प्रकाशित करते हैं। तुमने कटे पर नमक छिड़क दिया। हे कन्हायी, इस समय तुम क्या बातें कर रहे हो? मेरे हाथ में जो रतन (नायिकारूपी) था, उसे तुमने भुला दिया। हे देव मुरारि, तुमने किस लिए वचन-कौशल से नागरी नारी की प्रतारणा की? अब फिर उसके पास जाना चाहते हो? (ऐसा हो कि) माधव को कोई ग्राम में घुसने ही न दे। अभी हरि अनुरागी होकर उसके पास जाएँगे, वह उनसे अपना मनोरथ चाहेगी (हरि की उपेक्षा करेगी)। दूसरे को लघुकाहिनी कहने में अच्छा लगता है। जो दे जाता है वही पा जाता है यह बात कौन नहीं जानता?

ला दिया है। निश्चय ही मैंने हेम के समान प्रेम को खो दिया, क्योंकि मैंने कामुक को प्रेमिक स्वीकार करके दोनों कुलों में कालिख लगा दी। इस समय घर लौटने की भी शक्ति नहीं है, इसीलिए सब कुछ तुम्हारे ही ऊपर निर्भर करता है। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, धैर्य रख, गाली संवरण कर।

(३७५)

साँझहि निअ मुघप्रेम पियाइ।
कमलिनि भमरी राखल छिपाइ॥
सेज भेल परिमल फुल भेल वासे।
कतय भमरा मोर परल उपासे॥
भमि भमि भमरी बालमु निज खोजे।
मधु पिवि मधुकर सुतल सरोजे॥
नर फुल कहेस नइ उगइ न सूरे।
सिनेहो नहि जाय जीव सौं मोरे॥
केओ नहि कहे सखि बालमु बाते।
रइन समागम भइ गेल प्राते॥
भनइ विद्यापति सुनिए भमरी।
बालमु अछि तोर अपनहि नगरी॥

न० गु० ६७१ (मिथिला का पद); नेपाल २७९, पृ० १०० क पं ५ भनइविद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—निअ—निज; बालमु—वल्लभ; परात—प्रभात; उजागरि—जाग कर; सूर—सूर्य।

अनुवाद—कमलिनी ने भ्रमर को अपने मुख का मधु पान करा के सन्ध्याकाल को ही (उसे) छिपा दिया। शय्या परिमल युक्त हुआ, फूल वासगृह हुआ। (किन्तु) मेरा भ्रमर कहाँ उपवासी रह गया, ऐसा सोच कर भ्रमरी घूम घूम कर अपने वल्लभ को खोज रही है। मधुकर मधुपान करके पद्म में सोया हुआ है। फूल यह नहीं बताता, सूर्य भी उदय नहीं होता (सूर्योदय होने से कमल विकसित हो जाता और भ्रमर छिपा नहीं रह सकता)। जीव से स्नेह नहीं जाता। सखि, (मेरे) पति की बात कोई नहीं कहता; रजनी में समागम की बात थी, किन्तु प्रभात हो गया। विद्यापति कहते हैं, सुन भ्रमरी, तुम्हारे पति अपने ही नगर में हैं।

पाठान्तर—नेपाल पोथी में इस पद का सम्पूर्ण पाठ विभिन्न पाया जाता है। यथा :—

साँझहि निज मकरन्द पियाए।
कमलिनि भमरा धएल लुकाए॥
भमि भमि भमरी बालभु खोज।
मधु पिवि भमरा सुतल सरोज॥
केओ न कहए मझु बालभु बात।
रयनि समापलि भए गेल परात॥
लताविलासिनि खण्डिता भेलि।
जामिनि सगरि उजागरि गेलि।
न कुसे सयन उगसूरे।
सिनेह न चाए जीव सजो दूरे॥

भनइ विद्यापतीत्यादि।

नेपाल पोथी के पाठ का अनुवाद—सन्ध्याकाल से ही कमलिनी ने अपना मकरन्द पान कराकर भ्रमर को छिपा कर रखा। भ्रमरी घूम घूम कर अपने वल्लभ को खोजने लगी। मधुपान करके भ्रमर पद्म में सो गया। कोई मेरे वल्लभ की बात नहीं करता; रजनी शेष हुई, प्रभात हो गया। लताविलासिनी (भ्रमरी) खण्डिता हो गयी; सारी रात उसने जाग कर काटी। 'न कुसे सयन' शब्दों का अर्थ नहीं समझ में आता। सूर्य उदित हो गया, किन्तु जीवन से प्रेम दूर नहीं जाता।

मन्तव्य:—नगेन्द्र बाबू ने पाठ के द्वितीय चरण में 'भमरी' रख दिया है; यदि इस स्थान पर भ्रमर नहीं रखा जाता तो पद निरर्थक हो जाता है।

(३७६)

लोचन अरुन बुझलि बड़ भेद।
रअनि उजागर गरुअ निवेद॥
ततहि जाह हरि न करह लाथ।
रअनि गमओलह जन्हिके साथ॥

कुच कुंकुम माखल हिय तोर।
जनि अनुराग राँगि करु गोर॥
आनक भूषन लागल अंग।
उकुतित वेकत होअ आनक संग॥

भनइ विद्यापति वजवहुँ वाद।
वड़ाक अनय मौन पय साथ॥

ग्रियर्सन ४४ ; न० गु० ३३६।

अनुवाद—तुम्हारे लाल लोचन (देखकर) सब रहस्य समझ में आ गया ; रात्रि जागरण की गुरुतर बात जानी जा रही है। हरि, मिथ्या छलना मत करना, जिसके साथ रात काटी है उसी के पास जावो। तुम्हारी छाती पर कुच-कुंकुम लगा हुआ है, मान अनुराग के रंग से तुम्हें गौरवर्ण का किया गया है। दूसरे का भूषण तुम्हारे अंग में रह गया है, उसीसे व्यक्ति हो रहा है कि तुमने दूसरे का संग किया है। विद्यापति कहते हैं कि इस प्रकार बोलना भी निषिद्ध है ; जब बड़े लोग कोई अन्याय का कार्य करें, तब चुपचाप सहन करना ही उचित है।

(३७७)

नयन काजर अधर चोराओल
नयने चोराओल रागे।
वदन बसन लुकाओव कतिखन
तिलाएक कैतव लागे॥

माधव कि आवे बोलवअ सताहे।
जाहि रमणी संगे रयनि गमोलह
ततहि पलटि पुनु जाहे॥

सगर गोकुल जिनि से पुनमति धनि
कि कहब ता हरि विभागे।
पदयावक रस जाहेरि हृदय अछ
आओ कि कहब अनुरागे॥

भनइ विद्यापतीत्यादि

नेपाल ११४, पृ ६१ ध, पं ४

शब्दार्थ—कैतव—छल, धोखा ; सता—सत्य ; पद यावक—(अन्य रमणी के) पैर का अलता।

अनुवाद—नयन का काजर अधर ने चुरा लिया और अधर का रंग नयनों ने चुरा लिया। तुम्हारा वदन कपड़े में कितनी देर तक छिपाया जा सकता है ; एक तिल समय मात्र धोखा दे सकते हो। माधव, इस समय सत्य बात क्या कहोगे ? जिस रमणी के संग रात काटी है उसी के पास चले जावो। उसके भाग्य की बात क्या बोलें, सारे गोकुल में वही नारी पुण्यवती है। पद के अलता का रंग जिसके हृदय में है वह अनुराग की बात क्या करेगा ?

(३७८)

कमलिनि एड़ि केतकि गेला
सौरभे बहु धुरि
कण्टके कवलु कलेवर
मुख माखल धूरि।
अवे सखि भेल हे रति रभसे सुजान ॥

परिमलके लोभे धाओल पाओल नहि पास।
मधुपुतु डिठिहु न देखल हे आवे जन उपहास ॥
भल भेल भमि आवथु पावथु मन खेद।
एकरस पुरुष निवुझ दूषण भेद ॥

भनइ विद्यापतीत्यादि

नेपाल २००, पृ० ७१ ख, पं ५ न० गु० ४३० ।

शब्दार्थ—एड़ि—छोड़कर ; कवलु—कवलित हुआ ; दिठिहु—आँखों से ; निवुझ—समझता नहीं ।

अनुवाद—(नेपाल के पाठ का)—कमलिनी को छोड़कर भ्रमर सौरभ से मुग्ध होकर केतकी के पास गया। उसका शरीर काँटों से कवलित हुआ, मुख में धूलि लग गयी। हे सखि, इस समय वह रतिरभस की आशा से सुजन हो गया है। परिमल के लोभ से जहाँ दौड़कर गया था, वहाँ जगह नहीं मिली, जरा सा भी मधु आँखों से न देख सका ; केवल लोगों से उपहास ही पाया। अच्छा हुआ, घूम फिर कर आवेगा, मन में खेद पावेगा। जो पुरुष एकरस होता है अर्थात् एक को छोड़कर अन्य को नहीं जानता, वह मन्द (बुरे) और अच्छे का पार्थक्य नहीं समझता।

(३७९)

हे माधव भल भेल कएलहु कूले।
काच कञ्चन दुहु सभ कए लेखलह
न जानह रतनक मूले ॥
तोँह हम पेम जते दूरे उपजल
सुमरह से आवे ठामे।
आवे पर-रमनि रंगे तो हे भुलला हे
विहुसिहु हसि हेर वामे ॥

ऐसन करम मोर तेँ तोहे जदि भोर
हमे अवला कुल नारी।
पिसुनक वचन कान जदि धएलह
साति न कएलह विचारी ॥
भनइ विद्यापति सुनह सुन्दरि
चिते जनु मानह संका।
दिवस बाम सखि सवे खन न रहए
चाँदहुँ लागु कलंका ॥

तालपत्र न० गु० ४८३ ।

---

* पद न० ३७८—*पाठान्तर*—नगेन्द्र बाबू ने निम्नलिखित पद कहाँ पाया, यह नहीं लिखा है; इसके कई एक चरणों से नेपाल के पद से समानता है।

कमलिनी एड़ि केतकी गेला बहु सौरभ हेरि।
कण्टके पिड़ल कलेवर मुख माखल धूरि ॥
भिन भिन अनुभवि आवथु जनि पावथु खेद।
एकरस पुरुष बुझल नहि गुन दूषण भेद ॥
भनइ विद्यापति सुन गुनमति रस बुझइ रसमन्ता।
राजा शिवसिंह सब गुण गाहक राणि लखिमादेवि कन्ता ॥

परिमल लोभे धाओल, पाओल नहि पास।
मधुसिन्धु विन्दु न देखल, अब जन उपहास ॥
अवसखि भमरा भेल परवश
केहो न करय विचार
भले भले बुझल अलपे चिन्हल
हिया तसु कुलिशक सार ॥

शब्दार्थ—कएलह—किया ; कूले—क्रूरे ; सुमरह—स्मरण करो ; साति—शास्ति ।

अनुवाद—हे माधव क्रूरता (कूरे) करके अच्छा ही किया। काँच और कञ्चन दोनों को एक समान करके ही हिसाव किया ? रत्न का मूल्य नहीं जानते। तुम्हारा मेरा प्रेम जितनी दूर तक उत्पन्न हुआ (बढ़ा), इस समय वह, स्थान (विषय) स्मरण करो ; इस समय तुम पर-रमणी के रंग में भूले हुए हो ; मेरे हँसने पर भी तुम हँस कर मुख फेर लेते हो (अर्थात् मेरी ओर प्रेम से देखते नहीं)। मैं अबला कुलनारी, मेरा ऐसा ही कर्म (कपाल) है, इसीलिए तुम (मुझे) भूल गए, दुष्ट लोगों की बात अगर कान में रख ली, विचार कर शास्ति न की। विद्यापति कहते हैं, सुन्दरि, सुन, चित्त में शंका मत मानना, सखि प्रतिकूल समय सर्वदा नहीं रहता, चन्द्रमा में भी कलंक है।

(३८०)

माधव, इ नहि उचित विचारे।
जनिक एहन धनि काम-कला सनि
से किअ करु व्यभिचारे॥
प्रानहुँ ताहि अधिक कय मानव
हृदयक हार समाने।
कोन परियुक्ति आन कैँ ताकव
की थिक हुनक गेआने॥

कृपिन पुरुस कैँ केओ नहिँ निक कह
जग भरि कर उपहासे।
निजधन अइछति नहि उपभोगव
केवल परहिक आसे॥
भनहिँ विद्यापति सुनु मथुरापति
इ थिक अनुचित काजे।
माँगि लायव वित से यदि होय नित
अपन करव कोन काजे॥

ग्रियर्सन ४१ ; न० गु० ३७७।

शब्दार्थ—सनि—सदृश ; हुनक—उनका ; वित—वित्त।

अनुवाद—माधव, यह विचार उचित नहीं है। जिसकी काम-कला के तुल्य इस प्रकार की रमणी हो, वह क्या व्यभिचार करता है ? प्राण की अपेक्षा अधिक समझ कर हृदय के हार के समान उसको मानेगा ; दूसरे की ओर देखेगा, यह कौन सी प्रयुक्ति हुई ? (ऐसा करने से) उसके मन में क्या होगा ? कृपण पुरुष को कोई अच्छा नहीं कहता, जगत भर (सारा संसार) उसका उपहास करता है। अपना धन रहते उपभोग नहीं करेगा, केवल दूसरे (धन) की आशा करेगा (दूसरे के धन से लुब्ध होकर अपना धन उपभोग नहीं करेगा) ? विद्यापति कहते हैं, हे मथुरापति, सुनो, यह अनुचित कार्य्य है। भिक्षाटन करके धन लावेगा—वह धन यदि नित्य हो तब अपना धन किस काम में लगेगा ?

(३८१)

आदरे[1] अधिक काज नहि[2] बन्ध।
माधव बुझल तोहर अनुबन्ध ॥
आसा राखह नएन पठाए।
कत खन[3] कौसले कपट[4] नुकाए ॥
चल चल माधव तोह जे सआन[5]।
तावे[6] बोलिअ जे उचित न जान ॥
कसिअ कसौटी चिन्हिअ हेम।
प्रकृति परेखिअ सुपुरुख पेम ॥
परिमले जानिअ कमल पराग[7]।
नयने निवेदिअ[8] नव अनुराग।
भनइ विद्यापति नयनक लाज।
आदरे जानिअ आगिल काज[9] ॥

नेपाल २२, पृ० ९ ख, पं ४, न० गु० ३४४ (तालपत्र)।

शब्दार्थ—बन्ध—बाधा, रक्षा ; नएन—नयन ; सआन—चतुर ; कसौटी—कष्टि पत्थर।

अनुवाद—आदर से अधिक कार्य नहीं होता ; माधव, तुम्हारा अनुरोध समझ गयी। नयन की (कातर) दृष्टि भेज कर आशा की रक्षा करते हो, कौशल से कितनी देर कपटता छिपावोगे। माधव, जावो, जावो, तुम तो चतुर हो, जो उचित नहीं जानता उसको कहना। कसौटी पर कस के सोना पहचानना होगा, सुपुरुष का प्रेम (उसकी) प्रकृति से जाँचा जाता है। परिमल से कमल का पराग जाना जाता है, नयनों के निवेदन से नव-अनुराग जाना जाता है। विद्यापति कहते हैं, नयनों की लज्जा (प्रकाश करती है), आदर से भविष्य का काज जाना जाता है।

(३८२)

माधव बुझल तोहर नेह।
ओर धरइत हम राखि न पारिअ
आसा की जइ देह ॥
तो मन माधव अति गुनाकर
देखइत अति अमोल।
जेहन मधुक माखल पाथर
तेहन तोहर बोल ॥
इ रीति दए हम पिरित लाओल
जोग परिनत भेल।
अमृत बधि हम लता लाओल
विसे फरि फरि गेल ॥
भन विद्यापति सुनु रमापति
सकल गुन निधान।
अपन वेदन ताहि निवेदिअ
जे पर-वेदन जान ॥

मिथिला न० गु० ३४५।

शब्दार्थ—ओर—शेष ; आसा—आशा ; अमोल—अमूल्य ; जोग—योग्य, उपयुक्त ; बधि—बोध से, समझ कर।

पद न० ३८१—नेपाल का पाठान्तर—(१) आदर (२) न (३) कतिखन (४) कट (५) ए कान्हु कान्हु तोहे जे सआन (६) तांके (७) सौरभे जानिअ कुसुम पराग (८) नीवदिअ (९) शेष दोनों चरणों के स्थान पर केवल 'विद्यापति" लिखा हुआ है।

अनुवाद—माधव, तुम्हारा स्नेह समझी। शेष तक मैं रख न सकी, (इसीलिए) आशा को जाने दिया (त्याग कर दिया)। माधव, तुम अति गुणवान् (हो), देखने में अत्यन्त अमूल्य, जिस प्रकार मधु लगा हुआ पत्थर होता है, वैसी ही तुम्हारी बात है (तुम्हारी बात मधु के समान मीठा है, किन्तु हृदय पत्थर के समान कठोर)। इस प्रकार की रीति देकर मैं प्रीति लायी (जिस प्रकार मैं उस पर अनुरक्त हुई थी उसके) योग्य परिणाम हुआ। अमृत समझ कर मैंने जिस लता का रोपण किया, उससे विषफल फला। विद्यापति कहते हैं, हे सकल गुण निधान रमापति, सुनो, जो परवेदन जानता है, उसी को अपनी वेदना निवेदन करना।

(३८३)

प्रथमहि गिरि सम गौरव भेल।
हृदयहु[1] हार आँतर नहि देल॥
सुपुरुस वचन कएल अवधान।
भल मन्द दुअओ बुझ[2] अवसान॥
चल चल माधव भलि तुअ रीति।
पिसुन वचने परिहरलि पिरीति॥

परक वचने आपन कान[3]।
तहि खने जानल समय समान॥
आवे अपदहु हरि तेज अनुरोध।
काहु का जनु हो विहिक विरोध॥
न भेले रंग रभस दुर गेल।
इथि हम खेद एकओ नहि भेल॥

एके पए खेद जे मन्दा समाज।
भेलहु तेजल अबे आँखिक लाज[4]॥
भनइ विद्यापति हरि मने लाज।
काहुका जनु हो मन्दा समाज॥

नेपाल २५४, पृ० ९२ क, पं ५; न० गु० ३४६ (तालपत्र)।

शब्दार्थ—आँतर—अन्तर; आपल—अर्पण किया; आपल कान—कान दिया।

अनुवाद—पहले तुमने गिरि के समान गौरव दिया, (इस प्रकार का प्रेम दिखलाया कि) दोनों के बीच में हार का व्यवधान भी सह्य नहीं हुआ। सुपुरुष की बातों में मन दे दिया, अन्त में भला बुरा मालूम हुआ। माधव, जावो, जावो, तुम्हारी रीति अच्छी है। दुष्ट की बातों में आकर प्रीति (तुमने) छोड़ दी। दूसरे की बात पर कान दिया, उसी समय जाना कि समय (इस अवस्था में) उपयोगी (जिस समय तुमने दूसरों की बात पर कान दिया, उसी समय जाना कि समय मन्द हो गया)। हरि, इस समय अस्थान पर अनुरोध का परित्याग करो (इस समय मुझ से अनुरोध करने का क्या फल होगा?) किसी को भी इस प्रकार विधाता का विरोध (विडम्बना) न हो। रंग नहीं हुआ, आनन्द दूर गया, इससे मुझे ज़रा भी खेद नहीं है। एक ही खेद है कि बुरे लोगों के साथ पड़ कर अच्छे लोगों ने भी चक्षु-लज्जा त्याग दी। विद्यापति कहते हैं, हरि ने मन में लज्जा पायी, किसी को भी बुरे लोगों का साथ न होवे।

पद न० ३८३—*नेपाल पोथी का पाठान्तर*—(१) हृदय (२) बुझव (३) परक वचन कुनहु आपन कान (४) आवे अधिक लाज।

(३८४)

अहनिसि वचने जुड़ओलह कान।
सुचिरे रहत सुखइ भेल भान॥
अवे दिने दिने हे बुझल विपरीत।
लाज गमाए विकल भेल चीत॥
विहिक विरोधे मन्दा सय भेट।
भाँड़ छुइल नहि भरले पेट॥
लोभे करिअ हे मन्द जत काम।
से न सफल होअ जओं विहि वाम॥

नेपाल ६७, पृ० ३५ क, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३४७।

शब्दार्थ—लाज गमाए—लज्जा खोकर।

अनुवाद—दिवा निशि वार्तों से कान जुड़ाए, दीर्घकाल तक सुख रहेगा, ऐसा ही मालूम हुआ। अब दिनोंदिन विपरीत ही समझ रही हूँ, लज्जा खोकर चित्त विकल हुआ। विधि के विरोध (विडम्बना) से बुरे आदमी का साथ हुआ, (इसीलिए) भांड़ (अस्पृश्य जाति के भोजन का पात्र) छूआ, (जिससे) पेट नहीं भरा। लोभ के कारण बुरा काम करने से यदि विधाता वाम हो तो (ऐसा होने से) यह सफल नहीं होता।

(३८५)

जावे रहिअ तुअ लोचन आगे।
तावे बुझावह दिढ़ अनुरागे॥
नयन ओत भेले सवे किछु आने।
कपट हेम धर[1] कति खन वाने॥
बुझल मथुरपति अलि तुअ रीति।
हृदय कपट मुखे करह पिरीति॥
विनय वचन जत रस परिहास।
अनुभव बुझल हमे सेओ परिहास॥

हसि हसि करह कि सव परिहार।
मधु विखे माखल सर परहार॥

नेपाल १४४, पृ: ५१ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३४१।

शब्दार्थ—ओत—अन्तराल ; कपट हेम धर कति खन वाने—नकली सोना परीक्षा में कितनी देर ठहर सकता है? (नगेन्द्र बाबू के पाठ का अर्थ है "हे माधव, कपटता का मूल्य कितनी देर रहता है?" उन्होंने वाने का अर्थ 'मूल्य है' माना है।

अनुवाद—जितनी देर तुम्हारी आँखों के सम्मुख रहती हूँ उतनी देर तक दृढ़ अनुराग दिखलाते हो। आँखों के ओझल होते ही सब अन्यरूप हो जाता है, नकली सोना (विशुद्धीकरण प्रक्रिया में) कितनी देर ठहर सकता है? मथुरापति, समझा, तुम्हारी रीति अच्छी है, हृदय में कपटता है, मुख से प्रीति करते हो। जितना विनय वचन, रस कौतुक, अनुभव से हमने जाना था, वह सब विद्रूप। हँस हँस कर क्या सब का (जो भी तुम्हारी प्रेयसी है) परित्याग करते हो? मधु और विष में बुझाया शर प्रहार करते हो।

(३८६)

सुपुरुष भासा चौमुख वेद।
एत दिन बुझल अछल नहि भेद॥
सतहि अछ सब मन जाग।
तोह बोलि विसरल हमर अभाग[1]॥
चल चल माधव की कहव जानि।
समयक दोखे आगि वम पानि॥
रयनिक बन्धव जा चन्द।
भल जन हृदय तेजए नहि मन्द॥
कलिजुग गति के साधु मन भंग।
सबे विपरीत करबि[2] अनंग॥

नेपाल ७०, पृः २७ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३५०।

शब्दार्थ—चौमुख वेद—चतुमुर्ख ब्रह्मा के उच्चारित वेद तुल्य अभ्रान्त, सतहि—सर्व्वदा ही।

अनुवाद—इतने दिनों तक जाना कि सुपुरुष की बात चतुर्मुख ब्रह्मा के उच्चारित वेद के समान अभ्रान्त। सब बात सवदा ही मेरे मन में जागती है, परन्तु मेरा दुर्भाग्य कि तुम अपना वचन भूल गए। माधव, जावो, तुम क्या जान कर कहोगे। समय के दोष से जल भी अग्नि उद्गीरण करता है। रजनी का (अन्धकार का) जिस प्रकार बन्धु चन्द्रमा है, उसी प्रकार अच्छे लोगों का हृदय बुरे लोगों का भी त्याग नहीं करता। कलियुग की ऐसी गति है कि साधु का मन भी टूट जाता है। अनंग सब कुछ उलटा करा देगा।

(३८७)

वदन सरोरुह हासे नुकओलह
तेँ आकुल मन मोरा।
उदितओ चन्दा अमिय न मुंचय
की पिवि जिउत चकोरा॥
माननि देह पलटि दिठि मेला।
सगरि रयनि जदि कोपहि गमओबह
केलि रभसि कोन वेला।
तोर नयन एँ पथहु न संचर
अजुगुत कह न जाइ।
अरुन कमल के कन्ति चोरओलह
तेँ मने रहलि लजाइ॥
कामिनि कोपे मनोरथ जागल
विद्यापति कवि गावे।
जएमति देइ वर सन गहि संकर
बुझए सकल रस भावे॥

तालपत्र न० गु० ३५७।

शब्दार्थ—नुकओलह—छिपाया; उदितओ चन्दा—चन्द्र उदय होने पर भी; दिठि मेला—दृष्टि का मिलन; अजुगुत—अयुक्त; गहि—लेकर।

अनुवाद—(तुमने) वदन कमल हँस कर छिपा लिया, उसे देखकर मेरा मन अस्थिर हुआ। चन्द्रमा उदय होने पर भी अमृत मोचन नहीं करता, चकोर क्या पान करके बचेगा? मानिनि, फिर कर (एक बार और) नयनों का मिलन दो; यदि सारी रात क्रोध में ही काट दोगी तो केलि-आनन्द किस समय होगा? तुम्हारे नयन इस ओर (मेरी ओर) संचर ही नहीं होते, यह अयुक्त (अन्याय) कहा नहीं जाता। तुम्हारे नयनों ने अरुण और कमल की

कान्ति चुरा ली है; क्या उसी से मन में लज्जित हो रही हो ? विद्यापति कवि गाते हैं कि कामिनी के कोप से मनोरथ जागा (अर्थात् लालसा बढ़ी) जयमति देवी जिन्होंने शंकर का पतित्व वरण किया है, वे भाव से (अनुभाव से) सब रस समझती हैं।

(३८८)

कि कहब अगे[1] सखि मोर अगेयाने
सगरिओ[2] रयनि गमाओल[3] माने
जखने मोर मन परसन भेला।
दारुन अरुन तखन उगि गेला॥

गुरुजन जागल कि करब केली।
तनु झपइत हमे आकुल भेली॥
अधिक चतुरपन भेलाहुँ[4] अयानी[5]॥
लाभके[6] लोभे[7] मुलहु भेल हानी॥

भनइ[8] विद्यापति निअमति दोसे।
अवसर काल उचित नहि रोसे॥

तालपत्र न० गु० ४५८, ग्रियर्सन ५४।

अनुवाद—सखि ! अपनी निर्बुद्धिता की बात क्या कहूँ ? सारी रात मान में काट दी। जब प्रसन्न हुई तो निष्ठुर अरुण आकाश में उठ आया। गुरुजन जाग गये हैं, तब केलि किस प्रकार होगी ? शरीर ढँकते ही मैं व्याकुल हो गयी। अधिक चतुरता दिखलाने की कोशिश में मैं मूर्ख बन गयी। लाभ के लोभ में मूल की भी हानि हुई। विद्यापति कहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि का दोष है। जिस समय सुयोग मिले उस समय क्रोध नहीं करना चाहिए।

ग्रियर्सन का अनुवाद—Oh friend, what can I say of my folly. I passed the whole night in pride. When my heart was softened the cruel dawn arose. The elders awoke; how could I yield to his caresses? As I hid my body I was much confused. I wished to show my cleverness, only made myself foolish. I tried to obtain my interest, and lost even the principal. Vidyapati saith, it was a fault of Judgement that at the time of love thou shouldst anger.

(३८९)

साकर सूध दुधे परिपूरल
सानल अमिअक सारे।
सेहे वदन तोर अइसन करम मोर
खारे पए वरिसए धारे॥
साजनि पिसुन वचन देहे काने।
देह विभिन्न विधाता आइति
तौरा मोरा एके पराने॥

कोपहु सयँ जदि समदि पठावह
वचने न बोलह मन्दा।
तोर वदनसन तोरे वदन पए
खार न वरिसय चन्दा॥
चौदिस लोचन चमकि चलावसि
न मानसि काहुक संका।
तोर मुह सयँ किछु भेद कराओव
ते देल चाँद कलंका॥

नेपाल १८६, पृ० ६६ ख, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ३६१।

३८८—ग्रियर्सन का पाठ—(१) ओह (२) सगरी (३) गमाओलि (४) भेलहुँ (५) अजानी (६) लाभक (७) लोभ (८) भनहि

शब्दार्थ—साकर—शर्करा ; सूध—विशुद्ध ; सानल—मिलाया ; खारे—अविशुद्ध लवण ; पए—अव्यय ; समदि—सम्वाद।

अनुवाद—शुद्ध दूध में शक्कर मिला हुआ (उससे) अमृत का सार मिश्रित, उसी तरह तुम्हारा वदन; मेरा ऐसा कर्म है कि वह (तुम्हारा वदन मेरे लिए) लवणधारा वर्षा कर रहा है। सजनि, दुष्ट की बात पर कान देती है? विधाता की इच्छा से हमलोगों के शरीर विभिन्न हैं (किन्तु) तुम्हारे मेरे एक ही प्राण हैं। कोप के सहित भी यदि संवाद पठाना (तथापि) बुरी बात मत कहना। तुम्हारा मुख तुम्हारे ही मुख के समान है, चन्द्र-वृष्टि नहीं करता। चौदिस चमक कर लोचनों को चलाती हो, किसी का भी भय नहीं मानती; तुम्हारे मुख से कुछ भेद करने के लिए ही (विधाता ने) चन्द्रमा को कलंक दिया है।

(३६०)

तनित लागि फुलल अरविन्द।
भुखल भमरा पिव मकरन्द॥
विरल नखत नभमण्डल भास।
से सुनि कोकिल मने उठ हास॥
ए रे माननि पलटि निहार।
अरुन पिवए लागल अन्धकार॥
माननि मान महघ धन तोर।
चोराबह चाहि अएलाहु अनुचित मोर॥
तौं अपराधे मार पँचवान।
धनि धर हरिकए राख परान॥

नेपाल १३७, पृ: ४८ क, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३ ।

शब्दार्थ—तनित लागि—अल्पक्षण के लिए।

अनुवाद—क्षुधित भ्रमर मधुपान करेगा, इसीलिए कमल अल्पक्षण के लिए फूट गया। नक्षत्र विरल हो गए, और नभमण्डल शोभा पा रहा है, यह देख कर कोकिल के मन में हँसी उठी। हे मानिनि, फिर कर देख, अरुण अन्धकार का पान करने लगा। मानिनि, तुम्हारा मान महँगा धन है, चोरी करने आया, यह मुझसे अन्याय हुआ उसी अपराध से मदन मार रहा है, हे धनि, तुम हरि को धरो एवं प्राण रक्षा करो।

(६६१)

कतए अरुन उदयाचल उगल
कतए पछिम गेल चन्दा।
कतए भ्रमर कोलाहलेँ जागल
सुखे सुतथु अरविन्दा॥
कामिनि जामिनि काँहा गेली।
चिर समय आगत हरि भेल पाहुन
आवेउ केलि न भेली॥
पंकक पात अतापे न पओले
झामर न भेले देहा।
कृपन सँचित धन रहल अखण्डित
काजर सिन्दुर रेहा॥
अरुनक जोति अधरे नहि छड़ले
पलटि न गँथले हारा।
आनहुँ बोलब सखि तोन्हे अचेतनि
की तोर नाह गमारा॥

मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'तनित' के स्थान पर 'तनिहि' 'अविरल' की जगह 'विरल' एवं 'तौं' के बदले 'ते' कर दिया है।

विद्यापति भन मन नहि परसन
हिय चिन्ता विस्तारा।
पलटि रचव केलि पिय संग हिलमेलि
दम्पति उचित विहारा॥

तालपत्र न० गु० २७३।

शब्दार्थ—चिर समय—बहुत दिनों बाद; पाहुन—अतिथि; आधेउ—आधा भी; पङ्कक—पद्म का; हिल मेलि—मिल कर।

अनुवाद—कहीं अरुण उदयाचल पर उदित हुआ, कहीं चन्द्रमा पश्चिम गया, कहीं भ्रमर ने कोलाहल करके सुखनिद्रित कमल को जागरित किया! कामिनि, यामिनी कहाँ गयी? दीर्घकाल के बाद आगत हरि अतिथि हुए, अर्ध-केलि भी न हुई। पद्मपत्र पर (सूर्य का) उत्ताप पड़ा नहीं (नायिका कमलिनी, नायक सूर्य)। तुम्हारा शरीर मलिन नहीं हुआ, कृपण द्वारा संचित धन के समान कज्जल और सिन्दूर रेखा अखंडित रह गये। अरुण की ज्योति ने अधर का त्याग नहीं किया (अधर म्लान नहीं हुए), हार पलट कर फिर गूँथा न गया (मिलन के समय यदि हार छिन्न होता तो फिर से गूँथना पड़ता), सखि, दूसरे लोग कहेंगे कि तुम मूढ़ा हो अथवा तुम्हारे नाथ मूर्ख है। विद्यापति कहते हैं कि मन प्रसन्न नहीं है, हृदय की चिन्ता विस्तारित होती है; पलट कर (फिर) प्रियतम के संग मिल कर केलि-रचना करेगी (तब) दम्पति का उचित विहार होगा।

(३६२)

आरति आपु पवार न चिन्हह
धरह कत कुवानि।
अपनि रमनि रागे सन्तावह
परक पेयसि आनि॥
कन्हा तोँए वड़ लोक निसंक।
हसि हसि सेहे करम करसि
जे हो कुल-कलंक॥

जाहि जाहि तोहि गुरु निवारए
ताहि तोरा निरवन्ध।
आँखि देखि जे काज न करए
ताहि पारे के अन्ध॥
तथुहु चीर समागम मागह
एत वड़ तोर लोभ।
परक भूसने परक वैभवे
कत खन दहु सोभ॥

दूतिक वचने कान्ह लजाएल
कवि विद्यापति भाने।
जे भेल से भेल जेहि तेहि गेल
आवे करु अवधाने॥

तालपत्र न० गु० २७६।

शब्दार्थ—आपु—स्वयं ; पवार—प्रवाल।

अनुवाद—तुम्हारी भोगासक्ति (आरति) इतनी (प्रबला) कि तुम अपने ही रत्न (प्रवाल) को पहचान नहीं सकते। कितनी बुरी बात कहते हो, दूसरे की प्रेयसी को लाकर अपनी रमणी को रागान्वित करके सन्तप्त करते हो। कन्हायी, तुम नितान्त भय-शून्य हो, हँस हँस कर वही काम करते हो जिससे कुलकलंक हो। जिस-जिस के लिए तुम्हें गुरुजन निवारण करते हैं उसी के लिए जिद् करते हो। जो आँख से देख कर कार्य्य नहीं करता, उससे बढ़ कर अन्धा और कौन है? वहीं दीर्घ समागम चाहते हो। तुम्हारा लोभ इतना बड़ा है, दूसरों के भूषण से, दूसरों के वैभव से कितनी देर शोभा पावोगे? कवि विद्यापति कहते हैं, दूती के वचन से कन्हायी ने लज्जा पायी। जो कुछ भी हुआ (जो हुआ सो हुआ), अब मनोयोग करो (सावधान होवो)।

(३६३)

उगमल जग भम काहु न कुसुम रम
परिमल कर परिहार।
जकरि जतए रीति ते विनु कथिति
नेह न विषय विचार॥

मालति तोहि बिनु भमर सदन्द।
बहुत कुसुम बन सबही विरत मन
कतहु न पिव मकरन्द॥

विमल कमल मधु सुधा सरिस विधु
नेह न मधुप विदार।
हृदय सरिस जन न देखिअ जति खन
तति खन सयर अँधार॥

नेपाल ४७, पृ० १८ ख, पं १, भने विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३८४।

शब्दार्थ—उगमल—द्रुत ; नेह—स्नेह ; सदन्द—द्वन्द्वयुक्त, कातर ; सयर—सकल।

अनुवाद—उन्मत्त के समान दौड़ दौड़ कर जगत भ्रमण करता है, (किन्तु) किसी कुसुम से रमण नहीं करता, परिमल भी छोड़ देता है। जिसकी जहाँ प्रीति, उसके बिना स्थिति नहीं होती। स्नेह विषय का विचार नहीं करता (स्नेहास्पद होने पर भिन्न वस्तु उसे अच्छी नहीं लगती)। मालति, तुम्हारे अभाव में भ्रमर कातर, बन में अनेक कुसुम हैं, सब के प्रति मन विरक्त, कहीं भी मकरन्द पान नहीं करता। चन्द्रमा के सुधासदृश जो विमल कमल मधु (मालती का) है, प्रेम के निकट वह भी भ्रमर को अच्छा नहीं लगता, हृदय के सदृश जन (मन का मनुष्य) जब तक नहीं दीखता तब तक सकल अन्धकार (रहता है)।

मन्तव्य—पद न० ३६३ नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके "उगमल" के स्थान पर "उमगल", 'कथिति' के स्थान पर 'नही थिति', 'विषय' के स्थान पर 'विसय', 'विदार' के स्थान पर 'विचार', 'सयर' के स्थान पर 'सगर' कर दिया है।

(३६४)

जावें सरस पिया बोलए हसी।
तावें से बालभू तञो पेयसी॥
जञो पर बोलए बोल निठूर।
तञो पुनु सकल पेम जा दूर॥

ए सखि अपुरुब रीति।
कहँहु न देखिअ अइसनि पिरीति॥
जे पिया मानए दोसरि परान।
तकराहु वचन अइसन अभिमान॥

तैसन सिनेह जे थिर उपताप।
के नहि वस हो मधुर अलाप॥
हठे परिहर निअ दोसहि जानि।
हसि न बोलह मधुरिम दुइ बानि॥

सुरत निठुर भिलि भजसि न नाह।
का लागि बढ़ावसि पिसुन उछाह॥

नेपाल १२६, पृ० ४५ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३८६।

शब्दार्थ—उपताप—पीड़ा, सन्ताप।

अनुवाद—जब तक प्रियतम हँस कर सरल बातें करते हैं, तब तक उस वल्लभ की तुम प्रेयसी रहती हो। यदि वह कोई कठोर बात कह देता है तो बस तुम्हारा सकल प्रेम दूर चला जाता है। ए सखि, यह बहुत ही अपरूप रीति है। इस प्रकार की प्रीति तो मैंने कहीं देखी ही नहीं। जो प्रियतम तुमको द्वितीय प्राण के समान मानता है, उसकी बात से तुम्हें इतना अभिमान? उस प्रकार के प्रेम से सारे सन्ताप दूर हो जाते हैं; मधुर आलाप से कौन नहीं वश होता है? अपना दोष समझ कर भी जबरदस्ती तुम उसका परिहार कर रही हो—हँस कर दो मीठी बातें नहीं बोलती। सुरत व्यापार में निष्ठुर होकर (उदासीन होकर) तुम नाथ को भजना नहीं करती हो। दुष्ट लोगों का उत्साह किस लिए बढ़ा रही हो।

(३६५)

गगन मंडल उग कलानिधि
कते निवारवि दीठि।
जखने जे रह तेँहि गमाइअ
जे बहुत दीअ पीठ॥

साजनि बड़ बथु उपकार।
जन्हिक बचने परहित हो
तन्हिक जीवन सार॥
सा जन काँ परहित लागि
न गुन धन परान।
राहु पियासल चाँद गरासए
न हो खीन मलान॥

न थिर जिवन न थिर जउवन
न थिर एहे सँसार।
गेल अवसर पुनु न पाइअ
किरिति अमर सार॥
कतए राघव राए घरिनी
कतए लंकापुर वास।
कत हनूमते साअर लाँघल
किछु न गुनु तरास॥

जखने जकर बांक विधाता
सब कला अनुमान।
अधिक आपद धैरज करब
कवि विद्यापति भान॥

तालपत्र न० गु० ३८७।

शब्दार्थ—मडल—मण्डल; उग—उदित हुआ; कलानिधि—चन्द्रमा; गमाइअ—बिताना चाहिए; पीठि—पृष्ठ; किरिति—कीर्त्ति।

अनुवाद—गगनमण्डल में चन्द्रमा के उदय होने पर दृष्टि कितना निवारण करोगी? जिस समय जिस प्रकार रहे वैसा ही बिताना चाहिए, जिस ओर (वायु) बहे, उसी तरफ पीठ करनी चाहिए। सजनि, उपकार बड़ी चीज़ है, जिसकी बात से दूसरे का हित हो, उसका जीवन सार है। साधु लोग दूसरे के हित के लिए धन-प्राण की गणना नहीं करते; पिपासित राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है (किन्तु चन्द्र) क्षीण (अथवा) म्लान नहीं होता। जीवन स्थिर नहीं, यौवन स्थिर नहीं, यह संसार स्थिर नहीं है। जो सुयोग चला जाता है वह फिर पाया नहीं जाता; कीर्त्ति अमरत्व का सार है। कहाँ राघव राजा की घरनी (सीता), कहाँ लंका का वास; कहाँ हनुमान ने सागर का लंघन किया, किन्तु उन्होंने त्रास की गणना न की (आशंका को ग्राह्य न किया)। जहाँ जिसके पक्ष में विधाता वाम होते हैं; उसकी (सकल) लीला की विवेचना करें। कवि विद्यापति कहते हैं, अधिक आपद में धैर्य धारण करना चाहिए।

(३६६)

दुरजन दुरनए परिनति मन्द।
ता लागि अवस करिअ नहि दन्द॥
हठ जनों करवह सिनेहक ओर।
फूटल फटिक वलअ के जोर॥
साजनि अपनेँ मन अवधार।
नख छेदन के लाव कुठार॥

जतने रतन पए राखब गोए।
तेँ परि जेँ परबस नहि होए॥
परगट करब न सुपहुक दोस।
राखव अनुनअ अपन भरोस॥
भनइ विद्यापति परिहर धन्ध।
अनुखन नहि रह सुपहु अनुबन्ध॥

तालपत्र न० गु० ३८६।

शब्दार्थ—दुरनए—दुर्णय, खराब काम ; अवस—अवश्य ; करपहु—करे ; सिनेहक ओर—स्नेह की सीमा प्रणय का शेष ; वलअ—वलय ; के जोर—कौन जोड़ सकेगा ।

अनुवाद—दुर्जन की दुर्नीति का परिणाम मन्द (होता है) ; उसके लिए विवाद अवश्य मत करना । बलपूर्वक यदि स्नेह का शेष करो (स्नेह नष्ट करो), स्फटिक के भग्न वलय को कौन जोड़ सकता है ? सजनि, ज़रा अपने मन में सोचो, नख-छेदन के लिए कुठार कौन लाता है ? यत्नपूर्वक रत्न को उसी प्रकार छिपा कर रखना जिससे परवश (दूसरे के हस्तगत) न होवे । सुनागर का दोष प्रकाश मत करना, अनुनय-विनय करके अपनी आशा की रक्षा करना । विद्यापति कहते हैं, संशय का त्याग करो, ऐसा नहीं हो सकता कि सुप्रभु सदा अनुकूल रहें ।

(३६७)

अति नागर[1] बोलि सिनेह बढ़ाओल
अवसर बुझलि बड़ाइ[2] ।
तेलि बड़द[3] थान भल देखिअ
पालँवं नहि उजिआइ ॥
दूती बुझल[4] तोहर वेवहार[5] ।
नगर सगर भमि जोहल नागर
भेटल निछछ गमार[6] ॥

गुंज आनि मुकुता तोहे[7] गाँथल
कएलहु मन्दि परिपाटी[8] ॥
कंचन चाहि[9] अधिक कए कएलहु[10]
काचहु तह भेल घाटी ॥
सब गुन आगर सब तहु सूनल[11]
तेँ हमे[12] लाओल नेहे ।
फल कारने तरु अवलम्बन
छाहरि भेल सन्देहे ॥

नेपाल २४३, पृ० ८८ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ३६० (तालपत्र) ।

शब्दार्थ—बड़ाइ—महत्त्व ; बड़द—बलद ; थान—स्थान ; उजिआइ—शोभा पाता है ; निछछ—निछक ; छाहरि—छाया ।

अनुवाद—उत्तम नागर समझ कर स्नेह बढ़ाया, उपयुक्त समय पर (उसका) महत्त्व समझा । तेली के समस्त ग्वाला अच्छा लगता है, परन्तु पलंग पर शोभा नहीं पाता । दूति, तुम्हारा व्यवहार समझी, समस्त नगर घूम कर नागर को खोजा, परन्तु (उसे) नितान्त मूर्ख पाया । गुंजा लाकर तुमने मुक्ता के संग गूंथा, बुरा अनुक्रम किया । कंचन की अपेक्षा भी तुमने अच्छा कहा था, काँच की अपेक्षा भी निकृष्ट पाया । सब के पास सुना कि (वह) सकल गुण श्रेष्ठ (है), इसीलिए मैंने स्नेह घटना की । फल के लिए वृक्ष का अवलम्बन किया, (अब) छाया में भी सन्देह हुआ (छाया मिलना भी भार हो गया) ।

नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) वर सुपुरुष (२) दिने दिने होइति बड़ाइ (३) तेहि बड़द (४) ऐसन (५) वेवहारे (६) गमारे (७) हामे (८) बुझलि तुअ परिपाटी (९) ताहि (१०) कहलह (११) सुनिज (१२) मर्ने ।

(३६८)

तोहर हृदय कुलिश कठिन, वचन अमिञ धार।
पहिलहि नहि बुझए, पारल, कपट के वेवहार॥
जत जत मन छल मनोरथ विपरित सबि भेल।
आखि देखइते कुपथ धसलिहु आरति गौरव गेल॥
साजनिअ हमे कि बोलब आओ।
आगु गुनि जे पाछु काज न करिअ
पाछे हो पाचताओ॥
उत्तिम जन वेबथा छाड़ए निअ वेथा चुक कैसे।
कए से मुह देखाबए पेमि पतारण रूप॥
अवे हमे तुअ सिनेह जान कवोन उपमा देब।
एँ हरि चोचक घोँरा अइसन किछु न बाणि खेब॥

नेपाल ३५, पृ० १४ क, पं ५, विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—धसिलहु—कूद पड़ी।

अनुवाद—तुम्हारा हृदय तो वज्र के समान कठोर है, परन्तु बोली अमृत की धारा के समान (है)। पहले व... का व्यवहार समझ नहीं सकी मेरे मन में जो जो वासनाएँ थीं, सब व्यर्थ हो गयीं। पलक मारते ही कुपथ में कूद पड़ी, समस्त आत्म-मर्यादा नष्ट हो गयी। सखि, मैं और क्या कहूँ? जो आगे-पीछे सोच कर कार्य नहीं करता, उसे पश्चाताप होता ही है। उत्तम मनुष्य और व्यवस्था अनुयायी होकर नहीं चलते; परन्तु उनकी जो अपनी व्यथा होती है, वह कैसे दूर हो सकती है? उसका प्रेम प्रतारक—रूप धारण कर किस प्रकार मुख दिखावेगा? अब मैंने तुम्हारा प्रेम जाना इसकी उपमा क्या दूँ (शेष चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता)।

(३६९)

मधु सम वचन कुलिस सम मानस
प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल
गरुअ गरव दूर गेला॥
सखि हे, मन्द पेम परिनामा।
वड़ कए जीवन कएल पराधिन
नहि उपचर एक ठामा॥

झाँपल कूप देखहि नहि पारल
आरति चललहु धाई।
तखन लघु गुरु किछु नहि गूनल
अब पचतावेक आई॥
एतदिन अछलह आन भान हम
अब बूझल अवगाहि।
अपन मुर अपने हम चाँछल
दोख दिव गए काहि॥

भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति
चिंते गनव नहि आने।
पेमक कारन जीउ उपेखिए
जगजन के नहि जाने॥

तालपत्र नं० गु० ३६४।

शब्दार्थ—जानि न भेला—जानी नहीं ; उपचर—शान्ति ; झाँपल—छिपाया हुआ ; पचतावके—पश्चात्ताप ; मुर—माथा ; चाँछल—काटा।

अनुवाद—मधु के समान वचन, वज्र के समान (कठोर) मन—पहले जानी नहीं, अपना चतुरपन खल के हाथ में दे दिया, गुरू गौरव दूर गया। हे सखि, प्रेम का परिणाम बुरा ही हुआ, बड़ा समझ कर (माधव को पुरुष श्रेष्ठ मान कर) जीवन पराधीन (उनके अधीन) कर दिया, (उससे) कहीं भी (मुझे) शान्ति नही है। ढँका हुआ कूप देख नहीं सकी, वेग से दौड़ कर चली, उस समय भले-बुरे का कुछ भी विचार नहीं किया, अब पश्चाताप हो रहा है। इतने दिनों तक मैं दूसरा ही समझे बैठी थी, अब डूब कर (उत्तमरूप से) समझा। अपना सिर मैंने अपने ही काटा, अब किसे जाकर दोप दें? विद्यापति कहते हैं, हे युवतीश्रेष्ठ सुन, मन में दूसरा कुछ मत सोचना, जगत के लोगों में कौन नहीं जानता कि प्रेम के लिए जीवन की उपेक्षा की जाती है?

(४००)

विमल कमल मुखि न करिअ माने।
पाओत वदन तुअ चाँद समाने॥
कामे कपट कनकाचल आनी।
हृदय वइसाओल दुइ करे जानी॥
तेँ पातके तोहि माझहि खीनी।
लघु गति हंसहु तट अति हीनी॥

एँ धने सुखित होयत जुवराजे।
वसने झपावह की तोर काजे॥
हसि परिरम्भि अधर मधु दाने।
कखनने फुजलि निवि केओ नहि जाने॥
भनइ विद्यापति रसिक सुजाने।
रुकुमिनि देइ पति सुन्दर कान्हे॥

तालपत्र नं० गु० ४१२।

शब्दार्थ—कपट—कृत्रिम।

अनुवाद—(हे) विमल कमलमुखि, मान मत करना, तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान हो जाएगा (अभी तुम्हारा मुख चन्द्रमा की अपेक्षा सुन्दर, मान करने से म्लानमुख चन्द्रमा के समान कलंकित होगा)। काम ने कृत्रिम कनकाचल लाकर उसे दो बनाकर, मालूम होता है, तुम्हारे वक्षस्थलों पर रख दिया है। (एक कनकाचल को दो कर देने के) इस पाप के दण्डस्वरूप कटि क्षीण (है), इसीलिए हँस की लघुगति से भी (तुम्हारा गमन) अति हीन (लघु) है। इस धन से जब युवराज सुखी होते हैं तो उसे कपड़े से ढाकने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम यदि हँस कर आलिंगन करो और अधरमधु दान करो (तब) नीविवन्धन कब खुल कर गिर पड़ेगा, कोई जानेगा नहीं। विद्यापति कहते हैं कि रुक्मिनी देवी के पति सुन्दर कन्हायी सुजन हैं।

(४०१)

बुझहि न पारल कपटक दीस।
अमिअ भरमे खाएल हम वीस॥
अबे परतीति करतँ दहु कोए।
सामर नहि सरलासय होए॥
ए सखि की परसंसह कान्ह।
वचन सुधा सम हृदय पखान॥

मोहन जाल मदन सरे भोलि।
आरति की न पठओलन्हि बोलि॥
बोलहिक भल सखि माधव नाम।
वड़ बोल छड़ परजन्तक ठाम॥
अनुभवि दूर कएल अनुवन्ध।
भुगुतल कुसुम भमर अनुसन्ध॥

भनइ विद्यापति तोहेँ सखि भोरि।
चेतन हाथ कहाँ रह चोरि॥

तालपत्र नं० गु० ४२५।

शब्दार्थ—दीस—उद्देश्य ; परतीति—प्रतीति ; करत दहु कोए—कौन करेगा ; परसंसह—प्रशंसा करो ; भुगुतल—भुक्त।

अनुवाद—कपट का उद्देश्य समझ नहीं सकी, अमृत के भ्रम में विष खा लिया। अब क्या कोई विश्वास करेगा ? काला कभी भी सरल चित्त नहीं होता। हे सखि, कन्हायी की प्रशंसा क्यों कर रही हो, वचन सुधा के समान, हृदय पाषाण। मदन के शर से चंचल (मैं) मुग्ध के समान (जब) जालबद्ध (थी), (उस) अनुराग के समय क्या नहीं कह कर भेजा था ? सखि, माधव नाम केवल कहने ही भर अच्छा है, (किन्तु काम कुछ नहीं) ; महान व्यक्ति क्या शेष पर्यन्त वचन (वादा का) परित्याग करता है ? अनुभव करके (भोग करके) आदर दूर कर दिया, भुक्त कुसुम का क्या भ्रमर अनुसन्धान करता है ? विद्यापति कहते हैं, सखि, तुम मूढ़ा, चतुर के निकट चोरी कहाँ चलती है (चतुर के निकट किस प्रकार छिपा कर रखोगी) ?

(४०२)

दहो दिस सुनसन अधिक पिआसल
भरमैते बुल सभ ठामे।
भाग विहिन जन आदर नहिलह
अनुभव धनि जन ठामे॥
हे साजनि जनु लेहे भमिकरि नामे।
विधिहिक दोख सन्तोख उचित थिक
जगत विदित परिनामे॥

आतपेँ तापित सीतल जानिकहु
सेओल मलय गिरि छाहे।
ऐसन करम मोर सेहओ दूर गेल
कएल दवानले दाहे॥
कते दुखे आज समुद्र तिर पाओल
सगरेओ जले भेल छारे।
एहना अवसर धैरज पए हित
सुकवि भनथि कण्ठहारे॥

तालपत्र नं० गु० ४३४।

शब्दार्थ—दहो—दस ; सुनसन—शून्यप्राय ; पिआसल—पिपासित ; भमिकरि—भ्रमणकारी ; दोख—दोष ; सेओल—ग्रहण की ; छाहे—छाया।

अनुवाद—दसों दिशाएँ शून्यप्राय, घूम घूम कर सब स्थान भ्रमण करके और भी पिपासित हुई। भाग्यहीन जन धनी व्यक्ति के निकट आदर अनुभव नहीं करते (प्राप्त नहीं करते)। हे सजनि, भ्रमणकारी का नाम न ले, विधि दोष। जगत में यह परिणाम विदित है, इसलिए सन्तोष अनुभव करना ही अच्छा है। आतप से तापित होकर शीतल समझ कर मलय गिरि की छाया ग्रहण की (का सेवन किया)। मेरा ऐसा भाग्य है कि वह भी दूर चला गया, दावानल ने दग्ध किया। कितने दुख से आज समुद्रतीर प्राप्त किया किन्तु सारा जल लवणाक्त हो गया। सुकवि कण्ठहार कहते हैं, ऐसे समय में धैर्य हितकारी होता है।

(४०३)

कमल भमर जग अछए अनेक।
सब तँहसेँ बड़ जाहि विवेक॥
मानिनि तोरित करिअ अभिसार।
अवसर थोड़हु बहुत उपकार॥
मधु नहिँ देलह रहलि कि खागि।
से सम्पति जे परहित लागि॥
अति अतिशय ओलना देल[1]।
आव जीव अनुतापक भेल॥
तोञे नहिँ मन्द मन्द तुअ काज।
भलेओ मन्द हो मन्दा समाज॥
भनइ विद्यापति दुति कह गोए।
निअ छति विनु परहित नहिँ होए॥

तालपत्र न० गु० ४४८, ग्रियर्सन ४९७।

शब्दार्थ—तोरित—शीघ्र ; थोड़हु—अल्प ; खागि—अभाव।

अनुवाद—कमल विलासी भ्रमर जगत में अनेक हैं। जिसे विवेक (विवेचना शक्ति) है, वही सब से बड़ा है। मानिनि, शीघ्र अभिसार कर। अल्प अवसर में भी अनेक उपकार हो सकता है। तुम उसे मधु नहीं देती, यद्यपि तुम्हें इसका अभाव क्या है? वही सम्पत्ति वास्तविक है जिससे दूसरे का उपकार हो। तुमने उसे कठोर बात कही, इससे उसके मन में सारे जीवन के लिए अनुताप रह गया। तुम तो बुरे नहीं हो, तुम्हारे कार्य्य खराब हैं। किन्तु बुरे के संसर्ग से अच्छा भी बुरा हो जाता है। विद्यापति कहते हैं कि दूती गुप्त रीति से कह रही है कि अपनी क्षति नहीं करने से दूसरे का हित नहीं किया जा सकता।

---

*Lotus loving bees are many in this world, but amongst all he is great who hath discretion. "O proud lady, haste and yield to thy love's caresses. Opportunity is short, and the benefit is great". Thou gavest him no honey, though thou hast no lack of it. Only that wealth is wealth by which others are benefited. Thou speakest rashly to him, and thereby didst put a flame to his heart which will only be extinguished with his death. It is not thou who are base but thy action. Evil communications corrupt manners. Vidyapati saith, the messenger told her privately; one cannot gain one's own without another's loss.

ग्रियर्सन का पाठान्तर—(१) अपूजित लए तुलना तुअ देल।

(४०४)

थिर नहि जउबन थिर नहि देहा।
थिर नहि रहए बालभु सञो नेह॥
थिर जनु जानह इ संसार।
एक पए थिर रह पर उपकार॥
सुन सुन सुन्दरि कएलह मान।
की परसंसह तोहर गेआन॥
कउलति कए हरि आनल गेह।
मूर भाँगल सन कएलह सिनेह॥
आरति आनल विघटित रंग॥
सुतरिक राब सरिस भेल संग॥
विमुखि चलति हरि बुझि बेवहार।
आबे कि गाओत कवि कण्ठहार॥

तालपत्र न० गु० ४४१।

शब्दार्थ—थिर—स्थिर; नेह—प्रेम; पय—अव्यय; कउलति—कबूलति—अङ्गीकार; सुतरिक राब—सूत और गुड़; सरिस—सदृश।

अनुवाद—जौवन स्थिर नहीं है, देह स्थिर नहीं है, वल्लभ के साथ स्नेह भी स्थिर नहीं रहता। इस संसार को स्थिर मत समझना। एकमात्र परोपकार ही स्थिर रहता है। सुन्दरि, सुन सुन, मान किए हुई हो, तुम्हारे ज्ञान की क्या प्रशंसा करें? अङ्गीकार करके हरि को घर ले आयी, इस प्रकार स्नेह किया कि मूल ही टूट गया। बेताब होकर (लाकर) रंग में व्याघात किया, सूत और गुड़ के समान संग हुआ (गुड़ में का सूत मीठे में रहने पर भी जिस प्रकार अव्यवहार्य होता है, उसी प्रकार तुमलोगों का मिलन हुआ)। हरि (तुम्हारा) व्यवहार समझ कर विमुख होकर चले। इस समय कवि कण्ठहार (विद्यापति) क्या गान करें?

(४०५)

हृदय कुसुम सम मधुरिम वानी।
निअर अएलाहु तुअ सुपुरुस जानी॥
अबे कके जतन करह इथि लागी।
कओन मुगुधि आलिङ्गति आगी॥
चल चल दूती को[1] बोलब लाजे।
पुनु पुनु जनु आवह अइसन काजे॥
नयन तरंगे अनंग जगाई।
अबला मारन जान उपाई॥
दिढ़ आसा दए मन बिघटावे।
गेले अचिरहि लाघव पावे॥
भनइ विद्यापति सुनह सयानी।
नागर लाघव न करिअ जानी॥

नेपाल १५३, पृ ५४ ख पं ५; न० गु० ३६१।

शब्दार्थ—निअर—निकट; आगी—आग; विघटावे—व्याकुल कर दे।

अनुवाद—हृदय कुसुमतुल्य, वाणी मधुर, सुपुरुष जान कर तुम्हारे पास आयी थी। अब इस समय क्यों इसके लिए (पुनर्मिलन के लिए) यत्न कर रहे हो? कौन मुग्धा अग्नि का आलिंगन करेगी? दूति, जावो, जावो, लज्जा

(१) नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'को बोलब' के स्थान पर 'की बोलब' कर दिया है।

से क्या कहें, बार-बार इस प्रकार के काम के लिए आना मत। वे नयन-तरंग द्वारा अनंग को जगा कर अबला को मारने का उपाय जानते हैं। दृढ़ आशा देकर मन को व्याकुल करते हैं, किन्तु उनके निकट जाने पर केवल छोटा होना पड़ता है। विद्यापति कहते हैं, सुन चतुरे, नागर जानकर लाघव नहीं करते।

(४०६)

वचन अमिअ सम मने अनुमानि।
निअर अएलाहु तुअ सुपुरुप जानि॥
तसु परिनति किछु कहहि न जाए।
सूति रहल पहु दीप मिझाए॥

ए सखि पहु अवलेप सही।
कुलिस अइसन हिय फाट नही॥
करजुगे परसि जगाओल भाव।
तइअओ न तेज पहु नीन्द सभाव॥

हाथ झपाए रहल मुह लाए।
जगइत निन्द गेल न होअ जगाए॥

नेपाल ६१, पृ: ३४ ख ; पं ४ भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० ४८८

शब्दार्थ—निअर—निकट ; मिझाए—बुझा कर ; अवलेप—गर्व ; सही—होने पर भी ; झापए—ढाँक कर ; मुह—मुख।

अनुवाद—तुम्हारी अमृत के समान बोली सुनकर तुम्हें सुपुरुप समझी और तुम्हारे पास आयी। उसका परिणाम कुछ कहा नहीं जाता—कहने में लज्जा होती है। प्रभु दीप बुझाकर सोए हुए थे। प्रभु के समीप यह गर्वित व्यवहार पाकर भी मेरा वज्रतुल्य हृदय फट नहीं गया। दोनों हाथों से स्पर्श कर कर के मैंने उनका भाव (कामभाव) जगाया, उस पर भी प्रभु की आँखों की नींद मानों कटती ही न थी। वे मुख को हाथ से ढाँके ही रहे। जो जागते हुए भी सोता रहता है उसको जगाया नहीं जा सकता।

(४०७)

चाँद सुधा सम वचन विलास।
भल जन ततहि जाएत विसवास॥
मन्दामन्द बोलए सबे कोय।
पिवइत नीम बाँक मुह होय॥
ए सखि सुमुखि वचन सुन सार।
से कि होइति भलि जे मुह खार॥
जे जत जैसन हृदय धर गोए।
तकर तैसन तत गौरव होए॥

गौरव ए सखि धैरज साध।
पहु नहि धरए सतओ अपराध॥
जौ अछ हृदया मिलत समाज।
अवसओ रहब आँउधि भइ लाज॥
काच घटी अनुगत जन जेम।
नागर लखत हृदयागत पेम॥
मधुर वचन हे सबहु तह सार।
विद्यापति भन कवि कण्ठहार॥

तालपत्र न० गु० २८८।

शब्दार्थ—विसवास—विश्वास ; मन्दामन्द—भला-बुरा ; बाँक मुह—टेढ़ा मुख ; मुह खार—जिसके मुँह में खार (अविशोधित लवण) हो अर्थात् दुर्मुख रमणी ; गोए—छिपावे ; समाज—मिलन ; औंउधि—उलटा करके ; जेम—भोजन ।

अनुवाद—चाँद की सुधा के समान वचन-विकाश, अच्छे लोग उसीसे विश्वास करते हैं ? अच्छा-बुरा सब लोग कहते हैं, नीम खाने से (बुरी बात सुनने से) (तीतापन से) मुँह टेढ़ा हो जाता है । हे सखि सुन्दरि, सार बात सुन, जो नारी कलहकारणी होती है, वह क्या अच्छी होती है ? जो जैसे (जितना) हृदय में छिपा कर रखता है, उसको वैसा ही गौरव प्राप्त होता है । हे सखि धैर्य साधना करने से गौरव होता है, प्रभु का शत अपराध भी रखना नहीं चाहिए । यदि हृदय में मिलन की इच्छा हो (तो) अवश्य ही लज्जा औंधी होकर रहेगी (लज्जा प्रकाशित न होगी) अनुगत व्यक्ति कच्चे (मिट्टी से बने) घड़े (पात्र) में भोजन करता है, नागर हृदय-गत प्रेम लक्ष्य करता है (अनुगत व्यक्ति जिस प्रकार कच्चे पात्र में भोजन करा देने पर भी विरक्त नहीं होता उसी प्रकार प्रेम प्रकाश न करने पर भी सुनागर हृदयगत प्रेम लक्ष्य कर लेता है) । विद्यापति कविकण्ठहार कहते हैं, मधुर वचन सबों की अपेक्षा सार (श्रेष्ठ) होता है ।

(४०८)

आसा दइए उपेखह आज ।
हृदय विचारह कओनक लाज ॥
हमे अबला थिक अलप गेआन ।
तोहर छैलपन निन्दत आन ॥
सुपहुँ जानि हमे से ओल पाओ ।
आवे मोर प्राण रहत कि जाओ ॥
कएल विचारि अमिञ के पान ।
होएत हलाहल इ के जान ॥

कतहु न सुनले अइसन बात ।
साँकर खाइत भाँगए दात ॥

नेपाल ११८ ; पृ० ४२ क, ४, भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० ४८१ ।

शब्दार्थ—दइए—देकर । साँकर—शक्कर, चीनी ।

अनुवाद—आशा देकर आज उपेक्षा कर रहे हो, हृदय में विचार करो, किसकी लज्जा है । मैं तो अल्पज्ञान अबला हूँ, दूसरे लोग तुम्हारे छैलापन की निन्दा करेंगे । सुप्रभु जान कर मैंने पदसेवा की, अब मेरे प्राण रहते हैं कि जाते हैं (यही संशय है) । अमृत विचार करके पान किया, यह कौन जानता था कि यह हलाहल हो जाएगा ? चीनी खाने से दाँत टूट जाए ऐसी बात तो कहीं भी सुनी नहीं जाती ।

(४०६)

वचनक वचने दन्द पए बाढ़ल
·········धरि गेला।'
अबला गोप कन्ोने की बोलब
की सीक दिब भेला।
नारि पुरुस हटसि न दिने दिने
पेम आवे तन्हि बिसरल
बिनु बाहले पह घीन ॥
कत बोलब कत मन्े जे सिखाउलि
कत पललाहु मन्े पाओ दबावांक
कन्ोने सवि आओब ते तबिनमील कराओ ॥

नेपाल २३७, पृ० ८५ ख, पं० २, भनइ विद्यापतीत्यादि।

अनुवाद—बात बात में झगड़ा बढ़ गया।........अबला गोपवाला किसे क्या कहे? ("कि सीक दिब भेला' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता")। नारी सुपुरुष को रोज रोज छोड़ती नहीं है। किन्तु वे ही आज प्रेम भूल गए। स्रोत के अभाव से यह चीण हो गया। तुमने तो बहुत कुछ सिखाया, परन्तु मैं और कितना बोलूँ। मैं और उनका बाँका चरण कितना दबाऊँ (शेष चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता)।

(४१०)

तोरा अधर अमिन्े लेल बास।
भल जन नेन्ोतल दिअ बिसवास ॥
अमर होइअ जदि कएले पान।
की जीवन जन्ो खण्डत मान ॥ध्रु॥

नागरि करबए करइ ए भाट ॥
दिवसक भोजने बर्ष न आट ॥
रथु उपजाए करिअ जे काज।
जे नहि जेमन्े तकरा लाज ॥

तन्े महि करबए परमुह सून।
पर उपकारे परम होअ पून ॥

नेपाल १२०, पृ० ४३ क, पं० २ भनइ विद्यापतीत्यादि।

अनुवाद—तुम्हारे अधरों में मानो अमृत ने वास-स्थापन कर लिया है। अच्छे लोगों ने विश्वास करके उसकी आरती की। उसका पान करने से अमर तो हो जाते हैं, किन्तु जिस जीवन में मान ही खण्डित हुआ, उससे क्या लाभ? नागरि, यदि इसी प्रकार आघात करना है तो करो, लेकिन याद रखना कि एक दिन खा लेने से वर्ष नहीं कटता।

४०६—*मन्तव्य*—नेपाल पोथी के द्वितीय चरण में बहुत जगहों पर छोड़ा हुआ है। मालूम होता है लिपिकार मूल न पढ़ सका।

जिससे सुख हो वही करना उचित है। जो नहीं खिलाता है उसीको लज्जा (होनी चाहिये)। जिससे दूसरे के मुख से सुना जाए (ख्याति हो), उसीमें मति करना (मन लगाना) पर-उपकार से बहुत पुण्य होता है।

(४११)

आसा खण्डह दए विसवास।
के जग जीवए तीनि पचास॥
अलिक बोलिअ गोप गमार।
तोहरा सहज कओन वेवहार॥
तोह जदुनन्दन की बोलब जानि।
धेनु सँग सरूप सञो कानि॥
सुपुरुष पेम हेम अनुमानि।
मन्द कालहि मन्दे हानि॥
आओर बोलब कत बोलइते लाज।
फल उपभोगीअ जैसन काज॥
सुन्दरि वचने कान्ह अनुताप।

नेपाल १०१, पृ० ३६ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि।

अनुवाद—विश्वास उत्पन्न करके अब आशा भंग कर रहे हो। जगत में तीन-पचास (डेढ़ सौ-सुदीर्घकाल) तक कौन जीवित रहता है? हे ग्राम्य गोप, तुम झूठी बात बोल रहे हो। तुम्हारा कौन सा व्यवहार सहज होता है? तुम जदुनन्दन हो, तुमको और क्या कहें? धेनु के साथ तुम्हारा बन्धुत्व है। सपुरुष का प्रेम मानों सोना के समान होता है। बुरे समय में बुरे आदमी की हानि होती है। और कितना कहें, कहने में लज्जा होती है। जैसा काम करते हो उसका फल भोग करो। सुन्दरी के वचन से कान्ह को अनुताप हुआ।

(४१२)

सुजन वचन खोटि न लाग।
जनि दिढ़ कठु आलका दाग॥
सुधा बोल चकमक आभ।
देखिअ सुनिअ एते लाभ॥
माननि मने न गुनहि आन।
गुलछ फ़ज जञों होअल मान॥
सुपुरुष सञो की कए कोप।
ओहओ कान्ह जदुकुल गोप॥

अति पवितर अथिक गाए।
मेहत पुनु वरदक माए॥

नेपाल ६६, पृष्ठ ३५ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—खोटि—खोंता, कलंक; दिढ़—दृढ़; अलका—अलता (ऐपन) का; पवितर—पवित्र; गुलछ का अर्थ गुलंच और फ़ज फ़ज्झा का अपभ्रंश हो सकता है; किन्तु 'गुलछ फ़ज जञों होअल मान' का अर्थ है जैसे हवा चलने से गुलंच का फूल गिरता नहीं है, उसका सम्मान बढ़ता है' क्या यही अर्थ होगा?

अनुवाद—सुजन के वचन में कलंक नहीं लगता (वचन मिथ्या नहीं होता), वह मानो दृढ़ किया हुआ अलता (ऐपन) का दाग हो। झूठी बातों में कितनी चकमक होती है; देखने सुनने में कितनी अच्छी लगती है। मानिनि,

मन्तव्य—द्वितीय चरण के पाठ में कुछ गड़बड़ी है। पोथी में जैसे है वैसे ही यहाँ दिया गया है, किन्तु उसका कोई अर्थ नहीं होता, छन्द भी भंग है। इस चरण को छोड़ कर अनुवाद किया गया है।

मन में कुछ अन्य न सोचना। सुपुरुष के प्रति क्या कोप किया जाता है, वह भी जब वह जदुकुल का गोप है। जो बहुत पवित्र है उसका यशगान होता है। 'मेहुत पुनु वरदक माए' का अर्थ स्पष्ट नही है।

(४१३)

दारुन सुनि दुरजन बोल।
जनि कम कम लागए मूत॥
के जान कब्बेने सिखाओल गोप।
ते नहि हृदय विसरए कोप॥
ए सखि ऐसन मोर अभाग।
परक कान्ह कहला लाग॥
एतदिन अछल अइसन भाण।
हम छाड़ि पेअसि नहि आन॥
जगत भमि सुपुरुष जोही।
आसा साहसे भजलि तोही॥
दिवस दुषणे तो हो उदास।
पिसुन वचनेहु तते तरास॥

नेपाल २१०, पृ० ७९ ख, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि।

अनुवाद—दुर्जन की बात सुनते ही खराब (लगती है)। न मालूम किसने गोप को सिखलाया। वह मन से कोप विसरही नहीं रहा है। सखि, मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि कन्हायी ने दूसरों की बात सुनी। इतने दिनों तक मैं समझती थी कि मुझे छोड़ कर उसे और कोई प्रेयसी नहीं है। संसार में घूम कर जिसे सुपुरुष पाया उसकी अनेक आशा करके साहस के साथ भजना की। काल की दोष से वह भी उदासीन हुआ—दुष्ट लोगों की बात से भी उसे भय है।

(४१४)

कोटि कोटि देल तुलना हेम।
हीरासओं हे हरदि भेल पेम॥
अति परिम सने पिअर रंग।
सुख मण्डल केवल बहु संग॥
साजनि की कहब कहहि न जाए।
भेलेसो मन्द होअ अवसर पाए॥
नव नव उछल पहिलुक मोह।
किछु दिन गेले भेल पनिसोह॥
अबे नहि रहले निछ छेओ पानि।
कारिनस हे कि करब जानि॥
कपट बुझाए बढ़ ओललन्हि दन्द।
बड़ाकु हृदय वड़ेओ हो मन्द॥

नेपाल ११९, पृ० ४१ क, पं० ९, भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—हरदि—हल्दी; अति परिम—अति उच्च; उछल—उच्छल; पहिलुक—प्रथम; पनिसोह—पनसाहा, पानी के स्वाद का; निछ छेओ—तल में भी; कारिनस—कार्यनाश।

अनुवाद—हीरा के साथ जब हल्दी का प्रेम हुआ, उस समय कोटि कोटि सोने के साथ उसकी तुलना दी गयी। प्रियतम का रसरंग उच्चतर के लोगों के संग, वह सुख का कबूतर, बहुतों का संग खोजता। हे सखि, क्या यहें कहा नहीं जाता। सुजोग पाने पर अच्छे लोग भी बुरे हो जाते हैं। पहले मोह में कितनी नूतन उच्छलता (रहती है), किन्तु कुछ दिनों के बाद वह पनसाहा (आस्वादहीन) मालूम पढ़ने लगता है। इस समय तो तल में भी जरा सा जल (रस) नहीं है। यह जानते हुए भी और कार्य नाश कौन करेगा? उसकी कपटता समझा देने से झगड़ा बढ़ गया। बड़े लोगों का हृदय बहुत ही बुरा होता है।

(४१५)

ओतए कतन्त उदन्त न जानिअ
एतए अनल वम चन्दा ।
सौरभ सार भार अरुझाए
न दुइ पंकज मन्दा ॥

कोकिल काज्नि सन्तावह कान्ह
ताओ धरि जनु पंचम गावह
जावे दिगन्त बनाह ।
मदनक तन्त अनुधरि पलटए
वुझितहु होसि सयानी ।
आजक कालि कालि नहि बुझसि
जौंवन बन्धु छुट पानी ॥

पिआ अनुरागी तञे अनुरागि
दुहु दिस बाढु दुरन्ता ।
मञे बरु दसमि दसा गए अंगिरल
कुसले अरिथु मोर कन्ता ।
पाउरि परिमल आसा पुरथु मधुकर गावथु गीते
चान्द रयनि दुहु अरिक सोहाजूलि
मोहि पति सबे विपरीते ॥

नेपाल २८३, पृ० १०३ क, पं १, विद्यापति कह इत्यादि ।

शब्दार्थ—ओतए—वहाँ; कतन्त—क्या; एतए—यहाँ; वम—उगलता है; अरुझाए—उलझ जाता है; न दुइ—(इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है); मदनक दन्त (तन्त्र)—मदन का शास्त्र; बाढ़—वन्या; अनुधरि—पीछे पीछे चल कर; सोहाजलि—शोभा पायी; मोहि पति—मेरे प्रति ।

अनुवाद—वहाँ (उस ओर, नायिका की ओर) क्या उदित हुआ नहीं जानता, यहाँ तो चाँद आग उगलता है । सौरभसार मन को भार समान मालूम पड़ रहा है, पंकज उलझ जा रहा है । शरीर का ताप इतना अधिक है कि कमल भी सूख जा रहा है । हे कोकिले, कन्हाई को क्यों सन्ताप दे रही हो ? जब तक दिगन्त में न उड़ जाना तब तक पंचम गान मत करना । मदन के शास्त्र का अनुसरण कर रही हैं, इसको चतुरा नायिका समझना । आज और कल की धूरी मत समझना; यौवनरूपी बाँध तोड़ कर जल बह जायेगा । प्रिय अनुरागी और तुम भी अनुरागी, दोनों ओर प्रबल वन्या । मैंने वरन् दशवीं दशा स्वीकार कर ली, मेरी कान्ता कुशल से रहे । पाउरि (?) परिमल की आशा से पूरी रहे, मधुकर गान करे । चाँद और रजनी दोनों ने शोभा पायी । केवल मेरे क्षेत्र में दोनों विपरीत (हैं) ।

(४१६)

नहि किछु पुछलि रहलि धनि बइसि[1]
नइ सेओ आइलि बाहरे ।
परम विरहि भए नहि नहि कए
गेलि दुर कए मोर करे ॥
माधव कह कके रुसलि रमनी ।
दते जतने पेयसि परिवोधलि
न भेलि निअरेओ आनी ॥

गौर कलेवर तसु मुख ससधर
रोसे अनरुचि भेला ।
रुप दरसन छले नव रतोपले
कामे कनक बलि देला ॥
नयन नीर धारे जनि टूटल हारे
कुचगिरि[2] पहरि पलला ।
कनक कलस करु मदने अमिअ भरु
अधिक कि उभरि पलला ॥

नेपाल २६७, पृ० ९७ क, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ४०२

पाठान्तर—पद न० ४१६—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) वेसि के स्थल पर बइसि (२) रुचसिनिह के स्थान पर कुचगिरि कर दिया है ।

शब्दार्थ—निअरेओ—निकट भी; आनी—आन; रोसे—रोपे; अनरुचि—अन्य शोभा; पहरि—प्रहृत होकर, फैलकर; कनकवलि—कनकवल्ली; उभरि—उद्वेलित; पलला—पड़ी।

अनुवाद—धनी बैठी रही, कुछ भी पूछा नहीं, मुझे देख कर (बाहर आयी नहीं) अत्यन्त विरोधी (क्रुद्ध) होकर, ना ना ना करके (बोलके) मेरा हाथ दूर कर दिया (ठेल दिया)। माधव, बोलो, क्यों रमणी को क्रोधित किया ? कितना यत्न करके तुम्हारी प्रेयसी को प्रबोध दिया निकट भी (उसका) आना नहीं हुआ (मेरे पास आयी नहीं)। उसके गौरवर्ण कलेवर (और) मुखचन्द्र ने रोप के कारण अन्य ही शोभा पायी, काम ने मानों रूप देखने के छल से कनकलता को (देह को) नव रक्तोत्पल दिया (बना दिया), नयनों की अश्रुधारा छिन्नहार के समान कुचपर्वत पर छितरा पड़ी। कनक कलस बनाकर मदन ने अमृत से पूर्ण किया, वया अधिक होने से उभर कर गिर पड़ा ?

(४१७)

सजल नलिनिदल सेज ओछाइअ
परसे जा असिलाए।
चान्दने नहि हित चाँद विपरीत
करब कओन उपाए॥

साजनि सुदृढ़ कइए जान।
तोहि विनु दिने दिने तनु खिन
विरहे विमुख कान्ह।

कारनि वैदे निरसि तेजलि
आन नहि उपचार।
एहि वेआधि औषध तोहर
अधर अमिअ धार॥

नेपाल १९, पृ० ६ ख, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४०६

शब्दार्थ—उछाइअ—बिछाना; असिलाए—म्रियमान, शुष्कहोना; कारनि—कारण; वैदे—वैद्य; निरसि—निराशहोकर।

अनुवाद—(नायक की) शय्या पर सजल कमलदल तो बिछा दिया जाता है, परन्तु स्पर्श करते ही वह सूख जाता है (उसके विरह का उत्ताप इतना तीव्र है)। चन्दन से उपकार नहीं होता, चाँद विपरीत हो रहा है। इस समय क्या उपाय करें ? सजनि, तुम निश्चय करके जान लो कि तुम्हारे बिना कन्हायी का शरीर दिनोदिन क्षीण हो रहा है, विरह से उसका मुख मलिन हो रहा है। वैद्य ने कारण जानकर निराश होकर छोड़ दिया है। अन्य कोई उपाय नहीं है—इस व्याधि की एकमात्र औषधि तुम्हारे अधरों की अमियधारा है।

(४१८)

नारंगि छोलंगि कोरि कि वेली।
कामे पसाहलि आचर फेली॥
आवे भेलि ताल फल तूले।
कँहा लए जाइति अलप मूले॥
से कान्ह से हमे से धनि राधा।
पुरुब पेम ना करिअ बाधा॥

जातकि केतकि सरसि माला
तुअ गुन गहि गाथए हारा।
सरस निरस तोह के बुझावे[१]।
कहा लए चलति भेलि दिमाने।
सरस कवि विद्यापति गावे।
नागर नेह पुनमत पावे॥

नेपाल १७६, पृ० ६२ ख, पं ९, न० गु० ४०८

पद न० ४१८—नगेन्द्र बाबू ने (१) 'बुझावे' के स्थान पर 'बुझ आने' कर दिया है

शब्दार्थ—नारंगि छोलंगि—विभिन्न प्रकार की नींबू; कोरि—कली; वेली—समय; पसाहलि—सजाया; तुले—तुल्य; सरसि—सरस; गहि—ग्रहण करके; नेह—स्नेह, प्रेम।

अनुवाद—विभिन्न प्रकार की नींबू के समान जब कली अवस्था में थी तो काम ने अंचल फेंक कर सजाया। इस समम ताड़ के फल के समान हुआ, अल्पमूल्य लेकर कहाँ जाओगी? वह कन्हायी, वह मैं (दूती), वह धनि राधा (तुम)। पूर्व प्रेम में विघ्न मत करना। (माधव) तुम्हारा गुण ग्रहण करके (स्मरण करके) जातकी केतकी सरस कुसुमों की माला गूंथ रहे हैं। सरसता नीरसता (दोष गुण) दूसरा कौन बुझाएगा? विमना (अन्यमना) होकर कहाँ लेकर जा रही हो? कवि विद्यापति सरस गान कर रहे हैं, पुण्यवती रसिक का स्नेह पाती है।

(४१६)

कोकिल कूल कलरव
काहल वाहर वाज[१]।
मञ्जरि कुल मधुकर गुंजरए
से शुनि[२] गुजर गांव॥

मने मलान परान दिगन्तर
लगन की एल लाय[३]॥
विरहिनि जन मरन कारन
भउ वेकत विधुराज[४]॥

सुन्दरि अवहु तेजिए रोस।
तु वर कामिनि इ मधु जामिनि
अपद न दिअ दोस॥

कमल चाहि कलेवर कोमल
वेदन सहए न पार।
चान्दन चन्द कुन्द तनु तावए
भाव न मोतिम हार॥

सिरिसि कुसुम सेज ओछाओल
तहु[५] न आवए निन्द।
आकुल चिकुर चीर न समर
सुमर देव गोविन्द॥

नेपाल १२, पृ० ६ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ४१०

शब्दार्थ—काहल—बड़ाढोल; गुजर—गुर्ज्जरी राग; मलान—मालिन्य; भाव—शोभा पाना; समर—सम्भालना।

अनुवाद—कोकिल कुल का कलरव सुन कर मन में होता है मानों वाहर ढोल का निनाद हो रहा है, मञ्जरी के समूह में भ्रमर गुंजन कर रहा है, वह भी (मुझे) गुर्ज्जरी राग के समान बोध हो रहा है। मन में मालिन्य, दिगन्तर में प्राण, इसमें क्या लज्जा नहीं होती? विरहिणी लोगों को मृत्यु के कारण—स्वरूप चन्द्रमा व्यक्त हुआ। सुन्दरि

पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'वाज' के स्थान पर 'राव' (२) 'शुनि' के स्थल पर 'जनि' (३) 'लगन की एल लाज' के स्थान पर 'एहु किए न लाज' (४) 'भवेकत भउविधुराज' (५) 'तहु' के स्थान पर 'तहओ' कर दिया है।

मन्तव्य—यह पद हरिपति की भनिता में पाया गया है, किन्तु नेपाल पोथी इसे स्पष्ट विद्यापति का लिखा हुआ है; अतएव हमने इसे असंदिग्ध पद माना है।

अभी भी कोप का त्याग करो, तुम कामिनी-श्रेष्ठ हो, मधुयामिनी में अकारण दोष मत दो। कमल की अपेक्षा (भी) कोमल कलेवर वेदना सहन नहीं कर सकता, चन्दन, चन्द्र और कुन्द-कुसुम शरीर को सन्तापित करते हैं, मुक्ताहार अच्छा नहीं लगता। शिरीष कुसुम के समान (कोमल) शय्या बिछायी, तथापि निद्रा नहीं आती, आकुल केश और वस्त्र सम्भाल नहीं सकती हो, गोविन्द देव का स्मरण करो।

(४२०)

अवयव सबहि नयन पए भास।
अहनिसि झाखए पाओब पास॥
लाजे न कहए हृदय अनुमान।
पेम अधिक लघु जनित[१] आन॥
साजनि कि कहब तोर गेआन।
पानी पाए सिकर भेल कान्ह॥

वहिर[२] होइ आनहि कहिअ समाद।
होएतौ[३] हे सुमुखि पेम परमाद॥
जञो तन्हिके जीवन[४] तोह काज।
गुरुजन परिजन परिहर लाज॥
दण्ड दिवस दिवसहि हो मास।
मास पाव गवे वरसक पास॥

तोहर जुड़ाइ तोहार[५] मान।
गेल बुझाय केओ आन परान॥

नेपाल २३, पृ० १३ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० ४१६

शब्दार्थ—पए—अव्यय शब्द; भास—शोभा पाता है; झाखए—व्याकुल होता है; सिकर—शीकर, जलकण; समाद—सम्वाद; जुड़ाइ—शीतल।

अनुवाद—समस्त अवयव नयन में ही शोभा पाते हैं (समुदय शरीर, समुदय इन्द्रिय नयनों में ही एकीभूत होते हैं)। रात-दिन (उन्हें) यह व्याकुलता रहती है कि (कब तुम्हारे संग) मिलन होगा। लज्जा के मारे व्यक्त नही करते (किन्तु) हृदय अनुभव करता है (जानता है)। प्रेम अधिक है अथवा कम, यह दूसरा क्या जानेगा? सजनि, तुम्हारे ज्ञान की बात क्या कहें, कन्हायी ने (प्यास बुझाने के लिए) जल की चाह की, किन्तु जलकण पाया। बाहर जाकर यदि दूसरे को यही सम्बाद कहें, तो हे सुमुखि, प्रेम में प्रमाद हो जाएगा। यदि उनके जीवन से तुम्हें काम है तो गुरुजन परिजन की लज्जा त्याग करो। दण्ड से दिवस, दिवस से मास, और मास से वर्ष उपस्थित हुआ। अपना मान तुम अपने ही शीतल करो; अन्य के प्राण में जो दुख है वह कौन समझा सकता है?

४२०—*पाठान्तर*—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'जनित' के स्थान पर 'जनितहु' (२) 'वहिर' के स्थान पर बाहर (३) 'होएतौ' के स्थान पर 'होएतओ' (४) 'जीवन' के स्थान पर 'जीवने' (५) 'तोहार' के स्थान पर 'तोहरे' कर दिया है।

(४२१)

सिनेह वढ़ाओोव इ छल भान।
तोहर सोयाधिन करव परान॥
भल भेल मालति भेलि हे उदास।
पुनु न आओोव मधुकरे तुअ पास॥

एतवा हम अनुतापक भेल।
गिरि सम गौरव अपदहि गेल॥
अलपे बुझओलह निअ वेवहार।
देखितहि निअ परिनाम असार॥

भनइ विद्यापति मन देए सेव।
हासिनि देइ पति गजसिंघ देब॥

नेपाल ८६, पृ० ३२ ख, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ४१८ (तालपत्र)

अनुवाद—(नायक का) यह ज्ञान था कि स्नेह बढ़ावोगी (उसके) प्राण तुम्हारे अधीन (सम्पूर्ण अपने अधीन) करोगी। मालति, अच्छा हुआ कि तुम उदासीन हो गयी, मधुकर तुम्हारे पास अब नहीं आएगा। मेरे लिए यही अनुताप का विषय हुआ कि गिरि के समान गौरव अस्थान ही गया (नष्ट हुआ)। थोड़े ही में अपना व्यवहार समझा रही हो, अपना (तुम्हारा) परिणाम असार देखती हो। विद्यापति कहते हैं, मन लगा कर हासिनि देवी के पति गजसिँह देव की सेवा करो।

(४२२)

सोलह सहस गोपि मह राणि।
पाट महादेवि करवि हे आनि॥
बोलि पठओलन्हि जत अतिरेक।
उचितहु न रहल तन्हिक विवेक॥

साजनि की कहब कान्ह परोख।
वोलि न करिअ वड़ाकाँ दोख॥
अव नित मति जदि हरलन्हि मोरि।
जानला चोरे करव की चोरि॥

पुरवा परे नागर काँ वोल।
दूतिमति पाओल गए ओोल॥

नेपाल १२८, पृ० ४५ ख, पं० ५, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ४२२

४२१—पाठान्तर—नेपाल पोथी में यही पद विभिन्न आकार में पाया जाता है, यथा—

सिनेह वढ़ाओोव हम छल भान।
तोहर सोयाधिन करब परान॥
पन्थल बुझए नहनिज वेवहार।
मोहिपति सबे परजन्तक सार॥

भल भेल मालति तोहइ उदास।
पथमरतक वेल आओोव तुआ पास॥
जत अनुराग भेल सबे राग।
तोहरा की वोलब हमर अभाग॥

भनइ विद्यापतीत्यादि—

शब्दार्थ—सोलह सहस—सोलह हज़ार ; अतिरेक—अतिरिक्त ; परोख—परोक्ष ; दोख—दोष ; नित—नीति ; ओल—सीमा ।

अनुवाद—षोड़श सहस्र गोपियों के बीच (मुझे) रानी बनाएँगे, हे सखि, (मुझे) लाकर पटमहिषी बनाएँगे। यह सब जितना अतिरिक्त (बढ़ाकर) कह कर भेजा, उसकी उचित विवेचना नहीं रही (वह सब पूर्ण करने की बात मन में नहीं रही)। हे सजनि, कन्हायी के परोक्ष में क्या कहूँ, बड़े लोगों का दोष होने पर भी कहना नहीं चाहिए। इस समय मेरी नीति और बुद्धि अपहृत हुई, जाने हुए चोर की चोरी क्या होगी? पूर्वापर नागर की बात से दूती की बुद्धि शेष हुई।

(४२३)

मालति मधु मधुकर कर पान।
सुपुरुस जवों हो गुन निधान[१]॥
अबुझ न बुझए भलाहु बोल मन्द।
भेक न पिबए कुसुम मकरन्द॥
ए सखि कि कहब अपनुक दन्द।
सपनेहु जनु हो कुपुरुस संग॥
दूरे पटाइअ सीचीअ नीत।
सहज न तेज करइला तीत॥
कते जतने उपजाइअ गून।
कहल न बुझए हृदयक सून॥
मन्दा रतन भेद नहि जान।
मन्दा बान्दर मूह न सोभए पान॥

नेपाल ११७, पृ: ४२ क ; पं २, विद्यापतीत्यादि, न० गु० ४३१।

शब्दार्थ—अपनुक—अपना ; पटाइअ—पटाना ; सून—शून्य ; मूह—मुख।

अनुवाद—मधुकर मालती का मधुपान करता है, यदि गुणनिधान हो (तभी) सुपुरुष। नासमझ समझता नहीं, अच्छे को भी बुरा कहता है, भेक कुसुम के मकरन्द का पान नहीं करता। हे सखि, अपना विवाद (द्वन्द्व) क्या कहें, स्वप्न में भी कुपुरुष का संग न होवे। यदि नित्य दुग्ध सिंचन करके पटावो तो भी करैला अपनी स्वाभाविक तिक्तता नहीं छोड़ता। कितना भी यत्नपूर्वक गुण उत्पादन करो, हृदय शून्य व्यक्ति बात नहीं समझता। बुरा (मूर्ख) आदमी रत्नभेद नहीं जानता, मन्द स्वभाव बानर के मुख में पान शोभा नहीं पाता।

(४२४)

जलधि मागए रतन भँडार।
चाँद अमिय दे[१] सबर ससार॥
नागर जे होअ कि करत चाहि।
जकरा जे रह से दे ताहि॥
साजनि कि कहब आपन गेआँन।
पर अनुबोधे कतए रह मान॥
बिनु पओले तकराहु दुर जाए।
दुहु दिस पाए अनुताप जनाए॥
पओले अमर होए दहु कोए।
काठ कठिन कुलिसहु सत होए॥

नेपाल १२१, पृ: ४३ क, ४, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ४३२।

४२३—पाठान्तर—नेपाल पोथी के पद के द्वितीय चरण में (१) 'गुननिधान' है ; आधुनिक बंगला हस्ताक्षर में किसी ने 'गुन' शब्द पर "क" बिठा कर गुनक निधान बना दिया है।

४२४—(१) नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'सबर ससार' के स्थान पर 'सगर संसार' कर दिया है।

अनुवाद—समुद्र रत्न-भांडार के लिए प्रार्थना करता है। चाँद समस्त सँसार को अमृत देता है। जो नागर है उसके पास चाहने से क्या होगा? जिसको जो रहता है, वह वही देता है। सजनि, अपने ज्ञान की बात क्या कहें? दूसरे से अनुरोध करने से मान कहाँ रह जाता है? नहीं पाने से वह भी दूर चला जाता है (और भी मानहानि होती है), दोनों दिशाओं में ही अनुताप दृष्टिगोचर होता है (मिलता है)। पाने पर (प्रार्थना करके पाने पर) क्या कोई अमर होता है? काठ के समान कठिन और शत कुलिश के समान (असह्य) होता है।

(४२५)

नागर हो जे[1] सइ हेरितहि[2] जान।
चौसटि कलाक जाहि गेआन॥
सरूप निरूपिअ कए अनुबन्ध।
काठेओ रस दे नाना बन्ध॥
केओ बोल माधव कैओ बोल कान्ह।
मत्रे अनुमापल निछछ पखान॥
बरस दादस तुअ अनुराग।
दूती तह तकरा मन जाग॥

कत एक हमे धनि कतए गोआला।
जलथल कुसुम कैसन होअ माला॥
पवन नहि सहए दीपक जोति।
छुइले काच मलिन होअ मोति॥
ई सवे कहिकहु कहिहह सेवा।
अवसर पाए उतर हमे देवा॥
परधन लोभ करए सब कोइ।
करिअ पेम जञो आइति होइ॥

नागरि जनके बहुल विलास।
काखेहु[3] वचने राखि गेलि आस॥

नेपाल १५२, पृ० ५४ क, पं ५, भणे विद्यापतीत्यादि न० गु० ४३५

शब्दार्थ—हेरितहि—देखने से, अनुबन्ध—चेष्टा ; बन्ध—उपाय ; निछछ—सम्पूर्ण।

अनुवाद—जो नागर होता है, वह देखते ही जाना जाता है, जिसे चौसठो कला का ज्ञान (होता है)। चेष्टा करके सत्य का निरूपण करना पड़ता है, नाना उपाय करने से काष्ट भी रस देता है। कोई (उन्हे) माधव कहता है और कोई कन्हायी, मैं अनुमान करती हूँ कि वह सम्पूर्ण पाषाण है। (राधा दूती को शिक्षा दे रही है कि) वह यह बात माधव से जाकर कहे। द्वादश वर्ष से तुम्हारा अनुराग दूती से (दूती की बात से) उसके (राधा के) मन में जाग रहा है। कहाँ मैं धनि, कहाँ ग्वाला, जल के फूल और स्थल के फूल से माला कैसे हो सकती है? दीप की ज्योति पवन नहीं सहता, काँच स्पर्श करने से मुक्ता मलिन हो जाती है। यह सब कहके मेरा प्रणाम कहना, अवसर पाकर मुझे उत्तर देना। दूसरे के धन का सब लोभ करते हैं, यदि आयत्त हो (तब) प्रेम करे। नागरीजन के विलास (कामना) अनेक (होते हैं)। बात में आशा क्यों दे गये?

४२५—पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'जे' की जगह पर 'से' (२) 'सइ हरितहि' के स्थान पर केवल मात्र 'हेरितहि' (३) काखेहु के स्थान पर कथेहु कर दिया है।

(४२६)

सौरभ लोभे भमर भमि आएल
पुरुव पेम विसवासे।
वहुत कुसुम मधु पान पिआसल
जाएत तुअ उपासे॥

मालति करिअ हृदय परगासे।
कत दिन भमरे पराभव पाओव
भल नहि अधिक उदासे॥

कओनक अभिमत के नहि राखए
जीवओ जग दए हेरि।
की करव ते धन अरु जीवने
जे नहि विलसए वेरि॥

सवहि कुसुम मधुपान भमर कर
सुकवि विद्यापति भाने।

नेपाल २३८, पृष्ठा ८६ क, पं० १ न० गु० ४१७

शब्दार्थ—भमि—भ्रमण करके; विसवासे—विश्वास से; पिआसल—पिपासित; उपासे—उपवासी; परगासे—प्रकाश, अरु—और; वेरि—वेला पर, समय पर।

अनुवाद—पूर्व के प्रेम पर विश्वास रख के भ्रमर घूम कर तुम्हारे पास आया। वह वहुत कुसुमों का मधुपान करके भी पिपासित रह गया है, तुम्हारे पास से भी क्या उपास ही लौटेगा? मालति, हृदय प्रकाश करो। भ्रमर कितने दिन पराभव सह्य करेगा? अधिक उपेक्षा अच्छी नहीं। जीवन और जगत को (अनित्य) देखकर कौन अपने अभिमत (कामना अनुसार) कार्य नहीं करता? यदि समयमत विलास न करो तो तुम्हारे धन और जीवन का क्या फल होगा? सुकवि विद्यापति कहते हैं कि भ्रमर सव फूलों का ही मधुपान करता है।

(४२७)

पहिलहि अमिअ लोभायी
अवे सिन्धु धसि विषवचन कोहायी।
कैसनि भेलि ओअ रीति
आदि मधुर परिनामक तीती।
के तोके वोलए सआनी
कोप न कएलह अवसर जानी।

निधुवन लालस नाहे
पेमलुवुध परिरम्भन चाहे।
यदि खण्डिसि तसु आसा
सुतसि समिध दएवहत वतासा।
विद्यापति कह जानी
हरिसनो कोप न करए सआनी।

रामभद्रपुर पोथी, पद २६६।

४२७—*मन्तव्य*—भनिता का चरण अपूर्ण है। स्वभावतः इसके वाद 'राजा सिवसिंघ रूपनराएन लखिमा देवि माने' है, अनुमान करके नगेन्द्र वावू ने उपरोक्त दो चरण जोड़ दिया है।

शब्दार्थ—घसि—कूदकर; कोहे—पर्व्वत से।

अनुवाद—पहले अमृत का लोभ दिखाती हो, अब विषवचन बोल कर मानो पर्व्वत से समुद्र में फेंक दे रही हो। यह तुम्हारा कैसा व्यवहार है? पहले मधुर और परिणाम में तीता। तुमको चतुरा कौन कहता है? सुयोग देखकर कोप नहीं करती। सम्भोग की लालसा से नाथ प्रेमलुब्ध होकर आलिङ्गन चाह रहे हैं। यदि उनकी आशा खण्डन कर रही हो तो वह मानो प्रबल वायु के समय अग्नि में काठ डाल कर सोने के समान होगा। विद्यापति जान सुनकर कहते हैं कि रसिका हरि के प्रति कोप नहीं करती।

(४२८)

सखि हे आवे कि आओत कन्हाइ।
पेम मनोरथ हठे विघटओलन्हि
कपटहि के पतियाइ॥

दुइ मन मेलि सिनेह अंकुर
दोपत तेपत भेला।
साखा पल्लव फूले वेआपल
सौरभ दह दिस गेला॥

जानि सुपहु तोहे आनि मेराओल
सोना गाथलि मोती।
कैतव कंचन अन्ध विधाता
छायाहु छाछाइनि मोन्ति[1]॥

नेपाल २०६, पृ० ७४ क, पं० ४, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ४१८।

शब्दार्थ—दोपत—द्विपत्र; तेपत—त्रिपत्र; वेआपल—व्यापा; दहदिस—दशों दिशाओं में; विघटओलन्हि—व्याघात किया; पतिआइ—विश्वास करेगा; मेराओल—मिलाया।

अनुवाद—दो मनों का मिलन होने से प्रेम का अंकुर द्विपत्र त्रिपत्र हुआ; दशो दिशाओं में (उसका) सौरभ फैल गया। हे सखि, अभी क्या कृष्ण आएँगे? प्रेम की आशा में अविवेचनापूर्वक व्याघात किया। कपट का विश्वास कौन करेगा? सुप्रभु जानकर तुमने लाकर मिलाया; सोना में मोती गाँथा। अन्ध विधाता का काञ्चन (मूलधन) केवल मात्र छलना है। (शेष चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता)।

(४२९)

साजनि गए बुझावह कान्हू।
उचित बोलइत जे होअ सेहे
दैन भाखह जनु॥

कत न जीवन संकट परए
कत न मीलए निधी।
उत्तिम तैअओ सता न छाड़ए
भल मन्द कर विधी॥

जैसनि सम्पति तैसनि आसति
पुरुष अइसन छला।
आन मन वेवि जदि आन जे राखीअ
ता तें मरन भला॥

नेपाल १२, पृ० ९ ख, पं० ३, भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० ४१३।

[1] ४२८—पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'छायाहु छाड़लि सोती' कर दिया है।

शब्दार्थ—उत्तिम—उत्तम लोग; तैअओ—तथापि; सता—सत्य; गए—जाकर; दैन भाखह जनु—दीनता की बात मत कहना।

अनुवाद—जीवन में जाने कितने संकट पड़ते हैं, कितने रत्न मिलते हैं। विधि जो भी बुरा-भला करे, उत्तम लोग सत्य नहीं छोड़ते। साजनि, जाकर कन्हायी को समझाओ। उचित बात बोलने पर जो होना हो होवे, दीनता प्रकाश मत करना। जैसी सम्पत्ति, वैसी ही आसक्ति, पहले यही रूप था। मान और प्राण दोनों के बीच जो प्राण रखता है, उसका मरण ही अच्छा है।

(४३०)

दूरहि रहिअ करिअ मन आन।
नयन पियासल हटल न मान॥
हास सुधारस तसु मुख हेरि।
बाँधलिए बाँध निवी कति बेरि॥
की सखि करब धरब की गोय।
करिअ मान जौँ आइति होय॥
धसमस करए रहओं हिय जाति।
सगर शरीर धरए कत भाँति॥
गोपहि न पारिअ हृदय उलास।
मुनलाहु वदन वेकत हो आस॥
भनइ विद्यापति तोर न दोस।
भूखल मदन बढ़ावए रोस॥

मिथिला, न० गु० २३४।

शब्दार्थ—पियासल—पिपासित; बाँधलिए—बँधी हुई; गोय—गोपन करके; आइति—आयत्त; धसमस—धड़फड़; मुनलाहु—मूँदने पर भी।

अनुवाद—दूर रह कर मन को अन्य (प्रकार) करती हूँ, पिपासित नयन निषेध नहीं मानते। हास्य सुधारस (संचित) उसका मुख कर बँधी हुई नीवि को कितनी बार बाँधूँ? (उसका मुख देखने से नीवि बन्धी हुई रहने पर भी मालूम होता है कि वह शिथिल पड़ गयी है)। सखि, क्या करें, कैसे छिपा कर रखें? यदि (चित्त) स्वायत्त हो, तब मान करूँ। हृदय धड़धड़ करता है, इसीलिए दबा कर रखती हूँ, समुदय शरीर किस प्रकार शोभा धारण करे। हृदय का उल्लास छिपा नहीं सकती, मुख बन्द किए रहने पर भी हँसी व्यक्त हो जाती है।*

विद्यापति कहते हैं, तुम्हारा दोष नहीं है, क्षुधित मदन रोष बढ़ा रहा है।

(४३१)

दाहिन दिढ़ अनुरागे
पिआ पर वचन न लागे।
बुझल सवे अवगाही
सुते सरवर थाही।
राधे चिते जनु राखह आने
तोके परसन पंचवाने।
सुपहु-सुनारि-सिनेह
चाँद कुमुद सम रेह।
दिवसे दिवसे धर जोति
सोना मेलाओलि मोति।
सुकवि विद्यापति भान
पुने मिले पिआ गुणमान।

रामभद्रपुर पोथी पद २१७।

---

* भ्रूभंगे रचितेऽपि दृष्टिरधिकं सोत्कण्ठमुद्वीक्षते। कार्कश्यं गमितेऽपि चेतसि तनुरोमांचमालम्बते॥
रुद्धायामपि वाचि सस्मितमिदं दग्धाननं जायते। दृष्टे निर्वहनं भविष्यति कथं मानस्य तस्मिन जने। अमरु शतक

अनुवाद—दाक्षिण्य एवं दृढ़ अनुराग जहाँ है वहाँ प्रिय दूसरे के वचन पर कान नहीं देते। अवगाहन करके समझो कि सरोवर का जल (दयित का प्रेम) गम्भीर (होता है)। राधे, तुम अन्य चिन्ता मत करना। तुम्हारे प्रति कामदेव प्रसन्न हैं। सुप्रभु और सुनारी का प्रेम चाँद और कुमुद के प्रेम के समान होता है। सोना के साथ मोती के मिलन के समान प्रतिदिन इसकी ज्योति वृद्धि पाती है। सुकवि विद्यापति कहते हैं कि पुण्यबल से गुणवान प्रिय प्राप्त होता है।

(४३२)

सबे सबतहु कहले नहिअ।
जिव जओ जतने जोगओले रहिअ॥
परसि हलह जनु पिसुनक बोल।
सुपुरुस पेम जीव रह ओल॥
मञे सपनेहु नहि सुमओ[1] देओ।
अइसन पेम तोलि हल जनु केओ॥
रहिअ नुकओले अपना गेह।
खल कौसले टूटि जाएत सिनेह॥
विमुख बुझाए न करिअए बोल।
मुख सुखे घेंगुर काट पटोर॥

नेपाल १२४, पृ० ४४ क, पं० ४, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४६६।

शब्दार्थ—सहले—सहित; न हिअ—सकती नहीं हो; जोगओले—बचा कर; जीव रह ओल—जीवन की सीमा पर्यन्त रहे; तोलि—तोड़ कर; घेंगुर—झिल्ली; पटोर—पट्टवस्त्र।

अनुवाद—सब सबों को कहते हैं, सहन नहीं कर सकती? (नहीं सह सकने से क्या प्रेम रह जाता है)? जितने दिन जीवन है उतने दिन बचाकर रखो (प्रेम जिस प्रकार रहे, उसी प्रकार करो)। खल पड़ोसी की बात पर कान मत दो। सुजन का प्रेम जीवनावधि रहता है। मैं स्वप्न में भी देवता को स्मरण नहीं करती (सर्वदा तुम्हारा ही स्मरण करती हूँ), इस प्रकार के प्रेम को कोई तोड़ न दे। अपने घर में छिपा कर रखना (प्रेम अपने मन में गोपन करके रखना), पीछे खल के कौशल से स्नेह टूट जाता है। अप्रसन्न होकर बातें मत करना। झिल्ली कीड़ा मुख के सुख से पट्टवस्त्र काटता है (केवल मुख की बात के दोष से प्रेम नष्ट हो जाता है)।

(४३३)

जे छल से नहि रहले भाव।
बोललि बोल पलटि नहि आव॥
रोस छड़ाए बढ़ाओल हास।
रस बचोमव बढ़ परेआस॥
कओने परि से हरि बहुड़त
नागर है कओने परी॥
नारि सभाव कपल हमे मान।
पुरुस विचखन के नहि जान॥
आदरे मोरे हानि गए भेल।
वचनक दोसे पेम टूटि गेल॥
नागरे नागरि हृदयक मेलि।
पाँच बान बले बहुड़त केलि॥
अनुनय मोरि बुझाउवि रोए।
वचनक कौसले की नहि होए॥

नेपाल २६६ पृ० ६६ ख पं ३, भने विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४६१

[1] ४३२—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'सुमनो' के स्थान पर 'सुमरनो' कर दिया है।

शब्दार्थ—बोललि बोल—कही हुई बात; रोस छड़ाए—क्रोध करके; बओसव—मान टूटेगा; परेआस—प्रयास; घहुरत—लौटेगा।

अनुवाद—जो भाव था वह रह नहीं गया, जो बात बोल दी जाती है वह फिर लौटकर नहीं आती। रोष करके (विस्तार करके) हँसी बढ़ायी। (अधिक हास्यास्पद हुई) रुष्ट हो जाने पर बड़े प्रयास से मान भंग होता है। ओ माँ, किस प्रकार वह हरि लौट कर आवेगा? नारी के स्वभाव से मैंने मान किया, पुरुष विचक्षण क्या जाने? (वे समझ नहीं सके कि मैंने आदर की साध से मान किया है)। आदर के विषय में मेरी हानि हुई, वचन के दोष से प्रेम टूट गया। पँचवाण के बलसे नागर और नागरी के हृदय का मिलन एवं केलि लौटेंगे। मेरा अनुनय रोकर समझाना, वचन के कौशल से क्या नहीं होता है?

(४३४)

जञो डिठिकाओल एहि मति तोरि।
पुनु हेरसि किए परि गोरि॥
अइसना सुमुखि करिअ कके रोस।
भञे कि बोलिबो सखि तोरे दोस॥

एहन अवथ रे है वेवहार।
पर पीड़ाए जीवन धिक छार॥
भल कए पुछलए धुरि सँसार।
तर सूते गढ़ि काट कुम्भार॥

गुन जञो रह गुननिधि सञो संग।
विद्यापति कह इ बड़ रंग॥

नेपाल १०७, पृ० ३८ ख, पं० ४, न० गु० ४२७

शब्दार्थ—जञो—यदि; डिठिका—दृष्टि का; ओल—सीमा; परि—अव्यय शब्द; गोरी—गौराङ्गी; सँसार—संसार कुम्भार—कुम्भकार।

अनुवाद—सुन्दरि, यदि दृष्टि की सीमा पर (जाओ), यही तुम्हारी मति (यदि तुम्हारी यही इच्छा कि माधव तुम्हारे सामने न आवे) तो फिर किस प्रकार उसको देख रही हो? सुन्दरि, इस तरह रोष क्यों कर रही हो? सखि, मैं क्या बोलूँ? तुम्हारा दोष। ऐसी अवस्था में ऐसा व्यवहार! जो दूसरों को पीड़ा देता है उसका जीवन धिक्। संसार में घूम कर अच्छी प्रकार पूछ-ताछ कर जानोगी कि कुम्भकार (घट) गढ़ कर तल में सूत देकर (उसको) काट कर फेंक देता है। गुण-निधि के संग यदि रहे (तभी) गुण, विद्यापति कहते हैं, यही बड़ा कौतुक।

(४३५)

बड़ि बड़ाइ सबे नहि पावइ
विधि निहारइ याहि।
अपन वचन जे प्रतिपालय
से बड़ सबहु चाहि॥
साजनि सुजन जन सिनेह।
कि दिय अजर कनक उपम
कि दिय पसान रेह॥

ओ जदि अनल आनि पजारिय
तइओ न होय विराम।
इ जदि असि कि कसि कइ काटी
तइओ न तेजय ठाम॥
गरल आनि सुधारसे सिंचिअ
सीतल होमाय न पार॥
जइओ सुधानिधि अधिक कुपित
तइओ न वरिस खार।

भन विद्यापति सुन रमापति
सकल गुन निधान।
अपन वेदन ताको निवेदिय
जे परवेदन जान॥

मिथिला न० गु० ६४३।

शब्दार्थ—पढ़ि बड़ाइ—श्रेष्ठत्व; निहारइ—देखे; याहि—जिसको; अजर—सुन्दर; पजारिय—ज्वालाही; कसि कइ—कस के, जोर करके; होमाय—होय।

अनुवाद—सब कोई श्रेष्ठत्व नहीं पाता है, विधि जिसपर (कृपा) दृष्टि करता है (वही) पाता है। अपना वचन जो प्रतिपालन करता है, वही सबों की अपेक्षा बड़ा है। सजनि सुजन पुरुष का स्नेह अक्षय (है)। उसकी उपमा स्वर्ण के साथ अथवा पाषाण रेखा के साथ करूँ। उसे (स्वर्ण को) यदि अग्नि में लाकर जलाऊँ, तथापि परिवर्तन नहीं होता; यह (पाषाण रेखा) यदि बलपूर्वक असि द्वारा भी काटी जाए तो भी वह स्थान त्याग न करेगी (मिटेगी नहीं)। गरल में अमृत का सिंचन करने पर भी वह शीतल नहीं हो सकता, यद्यपि चन्द्रमा अधिक भी कुपित हो जाए, तो भी वह क्षार (लवण) की वर्षा नहीं कर सकता। विद्यापति कहते हैं, सकल गुणनिधान रमापति सुन, अपनी वेदना उससे निवेदन करो जो परवेदन जानता है।

(४३६)

कूपक पानि अधिक होअ काटि[1]।
नागर गुने नागरि रति[2] बाटि॥
कोकिल कानन आनिअ सार[3]।
वर्षा[4] दादुर करए विहार॥
अहनिसि साजनि परिहरि रोस।
तञे नहि जानसि तोरे दोस॥

छवओ बारह मासक मेलि।
नागर चाहए रंगहि केलि॥
ते परि तकर करओ परिणाम[5]।
कुवसु बोल जनु होए विराम[6]॥
मोरे बोले दूर कर रोस।
हृदय फुजी कर हरि परितोस॥

नेपाल ७६, पृ० २८ क, पं० २, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४५६।

शब्दार्थ—काटि—काटने से; बाटि—भाग पाती है; आनिअ—लाती है; छवओ—छः; फुजी—खोलकर।

अनुवाद—कूप का जल काटने से और बढ़ता है; नागर के गुण से ही नागरी रति का भाग पाती है। कोकिला कानन में [illegible] (वसन्त) लाती है, वर्षाकाल में दादुर विहार करता है। सजनि, अहर्निश रोष परिहार करो, तुम

४३६—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'काटि' के स्थान पर 'काढ़ि' (२) 'बाटि' के स्थान पर 'बाढ़ि' [illegible] के स्थान 'वरसा' (५) पोथी में 'परि' तर है, नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'परिणाम' कर दिया है, (६) नगेन्द्र बाबू ने 'कुवसु' के स्थान पर 'विरम' कर दिया है और पोथी के 'विर' की जगह 'विराम' कर दिया है।

अपना दोष नहीं जानती हो। छवो ऋतु और बारहो मास (सर्वदा) नागर रंग (आनन्द) में ही केलि चाहता है। उसी रूप में उसके (प्रेम का) परिमाण करना जिससे मन्द बात से (शिकायत) से उसकी विरति न होवे। मेरी बात से रोष दूर करो, हृदय खोल कर हरि का परितोष करो।

(४३७)

सुखे न सुतलि कुसुम सयन
नयने मुंचसि नारि।
तहाँ की करव पुरुख भूसन
जहाँ असहनि नारि॥
राही हटे न तोलिअ नेह।
कान्ह सरीर दिने दिने दूरब
तोराहु जीव सन्देह॥

परक वचन हित न मानसि
बुझसि न सुरत तन्त।
मने तवो जवो मौन करिअ
चोरि आनए कान्त॥
किछु किछु पिए आसा दिहह
अति त करब कोप।
आधके जतने वचन बोलब
संगम करब गोप॥

नव अनुरागे किछु होएवा
रह दिग तिनि चारि[१]।
प्रथम प्रेम ओर धरि राखए
सेहे कलामति नारि॥

नेपाल ९२, पृ० २० क, पं० ६, विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४९१।

शब्दार्थ—पुरुख भूषण—पुरुष रत्न; असहनि—असहिष्णु; तोलिअ—तोड़ना; तन्त—तत्व।

अनुवाद—सुख से कुसुम-शय्या पर शयन नहीं करती, नयनों से अश्रु-मोचन करती रहती है। जहाँ नारी असहिष्णु हो वहाँ पुरुष-भूषण (गुणवान पुरुष) क्या करता है? राई, बलपूर्वक स्नेह मत तोड़ना, कन्हायी का शरीर दिनोदिन दुर्बल हो रहा है, तुम्हारा भी प्राणसंशय है। दूसरे की बात हित नहीं मानती, सुरत-तत्व नहीं समझती, यदि तू समझ-बूझ कर चुप रहे (तो) कान्त को चुपचाप ले आऊँ। प्रियतम को कुछ कुछ आशा देना, अत्यन्त कोप मत करना, अल्प यत्न से बात बोलना, छिपा कर संग करना। दो चार दिनों के बाद कुछ नव अनुराग होगा (जो) शेष पर्यन्त प्रथम प्रेम को रखे रहती है, म्लान नहीं होने देती, वह कलावती नारी (है)।

४३७—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'दिन तिनि चारि' के स्थान पर 'दिन दुइ चारि' कर दिया है।

(४३८)

कत खन वचन विलासे।
सुपुरुष राखिअ आसा पासे॥
आवे हमे गेलिहु फेदाई।
अथिरक आतर मधथ लजाई॥
वोलि विसरलह रामा।
सखि असवोलिहे कह कत[1] ठामा॥
पर विपति न रह रंगे[2]।
कुसुमित कानन मधुकर संगे॥

समय खेपसि कति भाँती।
वड़ि छोटि भेलि मधुमासक राती॥

नेपाल १३८, पृ० ४६ क, पं० १, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु०४४७।

शब्दार्थ—फेदाई—ताड़ित; विसरल—भूली; असवोलिहे—समझाया; विपति—विपत्ति।

अनुवाद—वचनविलास से सुपुरुष को कितने दिनों तक आशा के पाश में बाँध कर रखूँगी। इस समय में ताड़ित हुई है, अस्थिर चित्त के (कार्य में) मध्यस्थ लज्जा पाता है। रामा, वात (वचन) विस्मृत हुई; सखि, कितनी बार कहाँ कहाँ (तुम्हें) समझाया। दूसरे की विपत्ति में रंग (आनन्द) नहीं है, कुसुमित कानन में ही मधुकर का शब्द (समागम) होता है। किस प्रकार समय काट रही हो? चैत्र मास की रात्रि अत्यन्त छोटी हुई।

(४३६)

बोललि बोल उत्तिम पए राख।
नीच सवद जन की नहि भाख॥
हमे उत्तिम कुल गुनमति नारि।
एत वा निअ मने हलव विचारि॥
सिनेह वढ़ाओल सुपुरुप जानि।
दिने कएलह आसा हानि॥
कत न अछ जगत[1] रसमति फुल।
मालति मधु मधुकर पए भुल॥

गेल दीन पुनु पलटि न आव।
अवसर पल वहला रह परचाव॥

नेपाल ८२, पृ० ३० ख, पं० १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ३४८।

शब्दार्थ—बोललि बोल—जो वात कही गयी; सवद—सम्बन्ध; भाख—बोलता है; हलव विचारि—विचार करना।

अनुवाद—उत्तम लोग अपने वचन का पालन करते हैं, नीच सम्बन्ध (नीच कुलोद्भव) व्यक्ति क्या नहीं बोलते हैं? मैं उत्तम कुल के गुणवती नारी हूँ, इसे अपने मन में विचार करना। सुपुरुष जान कर स्नेह बढ़ाया, दिनों दिन

४३८—*मन्तव्य*—नगेन्द्र वावू ने संशोधन करके—(१) 'कह कत' के स्थान पर 'कतकत' (२) 'पर वित्ते पति न रह रंगे' के स्थान पर 'पर विपते न रह रंगे' कर दिया है।

४३६—*पाठान्तर*—नेपाल पोथी के पद की तीसरी पंक्ति में किसी ने आधुनिक बंगला हस्ताक्षर में 'कत न अछ जगत' के वदले 'कत न जगत अछ' कर दिया है।

आशा की हानि की। जगत में कितने रसमय फूल हैं, मधुकर मालती के मधु पर ही भूलता है। दिन जाने पर फिर लौट कर नहीं आता, अवसर क्षण व्यतीत होने पर पश्चाताप रह जाता है।

(४४०)

झटक झाटल छोड़ल ठाम।
कएल महातरु तर विसराम॥
ते जानल जिव रहत हमार।
सेस डार टूटि पलल कपार॥
चल चल माधव कि कहब जानि।
सागर अछल थाह भेल पानि॥
हम जे अनओले की भेल काज।
गुरुजने परिजने होएत उ हे लाज॥
हमरे वचने जे तोहहि विराम।
फेके लेओ चेप पाव पुनु ठाम॥

नेपाल ३२, पृ० १३ क, पं० ५, भनह विद्यापतीत्यादि न० गु० ३४६।

शब्दार्थ—झटक—आँधी; झाटल—आहत; सेस—शेष; डार—डाल; कपार—कपाल; थाह—अल्प गम्भीर; फेकलेओ—फेकने पर भी; चेप—ढेला।

अनुवाद—आँधी से आहत होकर वह स्थान त्याग कर महातरु के नीचे विश्राम किया। उससे जाना कि मेरी जीवन-रक्षा हो गयी। इसके बाद डाली टूट कर कपाल पर गिरी। जावो, जावो, माधव, जान कर क्या बोलूँ; समुद्र भी (भाग्य के दोष से) अल्प गम्भीर हो गया। मुझे जो मँगवाया, क्या काम हुआ? गुरुजन परिजन के निकट लज्जा हुई; मेरी बात से तुम्हारा (व्यवहार का) विराम होवे। ढेला फेंकने पर वह फिर स्थान पाता है (मिट्टी में आश्रय पाता है)।

(४४१)

गगन मडल दुहुक भूखन
एकसर उग चन्दा।
गए चकोरी अमिअ पीवए
कुमुदिनि सानन्दा॥
मालति काँइए करिअ रोस।
एकल भमर बहुत कुसुम
कमन तोहरि दोस॥
जातकि कैतकि नवि पदुमिनि
सब सम अनुराग।
ताहि अवसर तोहि न विसर
एहे तोर बड़ भाग॥
अभिनव रस रभस पओले
कमन[1] रह विवेक।
भन विद्यापति पहर हित कर[2]
तैसन हरि पए एक॥

नेपाल ४५, पृ० १७ ख, पं ५, न० गु० ४४०

४४१—नेपाल पोथी का पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'कमन' के स्थान पर 'कओन' (२) 'पहर हित कर' के स्थान पर 'परहित कर' बना दिया है।

शब्दार्थ—मडल—मण्डल; एकसर—एकमात्र; उग—उदय होने से; गए—जाकर; काँहए—क्यों; तोहरि—उसका; नवि पदुमिनि—नवीना पद्मिनी; विसर—भूल जाए।

अनुवाद—गगन मण्डल में दोनों का भूषण होकर चन्द्रमा अकेला उदित होता है—चकोरी जाकर अमृतपान करती है, कुमुदिनी आनन्दिता होती है। मालति, क्यों इस प्रकार रोष कर रही हो? भ्रमर अकेला, कुसुम अनेक, (इसलिए) उसका क्या दोष है? जातकी, केतकी, नवीना पद्मिनी सब के प्रति भ्रमर का समान अनुराग है, उस अवसर पर भी (अनेकों के मध्य में) तुमको भूल नहीं जाता, यही तुम्हारा बड़ा भाग्य है। नूतन आनन्दरस पाने पर विवेक कहाँ रह जाता है? विद्यापति कहते हैं, दूसरे का हित करे, ऐसे लोगों में हरि अकेले हैं।

(४४२)

मानिनि आब उचित नहिं मान।
एखनुक रंग एहन सन लगइछि
जागल पय पचोवान॥
जुड़ि रयनि चकमक कर चानन
एहन समय नहिं आन।
एहि अवसर पहु मिलन जेहन सुख
जकरहिं होए से जान॥

रभसि रभसि अलि विलसि विलसि करि
जेकर अधर मधु पान।
अपन अपन पहु सवहु जेमाओलि
भूखल तुअ जजमान॥
त्रिवलि तरंग सितासित संगम
उरज सम्भु निरमान।
आरति पति परतिग्रह मगइछि
करु धनि सरवस दान।

दीप दिपक देखि थिर न रहय मन
दृढ़ करु अपन गेआन।
संचित मदन वेदन अति दारुन
विद्यापति कवि भान॥

ग्रियर्सन ८०; न० गु० ४१२

शब्दार्थ—सन—समान; पचोवाण—पंचवाण; जुड़ि—शीतल; चानन—ज्योत्स्ना; जेमाअलि—भोजन करवाया।

अनुवाद—मानिनि, अब मान उचित नहीं है। इस समय का लक्षण देखने से मालूम होता है कि मदन जाग उठा। रजनी शीतल, ज्योत्स्ना चमक रही है, ऐसा समय दूसरा हो नहीं सकता। इस अवसर पर प्रिय मिलन में जो सुख है, जिसे (जिस रमणी को) होगा, वही जानेगा। भ्रमर अतिशय आनन्द से सहकार में (रभसि रभसि) विलास करते करते मधुर कुसुम मधु पान कर रहा है। सबों ने अपने प्रभु को भोजन करवाया (विलास सम्भोग से तृप्त किया) केवल तुम्हारे यजमान भूखे (अतृप्त) हैं। त्रिवेणी (त्रिवली रेखा) की तरंग में गङ्गा और यमुना के तुल्य श्वेत और कृष्ण के संगम पर (अङ्ग विशेष का रंग गौर और रोमावलि का रंग काला) पयोधररूपी शम्भु निर्मित होकर विराज रहे हैं। (इस स्थान पर दान करने से महापुण्य, अतएव), तुम्हारे प्रति जब कातर भाव से (वे) दान की प्रार्थना कर रहे हैं, तो हे धनि, सर्वस्व दान करो। दीप की शिखा देखकर मन स्थिर नहीं रहता है, अपना मन स्थिर करो। विद्यापति कहते हैं, मदन-वेदना संचित (अपूर्ण) रखना अति क्लेशदायक होता है।

(४४३)

छलिहु पुरुब भोरे न जाएब पिआ मोरे
पानिक सुतलि धनि कलहइ।
खने एके जागलि रोअए लागलि
पिआ गेल निज कर मुदली दइ॥
दिने दिने तनु सेख दिवस वरिस लेख
सुन कान्ह तोह बिनु जैसनि रमनी॥
परक वेदन दुख न बुझए मुरुख
पुरुस निरापन चपल मती।
रभस पललि बोल सत कए तन्हि लेल
कि करति अनाइति पललि जुवति॥

नेपाल १६८, पृः ६० क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ७७०

शब्दार्थ—छलिहु—थी; पानिक सुतलि—जल में, भीगी जगह में सोयी; कलहइ—झगड़ा करके; मुदली—अंगूठी; निरापन—जो अपना नहीं होता; अनाइति—निराश्रय।

अनुवाद—पहले यह भ्रम था कि मेरे प्रियतम नहीं जाएँगे। सुन्दरी झगड़ा करके भींगे स्थान पर जाकर सो गयी। कुछ क्षणों के बाद जाग कर रोने लगी कि प्रियतम अपने हाथ की अंगूठी देकर चले गए हैं। कन्हायी, तुम्हारे विरह में दिन, वर्ष, गणना करते करते दिनों-दिन रमणी का शरीर शेष हो गया। मूर्ख दूसरे की वेदना नहीं समझता, पुरुष चपलमति (होता है) और वह कभी भी अपना नहीं होता। रभस के समय उसने जो (ठट्ठा करते हुए) कहा, नायक ने उसे सत्य मान लिया, (इस समय) युवती निराश्रय हो पड़ी है।

(४४४)

जलधि सुमेरु दुओ थिक सार।
सब तह गनिअ अधिक वेवहार॥
मालति तोहे जदि अधिक उदास।
भमर गन्हो सओ आवे कमलिनि पास॥
लाथ करसि कत अवसर पाए।
देहरि न होअए हाथे झपाए॥
कुच जुग कंचन कलस समान।
मुनि जन दरसने उगए गेआन॥
तन्हे वर नागरि अपने गून।
कओनक देले हो बड़ पून॥

नेपाल १८६, पृः ६६ ख, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४४१

शब्दार्थ—थिक—होते हैं; बेवहार—उपयोग; लाथ—छलना से; देहरि—वहिर्द्वार।

अनुवाद—समुद्र और सुमेरु दोनों सार वस्तु, सबों की अपेक्षा व्यवहार की अधिक गणना करती हूँ (उत्तम व्यवहार सबों की अपेक्षा श्रेष्ठ)। मालति, यदि तुम अधिक उपेक्षा करोगी, भ्रमर अभी ही कमलिनी के निकट चला जाएगा। अवसर (सुयोग) पाकर कितनी छलना करती हो, हाथ से द्वार ढाँका नहीं जा सकता। कुचयुगल कांचन कलस के समान, मुनिजन के देखने से भी उन्हें ज्ञान होता है (जैसे ऋष्यश्रृङ्ग को हुआ था), तुम श्रेष्ठ नागरी हो, स्वयं समझ कर देखो। किसको (यह कंचन कलस) देने से अधिक पुण्य होता है।

(४४५)

जतनेहु ओ रे जतेओ न निरवह।
ए कन्हु ततेओ अंगिरलह॥
से सबे बिसरु तोंहे ओ रे बिनु हेतु।
मरए मधथहि मकरकेतु॥
कपट कइये कत ओ रे कहु हित।
बड़ बोल छड़ बड़ अनुचित॥
मोञे अवला वरु ओ रे दय जिव।
तरब दुसह नरि सिव सिव॥

भनइ विद्यापति ओ रे सहि लेह।
सुपुरुस वचन पसान रेह॥

मिथिला; न० गु० ६१

शब्दार्थ—जतनहु—यत्न करने पर भी; जेतओ—जो; निरवह—निर्वाह; मधथ—मध्यस्थ; नरि—नदी।

अनुवाद—यत्न करने पर भी जो निर्वाहित नहीं होता, हे कन्हायी, तुमने उसे भी अङ्गीकार किया था। वह सब विना कारण भूल गए, मध्यस्थ मकरकेतु मर गया। (बहुत वार दो पक्षों के बीच में जब झगड़ा होता है, उस समय मध्यस्थ विपन्न होता है। मेरे और तुम्हारे बीच में मदन ने मिलन करवाया था। इस समय तुम्हारी उपेक्षा से वही मध्यस्थ ही मर गया)। कपट करके कितनी हित की बातें कह रहे हो बड़े लोगों को (अङ्गीकृत) बात छोड़ना बहुत अनुचित है। मैं अवला, वरन् जीवन देकर (प्राण त्याग करके) शिव शिव करके दुसह नदी उत्तीर्ण होऊँगी (इस यातना से मुक्त होऊँगी)। [अन्तकाल में शिव शिव बोलती मरूँगी, जिससे मदन की पीड़ा और कभी भी सहन न करना पड़े।] विद्यापति कहते हैं, सहलो, सुपुरुष की बात पाषाण-रेखा (माधव अङ्गीकार रक्षा करेंगे, भूलेंगे नहीं)।

(४४६)

फुल एक फ़ुलवारि लाओल मुरारि।
जतनइ पटओलनि सुवचन वारि॥
चौदिस बाँधलनि सीलकि आरि।
जीव अवलम्बन करू अवधारि॥
तथुहुँ फुलल फुल अभिनव पेम।
जसु मूल लहय न लाखहु हेम॥
अति अपरुब फुल परिनत भेल।
दुइ जीव अछल एक भए गेल॥
पिसुन कीट नहि लागल अहि।
साहसँ फल देल विहि देल निरवाहि॥
विद्यापति कह सुन्दर सैह।
कारञ जतन फलमत हो जैह॥

मिथिला; न० गु० ५५७

शब्दार्थ—पटओलनि—जल दिया; सीलक—शील का; लहय—हो सकता है।

अनुवाद—मुरारि बाग में एक फूल का वृक्ष ले आए, (उसे) यत्नपूर्वक सुवचन (स्वरूप) जल से सींचा। (वृक्ष के) चारो ओर शीलता की आरी बाँधी (उससे) वृक्ष ने जीवन अवलम्बन किया (बचा) यह निश्चित किया। उसीसे (उस वृक्ष में) अभिनव प्रेम (स्वरूप) फूल फूटा, लच स्वर्ण भी जिसका दाम नहीं हो सकता। अति अपूर्व फूल परिणत हुआ; दो जीवन थे, एक हो गए। दुष्ट लोग (स्वरूप) कीट उसमें (फूल में) नहीं लगे; साहस करके फल दिया, (फूल फल में परिणत हुआ), विधाता ने निर्वाह कर दिया। विद्यापति कहते हैं, यत्न करने से जो फलवान होता है, वही सुन्दर है।

(४४७)

गेलाँहु पुरुव पेमे उतरो न देइ।
दाहिन वचन वाम कए[1] लेइ॥
ए हरि रस दए[2] रुसलि रमनी।
हम तह न आउति कुंजरगमनी॥
गइये मनावह रहओ समाजे।
सब तह वड़ थिक आँखिक लाजे॥
जे किछु कहलक से अछि लेले।
भल कहि[3] बुझब अपनहि गेले॥

भनइ विद्यापति नारी सोभावे।
रूसलि रमनि पुनु पुनभत पावे॥

रागतरंगिनी—पृ० १०७ न० गु० ४००

शब्दार्थ—उत्तरो—उत्तर। दाहिन—दक्षिण, अनुकूल। हम तह—मुझ से। समाजे—पास में साथ में। अछि लेले—लिए हूँ।

अनुवाद—पूर्वप्रेम की (बातें करती) गमन किया, उत्तर नहीं देता, अनुकूल वचन को प्रतिकूल के समान ग्रहण करता है (अच्छे को भी बुरा मानता है)। हे हरि, प्रेम दिखा कर दूसरे की रमणी को रुठा देते हो। जा कर मनावो, पास में बैठो सब की अधिक आँख की लज्जा होती है (तुम्हारे सर्वदा पास रहने से उसे चक्षु-लज्जा होगी, मान भंग हो सकता है)। जो कुछ कहा, उसे लिए हुई हूँ (मैं जानती हूँ), स्वयं जाने से अच्छी प्रकार समझ सकोगे। विद्यापति कहते हैं, नारी का (ऐसा ही) स्वभाव होता है, रुष्ट रमणी को पुण्यवान फिर प्राप्त होता है।

(४४८)

करतल कमल नयन ढ़र नीर।
न चेतए सँभरन कुन्तल चीर॥
तुअ पथ हेरि हेरि चित नहि थीर।
सुमरि पुरुब नेहा दगध सरीर॥
कते परि माधव साधब मान।
विरही जुवति माँग दरसन दान॥
जल-मधे कमल गगन-मधे सूर।
आंतर चादहु[1] कुमुद कत दूर॥
गगन गरज मेघा सिखर मयूर।
कत जन जानसि नेह कत दूर॥
भनइ विद्यापति विपरित मान।
राधा वचने[2] लजाएल कान॥

रागत—पृ० ११६; न० गु० ४०६

४४७—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) कइ (२) दया (३) कय कर दिया है।
४४८—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) चान (२) वचन कर दिया है।

शब्दार्थ—कमल—मुखकमल; सँभरन—आभरन; सुमरि—स्मरण करके; सूर—सूर्य; —आँतर—अन्तर।

अनुवाद—मुखकमल करतल लग्न, नयनों से नीर वह रहा है, कुन्तल और वस्त्र के सम्बन्ध में चेतना नहीं है। तुम्हारा पथ देखते देखते चित्त स्थिर नहीं है, पूर्व प्रेम स्मरण करने से शरीर दग्ध होता है। हे माधव (तुम) कैसे मान किए रहोगे? विरहिनी युवती (तुम्हारा) दर्शन माँगती है। जल में कमल वास करता है और सूर्य आकाश में; कुमुद और चन्द्रमा में अनेक व्यवधान है (तब भी प्रेम रहता है)। मेघ गगन में गर्जन करता है, मयूर पर्वत शिखर पर (रहता है) (तब भी मेघ देख कर मयूर आनन्द से नृत्य करता है), प्रेम कितनी दूर तक जाता है, इसे कितने आदमी जानते हैं।

(४४९)

माधव सुमुखि मनोरथ पूर।
तुअ गुने लुबुधि आइलि एत दूर॥
जे घर बाहर होइतेँ फेदाए।
साहस तकर कहए नहि जाए॥
पथ पीछर एक रयनि अन्धार।
कुच-जुग-कलसे जमुना भेलि पार॥
वारिद वरिस सगर महि पूल।
सहसह चउदिस विसधर बुल॥
न गुनलि एहनि भयाउनि राति।
जीवहु चाहि अधिक की साति॥
भनइ विद्यापति दुहु मन बोध।
कमल न विकस भमर अनुरोध॥

तालपत्र न० गु० ५२०

शब्दार्थ—पूर—पूर्ण करो; फेदाए—भागे; पीछर—पिच्छिला, चिकना, जिस पर पैर फिसलते हैं, रयनि अन्धार—अँधेरी रात। वारिद—मेघ; सगर—सकल; महि पूल—सारी पृथ्वी भर गयी है; विसधर बुल—साँप घूम रहे हैं, साति—शास्ति।

अनुवाद—माधव, सुन्दरी का मनोरथ पूर्ण करो, तुम्हारे गुण से लुब्ध होकर इतनी दूर आयी है। जो घर से बाहर होते भागती है (डरती है), वह इस आशा से कितना साहस दिखा रही है, कहा नहीं जाता। एक तो अन्धेरी रात (दूसरे) रास्ता चिकना, कुच-युग को कलस बना कर यमुना पार हुई है। मेघ वर्षण कर रहा है, सकल मही जल से पूर्ण हो गयी है। चारो ओर सहस्रों विषधर विचरण कर रहे हैं। ऐसा भयानक रात्रि को भी कुछ नहीं समझती, जीवन से बढ़ कर किसका डर है (अभिसार के लिए जीवन का भी त्याग करने को प्रस्तुत है)। विद्यापति कहते हैं कि दोनों मन में समझते हैं, कमल क्या भ्रमर के अनुरोध से विकसित नहीं होता?

(४५०)

से कान्ह से हम से पचवान।
पाछिल छाड़ि रंग आवे आन॥
पाछिलाहु पेमक कि कहब साध।
आगिलाहु पेम देखिअ अवे आध॥
बोलि विसरलह दअ विसवास।
से अनुरागल हृदय उदास॥
कवि विद्यापति इहो रस भान।
विरल रसिक-जन ई रस जान॥

मिथिला; न० गु० ४७२

*तुलनीय—गिरौ कलापी रागने पयोदो लक्षान्तरेहर्कश्च जलेषु पद्मम्।
द्विलक्षदूरे कुमुदस्य बन्धु यो यस्य हृद्यः नहि तस्य दूरम्। कालिदास

अनुवाद—वही कन्हायी, वही मैं, वही मदन, अतीत छोड़ कर अब दूसरा ही रंग है (हमलोगों के पूर्व प्रेम को विस्मृत कर कन्हायी अब अन्य रमणी में अनुरक्त हो गए हैं)। अतीत प्रेम की साध क्या कहूँ, उस समय के प्रेम का अर्धमात्र ही आजकल देख रही हूँ। विश्वास देकर वे दिया हुआ वचन भूल गए, वह अनुराग-युक्त हृदय उदास हुआ। विद्यापति कवि यह रस कह रहे हैं, इस रस को जानने वाले व्यक्ति विरले होते हैं।

(४५१)

प्रथमहि कयलह नयनक मेलि।
आसा देलह हसिकहु हेरि॥
तेह से आज अएलाहु तुअ पास।
वचनेहु तोहे अति भेलिहे उदास॥ध्रु०॥

साजनि तोहर सिनेह भल भेल।
पहिला चुमुन कि दूर गेल॥
आवहु करिअ रस परिहरि लाज।
अंगिरल वाण छड़ावह आज॥

अपना वचन नहीं परकार।
जे अगिरिअ से देलहि नितार॥

नेपाल ११६, पृ० ४२ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—कयलह—किया; हसिकहु हेरि—हँसकर देखकर; चुमुन—चुम्बन; परिहरि—छोड़कर; अंगिरिअ—अंगीकार किए हुई हो; परकार—प्रकार—विभिन्नता।

अनुवाद—प्रथम तो नयनों का मिलन किया; हँस कर कटाक्ष-क्षेप से तुमने आशा दी। इसी से आज तुम्हारे पास आया हूँ; किन्तु एक बात करते ही तुम उदासीन दिखायी देने लगती हो। सजनि, तुम्हारा प्रेम खूब अच्छा हुआ। प्रथम चुम्बन क्या दूर चला गया? अभी भी लज्जा छोड़ कर रस (आनन्द) करो। आज जिस वाण को स्वीकार किया है (अर्थात् जो वाण तुम्हारे पास है) उसे छोड़ो। अपनी बात में विभिन्नता पैदा नहीं की जाती। जो अङ्गीकार किया जाता है उसे पूर्ण किया जाता है।

(४५२)

जनम होअए जनि जओं पुनु होइ।
जुवती भइ जनमए जनु कोइ।
होइह जुवति जनु हो रसमन्ति।
रसओ बुझए जनु¹ हो कुलमन्ति॥
इ धन मागओं विहि एक पए तोहि।
थिरता दिहह अवसानहु मोहि॥

मिलि सामि नागर रसधारा।
परवस जनु होअ हमर पियारा॥
होइह परवस बुझिअ विचारि।
पाए विचार हार कओन नारि॥
भनइ विद्यापति अछ परकार।
दन्द समुद होएत जीव दए पार॥

नेपाल ४८, पृ० २२ क, पं ४: न० गु० ४३७

४५२—मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'बुझए' इसके वाद "जनु" कर दिया है।

शब्दार्थ—जओं—जन्म; थिरता—स्थैर्य; सामि—स्वामी; दन्द—द्वन्द्व, कलह; सुमुद—समुद्र ।

अनुवाद—यदि जन्म लेकर फिर आना पड़े, (भगवान करें) किसी को युवती होकर आना न पड़े। यदि युवती हो तो रसवती न हो, यदि रस समझे तो कुलवन्ती न हो। हे विधाता, तुम्हारे पास केवल एकमात्र निवेदन यही है कि अवसान में (शेषावस्था में) स्थिरता देना। स्वामी नागर और रसाधार हो, मेरा प्रिय परवश न होवे। प्रिय यदि परवश हो भी, तो कुछ विचार रखे, (उनके दोषगुण विचार करने की शक्ति का लोप न हो)। (इस शक्ति के रहने से वे समझ सकेंगे कि) कौन नारी (उनके गले का) हार (स्वरूप) होने योग्य है। विद्यापति कहते हैं, उपाय है (यह) द्वन्द्व-समुद्र प्राण देने से पार हो सकता है।

(४५३)

एक दिस कान्ह[२] अओकादिस
सुवितत बंस बिसाला।
दुइ पथ चढ़लि नितम्बिनि
संसअ पड़ु कुल वाला॥
पंचवान अति आतए
धैरजे कर पशु थिरे[३]।
आँचर मुह दअ काँदए
झाँखए नयन बह नीरे॥

गमने गमाओलि गरिमा
अगमने जिवन सन्देह।
दिने दिने तनु अवसन भेल
हिमकमलिनि सम नेह॥
अबहु न सुमरह मधुरिपु
कि करति सुन्दरि नाम।
"मोहि बिसरलह
कहिनी रहु ठाम"॥

रागतरंगिनी पृ० ८७; इति विद्यापतेः (लोचन); न० गु० ३०४

अनुवाद—गमन करने से गौरव जाता है, अगमन में जीवन ही संशय में पड़ जाता है अर्थात् अभिसार में गमन करने से गरिमा नष्ट हो जाती है और गमन न करने से प्राण ही जाने का डर होता है। दिनों-दिन शरीर अवसन्न हुआ, तुषार (के स्पर्श से) कमल के समान अर्थात् कमलिनी जिस प्रकार तुषार के स्पर्श से मलिन हो जाती है, उसी प्रकार कृष्ण के लिए मेरा शरीर अवसन्न हो गया। अभी भी मधुरिपु (मुझको) स्मरण नहीं करता, (मेरा) सुन्दरी नाम क्या करेगा—अर्थात् मेरे सुन्दरी नाम की सार्थकता कहाँ रह गयी। मुझे विस्मृत कर दिया, यह कहानी बहुत जगह प्रकाशित होगी। एक ओर कन्हायी, दूसरी ओर सुप्रसिद्ध महद्वंश। दो पथ में चल कर नितम्बिनी कुलवाला सन्देह में पड़ गयी। पंचवाण अत्यन्त दग्ध कर रहा है, धैर्य (धारण कर) मन स्थिर करो, आँचल में मुख दे कर रोती है, शोकाकुल चक्षु से अश्रु बह रहा है।

(४५४)

सुनि सिरिखंड तरु से सुनि गमन करु
छाड़त मदन तनु तापे[1] ॥
आरति अइलिहु तें कुम्हिलइलिहु[2]
के जान पुरुबकेर[3] पापे ॥

माधव तुअ मुख दरसन लागी ।
बेरि बेरि आवओं उतर न पावओं
भेलाह विरह रस भागी ॥

जखने[4] तेजल गेह सुमरि तोहर नेह
गुरुजन जानल तावे[5] ।
तोहें सुपुरुष पहु हमें तन्वो भेलिहु लहु
कतहु आदर नहि आवे[6] ॥

नेपाल २४२, पृ० ८७ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४७१ (तालपत्र)

शब्दार्थ—सिरिखंड—श्रीखँड, चन्दनकाठ; आरति—आर्त्ति; कुम्हिलइलिहु—म्रियमाण हुई। भेलिहु लहु—छोटी हुई।

अनुवाद—सुना (तुम) चन्दन वृक्ष (हो) वही सुन कर गमन किया, (दिल में सोचा) शरीर का मदन ताप दूर हो जाएगा। अर्त्तिवशतः आयी, उसी कारण म्रियमाण हुई, किस पूर्व के पाप से (ऐसा हुआ), कौन जाने? माधव, तुम्हारे दर्शन के लिए बार बार आती हूँ (परन्तु बात का) उत्तर न पाती, विरह रस की भागी हुई। जब तुम्हारे स्नेह का स्मरण करके गृहत्याग किया, गुरुजन उसी समय जान गये। तुम सुपुरुष प्रभु (हो), मैं तो छोटी हुई, इस समय कहीं भी आदर नहीं है।

(४५५)

दिने दिने बाढ़ए सुपुरुष नेहा ।
अनुदिने जैसन चान्दक रेहा ॥
जे छल आदर तबहु आँधे ।
आओर होएत की पछिलाहु बाँधे ॥
विधिवसे जदि होअ अनुगति बाधे ।
तैअओ सुपहु नहि धर अपराधे ॥

पुरत मनोरथ कत छल साधे ।
आवे कि पुछह सखि सब भेल बाधे ॥
सुरतरु से ओल भल अभि[1] लागी ।
तसु दूखन नहि हमहि अभागी ॥
भनहि विद्यापति सुनह सयानी ।
आओत मथुरपति तुअ गुन जानी ॥

नेपाल ५४, पृ० २० ख, पं ३ न० गु० ४६०

शब्दार्थ—नेहा—प्रेम; चान्दक रेहा—चन्द्रमा की रेखा; तबहु आँधे—उसी का भी आधा; बाँधे—बाधा; दूखन—दोष।

४५४—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) तेमने गमन करु विरहक तापे (२) अएलाहु मजे कुम्हिलएलाहु (३) पुरुबकओन (४) जतहि (५) गुरुजन जानव तावे (६)" एतए निठुर हरि याएवक मने हुरि ठतहु अनादर आवे।

४५५—पोथी में "अभि" है, नगेन्द्र बाबु ने संशोधन करके 'अभिमत' कर दिया है।

अनुवाद—दिनोदिन सुपुरुष का स्नेह दिनोदिन बढ़ता है, अनुदिन जिस प्रकार चन्द्रलेखा (बढ़ती है) जो आदर था, उसका भी आधा (हो गया है), अब और पश्चात् में (भविष्य में) क्या बाधा (दुर्घटना) होगी ? विधिवश यदि अनुगत में बाधा हो, तथापि सुप्रभु अपराध नहीं धरते (अर्थात् मन में नहीं रखते)। कितनी साध थी कि मनोरथ पूर्ण होगा; सखि, अब क्या जिज्ञासा करती हो, समस्त ही में बाधा हुई। अभिमत पूर्ण होगा, यही समझ कर कल्पतरु का सेवन किया। उसका दोष नहीं, मैं अभागिनी (हूँ)। विद्यापति कहते हैं, सुन चतुरे, मथुरापति तुम्हारा गुण जानकर (फिर) आवेंगे।

(४५६)

प्रथम प्रेम हरि जत बोलल
अदरओ नन भेल[1]।
बोलल जनम भरि जे रहत
दिने दिने दुर गेल॥

कि दहु मोर अविनय पलल
कि मोर दीघर मान।
कि पर पेयसि पिसुन वचन
तथी पियाजे देल कान॥

साजनि माधव नहि गमार।
पेमे पराभव बहुत पाओल
करम दोस हमार॥

कत बोलि हरि जतने सेओबल[2]
सुरतरु सम जानि।
अनुभवे भेल कपट मन्दिर
अवे की पर करब[3] आनि॥

सुपहु वचन वदसम मोहि
सुखलल भान।
आपन भासा बोलि विसरए
इथि बोलत आन॥

नेपाल २४, पृ० १० क, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि: न० गु० ४११

शब्दार्थ—कि दहु—क्या क्या; दीघर—दीर्घकालस्थायी।

अनुवाद—प्रथम प्रेम में हरि जितना बोले (उसके समान) आदर नहीं हुआ। जिसके विषय में कहा था कि जन्म भर रहेगा वह दिनोंदिन दूर हुआ। मुझसे क्या क्या अविनय हुआ ? किम्वा दीर्घकालस्थायी मान ही इसका कारण है ? दूसरी पेयसी अथवा पिशुन की बात पर प्रियतम ने कान दिया ? सजनि, माधव मूढ़ नहीं हैं, मैंने कर्म के दोष से प्रेम में अनेक पराभव पाया। सुरतरु समान समझ कर हरि की कितने यत्न से सेवा की। कितना कहूँ, अनुभव में कपटधाम हुआ, अब और क्या करें ? सुप्रभु का वचन वदसम (अर्थ स्पष्ट नहीं है) होने पर भी मेरे पास सूख गया। अपनी भाषा बोलकर विस्मृत हो जाय तो इसमें अन्य क्या कहे ?

४५६—(१) नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'अदरओन भेल' कर दिया है। (२) पोथी में 'सेओबल' है किन्तु नगेन्द्र बाबू ने "सेओल" कर दिया है (३) नगेन्द्र बाबू ने 'करब' कर दिया है। (४) नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके "सुपहुक वचन वदसम मोहि सुखलाल भान" के स्थान पर "सुपहुक वचन वजर सम मो हिअ रेख लेल भान।"

(४५७)

कतए[1] गुजा फूल।
कतए गुजा रतन तूल॥
जे पुतु जानए मरम साच।
रतन तेजि न किनय काच॥
अरे रे सुन्दर उतर देह।
कओन कओन गुन परेखि नेह॥
अनेके दिवसे कएल मान।
मधु छाड़ि आन न मागए दान॥

ऐसन मुगुध थीक मुरारि।
गबउ भखए अमिय छारि॥

नेपाल २३१, पृ० ८३ क, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० ५१०

शब्दार्थ—गुजा—गुञ्जा; मरम साच—मर्म का सत्य; उतर देह—उत्तर दो; परेखि—परीक्षा; नेह—स्नेह; गबउ—गव्य।

अनुवाद—कहाँ गुंजा एक (साधारण) फूल? गुञ्जा कहाँ रत्न के तुल्य होता है? जो मर्मकथा जानता है वह रत्न छोड़ कर काँच नहीं खरीदता। हे सुन्दर, उत्तर दो, कौन कौन गुण से प्रेम की परीक्षा होती है? अनेक दिन (से) मान किए हो, मधु छोड़ कर अन्य चीज दान में नहीं माँगी जाती। मुरारि इस प्रकार मुग्ध हैं कि अमिय छोड़ कर गव्य भक्षण कर रहे हैं।

(४५८)

रसिकक सरबस नागरि बानि।
भल परिहर न आदरि आनि॥
हृदयक कपटी वचने[1] पियार।
अपने रसे उकट[2] कुसियार॥
आबे कि बोलब सखि सखि विसरल देओ[3]।
तुअ रूपे लुबुध मही नहि केओ॥
पएर पखाल रोसे नहि खाए।
अन्धरा हाथ भेटल हर जाए॥
तञे जे कलासति औ अविवेक।
न पिब सरोज अमिय रस भेक॥
अकुलिन सयँ जदि कए सदभाव।
तत कए कतए चतुरपन फाच[4]॥
तोहरा[5] हृदय न रहले लागि।
कतए सुनय अछि जुड़ि हो आगी॥
भनइ विद्यापति सह कत साति।
से नहि बिचल जकरि ते जाति॥

नेपाल १८४, पृ० ६६ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ५१२ (तालपत्र)

४५७—मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'कतए गुञ्जा कतए फूल" कर दिया है।

४५८—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) वचन (२) बसे ८कठ (३) जेओ (४) काल (५) ओ करा हृदय रहय नहि लागि भनइ सुनल छकतहु जुड़ होअ आगि।

शब्दार्थ—भल—अच्छेलोग; उकट—फट जाता है; कुलियार—कुशोर, इख्र; पएर—पाँव; पखाल—धोकर; फाब—शोभता है; खागि—अभाव; जुड़ि – जुड़ाता है; साति—शास्ति ।

अनुवाद—नागरी की बात (मीठी बात) रसिक का सर्वस्व (होती है) । अच्छे लोग आदरपूर्वक लाकर परित्याग नहीं करते । हृदय में कपट, वचन में प्रिय, कुशोर अपने ही रस से फट जाता है (कुशोर कठिन होता है, किन्तु जब वह फटता है तो मधुर रस बाहर होता है, उसी प्रकार कृष्ण का हृदय कठोर किन्तु वचन मधुर) । सखि, देव (प्रभु) जब भूल गए तो उनको क्या कहें ? तुम्हारे रूप से जगत में कौन लुब्ध नहीं होता ? पाँव धोकर भी रोष से खाता नहीं (अर्थात् क्षुधार्त पद प्रक्षालन करके खाने बैठा, किन्तु राग के मारे खाया नहीं); अन्धे के हाथ में कुछ देने से वह भी भुला जाता है । तुम कलावती, वह अविवेक, भेक कमल का अमृत रस पान नहीं करता । अकुलीन के साथ सद्भाव किया । वैसा होने से चतुरपना कहाँ शोभा पाती है ? तुम्हारे हृदय में अभाव नहीं था, कहाँ सुना है कि अग्नि शीतल होती है ? विद्यापति कहते हैं, कितनी शास्ति सहें ? जिसका जैसा स्वभाव, वह विचलित नहीं होता ।

(४५६)

बान्धल हीर[1] अजर लए हेम ।
सागर तह हे गहिर छल पेम ॥
ओ उभरल[2] इ गेल सुखाए ।
नाह बलाहे मेघे[3] भरि जाए ॥
ए सखि एतवा मागब्यो तोहि ।
मोरे हु अएले राखहिसि मोहि ॥
आरति दरसहु बोलित राति ।
से सबे सुमरि जीवका माति ॥
न नथ न घर बाहर गमनेह ।
आरसिकए मोर देखति देखित देह ॥
गत पराण गेले होअ लाज[4] ॥
भल नहि अनुवद सुपहु समाज[5] ॥
मालति मधु मधुकर नेपोछि ।
मन ओ करति पहु अइसन ओछि ॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार ।
कबहु न होअए जाति व्यभिचार ॥

नेपाल ४२, पृ० १६ ख, पं ४; रामभद्रपुर ६२

शब्दार्थ—अजर—सुन्दर; तह—तुल्य; गहिर—गंभीर; उभरल—उद्वेलित हुआ; अनुवद—अनुबन्ध; सम्बन्ध; नेपोछि—नेओछि; ओछि—अच्छा ।

अनुवाद—सुन्दर स्वर्ण में मानों हीरे को बाँधा । सागर के समान प्रेम गम्भीर था । एक उद्वेलित हुआ, सूख गया । (नाह बलाहे मेघे भरि जाए—नाह,—स्नान के, बलाहे—बेला अर्थ मान कर स्नान के समय मेघ से आकाश भर जाता है; यह अर्थ माना जा सकता है, किन्तु ठीक संगति नहीं रहती) । सखि, तुम्हारे निकट यही प्रार्थना करती हूँ, मैं आयी हूँ, मेरी रक्षा करना । केलि की रात्रि में कितना आदर दिखलाया था, वह सब स्मरण करने से प्राण मतवाले हो जाते हैं । अब मेरे नाथ भी नहीं हैं, घर भी नहीं है, यदि बाहर जाऊँ तो अरसिक लोग मेरा शरीर देखेंगे । जब लज्जा खो गयी तो प्राणों का जाना भी अच्छा ही है । सुप्रभु के मिलन का सम्बन्ध अच्छा नहीं होता । मालती मधु देकर मधुकर की आरती उतारती है, इसी प्रकार अच्छा करने के लिए ही प्रभु तुम्हारे प्रति मान करते हैं । कविकण्ठहार विद्यापति कहते हैं, जाति का व्यभिचार कभी नहीं होगा अर्थात् नायक अपने गुणों के अनुरूप कार्य ...रेग हो ।

४५६—नेपाल पोथी के अनुसार पाठान्तर—(१) हीम (२) उभरल उभकनइ (३) मोहे (४) रामभद्रपुर—भेले या
(५)—"अपद समाज" ।

(४६०)

जौवन रतन[1] अछल दिन चारि।
तावे[2] से आदर कएल मुरारि॥
आवे[3] भेल झाल कुसुम सम छूछ।
वारि-विहुन सर[4] केओ नहि पूछ॥
हमरि तु विनती कहब सखि गोए[5]।
सुपुरुख सिनेह अनुनहि होए[6]॥
जावे से धन रह[7] अपना हाथ।
तावे से आदर कर संग साथ॥

धनिकक आदर सब का होए[8]।
निरधन बापुन पुछ नहि कोए[9]॥

नेपाल १४३, पृ० ५० ख, ४, भनइ विद्यापतीत्यादि; राग तरंगिणी पृ० ७१; न० गु० ६६६।

अनुवाद—यौवन रत्न दो चार दिनों तक था, तब तक मुरारि ने मेरा आदर किया। अब फूल में न तो रस रह गया है, न गन्ध; जिस सरोवर में जल नहीं, उसे कौन पूछता है? सखि, एकान्त में तुम मेरी विनती उनसे सुनाना कि सुपुरुष का प्रेम कभी कम नहीं होता। जितने दिनों तक अपने हाथ में धन रहता है, उतने दिनों तक वह साथ रहकर आदर करता है। धनिक का आदर सब जगह होता है, बेचारे निर्धन को कोई नहीं पूछता।

(४६१)

जातकि केतकि कुन्द सहार।
गरुअ तोहरि पुन जाहि निहार॥
सब फुल परिमल सब मकरन्द।
अनुभवे बिनु न बुझिअ भल मन्द॥
तुअ सखि वचन अमिअ अवगाह।
भमर बेआजे बुझओव नाह॥
एतवा विनति अनाइति मोरि।
निरस कुसुम नहि रहिअ अगोरि॥

वैभव गेले भलाहु मँदि भास।
आपन पराभव पर उपहास॥

नेपाल २११, पृ० ७६ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४६७

शब्दार्थ—सहार—सहकार, इस स्थल पर सहकार का अर्थात् आम का मुकुल; गरुअ—गौरव; निहार—देख कर; अवगाह—निमज्जित; बेआजे—छल से; अनाइति—अनायत्त; अगोरि—अगोर कर; मंदि—मन्द।

अनुवाद—जातकी, केतकी, कुन्द, आम का मुकुल, जिसके प्रति देखे उसी को गौरव (अर्थात् जिस फूल पर भ्रमर जाता है, उसी फूल का गौरव है)। सब फूलों में परिमल (है) सब फूलों में मधु है—अनुभव नहीं करने से अच्छा-बुरा पता नहीं लगता। हे सखि, तुम्हारे वाक्य सुधा में सने हैं, भ्रमर के छल से (दृष्टान्त से) प्राणनाथ को समझाना। अथवा मेरी विनती से वशीभूत न होंगे, (क्योंकि) भ्रमर नीरस कुसुम को अगोर कर नहीं रहता। वैभव जाने पर अच्छा भी बुरा के समान मालूम पड़ता है (मेरे सुदिन चले गए हैं, इसलिए हमारी अच्छी बोली भी बुरी मालूम पड़ेगी)। अपनी व्यर्थता (पराभव) होती है और दूसरे उपहास करते हैं।

४६०—रागतरंगिनी का *पाठान्तर*—(१) रूप (२) से देखि (३) अब (४) सब (५) हमरि ओ विनती कहब सखि रोए (६) सुपुरुष वचन असफल नहि होए (७) रहइ धन (८) सब तह होए (९) भनिता का चरण—भनइ विद्यापति राजब सील। जो जग जीविए नवओ निधि मील॥

शब्दार्थ—भल—अच्छेलोग; उकट—फट जाता है; कुसियार—कुशोर, इक्षु; पएर—पाँव; पखाल—धोकर; फाव—शोभता है; खागि—अभाव; जुड़ि – जुड़ाता है; साति—शास्ति।

अनुवाद—नागरी की बात (मीठी बात) रसिक का सर्वस्व (होती है)। अच्छे लोग आदरपूर्वक लाकर परित्याग नहीं करते। हृदय में कपट, वचन में प्रिय, कुशोर अपने ही रस से फट जाता है (कुशोर कठिन होता है, किन्तु जब वह फटता है तो मधुर रस बाहर होता है, उसी प्रकार कृष्ण का हृदय कठोर किन्तु वचन मधुर)। सखि, देव (प्रभु) जब भूल गए तो उनको क्या कहें? तुम्हारे रूप से जगत में कौन लुब्ध नहीं होता? पाँव धोकर भी रोष से खाता नहीं (अर्थात् क्षुधार्त पद प्रक्षालन करके खाने बैठा, किन्तु राग के मारे खाया नहीं); अन्धे के हाथ में कुछ देने से वह भी भुला जाता है। तुम कलावती, वह अविवेक, भेक कमल का अमृत रस पान नहीं करता। अकुलीन के साथ सद्भाव किया। वैसा होने से चतुरपना कहाँ शोभा पाती है? तुम्हारे हृदय में अभाव नहीं था, कहाँ सुना है कि अग्नि शीतल होती है? विद्यापति कहते हैं, कितनी शास्ति सहें? जिसका जैसा स्वभाव, वह विचलित नहीं होता।

(४५६)

बान्धल हीर[1] अजर लए हेम।
सागर तह हे गहिर छल पेम॥
ओ उभरल[2] इ गेल सुखाए।
नाह बलाहे मेघे[3] भरि जाए॥
ए सखि एतवा मागन्धो तोहि।
मोरे हु अएले राखहिसि मोहि॥
आरति दरसहु बोलित राति।
से सबे सुमरि जीवका माति॥

न नथ न घर बाहर गमनेह।
आरसिकए मोर देखति देखित देह॥
गत पराण गेले होअ लाज[4]॥
भल नहि अनुवद सुपहु समाज[5]॥
मालति मधु मधुकर नेपोछि।
मन ओ करति पहु अइसन ओछि॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।
कबहु न होअए जाति व्यभिचार॥

नेपाल ४२, पृ० १६ ख, पं ५; रामभद्रपुर ६२

शब्दार्थ—अजर—सुन्दर; तह—तुल्य; गहिर—गंभीर; उभरल—उद्वेलित हुआ; अनुवद—अनुबन्ध; सम्बन्ध; नेयोछि—नेओछि; ओछि—अच्छा।

अनुवाद—सुन्दर स्वर्ण में मानों हीरे को बाँधा। सागर के समान प्रेम गम्भीर था। एक उद्वेलित हुआ, सूख गया। (नाह बलाहे मेघे भरि जाए—नाह,—स्नान के, बलाहे—बेला अर्थ मान कर स्नान के समय मेघ से आकाश भर जाता है; यह अर्थ माना जा सकता है, किन्तु ठीक संगति नहीं रहती)। सखि, तुम्हारे निकट यही प्रार्थना करती हूँ, मैं आयी हूँ, मेरी रक्षा करना। केलि की रात्रि में कितना आदर दिखलाया था, वह सब स्मरण करने से प्राण मतवाले हो जाते हैं। अब मेरे नाथ भी नहीं हैं, घर भी नहीं है, यदि बाहर जाऊँ तो अरसिक लोग मेरा शरीर देखेंगे। जब लज्जा खो गयी तो प्राणों का जाना भी अच्छा ही है। सुप्रभु के मिलन का सम्बन्ध अच्छा नहीं होता। मालती मधु देकर मधुकर की आरती उतारती है, इसी प्रकार अच्छा करने के लिए ही प्रभु तुम्हारे प्रति मान करते हैं। कविकण्ठहार विद्यापति कहते हैं, जाति का व्यभिचार कभी नहीं होगा अर्थात् नायक अपने गुणों के अनुरूप कार्य करेगा ही।

४५६—नेपाल पोथी के अनुसार *पाठान्तर*—(१) हीमँ (२) उभरल उभकनइ (३) मोहे (४) रामभद्रपुर—भेले या लाज (५) रामभद्रपुर—"अपद अकाज"।

(४६०)

जौबन रतन[1] अछल दिन चारि।
तावे[2] से आदर कएल मुरारि॥
आवे[3] भेल झाल कुसुम सम छूछ।
वारि-विहुन सर[4] केओ नहि पूछ॥
हमरि तु विनती कहव सखि गोए[5]।
सुपुरुख सिनेह अनुनहि होए[6]॥
जावे से धन रह[7] अपना हाथ।
तावे से आदर कर संग साथ॥
धनिकक आदर सब का होए[8]।
निरधन बापुन पुछ नहि कोए[9]॥

नेपाल १४३, पृ० ५० ख, ' ४, भनइ विद्यापतीत्यादि; राग तरंगिणी पृ० ७१; न० गु० ६६६।

अनुवाद—यौवन रत्न दो चार दिनों तक था, तब तक मुरारि ने मेरा आदर किया। अब फूल में न तो रस रह गया है, न गन्ध; जिस सरोवर में जल नहीं, उसे कौन पूछता है? सखि, एकान्त में तुम मेरी विनती उनसे सुनाना कि सुपुरुष का प्रेम कभी कम नहीं होता। जितने दिनों तक अपने हाथ में धन रहता है, उतने दिनों तक वह साथ रहकर आदर करता है। धनिक का आदर सब जगह होता है, बेचारे निर्धन को कोई नहीं पूछता।

(४६१)

जातकि केतकि कुन्द सहार।
गरुअ तोहरि पुन जाहि निहार॥
सब फुल परिमल सब मकरन्द।
अनुभवे विनु न बुझिअ भल मन्द॥
तुअ सखि वचन अमिअ अवगाह।
भमर वेआजे बुझओव नाह॥
एतवा विनति अनाइति मोरि।
निरस कुसुम नहि रहिअ अगोरि॥
वैभव गेले भलाहु मँदि भास।
आपन पराभव पर उपहास॥

नेपाल २११, पृ० ७६ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ४६७

शब्दार्थ—सहार—सहकार, इस स्थल पर सहकार का अर्थात् आम का मुकुल; गरुअ—गौरव; निहार—देख कर; अवगाह—निमज्जित; वेआजे—छल से; अनाइति—अनायत्त; अगोरि—अगोर कर; मंदि—मन्द।

अनुवाद—जातकी, केतकी, कुन्द, आम का मुकुल, जिसके प्रति देखे उसी को गौरव (अर्थात् जिस फूल पर भ्रमर जाता है, उसी फूल का गौरव है)। सब फूलों में परिमल (है) सब फूलों में मधु है—अनुभव नहीं करने से अच्छा-बुरा पता नहीं लगता। हे सखि, तुम्हारे वाक्य सुधा में सने हैं, भ्रमर के छल से (दृष्टान्त से) प्राणनाथ को समझाना। अथवा मेरी विनती से वशीभूत न होंगे, (क्योंकि) भ्रमर नीरस कुसुम को अगोर कर नहीं रहता। वैभव जाने पर अच्छा भी बुरा के समान मालूम पड़ता है (मेरे सुदिन चले गए हैं, इसलिए हमारी अच्छी बोली भी बुरी मालूम पड़ेगी)। अपनी व्यर्थता (पराभव) होती है और दूसरे उपहास करते हैं।

४६०—रागतरंगिनी का *पाठान्तर*—(१) रूप (२) से देखि (३) अब (४) सब (५) हमरि ओ विनती कहव सखि रोए (६) सुपुरुष वचन असफल नहि होए (७) रहइ धन (८) सब तह होए (९) भनिता का चरण—भनइ विद्यापति राखब सील। जो जग जीविए नवओ निधि मील॥

(४६२)

आदरे आनलि परेरी नारी।
कता कठिन दुतर तारी॥
गेले सम्भव तोहहु तँहा।
एखने पलटि जाएव कहाँ॥
न कर माधव हेनि उकुती।
पुनु पठावए चाहिअ दूती॥
आनि विसरिअ भावक भोरा।
गरुअ नीलज मानस तोरा॥
हाथक रतन तेजइ कोहे।
के बोल नगर नागर तोहे॥

नेपाल २२८, पृ० ८१ ख, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ५१८।

शब्दार्थ—दुतर—दुस्तर; तारी—पार कर; उकुती—उक्ति; विसरिअ—भूल जावो; नीलज—निर्लज्ज।

अनुवाद—दूसरे की नारी को कितना कठिन दुस्तर (पथ) उत्तीर्ण करा के लिवा लाये। तुम्हारे (माधव के) पक्ष में वहाँ (लौट कर) जाना सम्भव (हो सकता है), किन्तु वह (सुकुमारी) अभी फिर कर कहाँ जाएगी? माधव, इस प्रकार की उक्ति मत करना, फिर दूती को पठाना (भेजना किस मुँह से) चाहोगे। (अब और दूती नहीं जाएगी) लाकर भूल जावो, (इस प्रकार तुम्हारा) भोला भाव है, तुम्हारा मन अत्यन्त निर्लज्ज है। हाथ का रत्न क्या कोई त्याग करता है? तुमको नगर का नागर कौन कहता है?

(४६३)

तेँह[१] हुनि लागल उचित सिनेह।
हम अपमानि पठओलह गेह॥
हमरिओ मति अपथे चलि गेलि।
दुधक माछी दूती भेलि॥
माधव कि कहब इ भल भेला।
हमर गतागत इ दुर गेला॥
पहिलहि बोललह मधुरिम वाणी।
तोहहि सुचेतन तोहहि सयानी॥
भेला काल बुझाओल रोसे।
कहि की बुझाओवह अपनुक दोसे॥

नेपाल १६६, पृ० ७१ ख, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ५१६

शब्दार्थ—हुनि—उनसे; अपमानि—अपमान करके; भेला काज—कार्य हो गया।

अनुवाद—तुमसे और उनसे उचित प्रेम ही हुआ! (श्लेष) (बीच से) मेरा अपमान करके घर भिजवा दिया, मेरी मति भी अपथ पर चली गयी, दूती दूध की मक्खी हुई। (उसे निकाल कर फेंकना ही पड़ा।) माधव क्या बोलें, अच्छा हुआ, मेरे जाने की आशा दूर हुई। पहले मधुर बोली में कहा—"तुम सुबुद्धि हो, तुम चतुर हो"। काम हो जाने पर रोष दिखला रहे हो, अपना दोष है, कह कर क्या समझावें?

४६२—मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके "तोह" कर दिया है।

(४६४)

(क) नेपाल पोथी का पाठः—

तोह जलधर सउ जलधर राज।
हमे चातक जलविन्दुक काज॥
वरखो परान आसकए तोर।
समय न वरिसखि असमय मोर॥
जलदए जलद जीव मोर राख।
देले सहस अवसहो लाख॥
जखनेक निधिनिअ तनु पार।
तहिखने वहु पिआसल आर॥
तुहओ देस तनु सेकर पान।
ते अओसराहि अनहो अमलान॥
वैभव गेला रहत विवेक।
तेसन पुरुष लाखे माह एक॥

(ख) नगेन्द्र वावू का पाठः—

तोहे जलधर सहजहि जलराज।
हमे चातक जलविन्दुक काज॥
जल दय जलद जीव मार राख।
असमर देले सहस हो लाख॥
तनु देअ चाँद राहु कर पान।
कवहु कला नहि होअ मलान॥
वैभव गेले रहए विवेक।
तइसन पुरुख लाख थिक एक॥

भनइ विद्यापति दूती से।
दुइ मन मेल करावए जे॥

नेपाल १२१, पृ० ४६ ख, पं० ४ भने विद्यापतीत्यादि; न० गु० नाना १३ (पृ० ५२४)

शब्दार्थ—आसकए—आशा करके; माह—मध्य में।

(क) नेपाल पद का अनुवाद—तुम केवलमात्र जलधर ही नहीं जलधर के राजा हो; मैं चातक, मुझे केवल एक विन्दु जल का प्रयोजन है। तुम्हारी आशा में हूँ, पान कराओ। समय पर तुम वर्षण नहीं करते, इस समय हमारा असमय है (चरम दशा है); हे जलद, जल देकर हमारी जीवन-रक्षा करो; तुमने सहस्र (सुख) दिए हैं, किन्तु इस समय लाख (कष्ट) सहन कर रही हूँ। जिस समय अपनी निधि देह के निकट से दूर चली गयी, उसी क्षण बहुत पिआसित हुई। तुम जो कुछ भी दो, शरीर उसी को पान करेगा; तथापि सरोज अम्लान रहता है। वैभव जाने पर विवेक के कारण जो स्नेह करता है ऐसा पुरुष लाख में एक पाया जाता है।

(ख) नगेन्द्र वावू के पद का अनुवाद—तुम जलधर, स्वभावतः ही जल के राजा। मैं चातक, केवल जलविन्दु का प्रयोजन। हे जलद, जल देकर मेरे प्राण रखो। समय पर देने से सहस्र लक्ष होता है। चाँद अपना तनु देता है, राहु पान करता है, कभी भी कला म्लान नहीं होती। वैभव जाने पर विवेक रह जाए—लक्ष के मध्य में वसा पुरुष एक ही होता है। विद्यापति कहते हैं, वही दूती जो दो जनों में मिलन करावे।

(४६५)

बड़ जन जकर पिरीति रे।
कोपहुँ न तजय रीति रे॥
काक कोइल एक जाति रे।
भेम भमर एक भाँति रे॥
हेम हरदि कत बीच रे।
गुनहि बुझिअ ऊच नीच रे॥
मनि कादव लपटाय रे।
तैं कि तनिक गुन जाए रे।
विद्यापति अवधान रे।
सुपुरुष न कर निदान रे॥

ग्रियर्सन ४२; न० गु० ४०८

शब्दार्थ—बीच—पार्थक्य; कादर—कीचड़।

अनुवाद—बड़े जन जब प्रीति करते हैं तो कोपवशतः प्रेमरीति का परित्याग नहीं करते। काक (और) कोकिल एक जाति, भेम और भ्रमर (देखने में) एक समान (होते हैं)। स्वर्ण और हल्दी में कितना प्रभेद है (हालाँकि उनका वर्ण एक समान होता है); गुण से उच्च और नीच समझा जाता है। मणि यदि कीचड़ में गिर जाए तो क्या उनका गुण चला जायगा? [किमपैति रजोभिरौर्वरैरवकीर्णस्य मणेर्महार्घता। माघ] विद्यापति (की बात) का मनोयोग करो, सुपुरुष शेष पर्यन्त (क्लेश) नहीं देता।

(४६६)

चानन भरम सेवलि हम सजनी
पूरत सकल मन काम।
कन्टक दरस परस भेल सजनी
सीमर भेल परिनाम॥
एकहिं नगर बसु माधव सजनी
परभाविनि बस भेल।
हम धनि एहन कलावति सजनी
गुन गौरव दूरि गेल॥
अभिनव एक कमल फुल सजनी
दौना निमक डार।
सेहो फुल ओतहि सुखाएल सजनी
रसमय फुलल नेवार॥
विधिवस आज आएल पुँश सजनी
एतदिन ओतहि गमाय।
कोन परि करब समागम सजनी
भोर मन नहि पतिआए॥
भनहिँ विद्यापति गाओल सजनी
उचित आओत गुनसाह।
उठ वधाव करू मन भरि सजनी
आज आओत घर नाह॥

ग्रियर्सन ४३, न० गु० ४२६

शब्दार्थ—समीर—सेमरवृक्ष; परभावनि—दूसरे की रमणी; दौना—दोना; निमक—नीमका; डार—फेंका; नेवार—निवारण; पतिआय—विश्वास करे; बधाव करु—बधाई करो, धन्यवाद दो।

अनुवाद—सजनि, चन्दनवृक्ष के भ्रम से मैंने सेवा की थी, समझा था सकल मनोकामना पूरी होगी। किन्तु काठ का दर्शन-स्पर्श हुआ; देखा अन्त में सेमर का वृक्ष हो गया। सजनि एक ही नगर में रहकर माधव पररमणी के वशीभूत हो गए। मैं इस प्रकार की कलावती रमणी, (मेरा) गुण-गौरव दूर हुआ; एक अभिनव कमल को (मुझको) नीम के पत्ते के दोने में फेंक दिया। वह फूल वहाँ ही सूख गया; जो रसमय होकर फूटता वह निवारित हो गया। इतने दिन वहाँ बिता कर आज विधिवश यहाँ आया है; किस प्रकार (उसके साथ) मिलन होगा, मेरा मन समझ नहीं सकता। विद्यापति गाकर कहते हैं, उचित समय पर गुणराज आ रहे हैं। सजनि, उठ कर मन भर (भगवान को) धन्यवाद दो, आज नाथ घर अवेंगे।

(४६७)

एत दिन छलि नव रीति रे।
जलमिन जेहन प्रीति रे॥
एकहिँ वचन भेल बीच रे।
हास पहु उतरो न देल रे॥
एकहिँ पलंग पर कान्ह रे।
मोर लेख दूर देस भान रे॥
जाहि बन केओ न डोल रे।
ताहि बन पिया हास बोल रे॥
धर जोगिनिआक भेस रे।
करब मैं पहुक उदेस रे॥
भनहिं विद्यापति भान रे।
सुपुरुष न करे निदान रे॥

ग्रियर्सन ४८, न० गु० ४८१

अनुवाद—इतने दिनों तक नया प्रेम था। जिस प्रकार जल के साथ मीन की प्रीति होती है (नये प्रेम में तिलार्द्ध भी विच्छेद नहीं होता)। (हमलोगों के बीच में एक ही बात में मतभेद हो गया, प्रभु न हंस कर उत्तर न दिया। कन्हाई और मैं, एक ही पलंग पर, परन्तु मेरे लिए मानों दूर देश हो गया। जिस वन में कोई नहीं चलता उसी वन में पिया हंस कर बातें कर रहे हैं; मैं योगिनी का वेश धारण करूँगी; मैं प्रभु का अनुसंधान करूंगी। विद्यापति यह कहते हैं, सुपुरुष अत्यन्त क्लेश नहीं देते।

(४६८)

आजु परल मोहि कोन अपरावे।
किअ हेरिअ हरि लोचन आवे॥
आन दिन गहि गृम लाविय गेहा।
बहुविधि वचन बुझावए नेहा॥
मन दै रुसि रहल पहु सोई।
पुरुषक हृदय एहन नहिँ होई॥
भनहिँ विद्यापति सुनु परमान।
बाढ़ला प्रेम उसरि गेल मान॥

ग्रियर्सन ४२ : न० गु० ४६६

शब्दार्थ—गहि—ग्रहण करके; गृम—ग्रीवा, कंठ; लाविय—ले आना; उसरि गेल—लोप हुआ।

अनुवाद—आज मुझसे कौन अपराध हुआ? हरि ने आधे लोचन से भी मुझे न देखा (मेरे प्रति कटाक्षपात न किया)। अन्य दिन (हरि मुझे) कण्ठ का आलिंगन कर ले आते थे और बहुविधि वचन से प्रेम प्रकाशित करते थे। दिल में आता है, प्रभु क्रोध किए हुए हैं, पुरुष का हृदय ऐसा नहीं होता। विद्यापति कहते हैं, सच्ची बात सुन, प्रेम बढ़ गया, और मान लुप्त हो गया।

(४६९)

माधव कि कहब तिहरो ज्ञाने।
सुपहु कहलि जब रोस कयल तब
कर मुनल दुहु काने॥
आयल गमनक वेरि न नीन टरू
तें किछु पुछिओ न भेला।
एहन करमहित हम सनि के धनी
कर सँपरसमनि गेला॥

जौं हम जनितहुँ एहन निठुर पहु
कुच कंचन गिरि साधी।
कौसल करतल बाहुँ लता लय
दृढ़ कर रखितहुँ बाँधी॥
इ सुमिरिए जब जन मरिये तब
बुझि पड़ हृदय पखाने।
हेमगिरि कुमरि चरन हृदय धरि
कवि विद्यापति भाने॥

ग्रियर्सन, ९३; न० गु० ४७४

शब्दार्थ—तिहरो—तुम्हारा; मुनल—ढाँक लिया; नीन—निद्रा; टरु—टली, टूटी; पाखाने—पाषाण; हेमगिरि कुमरि—हिमगिरि की कुमारी, गौरी।

अनुवाद—माधव, तुम्हारे ज्ञान की बात क्या कहूँ? (तुम्हें) जब सुप्रभु कहा था, उस समय (तुमने) क्रोध किया था, हाथों से दोनों कान बन्द कर लिये थे। जाने के समय आये (तब भी मेरी) निद्राभंग नहीं हुआ, इसी कारण कुछ जिज्ञासा करते नहीं बना। मेरे समान भाग्यहीना रमणी, (और कौन है?) हाथ से स्पर्शमणि चला गया। अगर मैं जानती कि प्रभु इतने निष्ठुर (तो) कुचकंचन-गिरि के संधि स्थल में कौशल से उनके करतल बाहुलता (द्वारा) दृढ़ करके बाँध रखती। यह बात जिस समय याद करती हूँ, उस समय मानों मृत्यु (मरण के समान) हो जाती है, हृदय पर मानों पाषाण पड़ जाता है। गौरी के चरण हृदय में धारण कर कवि विद्यापति कहते हैं।

(४७०)

जतहि प्रेम-रस ततहि दुरन्त।
पुनु फर पलटि पिरित गुनमन्त॥
सबतहु सुनिये अइसन बेवहार।
पुनु टूटए पुनु गाँथिए हार॥
ए कन्हु ए कन्हु ताहहि सञान।
बिसरिए कोप करिए समधान॥

प्रेमक अङ्कर तोहे जल देल।
दिन दिन बाढ़ि महातरु भेल॥
तुअ गुन न गुनल सउतिन आछ।
रोलि न काटिए बिसहुक गाछ॥
जे नेह उपजल प्रानक ओर।
से न करिअ दुर दुरजन बोल॥

जगत बिदित भेल तोह हम नेह।
एक परान कएल दुइ देह॥
भनइ विद्यापति कर उदास।
बड़क बचने करिए विसवास॥

तालपत्र न० गु० ४७६

शब्दार्थ—टूटए—छितरा गया; सआन—चतुर; विसरिअ—भूल जावो; सउतिनि—सौतिन; विसहुरु—विष का भी; उदास—आशाहीन।

अनुवाद—जहाँ प्रेमरस अधिक होता है, वहीं दुरन्त होता है (प्रेम पचड़ होता है)। जो गुणवान होता है वह फिर कर प्रेम करता है। सखी के पास इसी प्रकार का व्यवहार सुनती हूँ, हार छितरा जाने पर फिर गूंथा जाता है (कोप अथवा मानान्त पर फिर मिलन होता है)। हे कन्हायी, हे कन्हायी, तुम चतुर (सय) भूल कर कोप शेष (समाधान) करो। प्रेम के अंकुर में तुमने जल दिया, दिन, प्रतिदिन बढ़ कर (वह) महातरु हुआ। तुम्हारे गुण के कारण सपत्नी रहने पर भी उसकी गणना न की (सपत्नी की यन्त्रणा सहन की)। विषवृक्ष भी रोपण करके काटा नहीं जाता (अतएव प्रेम का अमृत-तरु छेदन करना कर्तव्य नहीं है)। जो स्नेह प्राण की सीमा पर उत्पन्न हुआ है, उसे दुर्जनों की बात से दूर मत करना। तुम्हारा हमारा प्रेम संसार में विदित हुआ (विधाता ने) एक प्राण दो देह कर दिये हैं। विद्यापति कहते हैं, आशा मत छोड़ना, बड़े लोगों की बात पर विश्वास करना पड़ता है।

(४७१)

सवे परिहरि अएलाहु तुअ पास।
विसरि न हलवे दए विसवास॥
अपने सुचेतन कि कहब गोए।
तइसन करब उपहास न होए।
ए कन्हाइ तोहर वचन अमोल।
जाव जीव प्रतिपालब बोल॥

भल जन वचन दुअओ समतूल।
वहुल न जान ए रतनक मूल॥
हमें अवला तुअ हृदय अगाध।
वड़ भए खेमिअ सकल अपराध॥
भनइ विद्यापति गोचर गोए।
सुपुरुस सिनेह अन्त नहि होए॥

तालपत्र न० गु० ४७८

शब्दार्थ—विसरि न हलवे—भूलना मत; दए—देकर; विसवास—विश्वास; गोए—छिपाकर; अमोल—अमूल्य खेमिअ—क्षमा करना।

अनुवाद—समस्त त्याग कर तुम्हारे निकट आयी। विश्वास देकर (वचन देकर) भूल मत जाना। (तुम) स्वयं सुचतुर, छिपा कर क्या कहूँ, वही करना जिससे उपहास न हो। हे कन्हायी, तुम्हारा वचन अमूल्य (है), आजीवन वचन का प्रतिपालन करना। अच्छे लोग और उनका वचन समतुल्य होते हैं; बहुत लोग रत्न का मूल्य नहीं जानते। मैं अबला, तुम्हारा हृदय अगाध है, महान होकर सब अपराध क्षमा करना। विद्यापति प्रकाश (जानी हुई) बात को छिपा कर कहते हैं, सुपुरुष के स्नेह का अन्त नहीं होता।

(४७२)

करओ विनय जत मन लाइ।
पिया परिठब पछतावके जाइ॥

धन धइरज परिहरि पथ साचे।
करम दोसे कनकेओ भेल काचे॥
निठुर बालम्भु सञो लाओल सिनेहे।
न पुर मनोरथ न छाडु सन्देहे॥
सुपुरुख भाने मान धन गेल।
हृदय मलिन मनोरथ भेल॥

जदि दूसन गुन पहु न विचार।
बड़ भए पसरओ पिसुन पसार॥
परिजन चित नहि हित परथार।
धरसने जीव कतए नहि धाव॥
हम अवधारि हलल परकार।
विरह सिन्धु जिव दए बरु पार॥

भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धैरज कए रह भेटत मुरारि॥

तालपत्र न० गु० ४६२।

शब्दार्थ—परिठव—प्रस्ताव; पचतावके जाइ—अनुतप्त होना; धइरज—धैर्य, पसरओ—प्रसारित करना; धरसने—धर्षण में; जिव दए—जीवन प्रण करके; वरू—वरन्।

अनुवाद—जितना भी मन लगा कर मिनती क्यों न करूँ, प्रिय की बात से पश्चात्ताप पाती हूँ। धन, धैर्य और सत्यपथ छोड़ करके (तुम्हारी सेवा की थी) कर्मदोष से कनक भी काँच हो गया। निष्ठुर वल्लभ के संग स्नेह किया, मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ; सन्देह भी न छूटा। सुपुरुष समझ कर मानधन गया, हृदय मनोरथ मलिन हुआ। प्रभु यदि दोष गुण का विचार न करें, तो बड़े होकर भी पिशुनों (दुष्टों) का प्रसार कर देंगे (उनकी बात पर कान देकर उनकी प्रतिपत्ति बढ़ा देंगे)। परिजनों के हृदय में हित का प्रस्ताव (हित करने की इच्छा) नहीं है। धर्षण में प्राण कहाँ नहीं दौड़ते? मैंने इसी उपाय को अवधारण किया, जीवनप्रण करके विरह सिन्धु पार करूँगी। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि सुन, धैर्य धारण किए रह, मुरारि से मिलन होगा।

(४७३)

पहुक वचन छल पाथर रेख।
हृदय धएल नहि होएत विसेख॥
नागर भमर दुहू एक रीति।
रस लए निरसि करए फिरि तीति।
ओ पहिलहि बोल तोहेहि परान।
पथ परिचय नहि राख निदान॥
जौवन अवधि राख अनुबन्ध।
आगिला विसय अधिक परवन्ध॥

ओ वैसइत कत कर अवधान।
अति सानन्द भए कर मधुपान॥
उड़इत भर दे न कर सम्भास।
आगिला कुसुम अधिक अभिलास॥
कि कहब माइ हे बुझत अनेक।
नागर भमर दुअओ अविवेक॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
पेमक रसे वस होअ मुरारि॥

तालपत्र न० गु० ४६६।

शब्दार्थ—पाथर रेख—पाषाण की रेखा ; होएत विसेख—पृथक होना ; तीति—तिक्त।

अनुवाद—मन में धारणा थी कि प्रभु का वचन पाषाण की रेखा के समान है, उसमें कोई पार्थक्य नहीं होगा। नागर और भ्रमर—दोनों की रीति एक है। रस पान करके, नीरस और तिक्त करके चले जाते हैं। उन्होंने पहले कहा 'तुमहीं प्राण हो', शेष में पथ में परिचय भी नहीं रखता (पथ में मुलाकात होने पर भी सम्भाषण नहीं करते)। जितने दिन यौवन उतने दिन उनका आग्रह रहता है ; भविष्यत् विषय में अधिक प्रयत्न (आगे किसके संग प्रेम करेंगे, इसी विषय में उनका अधिक आग्रह रहता है)। वह (भ्रमर) बैठ कर कितना मनोयोग देता है (यत्न करता है), अत्यन्त आनन्दित होकर मधुपान करता है। उड़ते समय भार नहीं देता (जानने नहीं देता), सम्भाषण भी नहीं करता। आगे जो कुसुम है उसी की अधिक अभिलाषा करता है। ऐ माँ, क्या बोलूँ बहुत लोग समझते हैं कि नागर और भ्रमर दोनों विवेचना शून्य होते हैं। विद्यापति कहते हैं, वरनारि सुन, मुरारि प्रेम के रस के वशीभूत होते हैं।

(४७४)

ओतए छलि धनि निअ पिय पास।
एतए आइलि धनि तुअ विसवास॥
एतए न ओतए एकओ नहि भेलि।
मदने आनि आहुति कए देलि॥
सुन सुन माधव वचन हमार।
पाउलि निधि परिहरए गमार॥
तुअ गुन गन कहि कत अनुरोधि।
निअ पिय लगसौं आनलि बोधि॥
एहना सिथिल बुझल तुअ नेह।
आवे अनितहु मोहि होइति सन्देह॥
एँ बेरि जदि परिहरवह आनि।
अनहु तेजत्रि अभिसारक बानि॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
धनि परितेजिअ दोष विचार॥

तालपत्र न० गु० २१६।

शब्दार्थ—ओतए—वहाँ ; एतए—यहाँ ; लगसौं—पास से।

अनुवाद—वहाँ धनी अपने प्रिय के पास थी, यहाँ तुम्हारे प्रति विश्वास करके आयी। यहाँ या वहाँ, कहीं भी न रहा (पति का प्रेम खोया, तुम्हारा भी अनुराग न मिला), मदन ने लाकर आहुति कर दी (अग्नि में दग्ध कर दिया)। सुन, माधव, मेरा वचन सुन, निधि पाकर भी जो त्याग करता है, वह मूर्ख (है)। तुम्हारा गुणसमूह कह कर, कितना अनुरोध करके, समझा कर (उसे) अपने प्रियतम के पास से लिवा लायी। यदि पहले समझती कि तुम्हारा प्रेम इतना शिथिल है, तब उसे लाती कि नहीं, इसमें सन्देह है। इस बार यदि ले आने पर परित्याग करते हो तो अब आगे अभिसार की बात भी छोड़ देना। विद्यापति कहते हैं, मुरारि, सुनो, (आगे) दोष विचार करने के बाद धनी का परित्याग करना हो तो करना।

(४७५)

माधव, जनु तोअ पेम पुराने।
नव अनुराग ओल धरि राखब
जे न विघट मोर माने॥
कुल कामिनि भए कुलटा भेलिहु
किछु नहि गुनले आगु॥
सवे परिहरि तुअ आधीनि¹ भेलिहु
आवे आइति लागु॥
सुमुखि वचन सुनि माधवे मने गुनि
अंगिरल कए अपराधे।
सुपुरुख सयँ नेह विद्यापति कह
ओल धरि हो निरवाहे॥

शब्दार्थ—आइति लागु—ऐसा मालूम होता है कि अनुकूल हुए हो; ओल—सीमा; विघट—नष्ट।

अनुवाद—कुलकामिनी होकर कुलटा हुई, भविष्य की कुछ गणना न की। समस्त परित्याग करके तुम्हारे आधीन हुई, अब तुम अनुकूल हुए हो, ऐसा बोध हो रहा है। माधव, जिससे प्रेम पुराना न होने पावे, नव अनुराग शेष पर्यन्त रखना, जिससे हमारा सम्मान नष्ट न होवे। सुमुखी की बात सुन कर मन में विवेचना करके माधव ने अपराध अंगीकार (स्वीकार) किया। विद्यापति कहते हैं, सुपुरुष के साथ प्रेम शेष पर्यन्त वाधा रहित रहता है।

(४७६)

कत न मन मनोरथ अछल
सवे निवेदव तोहि।
पूरुब पुने परीनति पओलाहे
पुछि न पुछह मोहि॥
हमे हेरि मुख विमुख कएलह
मन वेआकुल भेल।
तोहे जन्वो परे हीत उदासिन
जूग पलटि न गेल॥
माधव, जगत के नहि जान।
आरति आकुल जन्वों केओ आवए
वड़ कर समधान॥
हमे ये भावनि भादर जामिनि
अएलाहु जानि सुठाम।
तोहे सुन गर गुनक आगर
पूरत सकल काम॥
एत सुनि हरि हसि हेरु धनि
कयलन्हि सो रस दान।
तखने सुन्दरि पुलके पुरलि
कवि विद्यापति भान॥

तालपत्र न० गु०५२७।

पाठान्तर—पोथी में पाया जाता है कि तृतीय चरण का "आधीनि" शब्द काट कर बगला हस्ताक्षर में किसी ने 'अधीनि' लिख दिया है।

शब्दार्थ—आरति आकुल—आर्ति से व्याकुल होकर ; समधान—प्रतिकार ; जूग—युग ; पलटि न गेल—पलट नहीं गया ; सो रसदान [यह शब्द नगेन्द्र बाबू और विद्याभूषण के संस्करणों में 'सोर सदान' छप गया है ; नगेन्द्र बाबू ने अर्थ किया है—"सोर—शब्द, आह्वान ; सदान—निकट] वही (प्रसिद्ध शृंगार) रसदान किया।

अनुवाद—माधव, जगत में कौन नहीं जानता, यदि कोई आर्ति से व्याकुल होकर आवे, महान व्यक्ति उसका प्रतिकार करता है। मैं भाविनी (प्रेमवती नायिका), भादो की रात में सुपुरुष समझ कर आयी, तुम सुनागर (हो), गुण में श्रेष्ठ, सकल कामना पूर्ण होगी। मन में कितने मनोरथ थे, तुमसे सब निवेदन करूँगी, पूर्व पुण्य का परिणाम (फल) पाया, मेरे साथ अच्छी प्रकार बातें भी नहीं करते। मुझे देख कर मुख फिरा लिया, मन व्याकुल हुआ। जिस समय तुम दूसरे के मंगल के प्रति उदासीन हुए, उस समय युग पलट नहीं गया ? विद्यापति कहते हैं, यह बात सुन कर हरि ने हसित-वदन धनी को देखा और वही रस (प्रसिद्ध शृंगार रस) दान किया। उस समय सुन्दरी का सर्वांग पुलक से (रोमांच) से भर गया।

(४७७)

(क) नेपाल पोथी का पाठ :—

माधवे आए कवाल उवेललि
जाहि मन्दिर छलि राधा।
आलस कोपे अतिहसि हेरलन्हि
चान्द उगल जनि आधा ॥
माधव विलखि वचन बोल राधाही
जौवनरुप कलागुन आगरि
के नागरि हम चाहि ॥
माधुर गेले विलअइ मतागल
कके न पठओलह दूती।
जन दुइचारि वणिक हम भेटलत
ठमाहि रह लाहु सूती ॥
तुअ चंचलचित अपना नहि थिर
महिमा धारन धीरे।
कुटिल कटाख मन्द हरि हेरलन्हि
भितरहु श्याम शरीरे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

(ख) ग्रियर्सन का पाठ :—

माधव आए कवाल उवेरलि
जाहि मन्दिर बस राधा।
चीर उघारि आध मुख हेरलन्हि
चाँद उगल जनि आधा ॥
माधव विलछि वचन बोल राही।
जउवन रुप कलागुने आगरि
के नागरि हम चाही ॥
चीर कपूर पान हमे साजल
पाअस आओ पकमाने।
सगरि रयनि हमे जागि गमाओल
खण्डित भेल मोर माने ॥
तुअ चंचल चित नहि थपलाथित
महिमा भार गभीरे।
कुटिल कटाख मन्द हसि हेरह
भितरहु स्याम सरीरे ॥

नेपाल २४१, पृ० ८७ क, पं ३ (भनइ विद्यापतीत्यादि) ; ग्रियर्सन ७७ ; न० गु० ४२८।

४७७—*मन्तव्य*—ग्रियर्सन के पाठ में "भनइ विद्यापति सुन वर जउवति, चिते लनु मानह आन। राजा सिवसिंह रूप नरायण, लखिमा देइ रमान ॥" नहीं है, परन्तु नगेन्द्र बाबू ने उसे बिठा दिया।

(क) नेपाल पोथी का शब्दार्थ—कवाल—कपाट ; उवेजलि—खोला ; आगरि—श्रेष्ठ ; माधुर गेले—मथुरा जाकर ; विलअइ मतागल—विलास में मत्त हुए ; ठमाहि—स्थान ही पर, अपनी ही जगह पर।

नेपाल पोथी के पाठ का अनुवाद—जिस मन्दिर में राधा थीं, उसका कपाट माधव ने खोला। राधा ने आलस्य प्रगट करके (उठ कर अभ्यर्थना न करके) कोप से हँस कर उनकी ओर देखा, मानों आधा चन्द्रमा उदित हुआ हो। माधव को देख कर राधा बोली—रूप, यौवन और कला नैपुण्य में कौन नागरी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठतर है? मथुरा जाकर विलास में मत्त हुए, किसी के पास भी दूती न भेजी। मेरी मुलाकात दो-चार वणिकों से हुई थी (उन्हीं लोगों से तुम्हारी बात सुनी)। मैं अपने ही स्थान पर सोयी पड़ी रही। तुम चंचलचित्त, स्थिर नहीं रह सकते। जो धीर होता है वही गौरव वहन कर सकता है। हरि, तुम्हारा कुटिल मन्द कटाक्ष देख कर लगता है मानों तुम्हारे शरीर के भीतर भी श्याम है (केवल तुम्हारा शरीर ही श्याम नहीं है, मन भी श्याम है)।

(ख) ग्रियर्सन के पाठ का अनुवाद—माधव ने आकर जिस घर में राधा थीं (उसका) कपाट मुक्त किया, पक्ष हटा कर आधा मुख देखा, मानों अर्द्ध चन्द्र उदित हुआ हो। राधा ने सलज्ज-वचनों से माधव को कहा, यौवन, रूप, कलागुण में कौन नागरी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठतर है? मैंने कपूरखंड (चीर कपूर) देकर पान सजाया। पायस और पक्वान्न (रखा)। सारी रात जाग कर काटी। मेरा गर्व टूट गया। तुम चंचल चित्त हो, विश्वास योग्य (थपलाथित) नहीं, तुम्हारी महिमा अत्यन्त गम्भीर (प्रकृति अत्यन्त दुर्बोध्य)। तुम्हारा कुटिल कटाक्ष मृदु मृदु हँस कर निरीक्षण करो। तुम्हारे भीतर भी श्याम शरीर है।

(४७८)

चल देखह जाउ रितु वसन्त।
जहाँ कुन्द कुसुम केतकि[1] हसन्त॥
जहाँ चन्दा निरमल भमर कार।
रयनि उजागर दिन अन्धार॥

मुनुगुधलि मानिनि करए मान।
परिपन्थिहि पेखए पञ्चवान॥
भनइ[2] सरस कवि-कन्ठ-हार।
मधुसूदन राधा वन-विहार॥

नेपाल २८६, पृ० १०४ क, पं ३ ; न० गु० तालपत्र ६०३।

अनुवाद—चल वसन्त ऋतु देखने चलें, जहाँ कुन्द, कुसुम, केतकी हँस रही हैं। जहाँ चन्द्रमा निर्मल, भ्रमर काला, रजनी उज्ज्वल, दिन अन्धकार [चन्द्रोदय से रात्रि उज्ज्वल, मलयानिल बहने से दिनमान धूलिपटल से समाच्छन्न रहता है।] मुग्धा मानिनी मान कर रही है, मदन को शत्रु के रूप में देखती है। सरस कवि कण्ठहार कहते हैं, मधुसूदन और राधा वन विहार कर रहे हैं।

४७८—पाठान्तर—(नेपाल का)—(१) कैतव (२) परिठवइ।

(४७६)

परदेस गमन जनु करह कन्त।
पुनमत पावए ऋतु वसन्त॥
कोकिल कलरवे पुरल चूत।
जनि मदने पठाओल अपन दूत॥
के मानिनि आवे करति मान।
विरहे विसम भेल पञ्चबान॥
वह मलयानिल पुरुव जानि।
मारए पचसर सुमरि कानि॥
विरहे विखिनि धनि किछु न भाव।
चानने कुङ्कुमे सखि लगाव॥
विद्यापति भन कण्ठहार।
कृष्ण राधा वन विहार॥

तालपत्र न० गु० ६१६

शब्दार्थ—चूत—आम; जनि—मानों; कानि—शत्रुता।

अनुवाद—हे कान्ह, विदेश गमन मत करना, पुण्यवान वसन्त ऋतु प्राप्त करता है। कोकिल के कलरव से आम्र पूर्ण हुआ, मानों मदन ने अपना दूत पठाया तो। कौन मानिनी ऐसे समय में मान करती है? विरह में पंचवाण विषम हुआ। मलयानिल पूर्वकथा का स्मरण कराता हुआ वह रहा है। पंचशर मदन शत्रुभाव स्मरण करके पीड़न कर रहा है। धनी विरह में विशीर्ण, कुछ अच्छा नहीं लगता, सखियाँ कुंकुम चन्दन का लेपन करती हैं। विद्यापति कण्ठहार कहते हैं, हरि और राधा वन में विहार करते हैं।

(४८०)

अभिनव कोमल सुन्दर पात।
सवारे वने जनि पहिरल रात॥
मलय-पवन डोलए बहु भाति।
अपन कुसुम रस अपने माति॥
देखि देखि माधव मन उलसन्त।
विरिदावन भेल वेकत वसन्त॥
कोकिल बोलए साहर भार।
मदन पाओल जग नव अधिकार॥
पाइक मधुकर कर मधु पान।
भमि भमि जाहए मानिनि मान॥
दिसि दिसि से भमि विपिन निहारि।
रास बुझावए मुदित मुरारि॥
भनइ विद्यापति इ रस गाव।
राधा-माधव अभिनव भाव॥

तालपत्र न० गु० ६०८

शब्दार्थ—पात—पत्र; रात—रक्तवर्ण; उलसन्त—उल्लसित।

अनुवाद—अभिनव, कोमल, सुन्दरपत्र, समस्त वन ने रक्तवर्ण परिच्छद परिधान किया। मलयपवन नाना रूप से वह रहा है, कुसुम अपने ही रस से अपने ही मतवाला हो रहा है। देख कर माधव के मन में उल्लास हुआ, वृन्दावन में वसन्त व्यक्त हुआ। सहकार की शाखा पर कोकिला पुकार रही है, मदन ने जगत में नूतन अधिकार पाया है। (वसन्त का) दूत (पाइक) मधुकर मधुपान कर रहा है, घूम घूम कर मानिनी का मान खोज रहा है। दिशा-दिशा में घूम कर,

(क) नेपाल पोथी का शब्दार्थ—कवाल—कपाट ; उवेललि—खोला ; आगरि—श्रेष्ठ ; माथुर गेले—मथुरा जाकर ; विलअइ मतागल—विलास में मत्त हुए ; ठमाहि—स्थान ही पर, अपनी ही जगह पर।

नेपाल पोथी के पाठ का अनुवाद—जिस मन्दिर में राधा थीं, उसका कपाट माधव ने खोला। राधा ने आलस्य प्रगट करके (उठ कर अभ्यर्थना न करके) कोप से हँस कर उनकी ओर देखा, मानों आधा चन्द्रमा उदित हुआ हो। माधव को देख कर राधा बोली—रूप, यौवन और कला नैपुण्य में कौन नागरी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठतर है? मथुरा जाकर विलास में मत्त हुए, किसी के पास भी दूती न भेजी। मेरी मुलाकात दो-चार वणिकों से हुई थी (उन्हीं लोगों से तुम्हारी बात सुनी)। मैं अपने ही स्थान पर सोयी पड़ी रही। तुम चंचलचित्त, स्थिर नहीं रह सकते। जो धीर होता है वही गौरव वहन कर सकता है। हरि, तुम्हारा कुटिल मन्द कटाक्ष देख कर लगता है मानों तुम्हारे शरीर के भीतर भी श्याम है (केवल तुम्हारा शरीर ही श्याम नहीं है, मन भी श्याम है)।

(ख) ग्रियर्सन के पाठ का अनुवाद—माधव ने आकर जिस घर में राधा थीं (उसका) कपाट मुक्त किया, घस हटा कर आधा मुख देखा, मानों अर्द्ध चन्द्र उदित हुआ हो। राधा ने सलज्ज-वचनों से माधव को कहा, यौवन, रूप, कलागुण में कौन नागरी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठतर है? मैंने कर्पूरखंड (चीर कपूर) देकर पान सजाया। पायस और पक्वान्न (रखा)। सारी रात जाग कर काटी। मेरा गर्व टूट गया। तुम चंचल चित्त हो, विश्वास योग्य (थपलायित) नहीं, तुम्हारी महिमा अत्यन्त गम्भीर (प्रकृति अत्यन्त दुर्बोध्य)। तुम्हारा कुटिल कटाक्ष मृदु मृदु हँस कर निरीक्षण करो। तुम्हारे भीतर भी श्याम शरीर है।

(४७८)

चल देखइ जाउ रितु बसन्त।
जहाँ कुन्द कुसुम केतकि[1] हसन्त॥
जहाँ चन्दा निरमल भमर कार।
रयनि उजागर दिन अन्धार॥

मुनुगुधलि मानिनि करए मान।
परिपन्थिहि पेखए पञ्चबान॥
भनइ[2] सरस कवि-कन्ठ-हार।
मधुसूदन राधा वन-विहार॥

नेपाल २८६, पृ० १०४ क, पं ३ ; न० गु० तालपत्र ६०३।

अनुवाद—चल वसन्त ऋतु देखने चलें, जहाँ कुन्द, कुसुम, केतकी हँस रही हैं। जहाँ चन्द्रमा निर्मल, भ्रमर काला, रजनी उज्ज्वल, दिन अन्धकार [चन्द्रोदय से रात्रि उज्ज्वल, मलयानिल बहने से दिनमान धूलिपटल से समाच्छन्न रहता है।] मुग्धा मानिनी मान कर रही है, मदन को शत्रु के रूप में देखती है। सरस कवि कण्ठहार कहते हैं, मधुसूदन और राधा वन विहार कर रहे हैं।

४७८—पाठान्तर—(नेपाल का)—(१) कैतच (२) परिठनइ।

(४७६)

परदेस गमन जनु करह कन्त ।
पुनमत पावए ऋतु वसन्त ॥
कोकिल कलरवे पुरल चूत ।
जनि मदने पठाओल अपन दूत ॥
के मानिनि आवे करति मान ।
विरहे विसम भेल पञ्चवान ॥
वह मलयानिल पुरुव जानि ।
मारए पचसर सुमरि कानि ॥
विरहे विखिनि धनि किछु न भाव ।
चानने कुङ्कुमे सखि लगाव ॥
विद्यापति भन कण्ठहार ।
कृष्ण राधा वन विहार ॥

तालपत्र नं० गु० ६१६

शब्दार्थ—चूत—आम; जनि—मानों; कानि—शत्रुता ।

अनुवाद—हे कान्ह, विदेश गमन मत करना, पुण्यवान वसन्त ऋतु प्राप्त करता है। कोकिल के कलरव से आम्र पूर्ण हुआ, मानों मदन ने अपना दूत पठाया तो कौन मानिनी ऐसे समय में मान करती है ? विरह में पंचबाण विषम हुआ। मलयानिल पूर्वकथा का स्मरण कराता हुआ वह रहा है। पंचशर मदन शत्रुभाव स्मरण करके पीड़न कर रहा है। धनी विरह में विशीर्ण, कुछ अच्छा नहीं लगता, सखियाँ कुंकुम चन्दन का लेपन करती हैं। विद्यापति कण्ठहार कहते हैं, हरि और राधा वन में विहार करते हैं।

(४८०)

अभिनव कोमल सुन्दर पात ।
सवारे वने जनि पहिरल रात ॥
मलय-पवन डोलए बहु भाति ।
अपन कुसुम रस अपने माति ॥
देखि देखि माधव मन उलसन्त ।
विरिदावन भेल वेकत वसन्त ॥
कोकिल बोलए साहर भार ।
मदन पाओल जग नव अधिकार ॥
पाइक मधुकर कर मधु पान ।
भमि भमि जाहए मानिनि मान ॥
दिसि दिसि से भमि विपिन निहारि ।
रास बुझावए मुदित मुरारि ॥

भनइ विद्यापति इ रस गाव ।
राधा-माधव अभिनव भाव ॥

तालपत्र नं० गु० ६०८

शब्दार्थ—पात—पत्र; रात—रक्तवर्ण; उलसन्त—उल्लसित ।

अनुवाद—अभिनव, कोमल, सुन्दरपत्र, समस्त वन ने रक्तवर्ण परिच्छद परिधान किया। मलयपवन नाना रूप से वह रहा है, कुसुम अपने ही रस से अपने ही मतवाला हो रहा है। देख कर माधव के मन में उल्लास हुआ, वृन्दावन में वसन्त व्यक्त हुआ। सहकार की शाखा पर कोकिला पुकार रही है, मदन ने जगत में नूतन अधिकार पाया है। (वसन्त का) दूत (पाइक) मधुकर मधुपान कर रहा है, घूम घूम कर मानिनी का मान खोज रहा है। दिशा-दिशा में घूम कर,

(४७५)

कुल कामिनि भए कुलटा भेलिहु
किछु नहि गुनले आगु ॥
सवे परिहरि तुअ आधीनि[1] भेलिहु
आवे आइति लागु ॥

माधव, जनु तोअ पेम पुराने।
नव अनुराग ओल धरि राखब
जे न विघट मोर माने ॥

सुमुखि वचन सुनि माधवे मने गुनि
अंगिरल कए अपराधे।
सुपुरुख सयँ नेह विद्यापति कह
ओल धरि हो निरवाहे ॥

शब्दार्थ—आइति लागु—ऐसा मालूम होता है कि अनुकूल हुए हो ; ओल—सीमा ; विघट—नष्ट ।

अनुवाद—कुलकामिनी होकर कुलटा हुई, भविष्य की कुछ गणना न की। समस्त परित्याग करके तुम्हारे आधीन हुई, अब तुम अनुकूल हुए हो, ऐसा बोध हो रहा है। माधव, जिससे प्रेम पुराना न होने पावे, नव अनुराग शेष पर्यन्त रखना, जिससे हमारा सम्मान नष्ट न होवे। सुमुखी की बात सुन कर मन में विवेचना करके माधव ने अपराध अंगीकार (स्वीकार) किया। विद्यापति कहते हैं, सुपुरुष के साथ प्रेम शेष पर्यन्त बाधा रहित रहता है।

(४७६)

माधव, जगत के नहि जान।
आरति आकुल जवों केओ आवए
वड़ कर समधान ॥
हमे ये भावनि भादर जामिनि
अएलाहु जानि सुठाम।
तोहे सुन गर गुनक आगर
पूरत सकल काम ॥

कत न मन मनोरथ अछल
सवे निवेदव तोहि।
पूरुव पुने परीनति पओलाहे
पुछि न पुछह मोहि ॥
हमे हेरि मुख विमुख कएलह
मन वेआकुल भेल।
तोहे जवो परे हीत उदासिन
जूग पलटि न गेल ॥

एत सुनि हरि हसि हेरु धनि
कयलन्हि सो रस दान।
तखने सुन्दरि पुलके पुरलि
कवि विद्यापति भान ॥

तालपत्र न० गु०५२७।

---

[1] पाठान्तर—पोथी में पाया जाता है कि तृतीय चरण का "आधीनि" शब्द काट कर बगला हस्ताक्षर में किसी ने 'धर्यीनि' लिख दिया है।

शब्दार्थ—आरति आकुल—आर्त्ति से व्याकुल होकर ; समधान—प्रतिकार ; जुग—युग ; पलटि न गेल—पलट नहीं गया ; सो रसदान [यह शब्द नगेन्द्र बाबू और विद्याभूषण के संस्करणों में 'सोर सदान' छप गया है ; नगेन्द्र बाबू ने अर्थ किया है—"सोर—शब्द, आह्वान ; सदान—निकट] वही (प्रसिद्ध शृंगार) रसदान किया।

अनुवाद—माधव, जगत में कौन नहीं जानता, यदि कोई आर्त्ति से व्याकुल होकर आवे, महान व्यक्ति उसका प्रतिकार करता है। मैं भाविनी (प्रेमवती नायिका), भादो की रात में सुपुरुष समझ कर आयी, तुम सुनागर (हो), गुण में श्रेष्ठ, सकल कामना पूर्ण होगी। मन में कितने मनोरथ थे, तुमसे सब निवेदन करूँगी, पूर्व पुण्य का परिणाम (फल) पाया, मेरे साथ अच्छी प्रकार बातें भी नहीं करते। मुझे देख कर मुख फिरा लिया, मन व्याकुल हुआ। जिस समय तुम दूसरे के मंगल के प्रति उदासीन हुए, उस समय युग पलट नहीं गया ? विद्यापति कहते हैं, यह बात सुन कर हरि ने हसित-वदन धनी को देखा और वही रस (प्रसिद्ध शृंगार रस) दान किया। उस समय सुन्दरी का सर्वांग पुलक से (रोमांच) से भर गया।

(४७७)

(क) नेपाल पोथी का पाठ :—

माधवे आए कवाल उवेललि
जाहि मन्दिर छलि राधा।
आलस कोपे अतिहसि हेरलन्हि
चान्द उगल जनि आधा ॥
माधव विलखि वचन बोल राधाही
जौवनरुप कलागुन आगरि
के नागरि हम चाहि ॥
माधुर गेले विलअह मतागल
कके न पठओलह दूती।
जन दुइचारि वणिक हम भेटलत
ठमाहि रह लाहु सूती ॥
तुअ चंचलचित अपना नहि थिर
महिमा धारन धीरे।
कुटिल कटाख मन्द हरि हेरलन्हि
भितरहु श्याम शरीरे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

(ख) ग्रियर्सन का पाठ :—

माधव आए कवाल उवेरलि
जाहि मन्दिर वस राधा।
चीर उघारि आध मुख हेरलन्हि
चाँद उगल जनि आधा ॥
माधव विलछि वचन वोल राही।
जउवन रुप कलागुने आगरि
के नागरि हम चाही ॥
चीर कपूर पान हमे साजल
पाअस आओ पकमाने।
सगरि रयनि हमे जागि गमाओल
खण्डित भेल मोर माने ॥
तुअ चंचल चित नहि थपलाथित
महिमा भार गभीरे।
कुटिल कटाख मन्द हसि हेरह
भितरहु स्याम सरीरे ॥

नेपाल २४१, पृ० ८७ क, पं ३ (भनइ विद्यापतीत्यादि) ; ग्रियर्सन ७७ ; न० गु० ४२८।

४७७—*मन्तव्य*—ग्रियर्सन के पाठ में "भनइ विद्यापति सुन वर जउवति, चिते लनु मानह आन। राजा सिवसिंह रूप नरायण, लखिमा देइ रमान ॥" नहीं है, परन्तु नगेन्द्र बाबू ने उसे बिठा दिया।

(क) नेपाल पोथी का शब्दार्थ—कवाल—कपाट ; उवेजलि—खोला ; आगरि—श्रेष्ठ ; माधुर गेले—मथुरा जाकर ; विलअइ मतागल—विलास में मत्त हुए ; ठमाहि—स्थान ही पर, अपनी ही जगह पर।

नेपाल पोथी के पाठ का अनुवाद—जिस मन्दिर में राधा थीं, उसका कपाट माधव ने खोला। राधा ने आलस्य प्रगट करके (उठ कर अभ्यर्थना न करके) कोप से हँस कर उनकी ओर देखा, मानों आधा चन्द्रमा उदित हुआ हो। माधव को देख कर राधा बोली—रूप, यौवन और कला नैपुण्य में कौन नागरी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठतर है? मथुरा जाकर विलास में मत्त हुए, किसी के पास भी दूती न भेजी। मेरी मुलाकात दो-चार वणिकों से हुई थी (उन्हीं लोगों से तुम्हारी बात सुनी)। मैं अपने ही स्थान पर सोयी पड़ी रही। तुम चंचलचित्त, स्थिर नहीं रह सकते। जो धीर होता है वही गौरव वहन कर सकता है। हरि, तुम्हारा कुटिल मन्द कटाक्ष देख कर लगता है मानों तुम्हारे शरीर के भीतर भी श्याम है (केवल तुम्हारा शरीर ही श्याम नहीं है, मन भी श्याम है)।

(ख) ग्रियर्सन के पाठ का अनुवाद—माधव ने आकर जिस घर में राधा थीं (उसका) कपाट मुक्त किया, वस्त्र हटा कर आधा मुख देखा, मानों अर्द्ध चन्द्र उदित हुआ हो। राधा ने सलज्ज-वचनों से माधव को कहा, यौवन, रूप, कलागुण में कौन नागरी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठतर है? मैंने कर्पूरखंड (चीर कपूर) देकर पान सजाया। पायस और पक्वान्न (रखा)। सारी रात जाग कर काटी। मेरा गर्व टूट गया। तुम चंचल चित्त हो, विश्वास योग्य (थपलायित) नहीं, तुम्हारी महिमा अत्यन्त गम्भीर (प्रकृति अत्यन्त दुर्बोध्य)। तुम्हारा कुटिल कटाक्ष मृदु मृदु हँस कर निरीक्षण करो। तुम्हारे भीतर भी श्याम शरीर है।

(४७८)

चल देखह जाउ रितु बसन्त।
जहाँ कुन्द कुसुम केतकि[1] हसन्त॥
जहाँ चन्दा निरमल भमर कार।
रयनि उजागर दिन अन्धार॥
मुनुगुधलि मानिनि करए मान।
परिपन्थिहि पेखए पञ्चवान॥
भनइ[2] सरस कवि-कन्ठ-हार।
मधुसूदन राधा वन-विहार॥

नेपाल २८६, पृ० १०४ क, पं ३ ; न० गु० तालपत्र ६०३।

अनुवाद—चल वसन्त ऋतु देखने चलें, जहाँ कुन्द, कुसुम, केतकी हँस रही हैं। जहाँ चन्द्रमा निर्मल, भ्रमर काला, रजनी उज्ज्वल, दिन अन्धकार [चन्द्रोदय से रात्रि उज्ज्वल, मलयानिल बहने से दिनमान धूलिपटल से समाच्छन्न रहता है।] मुग्धा मानिनी मान कर रही है, मदन को शत्रु के रूप में देखती है। सरस कवि कण्ठहार कहते हैं, मधुसूदन और राधा वन विहार कर रहे हैं।

४७८—पाठान्तर—(नेपाल का)—(१) कैतव (२) परिठवइ।

(४७६)

परदेस गमन जनु करह कन्त ।
पुनमत पावए ऋतु वसन्त ॥
कोकिल कलरवे पुरल चूत ।
जनि मदने पठाओल अपन दूत ॥
के मानिनि आवे करति मान ।
विरहे विसम भेल पञ्चबान ॥
वह मलयानिल पुरुब जानि ।
मारए पचसर सुमरि कानि ॥
विरहे खिखिनि धनि किछु न भाव ।
चानने कुङ्कुमे सखि लगाव ॥
विद्यापति भन कण्ठहार ।
कृष्ण राधा वन विहार ॥

तालपत्र नं० गु० ६१६

शब्दार्थ—चूत—आम; जनि—मानों; कानि—शत्रुता ।

अनुवाद—हे कान्ह, विदेश गमन मत करना, पुण्यवान वसन्त ऋतु प्राप्त करता है। कोकिल के कलरव से आम्र पूर्ण हुआ, मानों मदन ने अपना दूत पठाया तो। कौन मानिनी ऐसे समय में मान करती है? विरह में पंचवाण विषम हुआ। मलयानिल पूर्वकथा का स्मरण कराता हुआ वह रहा है। पंचशर मदन शत्रुभाव स्मरण करके पीड़न कर रहा है। धनी विरह में विशीर्ण, कुछ अच्छा नहीं लगता, सखियाँ कुंकुम चन्दन का लेपन करती हैं। विद्यापति कण्ठहार कहते हैं, हरि और राधा वन में विहार करते हैं।

(४७७)

अभिनव कोमल सुन्दर पात ।
सवारे वने जनि पहिरल रात ॥
मलय-पवन डोलए बहु भाँति ।
अपन कुसुम रस अपने माति ॥
देखि देखि माधव मन उलसन्त ।
विरिदावन भेल वेकत वसन्त ॥
कोकिल बोलए साहर भार ।
मदन पाओल जग नव अधिकार ॥
पाइक मधुकर कर मधु पान ।
भमि भमि जोहए मानिनि मान ॥
दिसि दिसि से भमि विपिन निहारि ।
रास बुझावए मुदित मुरारि ॥
भनइ विद्यापति इ रस गाव ।
राधा-माधव अभिनव भाव ॥

तालपत्र नं० गु० ६०८

शब्दार्थ—पात—पत्र; रात—रक्तवर्ण; उलसन्त—उल्लसित ।

अनुवाद—अभिनव, कोमल, सुन्दरपत्र, समस्त वन ने रक्तवर्ण परिच्छद परिधान किया। मलयपवन नाना रूप से वह रहा है, कुसुम अपने ही रस से अपने ही मतवाला हो रहा है। देख कर माधव के मन में उल्लास हुआ, वृन्दावन में वसन्त व्यक्त हुआ। सहकार की शाखा पर कोकिला पुकार रही है, मदन ने जगत में नूतन अधिकार पाया है। (वसन्त का) दूत (पाइक) मधुकर मधुपान कर रहा है, घूम घूम कर मानिनी का मान खोज रहा है। दिशा-दिशा में घूम कर,

का समय आ गया) समझा रहा है। विद्यापति कहते हैं, यह रस विपिन देख कर, हृष्ठ माधव को रास (वासन्त रास गाता हूँ, यह राधामाधव का अभिनव भाव है।

(४८१)

सरदक चान्द सरिस तोर मुखरे।
छाड़ल विरह अँधारक दुख रे॥
अमिल मिलल अछ सुदृढ़ समाजरे।
पुरुवक पुन परिनत भेल आजरे॥
हेरि हल सुन्दरि सुनहि वचन रे।
परिहर लाज —हि मन मोर रे॥

रसमति मालति भल अवसर रे।
पिवओ मधुर मधु भूषल भमर रे॥
उपगत पाहोन रितुपति साह रे।
अपनुक अँगिरल कर निरवाह रे॥
सुपुरुषे पाओल सुमुखि सुनारि रे।
दैवे मेराओल उचित विचारि रे॥

नेपाल १०, पृः ५ क, पं १; भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ८१६

शब्दार्थ—सरिस—सदृश; अमिल—जो इतने दिन तक नहीं मिला; भूखल—क्षुधित; पुन—पुण्य; पाहोन—आगन्तुक; साह—राजा; मेराओल—मिलाया।

अनुवाद—तुम्हारा मुख शरच्चन्द्र के समान। विरह के अन्धकार रूपी दुख का त्याग [illegible]। अमिल (जो इतने दिनों तक न मिला) अत्यन्त निकट दृढ़भाव से मिल रहा है, पूर्व का पुण्य आज परिणत हुआ (फल प्रसव किया)। सुन्दरि, देख, मेरी बात सुन। लज्जा छोड़ (सुलहि मन मोर रे—इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है) रसवती मालती का उत्तम अवसर हुआ है। क्षुधित भ्रमर मधु पान करे। ऋतुपति के संग अतिथि (प्रियतम) आज उपनीत। अपना अङ्गीकार कर निर्वाह करो। हे सुमुखि, सुपुरुष सुनारी ने पाया। दैव ने उचित विचार करके मिलाया।

(४८२)

तरुअर वलि धर डारे जाँति।
सखि गाढ़ आलिंगन तेहि भाँति॥
मने नीन्दे निन्दारुधि करवो काह।
सगरि रतनि कान्हु केलि चाह॥

मालति रस विलसय भमर जान।
तेहि भाति कर अधर पान॥
कानन फुलि गेल कुन्द फुल।
मालति मधु मधुकर पए भूल॥

परिठवइ सरस कवि कण्ठहार।
मधुसूदन राधा वन विहार॥

नेपाल २८९, पृः १०४ क, पं १; न० गु० ६६४

शब्दार्थ—तरुअर—तरुवर; वलि—वल्ली; डारे—गिरावे; जाँति—दवा कर; सगरि—समस्त; रयनि—रजनी; परिठवइ—प्रणाम करते हैं।

४८१—मन्तव्य—(१) पोथी में 'सुलहि मन मोर रे' है; नगेन्द्र बाबू ने पाठ किया है—"सुलह मन तोर रे"।

अनुवाद—तरुवर जिस प्रकार लता को दाब कर रखता है, हे सखि, मुझे भी उसी प्रकार गाढ़ आलिंगन में दबाया। मैं नींद में होने पर भी नीन्द पाऊँ कैसे? कन्हायी सारी रात केलि चाहते हैं। मालती के रस में जिस प्रकार भ्रमर विलास करता है, उसी प्रकार (मेरा) अधरपान किया। कानन में कुन्द फूल फूट गया, मालती के मधु पर ही मधुकर भूलता है। सरस कवि कण्ठहार मधुसूदन और राधा के वनविहार का प्रस्ताव करते हैं (कहते हैं)।

(४८३)

त्रिवलि-तरंगिनी पुर पुर दुग्गम जनि
मनमथे पत्र पठाउ।
जौवन-दलपति समर तोहर
ऋतुपति-दूत पठाउ[१]॥
माधव, आवे साजिए दहु बाला[२]।
तसु सैसव तोहें जे सन्तापलि[३]
से सब आओति वाला[४]॥
कुण्डल चक्र तिलक अंकुस कए
चन्दन कवच अभिरामा।
नयन कटाख वान गुनधनु[५]
साजि रहल अछि रामा॥
सुन्दरि साजि खेत चलि अइलि
विद्यापति कवि भाने।

नेपाल २४६, पृ: ६० क, पं ४: न० गु० २३३

शब्दार्थ—त्रिवली तरंगिनी—त्रिवलीरूपी तरंगिनी; दुग्गम—दुर्गम; सन्तापलि—सन्ताप दिया; आओति—आवेगी; चक्र—चक्र; खेत—क्षेत्र, समरभूमि।

अनुवाद—त्रिवलीरूपी तरंगिनी—शोभित दुर्ग दुर्गम जान कर यौवनदलपति मन्मथ को पत्र भिजवाया कि तुम्हारा समय आ गया है, ऋतुपति वसन्त को दूत बना कर भेजो। माधव, बाला इस समय कैसी सज रही है, शैशवकाल में जो तुमने उसे कष्ट दिया है, वह सबों का बदला लेगी (प्रत्यागमन करेगी) अर्थात् उसके शैशव में तुमने रतियुद्ध में उसे परास्त किया था, अब वह युवती बलवती हो गयी है, अब तुम्हीं को युद्ध में परास्त करेगी। कुण्डल रूपी चक्र, तिलक को अंकुश बना कर, चन्दन रूपी अभिनव कवच (धारण करके), चक्षु में डोर देकर, कटाक्ष शर देकर रमणी सज रही है। कवि विद्यापति कहते हैं, सुन्दरी सज कर (वन-) क्षेत्र में चली आयी।

४८३—मन्तव्य—(१) नगेन्द्र बाबू ने नहीं लिखा है कि उन्होंने यह पद कहाँ पाया। उनके प्रदत्त पाठ में है। (१) तोहि समर लागि ऋतुपति दूत बढ़ाउ "(२) नगेन्द्र बाबू में है। आवे देखु साजिए बाला (३) सन्तापव (४) आओत पाला (५) नयन कमान कटाख वान दए।

(४८४)

दुहुक संजुत चिकुर फूजल।
दुहुक दुहु बलाबल बूझल॥
दुहुक अधर दसन लागल।
दुहुक मदन चौगुन जागल॥
दुअओ अधर करए पान।
दुहुक कण्ठ आलिंगन दान॥

दुअओ केलि समे समे फेली।
सुरत सुखे विभावरि गेलि॥
दुअओ सअन चेत न चीर।
दुअओ पियासल पीवए नीर॥
भन विद्यापति संसय गेल।
दुहुक मदन लिखन देल॥

तालपत्र न० गु० ४९५

शब्दार्थ—फूजल—मुक्त हुआ; समे समे—समान समान; फेली—फली।

अनुवाद—दोनों जनों का संयुक्त चिकुर मुक्त हुआ, दोनों जनों ने दोनों जनों का बलाबल समझा। दोनों के अधर में दशन लगे, दोनों के मदन चतुर्गुण जाग उठे। दोनों की केलि समान समान फली, सुरतसुख में विभावरी बीत गयी। दोनों शय्या पर वस्त्र सावधानी से नहीं रखते दोनों प्यासे, जल पी रहे हैं। विद्यापति कह रहे हैं, संशय चला गया, मदन ने दोनों को जयपत्र दिया (स्वयं पराभव मान कर उनलोगों को जयपत्र दे गया)।

(४८५)

जखन जाइअ[1] सयन पासे।
मुख परेखए दरसि हासे॥
तखने उपजु एहन भाने।
जगत भरल कुसुम बाने॥
की सखि कहब केलि विलासे।
निअ अनाइति पिया हुलासे॥
नीवि विघटए गहए हारे।
सीमा लाँघए मन विकारे॥

सिनेह जाल बढ़ावए जीवे।
संगहि सुधा अधर पिवे॥
हरखि हृदय गहए चीरे।
परसे अवस कर सरीरे॥
तखने उपजु अइसन साधे।
न दिअ समत न दिअ बाधे॥
भने विद्यापति तु[2] हे सयानी।
अमिअ मिछल[3] नागरि बानी॥

नेपाल २३२, पृ० ८३ ख, पं १: न० गु० ४९६

शब्दार्थ—परेखए—परीक्षा करे; अनायति—अनायत्त; हुलासे—उल्लासे; विघटए—खुले; समत—सम्मति।

अनुवाद—जब शय्या के निकट जाती हूँ (तब) मुख की ओर निहार निहार कर हँसता है। उस समय ऐसा भाव उत्पन्न होता है (मानों) जगत कुसुमशर से पूर्ण हो गया। सखि, केलि-विलास (की बात) क्या कहूँ प्रियतम के उल्लास में मैं अनायत्त हो गयी। नीवि खोल देता है हार ले लेता है, मन के विकार की सीमा का लंघन कर देता है। प्राण में स्नेह जाल बढ़ाता है, उसी के साथ अधरसुधा पान करता है। हर्षित होकर हृदय का वस्त्र हरण करता है, स्पर्श से शरीर अवश करता है। उस समय ऐसी साध उत्पन्न होती है, सम्मति भी नहीं देती, बाधा भी नहीं देती। विद्यापति कहते हैं, हे चतुरे, नागरी की बात अमृतमिश्रित है।

४८५—पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) जाइ (२) ओ (३) मिश्रत कर दिया है।

(४८६)

नीन्दे भरल अछ लोचन तोर।
नानुअ वदन कमलरुचि चोर॥

कञोने कुबुधि कुच नखखत देल।
हा हा सम्भु भगन भए गेल॥
केसकुसुम झलुसरव सिन्दूर।
अलक तिलक हे सेह ञो दुर गेल॥

निरसि धूसर भेल अधर पवार।
कञोने लुलल सखि मदन भँडार॥
भनइ विद्यापति रसमति नारि।
करए पेम पुनु पलटि निहारि॥

नेपाल २१६, पृ० ७७ ख, पं ४

इस पद के साथ वर्त्तमान संस्करण के ६८ संख्या के पद से, जो नगेन्द्र बाबू के संस्करण में १६१ (तालपत्र) संख्या का पद है, बड़ी समानता है।

शब्दार्थ—नानुअ—सुन्दर; कमलरुचि चोर—कमल का सौन्दर्य चोरी की है; झलुसरव—दलित हुआ; लुलल—लूटा; पवार—प्रवाल।

अनुवाद—सखि, तुम्हारी आँखें नींद से भरी हुई हैं। तुम्हारे सुन्दर वदन ने मानों कमल का सौन्दर्य चुरा लिया हो—मुख लाल हो रहा है। किस कुबुद्धि ने तुम्हारे कुचों पर नखक्षत दिया है। हाय हाय! मानों शम्भु भग्न हो गए हों (शिव चन्द्रकला धारण करते हैं, तुम्हारे कुच और नख के दाग से (लगता है कि) चन्द्रकला फूट पड़ी हो—किन्तु तुम्हारा नागर अनिपुण शिल्पी है, अतएव शिव गढ़ते समय उसने (उनको) भग्न कर दिया है; भग्न शिव पूजा योग्य नहीं रहते, यही ध्वनि है)। तुम्हारे केश के कुसुम और कपाल का सिन्दूर (मानों) दलित हो गए हो; अलक-तिलक जो था वह भी) दूर चला गया। तुम्हारे प्रवाल के समान अधर को रसहीन और धूसर कर दिया है। सखि, तुम्हारा मदन-भाण्डार किसने लूटा? विद्यापति कहते हैं, रसवती आँखें फिरा कर देखती हुई प्रेम करती है—सब ओर ख्याल करती हुई प्रेम करती है।

मन्तव्य—विद्यापति का मैथिल पद किस प्रकार बंगला में रूपान्तरित हो जाता है उसका दृष्टान्त इस पद में भी पाया जाता है। पद कल्पतरु में यह पद निम्न आकार में पाया जाता है:—

पूछमो ए सखि पूछमो तोय।
केलि कला सब कहवि मोय॥
वेश भूषण तोर सब छिल पूर।
अलका-तिलक मिटि गेलहि दूर॥
कुसुम-कुल सब भेल भिन भोन।
अधरहि लागल दशनक चीन।

कोन अबुझ हेन कुचे नख देल।
हा हा शम्भु भगन भै गेल॥
अलसहिँ पूरल सकलहिँ गा।
वसन लेइ घन घन कर वा॥
भनये विद्यापति शुन वरनारि।
सरवस लेयल रसिक मुरारि॥

(पद कल्पतरु २५०)

'नीन्दे भरल अछ लोचन तोर' बंगला पद के शेषांश में अलसहिँ 'पूरल सकलहिँ गा' हो गया है। नेपाल पोथी में मूल पद न मिलने से 'सकलहिँ गा' और ''घनघन कर वा' देखकर इसे किसी बंगाली की ही रचना माननी पड़ती। किन्तु बंगाल में विद्यापति की भाषा ही न बदली है भाव भी बदल डाले गए हैं। नेपाल पोथी की भनिता की 'करए पेम पुनु पलटि निहारि' की अपेक्षा 'सरवस लेयल रसिक मुरारि' व्यञ्जनामय नहीं होने पर भी अधिक स्पष्ट है। कुच के साथ शिवलिंग की तुलना प्राचीन है, यथा—स्वयम्भुः शम्भुरम्भाज-लोचने त्वत्-पयोधरः।
नखेनकस्य धन्यस्य चन्द्रचूड़ो भविष्यति॥ —रसमञ्जरी।

(४८७)

रयनि समापलि फुलल सरोज।
भीम भमि भमरी भमरा खोज॥
दीप मन्द रुचि अम्बर रात।
जुगुतिहि जानल भए गेल परात॥

अवहु तेजह पहु मोहि न सोहाए।
पुनु दरसन होउ मोहि मदन दोहाए॥
नागर राख नारि मान रंग।
हठ कएले पहु हो रस भंग॥

तत करिअ जत फावए चोरि।
परसन रस लए न रहिअ आगोरि॥

नेपाल २५५, पृ० ९२ ख, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० २६१।

शब्दार्थ—रयनि—रजनी ; समापलि—शेष हुई ; सोहाए—शोभा पाना ; दोहाए—दुहाई ; फावए—शोभा दे, सजे।

अनुवाद – रात्रि शेष हुई, पद्म फूटा, भ्रमर घूम घूम कर भ्रमरी को खोज रहा है। दीप और रात्रि का आकाश (नक्षत्रहीन होकर) म्लान हुए। इन्हीं सबों से समझा कि भोर हो गया। प्रभु, अब मुझे छोड़ दो (अब) अच्छा नहीं दीख पड़ता। मन्मथ की दुहाई (देती हूँ) फिर भी मिलन होगा। नागर रंग में रमणी की मान-रक्षा करता है, ज़िद करने से, प्रभु, रस भंग हो जाएगा। जिससे चोरी शोभा पावे वही करना चाहिए, विभोर होकर रस लेने के बाद अगोर पर नहीं बैठना चाहिए।

(४८८)

हे हरि! हे हरि! सुनिय श्रवण भरि
अब न विलासक बेरा।
गगन नखत छल से हो अवेकत भेल
कोकिल करइछि फेरा॥

चकवा मोर सोर कए चुप भेल
ओठ मलिन भेल चन्दा।
नगरक धेनु डगर के संचर
कुमुदिनि वसु मकरन्दा॥

मुखकेर पान सेहो रे मलिन भेल
अवसर भल नहिँ मन्दा।
विद्यापति भन इहो न निक थिक
जग भरि करइछि निन्दा॥

ग्रियर्सन ३५ ; न० गु० ३२१।

शब्दार्थ—नखत—नक्षत्र ; अवेकत—अव्यक्त, लीन ; चकवा—चक्रवाक ; मोर—मयूर ; सोर—शब्द ; डगर के—चारागाह की ओर के रास्ते पर।

अनुवाद – हे हरि, हे हरि, कान देकर सुनो, अब विलास का समय नहीं है। आकाश में जो तारे थे, वे भी अब अन्तर्धान हो गए, कोकिल ने शोर मचाना शुरु कर दिया है। चक्रवाक और मोर शब्द करके चुप हो गए हैं।

चन्द्रमा के ओष्ठ म्लान हो गए हैं। नगर की गौएँ चारागाह के रास्ते पर चल रही हैं, मधु कुमुदिनी में ही रह गया है (प्रभात होने पर कुमुदिनी बन्द हो गयी है—अतएव अब और भ्रमर मधुपान नहीं कर सकता)। मुख का पान भी म्लान हो गया, यह समय (विलास के लिए) अप्रशस्त है। विद्यापति कहते हैं, यह ठीक नहीं, जगत भर निन्दा कर रहा है।

(४८६)❀

छलिहु एकाकिनि गथइते हार।
ससरि खसल कुच चीर अ हमार॥
तखने अकामिक आएल कान्त।
कुच की झापव निविहुक अन्त।
कि कहव सुन्दरि कौतुक आज।
पहु राखल मोर जाइते लाज॥

भेल भाव भरे सकल सरीर।
कअ जतने वल राखिअ थीर॥
घसमस कर ए धरिअ कुच जाति।
सगर सरीर धर ए कत भान्ति॥
लोप लहि पारि अ तखन हुलास।
मुन्दला कमल वेकत होअ हास॥

नेपाल २२६, पृ० ८१ क, भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—छलिहु-थी; अकामिक—अकस्मात्; निविहुक अन्त—नीविबन्धन भी शेष हुआ; घसमस करए—व्यस्त होकर।

अनुवाद—मैं अकेली बैठी हार गूँथ रही थी; ससर कर मेरी छाती का कपड़ा गिर पड़ा। उसी समय सहसा कान्त चले आए, कुच क्या ढाँकती, नीविबन्धन भी खुल गया। सुन्दरि, आज के कौतुक की बात क्या कहें? प्रभु ने मेरी लज्जा की आज रक्षा की (व्यक्त कुचों को हाथों से ढाँक दिया)। सारा शरीर भाव से भर कर अस्थिर हुआ; कितना यत्न करके उसको स्थिर रखें, कहो तो! व्यस्त होकर हमारे कुचों को दवा दिया; सारे शरीर में कितनी शोभा ने प्रकाश पायी। उस समय का उल्लास छिपा नहीं सकती। मुँदे कमल से (नयनकमल बन्द रहने पर भी) हँसी व्यक्त हो गई।

४८६—*मन्तव्य*—विद्यापति के पद बंगाल में किस प्रकार केवल रूप के विचार से नहीं, वरन् भाव और शब्दों के विचार से भी परिवर्तित हो गए हैं, उसका दृष्टान्त यह पद भी है। बंगाल में नेपाल का यह पद और ग्रियर्सन का ३१वाँ पद (इस संस्करण में प्रदत्त इसके बाद का पद) तोड़-ताड़ कर पद कल्पतरु का पद बनाया गया है।

एकलि आछिलुँ हाम गाँथ इते हार।
सगरि खसल कुच चीर हमार॥
तैखने हासि हासि आओल कान्त।
कुच किये झाँपव निविहक बन्ध॥

हासि वहुवल्लभ आलिंगन देल।
धैरज लाज रसातल गेल॥
करे कि बुझाएव दूरहि दीप।
लाजे ना याओत ए कठिन जीव॥

विद्यापति कहे मरमक काज।
जिवन सोपलि याहे ताहे किये लाज॥

भनिता में भाव की मौलिकता लक्षणीय है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस बंगाली कवि ने विद्यापति के पद का बंगला रूप दिया था, वे रसज्ञ और प्रतिभावान थे।

(४९०)

जखन[1] लेल हरि कँचुअ[2] अछोड़ि।
कत परजुगति कयल अंग मोड़ि[3]॥
तखनुक कहिनी कहहि न जाए।
लाजे[4] सुमुखि धनि रहलि लजाए[5]॥
कर[6] न मिझाय[7] दूर जर[8] दीप।
लाजे[9] न मरए[10] नारि कठजीव॥
अंकम[11] कठिन सहए[12] के पार।
कोमल हृदय उखड़ि गेल हार॥

भनइ विद्यापति तखनुक भान।
कओन कहलि सखि होएत विहान[13]॥

ग्रियर्सन ३१ ; न० गु० १९२ (तालपत्र)।

शब्दार्थ कँचुअ—काँचलि ; अछोड़ि—छीनना ; परजुगति – उपाय ; अंकम···आलिंगन।

अनुवाद – जिस समय हरि ने कंचुकी छीन ली, (उस समय) सुन्दरी ने शरीर ढकने के अनेक उपाय किए। उस समय की वात कही नहीं जाती, सुन्दरी लज्जा से चुप रह गयी। दीप दूर जल रहा था हाथ से बुझाया नहीं जा सका, लज्जा से मरी नहीं, रमणी के प्राण कठिन (हैं)। आलिंगन कठिन कौन सह सकता है, कोमल हृदय पर हार ने फूट कर चिह्न कर दिया। विद्यापति उस समय का भाव कहते हैं, किस सखी ने कहा, भोर हो गया। [ग्रियर्सन का पाठ—विद्यापति उस समय की वात कहते हैं (नायिका कहती है) सखि—कब रात्रि का प्रभात होगा, इसे कोई नहीं कह रहा है।

(४९१)

वसन हरइते लाज दुर गेल।
पियाक[1] कलेवर अम्बर भेल॥
अओंधे[2] मुहे निहारिए दीव।
मुदला कमल भमर मधु पीव॥
मनमथ चातक नहीं लजाए।
वड़ उनमतिआ अवसर पाए॥
से सव सुमरि मनहुकी लाज।
जन सवे विपरित तन्हिकर काज॥

हृदयक धाधस धसमस मोहि।
आअ व कहव कि कहिलौं तोहि॥

नेपाल ६३, पृ० २३ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि रामभद्रपुर १७२ न० गु० ५८८।

४९०- पाठान्तर—(१) जखनहिं (२) कंचु (३) मोरि (४ लाज (५) लजाए (६) करे (७) मिझाए (८) वढ़ (९) लाज (१०) मरए (११) आकम (१२) सहए (१३) विद्यापति कवि तखनुक भान। कओ न कहए सखि होएत विहान।

४९१—रामभद्रपुर का पाठान्तर—(१) पिअक (२) अओंल नयने निझावए दीव।
मउलहुँ कमल भमर मधु पिव॥
मनसिज तन्त कहओ मन लाए।
वड़ उनमतिआ अवसर पाए॥

रामभद्रपुर की भनिता में है : –
'सरस जो रस तहि अनुरदनारी।
विद्यापति कवि कहए विचारि॥'

शब्दार्थ—अम्बर—वस्त्र ; अओंधे—नत ; उनमतिआ—उन्मत्त हुआ ; धाधस—आकुलता ; धसमस—कम्पित ।

अनुवाद—वस्त्र हरण करते ही लज्जा दूर चली गयी, प्रियतम का कलेवर ही (हमारा) वस्त्र हो गया। नतमुख होकर प्रदीप देखने लगी, भ्रमर ने मुद्रित कमल का मधुपान किया। [रामभद्रपुर के पाठ का अर्थ—आँखें बन्द कर दी, उसी से दीप बुझाने का काम हो गया। भ्रमर ने मुकुलित कमल तुल्य मूँदे नयनों का मधुपान किया।] मन (रूप) चातक लज्जा नहीं प्राप्त करता, अवसर पाकर अत्यन्त उन्मत्त हुआ। वे सारी बातें याद करने से लज्जा होती है, जितने विपरीत कार्य्य हैं, वह वही करता है। हृदय की आकुलता से मेरा अन्तर कम्पित होता है, तुमको कहती हूँ, और क्या कहूँ। [रामभद्रपुर की भनिता— विद्यापति कवि विचार करके कहते हैं कि जो सब रस का अनुभव करती है वह नारी खुल कर वर्णन नहीं करती।]

(४६२)

कि करति अबला हठ कए नाह।
निरदए भए उपभोगत चाह॥
परम प्रबल पहु कोमल नारि।
हाथि हाथ जनि पड़लि पवोनारि॥
कि कहब हे सखि नाह विवेक।
एकहि बेरि रस माग अनेक॥
करल काकुति कत करजुग लाए।
तइअओ मुगुधि रति रचए उपाए॥
बिनु अवसर हठ रस नहि आव।
फुलला फुल मधुकर मधु पाव॥
भनइ विद्यापति गुनक निधान।
जे बुझ ताहि लाग पंचवान॥

तालपत्र न० गु० २०४।

शब्दार्थ—कि करति—क्या करे ; हठ—बल ; नाह—नाथ ; निरदए—निर्दय ; भए—होकर ; पवोनारी—पद्मनाल।

अनुवाद—प्रभु द्वारा बल (प्रकाश) किए जाने पर अबला क्या करे ? निर्दय होकर उपभोग करना चाहता है। नाथ अत्यन्त प्रबल, रमणी कोमला, मानों हाथी के हाथ में पद्मनाल पड़ गया हो। हे सखि, प्रभु की विवेचना की बात क्या कहूँ ? एक बार ही अनेक रस चाहता है। हाथ जोड़ कर कितनी काकुति की, तब भी मुग्ध रति उपाय-रचना करता है। अवसर बिना बल-प्रकाश से रस नहीं आता, कुसुमित कुसुम में भ्रमर मधु पाता है। विद्यापति कहते हैं, जो गुणनिधान इसे समझता है, उसी को पंच बाण लगता है।

(४६३)

पहिलहि सरस पयोधर कुम्भ।
आरति कत न करए परिरम्भ॥
अधर सुधारस दरसए लोभ।
रांकक हाथ रतन नहि सोभ॥
सजनि कि कहब कहइत लाज।
कान्हु क आइति पलथहु[1] आज॥
नीवि ससरि कतए दहु गेलि।
अपनाहु आंग अनाइति भेलि॥
करतले तले धरिअ कुच गोए।
पलले[2] तलित झापि नहि होए॥
भनइ विद्यापति न कर सन्देह।
मधुतह सुन्दरि मधुर सिनेह॥

नेपाल ४३, पृ० १७ क, पं २, न० गु० २७१।

४६३— नगेन्द्र बाबू ने संशोधन कर (१) 'पललुह' (२) 'पहले' कर दिया है।

शब्दार्थ—परिरम्भ—आलिंगन ; रांकक—गरीब का ; आइति—आयत्त ; ससरि—खुल कर ; अनाइति—अनायत्त ; तलित—तड़ित् ; मधुतह—मधु की अपेक्षा भी ।

अनुवाद—पहले ही सरस पयोधर कुम्भ स्पर्श करके आग्रहवश न जाने कितने आलिंगन करता है ! अधर में सुधारस देख कर लुब्ध होता है, दरिद्र के हाथ में रत्न शोभा नहीं पाता । सजनि, क्या कहूँ, कहने में लज्जा होती है, आज कन्हायी के आयत्त में पड़ गयी । नीवि खुल कर कहाँ चली गयी, अपना ही अंग अनायत्त हुआ । हाथ से कुच गोपन करती हूँ, गिरती हुई बिजली छिपा कर नहीं रखी जाती । विद्यापति कहते हैं, सन्देह मत करना, हे सुन्दरि, स्नेह मधुर की अपेक्षा भी मधुर होता है ।

(४६४)

पहिलहि परस ए करे कुचकुम्भ ।
अधर पिबएके कर आरम्भ ॥
तखनक मदन पुलके भरि पूज ।
नीवीबन्ध बिनु फोएले फूज ॥
ए सखि लाजे करव[1] की तोहि ।
कान्हुक कथा पुछह जनु मोहि ॥
धम्मिल भार हार अरुझाव ।
पीन पयोधर नख कत[2] लाव ।
बाहु वलय आँकम भरे भाग[3] ।
अपन आइति नहि अपना आंग ॥

नेपाल ११०, पृ० ३६ ख, पं ४ भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ९५ ।

शब्दार्थ—बिनु फोएले फूज—बिना खोले भी खुल जाता है ; धम्मिल—केश ; अरुझाव—उलझ जाता है ; आँकम—आलिंगन ।

अनुवाद—पहले ही कुचकुम्भ स्पर्श करता है, अधरपान करना आरम्भ करता है । तब पुलक से पूर्ण होकर मदन की पूजा करता है । नीविबन्ध न खोलने पर भी (स्वयं ही) खुल जाता है । हे सखि, लज्जा से तुझे क्या कहूँ कन्हायी की बात मुझसे न पूछ । केशभार में हार उलझ जाता है, पीनपयोधर पर नखक्षत लग जाता है । बाहु का वलय आलिंगन के भार से टूट जाता है, अपना अंग अपने ही आयत्तमें नहीं रहता ।

(४६५)

पहिलहि चोरि आयल पास ।
आंगहि आंग लुकाय[1] तरास ॥
पाछरि भेले देखिअ देह ।
जैसन लिनी[2] चाँदक रेह ॥
सजनि की कहब पुनप काज ।
संमिल करइत तन्हि नहि लाज ॥
एहि तह पाप अधिक थिक नारि ।
जे न गनए प्रर पुरुसक गारि ॥
खन एक रंग संग सव[3] भान्ति ।
से से करत जकर जे जाति ॥
भनइ विद्यापति न कर विराम ।
अवसर पाए[4] पुरत तुअ काम ॥

नेपाल २६८, पृ० ९७ क, पं २ ; न० गु० ४६७ ।

४९४—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन कर (१) 'करब' (२) 'कत' (३) 'भाग' कर दिया है ।

४९५—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन कर (१) 'लुकाय' (२) 'लिनी' (३) 'जाति' (४) 'पर तुअ' कर दिया है ।

अनुवाद—पहले चोरी से (छिप कर) पास आया, त्रास के मारे अंग में अंग छिपा लिया (मैं डर के मारे उसी की गोद में छिप गयी)। बाहर आकर (उसके आलिंगन से मुक्त होकर) (अपना शरीर) देखा, मानों चन्द्र की क्षीण रेखा हो। सजनि, पुरुष का कार्य क्या कहें, कौशल करते उनको लज्जा नहीं होती। इससे भी बढ़ कर नारी का पाप कि वह परपुरुष-संसर्ग-जनित कलंक को गणना नहीं करती। एक क्षण में (मुहूर्त मात्र में) सकल रंगभंग हो जाता है, जिसका जैसा स्वभाव होता है वह वैसा ही करता है। विद्यापति कहते हैं, क्षोभ मत करना, अवसर पाने पर तुम्हारी कामना पूरी होगी।

(४९६)

दृढ़ परिरम्भन पीड़लि मदने[1]।
उबरि अएलहुँ सखि पूरब पुने[2]॥
टूटि छिड़िआएल मोतिम हार[3]।
सिन्दूर लोटाएल सुरंग पँवार[4]॥
सुन्दर कुचजुग नख-खत भरी।
जनि राजकुम्भ विदारल हरी॥
अधर दसन देखि जिउ मोरा कांपे।
चाँदमण्डल जनि राहुक झांपे॥
समुद्र ऐसन निसि न पारिए उर[5]।
कखन उगत मोर हित भए सूर[6]॥
मोय नहि जाएब सखि तन्हि पिया ठाम।
वरु जिव मारि नड़ावथि काम[7]।
भनइ[8] विद्यापति तेज भय लाज[9]॥
आगि जारिये[10] पुनु आगिक काज॥

तालपत्र न० गु० २०१ : ग्रियर्सन ३८।

४९६—ग्रियर्सन का *पाठान्तर*—(१) परिरम्मनि पिड़लि मन्दाहे (२) एलहुँ सखि पुरबक पुण्ये (३) मोतिक हारे (४) वसन लोटाएल सुरंग पनारे (in a conduit channel of red, since soaked with blood) (५) ओरे (६) सूरे (७) अब न जाएब सखि पुनि पहु ठामे। जौं जिव मारि नड़ावत कामे॥ (८) भनहि (९) लाजे (१०) जारि पुनि आगिक काजे॥

मन्तव्य—यही पद टूट-फूट कर बंगाल में पदकल्पतरु में संगृहीत २५१ संख्या का पद हो गया है। यथा—मूलपद का एकादश और द्वादश चरण में का

मोय नहि जायब सखि तन्हि पिया ठामे। वरु जिव मारि नड़ावथु कामे॥

टूट कर बंगला पद का प्रथम दो चरण हो गया है—ना कर ना कर सखि मोहे परिबोधे।
जीउ कि देयब कानु अनुरोधे॥

उसके बाद मैथिल पद का—सुन्दर कुच जुग नखखत भरी। जनि राजकुम्भ विदारल हरी॥
अधर दसन देखि जिउ मोर काँपे। चाँदमण्डल जनि राहुक झाँपे॥

बंगला में इस रूप का हो गया है—कुचयुगे देयल नख परहारे। केसरि जनु गजकुम्भ विदारे॥
अधर निरस मझु करलहि मन्दा। राहु गरासि निशि तेजल चन्दा॥

पदकल्पतरु का २५४ संख्या का पद भी इसी पद का अन्य बंगला संस्करण है, यथा मैथिली पद का—
टूटि छिड़ियायल मोतिम हारे। सिन्दूर लुटायल सुरंग पँवारे॥

एवं इसके परवर्ती चार चरणों का बंगला रूप—टूटल गीमक मोतिम हार। रुधिरे भरल किये सुरंग पवार॥
सुन्दर पयोधर नख-खत भारि। केसरि जनु गजकुम्भ विदारि॥
पुन ना याइब धनि सो पिया ठाम। जीवन रहिले पुराइब काम॥

शब्दार्थ—टवरि—फिर कर ; पँवार—प्रवाल ; उर—ओर, पार ; सूर—सूर्य ; नड़ावधि—फेक देगा ।

अनुवाद—सखि, मदन कृत दृढ़ आलिंगन से पीड़ित हुई हूँ ; पूर्वपुण्यबल से फिर कर आ सकी हूँ । मुक्ता-हार बिखर कर छितरा गया ; सुन्दर प्रवाल तुल्य अधर में सिन्दूर लग गया । सुन्दर कुचयुगल नखों के क्षत से भर गया—मानों सिंह ने गजकुम्भ विदीर्ण किया हो । रात्रि मानों समुद्र के समान—जिसका कभी अन्त ही नहीं होता । मेरे उपकार के लिए सूर्य कब उदित होगा ? मैं अब और उस प्रियतम के पास नहीं जाऊँगी, भले ही-कन्त मेरा वध कर फेंक दे । विद्यापति कहते हैं, भय और लज्जा का परित्याग करो । जहाँ आग का काम हो वहाँ आग न जलाने से कभी काम चल सकता है ?

ग्रियर्सन का अनुवाद—In his warm embrace, blind with intoxication, he gave me pain. I have escaped through the virtuous actions of my former life. My necklace of pearls was broken & scattered, and my garments fell to the ground. My two breasts were torn with his nails, as a lion teareth the forehead of an elephant. When I see the marks of biting on my lower lip, my heart trembleth, as when Rahu obscureth the circle of the moon. All night appeared to me like the fathomless ocean, and I asked myself when the sun would arise, a friend to me. " I shall not go again to my husband, if he thus cast my life away with love". Vidyapati saith, cast away fear and shame, for if thou once light fire, thou must put it to its use.

(४६७)

फूजलि कबरि अवनत आनन
कुच परसए परचारि ।
कामे कमल लए कनक सम्भु जनि
पूजल चामर ढारि ।
पिउ पिउ पलटि हेरि हल पेयसि रयना
मदन सपथ तोहि रे ॥

सामरा लोभ—लता कालिन्दी[१]
हारा सुरसरि धारा ।
मज्जन कए माधवे वर मागल
पुनु दरसन एक वेरा ॥

नेपाल १६९, पृ० ७० क, ' ३,
भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० २८ ।

२५७ संख्या के पद के प्रथम दो चरण और अनुवाद, यथा, नव कुचे नखदेखि जिउ मोरा काँप ।
जनु नव कमले भ्रमर करु झाँप ॥

---

[१] कीर्त्तनीयागन कभी भी मूल पद की भाव-व्याख्या करके 'आखर' लगाते हैं। इसी रूप से 'आखर' लगाते जाने से विद्यापति के पद में नयी बातें संयुक्त होती गयी हैं।

यथा, २५१ संख्या के पद की नूतन बात

[illegible] चरणे हाम कानु से [illegible] ।
[illegible] लाज घर [illegible] से [illegible] ॥
[illegible] निठुर हरि [illegible] देलि ।
[illegible] ॥

छठ भेलहु रस रंग अगेयान ।
निवि-बन्ध तोड़ल कसन के जान ॥
देलहि आलिंगन भुजयुग चापि ।
तैखने हृदय टटलमकु काँपि ॥

नयने वारि ढरकायलुँ रोइ ॥
तबहु कानु उपगम नहि होइ ॥

[illegible] ।

शब्दार्थ—फूजलि—मुक्त ; परचारि—प्रकाशित, व्यक्त ; सामर—कृष्णवर्ण ; सुरसरि—गंगा ; मज्जन कए—अवगाहन करके ।

अनुवाद—(विपरीत रति का वर्णन) मुक्त कवरी और अवनत आनन अनावृत स्तन को स्पर्श कर रहे हैं, मानों काम ने कमल (वदन) लेकर चामर (केश) चला कर स्वर्ण शम्भु (पयोधर) की पूजा की हो । तुमको मदन की शपथ है, फिर प्रेयसी का वदन देख लो । श्यामल लोम लता (नाभिरोमावली) यमुना, हार गंगा की धारा (उसमें नेत्र) अवगाहन करके माधव ने एक बार और दर्शन के लिए वरदान की प्रार्थना की ।

(४६८)

कि कहब ए सखि केलि विलासे ।
विपरित सुरत नाह अभिलासे ॥
कुचजुग चारु धराधर जानी ।
हृदय परत तें पहु देल पानी ॥
मातलि मनमथें[1] दुर गेल लाजे ।
अविरल किङ्किनी कङ्कन बाजे ॥
घाम विन्दु मुख सुन्दर जोती ।
कनक कमल जनि फरि गेलि मोती ॥
कहहि न परिअ परिअ पिय मुख भासा ।
समुहु निहारि दूहू मने हासा[२] ॥
भनइ विद्यापति रसमय वाणी ।
नागरि रम पिय अभिमत जानी ॥

तालपत्र न० गु० ४८२ ; ग्रियर्सन ३३, प० स० पृ० ६२ ; प—त० १०६५ ।

अनुवाद—ग्रियर्सन कृत—How can I tell, oh friend, of his wantonness. My husband desired unlawful. He pretended that my twin breasts were delicate mountains : and he laid his hands upon them, lest they should fall upon his heart. I was intoxicated with love, and my modesty deserted me (nor cared I that) my girdle of bells, and my anklets kept continually tinkling. Beads of perspiration added an enhanced brilliancy to my face : like pearl-fruit forming on a golden lotus. I can not tell the words that issued from my husband's lips. We gazed on each other's faces, and both our hearts laughed. Bidyapati singeth sweet words "Thou knowest, o damsel, sweeter than nector which is chosen, drink it".

अनुवाद—सखि, केलि विलास की बात क्या कहूँ ? नाथ को विपरीत रति की अभिलाषा हुई । कुचयुग को सुन्दर पहाड़ जान कर उन्होंने आशंका की कि वे उनके हृदय पर गिर जाएँगे, इसीलिए उन्हें अपने हाथों से पकड़ लिया । मैं मदन की माती थी, लज्जा दूर चली गयी । अनवरत किङ्किनी और कङ्कण बज रहे थे । मुख पर श्रमविन्दु और सुन्दर ज्योति दिखाई पड़ने लगे, मालूम पड़ा मानों सोना के कमल पर मुक्ता फैले हुए हों । प्रियतम के मुख के सौन्दर्य की बात कह कर उठ नहीं सकती । दोनों के मुख देख कर दोनों को हँसी आती थी । विद्यापति कहते हैं, इस रस की बात—प्रियतम का अभिमत जान कर नागरी रमण करती है ।

४६७—यह पद पहले के संस्करणों में 'माधव के अनुराग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । साधारण समय कवरी पीछे रहती है, स्तन पर नहीं पड़ती ।

४६८—*पाठान्तर*—ग्रियर्सन के शेष चरण में 'नागरि रस' है । पदकल्पतरु में चरण सब अन्य ही रूप से सजाए हुए हैं—तृतीय चरण के स्थान पर नवम चरण है और निम्नरूप का पाठान्तर देखा जाता है—(१) मातल नायर (२) सुनइते ऐछन लहु लहु भास । दुहु मुख हेरइते उपजल हास ॥ (३) भनहु विद्यापति सुन वरनारि । नहिले रसिक कैछे तोहारि मुरारि ॥

(४९९)

वदन झपावए अलकत[1] भार।
चाँदमडल जनि मिलए अन्धार॥
लम्बित सोभए हार विलोल।
मुदित मनोभव खेल हिडोल॥
पियतम अभिमत मने अवधारि।
रति विपरित रतलि वर नारि॥
माल किङ्किनि कर मधुरि राव[2]।
जनि जएतुर मनोभव बाज[3]॥
रभसे निहारि अधर मधु पीव।
नाञी कुसुमसर आकट जीव॥

नेपाल ९९, पृ० २९ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ५८९।

शब्दार्थ—झपावए—छिपाना ; चाँदमडल—चन्द्रमण्डल ; विलोल—सुन्दर ; माल किङ्किनि—किङ्किणी की माला ; जएतुर—जयतुर्य्य ; नाञी—नग्न बनाना ; आकट—कठिन।

अनुवाद—अलक के भार से मुख ढाकती है, मानों चन्द्रमण्डल में अन्धकार मिल गया हो। विलोल हार लम्बित होकर शोभा पाता है, मानों आनन्दित मदन हिंडोला पर झूल रहा हो। प्रियतम का अभिमत मन में अवधारण कर नारी श्रेष्ठ विपरीत रति में अनुरक्त हुई। किङ्किणीमाला मधुर शब्द करती हुई बजने लगी, मानों मदन राजा का जयतुर्य्य (बज रहा हो)। हर्षपूर्वक देखकर अधरपान करता है, कुसुमशर कठिन जीव को भी नग्न बना देता है।

(५००)

केस कुसुम छिरिआएल फूजि।
ताराएँ तिमिर छाड़ि हलु पूजि॥
हेरि पयोधर मनसिज आधि।
सम्भु अधोगति धए समाधि॥
विपरित रमन रमए वरनारि।
रति रस लालसे मुगुध मुरारि॥
चुम्बने करए कलामति केलि।
लोचन नाह निमिलित हेरि॥
ता दुहु रुप ताहि परथाव।
उदय वान दुहु जैसन सभाव॥

नेपाल १२१, पृ० ४४ क ; पं ६, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ५८७ (तालपत्र)।

शब्दार्थ—छिड़िआएल (अथवा नेपाल पोथी का छिनिआएल)—छितरा जाना ; फूजि—खुल कर ; ताराएँ—तारागण ; आधि—मानसिक व्यथा ; परथाव—प्रस्ताव।

अनुवाद—केश के कुसुम मुक्त होकर छितरा गए, मानों अन्धकार ने पूजा समापन करके तारापुंज का त्याग किया हो (पूजा के बाद जिस प्रकार निर्माल्य फूल छितरा जाते हैं उसी प्रकार) अन्धकार (केश) ने पूजा समापन करके नक्षत्रों को फेंक दिया हो। पयोधर देख कर मनसिज को भी विकार (मानसिक व्यथा) उत्पन्न होता है, मानों शम्भु समाधिस्थ होकर मुख नीचे किए हुए हों। नारी श्रेष्ठ विपरीत रति कर रही है, मुरारि रति-रस की लालसा से मुग्ध हो गए हैं। नाथ के लोचनों को निमीलित देखकर कलावती चुम्बन केलि कर रही है। उनके रूप की तुलना (प्रस्ताव) [illegible] है। दोनों का [illegible] जिस प्रकार का है, वैसा ही [illegible] (आदर) हुआ है।

४९९—पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) अलकक (२) राव (३) राज कर दिया है।

(५०१)

कुचकलस लोटाइलि घन सामरि वेणी।
कनय पर सुतलि जनि कारि सापिनी॥
मदनसरे मुरुछलि चिरे चेतहि वाला।
लम्बित अलके वेढ़ला मुखकमल सोभे॥
राहुकि बाहु पसारला ससिमण्डल लोभे॥

नेपाल २२०, पृ० ७९ क, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि।

शब्दार्थ—लोटाइलि—लोटने लगी; कनयपर—कनक के ऊपर; कारि सापिनी—कृष्ण सर्पा; चेतहि—सुचतुरा; चिरे—दीर्घकाल।

अनुवाद—(विपरीत सम्भोग के बाद की अवस्था) घन कृष्णवेणी कुचकलस के ऊपर लोटने लगी, मानों कनक के ऊपर काली सर्पनी सोयी हुई हो। सुचतुरा बाला दीर्घकाल तक मदनशर से मूर्च्छित रही। लम्बित अलक उसके मुख-कमल के ऊपर पड़ कर शोभा बढ़ा रहा है, मालूम होता है मानों शशिमण्डल के लोभसे राहु बाहु प्रसारण कर रहा हो।

(५०२)

आकुल चिकुर वेढ़लि[1] मुख सोभ[11]।
राहु कएल ससिमण्डल लोभ[12]॥
बड़ अपरुब दुइ चेतन मेलि।
विपरित रति कामिनि कर[13] केलि॥
कुच विपरीत विलम्बित हार।
कनक कलस वम[7] दूधक धार[10]॥
पिय[6] मुख सुमुखि चूम[10] तेजि ओज।
चाँद अधोमुख पिवए सरोज॥
किङ्किनि रटित[8] नितम्बिनि छाज।
मदन-महारथ बाजन बाज[14]॥
फूजल[2] चिकुर माल धर[3] रंग[15]।
जनि जमुना मिलु गंग तरंग[4]॥
वदन सोहाओन स्रम-जल-विन्दु।
मदन[5] मे ति लए पूजल इन्दु[11]॥
भनइ विद्यापति रसमय बानी।
नागरि रम पिय अभिमत जानी[9]॥

नेपाल ९८, पृ० ३५ ख, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि।
नेपाल १७४, पृ० ६२ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि॥
९८ संख्या का पद धनछी राग और १७४ संख्या का पद 'कामाण' राग में गेय है।
राग तरंगिणी पृ० १०२-३; प० स० पृ० ८८; पदकल्पतरु १०८१; न० गु० ५८३ (तालपत्र) क्षणदा पृ० १७१।

५०१—*मन्तव्य*—वर्त्तमान संस्करण का १६८ संख्या का पद राग तरंगिणी से लिया गया है। उस पद से इस पद का सर्वांशतः मेल है, केवल (क) चरणों का क्रम विभिन्न है (ख) 'देखलि से धनि हे बासि मालति माला' (ग) भनिता के चार चरण विभिन्न हैं। किन्तु राग तरंगिणी के पद में नायिका की तुलना 'बासि मालती की माला' से हुई है एवं विद्यापति ने उसके सम्बन्ध में कहा है 'थिर थाक न मने' जिससे मालूम होता है कि वह विरह का पद है। नेपाल पोथी में ये दो अंश छोड़ देने पर पद विपरीत रति का ही हो जाता है। मालूम होता है विद्यापति के गान को थोड़ा अदल-बदल करके श्रोतागण अपनी अपनी रुचि के अनुसार आनन्द लेते हैं।

५०२—नेपाल पोथी का *पाठान्तर*—(१) वेढ़ल (२) उतरल (३) कर (४) जनि यमुना जल गांगतरंग (५) मदने (६) पिआ (७) जनि (८) रनित (९) इसके बदले में "भनइ विद्यापति" है।

रा० त० का *पाठान्तर*—(१) वेढ़ल (१५) उभरल कुसुम माल धर अंग (२) मदने (१०) चुम्ब (८) रवइ (९) भनइ विद्यापति मने अनुमानि कामिनि रम पिय अनुमत जानि।

प० स० का *पाठान्तर*—(११) आकुल चिकुर वेढ़लि मुख सोभा (१२) लोभा (२) कुन्तल कुसुम माल करु संग (१३) करु (१०) पिवइ (४) किङ्किन रवहि नितम्बहि साज, मदन विजइ रथ बाजन बाज॥

अनुवाद—आकुल चिकुर ने मुखशोभा को आवृत किया, मानों राहु ने शशि मण्डल के प्रति क्षोभ किया। यह अपरूप (है कि) दो चतुर मिले हैं। कामिनी विपरीत रति में केलि कर रही है। उल्टे पड़े हुए कुचयुग के ऊपर विलम्बित हार डोल रहा है, मानों कनक कलस दूध की धारा वमन कर रहा हो। छलना छोड़ कर सुमुखी प्रिय का मुख चुम्बन कर रही है—मानों अधोमुख होकर चाँद सरोज का पान कर रहा हो। किङ्किणी का बाजा बज रहा है, मानों मदन महारथ का जयवाद्य (हो रहा है)। बाल खुल गए, हार उलझ गया, मानों गंगा-यमुना का मिलन हुआ। श्रम जलविन्दु वदन पर शोभा पा रहे हैं—मानों मदन ने मुक्ता से चन्द्रमा की पूजा की हो। विद्यापति रसमय वाणी कह रहे हैं—नागरी प्रिय का अभिमत जान कर रमण कर रही है।

(५०३)

माधव, तोंहे जनु जाह विदेसे।
हमरो रंग—रभस लए जैवह
लैवह कौन सनेसे॥
वनहिं गमन करु होएति दोसर मति
विसरि जाएब पति मोरा।
हीरा मनि मानिक एको नहि माँगब
फेरि माँगब पहु तोरा॥

जखन गमन करु नयन नीर भरु
देखिओ नि भेल पहु तोरा।
एकहि नगर वसि पहु भेल परवस
कइसे पुरत मन मोरा॥
पहु संग कामिनी बहुत सोहागिनी
चन्द्र निकट जइसे तारा।
भनहि विद्यापति सुनु वर जौमति
अपना हृदय धरु सारा॥

ग्रियर्सन ४५ ; न० गु० ६२०।

शब्दार्थ—जैवह—जावोगे ; लैवह—लावोगे ; फेरि माँगब—फिर चाहूँगी।

अनुवाद—माधव, तुम विदेश मत जावो। मेरा रंग रस सब तुम ले जावोगे, मेरे लिए क्या उपहार (सन्देश) लावोगे। वन में (गोकुल और मथुरा के बीच का वन) जाकर अन्यमति हो जावोगे, (हे) पति, मुझे भूल जावोगे। मैं हीरा, मनि, माणिक, कुछ भी नहीं चाहूँगी, प्रभु, तुमको ही फिर चाहूँगी। प्रभु ने जिस समय गमन किया उस समय नयनों में जल भर आए। तुम्हारी ओर ठीक से देख न सकी। एक ही नगर में वास करके भी प्रभु दूसरे के हो गए, किस प्रकार मेरा मन (मनोरथ) पूर्ण होगा? प्रभु के संग (रहने से) कामिनी अत्यन्त सोहागिनी (होती है), जिस प्रकार चाँद के निकट तारा। विद्यापति कहते हैं, हे श्रेष्ठ युवति! अपने हृदय में धैर्य धारण करो।

५०२—(१६) मदन रति भेद पूरल इन्दु। (७) पलमे चलु (६) भनइ विद्यापति इह वर नारी
काम कलानिधि रचइ धमारि॥

न० गु० का पाठान्तर—प्रथम चार चरण नहीं हैं और सामान्य सामान्य परिवर्तन है।

रागत० का पाठान्तर—(११) [illegible] धैरज सुमनोम (४) उभर कुसुम माने कर रंग (१७) पर सुरधनी धारा। (६) भनइ विद्यापति रसवती नारी
[illegible] किति बदन धमारि।

(५०४)

पाउस निश्रर आएलारे	रचना मे रोश्रन साजना रे
से देखि सामि डराञो।	वारिस न तेजिश्र गेह।
जखने गरजि घन बरिसतारे	जकरा भरेस रसवती रे
कञोन से विपराञो ॥	से कैसे जाए विदेस।

तोहे गुन आगर नागरा रे
सुन्दर सुपहु हमार।
मौने वरिस घन सुनिञा रे
चौखतहु तसु नाम ॥

विद्यापतीत्यादि। नेपाल ४३, पृ० २० क, पं ४।

शब्दार्थ—पाउस—वर्षा; निश्रर—निकट; विपराञो—विपद से रक्षा करेगा; चौखतहु—आस्वादन करना।

अनुवाद—वर्षा आसन्न, उसे देखकर, हे स्वामिन्, मुझे भय हो रहा है। जिस समय मेघ गर्ज्जन होगा और वृष्टिधारा पड़ेगी उस समय विपद से मेरी रक्षा कौन करेगा? हे सखा, मैं रोरोकर प्रार्थना कर रही हूँ कि वर्षा में घर छोड़ कर मत जावो। जिसके भरोसे रसवती है वह किस प्रकार विदेश जाता है? तुम नागर सकल-गुण-निलय हो, मेरे सुन्दर सुप्रभु। विदेश जाना सुनकर नीरव रूप से नयनजल बह रहा है और उनका नाम आस्वादन कर रहा है।

(५०५)

सुरत परिस्रम सरोवर तीर।	जाएखने दितहु आलिगन गाढ़।
सुरु अरुनोदय सिसिर समीर ॥	जनि जुआर परु से खेल पाढ़[२] ॥
मधु निसा वेवत धनि भेलि नीन्द।	जत जत करितहु तत मन जाग[३]।
पुछिओ न गेले मोहि निठुर गोविन्द ॥	अनुसए हीन भेल अनुराग ॥

नेपाल १४६, पृ० ५३ क, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि न० गु० ६१६।

शब्दार्थ—सुरु—आरम्भ; वेवत—मध्य में; जुआर—ज्वार।

अनुवाद—सरोवरतीर पर सुरतपरिश्रम से (क्लान्तशरीर)। अरुणोदय के आरम्भ में शीतल पवन बह रहा है। मधुनिशा में धनि निद्रित हुई। निष्ठुर गोविन्द मुझ से पूछ कर भी नहीं गया। (जान लेने पर) जाने के समय गाढ़ आलिंगन देती, जिस प्रकार ज्वार की लहरें किनारे से लिपट लिपट कर खेलती हैं। जो जो करती, वह सब मन में जाग रहा है, अनुराग अनुशय (आशा) विहीन हुआ।

५०५—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'वेली' (२) 'जनि जुआर परु परु से खेल पाढ़' (३) 'जत करितहु तत मन जाग' कर दिया है।

(५०६)

प्रथम समागम भेल रे।
हठन रइनि विति गेलरे॥
नव तनु नव अनुराग रे।
विनु परिचय रस माँग रे॥
सैसव पहु तजि गेल रे।
जौवन उपगत भेल रे॥

अब न जीयव विनु कन्त रे।
विरहे जीव भेल अन्त रे॥
भनइ विद्यापति भान रे।
सुपुरुख गुनक निधान रे॥

ग्रियर्सन ७१ ; न० गु० ६६२।

शब्दार्थ—हठन—हठता में ; रइनि—रजनी ; विति गेल रे—कट गयी।

अनुवाद—(जब) प्रथम समागम (मिलन) हुआ, हठता में ही सारी रात कट गयी। नवीन तनु, नवीन अनुराग (मेरा), बिना परिचय के ही रस की प्रार्थना करने लगा। शैशव में प्रभु त्याग करके चले गए, यौवन में उपनीत हुए। कान्त-विहीन अब और बचूँगी नहीं, विरह में जीवन का अन्त हुआ। विद्यापति कहते हैं, सुपुरुष गुणनिधान (होता है)।

(५०७)

एहि जग नारि जनम लेल।
पहिलहि वयस विरह भेल॥
कथिलए देव जनम देल।
कठिन अभाग हमर भेल॥

अपनहि कमल फुलायल।
ताहि फुल भमर लोभाएल॥
विद्यापति कवि गाओल।
उचित पुरुविल फल पाओल॥

मिथिला ; न० गु० ६६०।

शब्दार्थ—जग—जग में ; कथिलए—किस लिए ; फुलायल—फूला ; पुरुविल—पहले का।

अनुवाद—इस जगत में नारी-जन्म लिया, प्रथम वयस में ही विरह हुआ। विधाता ने किस लिए मुझे जन्म दिया, मेरा [illegible] (कठिन) दुर्भाग्य हुआ। कमलिनी स्वयं ही प्रस्फुटित हुई, उसी फूल पर भ्रमर लुब्ध हुआ। विद्यापति कवि गाते हैं, पूर्व (पूर्वजन्म) का उचित फल पाया।

(५०८)

प्रथम बयस हम कि कहब सजनि
पहु तजि गेलाह विदेस।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सजनि
[illegible] बिनु सहय कलेस॥
[illegible] [illegible] [illegible] भेल सजनि
[illegible] [illegible] दिनेस।
सिसिर समय [illegible] भेल सजनि
[illegible] [illegible] परदेस॥
[illegible] [illegible] [illegible] सजनि
[illegible] सुन्दर [illegible] गान।

मनसजि मान मरम सर सजनि
कतेक सुनब हम कान॥
सेज कुसुम नहि भावय सजनि
विस सम चानन चीर।
जइओ समीर सीतल बहु सजनि
मन बच उगल सरीर॥
भनहि विद्यापति गाओल सजनि
मन धनि करिअ हुलास।
सुदिन हेरि पहु आओत सजनि
मन जनि करिअ उदास॥

ग्रियर्सन ७० ; न० गु० ७०७।

शब्दार्थ—तनि बिनु—उनके बिना ; कलेस—क्लेश ; आओन अवधि—आने का जो निर्दिष्ट समय था ; बितीत—अतीत ; दिनेस—सूर्य ; उसम—उष्ण, ग्रीष्मकाल।

अनुवाद—सजनि, क्या कहूँ, मेरा प्रथम वयस है, प्रभु (मुझे) छोड़ कर विदेश चले गए। मैं कितना धैर्य बाँधूं और उनके बिना क्लेश सहन करूँ ? उनके लौट कर आने का निर्दिष्ट समय बीत गया, मेघ से सूर्य ढक गया। शीत (शिशिर), वसन्त, और ग्रीष्म (ऋतु) बीत गयी, वर्षा ने प्रवेश किया (पृथ्वी पर अधिकार किया)। चारो ओर झींगुर झंकार कर रहे हैं, पिक सुन्दर गान कर रहा है। मेरे मर्म पर मदन शराघात कर रहा है, मैं कान से कितना सुनूँ ? हे सजनि, कुसुमशय्या अच्छी नहीं लगती, चन्दन और वस्त्र विष तुल्य बोध होते हैं। यद्यपि समीर अत्यन्त शीतलता वहन करता है तथापि मन और वचन शरीर से उड़ गए हैं। विद्यापति गाते हैं, हे सजनि, धनि, मन में आनन्दित होवो। प्रभु सुदिन देख कर आवेंगे; मन उदास मत करो।

(५०६)

सेहे परदेस परजोसित रसिआ
हमे धनि कुलमति नारि।
तन्हि पुनु कुसले आओव निज आलए
हम जीवे गेलाह मारि॥
कहव पथिक पिआ मन दएरे
जौबन वले चलि जाए॥

जयँ आविअ तओं अइ न आओव
जाओ विजयी रितुराज।
अवधि बहुत हे बहुत नहि जीवन
पलटि न होएत समाज॥
गेला नीर निरोधक की फल
अवसर वहला दान।
जयँ अपने नहि जानीआ रे
भल जन पुछव आन॥

विद्यापतीत्यादि।

नेपाल ३४, पृ० १० ख, पं ४, विद्यापतीत्यादि; न० गु० ६६७।

शब्दार्थ—परजोसित—परनारी ; जीवे—जीवन में ; अवधि बहुत—आने की निर्दिष्ट सीमा बहुत दूरवर्ती ; निरोधक—रुद्ध करके ; अवसर वहला—अवसर बीत जाने पर।

अनुवाद—हे धनि, वह विदेश में दूसरी नारी के रस में रसिक (अनुरक्त), मैं कुलवती नारी। वे फिर अपने घर कुशलतापूर्वक लौट आवेंगे, (किन्तु) मुझे वे जीवन में ही मार गए। प्रवासी (पथिक) पथिक को मन देकर कहना, यौवन बलपूर्वक चला जाता है। यदि आवे भी, तथापि अतीत (विजयी), वसन्त फिर नहीं आवेगा। उनके आने में बहुत देरी है, लेकिन जीवन तो दीर्घकाल स्थायी नहीं है। अब फिर मिलन न होगा। जल प्रवाहित होने पर रोकने से और अवसर बीत जाने पर दान करने से क्या फल होता है ? यदि (वे) स्वयं नहीं जानते तो दूसरे अच्छे लोगों से पूछें।

५०६—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने स्वीकार किया है कि यह पद उन्होंने नेपाल पोथी से लिया है ; अन्य कहीं उन्होंने इसे नहीं पाया। तथापि उन्होंने निम्नलिखित चार चरण जोड़ दिए हैं :—

भनइ विद्यापति गाओल रे, रस बुझए रसमन्ता।
रूपनारायन नागर रे, लखिमा देइ सुकन्ता॥

(५१०)

कतहु साहर कतहु सुरभि कतहु नवि मञ्जरी।
कतहु कोकिल पंचम गावए समए गुने गुञ्जरी ॥ध्रु०॥
कतहु भमर भमि भमि कर मधु मकरन्द पान।
कतहु सारस रासरजे रोए सुचत कुसुम वान॥
सुन्दरि नहि मनोरथ ओल।
अपन वेदन जाहि निवेदओ तइसन मेदिनि थोल॥
पिया देसातर हृदय आतर परदुआरे समाद।
काज विपरीत बुझए न पारिअ अपदहो अपवाद॥
पथिक दए समदए चाहिअ वाटे घाटे नहि याव।
खने विसरिअ खने सुमरि सुथीर न थाकए भाव॥
भने विद्यापतीत्यादि।

नेपाल ३, पृ० २ क, ° ४।

शब्दार्थ—साहर—सहकार, आम्रवृक्ष; नवि—नवीन; समए गुने—समय के गुण से; रासरजे (अर्थ स्पष्ट नहीं है); ओल—सीमा; देसातर—देशान्तर।

अनुवाद—कहीं सहकार, कहीं सुरभि, कहीं नवीन मञ्जरी। कहीं कोकिला समयगुण से गूँज कर उसके बाद पंचम तान में गाती है। कहीं भ्रमर घूम घूम कर मधु और मकरन्द पान कर रहा है। कहीं सारस रो रहा है—मालूम होता है कुसुमशर से आहत हो गया है। सुन्दरि, मनोरथ की सीमा नहीं है। ऐसे लोग संसार में कम होते हैं जिनके पास अपनी वेदना की बात बोली जा सके। प्रिय देशान्तर, हृदय आतुर, दूसरे के पास सम्वाद ले जाना होता है। समझती हूँ कि काम अच्छा नहीं है, इससे अपवाद होगा। पथिक के द्वारा सम्वाद भेजना चाहती हूँ, पर और घाट पर जाऊँगी नहीं। कभी भूलता है, कभी याद करता है, मन में कुछ आनन्द नहीं है।

(५११)

क[illegible] दिन [illegible] कोकिल रावे।
मातल मधुकर दहदिस धावे॥
[illegible] न सुनल [illegible] घन बाने।
भमि भमि [illegible] मन माने॥
[illegible]।
[illegible] मनमथ [illegible]॥

किसलय सोभित नव नव चूते।
न धजका धारलि देखिअ बहूते॥
फसि फसि रंग कुसुम सरलेह।
मान न हरए विरह पए देह॥
दहिन पवन कओने धर नामे।
अनुभव पाए मेहओ भेल वामे॥

मन्द समीर [illegible] लागि।
[illegible] लागि॥

नेपाल ११७, पृ० ७० ख, पं० [illegible], भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ७११।

शब्दार्थ—काहु दिस—किसी दिशा में, काहल—तूर्यध्वनि होती है; षएल—रचित ; विमाला—कपाल ; धाला—आक्रमण ; पजारए—ज्वलित करना ।

अनुवाद—किसी दिशा में कोकिल का रव तूर्यनाद के समान (सुनाई पड़ता है)। मत्त मधुकर दशो दिशाओं में धावित हो रहा है। कोई नहीं समझता है कि वह रचित धन लाता है और घूम घूम कर मानिनी का मान भंग करता है। हे सखि अपने कपाल की बात क्या कहूँ, बिना कारण मन्मथ आक्रमण कर रहा है। आम्र-वृक्ष नव नव किसलय-शोभित (मानों मदन का बहु-संख्यक ध्वजा धरे हुए) है। (धनुष की) डोर तान कर कुसुम शर का आघात कर रहा है, प्राण हरण नहीं करता, विरह देता है। दक्षिण पवन नाम किसने रखा है, अनुभव होता है, वह भी वाम हो गया है। विरहिनी का बध करने के लिए मन्द समीर (बह रहा है), विकच पराग आग जला रहा है।

(५१२)

अवधि बहिए हे अधिक दिन गेल ।
वालभु परस्त परदेस भेल ॥
कञोने परिखेपव वसन्त कल राति ।
जानल पुरुष निठुर थीजा जाति ॥
साजनि आवे मोर अइसन गेंआन ।
जीवन चाहि मरण भेल भान ॥

कलिजुग एहे अधिक परमाद ।
दुरजन दुरलए वोल अपवाद ॥
ते हमे एहे हलल अवधारि ।
पुरुष विहुनि जीवए जनु नारि ॥
सुन्दर कह सब धैरज सार ।
तेज उपताप होएत परकार ॥

भनइ विद्यापतीत्यादि. नेपाल १२७, पृ० ४५ ख, पं १ ।

शब्दार्थ—अवधि बहिए—अवधि बीत जाने पर ; वालभु—वल्लभ ; परस्त—दूसरे में अनुरक्त ; परिखेपव—काटूँगी ; वसन्त कल राति—वसन्त की आनन्द-मुखर-रात्रि ; थीजा—हृदय में ; विहुनि—विहीन ।

अनुवाद—जो दिन अवधि की बता गए थे उसको बीते हुए बहुत दिन बीत गए। वल्लभ दूसरे के प्रति अनुरक्त, परदेशवासी हैं। यह वसन्त की आनन्दमुखर रात्रि किस प्रकार काटूँगी? जानती हूँ, पुरुष जाति का हृदय निष्ठुर होता है। सजनि, इस समय मेरे मन में ऐसा होता है कि बच कर जीने की इच्छा से मरना ही अच्छा है। कलियुग में और अधिक विपद् है, दुर्जन वृथा अपवाद फैलाता चलता है। इसी से मैंने यह निश्चय किया है कि पुरुष के बिना नारी जीवन ही धारण न करे। सब से उत्तम धैर्य धरना है। मन की ग्लानि छोड़, इससे उपकार होगा।

(५१३)

सुजन वचन हे जतने परिपालए
कुलमति राखए गारि ।
से पहु वरिसे विदेस गमाओत
जवों की होइति वर नारि ॥
कन्हाइ पुनु पुनु सुभधनि समाद पठाओल
अवधि समापलि आए ॥

साहर मुकुलित करए कोलाहल पिक
भमर करए मधुपान ।
मत जामिनी हे कइसे कए गमाउति
तोह विनु तेजति परान ॥

कुच रुचि दुरे गेल देह अति खिन भेल
नयने गरए जलधार ।
विरह पयोधि काम नाव तहि
आस धरए कइहार[1] ॥

नेपाल ३८, पृ० २५ ख, पं २, न० गु० ७७५ ।

शब्दार्थ—गारि—गाली अपयश ; मत—मत्त ; नाव—नौका ; आस धरए। कइहार—नगेन्द्र बाबू ने अर्थ किया है "नाना कर्णधार" किन्तु "कण्ठहार (कवि कण्ठहार विद्यापति) आशा देते हैं" यह अर्थ करने से संगति होती है। लक्ष्य करना होगा कि इस पद के नीचे विद्यापतीत्यादि नहीं है—सुतरां भनिता के हिसाब से कण्ठहारः न मानने से यह पद विद्यापति की रचना है, इसका प्रमाण नहीं मिलता ।

अनुवाद—सुजन (अपनी) बात का यत्नपूर्वक प्रतिपालन करता है, कुलवती की गाली (अपयश) से रक्षा करता है। प्रभु यदि समस्त वर्ष परदेश में यापन करेंगे (तो) श्रेष्ठ नारी का क्या होगा ? कन्हाई ने बार-बार शुभ सम्वाद भेजा था, जिस दिन की अवधि दे गए थे वह भी आज शेष हो गया। सहकार मुकुलित, पिक कोलाहल कर रहा है, भ्रमर मधुपान कर रहा है। मधुयामिनी किस प्रकार यापन करेगी, तुम्हारे बिना प्राणत्याग करेगी। कुच की शोभा दूर चली गयी शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया, नयनों में जलधारा बह रही है। विरह पयोधि, उसमें काम नौका (है) (कवि) कण्ठहार आशा दे रहे हैं।

(५१४)

शिशिर [illegible] ।
[illegible] नहि [illegible] ॥
[illegible] परदेसिया [illegible] ।
[illegible] ॥

सुनि जन भए पहु भेला भोर ।
आकुल हृदय तन नहि मोर ॥
ए सखि ए सखि कि कहबि तोहि ।
भनिकइ नाथे बिसरल मोहि ॥

निज तन भमए कुसुम मकरन्द।
गगन अनल भए उगल चन्द॥
भनइ विद्यापति पुनु पहु आस।
जावत रहत देह तिल सास॥

मिथिला : न० गु० ७२२।

शब्दार्थ—धन बनिजार—धन का व्यवसायी ; भेला भोर—भूले से हुए ; भलि कह—अच्छी प्रकार।

अनुवाद—शीतकाल गया, वसन्त भी गया, (मेघ) गर्जन कर रहा है, (वर्षा आ गयी) कान्त घर नहीं आए। वे विदेशीय धन के व्यवसायी हैं; मेरे वक्ष पर हार भी भार हो गया है (वे विदेश में दूसरी रमणी के प्रेम में समय यापन कर रहे हैं, शोक में, विरह के कारण मेरे कण्ठ का हार भी गुरुभार के समान बोध हो रहा है)। प्रभु गुणिजन (गुणवान) होकर भी भोला हो गए (भूल गए), मेरा आकुल हृदय त्याग नहीं करता (मेरा प्राणत्याग नहीं होता)। हे सखि, हे सखि, तुमको क्या कहूँ, नाथ अच्छी प्रकार (सम्पूर्णरूप से) मुझे भूल गए। कुसुम का मधु अपने शरीर में ही भ्रमण कर रहा है (कुसुम का मधु कुसुम में ही रह गया, भ्रमर उसको पान करने आया नहीं)। गगन में चन्द्रमा अग्नि (तुल्य) होकर उदित हुआ। विद्यापति कहते हैं, जब तक शरीर में तिलमात्र भी साँस रहे, तबतक फिर प्रभु से मिलने की आशा है।

(५१५)

बरिसए लागल गरजि पयोधर
धरनी दन्तुदि भेलि।
नवि नागरी रत परदेश वालभु
आओत आसा गेली॥
साजनि आवे हमे मदन अधारे।
सून मन्दिरो पाउस के जामिनि
कामिनी की परकारे॥

लघु गुरु भए सवि पए भरे लागलि
नीचेओ भउ अगावे।
कओने परि पथिके अपन घर आओव
सहजहि सव का बाधे॥
एहे बेआज कहए पिआ गेला।
आओव समय समाजे।
मोहि वरु अतनु अतनु कए छड़ाधु
से सुख भुजथु राजे॥

तुअ गुन सुमरि कान्हे पुनु आओव
विद्यापति कवि भाने॥

नेपाल १६३ एवं २०७, पृ० ६६ ख, पं १, एवं पृ० ७४ क ; न० गु० ७०६।

५१५—मन्तव्य—दोनों स्थानों पर कोलाव राग है। १६३ संख्या के पद में शेष दोनों चरणों के बदले विद्यापतीत्यादि है। नगेन्द्र बाबू ने कल्पना के बल से 'राजा सिवसिंघ रुपनाराएण लखिमा देइ रमाणे' कर दिया है (न० गु० ७०६)।

शब्दार्थ—दलुटि—विदीर्ण ; आओत—आने की ; पाउस—वर्षा ; वेआज—छल ; सरि—सरित्, नदी।

अनुवाद—मेघ (पयोधर) गर्जन करके बरसने लगा, पृथ्वी विदीर्ण हुई। वल्लभ विदेश में नव नागरी में मत्त हैं, उनके आने की (लौट कर आने की) आशा चली गयी। सजनि, अभी मैं मदन के आधार (आश्रय) शून्यमन्दिर, वर्षा रात्रि, कामिनी क्या उपाय करे? लघु नदी बढ़ कर बड़ी हो गयी, निम्नस्थान अगाध हुआ। पथिक किस प्रकार अपने घर आवेगा, सब स्वाभाविक बाधाएँ उपस्थित हैं। प्रियतम यही छलना करके गए, (कि) समयानुसार आ मिलूँगा। अच्छा होता कि मदन मुझे देह शून्य कर देता (मदन के कष्ट से) मैं देह त्याग कर देती, वे सुख से राज्यभोग करते। विद्यापति कवि कहते हैं, तुम्हारा गुण स्मरण कर कन्हायी फिर आवेंगे।

(५१६)

अबने पावओं तोहि विधाता
हिंसान्हि मेलओ अनुरुप।
जक चलाह सुचेतन नही
तकेंक के दिअ रुप॥

इ रुप हमर वैरी भए गेल
देहव कुडिठि साल
आनकाइ रुप हित पए
होअए हमर इ भेल काल॥

साजनि आबे कि पुछह सार।
परदेस पररमनि रतल न अरि कन्त हमार।

नेपाल ३६, पृ० १४ ख, पं ५।

शब्दार्थ—पावओं—यदि पाऊँ ; हिंसान्हि मेलओ अनुरुप—जिस प्रकार तुमने मेरे प्रति हिंसा की है, उसी रूप में प्रतिहिंसा करूँगी ; तकेक—उसको ; कुडिठि—कुदृष्टि ; साल—सार ; आनकाइ—दूसरे के लिए।

अनुवाद—हे विधाता, यदि तुमको अभी पावें तो, तुमने जिस प्रकार मेरी हिंसा की है, उसी के अनुरूप मैं तुम्हारी हिंसा करूँ। जिसको तुमने चतुर नहीं बनाया, उसको तुमने रूप क्यों दिया? यही रूप मेरा वैरी हुआ; देखना दूसरे लोगों की कुदृष्टि का सार। दूसरों के लिए रूप उपकारी होता है, मेरे लिए (यह) कालस्वरूप हुआ। सखि, और क्या पूछ रही हो, मेरा कान्त परदेश में पररमणी में अनुरक्त हो गया है।

(५१७)

प्रथमहि¹ [illegible] हृदयक हार।
[illegible]² [illegible] गोरि [illegible]॥
[illegible] हठे [illegible] पेम।
[illegible] [illegible]³ [illegible] हेम

जे घर⁴ हरि सओं सिनेह बढ़ाए।
जत अनुनए तत कहहि न जाए॥
दुरजन दूती तहइ भेल।
गिरिसम गौरव सेओ दूर गेल⁵॥

शब्दार्थ—कएलह—किया ; बिघटओलह—नष्ट किया ; चतुरिआ—छलनाकारी; [(तालपत्र का) :—चटाइल—कुन्दरी; परोर—परवल)]

अनुवाद—पहले तो एकदम गले का हार बनाया, बोले 'तुम मेरे जीवन के आधार हो'। इस प्रकार करके छलनाकारी हाथ से सोना उड़ा लेता है (पाकिटमार के समान मालूम होता है), वैसा करके तुमने सहसा प्रेम नष्ट कर दिया। जो हरि के साथ प्रणय करता है, उसे कितनी अनुशोचना होती है, कहा नहीं जा सकता। दूती भी दुर्जन हुई; मेरा गिरि के समान उच्च गौरव चला गया, वह दूर चला गया। [(तालपत्र के शेष दो चरणों का अनुवाद)—इस समय अपनी बुद्धि की वात क्या कहें, कुन्दरी को मैंने परवल समझा।]

(५१८)

हिमसम चन्दन आनी।
उपर पौरि उपचरिअ सयानी॥
तैअओ न जात सुआधि।
बाहर औषध भितर बेआधि॥
अवहु हेरह बिमोहे।
जीउति जुवति, जस पाओव तोहे॥
अवधि आचक दिन लेखी।
मूद नयन मुख वचन उपेखी॥
कण्ठ ठसाए न जीवे।
वाति न रसि मिलाएल दीवे॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

नेपाल ४१, पृ० ३३ क, प० ५

अनुवाद—सुचतुरा हिम सम चन्दन लाकर प्रलेप करके उपचार करती है; उससे भी आधि अच्छी नहीं होती। व्याधि है भीतर और दवा होती है वाहर। अभी भी यदि तुम आकर (अपने को) दिखा दो, तो युवती बच जाएगी, तुम्हारा यश होगा। जिस दिन आने की अवधि थी उसे लिख रख कर नायिका आँख, मुख बन्द किए है, वात बोलती नहीं है। उसके प्राण कण्ठागत हो गए हैं, अब और बचेगी नहीं। बुझे हुए दीप में रस (तेल, घी, इत्यादि) देने से भी वह नहीं जलता।

(५१९)

माधव हमर रटल दुर देस।
केओ न कहे सखि कुसल सनेस॥
जुग जुग जीवथु वसथु लाख कोस।
हमर अभाग हुनक कोन दोस॥
हमर करम भेल विहि विपरीति।
तेजलन्हि माधव पुरुविल प्रीत॥
हृदयक वेदन वान समान।
आनक दुःख आन नहि जान॥
भनहिं विद्यापति कवि जयराम।
कि करत नाह दैव भेल वाम॥

ग्रियर्सन ४८, न० गु० ६६५

शब्दार्थ—रटथ—भ्रमण करते हैं; सनेस—सन्देश; हुनक—उनका ।

अनुवाद—मेरे माधव दूर देश में भ्रमण कर रहे हैं, सखि, कोई (उनका) कुशल-सन्देश (मुझसे) नहीं कहता । वे लाख कोस पर रहें, युग युग जीवित रहें (कहीं भी रहें, सुख से रहें) । उनका क्या दोष, मेरा अभाग्य है । मेरे कर्मफल से विधाता विपरीत हुए, माधव ने पूर्वरीति का त्याग कर दिया । हृदय की वेदना बाण के समान हुई (किन्तु) एक का दुख दूसरा नहीं जानता । विद्यापति जयराम (नामक व्यक्ति) को कहते हैं कि नाथ क्या करें, विधाता वाम हुआ ।

(५२०)

सेओल सामि सब गुन आगर
सदय सुदृढ़ नेह ।
तहु सबे सबे रतन पावए
निन्दहु मोहि सन्देह ॥
पुरुष वचन हो अवधान ।
ऐसन नहि एहि महिमण्डल
जे परवेदन जान ॥

नहि हित मित कोउ बुझावए
लाख कोटी तोहे सामी ।
सबक आसा तोहे पुरावह
हम विसरह कामी ॥

नेपाल ४१, पृ० १६ ख, पं ३,
विद्यापतीत्यादि; न०गु० ६२०

शब्दार्थ—सेओल—सेवा की; सामि—स्वामी; हित—हितैषी (भोजपुर में हित का अर्थ कुटुम्ब होता है); मित—मित्र ।

अनुवाद—सकल गुणों में श्रेष्ठ, सदय सुदृढ़ नेह (जानकर) स्वामी की सेवा की । अन्य सब लोग उनके पास रत्न पाते हैं, और मैंने केवल निन्दा और सन्देह मात्र पाया । पुरुष की बातें सुन । इस जगत में ऐसा कोई नहीं है जो परवेदन जाने । ऐसा हितैषी मित्र कोई नहीं जो उनको यह समझाए कि तुम लक्ष-कोटि लोगों के प्रभु हो, सबों की आशा तुम पूर्ण करते हो, मुझे क्यों भूल गए ?

(५२१)

दारुन कन्त निठुर हिआ
मति गेल विदेस ।
केओ नहि हित मधु संचरए
जे कहो उपदेस ॥

ए सखि परिहरि गेल
निअ न बुझीअ दोस ।
करम विगति गति माइ हे
काहि करब रोस ॥

मोहि छल दिने दिने बाढ़त
हेरि हरि सओं नेह ।
भागे निअ मति जयमाल
पहु [illegible] गेह ॥

शब्दार्थ—निय—निज; काहि—किस पर।

अनुवाद—सखि, दारुण निष्ठुरहृदय कान्त विदेश में रह गया, मेरा कोई ऐसा हितैषी नहीं जाता जो (उसको) उपदेश दे। हे सखि, वह त्याग करके चला गया, अपना दोष नहीं समझ पाती। हाय, कर्म की कुगति से ऐसा हुआ, किस पर रोष करूँ? देखो, मेरे मन में था, हरि के साथ दिनों दिन प्रेम बढ़ेगा, अब समझ में आया कि प्रभु कपट के घर (कपटता के आधार हैं)।

(५२२)

एहन करम मोर भेल रे।
पहु दुरदेस गेल रे॥
दय गेल वचनक आस रे।
हमहु आएब तुअ पास रे॥
कतेक कएल अपराध रे।
पहु सञे छुटल समाज रे॥
कवि विद्यापति भान रे।
सुपुरुख न कर निदान रे॥

मिथिला; न० गु० ६३४

अनुवाद—मेरा ऐसा अदृष्ट हुआ कि प्रभु दूरदेश चले गये। बात से आशा दे गये (कह गये कि) मैं तुम्हारे पास आऊँगा। कितना अपराध किया है, प्रभु के संग मिलन टूट गया। कवि विद्यापति कहते हैं, सुपुरुष शेष पर्यन्त दुख नहीं देता।

(५२३)

कुन्द कुसुम भरि सेज सोहाओन
चान्द इजोरिए राति।
तिला एक सुपहु समागम पाओल
मास बरख भेलि साति॥
हरि हरि पुनु कइसे पलटि मधुरपुर जाएब
पुनु कइसे भेटत मुरारि।
चिन्ता जाल पड़लि हरिनी सनि
कि करब बिरहिनि नारि॥
एक भमर भमि बहुल कुसुम रमि
कतहु न केओ कर बाध।
बहुवल्लभ सञो सिनेह बढ़ाओल
पड़ल हमार अपराध॥
दिवसे दिवसे वेआधक अधिकाएल
दारुन भेल पचवान।
आओर बरख कत आसे गमाओब
संसअ परल परान॥
भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति
मन चिन्ता करु त्याग।
अचिर मिलत हरि रहु धैरज धरि
सुदिने पलटए भाग॥

न० गु० ६१३ (तालपत्र)

अनुवाद—कुन्द-कुसुम से पूर्ण शय्या सुशोभित, चन्द्र किरणों से रात्रि उज्ज्वल। एक तिल के लिए प्रभु का समागम पाया, मास वर्ष भर शान्ति हुई। हरि हरि! अब फिर किस प्रकार मधुपुर लौटकर जाऊँगी? अब फिर किस प्रकार मुरारी से मिलन होगा? हरिणी के समान चिन्ता जाल में पड़ गयी हूँ, विरहिणी नारी क्या करेगी? एक भ्रमर भ्रमण करके बहुत कुसुमों से रमण करता है, कहीं भी कोई बाधा नहीं देता। बहुवल्लभ के साथ स्नेह बढ़ाया, केवल मेरा ही अपराध हुआ! दिनों-दिन पञ्चबाण निदारुण और व्याधे से भी अधिक हुआ। और कितने वर्ष आशा में काटूँगी? जीवन में संशय पड़ गया। विद्यापति कहते हैं—हे वरयुवति! सुन, मन की दुश्चिन्ता त्याग कर, धैर्य धरे रह, शीघ्र ही हरि से मिलन होगा, सुदिन में भाग्य पलटेगा।

(५२४)

पुरुव जत अपुरुव भेला।
समय वसे सेहओ दुर गेला॥
काहि निवेदओ कुगत पहु।
परमहो पररत ओलाहु॥
तोहहु मानविओं अभिमानी।
परजनाओ वड़ भय हानी॥
हृदय वेदन राखिअ गोए।
जे किछु करिअ भुञ्जिय सोए॥
सवहि साजनि धैरज सार।
नीरसि कहु कवि कण्ठहार॥

नेपाल ३१, पृ० १३ क, पं २, न० गु० ६३७

शब्दार्थ—सेहओ—वह भी; महो—मध्य में; ओलाहु—सीमा।

अनुवाद—पहले जितना अपूर्व हुआ था, समय के दोष से वह सब दूर चला गया। किसको कहूँ, जब प्रभु ही दुष्ट लोगों के शासन में चले आए। जो दूसरे में अनुरक्त है वह दूसरे की सीमा है—वह दूसरे को नहीं चाह सकता तुम भी मान और वित्त की अभिमानी हो; दूसरा होने से उसकी हानि होगी, इसी भय से भीत (हो)। हृदय की वेदना छिपा कर रखनी होती है। जो कुछ करोगी उसका फल भोग करना होगा। सजनि, सबों से सार वस्तु धैर्य है। कवि कण्ठहार इसका सार बाहर करके (नीरसिनिष्कर्ष बाहर करके) कहते हैं।

(५२५)

न जानल कोन दोसे गेलाह विदेस।
अनुखने झखइत तनु भेल सेस॥
बुझहि न पारल निअ अपराध।
प्रथमक प्रेम दइव करु वाध॥
बेरि एक दइव दहिन जओ होए।
निरधन धन जके धरव मोञे गोए॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धइरज कए रह मिलत मुरारि॥

तालपत्र न० गु० ६३१

५२४—*मन्तव्य*—नगेन्द्र गुप्त जी ४-७ चरण छोड़ दिए हैं।

शब्दार्थ—कखइते—शोक करते; दइव—दैव; बाध—बाधा; दहिन—अनुकूल।

अनुवाद—कौन से दोष से प्रियतम विदेश चले गए, नहीं जानती, अनुखन शोक करते करते तनु शेष हो गया। अपना अपराध समझ नहीं सकी, प्रथम प्रेम में ही विधाता ने बाधा दी। एक बार यदि दैव प्रसन्न हो जाए, दरिद्र के धन के समान (दरिद्र जिस प्रकार धन पाने पर करता है) मैं गोपन करके रखूँगी। विद्यापति कहते हैं, वरनारि, सुन, धैर्य धरे रह, मुरारि आवेंगे।

(५२६)

करओं विनति जत जत मन लाइ।
पिया परिचब पचताव कें जाइ॥
धन धइरज परिहरि पथ साचे।
करम दोसें कनकेओ भेल काचे॥
निठुर बालम्भु सों लाओल सिनेहे।
न पुरल मनोरथ न छाड़ सन्देहे॥
सुपुरुस भाने मान धन गेल।
दिन दिन मलिन मनोरथ भेल॥

जदि दूसन गुन पहु न विचार।
बड़ भए पसरओ पिसुन पसार॥
परिजन चित नहि हित परथाव।
धरसने जीव कतए नहि धाव॥
हम अवधारि इलल परकार।
विरह-सिन्धु जिव दए वरु पार॥
भनइ विद्यापति सुन वर नारि।
धैरज कए रह भेटत मुरारि॥

तालपत्र न० गु० ६४०

शब्दार्थ—पसरओ—प्रसारित करता है; परथाव—प्रस्ताव।

अनुवाद—जितना मन लगा कर विनती करती हूँ, प्रिय की बातों से पश्चाताप ही पाती हूँ। धन, धैर्य और सत्य पथ छोड़ कर (तुम्हारी सेवा की), कर्मदोष से कनक भी काँच हो गया। निष्ठुर वल्लभ के साथ स्नेह किया, मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, सन्देह भी नहीं छूटा। सुपुरुष को मन में धारण करने से मानधन चला गया, हृदय का मनोरथ मलिन हुआ। यदि प्रभु दोष-गुण विचार न करें, तब वे बड़े होकर भी पिशुन (दुष्टों) का प्रसार बढ़ा देंगे। परिजनों के चित्त में हित का प्रस्ताव नहीं है (हित करने की इच्छा नहीं है)। धर्षण में प्राण कहाँ नहीं दौड़ते? मैंने यही उपाय अवधारण किया है, वरन् जीवन देकर भी विरहसिन्धु पार करूँगी। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, सुन, धैर्य धारण किए रह, मुरारि के साथ मिलन होगा।

(५२७)

लोचन धाए फेधाएल
हरि नहि आएल रे।
सिव सिव जिवओ न जाए
आस अरुझाएल रे॥
मन करे तँहा उड़ि जाइअ
जहाँ हरि पाइअ रे।
पेम—परस मनि जानि
आनि उर लाइअ रे॥

सपनहु संगम पाओल
रंग बढ़ाओल रे।
से मोर विहि विघटाओल
निन्दओ हेराएल रे॥
भनइ विद्यापति गाओल
धनि धइरज धर रे।
अचिरे मिलत तोहि वालमु
पुरत मनोरथ रे॥

तालपत्र न० गु० ६४५

शब्दार्थ—केधाएल—दौड़ा; अरुझाएल—उलझा हुआ; उर—छाती; विघटाओल—बुरा किया; हेराएल—खो गयी; बालभू—वल्लभ।

अनुवाद—लोचन दौड़ कर बार बार दौड़े (पुनः पुनः अन्वेषण किए), हरि नहीं आए। शिव, शिव, जीव भी नहीं जाता, आशा में उलझ कर रह जाता है। जिस स्थान पर हरि को पाऊँ, वहीं उड़ जाऊँ; उनके प्रेम को स्पर्शमणि समझ कर छाती में रखे रहूँ। स्वप्न में साक्षात् पाया, रंग चढ़ाया, उसको भी विधाता ने नष्ट कर दिया, नींद खो गयी (फिर नींद नहीं आती कि हरि को स्वप्न में देखूँ)। विद्यापति कवि गाते हैं, धनि, धैर्य धर, शीघ्र तुम्हारे वल्लभ आवेंगे, मनोरथ पूर्ण होगा।

(५२८)

नउमि दशा देखि गेलाहे नड़ाए।
दसमि दशा उपगति भेलि आए॥
हुन्हि अरजल अपजस अपकार।
हमे जिवे अंगिरल जम बनिजार॥
आवे सुखे कन्हाइ करथु विदेस।
सुमरि जलाञ्जलि दिहुथि सन्देस॥

वह मलयानिल झर मकरन्द।
उगओ सहस दस दारुन चन्द॥
करओ कमल वन केलि भमरा।
आवे की भल मन्द होएत हमरा॥
भनइ विद्यापति निरदय कन्त।
एहि सों भल वरु जीवक अन्त॥

तालपत्र न० गु० ६१२

शब्दार्थ—नउमि दशा—विरह की दस दशाओं में एक, मूर्च्छा; दसमि दशा—मृत्यु; हुन्हि—वे; अरजल—अर्ज्जन किया; जम—यम; बनिजार—वणिक; उगओ—ऊगे।

अनुवाद—(वे) नवीं दशा (मोह) देख कर फेंक गए (मूर्च्छित अवस्था में चल दिए); दसवीं दशा (मृत्यु दशा) आकर (अब) पहुँच गयीं। उन्होंने अपयश का अपकार (दोष) अर्ज्जन किया। मेरा जीवन यम (रूपी) वणिक् ने अंगीकार किया। अब कन्हायी सुख से विदेश में वास करें। स्मरण करके जल की अञ्जलि देकर संवाद दे (मेरे उद्देश से एक अञ्जलि जल दान करें)। मलयानिल बहे, मकरंद झड़े, दस सहस्र दारुण चन्द्र उदित होवे कमल-वन में भ्रमर केलि करे, अब और क्या अच्छा बुरा (क्षतिवृद्धि) होगा? विद्यापति कहते हैं, कान्त निर्दय; इसकी अपेक्षा वरन् जीवन का अन्त (मृत्यु) अच्छा है।

(५२९)

कमल सुखायल भमर नइ आब।
पथिक पियासल पानि न पाव॥
दिन दिन सरोवर होइ अगारि।
अबहु नइ वरिषइ मही भर बारि॥

यदि तोहें बरिषब समय उपेखि।
की फल पाओब दिवस दिप लेखि॥
भनइ विद्यापति असमय वानी।
मुरुछल जीवय चुरु एक पानी॥

मिथिला; न० गु० ६५०

शब्दार्थ—अगोरि—अगम्भीर; अवहु—अभी भी; दिवस दिप लेसि—दिन में दीप जला कर; चुरु—अञ्जलि।

अनुवाद—कमल सूख गया, भ्रमर आता नहीं। पथिक पिपासित, जल नहीं पाता। दिन-दिन सरोवर अगम्भीर हुआ, अभी भी पृथ्वी भर वारिवर्षण नहीं हुआ। यदि तुम समय की उपेक्षा करके वारिवर्षण करो, (उससे क्या फल होगा ?) दिन में दीप जलाकर क्या मिलेगा ? विद्यापति असमय (बुरे समय) की बात कहते हैं, मूर्च्छित आदमी एक अञ्जलि जल से बच जाता है।

(५३०)

कुसुमे रचल[1] सेज मलयज पंकज
पेयसि सुमुखि समाजे।
कत मधु मास विलासे गमाओल[2]
अब पर कहइते लाजे[3]॥

सखि हे दिन जनु काहु अवगाहे[4]।
सुरतरु तर सुखे जनम गमाओल
धुथुरा तर निरवाहे॥
दखिन पवन सउरभ[5] उपभोगल
पिउल अमिय रस सारे।
कोकिल कलरव उपवन पूरल
तन्हि कत कयल विकारे[6]।

पातहि सञो फुल भमरे अगोरल
तरुतर लेलन्हि वासे।
से फल काटि कीटे उपभोगल
भमरा भेल उदासे॥
भनइ विद्यापति कलिजुग परिनति
चिन्ता जनु कर कोइ।
अपन करम अपने पए भुञ्जिय
जञो जनमान्तर होइ॥

नेपाल १८२, पृ० ६५ क, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ६५१ (तालपत्र)

शब्दार्थ—समाजे—मिलन के लिए। अवगाहे—जाने। तर—तल, निरवाहे—निर्वाह करना होता है; पातहि सञो—पत्ता के सहित; अगोरल—अगोरे रहा।

अनुवाद—सुमुखी प्रेयसी ने मिलन के लिए कुसुम की शय्या की रचना की, चन्दन और पंकज (उसमें डाला)। कितने मधुमास विलास में काट दिए, अब दूसरे को कहते लज्जा होती है। हे सखि, ऐसे दिन किसी को जानने न पड़ें (देखने न पड़ें)। कल्पतरुतले सुख से जन्म कटाया (अब) धतूरा तले निर्वाह करना पड़ रहा है। दक्षिण पवन ने सौरभ उपभोग किया और अमृत रस-सार पान किया। कोकिल-कलरव से उपवन पूर्ण हुआ, उससे विकार (भाव-विकार) उत्पन्न हुआ। भ्रमर ने पत्तों के साथ फूल अगोरा और (आवेग से भर कर) तरुतले वास लिया। वह फल काट कर कीट ने उपभोग किया, भ्रमर उदासीन हुआ। विद्यापति कहते हैं, कलियुग का (यह) परिणाम (है कि) ऐसा होने पर कोई भी चिन्ता नहीं करता। जन्मांतर में किए हुए कर्म का भोग अपने ही करना पड़ता है।

५३०—नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) रचित (२) गमावह (३) आवे कहितहु परलाजे (४) माधव काहु जनु दिह अवगाहे (५) सउरभे (६) नेपाल पद "तन्हि कत कयल विकारे" शेष हो गया। इसके बाद भनइ विद्यापतीत्यादि है।

(५३१)

मोहि तेजि पिया मोर गेलाह विदेस।
कौनि पर खेपब बारि बएस॥
सेज भेल परिमल फुल भेल वास।
कतय भमर मोर परल उपास॥
सुमरि सुमरि चित नही रहे थिर।
मदन दहन तन दगध सरीर॥
भनहिं विद्यापति कवि जय राम।
कि करत नाह दैव भेल वाम॥

ग्रियर्सन ४६; न० गु० ६७०

शब्दार्थ—बारि वयस—बाली उम्र; भनहिँ विद्यापति कवि जयराम— ग्रियर्सन और भगेन गुप्त दोनों ने यहाँ "राम की जय हो" अर्थ किया है; किन्तु विद्यापति कवि जयराम को कहते हैं, यह अर्थ भी सम्भव है।

अनुवाद—मुझे त्याग कर मेरे प्रिय विदेश चले गए; (मैं यह) बाली उम्र किस प्रकार काटूँगी (अल्प वयस में ही विरहिणी हो गयी, किस प्रकार समय बिताऊँगी?) (मेरे यौवनागम से) अब शय्या पर परिमल युक्त हुई, फूलों में सुगन्ध हो गया। (परन्तु) मेरा भ्रमर कहाँ उपवास कर रहा है? स्मरण करने से चित्त स्थिर नहीं रहता, मदन तनु दहन करता है, शरीर दग्ध होता है। कवि विद्यापति जयराम (नामक किसी व्यक्ति) को कहते हैं, दैव के वाम होने पर नाथ क्या करेंगे?

(५३२)

जलउ जलधि जल मन्दा।
जहा वसे दारुन चन्दा।
वचन नहि के परमाने।
समय न सह पचबाने॥
कामिनी पिया विरहिनी।
केवल रहलि कहिनी॥
अवधि समापित भेला।
कइसे हरि वचन चुकला॥
निठुर पुरुस पिरीति।
जीव दए सन्तव जुवती॥
निचल नयन चकोरा।
ढरिए ढरिए पल नोरा॥
पथये रहलो हेरि हेरी।
पिया गेल अवधि विसरी॥
विद्यापति कवि गावे।
पुन फले सुपुरुस की नहि पावे॥

नेपाल २६, पृ० १२ क, पं ५; न० गु० ६७७

शब्दार्थ—जलउ—जल जाए; परमाने—प्रमाण समझे; नोरा—लोर।

अनुवाद—जहाँ दारुण चन्द्रमा वास करता है (वह) बुरे जलधि का जल जल (शुष्क हो) जाए। वचन को कौन नहीं प्रमाण मानता है? किन्तु पंचवाण समय के लिए प्रतीक्षा नहीं करता। कामिनी प्रियतम की विरहिणी, केवल बात ही रह गयी। अवधि (लौट कर आने का समय) समापित (अतिक्रान्त) हो गयी, किस प्रकार हरि वाक्‌भ्रष्ट हो गए? पुरुष का निष्ठुर प्रेम युवती के प्राण सन्तप्त करता है। चकोर (तुल्य) नयन निश्चल, आँसू बह बह कर गिर रहे हैं। पथ की ओर सदा निराहती रहती हूँ, जिस समय के भी आने की कह गए थे (वह अवधि) प्रियतम भूल गए। विद्यापति कवि गाते हैं, पुण्य के फल से क्या सुपुरुष प्राप्त नहीं होता?

(५३३)

जाहि देस पिक मधुकर नहि गुजर
कुसुमित नहि कानने।
छओ रितु मास भेद न जानए
सहजहि अवल मदने॥
सखि हे से देस पिया गेल मोर।
रसमति वानी जतए न जानिअ
सुनिअ पेम बड़ थोला॥

कहलिओ कहनी जतए न बुझए
की करति अंगित काजे।
कओन परि ततए रतल अछ वालभु
निभय निगुन समाजे॥
हम अपनाके धिक कय मानल
कि कहव तन्हिकि वड़ाइ।
कि हमे गरुवि गमारि सव तह
की रति विरत कन्हाइ॥

नेपाल २८७, पृ० १०४ ख, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ६८२

शब्दार्थ—गुजर—गुञ्जरण करे; अंगति काजे—इंगित का फल; रतल—अनुरक्त हुआ; निभय—निर्भय; गरुवि गंभारि—अत्यन्त मूढ़ा।

अनुवाद—जिस देश में पिक नहीं है, मधुकर गुञ्जन नहीं करता, कानन में कुसुम प्रस्फुटित नहीं होते; छवो ऋतु और मासों में भेद नहीं होता, मदन स्वाभावतः बलहीन, उसी देश में मेरे प्रियतम चले गए जहाँ रसमयी वाणी (कोई) नहीं जानता और सुनती हूँ कि प्रेम वहाँ बहुत कम होता है। जहाँ साफ साफ कहने पर भी नहीं समझता, इशारे से वहाँ क्या काम होगा? मैंने अपने को धिक् करके माना, उसका महत्त्व क्या कहूँ? मैं क्या सबों की अपेक्षा मूढ़ा रमणी हूँ अथवा कन्हाई रतिविरत हो गए हैं?

(५३४)

प्रथमहि सिनेह वढ़ाओल
जे विधि उपजाए।
से आवे हठे विघटाओ
दूसन कओन मोर पाए॥

ए सखि हरि सुमझाओव
कए मोर परथाव।
तन्हिके विरहे मरि जाएव
तिरिवध कओन आव॥

जीवन थिर नहि अथिकए
जौवन तहु थोल।
वचन अपन निरवाहिक
नहि करिअए ओल॥

नेपाल १९८, पृ० ६९ ख, पं० २ भनइ विद्यापतीत्यादि; न० गु० ६१५

शब्दार्थ—विघटाओ—नष्ट करता है; परथाव—प्रस्ताव; तिरिवध—स्त्रीवध; आवे—आवेगा, लगेगा; थोल—थोड़ा; ओल—सीमा।

अनुवाद—पहले जो उपाय लगा कर स्नेह बढ़ाया, उसे कौन से मेरे दोष के कारण हठतापूर्वक विनष्ट कर दिया ? हे सखि, मेरा प्रस्ताव करके हरि को समझाना। उनके विरह में मैं मर जाऊँगी, स्त्रीवध किसे लगेगा ? जीवन स्थिर नहीं है, यौवन उसकी अपेक्षा भी अल्प है, अपना वचन निर्वाह करना, (बात रखना) उसका शेष (नाश) मत करना।

(५३५)

आनह केतकिकेर पान।
मृगमद मसि नख काप॥
सबहि लिखबि मोरि नाम।
बिनती देबि सब ठाम॥
सखि हे गइए जनावह नाथ।
कर लिखन दए हाथ॥
नाम लइत पिअ तोर।
सर गद गद करु मोर॥
आँतर जनु हो तोहार।
तें दुर कर उर हार॥
अब भेल नव गिरि सिन्धु।
अबहु न बुझल सुवन्धु॥
विधिगति नहि परकार।
सालय सर कनियार॥
सुकवि भनथि कण्ठहार।
के सह काम परहार॥

तालपत्र ; न० गु० ६८७।

शब्दार्थ—आनह—लावो ; केतकिकेर पात—केतकी का पत्ता ; काप—कर्प्प, कलम ; गइए—जाकर ; आँतर—अन्तर, व्यवधान ; उर हार—छाती का हार ; अब भेल नव गिरि सिन्धु—इस समय नये (अज्ञात) पहाड़ और समुद्र का व्यवधान हुआ ; सालय—शल्य विद्ध करता है ; सर—शर ; कनियार—तीक्ष्ण।

अनुवाद—केतकीपत्र लावो, मृगमद मसी (और) नख लेखनी (होवे)। सब मेरे नाम से लिखना, सब जगह मेरी बिनती देना (जनाना)। सखि, जाकर नाथ को जनाना, हाथ से लिखा हुआ उनके हाथ में देना। (मेरे पत्र का लेख) प्रियतम, तुम्हारा नाम लेते मेरा स्वर गद्गद हो जाता है। तुम्हारा अन्तर न हो, इसी लिए छाती पर का हार दूर करती थी। अब नये पहाड़ और समुद्रों ने व्यवधान उपस्थित किया, सुवन्धु अभी भी नहीं समझता। विधाता जो करते हैं उसमें कोई उपाय नहीं है ; (विधातांकृत शास्ति) तीक्ष्ण शर के समान विद्ध करती है। सुकवि—कण्ठहार कहते हैं, काम का प्रहार कौन सह सकता है ?

(५३६)

कानन भमि भनि कुहुक मयूर।
कट भेल नियर कन्त बड़ दूर॥
कति दुर मधुपुर कह सखि जानि।
जँहा वस माधव सारंगपानि॥
सुनि अपझम्प काँप मोर देह।
गरए गरल विस सुमिरि सिनेह॥
भनइ विद्यापति सुन वर नारि।
धैरज धए रह मिलत मुरारि॥

मिथिला ; न० गु० ६८८।

शब्दार्थ—भमि—भ्रमण करके ; कुहुक—शब्द करता है ; कट—अवधि ; नियर—निकट ; सारंगपानि—पद्मपाणि ; अपभ्रम्य—मन में हठात् व्यथा पाकर।

अनुवाद—कानन में घूम घूम कर मयूर शब्द कर रहा है, अवधि निकट हुई, कान्त बहुत दूर। हे सखि, समझ-बूझ कर बोलो, मधुपुर कितनी दूर है जहाँ पद्मपाणि माधव वास करते हैं। सुनकर (यह सुन कर कि मधुपुर कितनी दूर है) हृदय में आघात हुआ, मेरा शरीर काँप रहा है, स्नेह स्मरण करके गरल विष गल रहा है (स्नेह की स्मृति विषतुल्य लग रही है)। विद्यापति कहते हैं, वरनारि, सुन, धैर्य रख, मुरारि को पावेगी।

(५३७)

पिय विरहिन अति मलिनि
विलासिनि कोने परि जीउति रे !
अवधि न उपगत माधव
अब विस पिउति रे ॥
आतपचर विधु रविकर
चरन कि परसह भीमा रे !
दिन दिन अवसन देह
सिनेहक सीमा रे ॥
पहर पहर जुग जामिनी
जामिनी जगइते रे।
मुरछि परए महि माँझ
साँझ ससी उगइते रे ॥
विद्यापति कह सबतँह
जान मनोभव रे।
केओ जनु अनुभव जगजन
विरह पराभव रे ॥

मिथिला ; न० गु० ६६२।

शब्दार्थ—अवधि न उपगत—निर्द्धारित समय नहीं आया ; आतपचर—उत्तापभोगी ; केओजनु अनुभव—कोई अनुभव न करे।

अनुवाद—प्रियविरहिनी अति मलिना नायिका किस प्रकार बचेगी ? निर्धारित समय पर माधव नहीं आए अब वह विषपान करेगी। चन्द्र (मानों) उत्तापतप्त रवि की किरण (हो)। उसका चरण-स्पर्श (इषत् स्पर्श) अति भयंकर। देह दिनों-दिन अवसन्न हो रही है। स्नेह की यही सीमा (अवधि) है। यामिनी में जागते समय एक एक पहर एक एक युग के समान मालूम पड़ रहा है। सन्ध्या को शशि के उदित होते धरणीतल पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। विद्यापति कहते हैं, मदन का पराक्रम सब कोई जानता है (किन्तु) जगत में कोई विरह यन्त्रणा अनुभव न करे।

(५३८)

सुन्दरि विरह सयन घर गेल।
किए विधाता लिखि मोहि देल ॥
उठलि चिहाय वैसलि सिर नाय।
चहुदिसि हेरि हेरि रहलि लजाय ॥
नेहुक बन्धु सेहो छुटि गेल।
दुहु कर पहुक खेलाओन भेल ॥
भनहिं विद्यापति अपरुप नेहा।
जेहन विरह हो तेहन सिनेह ॥

ग्रियर्सन ५७ ; न० गु० ६६८

शब्दार्थ—उठाल चिहाय—चमक कर उठी ; सिर नाय—सिर नीचा करके ; नेहुक—स्नेह का ।

अनुवाद—विरह (कातर) सुन्दरी शयन-गृह गयी । (बोली) विधाता ने (मेरे ललाट में) जाने क्या लिख दिया है । कितने दिन और पथ की ओर देखती रहूँगी ? हे सखि, वह यमुना के घाट की ओर चला गया। प्रभु के दोनों कर खेलौना हुए (जिस प्रकार खेलौना दो दिन रहता है, उसी प्रकार उनका दोनों कर का आलिंगन, प्रेम अल्पकाल स्थायी हुआ) । विद्यापति कहते हैं, अपूर्व प्रेम ; जैसा विरह, वैसा ही प्रेम (विरह के साथ साथ प्रेम बढ़ता जाता है) ।

(५३९)

मोहन मधुपुर बास ।
हे सखि, हमहुँ जाएब तनि पास ॥
रखलन्हि कुबजाक नेह ।
हे सखि, तेजलन्हि हमरो सिनेह ॥

कत दिन ताकब बाट ।
हे सखि, रटला जमुनाक घाट ॥
ओतहि रहथु दृढ़ फेरि ।
हे सखि, दरसन देखु एक वेरि ॥

भनहि विद्यापति रुप ।
हे सखि, मानुस जनम अनूप ॥

ग्रियर्सन ६८ ; न० गु० ६६६ ।

शब्दार्थ—तनि—उसके ; ताकब—देखती हुई ; रटला—चला गया ; अनूप—अनुपम ।

अनुवाद—हे सखि, मोहन मधुपुर में वास कर रहे हैं, मैं भी उनके पास जाऊँगी । हे सखि, उन्होंने कुब्जा का स्नेह रखा और मेरा त्याग कर दिया। कितने दिन और पथ की ओर देखती रहूँगी ! हे सखि, वे यमुना के घाट की ओर चले गए। उसी दिशा में रहेंगे यही दृढ़ विश्वास कर वहीं घूमती रहती हूँ। हे सखि, काश एक वार भी फिर दर्शन दे जाते ! विद्यापति स्वरुप कहते हैं—हे सखि, मनुष्य जन्म अनुपम (क्योंकि इस प्रकार का प्रेम और किसी योनि में सम्भव नहीं है) ।

(५४०)

नयनक ओत होइत होएत भाने ।
विरह होएत नहि रहत पराने ॥
से अबे देसान्तर आँतर भेला ।
मनमथ मदन रसातल गेला ॥

कओन देस वसल रतल कओन नारी ।
सपने न देखए निठुर मुरारी ॥
अमृत सिचलि सनि बोललन्हि वानी ।
मन पतिआएल मधुरपति जानी ॥

हम छल टुटत न जाएत नेहा ।
दिने दिने बुझल[1] कपट सिनेहा ॥

नेपाल १७१, पृ० ६१ क, पं २, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ६३३ ।

५४०—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'बुझलक' कर दिया है ।

शब्दार्थ—ओत—अन्तराल ; आँतर—अन्तर, व्यवधान ; सनि—तुल्य ; पति आएल—विश्वास किया ।

अनुवाद—नयनों के अन्तराल होते ही लगता है कि विरह में प्राण नहीं रहेंगे। वे इस समय देशान्तर चले गए हैं; मन्मथ मदन रसातल चला गया। कौन देश में वास किया, किस नारी में अनुरक्त हुए, निष्ठुर मुरारि स्वप्न में भी (अब मुझे) नहीं देखता। अमृत सिंचन तुल्य बात कहते थे, मधुरपति जान कर (उनकी बात पर) विश्वास किया था। मेरी धारणा थी कि स्नेह नहीं टूटेगा। दिनों-दिन समझा कि स्नेह कपट-पूर्ण था।

(४१)

कत दिन रहब कपोल कर लाय।
रविक अछइत कमलिनि कुम्भिलाय॥
कहब निअ उगति जुगुति परचारि।
अब न जिवति धनि तोहरि पियारि॥
अभरन भूखन हलु छिड़िआय।
कनक लता सन फुल झड़ि जाय॥
बसन उघरि हेरल भरि दीठि।
गारि नड़ाओल कुसुमक सीठि॥
भनहि विद्यापति सुनु ब्रज नारि।
धैरज धए रह मिलत मुरारि॥

मिथिला; न० गु० ७३२

शब्दार्थ—कर लाय—हाथ पर लगा कर; अछइत—रहते; कुम्भिलाय—म्लान होए। सन—सम; झड़ि—झड़ कर; उघरि—खुल कर; गारि—निचोड़ कर; नेड़ाओल—फेंका।

अनुवाद—हाथ पर कपोल रखे कितने दिन रहूँगी? रवि के रहते कमलिनी म्लान हो रही है। अपनी उक्ति और युक्ति प्रकाश करके कहूँगी" तुम्हारी प्रेयसी धनी अब नहीं बचेगी। आभरण-भूषण छूट गए मानों कनकलता से फूल झड़ गए हों। उसके वसन खुलने पर दृष्टि भर (उसका शरीर देखा, मालूम हुआ मानों किसी ने) कुसुम का रस निचोड़ कर सीठी फेंक दी हो। विद्यापति कहते हैं, व्रजनारि, सुन, धैर्य धर मुरारि मिलेंगे।

(५४२)

भाविनि भल भए विमुख विधाता।
जइह पेम सुरतरु सुखदायक
सइह भेल दुखदाता॥

तारे सुमरि गुन मोर हृदय सूल
नोर नयन रहु झाँपि।
गरज गगन भरि जलधर हरि हरि
अब हमर हिय काँपि॥
करिअ जतन जत विफल होय तत
न पाइअ तोहर समाजे।
विरह दहन दह तइओ जीव रह
सब तह इ बड़ि लाजे॥

निविड़ नेह रस वस भय मानस
पाव पराभव लाखे।
पुरुस परुषमति के जुवती न कहति
कवि विद्यापति भाखे॥

मिथिला का पद; न० गु० ७०६

शब्दार्थ—भल भए—अच्छा हुआ; सून—शून्य; नोर—लोर; समाजे—मिलन; नेह—प्रेम; परुषमति—कठिनहृदय।

अनुवाद—भाविनि अच्छा हुआ (श्लेष), विधाता विमुख हुए। जो प्रेम कल्पतरु के समान सुखदायक वही (प्रेम) दुखदायक हुआ। तुम्हारा गुण स्मरण करके मेरा हृदय शुन्य (हुआ), अश्रु चक्षु को ढंके रहते हैं। हरि हरि! जलधर गगन भरकर गर्जन कर रहा है, अभी मेरा हृदय काँप रहा है। जितना यत्न करती हूँ, सब विफल होता है, तुम्हारे संग मिलन नहीं होता। विरहाग्नि दग्ध कर रही है, तथापि जीवन रह जाता है, सबसे बढ़ कर यही लज्जा है। निविड़ प्रेमरस के वशीभूत मेरा मन लक्ष बार पराजय पा रहा है (लाखों चेष्टा करने पर भी मन को सुस्थिर नहीं कर सकती)। विद्यापति कहते हैं, कौन युवती नहीं कहती कि पुरुष का हृदय कठिन होता है।

(५४३)

दरसन लागि पुजए निते[1] काम।
अनुखन जपए तोहरि पए नाम॥
अवधि समापल मास असाढ़[2]।
अबे दिने दिने जीवन भेल गाढ़[3]॥

कहब समाद बालभु सखि मोर[4]।
सबतह समय जलद बड़ घोर॥
एके[5] अबलाहे कुपुत[6] पञ्चबान।
मरम लखिए कर सर सन्धान॥

तुअ गुन बान्धल अछए परान।
परवेदन देख[7] पर नहि जान॥

नेपाल ८०, पृ० २१ ख, पं० ६, भनइ विद्यापतीत्यादि; रामभद्रपुर ३८६; न० गु० ७१०

शब्दार्थ—गाढ़—कठिन; समाद—सम्वाद; सबतह समय—सब समय से; कुपुत—कुपित।

अनुवाद—दर्शन के लिए नित्य काम की पूजा करती है, अनुक्षण तुम्हारा नाम जपती रहती है (नायिका सखी से कह रही है कि यही बात जाकर नायक को कहना)। आषाढ़ मास में अवधि समाप्त हो गयी, अब दिनों-दिन जीवन गाढ़ होता जा रहा है। सखि, वल्लभ को मेरा यही सम्वाद कहना, सब समय की अपेक्षा (विरहिन के लिए) मेघ का समय बड़ा दुसह होता है। एकतो अबला उस पर पंचबाण कुपित, मर्म लक्ष्य करके शर सन्धान करता है तुम्हारे गुण में प्राण को बाँध कर रखे हुई है, देखो, दूसरे का दुख दूसरा नहीं जानता।

(५४४)

विपत अपत तरु पाओल रे
पुन नव नव पात।
विरहिन-नयन विहल विहि रे
अविरल बरसात॥
सखि अन्तर विरहानल रे
नित बाढ़ल जाय।
विन हरि लख उपचारहु रे
हिय दुख न मेटाय॥

पिय पिय रटए पपिहरा रे
हिय दुख उपजाव।
कुदिना हित जन अनहित रे
थिक जगत सोभाव॥
कवि विद्यापति गाओल रे
दुख मेटत तोर।
हरखित चित तोहि भेटत रे
पिय नन्दकिसोर॥

मिथिला; न० गु० ७२०

५४३—रामभद्रपुर का *पाठान्तर*—(१) नित (२) अखाढ (३) जीवन का गाढ़ (४) कृष्ण के मोर (५) हवे (६) गुपुत (७) परकवेदन दुख। रायभद्रपुर पोथी में भनिता नहीं है, परन्तु नेपाल में है।

शब्दार्थ—विपत अपत—जिसमें पत्ता नहीं है; भड़—पड़ गया अथवा सूख गया; पात—पत्र; उपजाव—उत्पन्न करता है; अनहित—अपकारी।

अनुवाद—विपत्र अपत्र तरुओं ने फिर नये नये पत्ते पाये। विरहिनी की आँखों में विधाता ने अविरल वर्षा की सृष्टि की। सखि, अन्तर का विरहानल रोज बढ़ता जाता है, हरि बिना लाखों उपचार करने पर भी हृदय का दुख नहीं मिटता। पपीहा पिउ पिउ पुकारता है, हृदय में दुःख उत्पन्न हो रहा है। कुदिन में हितकारी मनुष्य भी अहितकारी हो जाते हैं, यह जगत का स्वभाव है (अन्य समय पपीहा की पुकार आनन्दजनक होती है, परन्तु इस समय दुःखदायी है)। कवि विद्यापति गाते हैं, तुम्हारा दुख मिटेगा। प्रिय नन्दकिशोर हर्षित चित्त से आवेंगे।

(५४५)

के पतिआ लए जाएत रे
मोरा पियतम पास।
हिय नहि सहए असह दुख रे
भेल साओन मास॥
एकसरि भवन पिआ बिनु रे
मोरा रहलो न जाय।
सखि अनकर दुख दारुन रे
जग के पतिआय॥

मोर मन हरि हरि लए गेल रे
अपनो मन गेल।
गोकुल तजि मधुपुर बस रे
कत अपजस लेल॥
विद्यापति कवि गाओल रे
धनि धरु पिय आस।
आओत तोर मनभावन रे
एहि कातिक मास॥

मिथिला का पद; न० गु० ७०४

शब्दार्थ—पतिआ—पत्र, एकसरि—एकाकिनी; अनकर—दूसरे का; पतिआय—विश्वास करता है।

अनुवाद—मेरे प्रियतम के पास पत्र कौन ले जायेगा? हृदय असह्य दुख सहन नहीं कर सकता है, श्रावण मास हो गया। प्रिय बिना एकाकिनी, भवन में अब रहा भी नहीं जाता। सखि, दूसरे का दारुण दुख जगत में कौन विश्वास करता है? हरि मेरा मन हरण करके ले गये, अपना भी (उनका अपना भी) मन गया (वह भी कुब्जा और दूसरी स्त्रियों के पास चला गया), गोकुल त्याग कर मधुपुर में वास करके कितना अपजश लिया। विद्यापति गाते हैं, धनि, प्रियतम की आशा धर (उनकी आशा त्याग मत करना), तुम्हारे मनोरञ्जन इसी कातिक मास में आवेंगे।

(५४६)

चानन भेल विसम सर रे
भूसन भेल भारी।
सपनहुँ नहि हरि आएल रे
गोकुल गिरधारी॥
एकसर ठाढ़ि कदम-तर रे
पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु देह दगध भेल रे
झामरु भेल सारी॥

जाह जाह तोंहे उधव रे
तोंहे मधुपुर जाहे।
चन्द्रवदनि नहिं जीउति रे
वध लागत काहे॥
भनहिं विद्यापति तन मन दे
सुनु गुनमति नारी।
आजु आओत हरि गोकुल रे
पथ चलु झट झारी॥

ग्रियर्सन ६४ न० गु० ७३९

शब्दार्थ—चानन—चन्दन; विसम—दुसह; भूसन—भूषण; एकसर—अकेले; झामर—मलिन; उधम—उद्धव; झट झारी—शीघ्र।

अनुवाद—चन्दन दुसह शर (के समान) हुआ, (शरीर का) अलंकार (दुर्वह) भार हुआ। हरि हरि! स्वप्न में भी गिरधारी गोकुल नहीं आये। कदम्बतले अकेले खड़ी मुरारी का पथ देखती है। हरि विना (उसकी) देह दग्ध हुई, साड़ी मलिन ही गयी। हे उद्धव, तुम जावो, जावो, तुम मधुपुर जावो, (जाकर बोलो) चन्द्रवदनि नहीं बचेगी, (उसका) वध किसको लगेगा? विद्यापति कहते हैं, गुणवती नारि, तन और मन से सुन; हरि आज गोकुल आ रहे हैं, शीघ्र शीघ्र रास्ते में चल।

(५४७)

माधव सुन्दरि नयनक वारि।
पीन पयोधर वन झारि॥
त्रिवलि सुरतरंगिनि भेलि।
जनि बढ़िहाए उपटि चलि गेलि॥
आसञो हे उठ चल धाए।
कनक भूधर गेल दहाए॥
सहजहि संकट परवस पेम।
पतक भीत परापति जेम॥
तोहरि पिरिति रीति दूर गेलि।
कुल सञो कुलमति कुलटा भेलि॥
भनइ विद्यापतीत्यादि

नेपाल ८३, पृ० ३० ख, पं० ४, न० गु० ७४६

शब्दार्थ—बढ़िहाए—वृद्धि पाकर; उपटि—उपट कर; आसञो—मन की सब आशा; उठ चल धाय—दौड़ कर भाग गए; वन—बनाया; पतक—पातक; परापति—दूसरे का पति; जेम—मानों [नगेन्द्र बाबु का अर्थ :—परापति—प्राप्ति, जेम—भोजन—प्राप्ति 'अधिक दक्षिणा के लोभ से आहार करते जिस प्रकार पातक का भय होता है")—यह अर्थ संगत नहीं होता]।

अनुवाद—त्रिवली मानों गंगा हुई, मानों वृद्धि पाकर उपट पड़ी (नयनों का जल त्रिवली तक बह चला)। आशासमूह शीघ्र ही पलायन कर गए—सोना का पहाड़ (वक्षस्थल) मानों बह गया। माधव, सुन्दरी के नयनजल ने मानों पीनपयोधर के निर्झर की रचना की। परवश प्रेम स्वाभावतः ही संकटपूर्ण, जिस प्रकार दूसरे का पति पातकभय से भीत होता है। तुम्हारी प्रीतिरिति दूर चली गयी; कुलवती कुल से (बाहर होकर) कुलटा हुई।

५४७—*मन्तव्य*—न० गु० के पाठ से बहुत जगह मेल नहीं है। उन्होंने क्षणदा, कीर्त्तनानन्द और नेपाल की पोथी मिलाकर एक पाठ ठीक किया था। बंगाल में यह पद किस रूप में प्रचलित था, इसका परिचय कीर्त्तनानन्द (१२६) के निम्नलिखित पाठ से पाया जाता है :—

माधव सुन्दरी नयनक वारि।
बुझल पीन पयोधर झारि॥
निचे आछ नीरे उचइ धाय।
कणक भूधर गेल दहाय॥
त्रिवलि आछल तरंगिनी भेल।
जनु वाढ़ि आइ उमरि चलि गेल॥
सहजइ संकट परवश प्रेम।
परपति आशे परापति पेम॥
तोहारि पीरिति दूरे गेल।
कुलसंगे कामिनी कुलटा भेल॥ (कोई भनिता नहीं है)

(५४८)

नदि वह नयनक नीर[1]।
पललि बहए ताहि[2] तीर ॥
सब खन भरम गेआन।
आन पुछिअ कह आन ॥
माधव अनुदिने खिनि भेलि राहि।
चोदसि चान्द हु चाहि ॥
केओ सखि रहलि उपेखि।
केओ सिर धुनि धनि देखि ॥
केओ कर सासक आस।
मयँ धउलिहु तुअ पास ॥
विद्यापति कवि भानि।
एत सुनि सारंग पानि ॥
हरषि चलल हरि गेह।
सुमरिए पुरुव सिनेह ॥

नेपाल ६१, पृ० २३ क ; प० त० १६४०, प० स० ५४२ पृ० न० गु० ७४२।

अनुवाद—नयनों के नीर से नदी बह रही है, उसके तीर पर पड़ी रहती है। सब समय भ्रमज्ञान; एक जिज्ञासा करती हूँ, दूसरा उत्तर देता है। माधव, राही (राधा) दिनों-दिन (कृष्णपक्ष की) चतुर्दशी के चन्द्रमा की अपेक्षा भी अधिक क्षीण हुई। कोई सखी उपेक्षा करके रह गयी, कोई सिर धुन धुन कर देखती है। कोई श्वास (बहने) की आशा करती है। मैं तुम्हारे पास दौड़ कर आयी। कवि विद्यापति कहते हैं, यह सुनकर शार्ङ्गपाणि हरि पूर्व स्नेह स्मरण कर हर्षितचित्त घर को चले।

(५४९)

लोचन नीर तटिनि निरमाने।
करए कमल मुखि तथिहि सनाने ॥
सरस मृनाल करइ जयमाली।
अहनिस जय हरि नाम तोहारी ॥
वृन्दावन कान्हु धनि तप करइ।
हृदयवेदि मदनानल वरइ ॥
जिव कर समिध समर कर आगी।
करति होम वध होएवह भागी ॥
चिकुर वरहिरे समरि करे लेअइ।
फल उपहार पयोधर देअइ ॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारी।
तुअ पथ हेरइत अछि वर नारि ॥

तालपत्र, न० गु० ७५२।

५४८—प० त० का *पाठान्तर*—(१) नीरे (२) तछु—इसके बाद है :

"माधव तोहारि करुणा अति वंका। तोहे नाहि तिरि-वधशंका ॥ दैखने खिन भेल श्वासा। कोई नलिनिदले वरए वतासा ॥ चौदसि - चाँद समान। तुआ विने शून भेल प्राण ॥ कै रह राइ उपोखि। के शिर धुनि धुनि देखि ॥ कै सखि परिखइ श्वास। हाम धाअलुँ तुआ पास ॥ पलटि चलह निज गेह। मने गुनि पुरह सिनेह ॥
नृपति सिंह कवि भान। मने गुनि बुझह सेयान ॥

मन्तव्य—पदकल्पतरु में "नृपति सिंह की" भनिता में इस पद का कुछ अंश पाया जाता है। विद्यापति का पद केवल बंगला भाषा में नहीं है, वैष्णव भाव भी परिवर्तित करके नृपति सिँह की भनिता में पदामृतसमुद्र और पद-कल्पतरु में स्थान पाया है। नेपाल पोथी में है कि हरि पूर्वस्नेह स्मरण कर घर लौट आए। बंगाल में गृहीत पद में दूती माधव से अनुरोध करती है कि पूर्वस्नेह स्मरण कर तुम घर लौट चलो। इस रूप से भाषा और भाव में परिवर्त्तन देखकर मालूम होता है कि भनिता में भी अन्य नाम दे दिया गया है। राधामोहन ठाकुर ने इस पद की टीका में "नृपतिसिँहस्य कवि विद्यापति" लिखा है।

शब्दार्थ—हृदयवेदि—हृदय की वेदी पर ; बरइ—जलता है ; समिध—इन्धन ; समर—स्मरण ; आगी—अग्नि ; होएबह—होगा ; बरहिरे—(अर्थ समझ में नहीं आता) ; समरि—संवरण करके ।

अनुवाद—नयनों के नीर से मानों नदी निर्मित हुई। कमलमुखी उसमें स्नान करती है। हे हरि, सरस मृणाल को जयमाला बनाकर (राधा) अहर्निशि तुम्हारा नाम जपती है। (हे) कन्हायी, धनी (राधा) वृन्दावन तप करती है, हृदयवेदी पर मदनानल जलता है। जीवन इन्धन करके, स्मृति को अग्नि बना कर होम करती है, तुम (उसके) वध के भागी होगे। चिकुर का गुच्छा बनाकर हाथ में लेती है, पयोधर-फल उपहार देती है। विद्यापति कहते हैं, मुरारि, सुनो, सुन्दरी नारी तुम्हारा पथ देखती है।

(५५०)

हृदयक हार भुअंगम भेल।
दारुन दाढ़ मदने विस देल॥
लखसि खन हरि पसर विषधाधि।
तुअ पए पंकज अइलिहु कल वान्धि॥
ए हरि त लागहि तञे गोहारि।
संशय पललि अछु ए वरनारि॥
केओ सखि मनदए चरण पखाल।
केओ सखि चिकुर चीर सम्भार॥
केओ सखि डीठ निहारए सास।
मञे सखि अगलिहु कहए तुअपास॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल २२२, पृ० ८० क, पं ४।

शब्दार्थ—दाढ़—कठिन ; लखसि—देखो ; खन—कुछ क्षण ; कल—यन्त्र ; विषधाधि—विष की ज्वालाएँ ; गोहारि—दुःखनिवारण का उपाय ; पखाल—धोती है।

अनुवाद—हृदय का हार सर्प हुआ ; मदन ने दारुण कठिन विष दिया। हरि ! विष की ज्वाला कैसी बढ़ रही है, ज़रा सा देख जावो। उसको यन्त्र से बाँध कर (साँप का विष ऊपर न चढ़े इसलिए बाँध दिया जाता है) तुम्हारे पदपंकज में आयी। हरि, तुम्हारे ही लिए उसको दुख है तुमहीं उसके दुःख निवारण के उपाय हो। वरनारी का जीवन संशय में पड़ा हुआ है। कोई सखी मन लगा कर चरण धो रही है, कोई वस्त्र और चिकुर सम्भाल रही है। कोई सखी दृष्टि गड़ा कर देख रही है कि साँस चल रही है अथवा नहीं। मैं तुम्हें कहने चली आयी।

(५५१)

डरे न हेरए इन्दु
…विन्दु मलआनिल बोल आगी,
तुअ गुण कहि कहि मुरछि पलए
महि रयनि गमावए जागी॥
सुन्दरि कि कहब आबक सिनेहा
तुअ दरसने विनु अनुखन खिन तनु
अवे तसु जिवन सन्देहा॥
नोरे नअन भरि तुअ पथ हेरि हेरि
अनुखन रोअए कन्हाइ।
तोहरि वचन लए धाएल आस दए
अवे न वचन पतिआइ॥
भनइ विद्यापति अरे रे कलामति
न कर मनोरथ बाधे।
अधर सुधा दए पीति वढ़ावहि
पुरओ मनमथसाधे॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ४०५

अनुवाद—(माधव) डर के मारे चन्द्रमा का दर्शन नहीं करते। तुम्हारा गुण कह कह कर मूर्च्छित होते हैं, जमीन पर सो-जाग कर रात काटते हैं। सुन्दरि, इस समय के प्रेम की बात क्या कहूँ? तुम्हारा दर्शन न पाकर प्रतिक्षण, क्षीणतनु हो रहे हैं, अब जीवन में भी संशय है। नयन सजल कर तुम्हारा पथ देखते हुए सर्वदा ही कन्हायी रुदन करते हैं। तुम्हारा संवाद दौड़ कर ला देती हूँ, यही कह कर आशा देती थी, परन्तु अब मेरी बात का विश्वास नहीं करते। विद्यापति कहते हैं कि हे कलावति, मनोरथ को बाधा मत देना, अधरसुधा देकर प्रीति बढ़ाओ एवं मन्मथ की साध पूरी करो।

(५५२)

फूजलेओ चिकुर राहुक जोर।
रोअए सुधाकर कामिनि कोर॥
अरे कन्हु अरे कन्हु देखह आए।
बड़िअ मधथ देअ बाद छड़ाए॥
दुहु अंजुलि भरि दुहु पुज सीव।
कामदहन मोर राखह जीव॥
जदि न जाएब तोहे अपजस भेल।
ससधर कला गगन चलि गेल॥
भनइ विद्यापति हरि मन हास।
राहु छड़ाए चाँद दिअ बास॥

तालपत्र न० गु० ७५३

शब्दार्थ—फूजलेओ—मुक्त; राहुक जोर—राहु का जोड़ा, तुल्य; बड़िअ—बड़ा; मधथ—मध्यस्थ; बाद छड़ाए—विवाद मिटा देता है; दिअवास—रहने देगा।

अनुवाद—मुक्त केश राहु के समान, (उसके भय से) सुधाकर (मुख) कामिनी के क्रोड़ में रुदन कर रहा है। अरे कन्हायी, आकर देख, महत् मध्यस्थ विवाद मिटा देता है (तुम आकर राहु और चन्द्र का विवाद मिटा दो)। दोनो अंजलि भर कर (युक्त कर) दो शिव की पूजा करती है (वक्ष पर दोनो हाथ युक्त रखती है; (राधा शिवपूजा करके कहती है) हे कामदहन शिव! मेरी प्राण रक्षा करो। यदि तुम न जावोगे, अपयश होगा, शशधर कला गगन में चली जाएगी (राधा प्राण त्याग करेगी) विद्यापति कहते हैं, हरि मन-मन हँसते हैं (विरह) राहु को छुड़ा कर (राधा) चाँद को रहने देंगे।

(५५३)

अकामिक मन्दिर भेलि बहार।
चहुँदिस सुनलक भमर-झँकार॥
मुरछि खसल महि न रहलि थीर।
न चेतए चिकुर न चेतए चीर॥
केओ सखि गावए केओ कर चार।
केओ चानन गदे करए सँभार॥
केओ बोल मन्त्र कान तर जोलि।
केओ कोकिल खेद डाकिनि बोलि॥
अरे अरे अरे कान्हु कि रभसि बोरि।
मदन-भुजंग डसु बालहि तोरि॥
भनइ विद्यापति एहो रस भान।
एहि विस-गरुड़ एक पए कान॥

तालपत्र न० गु० ७५२

शब्दार्थ—अकामिक—अकस्मात्; सुनलक—सुना; खसल—गिर पड़ी; चेतए—सम्भाले; कर चार—हाथ चलावे; चानन गदे—चन्दन और सुगन्धि द्रव्य; सँभार—लेपन करे; जोलि—जोर से; डसु—दंशन किया; विष-गारुड़—विष के गरुड़ स्वरुप, प्रतिकार।

अनुवाद—(सुन्दरी) अकस्मात घर के बाहर हो गयी। चारो ओर भ्रमर की झंकार सुनकर स्थिर नहीं रह सकी, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, उसके चिकुर और वस्त्र कुछ भी सम्भाल में नहीं रह सके। कोई सखी (अमंगल हटाने के लिए) गान करने लगी, कोई करचालना करने लगी, कोई चन्दन और सुगन्धित द्रव्य लेपन करने लगी; कोई कान में जोर से मन्त्रोच्चारणकरने लगी; कोई कोकिल को डाकिनी कह कर भगाने लगी। अरे अरे कन्हायी, क्या कौतुक में डूबे हुए हो। मदन-भुजंग ने तुम्हारी प्रिया को डँस लिया। विद्यापति इस रस का भाव कहते हैं, इस मदन-सर्प के विष के एकमात्र प्रतिकार कन्हायी हैं।

(५५४)

मलिन कुसुम तनु चीरे।
करतल कमल नयन ढ़र नीरे[१] ॥
कि कहब माधव ताही[८]।
तुअ[९] गुने[२] लुबुधि मुगुधि भेलि राही[१०] ॥
उर पर[३] सामरि वेनी।
कमल कोस जनि कारि नगिनी[१२] ॥

केओ सखि ताकए निसासे।
केओ नलिनीदले कर वतासे[४] ॥
केओ[५] बोल[११] आएल हरी।
समरि उठलि चिर नाम सुमरी[६] ॥
विद्यापति कवि गावे।
विरह वेदन निअ सखि सुमझावे[७] ॥

रा० ग० त० १०३; प० त० १६४३ तालपत्र न० गु० ७५७

५५४—(क) रागतरंगिनी का पाठान्तर—(१) कर पर वदन नयन ढरु नीरे—(२) गुन (३) उरलुर
(४) केओ सखि ताकए सासे
(५) केअओ केअओ केअओ नलिनीदले करए वतासे ॥
(६) उससि उठलि सुनि नाम तोहरि।
(७) सुकवि विद्यापति गावे।
विरहिनि वेदन सखि ससुझावे ॥

(ख) पद कल्पतरु का पाठान्तर—(१) मलिन चिकुर तनु चीरे। करतल वचन नयन झरु नीरे ॥ (८) सुन माधव कि बोलब तोए।

(९) तुआ (१०) सोय (४) कोइ कमलदले करइ वतास
कोइ चतुरधनि हेरइ निसास।

(११) कोइ कहे (६) सुनिया चेतन भेल नाम तोहारि।

(१२) उरे दोले सामर वेनी। कमलिनी मोरे जनु कालसापिनी।

अनुवाद—उसके शरीर, वस्त्र और कुसुम मलिन; मुखकमल करतले लग्न, नयनों से अश्रु बह रहा है। माधव, उसकी बात क्या कहूँ? राधा तुम्हारे गुण से लुब्ध होकर मुग्धा हो गयी। उसके वक्ष पर कृष्णवेणी पड़ी हुई है, जैसे कमल कोष में कृष्ण सर्पिनी रहती हो। कोई सखी यह देख रही है कि निश्वास चलती है कि नहीं; कोई नलिनीदल से बातास करती है। कोई कहती है, लो हरि आ गए; (यह सुनकर) नाम स्मरण कर वस्त्र सम्भाल कर उठी। विद्यापति कवि गाते हैं; अपनी सखी को (नायक की) विरहवेदना समझा रही है।

(५५५)

सुन सुन माधव सुन मोरि बानी।
तुअ दरसने बिनु जइसनि सयानी॥
सयने मगन भेल तोहेरि देहा।
कुहु तिथि मगनि जइसनि ससिरेहा॥
सखि जने आँचरे धइलि झपाइ।
अपनहि साँसे जाइति उड़िआइ॥
मुरछि खसलि महि पेयसि तोरी।
हरि हरि सिव सिव एतवाए बोली॥
अब सेओ जीव तेजति तुअ लागी।
ताक मरन बध होएवह भागी॥
भनइ विद्यापति के कर तरान।
तुअ दरसन एक जीव निदान॥

तालपत्र न० गु० ७६२।

शब्दार्थ—जइसन—जिस प्रकार की; सयानी—चतुरा, युवती; कुहु—अमावस्या; मगनि—लीन; जाइति उड़िआइ—उड़ जायगी।

अनुवाद—सुन माधव, मेरी बात सुन, तुम्हारे दर्शन विना युवती जैसी है। उसका शरीर शय्या में मग्न (लीन) हो गया है, अमावस्या की तिथि को जिस प्रकार शशि—रेखा (लीन हो जाती है)। सखीजन आँचल से ढाँक कर रखती है (न तो) अपनी ही स्वाँस से उड़ जायगी। हरि हरि, शिव शिव, इतना ही कह कर तुम्हारी प्रेयसी पृथ्वी पर मूर्च्छिता होकर गिर पड़ी। अब वह तुम्हारे ही लिए प्राणत्याग करेगी, उसके मरण से तुम वध-भागी होवोगे। विद्यापति कहते हैं, कौन त्राण करेगा? तुम्हारा दर्शन ही जीवन (रक्षा) का एक (मात्र) शेष उपाय रह गया है।

५५४—बंगाल में प्रचलित पाठ का मिथिला के पाठ की अपेक्षा कई जगह उत्कृष्टतर है, इसके दो उदाहरण इस पद में पाये जाते हैं। मिथिला में प्राप्त रागतरंगिनी और तालपत्र की पोथी में "मलिन कुसुम तनु चीरे" है, अर्थ—उसके शरीर, वस्त्र, और कुसुम मलिन। विरहिनी कुसुम का व्यवहार नहीं करती। पदकल्पतरु का पाठ—मलिन चिकुर तनु चीरे—अर्थ—उसके केश, शरीर और वस्त्र सब मलिन। विरहिणी के प्रति यही वर्णन ही अधिक स्वाभाविक है। नगेन्द्र बाबू के पाठ में है कि हरि के आने की बात सुनकर वह नाम स्मरण कर वस्त्र सम्भाल कर उठी; रागतरंगिनी में है—तुम्हारा नाम सुनकर दीर्घ निश्वास त्याग कर उठी; और पदकल्पतरु का पाठ है—तुम्हारा नाम सुनकर उसका ज्ञान फिर आया।

(५५६)

नव किसलअ सयन सुतलि
न बुझ दिवस राती।
चाँद सुरुज विसेख न जानए
चानने मानए साती।

विरह अनल मने अनूभव
परके कहए न जाई।
दिवसे दिवसे खिनी बाला
चाँद अवथाएँ जाई ॥

माधव रमनि पाउलि मोहे।
आज धरि मोयँ आसे जिआउलि
ओतए आनह तोहें ॥

कतहु कुसुम कतहु सौरभ
कतहु भर रावे।
इन्दिअ दारुन जतहि हटिअ
ततहि ततहि धावे ॥

मदनसरे जे तनु पसाइल
रितुपति के रोसे।
अपन वालभु जयँ होअ आएत
तयँ दिअ परक दोसे ॥

भन विद्यापति सुन तोयँ जउवति
रहहि संग सपूने।
कन्त दिगन्तर जाहि न सुमर
की तसु रूप कि गूने ॥

तालपत्र ; न० गु० ७६५।

शब्दार्थ—विसेख—विशेष ; पार्थक्य ; इन्दिअ—इन्द्रिय ; पसाइल—आच्छन्न हुआ।

अनुवाद—नये किसलय के शयन पर सोयी है, दिनरात समझ नहीं सकती, चन्द्र और सूर्य का पार्थक्य नहीं समझती, चन्दन को दण्ड समझती है। विरहानल मन में अनुभव करने की चीज़ है, दूसरे को कहा नहीं जाता। बाला दिनों-दिन क्षीण होकर (कृष्णपक्ष के) चन्द्रमा की अवस्था को प्राप्त हो रही है। माधव, रमणी मोहप्राप्त हो गयी है, आज तक मैं आशा से बचा कर रखती आयी हूँ, इसके बाद तुम्हीं जानो। कहीं कुसुम, कहीं सौरभ, कोई स्थान (कोकिल प्रभृति के) रव से पूर्ण। दारुण इन्द्रिय, जहाँ निषेध करो, वहीं वहीं दौड़ता है (इन सबों को न देखने, न सुनने से मन स्थिर रखा जा सकता है सही, परन्तु इन्द्रिय का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता)। ऋतुपति वसन्त के रोष से मदन के शर ने शरीर आच्छन्न कर लिया। यदि वल्लभ आयत्त हो, तब भी दूसरे को दोष दिया जाता है (जहाँ वल्लभ अनायत्त, वहाँ तो सभी पीड़ा देते हैं)। विद्यापति कहते हैं, युवती, तुम सुनो, पुण्यफल से ही (वल्लभ का) संग रहता है, जिसके कान्त दिगन्तर रहकर स्मरण नहीं करते, उसके रूप से ही क्या अथवा गुण से ही क्या?

(५५७)

प्रथमहि रंग रभस उपजाए।
प्रेमक आँकुर गेलाहे बढ़ाए॥
से अब दिन दिन तरुनत भास।
ताँ तरवर मनमथे लेल वास॥
माधव ककें विसरलि वरनारि।
वड़ परिहर गुन दोस विचारि॥
पिक पंचम डरे मदन तरास।
सर गद गद घन तेज निसास॥

नयन सरोज दुहु वह नीर।
काजर पखरि पखरि पर चीर॥
तेंहि तिमित भेल उरज सुवेस।
मृगमदे पूजल कनक महेस॥
सुपुरुस वाचा सुपहु सिनेह।
कवहु न विचल पखानक रेह॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धरु मन धीरज मिलत मुरारि॥

तालपत्र; न० गु० ७६७।

शब्दार्थ—रभस—रहस्य; तरुनत भास—तरुण अवस्था का आभास पाया; पखरि—धोकर, गलकर; पर चीरे—कपड़े पर पड़ता है; तिमित भेल—काला हुआ; वाचा—वचन।

अनुवाद—पहले ही रंग रहस्य उत्पन्न कर प्रेम का अंकुर बढ़ा गए। वह अब दिनों-दिन तरुण हुआ, उसी तरुवर में मन्मथ ने वास लिया। माधव, सुन्दरी नारी को विस्मृत क्यों किया? महत् व्यक्ति दोषगुण विचार कर परिहार करता है। पिक के पंचम स्वर के भय से मदन त्रास उपस्थित होता है। स्वर गद्गद्, घन निश्वास त्याग करती है। दोनों नयन-सरोज से अश्रु बह रहा है, काजल बह बह कर कपड़े पर पड़ रहा है। उससे सुन्दर पयोधर कृष्णवर्ण में रञ्जित हुए (मानों) मृगमद से स्वर्णशम्भु की पूजा की हो। उत्तम सुपुरुष का वचन और सुप्रभु का स्नेह पाषाण की रेखा के समान कभी भी विचलित नहीं होते। विद्यापति कहते हैं, हे नारी श्रेष्ठ, सुन, मन में धैर्य धर, मुरारि आवेंगे।

५५७—पाठान्तर—१८१ पृ० ६४ ख, पं ५ :—

प्रथमहि हृदय प्रेम उपजाए।
पेमक आङ्कुर गेलाह बढ़ाए।
से आवे तरुअर सिरिफल भास।
तहिठ नवले मनमथे लेल वास॥
माधव कके विसरलि वर नारि।
बढ़ परिहर गुणदोप विचारि॥

नयन सरोज दुहु वह नीर।
काजर पखरि पखरि पल चीर॥
तोहि तिमित भेल उरज सुवेस।
मृगमदे पूजल कनक महेश॥
काजरे राहु उरग सिपकाहु।
विसर मलयज पुनु मलयज पंक॥

चान्द पवन पिक मदन तरास।
सरग सगद घन छाड़ निसास॥

भनइ विद्यापतीत्यादि॥

(५५८)

विधि वसे तुअ संगम तेजल
दरसन भेल साध।
समय वसे मधु न मिलए
सौरभ के कर बाध ॥

माधव, कठिन तोहर नेह।
तुअ विरह बेआधि मुरछलि
जीवन तासु सन्देह ॥

जगत नागरि कत न आगरि
तथुहु गुपुत पेम।
से रस वएस पुनु पाविअ
देलहु सहस हेम ॥

नेपाल १६४, ० ४८ ख, २, भने विद्यापतीत्यादि ; न० गु० ७८२।

शब्दार्थ—के कर बाध—कौन बाधा देता है ; आगरि—अग्रगण्य ; सहस—सहस्र।

अनुवाद—विधिवश तुमने संग त्याग किया, दर्शन की साध हुई, समयगुण से मधु नहीं मिलता, सौरभ में कौन बाधा देगा ? (मधु सब कोई नहीं पाता, किन्तु सौरभ का सब उपभोग करते हैं, तुम दर्शन तो दो, अधरमधु भले ही मत देना)। माधव, तुम्हारा स्नेह कठिन है, तुम्हारी विरह-व्याधि से मूर्च्छित हो गयी, उसके जीवन में सन्देह है। जगत में जाने कितनी अग्रगण्या नारी हैं एवं उनमें न जाने कितना गुप्त प्रेम है, किन्तु सहस्र सुवर्ण देने से भी क्या वैसा रस और वैसा वयस प्राप्त हो सकता है ?

(५५९)

आजे तिमिर दह दीस छड़ला।
आजे दिघर भए दिवस बढ़ला ॥
आजे अकथ भेल परिजन कथा।
आरति न रहए उचित वेथा ॥
ए सखि ए सखि फललि सुवेला।
निअर आएल पिआ लोचन मेला ॥

विरहे दगध मन कत दुर धओला।
मागल मनोरथ कओने सखि पओला ॥
कत खन धरब जाइते जिव राखि।
आसा बाँध पड़ल मन साखि ॥
भनइ विद्यापति सुन सजनी।
वालभु सुन भेल महघि रजनी ॥

तालपह न० गु० ७६३।

अनुवाद—आज दसो दिशाओं से तिमिर मानो हट सा गया। आज दिन भी मानो दीर्घ हो गया (शेष नहीं होता)। आज परिजन की बातें अकथ्य हो गयीं—कहने में अच्छी नहीं लगतीं। उत्कंठा से उचित व्यथा भी नहीं रह जाती। ए सखि, ए सखि, सुदिन बूझ कर आयी—प्रिय के निकट आयी, नयनों का मिलन हुआ। (किन्तु वृथा आशा में) विरह में दग्ध होकर मन कितनी दूर दौड़ा था ? माँगने से कहीं मनोरथ पूर्ण होता है ? जो प्राण जाने जाने है उसे कितनी देर तक बाँध कर रखा जा सकता है ? आशा के बन्धन में मन साक्षी हुआ। विद्यापति कहते हैं—सजनि सुन, वल्लभ-विहीन यह रात्रि दुर्मूल्य हो गयी (इसे बहुत दुख से काटना पड़ रहा है) ;

(५६०)

प्रथम एकादस दइ पहु गेल।
से हो रे वितित मोर कत दिन भेल॥
ऋतु अवतार वयस मोर भेल।
तइओ न पहु मोर दरसन देल॥
अब न धरम सखि बांचत मोर।
दिन दिन मदन दुगुन सर जोर॥
चान सुरुज मोहि सहिओ न होए।
चानन लाग विखम सब सोए॥
भनहिं विद्यापति गुणवति नारि।
धैरज धैरह मिलत मुरारि॥

ग्रियर्सन ६२ ; न० गु० (प्र) २।

अनुवाद—प्रभु मुझको क (प्रथम) ट (एकादश) कट (प्रतिश्रुति, वचन) दे गए। वह भी कितने दिन हुए व्यतीत हो गया। ऋतु (६) अवतार १०=१६ वर्ष का मेरा वयस हो गया। तब भी हमारे प्रभु ने दर्शन नहीं दिया। सखि, अब और मेरी धर्म-रक्षा नहीं होगी। दिनोंदिन मदन का शराघात दुगुना हो रहा है। चन्द्रमा और सूर्य दोनों ही मुझे असह्य लगते हैं। चन्दन अच्छा नहीं लगता। विद्यापति कहते हैं, हे गुणवति नारि! धैर्य धर, मुरारि मिलेंगे।

(५६१)

जओ प्रभु हम पए वेदा लेब।
हमहु सुजन दोद राइत देव॥
सुभ हो सामि कहब की रोए।
परतह तिल लए हम देब गोए॥
आइलि जगत जुवति के अन्ध।
सामि समिहित कर प्रतिवन्ध॥
दिनदस चीत रहलि अविचारि।
तते होएत जत लिहल कपालि॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

नेपाल २०६, पृ० ७४ क, पं ३।

शब्दार्थ—जओ—जब ; पए—अव्यय शब्द ; वेदा लेब—विदाई लेंगे ; राइत (अर्थ समझ में नहीं आता) : रोए—रोकर : परतह—प्रत्यह ; गोए—छिपा कर ; समिहित—अभीष्ट ; लिहल—लिखा ; कपालि—भाग्य।

अनुवाद—जब प्रभु मेरे पास से विदा लेंगे, उस समय मैं सुजन को कोई दोष न दूँगी (?)। मैं रोकर क्‍या कहूँगी, स्वामी, तुम्हारा शुभ होवे, मैं तुमको प्रत्यह छिपा कर तिलाञ्जलि दूँगी। इस जगत में कौन युवती ऐसी अन्धी है कि स्वामी के अभीष्ट कार्य में प्रतिवन्धकता करे? दस दिन भी चित्त को स्थिर न कर सकी ; उसके बाद लगा, कपाल में जो कुछ भी लिखा हो, होवे।

५६०—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने 'अब न धरम सखि बाँचत मोर
दिन दिन मदन दुगुन सर जोर।"
सम्भवतः बाधा के पक्ष में यह प्रयोज्य नहीं है, इसीलिए छोड़ दिया है।

(५६२)

हाथिक दसन, पुरुष वचन कठिने बाहर होए।
ओ नहि लुकए, बचन चुकए, कते किवओ कोए॥
साजनि अपद गौरव गेल।
पुरुब करमे, दिवस दुखने, सबे विपरित भेल॥
जानल सुनल ओ नहि कुजन तेह मेलाओल रीति।
हसु तारापति॥
रिपु खण्डन कामिनि लुहवर वदन सुशोहे।
राजमराल ललितगति सुन्दर से देखि मुनिजन मोहे॥
पिअतम समन्दु सजनी।
सारंग रंग वदन ताते रिपु अति सुख ततेह महघि रजनी॥
दितिसुत रतिसुत अतिबड़ दारुण तातह वेदन होइ।
परक पिड़ाए जे जन पारिअ तेसन न देखिअ कोइ॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल २०१, पृ० ७२ क, पं ३१

शब्दार्थ—हाथिक दसन—हाथी का दाँत ; बाहर होए—बाहर होता है ; लुकए—छिपता है ; चुकए—भूल जाता है ; कते किवओ कोए (अर्थ समझ में नहीं आता) ; दुखने—दूषण से ; रिपु खण्डन—प्रथम रिपु काम को खण्डन करे ऐसा ; लुहवर—लुब्धकारी ; समन्दु—सन्बाद दो ; सारंग रंग वदन—कमल के समान मुख ।

अनुवाद—हाथी का दाँत और सुपुरुष का वचन बहुत मुश्किल से बाहर होते हैं। वह छिपता नहीं, वचन देकर भूलता नहीं ·········। सजनि, वृथा ही मेरा कुल-गौरव नष्ट हो गया। पूर्वकर्म के फल से, समय खराब होने से, सब ही विपरीत हो गया। सुना-समझा कि वह कुजन नहीं है, इसीलिए उनके साथ प्रेम किया। उनका सुन्दर मुख मदन को भी पराजित करता है। उसका राजहंसतुल्य ललित सुन्दर गति मुनिजन का भी मोह घटाता है। सजनि, प्रियतम को संवाद भिजावो। उनका कमल के समान सुन्दर मुख इस दिशा में मदन की ज्वाला, अमूल्य रजनी (शेप का अर्थ नहीं लगता)।

(५६३)

वाढ़लि पिरिति हठहि दूर गेलि।
नयन काजर मुह मसि भेलि॥
ते अवसादे अवसिन भेलि देह।
खत कुमेढ़ा सन बुझल सिनेह॥

साजनि कि पुछसि मोहि।
अपद पेम अपदहि पउ मोहि॥
जवो अवधानिव परजनु जान।
कन्टक सम भेल रहए परान॥

विरहानल कोइल कर जारि।
वाढ़लि हरिजनि सीचिता वारि॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल १६८, क, पृ० ७१ पं ४।

अनुवाद—जिस प्रेम ने वृद्धि पायी थी वह सहसा दूरीभूत हो गया। मेरे नयन का काजल मुख की कालिमा हो गयी। उसी अवसाद से देह अवसन्न हो गयी। प्रेम सड़े खोंइछा के समान है (अधिक पकने पर सड़ जाता है)। सजनि मुझसे क्या पूछ रही हो? अस्थान में प्रेम कर विपद् में पड़ गयी। मैं जैसा जान रही हूं—अनुभव कर रही हूं, वैसा भगवान न करें कि किसी को जानना-समझना पड़े। (प्रेम) कण्टक तुल्य हुआ, तथापि प्राण रह गए। कोकिला विरहानल की वृद्धि कर रही है। अग्नि पड़ी हुई जान कर प्रभु जल सेचन करेंगे।

(५६४)

अलखिते गोप आएल चलि गेल।
ससरि खसल चिर समरि न गेल॥
आध वदन तन्हि देखल मोर।
चान अँएठ करि चलल चकोर॥
कान्हु मोहि देखलहु गेलहुँ लजाए।
तखनुक लाज अवहु नहि जाए॥
आधहु अधिक सकोचित अंग।
मोलल मृनाल दोगुन भेल भंग॥
चन्दने लेपित तनु रह सोए।
विरहक कसमसि निन्द नहि होए॥
रसके तन्त बुझए जदि केओ।
भाव भनए अभिनव जयदेओ॥

तालपत्र न० गु० ५५३

शब्दार्थ—ससरि—ससर कर; समरि—सम्भाल; अँएठ—उच्छिष्ट; मोलल—मुड़ा हुआ; कसमसि—यातना।

अनुवाद—अलक्षित गोप (कृष्ण) आया (और) चला गया, वस्त्र ससर कर गिर पड़ा, सम्भाला नहीं गया। उसने मेरा अर्द्धमुख देखा, चकोर चन्द्र को उच्छिष्ट करके चला गया। कन्हायी ने मुझे देखा, मैं लज्जित हो गयी। उस समय की लज्जा की बात अभी भी नहीं जाती। आधा से भी अधिक अंग संकुचित हुआ, भग्न मृणाल दुगुना भग्न हो गया। शरीर में चन्दन लेप कर सोयी रही, विरह की यातना से नींद नहीं आयी। रस का तत्त्व यदि कोई समझता है तो अभिनव जयदेव वही भाव कहते हैं।

(५६५)

अवधि वढ़ाओलन्हि पुछ इह कान्ह।
जीवहु तहहे गरुअ छल मान॥
भलाहुक वचन मन्द आवे लाग।
कुम्भीजल हे भेल अनुराग॥
साजानी कि कहव टुटल समाद।
परक दरब हो, पर सवो वाद॥
ओहि धन्ध भेलि, आसा हानि।
कत पतिआएव सुधी वानि॥
वहलि पेन्द टैढ़सम वोल।
कतएक नागर आओगे छोल॥
विरहक वोलए नागरि वोल।
विद्यापति कहए अमोल॥

नेपाल १४०, पृ० ४६ ए, पं ३

शब्दार्थ—तह—अपेक्षा; कुम्भीजल—अल्पजल; परक दरब—दूसरे का द्रव्य; परसजो—दूसरे के साथ, पतिआएव—विश्वास कराऊँगी (वहलि पेन्द इत्यादि दो चरणों का अर्थ समझ में नहीं आता)।

अनुवाद– कन्हायी ने लौटने की अवधि बढ़ा दी। जीवन से भी अधिक तुम्हारा मान था। इस समय अच्छे लोगों की बात भी बुरी लगती है। अल्प जल से (अपात्र से) अनुराग हुआ। सजनि, क्या कहूँ, सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। दूसरे की चीज लेकर क्या दूसरे के साथ विवाद चलता है? उसने मूर्खता की; मेरी आशा की हानि हुई। सुधीजन की बात कितना विश्वास कराऊँगी?........नागरी विरह की बात कहती है। विद्यापति अमूल्य बात कहते हैं।

(५६६)

कानन कोटि कुसुम परिमल भमर भोगए जान।
सहस गोपी मधु मधु मुखमधुप केपए कान्ह॥
चम्पक चिन्हि भमर न भावए मोसञो कान्हक कोप।
आन्तरकार गमार, मधुकर गमने, गोविन्द गोप॥
साजनि अबहु कान्ह बुझाओ।
विरहि बध बेआधि पचसर जानि न जम जुड़ाओ॥
कञोन कुलवहु बानहो अनंग जावे से बालभु धाम॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल १९६, पृ० ९६ क, पं १

अनुवाद—कानन में कोटि कुसुम का परिमल; भ्रमर उपभोग करना जानता है। सहस्र गोपियों का मुखमधु, कन्हायी पान करते हैं। भ्रमर चम्पा को पहचान कर (देखकर) पसन्द नहीं करता, मेरे प्रति कन्हायी का कोप है। गोविन्द गोप मूर्ख है, उसका अन्तर भी काला है, मधुकर के समान उसका व्यवहार है। सखि, अभी भी कन्हायी को समझावो। पंचशर व्याधि देकर विरहिनी का वध करने जाता है, यम मृत्यु देकर भी उसको जुड़ाता नहीं (शांति नहीं देता) जब वल्लभ ही वाम हैं, तब अनंग कुलवधू की ओर और वाण क्यों नहीं फेंकेगा?

(५६७)

हमरे वचने सखि सतत लजए
वेतहु परिहरि हुहु राति।
पटल गुनल अगरि वाड़े खाए
वसव दिस होएत सुकान्ति॥ ध्र०॥
अनुविध हमर उपदेस।
विरज नामे जते दूरे सुनिअ
हठे छाड़य से देस॥

सावो आनि से चानके सोपलह
देखतहि अपनी आखि।
सुधमा सुहाउहि सञो खएलक
केवल पखि आ राखि॥
भमि भमि विरउ सेवहि निहारए
डरे नहि करए उकासी।
दही दुध कुसञो खएलक
गिरि दुध पलल उपासी॥

भनइ विद्यापतीत्यादि।
नेपाल २७, पृ १९ क, पं ३

अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

(५६८)

जत जत तोहे कहल सुजानि से सवे भेल सरुप
माधुर जाइते आजे मए देखल कतेओ कान्ह...
...मओ मनसिज वेआकुल थीरमन नहि मोर।
भल कए हरि हेरि न भेले इ बड़ लागल भोर।
साजनि...अपन वेदन जाहि निवेदओ तैसन मेदिनि थोल।
हमहु नवकुरवहु से पहुराखलि चाहिअ...
चाहिअ भेल चाहिअ समाज।
से सवे कामिनि तोह तह सम्भव हेन मोर अनुमान।
को...न्हि मोहि छाटैं मेरावह को मोर नेहे परान।
भने विद्यापति सुन तए युवति निअ मने अनुमान।
रतने जदि जतने गोपिअ नेअओ न जानए आन।

रामभद्रपुर पोथी, पद ४१२

अनुवाद—तुमको जो जो बातें कही थीं, वे सब सत्य हुईं। मथुरा जाती हुई आज मैंने कन्हायी को जराभर के लिए देखा। ... मैं काम से व्याकुल हो गयी, मेरा मन स्थिर नहीं रहा। भर नजर जो हरि को देख न सकी, इससे बड़ा दुख हुआ। सखि, जिससे अपनी वेदना कही जाए ऐसे लोग संसार में बहुत कम है। मैं नवकुरवक के समान, उस प्रभु ने मेरा मिलन माँगा था।........मेरे मन में होता है कि वह सब तुम्हारे समान कामिनी से सम्भव है। कौन मुझसे मिलन करा देगा,..........विद्यापति कहते हैं, इसीलिए युवती सुन, अपने ही मन में समझ। यदि रत्न को यत्न पूर्वक छिपा लो, तब बहुत से लोग नहीं जानने पावेंगे।

(५६९)

धन जौवन रस रंगे।
दिन दस देखिअ तलित तरंगे॥
सुघटित विह विघटावे।
वाँक विधाता की न करावे॥
ईओ भल नहिं रीती।
हटें न करिअ दुरि पुरुव पिरीती॥
सचकित हेरय आसा।
सुमरि समागम सुपहुक पासा॥

नयन तेजए जलधारा।
न चेतय चीर न पहिरय हारा॥
लख जोव्वन वस चन्दा।
तैअओ कुमुदिनि करए अनन्दा॥
जकरा जासँ रीति।
दुरहुक दुर गेलें दो गुन पिरीती॥
विद्यापति कवि गाहे।
वोलल वोल सुपहु निरवाहे॥

ग्रियर्सन ४६

शब्दार्थ—तलित—तड़ित; विह—विधि; सुमरि—याद करके।

अनुवाद—धन, यौवन, रस, रंग दस दिनों तक तड़ित्-तरंग के समान दीख पड़ते हैं (उसी के समान शोभाशाली और क्षणस्थायी)। सुघटना भी विधि कुघटित कर देता है, विधाता बाँक (होने पर) क्या नहीं करता? माधव, तुम्हारी यह रीति अच्छी नहीं है, अबुक होकर पूर्व-प्रीति दूर मत करना। सुप्रभु के पास (सहित) समागम स्मरण करके सचकित हो आशा (पथ) देख रही है। नयन जलधारा मोचन करते हैं, वस्त्र की सुधि नहीं है, हार नहीं पहनती। लक्ष योजन (दूर) चन्द्र वास करता है, तथापि कुमुदिनी आनन्द (प्रकाश) करती है। जिसके रंग जिसकी रीति, दूर होने पर, दूर जाने पर भी, प्रीति दुगुनी होती है। विद्यापति कवि गाते हैं, प्रतिश्रुत बात (वचन) का सुप्रभु निर्वाह करेंगे।

(५७०)

सपने आएल सखि मझु[1] पिअ पासे।
तखनुक कि कहब हृदय हुलासे॥
न देखिअ धनुगुन न देखु सन्धाने।
चौदिस परए कुसुम सर बाने॥
बंक विलोचन विकसित थोरा।
चाँद उगल जनि समुद्र हिलोरा॥
उठलि चेहाए आलिंगन बेरी।
रहलि लजाए सुनि सेज हेरी॥
भनइ विद्यापति सुनह सपने।
जत देखलह तत पूरतौह मने॥

राग० त० पृ० १०६; न० गु० ७६६

शब्दार्थ—हुलासे—उल्लास; बंक विलोचन—बाँका नयन; थोरा—अल्प; जनि—जैसा; हिलोरा—उद्वेलित होता है; सुनि—शून्य।

अनुवाद—स्वप्न में प्रिय मेरे पास आए; उस समय के हृदय के आनन्द की बात (तुमसे) क्या कहूँ! धनुर्गुण देखा नहीं (शर) सन्धान भी देखा नहीं (और) चारो ओर कुसुम-शर (मदन) के तीर पड़ रहे थे। बंकिम नयन ईषत् विकसित; जैसे चन्द्रमा के उदित होने से (उसे देख कर) समुद्र उद्वेलित होता है (वही अर्द्धचन्द्र-सदृश नयन देख कर प्रेम समुद्र में तरंग उठा)। आलिंगन के समय चमक कर उठी (मेरी निद्राभंग हुई)। (उस समय) शून्य शय्या देख कर लज्जित होकर रह गयी। विद्यापति कहते हैं, सुन, स्वप्न में जो कुछ भी देखा है वह मन में पूर्ण होगा।

(५७१)

सपने देखल हरि उपजल रंगे।
पुलके पुरल तनु जागु अनंगे॥
वदन मेराए अधर रस लेला।
निसि अवसान कान्ह कँहा गेला॥
का लागि नीन्द भाँगलि विहि मोर।
न भेले सुरत सुख लागल भोर॥
मालति पाओल रसिक भमरा।
भेल वियोग करम दोस मोरा॥
निधने पाओल धन अनेक जतने।
आँचर सयँ खसि पलल रतने॥

नेपाल २९९, पृ० ९४ क, पं ५, भनइ विद्यापतीत्यादि, न० गु० ७६८

मन्तव्य—नगेन बाबू ने (१) 'पिया' कर दिया है

शब्दार्थ—मेराए—मिला कर; सयँ—से।

अनुवाद—स्वप्न में हरि को देखा, रंग उपजा। तनु पुलक से पूर्ण हुआ, अनंग जागा। मुख मिला कर अधर-रस पान किया, निशा-अवसान हुआ, कन्हायी कहाँ गये? विधाता ने मेरी नींद क्यों तोड़ दी (केवल) भ्रम हुआ, सुरत-सुख नहीं हुआ। मालती ने रसिक भ्रमर को पाया, मेरे कर्मदोष से वियोग हुआ। निर्धन ने अनेक यत्न से धन पाया, आँचल से रत्न गिर पड़ा।

(५७२)

रभसहि तह बोललन्हि मुखकान्ति।
पुलकित तनु मोर कतधर भान्ति॥
आनन्दलोरे नयन भरि गेल।
पेम आकुर अङ्कुर मेल॥

भेटल मधुर पति सपने मो आज।
तखनक कहिनी कहइते लाज॥
जखने हरल हरि आचर मोर।
रसभरे मन रुकसनी भोर॥

करे कुच मण्डल रहलिहुँ गोए।
कनके कनकगिरि झाँपल होए॥

विद्यापतीत्यादि, नेपाल ४०, पृ १६ क, पं ४

अनुवाद—मुख की शोभा देख कर मालूम होता है मानों रभस हुआ हो। मेरे पुलकित शरीर ने कितनी शोभा धारण की। आनन्दाश्रु से नयन भर गये-प्रेम का बीज अंकुरित हुआ। आज स्वप्न में मैने मधुरपति का संगलाभ किया। उस समय की बात कहते लज्जा होती है। जिस समय हरि ने मेरा आँचल हरण किया उस समय रभस से मेरा मन व्याकुल हो गया। उनके हाथों से कुचमण्डल को छिपा लिया, मालूम होता था कि कमल कनकगिरि को झाँप कर (ढँक कर) रखे हुए है।

(५७३)

जा लागि चाँदन विख तह भेल
चाँद अनल जा लागि रे।
जा लागि दखिन पवन भेल सायक
मदन वैरि जा लागि रे॥
से कान्हु कते दिने पाहुन
हसि न निहारसि ताहि रे।
हृदयक हार हठे टारह जनु
पेमसुधा अवगाहि रे॥

रोअइते तोरे आतुर भेल लोचन
रयनि जाम जुगे गेल रे।
फूजल चिकुर चीर नहि चेतए
हार भार तनु भेल रे॥
तप तोर तरुन करने कान्हु आएल
काँइ बढ़ावसि मान रे।
जेओ न अछल मन सेओ भेल संपन
कवि विद्यापति भान रे॥

तालपत्र, न० गु० ८१७

शब्दार्थ—चाँदन—चन्दन; विख—विष; सायक—शर; पाहुन—अतिथि; टारह—टालना; अवगाहि—अवगत होकर; फुजल—मुक्त; चेतए—सम्भाले; संपन—सम्पन्न।

अनुवाद—जिसके लिए चन्दन विष से भी अधिक तीव्र हुआ, जिसके लिये चन्द्रमा अग्नि हो गया, जिसके लिये दक्षिण पवन शर हो गया, जिसके लिये मदन वैरी हुआ, वही कन्हायी कितने दिनों बाद तेरे अतिथि हुए, हँस कर उन्हें देखती नहीं ? प्रेमसुधा जानकर (प्रेमामृत से अवगत होकर भी) हृदय का हार मानों बलपूर्वक टारना मत। रोदन करके अश्रुसे चक्षु आतुर हुए, रजनी का याम युग के तुल्य हुआ। मुक्त चिकुर (और) वस्त्र संवरण नहीं करती, देह का हार भार हुआ था। तेरे तप के फल से तरुण कन्हायी करुणावशतः (कृपा करके) आए, क्यों मान बढ़ाती है ? कवि विद्यापति कहते हैं, जो कल्पना में भी न था वह भी सम्पन्न हुआ।

(५७४)

के मोरा जाएत दुरहुक दूर।
सहस सौतिनि बस माधवपुर॥
अपनहि हाथ चललि अछ नीधि।
जुग दस जपल आजे भेलि सीधि॥
भल भेल माइ हे कुदिवस गेल।
चान्द कुमुद दुहु दरसन भेल॥

कतए दमोदर देव वनमालि।
कतए कहमे धनि गोप[१] गोआरि॥
आजे अकामिक दुइ दिठि मेलि।
देव दाहिन भेल हृदय उबेलि॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
कुदिवस रहए दिवस दुइ चारि॥

नेपाल १४, पृ० ६ क, पं ५; न० गु० ८३०

अनुवाद—मेरा कौन दूरदूरांतर जाएगा (तुमको खबर देने) मधुपुर में सहस्त्रों सौतिने वास करती हैं। अपने हाथ से निधि चली गयी। दस युग जप किया, आज सिद्धि हुई। सखि, कुदिवस गया, अच्छा हुआ, चन्द्र और कुमुद के दर्शन हुए। कहाँ दामोदर देव वनमाली, कहाँ मैं मूढ़ा गोपी ! आज अकस्मात् दो दृष्टियों का मिलन हुआ, देवता दक्षिण (प्रसन्न) हुए मेरा हृदय उद्वेलित हुआ। विद्यापति कहते हैं, वरनारि, सुन, कुदिवस दो-चार दिन रहते हैं

(५७५)

जनम कृतारथ सुपुरुस संग।
सेहे दिवस जौं नहि मन भंग॥
हृदयक आनन्दे सुख परगास।
तरनि तेजें हे कमल विगास॥
भल भेल माइ हे कुदिवस गेल।
हरि निधि मिलल सकल सिधि भेल॥

एक दिस मनिमय नवनिधि हेम।
ओोका दिस नवरस सुपुरुस पेम॥
निकुती तौलि कएल अनुमान।
प्रीति अधिक थी के नहि जान॥
प्रीतिक सम हे दोसर नहि आन।
जाहि तुलना दिअ अपन परान॥

भनइ विद्यापति अनुपम रीति।
दम्पति काँ हो अचल पिरीत॥

तालपत्र, न० गु० ८६३

शब्दार्थ—कृतारथ—कृतार्थ; जौं—जिससे; परगास—प्रकाश; तरनि—सूर्य; विगास—विकास, निकुती—निक्ति, काँटा, तौलि—वजन करके।

अनुवाद—सुपुरुष के साथ मिलन होने से जन्म कृतार्थ होता है, वही दिवस (सार्थक है) जिससे मन भंग न हो हृदय के आनन्द मे सुख प्रकाशित होता है, जैसे सूर्य के तेज से कमल विकसित होता है। सखि, कुदिवस गया, अच्छा हुआ, हरि-निधि मिली सकल सिद्धि हुई। एक ओर मणिमय नवनिधि और सुवर्ण, दूसरी ओर सुपुरुष के प्रेम का

(१) पोथी में 'गोर' है। नगेन्द्रबाबू ने संशोधन करके 'गोप' कर दिया है।

नूतन रस। काँटा पर तौल कर विचार किया, प्रीति अधिक (भारी) होती है, कौन नहीं जानता ? जगत में प्रीति के समान दूसरा कुछ नहीं है जिसके साथ अपने प्राण की तुलना दी जाए। विद्यापति कहते हैं, रीति की उपमा नहीं है, दम्पति की प्रीत अचल।

(५७६)

माधव माधव होहु समधान।
तुअ विनु भुवन करब रितु पान॥
प्रथम पचीस अठाइस भेल।
तासम वदन हेम हरि लेल॥

पचीस अठारह वीस तनु जार।
छिति सुत तेसर से जिव मार॥
सुमरिअ माधव ओ दिन सिनेह।
जे दिन सिंह गेल मीनक गेह॥

भनहिं विद्यापति अच्छर लेख।
बुध जन होए से कहे विशेख॥

ग्रियर्सन ४९।

अनुवाद—माधव, हे माधव, सावधान होवो। तुमको न पाने पर वह विषपान कर लेगी (भुवन=१४, ऋतु=६ ; १४+६=विष)। व्यञ्जनवर्ण का प्रथम (क), पचीस (म), अठाइस (ल), कमल तुल्य वदन की कान्ति (हेम) ने हरण कर लिया। पचीस (म) अठारह (द), बीस (न), मदन तनु दहन कर रहा है। छितिसुत (मंगल) तृतीय स्थान में है, वह जीवन नाश करेगा। माधव जिस दिन सिँह मीन के घर में गया (अर्थात् तुमने अपने सिँह=मस्तक मेरे मीन=पद पर रखा) उस दिन के प्रेम की बात याद करो। विद्यापति कहते हैं, वैसा होने पर विज्ञजन इसका अर्थ बाहर कर सकेंगे।

(५५७)

द्विज आहर आहर सुत नन्दन[१]
सुत आहर सुत रामा।
वनज वन्धु सुत सुत दए सुन्दरि
चललि संकेतक ठामा॥
माधव बूझल कथा विसेखी[२]।
तुअ गुन लुबुधलि प्रेम पिआसलि[३]
साधस[३] आइलि उपेखि॥

हरि अरि अरि पति ता सुत वाहन[४]
जुवति नाम तसु होई।
गोपतिपति अरि सह मिलु वाहन[५]
विरमति कवहु न होई[६]॥
नागर नाम जोग धनि आवए
हरि अरि अरि पति जाने।
नउमि दसाह एक मिलु कामिनि
सुकवि विद्यापति भाने[७]।

नेपाल १६५, पृ० ४८ ख, ५ ; न० गु० (प्र) १२।

५७७—प्रहेलिका का अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

नेपाल पोथी का पाठान्तर—(१) सुत न पुन आरसु कामा (२) बुझह विसेखी (३) माधव (८) यह पँक्ति नेपाल पोथी में नहीं है। (४) कराहन (५) जुवति नाम से होई, गोपति अरि वाहन दस मिलि (६) सोह (७) सायक जोगे नामत शुनायक, हरि अरि अपरि पति जाने। नवओ कलाएक घर वासई, सुकवि विद्यापति भाने।

(५७८)

कुवलय कुमुदिनि चउदिस फूल।
केरव कोकिल दह दिस भूल॥
खने कर साद खनहि कर खेद।
वेसन विषधर पठज निवेद॥
आएल रे वसन्त रितुराज।
भमरे बिरहे चलु भमरि समाज॥
उरि उरि परेवा सबे गोपि मेलि।
कान्हा पैसल जनि कर केलि॥
गोपि हसलि अपन मुख हेरि।
चान्द पलाअल हरिणक सेरि॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल २८२, पृ० १०२, पं ३।

शब्दार्थ—कुवलय—नील उत्पल। केरव—कुहु कुहु रव। साद—अवसाद। वेसन—तरुण। पैसलि—प्रवेश किया। सेरि—शरणार्थी।

अनुवाद—चारो ओर नीलोत्पल और कुमुद के फूल; कोकिल कुहु कुहु करके दसो दिशाओं में भुला देती है। (राधा) कभी अवसन्न रहती है, कभी खेद करती है—जैसे तरुण सर्प मन्त्रपाठ से निश्चल हो जाता है, वैसे ही रहती है। ऋतुराज वसन्त आया। विरह से खिन्न भ्रमर भ्रमरी से मिलने चला। सब गोपियाँ मानों उड़ उड़ कर आ मिलीं। उन्होंने (भाव दिखलाया) जैसे कन्हायी ने आकर केलि करना आरम्भ किया। (ऐसा देखकर) गोपी (राधा) अपना मुख देखकर हँसी, शरणार्थी मृग को लेकर मानों चन्द्रमा भाग गया हो (मृग मृगांक का कलंक है; राधा का हास्य युक्त मुख कलंक विहीन चन्द्र, इसीसे चन्द्रमा हार कर भाग गया।

पाठान्तर—

कुवलअ कुमुदिनि चउदिस फूल।
कोकिल कलरवे दह दिस भूल॥
आएल वसन्त समय रितुराज।
विरहे भमरि चलु भमर समाज॥
उरि उरि परेवा बहु गोपि मेलि।
कान्ह पइसल घन कर जल केलि॥
राधा हसलि अपन मुख हेरि।
चाँद पड़ाएल हरिनक सेरि॥
खने कर सासा खने कर खेद।
वइसल विसधर पढ़ जनि वेद॥
भोगी अछल महेसर भेल।
पान तमोर हाथ कए देल॥
मधुए विविए पिवि सुतला हे सेज।
धएल सुधाकरे अरुनक तेज॥
भनइ विद्यापति समयक अन्त।
न थिक ए वरसा न थिक वसन्त॥

न० गु० (प्र) ८।

१०८—मन्तव्य—नेपाल पोथी के पाठ का उक्त रूप अर्थ होता है। परन्तु नगेन्द्र बाबू ने 'भोगी अछल महेसर भेल' प्रभृति जो ६ नूतन चरण दिए हैं, उनका अर्थ संगतिपूर्ण प्रतीत नहीं होता।

(५७९)

दखिन पवन वह मदन धनुसि गह
तेजल सखीजन मेली।
हरि रिपु रिपु तसु तनय रिपु
कए रह ताहेरि सेरी॥
माधव तुअ विनु धनि बड़ि खिनी।

वचन धर मन बहुत खेदकर
अदबुद ताहेरि कहिनी॥
मलयानिल हार तसु पीवए
मनमथ ताहि उराइ।
आतुर भए जत डरहि निवारव
तुअ विनु विरह न जाइ॥

नेपाल २४८, पृ० ९० क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० (प्र) ६।

(५८०)

नव हरि तिलक वैरी सख यामिनी
कामिनी कोमल कान्ति।
जमुना जनक तनय रिपु घरनी
सोदर सुअ कर साति॥
माधव तुअ गुने लुबधलि रमनी।
अनुदिने खीन तनु दनुज दमन धनी
भवनुहु वाहन गमनी॥

दाहिन हरितह पाव पराभव
एत सवे सह तुअ लागी।
वेरि एक सर सागर सुनि खाइति
वधक होयव तोहें भागी॥
सारंग साद विसाद बढ़ावय
पिक धुनि सुन पछतावे।
अदिति तनय भोअन रुचि सुन्दर
दससी दसा लग आवे॥

नेपाल २६, पृ० ११ क, पं ४, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० (प्र) ४।

अनुवाद—नवहरि (चन्दन) तिलक का (शिवका) जो शत्रु है अर्थात् मदन उसका सखा वसन्त—वसन्त यामिनी में कामिनी की कोमल कान्ति (मदन पीड़ा दे रहा है)। यमुना का पिता, सूर्य, उसका पुत्र कर्ण; कर्ण का शत्रु अर्जुन ; उसकी स्त्री सुभद्रा, उनके सहोदर कृष्ण (वेही मदन की) शास्ति करें। माधव, रमणी तुम्हारे गुण से लुब्ध हुई है। मरालगामिनी का तनु अनुदिन क्षीण हो रहा है। [दनुज (अर्थात् राक्षस] दमन=विष्णु; उनकी धनी=लक्ष्मी ; उनके भवन में=कमलवन में जिसका जन्म=ब्रह्मा ; उनका वाहन=हंस] दक्षिण हरि (पवन) से कष्ट मिलेगा। यह सब तुम्हारे लिए सहन करती है। एक बार विष [पंचसर × ४ सागर ?=२० ?] खायेगी, तुम उसके बध के भागी होवोगे। भ्रमर के शब्द से विषाद बढ़ता है, कोकिल का रव सुनकर अनुताप होता है। अमृत तुल्य (अदिति-तनय=देवता ; उनका भोजन=अमृत) जिसकी सुन्दर कान्ति, उसकी अब दसवीं दशा लगेगी (मृत्यु होगी)।

५७९—*मन्तव्य*—प्रहेलिका का अर्थ प्रतीत नहीं होता।

५८०—*मन्तव्य*—नेपाल पोथी के पद के आरम्भ में एक '×' चिह्न देकर आधुनिक बंगला अक्षर में 'पूर्णचन्द्र' लिखा है। नेपाल पोथी में भनइ विद्यापतीत्यादि है। नगेन्द्र बाबू ने कहीं से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं:—

विद्यापति भन सुनि अबला जन समुचित चलु निअ गेहा।
राजा सिवसिंघ रुप नरायन लखिमा लखमी देहा॥

(५८१)

लिखव ऊनेस सताइसक संग।
से पुनि लिखव पचीसक संग॥
जनिकाँ सोपि गेला मोरा आहि।
से पुनि गेलाह देखव नहिं ताहि॥
बड़ अनुचित आनक परबेस।
से पुनि एलाह तकर सनेस॥
माधव जनु दीअह मोर दोस।
कत दिन राखब हुनक भरोस॥
भनहिं विद्यापति आखर लेख।
बुध जन हो से कहे विसेख॥

ग्रियर्सन ६७।

अनुवाद—मैं उन्नीस अक्षर (ध) के साथ सताइस अक्षर (र) और उसके साथ पचीस अक्षर (म)=धरम लिखूँगी। वे मेरे पास जिसे (धर्म को) सौंप गए वह जो फिर जाकर बैठ गया है, उसे देखता नहीं दूसरे का (अधर्म का) प्रवेश बहुत अनुचित है। वह (अधर्म) फिर उसे खोजने आ गया है। माधव, मेरा दोष मत देना तुम्हारे भरोसे उसे (धर्म को) अब और कितने दिन रखूँ? विद्यापति अक्षर का लेख कहते हैं। बुधजन इसका मर्म कह सकते हैं।

(५८२)

गगन तील हे तिलक अरिजुरणी
तसु सम नागरी वाणी
सिन्धुबन्धु अरिवाहन गन सवि हरि हरि सुमर गेआनी॥
माधव निरमति भुजगि मथाइ
अब्जबन्धु तनया सहोदर तसुपुर देति वसाइ॥
सुखेतनु जुविणी बन्धु लहि देह वितह धरनि लोटाइ।
हरि आरुढ़ि सेहओल परसए दाहिन हरिन सोहाइ॥
हरि निधि अननत आतुर कहति कत चारि दुयार रच वाही।
तीलि दोस अपने तोहे कएलह चारिम भेल उपाइ॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल २४७, पृ० ८६ ख, पं० १।

अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

(५८३)

हरि पति हित रिपु नन्दन वैरी वाहन ललिलगमणी
दिति नन्दन रिपु विनन्द नन्दन नागरिरूपे से अधकि रमणी॥
सिव सिव तमरिपुबन्ध रजनी
रितुपति मित वेरि चुड़ामले मिएसमान रजनी॥

हरिरिपु रिपु प्रभु तसु रजनी तातकुसरि संगचसिरी।
सिन्धुतनय रिपु रिपु विप्र वैरि निवाहन भास उदरी।
पन्थ तनयहित सुत पुने पाविअ विद्यापति कवि भाने॥

नेपाल २०२, पृ० ७२ ख, पं ३।

अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

(५८४)

इन्दु से इन्दुर इन्दुत
आओर इन्दुजल परगासे।
एक इन्दु हमे गगनहि देखल
तीनि इन्दु तुअ पासे॥

कालि देखल हमे अदबुद रंगे
मधुमन लागल दन्दा।
कवोन के कहब हमे के पतिआएत
एक ठाम अछ चन्दा॥

कवोनेओ इन्दु तारा, कवोनेओ इन्दु तरुणी
कवोने इन्दु चत्र समाजे
एकसा इन्दु माधव सओ खेलए
एक इन्दु गगनि विमाझे॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल १०४, पृ० ३७ ख, पं ४।

(५८५)

तीनिक तेसर तीनिक वाम।
तीनिक तेसर धनिकेर ठाम॥
तीनि तीनि कय रोखलि फूल।
तीनिक तेसर माधव तूल॥

तीनि तीनि कए उठलिहि भाखि।
तीनिक तेसर माधव साखि॥
भनइ विद्यापति तीनिक नेह।
नागरकाँ थिक नारि सिनेह॥

ग्रियर्सन ६।

अनुवाद—तीन के बाद अर्थात् तीन स्वरवर्णों के (अ आ इ वर्णों के) बाद (जो स्वरवर्ण आ) तृतीय के वाम ...ात् तृतीय स्वर की (इ-कार की) बायीं ओर, उसमें अर्थात् 'आ'-हस्व वर्ण के (परवर्ती) तृतीय स्वर अर्थात् उ-कार ...ोड़ो)। आ + उ = आउ = आवो। (जिसके लिए) धनी का (सुन्दरी का) शरीर तीन के बाद तीन (के ...ान) हो गया है अर्थात् सुन्दरी का शरीर (३ + २ = ५ पंच) पंचबाण के समान हो गया है। फूल (प्रस्फुटिता ...ो) तीन तीन करके अर्थात् माधव (नाम का) तीन वर्ण उच्चारण करके (अन्त में) कोपान्विता हो गयी ...खलि)। (कारण) माधव तृतीय वर्ण के बाद तृतीय दिवस के अर्थात् वृहस्पति के समान [वृहस्पति से जीव ...ात् जीवन का बोध होता है; सुतरां माधव जीवन के तुल्य]। (धनी) तीन तीन (माधव) उच्चारण करके पड़ी। (हे) माधव (उसका) साक्षी तीन का तृतीय अर्थात् तृतीय दिवस के बाद तृतीय = वृहस्पति = जीवन। ...ापति कहते हैं, तीन का स्नेह (अर्थात् इन तीन वर्णों में जो स्नेह प्रदर्शित हुआ है वह) नागर के प्रति नारी स्नेह।

(५८६)

माधव बुझलि तुअ गुन आजे।
पचदुन दसगुन दयसगुन सेगुन
सेहो देल कोन काजे॥
चालिस काटि चारि चौठाई
से हम से पहु मोरा।
कपटी कान्हैया केलि नहिं जानलि
कैलन्हि जन्मक ओरा॥

साठि काटि दह बुन्द विवरजित
से वतकर उपहासे।
पहुक विषाद सहै नहि पारी
दुइ बुन करब गरासे॥
नवो बुनादय नवो वामकर
से उर हमर प्राने।
से हरखित मुँह हेरि न होए
कारन के नहिं जानै॥

भनहि विद्यापति सुनु वरजौमति
ताहि करटि केअ बाधा।
अपन जीव दय पर कै बुझाविअ
कमल नाल दुइ आधा॥

ग्रियर्सन ६३ : मी० ग० सं दूसरा खंड, पृ० २।

अनुवाद—माधव, तुम्हारा गुण आज समझी। ५ × १० × १० × १०० = ५०००० शपथ करने पर भी उससे क्या काम होता है? तुम जब आवोगे ही नहीं तो अधिक शपथ से क्या फल? ४० — ४ = ३६ × $\frac{१}{४}$ (चौठाई) = ९ नव (नूतन)। (किन्तु) कपटी कन्हायी केलि नहीं जानता, जन्म का शेष कर दिया [मेरा जीवन व्यर्थ कर दिया] ६० — १० = ५० ; ५० विन्दु विवर्जित = ५ पंचजनों का उपहास कौन सहन करेगा? प्रभु की उपेक्षा (निषेध) कौन सहेगा? मैं विष खाऊँगी। ००००००००० = नव बून्द ; नव वाम कर = नव शून्य के वाम में ९ = नवपद्म ; मेरे प्राण नवपद्म के समान (विकसित हुआ था), उस हर्षित मुख की ओर देख नहीं सकती—कौन (इसका) कारण नहीं जानता? विद्यापति कहते हैं, वरयुवति, सुन, उसमें कौन बाधा (प्रदान) नहीं करता? कमल और नाल अलग होने पर (कोई भी नहीं बचता) (यह शिक्षा) अपनी बात अपने को ही सिखायी।

(५८७)

जननी असन असन वाहन के भासा
सागर अरि कर सादे।
ते दुहु मिलित नाम एक दुरजन
तें मोहि परम विसादे॥

सखि हे रमन भवन परवासी।
ऋतुपति राए आए सम्प्रापत
तें भउ परम उदासी॥

सुर अरि गुरु वाहन रिपु ता रिप
ता रिप अनुखने तावे।
हरि कपट नपति तसु अनुज हित
से मोहि अबहु न आवे॥

न० गु० (प्र) ९।

(५८८)

परतह परदेस परहिक आस।
विमुख न करिअ अवस दिअ वास॥
एतहि जानिअ सखि पियतम कथा।
भल मन्द ननन्द हे मन अनुमानी।
पथिक के न बोलिअ टुटलि बानि॥

चरन पखालल आसन दान।
मधुरहि वचने करिअ समधान॥
ए सखि अनुचित एते दुर जाइ।
अब करिअ जत अधिक बड़ाइ॥

नेपाल ६४, पृ० २४ क, पं १, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० (पर) ३।

शब्दार्थ—परतह—प्रत्यह ; परहिक—दूसरे का ही ; टुटलि—खराब ; पखालल—धोया।

अनुवाद—प्रत्यह विदेश में दूसरे की आशा विमुख मत करना, अवश्य वास देना। सखि यहाँ (पथिक के पास) प्रियतम की बात जानना। हे ननद, अच्छा-बुरा मन में अनुमान कर पथिक को बुरी बात मत कहना। पैर धोने के लिए जल, आसन देना, मधुर वचन से सत्कार करना। (ननद कहती है) सखि, इतनी दूर तक जाना अनुचित है (पथिक के साथ इतनी घनिष्टता करना उचित नहीं है)। अभी इतनी बड़ाई कर रही हो (किन्तु पीछे जब निन्दा होगी, तो पछतावोगी)।

(५८९)

हम[1] जुवति पति गेलाह[2] विदेस।
लग नहि वसए पड़ोसियाक[3] लेस॥
सासु दोसरि[4] किछुओ नहिं जान।
आँख रतौंधि सुनए नहिं कान[5]॥
जागह पथिक जाह जनु भोर।
राति अँधार गाम बड़ चोर॥

भरमहुँ भोंरि ने देअ कोतवार[6]।
काहु न केओ नहि करये विचार[7]॥
अधिप न कर अपराधहुँ साति।
पुरुस महते सब हमर सजाति[8]॥
विद्यापति कवि एह रस गाव।
उकुतिहु अवला भाव जनाव॥

नेपाल ८१, पृ० ३२ क, पं ३, भनइ विद्यापतीत्यादि ; न० गु० (पर) ६।

शब्दार्थ—लग—निकट ; भोर—भूल कर ; भोंरि—चौकीदार का भ्रमण ; कोतवार—कोतवाल।

अनुवाद—मैं युवती, पति विदेश गये हैं। निकट में एक भी पड़ोसी वास नहीं करता है। मुझे छोड़ कर घर में सास के सिवा और कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है, वह भी कुछ नहीं जानती। आँख में रतौंधी, कान से भी नहीं सुनती। पथिक जागे रहे, निद्रा में विभोर होकर मत रहना। रात अँधेरी, ग्राम में बहुत से चोर हैं।

बाला याहं मनसिजभयात् प्राप्तगाढ़-प्रकम्पा।
ग्रामश्चौरैरयमुपहतः पान्थ निद्रां जहीहि॥

शृंगार तिलक।

५८९—नेपाल पोथी का *पाठान्तर*—(१) हमे (२) गेलाहे (३) पलउसिकु (४) ननन्द किछु सुझो (५) आँखि रतौंधी एन कान (६) सपनेहु भाओर न दे कोटवार (७) पहलहु नोड़े न करए विचार (८) नृपह थिकाहु करए नहि साति
पुरुष महते रह सरवस साति
भनइ विद्यापतीत्यादि।

कोतवाल भूल कर भी पहरा नहीं देता, कोई भी किसी का विचार नहीं करता। राजा अपराधी को दण्डित नहीं करते, जितने महत पुरुष (राजपुरुष) हैं, वे मेरी स्वजाति के हैं (उनके रहते कोई डर नहीं है)। विद्यापति कहते हैं, यह रस गान करता हूँ, अबला उक्ति द्वारा भाव जनाती है।

(५६०)

हमे एकसरि पिअतम नहि गाम।
तें मोहि तरतम देइते ठाम[1]॥
अनतहु कतहु देअइतहु[2] वास।
जौं[3] केओ दोसरि पड़ौसिनि पास[3]॥
चल चल पथुक चलह पथ माह[4]।
वास नगर वोलि अनतहु याह[5]॥

आँतर[6] पाँतर साझक वेरि।
परदेस वसिअ अनागत हेरि॥
घोर पयोधर जामिनि भेद।
जेकर वह ताकर परिछेद॥
भनइ विद्यापति नागर रीति।
व्याज वचने उपजाव पिरीत॥

नेपाल १८३, पृ० ६५ ख, पं ३, 'विद्यापतीत्यादि'; न० गु० (प) ६।

शब्दार्थ--तरतम—द्विधा ; देइते ठाम—जगह देते ; अनतहु—अन्यत्र।

अनुवाद—मैं एकाकिनी, प्रियतम ग्राम में नहीं। इसीलिए स्थान देते मुझे द्विधा हो रही है। यदि कोई पड़ोसिन पास में रहती, तो कहीं और वासस्थान दिला देती। जावो, जावो, पथिक, रास्ते में जावो ; वास करने के लिए नगर (खोजकर) अन्यत्र जावो। दूर प्रान्तर, सन्ध्या का समय समागत (अतएव यदि कहीं भी आश्रय पाना चाहते हो तो विलम्ब करना उचित नहीं, तुम्हें परदेशवासी अभ्यागत समझ रही हूँ (मालूम होता है तुम कोई अनजान आदमी हो)। यामिनी घोर जलधर से भिन्न (विद्ध) हो रही है। जिसका ऐसा रूप (मेघाच्छन्न रजनी में बाहर होना हो) उसका परिच्छेद होता है (जीवनान्त होता है)। विद्यापति कहते हैं, नागरी की रीति (यह), छलयुक्त बातों से प्रीति उत्पन्न करती है।

५६०—नेपाल पोथी का *पाठान्तर*—(१) तेँतर तम अछइते एहि ठाम (२) करएतहु (३) दोसर न देखिअ पड़ओसि आओ पास (४) करिअ पआह (५) भलि अनतहु चाह (६) इसके बाद के छः चरण सम्पूर्ण विभिन्न हैं। यथा—

सात पंच घरतन्हि सजि देल।
पिआ देसान्तर आन्तर गेल॥
आरि वर्च तन्हि गेला भेल।
मोरे मितहे सनहि खने भाग।
गमन गोरकट मनसिज जाग॥

विद्यापतीत्यादि।

(५६१)

बुझहि न पारलि परिणति तोरि।
अधरे ओलल वाटट काटारि॥
फल पाओल कए तोहसनि सीट।
कएलह हाती वासक वीट॥
मञे जानलि अनुरागिनि मोरि।
ओल बधिर हति हृदय संग चोरि॥
निरजन जानि कएल तुअ कान।
गुपुत रहल नहि जानत आन॥
सबतहु भेटी कएलह वोल।
दुरजन वचने वजओलह टोल॥
विद्यापति ता जीवन सार।
जे परदेसे लुकावए पार॥

नेपाल ६२, पृ० २३ क, पं ५।

शब्दार्थ—ओललए—मीठी बात कहो ; वाटह काटारि—रास्ते में दाव से काटते जावो ; सीट—भाव, प्रणय ; कएलह हाती वासक वीट—अर्थ समझ में नहीं आता ; ओल—सीमा।

अनुवाद—तुम्हारी परिणति कहाँ है, समझ नहीं सकी। तुम्हारे मुख में तो मीठी बोली है, किन्तु रास्ते में दाव से काटते जाते हो। तुम्हारे संग प्रेम करके खूब फल पाया !———मैं जानती थी कि तुम मेरी अनुरागिनी हो, मन की चोरी की बात केवल तुम ही जानोगी (तुम्हीं तक यह बात सीमाबद्ध रहेगी), तुम बहिरे के समान होवोगी (इस प्रकार व्यवहार करोगे मानों बात सुनी ही नहीं) ; निर्ज्जन जानकर तुम्हारे कानों में बात कही थी। किन्तु वह गुप्त नहीं रही। दूसरे लोग जानते हैं। जिस जिससे मुलाकात होती है उसी से कह देती हो। दुर्जनों के वचन से टोल बज उठा। विद्यापति कहते हैं कि जो दूसरे से छिपा रख सके, उसी का जीवन सार है।

(५६२)

उचित बएस मोर मनमथ चोर।
ठेलि आछढ़ि आकरए अगोर॥
करह वरष अवधि कए गेल।
चारिवर्ष तन्हि गेला भेल॥
वास चाहइते पथिकहु लाज।
सासु ननन्द नहि अछए समाज॥
सातपाच घर तन्हि सजि देल।
पिया देशान्तर आतर भेल॥
पलेओ सवास जोएन सत भेल।
थाने थाने अवयव सबे गेल॥
साचु लुकाविअ तिमिरक सीन्धि।
पलउसिनि देअए फलकी वान्धि॥
मोर मनहे खनहि खन भाग।
गमन गोपव कत मनमथ जाग॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल ७८, पृ० २८ ख, पं ४।

शब्दार्थ—आछढ़ि—धक्का देकर ; आकरए—आकर्षण करना ; अगोर—क्लिती ; जोएन—योजन ; पलउसिन—पड़ोसिनी ; तन्हि—अतएव ; आतर—अन्तर ; सीन्धि—सेंध।

अनुवाद—मेरा वयस उचित, और मन्मथ चोर के समान किल्ली ठेल कर, धक्का देकर मुझे आकर्षित कर रहा है। मेरे पति कह कर गए थे कि (वे) बारह वर्षों के बाद लौटेंगे ; उसमें से चार वर्ष व्यतीत हो गए। (मेरे घर पर) पथिक के भी वास चाहने से लज्जा होती है घर में सासु ननद नहीं हैं, और समाज है (समाज का डर है)। अतएव उसको अन्य पाँच सात घर जाने की बात कह दी; मेरा जो प्रियतम देशान्तर में है, उससे मेरा अन्तर हो गया है। थोड़ी दूरी भी मानों शत योजन हो गयी है—उसके सारे अवयव (हाथ, पाँव, इत्यादि) (समझती हूँ कि) स्थान स्थान पर चले गए हैं। अंधकार में मैं सत्य छिपाऊँगी जो सेंध के समान है न तो पड़ोसिन मुझे प्रतिफल देगी। मेरा मन मानो चण-चण भाग जा रहा है। मन्मथ जाग गया है—गमन की बात अब और कितना छिपाऊँगी ?

(५६३)

अपना मन्दिर बेसलि अछलिहु
घर नहि दोसर केवा।
तहिखने पहिआ पाहोन आएल
वरिसए लागल देवा॥
के जान कि बोलति पिसुन परौसिनि
वचनक भेल अवकासे।
घर अन्धारा निरन्तर धारा
दिवसहि रजनी भाने।
कवोनक कहव हमे के पतिआएत
जगत विदित पञ्चवाणे॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल ७४, पृ० २६ क, पं ५।

शब्दार्थ—बेसलि—बैठी ; पाहोन—पाहुन ; पिसुन—दुष्ट।

अनुवाद—अपने घर में बैठी थी, घर में अन्य कोई नहीं था। इसी समय अतिथि घर में आया, उसी समय इस ओर देवता वर्षण करने लगे। न जाने, दुष्ट पड़ोसिनी क्या कहेगी, उसे बोलने का सुयोग मिल गया जो ! घर अन्धकार, अनवरत वृष्टि हो रही है, दिन भी रात्रि के समान लग रहा है। किसको कहूँ, मेरा कौन विश्वास करेगा ? मदन का प्रभाव जगत में विदित है।

(५६४)

टाट टुटल आंगन, वेकत सबे परदा राख।
टुना चटकराज सञो वेस, न दूती अइसन भाख॥
साजनि ते जसि वचन बोध
टाकुसन कुहिअ सोझे कर सिभान झिवांग
टेना पदलव, केहु न देखल, आँघे पोस न आनि
आवे दिने दिने तसन, कएलह बाध महिपाकानि॥

भनइ विद्यापतीत्यादि, नेपाल ६०, पृ० २३ क, पं २।

अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

(५६५)

बड़ि जुड़ि एहु तरुकी छाहरि ठामे ठामे रसगाम।
हमे एकसरि पिआ देसान्तर नही दुरजन नाम॥
पथिक एखाने हेरि सरम
जंत वेसाहर कीछु न महघ सबे मिलएहि ठाम।
सासु नहीं घर परपरिजन ननद सहज भोरि।
एतकु अधिक विमुख जाएब अवे अनाइति मोरि।
भने विद्यापति सुनतब्वे जुवति जे पुरपरक आस।

नेपाल ४६, पृ० १८ क, पं ३।

शब्दार्थ—जुड़ि—शीतल ; छाहरि—छाया ; एक सरि—अकेली ; वेसाहर—विक्रय सामग्री ; महघ—महार्घ्य।

अनुवाद—इस स्थान की छाया बड़ी शीतल। स्थान स्थान पर रससमूह है। मैं अकेली हूँ। प्रिय देशान्तर में (हैं)। दुर्जनों का नाम भी यहाँ सुना नहीं जाता। पथिक, यहाँ तुम्हारी (चक्षु) लज्जा देखती हूँ। यहाँ विक्रय की वस्तु कुछ भी महँगी नहीं है, सब चीज़ें यहाँ पायी जाती हैं। घर में सास नहीं है; जो परिजन हैं वे गैर है, ननद स्वभाव की सरला है। इतना सुयोग होने पर भी यदि विमुख होवो तो वह मेरी आयत्ति के बाहर है। युवति, इस विद्यापति की बात सुनो, जो तुम्हारी आशा पूरी करेंगे।

(५६६)

सुन्दरी हे तों सुबुधि सेयानि।
मरी पियास पियावह पानि॥
के तों थिकाह ककर कुल जानि।
विनु परिचय नहि दिव पिढ़ि पानी॥
थिकहुँ पथुकजन राजकुमार।
धनिके विओग भरमि संसार॥

आवह बैसह पिव लह पानि।
जे तों खोजवह से दिव आनि॥
ससुर भैंसुर मोर गेलाह विदेस।
स्वामिनाथ गेल छथि तनिक उदेस॥
सासु घर आन्हरि नैन नहि सूझ।
बालक मोर वचन नहि बूझ॥

भनहि विद्यापति अपरुप नेह।
जेहन विरह हो तेहन सिनेह॥

ग्रियर्सन ८० ; न० गु० (प) ११।

अनुवाद—(पथिक की उक्ति) सुन्दरि, तुम सुबुद्धि और चतुरा हो। प्यास से मर रहा हूँ, पानी पिलावो। (परकीया का उत्तर) तुम कौन हो, किस कुल के हो, क्या जानती हूँ? परिचय के बिना आसन और पानी नहीं दूँगी। (पथिक की उक्ति) मैं पथिक राजा का कुमार हूँ; स्त्री के वियोग में संसार में भ्रमण कर रहा हूँ। (नायिका का उत्तर) आवो, बैठो, जल पान करो, तुम जो कुछ भी खोजोगे, लाकर दूँगी। मेरे ससुर और भैंसुर विदेश गए हैं। स्वामीनाथ उनकी खोज में गए हैं। घर में सास अन्धी है, आँख से देख नहीं सकती ; मेरा जो बालक है, वह बात नहीं समझता। विद्यापति कहते हैं, अपूर्व प्रेम, जैसा विरह होता है, वैसा ही स्नेह भी।

(५६७)

पिया मोर बालक हम तरुनी
कौन तप चुकलौंह भेलौंह जननी ॥
पहिर लेल सखि एक दछिनक चीर ।
पिया के देखैत मोर दगध सरीर ॥
पिया लेली गोद कै चललि बजार ।
हटियाक लोग पूछे के लागु तोहार ॥
नहि मोर देवर कि नहिं छोट भाई ।
पुरुब लिखल छल बालमु हमार ॥

बाटरे बटोहिया कि तुहु मोरा भाई ।
हमरो समाद नैहर लेने जाउ ॥
केहिहुन बवा के किनए धेनु गाई ।
दुधवा पियाइकें पोसता जमाई ॥
नहि मोर टका अछि नहिं धेनु गाई ।
कौनइ विधि सें पोसब जमाई ॥
भनइ विद्यापति सुनु व्रजनारी ।
धीरज धरह त मिलत मुरारी ॥

ग्रियर्सन ७६ ; न० गु० १२ (परकीया) ।

अनुवाद—मेरा प्रियतम बालक, मैं तरुणी। कौन तप-भ्रष्ट हुआ कि जननी (जननी-तुल्य) हो गयी। सखि, दक्षिण-देशीय वस्त्र-परिधान किया। प्रियतम को देख कर मेरा शरीर दग्ध हो रहा है। प्रियतम को गोद में लेकर बाज़ार चली। हाट के लोग पूछने लगे कि यह (गोद का बालक) तुम्हारा कौन है? यह न तो मेरा देवर है और न छोटा भाई। मेरे पूर्वजन्म की लेखा थी, मेरा स्वामी (हो गया) है। हे पथ के पथिक, तुम मेरे भाई हो। मेरा सम्वाद मेरे बाप के घर ले जावो। बाबा को कहना कि वे धेनु गाय खरीदें, दूध पान करा के जमाई को पोषण करें। (पिता की उक्ति) मेरे पास रुपये नहीं हैं, धेनु गाय नहीं है, किस उपाय से बालक जमाई को पोसें? विद्यापति कहते हैं, व्रजनारी सुन, धैर्य धर मुरारि मिलेंगे।

(५६८)

जय जय भगवति जय महामाया ।
त्रिपर सुन्दरि देवि करु दाया ॥ आहेमाता ॥
दालिम कुसुम सम तुअ तनु छवी ।
तखने उदित भेल जनि रवी ॥

धनुसर पास अंकुस हाथ ।
तेतिस कोटि देव नाव माथ ॥
चंगिम उपमा केओ पाव[1] ।
काम रमनि दासि पद पाव ॥

रागतरंगिनी पृ० ११७; न० गु० (हर) ३।

अनुवाद—जय भगवती, जय महामाया त्रिपुर सुन्दरी देवी, दया करो। तुम्हारे शरीर की कान्ति दाड़िम फूल के समान है (उसे देख कर लगता है) मानों उसी समय रवि का उदय हुआ हो। हाथ में धनु, शर, पाश, अङ्कुश, तेंतीस कोटि देवता मस्तक नत करते हैं। सुन्दर उपमा कहाँ पाऊँगा? काम रमणी (रति) दासी हो रहती है। अर्थात् तुम इतनी सुन्दर हो कि रति तुम्हारी दासी के समान है।

---

[1] ५६८—पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके 'चन्दिम उपम न पाव' कर दिया है। प्रदत्त पाठ का अर्थ है—सुन्दर उपमा कहाँ पायें।

(५९९)

पाहुन आएल भवानी बाघ छाल
बइसए दिअ आनी ॥
बसह चढ़ल बुढ़ आवे।
धुमुर गजाए भोजन हुनि भावे

भसम विलेपित आँगे।
जटा बसथि सिर सुरसरि गांगे ॥
हाड़माल फनिमाल शोभे।
डवरु बजाव हर जुवतिक लोभे ॥

विद्यापति कवि भाने।
ओ नहि बुढ़वा जगत किसाने ॥

नेपाल २७६, पृ० १०० ख, पं ३ ; न० गु० (हर) ६ ।

अनुवाद—अतिथि आया, भवानि, बैठने के लिए बाघ-छाल ला दो। बैल पर चढ़ कर बूढ़ा आया। धतूरा और गांजा उसे खाने में अच्छा लगते हैं। अंग में भस्म लगा हुआ, माथा की जटा में सुरसरित् गंगा। हाड़ और साँप की माला शोभा पाती है। युवती के लोभ से वे (हर) डमरु बजाते हैं। कवि विद्यापति कहते हैं, वृद्ध नहीं, जगत के किसान हैं।

(६००)

पंच वदन हर भसमे धवला।
तीनि नयन एक बरए अनला ॥
दुःखे बोलए भवानी।
जगत भिखारि हम मिलल सामी ॥

विसधर भूसन दिग परिधाना।
बिनु बित्ते इसर नाम उगना ॥
भनइ विद्यापति सुनह भवानी।
हर नहि निधन जगत सामी ॥

नेपाल २६, पृ० २२ ख; पं १, न० गु० (हर) २३ ।

अनुवाद—हर के पाँच वदन हैं, भस्म से धवल। तीन नयन (उनमें से) एक में अनल जल रहा है। दुःख से भवानी कहती हैं, जगत का भिखारी मेरा स्वामी हुआ। विषधर भूषण, दिगम्बर, वित्त नहीं (पर) ईश्वर, नाम उगना। विद्यापति कहते हैं, भवानी, सुनो, हर निर्धन नहीं हैं, (वे) जगत के स्वामी हैं।

(६०१)

विकट जटाचय किछु न[१] लोक भय हे
उर फनी-पति दिग वास।
कओन पथ[२] भेटताह हे, आगे माइ,
[३]याइत उमत हमार ॥

त्रिपुर दहनवरु छारे छाल भरु हे
बसह[४] चढ़ल वर बूढ़।
तीनि नयन हर एक अनल भर हे
सिर[५] सुरसरि जलधार ॥

भनइ विद्यापति गौरी विकल मति हे
ओहि उमताक उदेस ॥

राग तरंगिनी, पृ० ६९ ; न० गु० (हर) ११ ।

६०१—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) "नइ" (२) "पथे" (३) "आइल" (४) "कर छारह साल" (५) "बसहा" (६) "सिरे" कर दिया है

अनुवाद—विकट जटा-समूह, वक्ष पर अजगर, दिक्-वसन, कुछ लोक-लज्जा नहीं। हाँ माँ (पथ में किसी रमणी को सम्बोधन करके) किस पथ से आते मेरे पागल से मुलाकात होगी? त्रिपुर का दहन करके भस्म की धूलि भर ली। बूढ़े का वेश, बैल पर आरूढ़। तीन नयन (उनमें से) एक अनल पूर्ण, सिर पर सुरसरित् जलधारा (वर्षण कर रही है)। विद्यापति कहते हैं, उसी उन्मत्त के सन्धान में गौरी विकतमति (चंचल) हो गयी है।

(६०२)

कतहु समसधर कतहु पयोधर
भल वर मिलल सुसोभे।
अधंग धइलि नारि गुनलि निअ गारि[1]
गरुअ गौरी गुनलोभे॥
आलो सिव सम्भु तुमी सिव सम्भु
तुमी जो[2] वधिलो पच वाने॥

शम्भु का उत्तर

गंगा लागि गिरिजाक मनउलिहे
कके देवि वोलह मन्दा।
चरन नमित फनी मनिमय भुसन
घर खिखियायल चन्दा॥

भनइ विद्यापति सुनह त्रिलोचन
पअ पंकज मोरि सेवा।
चन्दलदेइ पति वैद्यनाथ गति
नीलकण्ठ हर देवा॥

रागतरंगिणी, पृ० १०८; न० गु० (हर) १६।

अनुवाद—कहाँ जटाधर, और कहाँ पयोधर (गौरी का सुगठित शरीर)। सुशोभना को (सुन्दरी को) अच्छा वर मिला। नारी ने (महादेव का) अर्धांग धारण किया (अर्धांगिनी हुई), गौरी ने अधिक गुण के लोभ से अपनी गाली (कलंक) की गणना नहीं की। हे शिव शम्भु, तुम्हीं शिव शम्भु हो, तुम्हीं ने पंचवाण का वध किया था। (शिव का उत्तर) गंगा के लिए हमने गिरिजा को मनाया (सपत्नी देख कर गिरिजा ने मान किया था) देवि, किसके लिए मुझे बुरा कह रही हो? (मेरा अपराध क्या?) फणि चरणों में झुक गया है (एवं) मणिमय भूषण-स्वरूप हो गया है (अतः सर्प का भय नहीं है); चन्द्र घर में (मेरे ललाट में) खिलखिला कर हँस रहा है (गौरी के आगमन के आनन्द से)। विद्यापति कहते हैं, त्रिलोचन, सुनो, तुम्हारे पदपंकज में मेरा प्रणाम। चन्दल देवी के पति वैद्यनाथ (मेरी) गति (हैं)। नीलकण्ठ हर मेरे देवता।

६०२—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) "न गुनलि निज गारि" (२) "जे" कर दिया है।

(६०३)

प्रथमहि सङ्कर सासुर गेला।
बिनु परिचए उपहास पड़ला॥
पुछिओ न पुछल के वैसलाह जहाँ।
निरधन आदर के कर कँहा॥
हेमगिरि मडप कौतुक वसी।
हेरि हसल सबे बुढ़ तपसी॥
से सुनि गोरि रहलि सिर लाए।
के कहत माके तोहर जमाए॥
साप सरीर काँख बोकाने।
प्राकृति औषध के दहु जाने॥
भनइ विद्यापति सहज कहु।
आडमुरे आदर हो सब तहु॥

नेपाल २७८, पृ० १०१, पं ४ ; न० गु० (हर) २०।

अनुवाद—पहली बार शंकर ससुराल गए। परिचय न जान कर लोगों ने उपहास किया। जहाँ बैठे, किसी ने भी पूछा-ताछा नहीं। निर्धन का कौन कहाँ आदर करता है? हिमालय (गिरिराज) ने मण्डप में बैठ कर कौतुक अनुभव किया। वृद्ध तपस्वी को देख कर सब हँसे। यह सुन कर गौरी ने सिर झुका लिया, माता से कहेंगी, (क्या यही) तुम्हारा जमाइ है? शरीर पर सर्प, काँख में झोली, (इस प्रकार की) प्रकृति की औषधि कौन जानता है? विद्यापति कहते हैं, सहज बात कहता हूँ, सबों की अपेक्षा आडम्बर का आदर होता है।

(६०४)

मोर वौरा देखल केहु कतहु जात।
वसह चढ़ल विस पान[1] खात॥
आँखि निड़ड़ मुह छआइ नार।
पथ के चलत वौरा विसम्भार॥
बाट जाइत केहु हलब ठेलि।
अबओहि वोरे विनुमय अकेलि॥
हात डमरु कर लौआ संख[2]।
जोग जुगुति गिय भरल माथ॥
अजगर रोए अठहु आंग।
सिर सुरसरि जटा बोलह गांग॥

नेपाल २८०, पृ० १०२ क, पं १, "विद्यापतीत्यादि" ; न० गु० (हर) ३२।

अनुवाद—मेरे पागल को किसी ने कहीं जाते देखा है? (वह) वृषभ पर चढ़ा हुआ है, विष और भांग खाता है। (उसके) चक्षु निश्चल मुख से राल टपक रहा है, पागल विश्वम्भर राह में चलते हैं। रास्ते में चलते उनको कोई धक्का भी मार देता है। अभी यह वातुल मेरे बिना एकाकी। एक हाथ में डमरु, दूसरे में लोहे का चिमटा। युग युग तक योग करते रहने से सिर में कृमि कीट भर गये हैं। उनके आठो अंग अजगर चाट रहा है। सिर की जटा में सुरसरिता जिसे गंगा कहते हैं।

६०४—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने (१) 'विस भांग' पाठ रखा है (२) 'लोहया साथ' माना है। नेपाल पोथी में विद्यापतीत्यादि हैं। न० गु० ने 'भनहि विद्यापति सम्भुदेव। अवसर अवस हमर सुधि लेब'। जोड़ दिया है।

(६०५)

कतने झोड़ि सिन्दुरे भरलि
भसमे भरु वोकान।
वसह केसरि मजर मुसा
चारुहु पलु पलान॥
डिमिकि डिमिकि डमरु वजए
इसर खेलइ फागु।
भसमे सिन्दुरे दुयश्रो खेड़ा
एकहि दिवसे लागु॥

संध्याय सिन्दुरे भरु सरससति
लछिहि भरलि गौरि।
इसर भसमे भरु नरायन
पीत वसन वोरि॥
एक तवों नाँगट अत्रोके उमत
किछु नर इशर धथुर खाए।
अत्रोके उमति खेड़ि खेलावए
किछु न बोलइ जाए॥

गरुड़ वाहन देव नरायन
वसह चढ़ू महेस।
भने विद्यापति कौतुक गाश्रोल
संगहि फिरथु देस॥

नेपाल २८४, पृ० १०३ ख, पं १; न० गु० (हर) ४१।

अनुवाद—कितनी झोलियाँ सिन्दूर से भर दीं। भस्म से झोली भर गयी। वृप, सिंह, मयूर और मूषिक चार (वाहनों) पर साज दिया गया। डिमिक डिमिक डमरु बजा। ईश्वर फाग खेल रहे हैं। एक दिन भस्म और सिन्दूर दोनों का खेल (हुआ)। सन्ध्या को गौरी ने लक्ष्मी और सरस्वती को सिन्दूर से भर दिया। ईश्वर ने नरायन को भस्म से भर दिया। पीतवसन को (भस्म में) डुबा दिया। एक तो उलंग, उसपर से उन्मत्त, वर के ईश्वर धतूरा खाते हैं और उन्मत्त होकर फाग खेलते और खेलाते हैं, कुछ कहा नहीं जाता। गरुड़-वाहन नारायण, महेश वृप पर चढ़ते हैं। विद्यापति कहते हैं, कौतुक गाते हैं, एक संग हरिहर देश देश में घूमते रहें।

(६०६)

घर घर भमरि जनम नित
तनिकाँ केहन विवाह।
से श्रम करय गौरि वर
इ होय कतय निवाह॥
केतय भवन कत आगन
वाप कतए कत मास।
कतहु ठहोर नहि ठेहर
ककर एहन जमाय॥

कोन कयल एहो असुजन
केओ न हिनक परिवार।
जे कएल हिनक निवन्धन
धिक धिक से पजियार॥
कुल परिचार एको नहि जनिका
परिजन भूत वैताल।
देखि देखि झुर होय तन
के सहय हृदयक साल॥

विद्यापति कह सुन्दरि
धैरज मन अवगाह।
जे अछि जनिक विवाह
तनिकाँ सेह पय नाह॥

ग्रियर्सन ८१; न० गु० (हर) १४।

शब्दार्थ—ठहोर—निवासस्थान; नहि ठेहर—निश्चित नहीं; हिनक—इनका; पजियार—पंजीकार।

अनुवाद—जन्मावधि जो घर-घर भ्रमण करे, उसका विवाह कैसा ? उसको अब गौरी वरेंगी, यह कैसे हो सकता है ? कहाँ (उनके) घर, आँगन, बाप, माँ, कहाँ विश्राम-स्थान है, यह भी निश्चित नहीं; ऐसा जमाई कौन करेगा ? इस अ-सुजन के (संग सम्बन्ध की बात) किसने की ? इसका कोई परिवार नहीं। जिसने इसके साथ निर्बन्ध किया, उस पंजीकार को धिकार है। जिसके कुल में एक आदमी भी परिवार नहीं, भूत-बैताल (जिसके) परिजन। देख देख कर हृदय आकुल होता है, हृदय का शाल कौन सहेगा ? विद्यापति कहते हैं, सुन्दरी, मन में धैर्य धारण करो, जिसके संग विवाह होता है, वही उसका वर होता है।

(६०७)

आगे माई एहन उमत वर लैल
हेमत गिरि देखि देखि लगइछ रंग।
एहन उमत वर घोड़वो न चढ़इक
जाहि घोड़ रंग रंग जंग॥
बाघक छाल जे वसहा पलानल
साँपक लगले तंग।
डिमिकि डिमिकि जे डमरु बजइन
खटर खटर करु अंग॥

भकर भकर जे भांग भकोसथि
छटर पटर करु गाल।
चानन सों अनुराग न थिकइन
भसम चढ़ावथि भाल॥
भूत पिसाच अनेक दल सिरिजल
सिर सों वहि गेल गंग।
भनहि विद्यापति सुन ए मनाइनि
थिकाह दिगम्बर भंग॥

ग्रियर्सन १८२; न० गु० (हर) १३

शब्दार्थ—हेमतगिरि—हेमन्तगिरि, हिमालय; पलानल—पीठ पर जीन लगाया; तंग—फीता; रंग-रंग—रंग बिरंग के।

अनुवाद—माँरी, हेमन्तगिरि ऐसा उन्मत्त वर खोज कर ले आए हैं कि देख देख कर हँसी लगती है; ऐसा उन्मत्त वर, चढ़ने के लिए घोड़ा भी नहीं, जहाँ रंग-बिरंग के घोड़े पाये जाते हैं। जिसने वृष की पीठ पर बाघछाल की जीन बिछायी है, साँप का जिसकी चारो ओर फीता लगाया है; जो डिमिक डिमिक डमरु बजा रहा है, जिसके अङ्ग से खट् खट् शब्द हो रहा है। जो भकर भकर भाँग खाता है जिसके गाल से छटर पटर शब्द होता है जिसका चन्दन के प्रति अनुराग नहीं, जो कपाल में भस्म लगाता है। भूत-पिशाचों के अनेक दल का सृजन किया है। मस्तक से गंगा बह गयी है। विद्यापति कहते है, मेनका सुनो, दिगम्बर बातुल (भंग) है।

(६०८)

आजे अकामिक आएल भेखधारी।
भीखि भुगुति लए चललि कुमारी॥
भिखिआ न लेइ बढ़ावए रिसी।
वदन निहारए विहुसि हसी॥
एठमा सखि संगे निकहि अछली।
ओहि जोगिआ देखि मुरुछि पड़ली॥

दुर कर गुनपन अरे भेषधारी।
कांरिठि[1] अओलए राजकुमारी॥
केओ बोल देखए देहे जनु काहु।
केओ बोल ओझा आनि चाहु॥
केओ बोल जोगि आहि देहे दहु आनी।
हुनि कि अभए वरु जिवओ भवानी॥

भनइ विद्यापति अभिमत सेवा।
चन्दन देविपति वैजल देवा॥

नेपाल २७७, पृ० १०१-क, पं ३; न० गु० (हर) ११

६०८ मन्तव्य—(१) रिठि—नगेन्द्र बाबू ने "दिठि" कर दिया है।

शब्दार्थ—अकामिक—अकस्मात् ; भीखिभुगुति—आहार के समान भीख; रिसी—क्रोध; निकहि—अच्छी ही ।

अनुवाद—आज अकस्मात् एक भिक्षुक आया । कुमारी आहारोपभोगी भिक्षा लेकर चली । भिक्षा लेता नहीं, क्रोध बढ़ाता, मृदु मृदु हँस कर मुख देखता (है) । वहाँ सखी के संग अच्छी होगी, उस योगी को देख कर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । ओरे भिक्षुक, अपना गुणपन दूर कर, राजकुमारी के प्रति नजर क्यों दी ? कोई कहे, किसी को देखने मत दो । कोई कहे, ओझा को लाना चाहिये । कोई कहे, इसी योगी को ला दो, उसका अभय पाने से ही भवानी बचेगी । विद्यापति कहते हैं, चन्दन देवी के पति धैजल देव की सेवा ही मेरा अभिमत (है) ।

(६०९)

कोन वन वसथि महेस ।
केओ नहि कहथि उदेस ॥
तपोवन वसथि महेस ।
भैरव करथि कलेस ॥
कान कुन्डल हाथ गोला ।
ताहिवन पिया मिठि बोल ॥
जाहि वन सिकिओ न डोल ।
ताहि वन पिआ हसि बोल ॥
एकहि वचन बिच भेल ।
पहु उठि परदेस गेल ।
भनहि विद्यापति गाव ।
राधा कृष्ण बनाव ॥

ग्रियर्सन ४७

अनुवाद—महादेव किस वन में वास करते हैं ? कोई उनका उद्देश्य नहीं देता । तपोवन में महेश वास करते हैं एवं भयंकर (भैरव) क्लेश सहते हैं । (उनके) कान में कुण्डल एवं हाथ में चक्र, उसी वन में प्रियतम मधुर वचन बोलते हैं । जहाँ सींक भी (हवा से) नहीं डोलता, उसी वन में प्रियतम हँस कर बातें करते हैं । एक ही बात में (हम लोगों का) मतान्तर हुआ प्रभु विदेश चल गए । विद्यापति गाते हैं, राधाकृष्ण का मिलन होगा ।

(६१०)

कुसुम रस अति मुदित मधुकर
　　कोकिल पंचम गाव ।
रितु वसन्त दिगन्त[१] बालभु
मानस दहो दिस धाव साजनिया ॥
तेजल तेल तमोल तापन
　　सपन निसि सुख रंग ।
हेमन्त विरह अनन्त पाविय
　　सुमरि सुमरि पिया संग[२] ॥
मोर दादुर सोर अहोनिसि
　　बरिस बूंद सदन्द[३] ।
विसम वारिस बिना रघुवर
　　विरहिन जीवन अन्त[४] ॥
सुमुखि धैरज सकल सिधि मिल
　　सुनह कतए[५] सुवाणि ।
सिसिर सुभ दिन राम रघुवर आओब
　　तुअ गुन जानि[६] ॥

रागतरंगिनी पृ० ८३ (पद के शेष में लोचन विद्यापतेः लिखा है) न० गु० (नाना) २

६१०—मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'विदेश' (२) संग और इसके बाद साजनिया छोड़ दिया है (३) सबुन्द (४) अन्त और इसके बाद साजनिया (५) कत (६) जानि, और इसके बाद साजनिया छोड़ दिया है ।

अनुवाद—कुसुमरस पान से मधुकर अति आनन्दित, कोकिला पंचम गान करती है। ऋतु वसन्त, वल्लभ विदेश में। हे सजनि, मन दश दिशाओं में धावित हो रहा है (उद्भ्रान्त हो रहा है)। तैल, तम्बूल (शीत में), धूप एवं निशाकाल में सुखस्वप्न त्याग कर दिया। हे सजनि, प्रियतम का संग स्मरण कर हेमन्त में अत्यन्त विरह प्राप्त हो रहा है। मयूर, दादुर अहर्निशि रव कर रहे हैं, बूँद बूँद वृष्टि हो रही है। हे सजनि, रघुवर विना विषम वर्षा ऋतु विरहिणी का जीवनान्त कर रहा है। हे सुमुखि, धैर्य धारण करने से सकल सिद्धि मिलती है, कितनी ही सुवाणि सुन, तुम्हारा गुण जानकर रघुवर राम शिशिर में (शीतकाल में) शुभ दिन को आवेंगे।

(६११)

विह मोर परसन भेल।
रघुपति[1] दरसन देल॥
देखलि वदन अभिराम।
पूरल सकल मन काम॥

जागि उठल पचोवान।
वसि नहि रहल गेयान॥
भनइ विद्यापति भान हे।
सुपुरुख न कर निदान हे॥

ग्रियर्सन ११, न० गु० ८११

अनुवाद—विधि मेरे प्रति प्रसन्न हुए, रघुपति ने दर्शन दिए। उनका सुन्दर मुख देखा, सकल मनोकामना पूर्ण हुई। मदन जाग उठा। ज्ञान-बुद्धि अपने वश में न रही। विद्यापति यह बात कह रहे हैं, सुपुरुष कभी भी शेष पर्यन्त कष्ट नहीं देते।

(६१२)

वड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे।
छोड़इत निकट नयन वह नीरे॥
करजोरि विनमओं विमल तरंगे।
पुन दरसन होए पुनमति गंगे॥

एक अपराध छेमव मोर जानी।
परसल माए पाए तुअ पानी॥
कि करव जप-तप जोग धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने॥

भनइ विद्यापति समदओं तोही।
अन्त काल जनु विसरह मोही॥

ग्रियर्सन ७८; न० गु० (गंगा) १

(गंगा का स्तव)

अनुवाद—बड़े सुख के सार से तुम्हारा तीर प्राप्त हुआ। निकट (तीर) छोड़ते नयन से अश्रु वह रहा है। हे विमल तरंगे, पुण्यवती गंगे, हाथ जोड़ कर विनय करता हूँ, जिससे फिर दर्शन हो। जननि, मेरा एक अपराध क्षमा करना, तुम्हारा जल (मैंने) पैर से स्पर्श किया है। जपतप योगध्यान से क्या होगा? (तुम्हारे जल में) एक बार स्नान करने से जन्म कृतार्थ हो जाएगा। विद्यापति कहते हैं, तुमसे निवेदन करता हूँ, अन्तकाल में मुझे भूलना मत।

६११ मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने ग्रियर्सन का 'रघुपति' बदल कर "हरि मोहि" कर दिया है।

(६१३)

सैसव समय पेलि पिओ लासि मधुर माएक छीर।
दधी दुध घृत भरि भुञओलासि कोमल कांच सरिर॥
चानन चोर चवावए चिन्हओलासि अगनपर समाज।
भमर जओ फुल छुँइतें छाड़सि निलज तोहि नलाज॥
वसए कतए तेजीए गेला।
तोहि सेवइते जनम खेपल तओ न अपन भेला॥
जीवन दसाँ खोजी खोअओलासि कांच (न) कपूर तमोव।
दुइ सिरिफल छाइ खोअओलासि कोमल कामिनि को॥
※ ※ ※ तोए तसए खओलासि जओ नहि रस सवाद।
पवन पाछा लागि जएलाहुं मोहि भेल परमाद॥
कैसन केस की भए विभइल वन भरी वहुकाठ।
आखि मलमलि कानन सुनीअ सखि गेल तनु आट॥
दन्ते भरीमुख थोथर भए गेल जनि कमाओल साप।
ठाम वैसलेँ भुवन भमिअ भरी गेल सवेदाप॥
जाहि लागी गृहचातर लाओल वुभल सव असार।
आखि पाखी दुहु समरि सोएल जनित सवे विकार॥
छोरकी सोरकी मोहइ विभछल वनफुली गेल कासी।
एक दिस जदि वान्धि निरोधीअ तरे उपरे उकासी॥
भने विद्यापति सुनन मालति मनेन करहवाद।
हरि हर पय पंकज सेविह तेन रह अवसाद॥

पाठान्तर :—

पसए कतए तेजि गेला।
तोहँ सेवइते जनम वहल
तइअओ न अपन भेला॥
सैसव दसा चाहि खोअओला है
मधुर माएक छीर।
दुइ सिरीफल छाँह सीअओला है
कोमल काँच सरीर॥

दाँत भड़ि मुह थोथड़ भए गेल।
भड़ि गेल सजे दाग।
तीनू भुअन वइन्दल देखिअ
जनि कचु माएल साग॥
आँखि मलामलि दूर न सुभए
वन फुटि गेल कासी।
दुअओ धराधर धरि निरोधिअ
भर उपर उकासी॥

तालपत्र; न० गु० ८४०।

६१३—*मन्तव्य*—रमानाथ झा द्वारा आविष्कृत खंडित पोथी (Journal of the Ganganath Jha Research Institute Vol. 11, August 1945 P. 403)

शब्दार्थ—पेखि—पाकर ; कांच—कच्चा ; चानन—चन्दन ; चबाए—चबावे ; तमोव—ताम्बूल ; छाह—छाया; सवाद—स्वाद ; विभछल—सादा हो गया ; मलमलि—मलिन दृष्टि—तनु की बनावट (रमानाथ झा के मतानुसार—अष्टांग) ; कमाओल साप—दन्तहीन साँप जिस प्रकार विषहीन होता है ; छोरकी सोरकी—आँख का भ्रू । अथवा पत्ता ; उकासी—उत्काशि ।

अनुवाद—शैशव के समय में माय का मीठा दूध पान किया है ; उसके बाद कोमल कच्चे शरीर को कितना दधि दूध घी खिलाया है। चोरी करके चन्दन चवा कर अपनी (स्त्री के) साथ और दूसरे (की स्त्री) के साथ मिलन (समाज) कैसा समझा (चन्दन घसने से सुगन्ध की प्राप्ति होती है, परन्तु तुम मूर्ख ने उसे चबाया अर्थात् कामगन्ध-हीन प्रेम से सन्तुष्ट न रह कर तुम भोग से उन्मत्त हुए), तुम निर्लज्ज हो, इसीलिए भ्रमर के समान फूल छूते और छोड़ते तुम्हें लज्जा नहीं होती (फूल फूल पर मधु खाते तुम्हें लज्जा नहीं होती)। वयस छोड़ कर कहाँ गए? तुम्हारी ही सेवा करते जन्म काटा, तभी भी अपने न हुए। कांचन, कर्पूर, ताम्बूल (प्रभृति भोग्य द्रव्य) खोजते खोजते जीवन की दशा (दस दशाओं में कई एक) खो गयी, नष्ट हुई। कोमल कामिनी के दो श्रीफलों की छाया में अपने को सुलाया। जिसमें रस और स्वाद नहीं, उसी में समय खोया। मेरा प्रमाद घटा, वातास ने पीछे लगकर (कामाग्नि को) जलाया। आज केश कैसा सादा हो गया है; बन मानों सूख कर काठ हो गया है। आँख की दृष्टि मलिन, कान से सुनता नहीं, शरीर की बनावट सूख गयी है। कामना भी साँप की भाँति निर्विष हो गयी है। मुख में भरे दाँत गिर जाने पर थो थो करके बातें करता हूँ (घूमने की क्षमता नहीं है परन्तु वासना है) इसीलिए उस जगह पर बैठा बैठा भुवन भ्रमण करता हूँ। सब डाट दोप हो गया है। जिसके लिए घर-द्वार किया, समझा, सब असार है। आँख (रूपी) दोनों पक्षी सब विकार जान कर श्रान्त होकर सो गए। आँख का भ्रू भी काँसफूल के समान सादा हो गया। मन को यदि एक दिशा में बाँध कर निरोध करना चाहता हूँ तो उत्काशि उठती है (श्वास-निरोधपूर्वक योग अभ्यास की क्षमता अब नहीं है)। विद्यापति कहते हैं, मालति, सुनो न, मन में अब और द्विधा मत करना। हरिहर के पदपंकज की सेवा करो, वैसा करने से अब और अवसाद नहीं रहेगा।

(६१४)

खेत कएल रखवारे लुटल
ठाकुर सेवा भोर।
वनिजा कयल लाभ नहि पाओल
अलप निकट भेल थोर॥

माधव धने वनिजहु वेज
अछ लाभ अनेक।
मोति मजीठ कनक हमे वनिजल
पोसल मनमथ चोर॥
जोखि परेखि मनहि हमे निरसल
धन्ध लागल मन मोर॥

इ संसार हाट कए मानह
सवोनेक वनिज आर।
जोजस वनिजए लाभ तस पावए
सुपुरुस मरहि गमार॥
विद्यापति कह सुनह महाजन
राम भगति अछ लाभ॥

नेपाल १३१, पृ० ५० क, पं० १ ; न० गु० ८२६।

६१४—*पाठान्तर*—(१) नेपाल पोथी में माधवधन है। मालूम होता है न० गु० ने छन्द मिलाने के लिए उसे बदल कर रामधानु कर दिया है।

(६१३)

सैसव समय पेलि पिओ लागि मधुर माएक छीर।
दधी दुध घृत भरि भुञ्ओलासि कोमल कांच सरिर॥
चानन चोर चयावए चिन्हओलासि अयनपर समाज।
भमर जओ फुल छुँइतें छाड़सि निलज तोहि नलाज॥
वसए कतए तेजीए गेला।
तोहि सेवइते जनम खेपल तओ न अपन भेला॥
जीवन दसाँ खोजी खोअओलासि कांच (न) कपूर तमोल।
दुइ सिरिफल छाइ खोअओलासि कोमल कामिनि को॥
ꕥ ꕥ ꕥ तोए ततए खओलासि जओ नहि रस सवाद।
पवन पाछा लागि जएलहुँ मोहि भेल परमाद॥
कैसन केस की भए विभहल वन भरी धहुकाठ।
आखि मलमलि कानन सुनीअ सखि गेल तनु आट॥
दन्ते भरीमुख थोथर भए गेल जनि कमाओल साप।
ठाम वैसलें भुवन भमिअ झरी गेल सवेदाप॥
जाहि लागी गृहचातर लाओल बुझल सव असार।
आखि पाखी दुहु समरि सोएल जनित सवे विकार॥
छोरकी सोरकी मोहइ विभछल वनफुली गेल कासी।
एक दिस जदि बान्धि निरोधीअ तरे उपरे उकासी॥
भने विद्यापति सुनन मालति मनेन करहवाद।
हरि हर पय पंकज सेविह तेन रह अवसाद॥

पाठान्तर :—

वसए कतए तेजि गेला।
तोहें सेवइते जनम वहल
तइअओ न अपन भेला॥
सैसव दसा चाहि खोअओला हे
मधुर माएक छीर।
दुइ सिरीफल छाँह सीअओला हे
कोमल काँच सरीर॥

दाँत झड़ि मुइ थोथड़ भए गेल।
झड़ि गेल सजे दाग।
तीनू भुअन वइहल देखिअ
जनि कछु माएल साग॥
आँखि मलामलि दूर न सुझए
वन फुटि गेल कासी।
दुअओ धराधर धरि निरोधिअ
भर उपर उकासी॥

तालपत्र; न० गु० ८४०।

६१३—मन्तव्य—रमानाथ झा द्वारा आविष्कृत खंडित पोथी (Journal of the Ganganath Jha Research Institute Vol. 11, August 1945 P. 403)

शब्दार्थ—पेलि—पाकर ; कांच—कच्चा ; चानन—चन्दन ; चबाए—चबावे ; तमोर—ताम्बूल ; छाह—छाया; सवाद—स्वाद ; विमछल—सादा हो गया ; मलमलि—मलिन दृष्टि—तनु की बनावट (रमानाथ झा के मतानुसार—अर्थांग) ; कमाओल साप—दन्तहीन साँप जिस प्रकार विषहीन होता है ; छोरकी सोरकी—आँख का भ्रू। अथवा पत्ता ; उकासी—उत्कासि।

अनुवाद—शैशव के समय में माय का मीठा दूध पान किया है ; उसके बाद कोमल कच्चे शरीर को कितना दधि दूध घी खिलाया है। चोरी करके चन्दन चवा कर अपनी (स्त्री के) साथ और दूसरे (की स्त्री) के साथ मिलन (समाज) कैसा समझा (चन्दन घसने से सुगन्ध की प्राप्ति होती है, परन्तु तुम मूर्ख ने उसे चबाया अर्थात् कामगन्ध-हीन प्रेम से सन्तुष्ट न रह कर तुम भोग से उन्मत्त हुए), तुम निर्लज्ज हो, इसीलिए भ्रमर के समान फूल छूते और छोड़ते तुम्हें लज्जा नहीं होती (फूल फूल पर मधु खाते तुम्हें लज्जा नहीं होती)। वयस छोड़ कर कहाँ गए? तुम्हारी ही सेवा करते जन्म काटा, तभी भी अपने न हुए। कांचन, कर्पूर, ताम्बूल (प्रभृति भोग्य द्रव्य) खोजते खोजते जीवन की दशा (दस दशाओं में कई एक) खो गयी, नष्ट हुई। कोमल कामिनी के दो श्रीफलों की छाया में अपने को सुलाया। जिसमें रस और स्वाद नहीं, उसी में समय खोया। मेरा प्रमाद घटा, वातास ने पीछे लगकर (कामाग्नि को) जलाया। आज केश कैसा सादा हो गया है; तन मानों सूख कर काठ हो गया है। आँख की दृष्टि मलिन, कान से सुनता नहीं, शरीर की बनावट सूख गयी है। कामना भी साँप की भाँति निर्विष हो गयी है। मुख में भरे दाँत गिर जाने पर थो थो करके बातें करता हूँ (घूमने की क्षमता नहीं है परन्तु वासना है) इसीलिए उस जगह पर बैठा बैठा भुवन भ्रमण करता हूँ। सब डाट दोष हो गया है। जिसके लिए घर-द्वार किया, समझा, सब असार है। आँख (रूपी) दोनों पक्षी सब विकार जान कर श्रान्त होकर सो गए। आँख का भ्रू भी काँसफूल के समान सादा हो गया। मन को यदि एक दिशा में बाँध कर निरोध करना चाहता हूँ तो उत्कासि उठती है (श्वास-निरोधपूर्वक योग अभ्यास की क्षमता अब नहीं है)। विद्यापति कहते हैं, मालति, सुनो, मन में भय और द्विधा मत करना। हरिहर के पदपंकज की सेवा करो, वैसा करने से भय और अवसाद नहीं रहेगा।

(६१४)

खेत कएल रखवारे लुटल
ठाकुर सेवा भोर।
बनिजा कयल लाभ नहि पाओल
अलप निकट भेल थोर॥

माधव धने बनिजहु वेज
अछ लाभ अनेक।
मोति मजीठ कनक हमे बनिजल
पोसल मनमथ चोर॥
जोखि परेखि मनहि हमे निरसल
धन्ध लागल मन मोर॥

इ संसार हाट कए मानह
सवोनेक बनिज आर।
जोजस बनिजए लाभ तस पावए
सुपुरुस मरहि गमार॥
विद्यापति कह सुनह महाजन
राम भगति अछ लाभ॥

—नेपाल १३१, पृ० ९० क, पं० १ ; न० गु० ८३६।

६१४—*पाठान्तर*—(१) नेपाल पोथी में माधवधन है। मालूम होता है न० गु० ने छन्द मिलाने के लिए इसे बदल कर रामधानु कर दिया है।

शब्दार्थ—भोर—भूल कर ; वनिजा—वाणिज्य, व्यवसाय ; वेज—ब्याज ; मजीठ—मंजिष्ठा ; बनिजल—वाणिज्य किया ; जोखि—तौल कर ; निरसल—निर्वासन किया।

अनुवाद—खेत किया (अन्न उपजाया) रक्षक ने लूट लिया। ठाकुर की सेवा भूल गया। वाणिज्य किया, लाभ नहीं पाया, जो कम था वह और भी कम हो गया। माधवधन लेकर वाणिज्य करने में बहुत सूद और बहुत लाभ पाया जाता है। मैंने मुक्ता, मंजिष्ठा, स्वर्ण लेकर वाणिज्य किया, किन्तु मन्मथ चोर को पोसा (चोर चोरी कर ले गया, कुछ भी लाभ नहीं हुआ)। तौल कर और परीक्षा करके मैंने संशय का निर्वासन किया, किन्तु तब भी मन का सन्देह लगा ही रहा। इस संसार को हाट समझना, सब ही यहाँ परिपक हैं (सब ही स्वार्थ खोजते हैं, भक्ति और प्रेम का प्रतिदान चाहते हैं)। जो जिस प्रकार का वाणिज्य करता है वैसा ही लाभ प्राप्त करता है, किन्तु सुपुरुष और मूर्ख सब ही मारे जाते हैं। विद्यापति कहते हैं, महाजन, सुन, केवल रामभक्ति में लाभ है।

(६१५)

चरित चाउर चिते वेआकुल, मोर मोर अनुबन्धे।
पूत कलए सहोदर बन्धव, सेष दसा सब धन्धे॥
... ... नाह, मो देह नु उपेखि।
गमअगामूह उओर उरछाउत, जब ... लेखी॥
अपथ पथचरण चलाओल उगति मति न देलो।
परधन धनि मानस लाओल मिथ्या जनम दुर गेला॥
कपट कलेवर गीड़ल मदन गोहे
भल मन्द हमे कीछु न गूनल
समय बहल मोहे।

कएल मन्वे, उचित भेल अनुचित
आवे मन पचतावे।
तावे की करब सीर पर धूल राग
न दीन नाही आवे॥

भने विद्यापति सुन महेसर
तैलोक आन न देवा।
चन्दन देविपति वैद्यनाथ गति
चरण सरण मोहि देवा॥

नेपाल १३९, पृ० ४७ ख, पं ५ : न० गु० (हर ८८) पृ० ५२२।

शब्दार्थ—चरित—जीवन ; चाउर—चतुर्थ भाग ; अनुबन्ध—सम्बन्ध ; मो—मुझको ; नाह—नाथ ; गम-अगामूह—'अख' का अर्थ है पाप, 'अग।' 'अख' का अपभ्रंश है, जो सब मुख्य पाप आचरण किया है ; उओर—ओर ; उरछाउत—नजर देगा : गीरल—ग्रास किया ; गोहे—ग्राह।

अनुवाद—जीवन की शेष दशा में पहुँच गया हूँ ; चित्त व्याकुल हो रहा है। मेरे सम्बन्ध में जितने भी पुत्र, कलत्र, सहोदर, आत्मीय हुए, उन्होंने अन्तकाल में प्रतारणा की (शेष दिनों में कोई किसी का नहीं होता)। हे नाथ, हे हर गोस्वामि ! मेरी उपेक्षा कर मुझे फेंक मत देना। जिस समय मेरे कृतकर्मों का हिसाब होगा, उस समय मेरे पापसमूह क्षमा करना (?)। तुमने मुझे विपथ में पदक्षेप कराकर चलाया, उन्नति के पथ में चलने की मति नहीं दी।

दूसरे के धन और रमणी के प्रति मन गया। वृथा ही जन्म बीत गया। मदनरूपी ग्राह ने छल करके मेरा शरीर ग्रस लिया। मैंने भला-बुरा कुछ भी विचार न किया; मोह में ही समय बिताया। कर्त्तव्य न करके अकर्त्तव्य ही किया; अब मनमें अनुताप हो रहा है। अब क्या करूँ? सिर पर मरण उपस्थित है, अब और समय नहीं है। विद्यापति कहते हैं—महेश्वर, सुनो, तुम्हें छोड़ कर त्रिलोक में अन्य कोई देव नहीं है। चन्दल देवी के पति वैद्यनाथ ही हमारी गति हैं; वे मुझे चरण में शरण दान करें।

पाठान्तर—नगेन्द्र बाबू का प्रदत्त पाठः—

ए हर गोसाञे नाथ तोहर
सरन कएलञो।
किछु न धरब सबे बिसरब
पछाँ जे जत कएलेञो॥
कपट मह पहु कलेवर
गिहल मअन मोहे।
भलमन्द सबे किछु न गुनल
जनम वहल मोहे।
षएल उचित भेल अनउचित
मने मने पछतावे।
अ वे कि करब सिरे पए धुनब
गेल दिना नहि आवे॥

अपथ पथ चरण चलाओल
भगति मन न देला।
परधनि धन मानस बाढ़ल
जनम निकले गेला॥
चरित चातर मन बेआकुल
मोर मेर अनुबन्धा।
पूत कलत्त सहोदर बन्धव
अन्तकाल सबे धन्धा॥
भन विद्यापति सुनह शङ्कर
कइलि तोहरि सेवा।
एतए जे पए से पए करब
ओतए सरन देवा॥

द्वितीय खण्ड समाप्त

तृतीय खण्ड

(केवल बंगाल में प्रचलित राजा-नाम-विहीन विद्यापति के पद)

(६१६)

खने खने नयन कोन अनुसरई ।
खने खने वसनधूलि तनु भरई ॥
खने खने दसन-छटा छुट हास[1] ।
खने खने अधर आगे करु बास ॥
चउकि चलए खने खने चलु मन्द ।
मनमथ-पाठ पहिल अनुबन्ध ॥

हिरदय-मुकुल हेरि हेरि थोर ।
खने आँचर दए खने होय भोर ॥
बाला सैसव तारुन भेट[2] ।
लखए न पारिअ जेठ कनेठ ॥
विद्यापति कह सुन वर कान ।
तरुनिम सैसव चिन्हइ न जान ॥

प० स० पृ० ३०, पं ८३ ; कीर्त्तनानन्द २३५ ; सा० मि० ५ ; न० गु० ६

शब्दार्थ—खने खने—क्षण-क्षण पर ; भरइ—भरता है ; वास—वस्त्र: चउकि—सचकित भाव से ; मन्द—धीरे; भोर—भूल जाना ; जेठ कनेठ—ज्येष्ठ और कनिष्ठ ।

अनुवाद—क्षण-क्षण पर नयन कोण का अनुसरण करते हैं (कटाक्षपात करते हैं), क्षण-क्षण पर (असंयत वस्त्र धूल में लोट कर शरीर को धूलिपूर्ण करता है। क्षण-क्षण पर हँसने से दशन की छटा मुक्त होती है, क्षण-क्षण पर अधर के सामने वसन ग्रहण करती है (अर्थात् मुख पर वस्त्र रखती है) । क्षण-क्षण पर चौंक कर धीरे धीरे चलती है । (यह) मन्मथ के पाठ का (क्रम-शिक्षा का) प्रथम प्रयत्न है। हृदय के मुकुल (पयोधर) को ज़रा-ज़रा देख कर क्षण-क्षण पर (वक्ष) पर वस्त्र डालती है, क्षण-क्षण पर (वस्त्र देना) भूल जाती है। बालिका के शरीर में शैशव और यौवन की सन्धि हुई है, ज्येष्ठ-कनिष्ठ का ठीक निर्णय न कर पाती है (अर्थात् बालिका के शरीर में शैशव और यौवन दोनों का साक्षात्कार होने पर भी यह ठीक समझ में नहीं आता कि कौन बड़ा और कौन छोटा है) विद्यापति कहते हैं, सुन्दर कन्हाई, तारुण्य और शैशव की पहचान तुम नहीं जानते ।

---

६१६ *पाठान्तर*—(१) पदकल्पतरु का पाठ "खने खने दशन छटाछुटि हास" पदामृत समुद्र का पाठ "दशन छुटि अट्टहास (२) पदकल्पतरु—बाला शैशव तारुण भेट ।

मन्तव्य—क्षणदागीत चिन्तामणि में पद की भणिता के पहले निम्नलिखित कलि पायी जाती है :—

दुति सेयानि काह सोइ ठाट ।
पण्डित हाम पढ़ायव पाठ ॥
चेतन मझु - मप - केतन - तन्त्र ।
अवगाहि लेड सिखाड रस-मन्त्र ॥

आपन तन . कांचन हमे देह ।
यतन प्रेम - रतन भरि लेह ॥
विद्या वल्लभ इह आजीव ।
इह बिनु दुहुक जीउ न जीव ॥

किन्तु इस अंश के साथ मूल पद की विशेष संगति नहीं है

(६१७)

खेलत ना खेलत लोक देखि लाज।
हेरत ना हेरत सहचरि माझ॥
सुन सुन माधव तोहारि दोहाइ।
बड़ अपरुप आजु पेखलि राइ॥
मुखरुचि मनोहर, अधर सुरंग।
फुटल बान्धुलि कमलक संग॥
लोचन जनु थिर भृंग आकार।
मधु मातल किए उड़इ न पार॥
भाउक भंगिम थोरि जनु।
काजरे साजल मदन धनु॥
भनइ विद्यापति दूतिक वचने।
विकसम अंग ना जाओत धरने॥

प० त० ८०, स० मि० ३

अनुवाद—कभी खेलती है और कभी नहीं खेलती, लोगों को देखकर लज्जा से (खेलना) छोड़ देती है। कभी (वांछित वस्तु के प्रति) ताकती है, कभी सहचरियों के बीच में रहने पर ताकती ही नहीं। माधव, सुन, सुन, तुम्हारी दोहाई, आज राइ को बहुत ही अपरूप देखा। मुख का लावण्य मनोहर, अधर सुरंग, देख कर लगता है, मानों कमल के संग बान्धुलि का फूल फूटा। आँखें उन्हीं भ्रमरों के आकार स्थिर हैं जो (भ्रमर) मधुपान से मत्त होकर उड़ने नहीं पाते। भंवों की बातें तो मानों कहना ही नहीं। मदन ने मानों काजल का धनुष सजाया हो, अर्थात् भवों के धनुष में मानों काजल का गुण जोड़ा गया हो। विद्यापति दूती की बात कहते हैं, जो अंग विकाशोन्मुख है उसका बोध नहीं कराया जाता। (यौवन के उद्गम से जो सब लक्षण प्रकाश पाते हैं उनको गोपन करने की चेष्टा व्यर्थ है)।

क्षणदागीत चिन्तामणि में एक और भी कलि है—

पीन पयोधरे दुबरि गाता।
सुमेरु उपरे जनु कनक लता॥

---

६१७ मन्तव्य वर्त्तमान संस्करण के २१७ संख्या के पद की पाँचवी से दसवीं कलि की संगति इस पद की उक्ति कलियों से है।

कीर्त्तनानन्द (२३७) प्रथम दो चरणों के बाद ज्ञानदास की भणिता है:—

बोलइते वचन अलप अब गाइ।
हासत न हासत मुख मुचकाइ॥
ए सखि ए सखि कि पेखनु नारी।
हेरइते हरले रहल युग चारि॥
उलटि उलटि चलु पद दुइ चारि।
भलसे कलसे जनु अमिया उभारि॥
मनोमथ मन्त्री आगोरल बाट।
चकिते चकिते पड़ु कत रसहाट॥
किये धनि धाता निरमिल ताइ।
जगमाह उपमा करइ न पाइ॥
परखे पुछनु हाम राइ को नाम।
ज्ञानदास कह रसिक सुजान।

(६१८)

सैसव जौवन दरसन भेल।
दुहु दलवले धनि दन्द पड़ि गेल[1] ॥
कबहु बान्धये कच कबहु बिथारि।
कबहु झाँपय अंग कबहु उघारि ॥
थिर नयान अथिर कछु भेल।
उरज-उदय-थल लालिम लेल ॥
चंचल चरन, चित चंचल भान।
जागल मनसिज मुदित-नयान ॥
विद्यापति कहे सुन वर कान।
धैरज धरह मिलायब आन ॥[2]

चणदा पृ० ६४, प० त० १०४, प० स० पृ० ३०; कीर्त्तनानन्द २३०; स० मि० २; न० गु० ४

शब्दार्थ—कच—केश; बिथारि—फैला कर रखती है; आन—लाकर।

अनुवाद—शैशव और यौवन के दर्शन हुए। उभय दल के बल अथवा प्रभाव के कारण सुन्दरी द्वन्द्व में पड़ गयी—किस दल का साथ दे, समझ में नहीं आता। कभी केश बाँधती है, कभी फैलाती है, शरीर ढाँकती है, कभी (आवरण) खोल फेंकती है। स्थिर नयन किंचित अस्थिर हुए, पयोधर का उदयस्थल लोहिताभ हुआ। चंचल चरण, चित्त भी चंचल हो गया। कन्दर्प जागा, परन्तु अभी भी उनके नयन बन्द हैं (लोगों के जागने पर भी उनकी आँखें जैसे बन्द ही रहती हैं, किशोरी के मन में उसी प्रकार मदन थोड़ा जागरित हुआ है)। विद्यापति कहते हैं, हे श्रेष्ठ कन्हाई, सुनो, धैर्य धरो, उसको लाकर तुम्हारे साथ मिला देंगे।

(६१६)

किछु किछु उतपति अङ्कर भेल।
चरन-चपल-गति लोचन लेल ॥
अब सब खन रहु आँचर हात।
लाजे सखिगन न पुछए बात ॥
कि कहब माधव वयसक सन्धि।
हेरइत मनसिज मन रहु बन्धि ॥
तइअओ काम हृदय अनुपाम।
रोपल घट ऊचल कए ठाम ॥
सुनइत रस-कथा थापए चीत।
जइसे कुरंगिनी सुनए संगीत ॥
सैसव जौवन उपजल वाद।
केओ न मानए जय-अवसाद ॥
विद्यापति कौतुक बलिहारि।
सैसव से तनु छोड़ नहि पारि ॥

न० गु० ९ (आकर खोजने पर नहीं मिला)

६१८—चणदा का पाठान्तर—(१) दोहु दलबले धनि दन्द पड़ि गेल। (२) "उरज ... देल" इसके बाद निम्नलिखित कई एक पद चणदा में पाए जाते हैं:—

शशिमुखि छोड़ल शैशव देहे
खतदेइ तेजल त्रिवलि तिन रेहे।
अब यौवन भेल वंकिम दिठ
उपजल लाज हास भेल मिठ ॥

(३) विद्यापति कहे कर अवधान।
बाला अंगे लागल पाँचवान ॥

पद्मामृत समुद्र का पाठान्तर (४) नाहि
(२) धैरज कर पिछे मिलायब आन ॥

शब्दार्थ—अङ्कुर—कुच का अङ्कुर ; उतपत्ति—उत्पत्ति; आँचर—आंचल; रोपल—रोपण किया; थापय—स्थापन करती है।

अनुवाद—उरजांकुर की कुछ कुछ उत्पत्ति हुई, चरणों की चपल गति नयनों ने ले ली। अब सभी समय हाथ आंचल में ही रहता है—लज्जा के कारण सखियों से बात पूछती नहीं। हे माधव, वयः सन्धि (की बात) क्या कहें, देखकर मनसिज का मन भी बँध जाता है। तथापि काम ने हृदय में उच्च स्थान देख कर घट स्थापित कर दिया। जिस प्रकार हरिणी संगीत सुनती है, उसी प्रकार वह रस की बात सुन कर मन स्थिर करके (वह बात) सुनती है। शैशव और यौवन में विवाद उपस्थित हुआ, कोई जय या पराजय नहीं मानता। विद्यापति कौतुक की बलिहारी हैं; शैशव शरीर को छोड़ नहीं सकता।

(६२०)

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
सवननक पथ दुहु लोचन लेल॥
वचनक चातुरि लहु लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास॥
मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि पूछइ कइसे सुरत-विहार॥

निरजन उरज हेरइ कत वेरि।
हसइ से अपन पयोधर हेरि॥
पहिल वदरि सम पुन नवरंग।
दिन दिन अनंग अगोरल अंग॥
माधव पेखल अपुरुब वाला।
सैसव जौवन दुहु एक भेला॥

विद्यापति कह तुहु अगेआनि।
दुहु एक जोग इह के कह सयानि॥

प० त० ८२ ; सा० मि० १ ; न० गु० ६ ; कीर्त्तनानन्द २३२

शब्दार्थ—सवनक पथ दुहु लोचन लेल—दोनों आँखों ने कानों का रास्ता लिया (दृष्टि कानों की ओर जाने लगी ; अपांगदृष्टि वा कटाक्ष आरम्भ हुआ) ; सिंगार—शृंगार ; उरज—कुच ; अगोरल—अगोरने लगा।

अनुवाद—शैशव यौवन दोनों मिल गए। दोनों नयन कानों की ओर जाने लगे अर्थात् आँखों में कटाक्ष का आरम्भ हुआ। वचन की चातुरी लघु हँसी में परिणत हुई। धरणी पर चन्द्रमा प्रकाशित हुआ। मुकुर लेकर अब शृंगार करना आरम्भ कर दिया—सखी से पूछने लगी कि सुरत-विहार कैसा होता है। निर्जन में कितनी बार पयोधर देखती है, अपना पयोधर देखकर हँसती है। पहले वदरि (बैर) के समान, पीछे नौरंगी के समान (दिखायी पड़ा), दिन-दिन मदन अंग अगोरने लगा। माधव, अपरूप बाला देखा (उसमें) शैशव-यौवन दोनों एक हो गए। विद्यापति कहते हैं, तुम अज्ञानी हो, दोनों का एक योग, इसको किशोरी कहते हैं। अथवा कौन बुद्धिमती कहती है कि ये दोनों एक संग होते हैं?

(६२१)

सैसव जौबन दरसन भेल।
दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल॥
मदन किताव पलि परचार।
भिन जने देयल भिन अधिकार॥
कटिक गौरव पाओल नितम्ब।
इन्हिके खीन उन्के अवलम्ब॥
प्रकट हास अव गोपत भेल।
बरण प्रकट फेर उन्हके नेल॥
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचनके धैरज पदतले जाव॥
नव कवि सेखर कि कहिते पार।
भिन भिन राज भीन वेवहार॥

प० त० १०६, न० गु० ९

अनुवाद—शैशव और यौवन के दर्शन हुए। मदन दोनों के (शैशव और यौवन के) पथ वा रीतिनीति को देखने लगा। (इन दोनों में किसको क्या अधिकार दिया जाए, यह देखने लगा, परन्तु स्थिर न कर सका)। पहले ही मदन का कर्तृत्व प्रचारित हुआ—भिन्न जन को भिन्न अधिकार दिया गया। कटि का गौरव या स्थिरता नितम्ब ने प्राप्त की—एक की (नितम्ब की) क्षीणता दूसरे का (कटि का) अवलम्ब हुआ। प्रगट हँसी अब गुप्त हुई—किन्तु वर्ण ने उसकी प्रकटता ग्रहण की अर्थात् यौवन के आविर्भाव से नायिका का वर्ण अधिक समुज्ज्वल हुआ। चरण की चपल गति लोचन ने ले ली। लोचन का धैर्य पदतले चला गया। नव कवि शेखर (विद्यापति) क्या कह सकें, भिन्न भिन्न व्यवहार (हैं)।

तुलनीय :—मध्यस्य प्रथिमानमेति जघनं वक्षोजयोर्मन्दता
दूरं यात्युदरंच रोमलतिका नेत्रार्जवं धावति।
कन्दर्पः परिवीक्ष्य नूतनमनोराज्यभिषिक्तं चणा—
दंगानीव परस्परं विदधते निर्लुण्ठनं सुभ्रुवः॥
साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद॥

---

६२१ पाठान्तर—पदकल्पतरु की किसी किसी पोथी में 'मदन किताव' के स्थल पर 'मदनकि भाव' और 'मदनकि राज' पाठ है। सतीशचन्द्र राय महाशय ने 'किताव' पाठ को ही शुद्ध कह कर अभिमत प्रकाश किया है। कार्यकाल (incumbency) अर्थ में फारसी भाषा में 'किताबत्' शब्द व्यवहृत होता है।

सतीशचन्द्र राय महाशय लिखते हैं—हमलोगों द्वारा आलोचित पदकल्पतरु की क, ख, ग, घ और च ये पाँच हस्तलिखित पोथियाँ है एवं 'पदरत्नाकर' और 'पदरत्न सार' पोथियों में कहीं भी 'मदनक भाव पाठ नहीं है।" "नगेन्द्र बाबू ने 'इन्हके' और 'उन्हि' की जगह यथाक्रम 'एकक' और 'अओके' पाठ रखा है। परन्तु ये दोनों पाठ अप्रामाणिक और हिन्दी मथिली भाषा में अप्रयुक्त हैं।" (श्री सोनार गौरांग, १३३३ कार्त्तिक, पृ० २३१—२३२)।

(६२२)

ना रहे गुरुजन माझे।
बेकत अंग न झँपाये लाजे[१] ॥
बाला सञे जब रहइ[२]।
तरुणि पाइ परिहास तँहि करइ ॥
माधव तुअ लागि भेटल रमनी।
को कहे बाला को कहे तरुनी[३] ॥
केकिल रभस जब सुने।
अनतए[४] हेरि ततहि दए काने[७]।
इथे केइ कर परचारी[५]।
काँदन माखी हासि देइ गारी ॥
सुकवि विद्यापति भाने।
बाला-चरित रसिक जन[६] जाने ॥

प० स० पृ० ३० ; प० त० १०५ ; च्णदा पृ० १३ कीर्त्तनानन्द २२८ ; सा० मि० ४ ; न० गु० २०

अनुवाद—गुरुजनों के बीच च्ण भर भी नहीं रहती। अंग व्यक्त होने पर लज्जा से नहीं ढाकती। (अधिक लज्जा होती ही नहीं, इसलिए)। बालिकाओं के संग रहने पर यदि किसी तरुणी से मिलती है तो उससे परिहास करती है। माधव, तुम्हारे लिए रमणी देखी, कोई (उसको) बालिका कहता है, कोई तरुणी केलि-रहस्य जब सुनती है दूसरी लड़कियों को बातचीत करते सुनती है) अन्य दिशा में देखती हुई उसी ओर कान किए रहती है। यदि कोई इसे प्रकाश (ठट्टा) करे, तो रोना और हँसना मिला कर गाली देती है। सुकवि विद्यापति कहते हैं, बाला का व्यवहार (किशोरी का स्वभाव) रसिक जन जानते हैं।

(६२३)

पहिल बदरि कुच पुन नवरंग।
दिने दिने बाढ़य पिड़ए अनंग ॥
से पुन भए गेल बीजक पोर।
अब कुच बाढ़ल सिरिफल जोर ॥
माधव पेखल रमनि सन्धान।
घाटहि भेटल करत सिनान ॥
तनु सुख वसन हिरदय लागि।
जे पुरुख देखब तेकर भागि ॥
उर हिल्लोलित चाँचर केस।
चामर झाँपल कनक महेस ॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
सुपुरुख विलसय से वरनारि ॥

कीर्त्तनानन्द २२३ ; न० गु० ५

---

६२२ पदामृत समुद्र का *पाठान्तर*—(१) बेकत अंग ना झापाओइ लाजे (२) बालिक संगे जब रहइ (३) को कहुँ बाला को कहुँ तरुणी (४) आनहि (पदकल्पतरु की अपेक्षा यह पाठ अच्छा है) (५) इथे जदि कोइ करइ परचारी (६) पुन

च्णदा का *पाठान्तर*—(१) बेकत अंग न ढाकए लाजे (२) बाला जन सञे बासे
तरुनि पाइ तहि परिहासे ॥
माधव पेखलु रमणी
को कहु बाला को कहु तरुणी ॥
(७) पुन हिहेरि तहि देइ काने (५) इथे जदि कोइ धारये परचारी।

६२३ *मन्तव्य*—मुद्रित कीर्त्तनानन्द की पोथी में अनेकों भूल रहने के कारण नगेन्द्र बाबू का संशोधित पाठ दिया गया है। नगेन्द्र बाबू ने इस पद का आकर अज्ञात लिखा है।

अनुवाद—पयोधर पहले बदरि फल के समान था, फिर नौरंगी के समान दिनों-दिन बढ़ने लगा। अनंग उसको पीड़ा देने लगा। फिर वह बीजपूर के समान हो गया। अब कुच बढ़ कर बेल के समान हो गया। माधव, रमणी का (कटाक्ष) सन्धान देखा। घाट पर स्नान करती हुई (उस) का साक्षात् पाया। (उसका) शरीर कोमल, (आर्द्र) वस्त्र (वक्ष) हृदय में लग कर सट गया, जो पुरुष (इसे) देखे, उसका भाग्य है। (उसके) चाँचर (भीगे) केश वक्ष पर हिल रहे हैं, मानों स्वर्ण-शम्भु (पयोधर) चवँर द्वारा आवृत हुए हैं। विद्यापति कहते हैं, मुरारि, श्रवण करो, सुपुरुष वैसी ही श्रेष्ठ नारी से (के साथ) विलास करते हैं।

(६२४)

किए मझु दिठि पड़लि ससिवयना।
निमिख निवारि रहल दुहु नयना॥
दारुन बंक-विलोकन थोर।
काल होय किए उपजल मोर॥
मानस रहल पयोधर लागि।
अन्तरे रहल मनोभव जागि॥
सवन रहल अछ सुनइत राव।
चलइत चाहि चरन नहि जाव॥
आसा-पास न तेजइ संग।
विद्यापति कह प्रेम-तरंग॥

प० त० १६४; कीर्त्तनानन्द १८०: सा० मि० ८; न० गु० ४२

अनुवाद—शशि वदना न जाने कैसे मेरी दृष्टि में पड़ी; (मेरे) दोनों नयन निमेष निरोध कर अर्थात् पलक गिराना भी भूल कर (उसके अंग में) लगे रह गए। दारुण ईषद् वक्रदृष्टि क्या मेरा काल (स्वरूप, होकर जन्मी थी? पयोधर के (स्पर्श के) लिए मन लगा रहा, अन्तर में मदन जागा। कान बातें सुनने के लिए रह गए, मैं जाना चाहता हूँ, चरण चलना ही नहीं चाहते। आशा का पाश संग नहीं छोड़ता। विद्यापति कहते हैं (यही) प्रेम तरंग (है)।

(६२५)

जहाँ जहाँ पद-जुग धरई।
तहि तहि सरोरुह भरई॥
जहाँ जहाँ झलकत अंग।
तहि तहि बिजुरि-तरंग॥
कि हेरल अपरुब गोरि।
पइठल हिय माँह मोरि॥
जहाँ जहाँ नयन-विकास।
तहि तहि कमल-परकास॥
जहाँ लहु हास-सञ्चार।
तहिँ तहि अमिय-विथार॥
जहाँ जहाँ कुटिल कटाख।
ततहि मदन-सर लाख॥
हेरइत से धनि थोर।
अब तिन भुवन अगोर॥
पुनु किए दरसन पाव।
तब मोहे इह दुख जाव॥
विद्यापति कह जानि।
तुअ गुने दैयव आनि॥

प० स० पृ० ३४; संकीर्त्तनामृत २७, कीर्त्तनानन्द २१८; न० गु० ४८

---

६२४ कीर्त्तनानन्द (१८०)—शेष चरण में विद्यापति के नाम के बदले हैं—'अनायत कयल हामारि सब अंग'।

शब्दार्थ—धरई—रखती है ; पइठल—प्रवेश किया ; हिय माँह मोरि—मेरे हृदय में ; विथार—विस्तार ।

अनुवाद—जहाँ-जहाँ उसके पैर पड़ते हैं, वहाँ वहाँ मानों कमल भर जाते हैं। जहाँ जहाँ उसके शरीर की ज्योति झलक पड़ती है, वहाँ वहाँ मानों बिजली की तरंग उठ जाती है। कितनी अपूर्व सुन्दरी को देखा, उसने मानों मेरे हृदय में प्रवेश किया। उसकी दृष्टि जहाँ-जहाँ पड़ती है, वहाँ वहाँ मानों कमल फूट पड़ते हैं। जहाँ उसके लघु हास्य का संचार होता है, वहाँ मानों अमृत ढल जाता है। जहाँ जहाँ कुटिल कटाक्ष पड़ता है, वहाँ वहाँ मानों मदन के लाखों बाण लग जाते हैं। उस सुन्दरी को थोड़ा देखा, वही त्रिभुवन में अब भरी मालूम होती है (और कुछ भी नहीं देख पाता)। यदि फिर उसको देख सकूँ तब ही मेरा यह दुख जा सकता है। विद्यापति कहते हैं मैं जानता हूँ, तुम्हारे गुण से (मुग्ध होकर) इसको ला दूँगा।

(६२६)

कबरी-भये चामरी गिरि-कन्दरे
मुख-भये चान्द अकासे।
हरिनि नयन-भये स्वर-भये कोकिल
गति भये गज बनबासे॥
सुन्दरि काहे मोहे सम्भासि न यासि।
तुअ डरे इह सब दूरहि पलाएल
तुहुँ पुनु काहि डरासि॥

कुच-भय कमल-कोरक जले मुदिरहु
घट परवेसे हुतासे।
दाड़िम सिरिफल गगने बास करू
सम्भु गरल करु आसे॥
भुज-भये कनक मृणाल पंके रहु
कर-भये किसलय काँपे।
विद्यापति कह कत कत ऐसन
कहब मदन परतापे॥

प० त० १३२८ ; सा० मि० ३१: न० गु० ११८

अनुवाद—तुम्हारी कबरी (केश) के भय से चामरी पर्वत की गुहा में, मुख के भय से चाँद आकाश में, नयन के भय से हरिण, (कंठ) स्वर के भय से कोकिल, और गति के भय से गज बन में वास करते हैं। सुन्दरि, मुझ से सम्भाषण करके क्यों नहीं जाती हो? तुम्हारे भय से ये सब दूर भाग गये हैं, तुम्हे अब किसको भय है अर्थात् किसके डर से तुम मुझसे बातें नहीं कर जाती हो? कुच के भय से कमल के कोरक जल में बन्द पड़े रहते हैं, घड़ा आग में प्रवेश करता है, दाड़िम्ब और श्रीफल आकश में रहते हैं और शम्भु ने विषपान कर लिया (कुच के साथ पद्मकली, घट, अनार, बेल और शिवलिंग की उपमा है)। बाहु के भय से मृणाल कीचड़ में छिप गया, हांथ के डर से पल्लव काँपने लगा, विद्यापति कहते हैं, इस प्रकार के मदन का प्रताप कितना कहें?

(६२७)

पथ-गति पेखनु मो राधा।
तखनुक भाव परान परिपीड़लि
रहल कुमुदनिधि साधा॥

ननुआ नयन नलिनि जनु अनुपम
बंक निहारइ थोरा।
जनि सृङ्खल में खगवर बाँधल
दीठि नुकाएल मोरा॥
आध वदन-ससि विहसि देखाओलि
आध पीहलि निअ बाहू।
किछु एक भाग बलाहक झाँपल
किछुक गरासल राहू॥

कर-जुग पिहित पयोधर-अंचल
चंचल देखि चित भेला।
हेम-कमलन जनि अरुनित चंचल
मिहिर-तर निंद गेला॥
भनइ विद्यापति सुनइ मथुरपति
इह रस के पए बाधा।
हास दरस रस सबहु बुझाएल
नाल कमल दुइ आधा॥

कीर्त्तनानन्द १९७; न० गु० ४३

अनुवाद—मैंने रास्ते में जाती हुई राधा को देखा, उस समय के भाव ने प्राणों को पीड़ा पहुँचाई, कुमुद के सर्वस्व अर्थात् चन्द्र की (मुखचन्द्र) साध रह गयी। कमलिनी के समान अनुपम सुन्दर नयनों से वक्र दृष्टि करके थोड़ा (उसने) देखा। मानो पक्षिश्रेष्ठ (खंजन) ने दृष्टि को शृंखलाबद्ध करके दृष्टि छिपा ली (अर्थात् मेरी ओर कटाक्षपात कर दृष्टि छिपा ली)। (उसने) मृदु हँसी हँस कर अर्ध-वदनचन्द्र दिखाया और आधा अपनी बाँह से ढाँक लिया। (उससे) एक भाग में कुछ मेघों ने (नीलाम्बर) ढाँक लिया (एवं) कुछ राहु (केश) ने ग्रास किया। अंचल से ढँके हुए पयोधरों पर करयुग देख कर चित्त चंचल हुआ। मानों स्वर्णपद्म (पयोधर) चंचल रक्तिम सूर्य के नीचे (कर तले) सो गया। [दोनों हाथों द्वारा आवृत स्तन का तटभाग देख कर चित्त चंचल हो गया है, मानों सोना के कमल (स्तनद्वय) लालिमायुक्त चंचल सूर्य के नीचे (रक्तिम कर तले) सोये हुए हों]। विद्यापति कहते हैं, हे मथुरापति (श्रीकृष्ण) सुनो, तुम्हारे इस रस में कौन बाधा देगा? (तुम दोनों के परस्पर के) हास्य और दर्शन के रस से सब समझ गये कि (तुम्हारे हाथरूपी) मृणाल और (उनके कुच रूपी) कमल (ये) दोनों (एक ही पदार्थ के) दो भाग हैं अर्थात् उनके पयोधरों के लिए तुम्हारे हाथ उपयुक्त हैं।

६२७—कीर्त्तनानन्द के छपे पाठ में अनेक भूल हैं, अतएव न० गु० का संशोधित पाठ लिया गया है।

(६२८)

गेलि कामिनि गजहु गामिनि
बिहसि पलटि[१] नेहारि।
इन्द्रजालक कुसुम-सायक
कुहकि भेलि वर नारि॥

जोरि भुजयुग मोरि बेढ़ल
ततहि वदन सुछन्द[२]।
दाम-चम्पक[३] काम पूजल
जइसे सारद चन्द॥

उरहि अंचल झाँपि चंचल
आध पयोधर हेरु।
पवन पराभव सरद-घन जनु[४]
वेकत कएल सुमेरु॥

पुनहि दरसन[५] जीव[६] जुड़ाएब
टुटब विरहक ओर।
चरन[७] जावक हृदय पावक
दहइ सब अंग मोर॥
भन विद्यापति सुनह जदुपति[८]
चित थिर नहि होय।
से जे रमनि परम गुनमनि
पुनु किए मिलब तोय[९]॥

क्षणदा० पृः ४३५; प० त० ५७; कीर्त्तनानन्द १७६: सा० मि० ६; न० गु० ५१

अनुवाद—गजगामिनी कामिनी थोड़ा हँस कर पलट कर देख कर चली गयी। वह वराङ्गना मानों इन्द्रजाल विद्या से पारदर्शी पुष्पशर कन्दर्प का कुहक (भबकी) हुई। उसने भुजयुग मोड़ कर अपना मुख सुन्दर रूप से ढाँका, मानों मदन ने चम्पकदल द्वारा (चम्पा की कली के समान उँगलियों से) शायद चन्द्रमा (मुख) की पूजा की हो। चंचल भाव से अंचल देकर वक्ष ढाकती हुई सुन्दरी का आधा पयोधर मैंने देखा। मानों पवन द्वारा पराभूत शरत्कालीन (नील) मेघ ने स्वर्णमय सुमेरु पर्वत को प्रकाशित कर दिया हो (अर्थात् शरत के नील मेघ के समान साड़ी हवा से हट गयी तो सुमेरु तुल्य पयोधर दीख पड़े)। फिर देखने से ही जीवन जुड़ाएगा, विरह में (इसका) अन्त हो जायगा। उसके चरणों का आलता मेरे हृदय की अग्निशिखा के समान हुआ; उसने मेरा सारा अंग जला दिया। विद्यापति कहते हैं, हे यदुपति, सुनो, यह सोच कर मेरा चित्त स्थिर नहीं हो रहा है कि तुम फिर उस गुणान्विता रमणी को देख सकोगे अथवा नहीं।

६२८—क्षणदा का *पाठान्तर*—(१) पालटि (२) तबहु बयान सुछन्द (३) दाम-चम्पके (४) पवन-पराभवे सारद-घन-जनु (५) दरशने (६) जीवन (७) चरणे (८) भनये विद्यापति सुनह युवती (९) मोय।

(६२६)

सजनि, अपुरुब पेखल[1] रामा।
कनक-लता अवलम्बन ऊअल
हरिन-हीन हिमधामा॥
नयन नलिनि दओ अञ्जने रञ्जइ[5]
भौंह[6] विभंग[7] विलासा।
चकित चकोर-जोर विधि बान्धल
केवल काजर पासा॥

गिरिवर-गरुअ पयोधर-परसित
गिम गज-मोतिक-हारा[3]।
काम-कम्बु भरि-कनक-सम्भु परि
ढारत[4] सुरधुनि-धारा॥
पयसि पयागे जाग सत जागइ
सोइ पावए बहुभागी॥
विद्यापति कह गोकुल-नायक
गोपीजन अनुरागी।

क्षणदा पृ० ४०६ ; प० स० ३५ ; प० त० ५१ ; कीर्त्तनानन्द १७७, सा० मि० ७ ; न० गु० ३६

शब्दार्थ—कनक-लता—राधा का शरीर स्वर्णलता के समान था ; हरिन-हीन—चाँद के बीच में हरिण के रूप का कलंक है राधा के मुख में वह कलंक नहीं है ; हिमधामा—चन्द्र ; पासा—पाश ; गरुअ—गुरु ; पयागे—प्रयाग में ; जाग सत जागइ—सौ यज्ञ किये।

अनुवाद—सजनि अपरूप रमणी को देखा। कनकलता का अवलम्बन करके निष्कलंक चन्द्रमा उदित हुआ। नयन-कमल को अंजन से रंजित करके उसके भ्रू का विभ्रम विलास (हुआ)। चकित चकोर-युगल (नेत्र) को विधि ने केवल कज्जल (रूपी) पाश में बाँधा। कण्ठ का मुक्ताहार गिरिवर तुल्य गुरु पयोधरों का स्पर्श कर रहा है, (मानों) मदन कम्बु (कण्ठ) भर के स्वर्ण शम्भु (पयोधरों) पर गंगा की जलधारा (मुक्ताहार ढाल रहा हो)। जो प्रयागतीर्थ में सौ यज्ञों का उद्यापन करता है वही भाग्यवान पुरुष ऐसी रमणी को पाता है। विद्यापति कहते हैं कि गोकुलनायक गोपीजन के अनुरागी हैं।

---

६२६ क्षणदा का *पाठान्तर*—(१) पेखलु (२) अवलम्बने (३) गिरिजुग कनक पयोध-उपर
गिमको गजमोति हारा।
(४) ढारइ (५) रंजित (६) भाँग (७) चकोर जोरे।

क्षणदा गीत चिन्तामणि में "चकित चकोर...पासा" के बाद है—

प्रथम वयस धनि मुनि-मन मोहिनी गजवर जिनि गति मन्दा।
सिन्दुर-तिलक भानु तड़ित लताजनु उइल पुनिमीको चन्दा॥

(६३०)

सजनी भल कए पेखल न भेल।
मेघ-माल सयँ तड़ित-लता जनि
हिरदये सेल दई गेल॥
आध आँचर खसि आध वदन हसि
आधहि नयन-तरङ्ग।
आध उरज हेरि आध आँचर भरि
तबधरि दगधे अनंग॥

एक तनु गोरा कनक-कटोरा
अतनु काँचला उपाम।
हारल हरल मन जनि बुझि ऐसन
फाँस पसारल काम॥
दसन मुकुता-पाँति अधर मिलायल
मृदु मृदु कहतहिँ भासा।
विद्यापति कह अतए से दुख रह
हेरि हेरि न पुरल आसा॥

प० त० १६४ ; कीर्त्तनानन्द १८१ ; सा० मि० ११ ; न० गु० ३१

शब्दार्थ—अतनु (तनु—क्षीण) स्थूल ; अतए—इसीलिए।

अनुवाद—हे सजनि, ठीक से देखना नहीं हुआ, मेघ-माला (नीलवसन) के संग मानों विद्युल्लता (राधा का रूप) हृदय को साल गयी। आधा अंचल खिसक कर गिर पड़ा, मुख पर आधी हँसी, आधी नयन-तरंग। अंचल से आधा ढके हुए आधा पयोधर देखा। उसी समय से अनंग (मुझे) दग्ध कर रहा है। एक तो शरीर गौरवर्ण, स्थूल काँचुलि सोना के कटोरा के समान। हार ने मन हरण किया मानों काम ने (हार रूपी) पाश फैलाया हो। मुक्तापंक्ति दशन अधर में मिला रही है, मृदु मृदु बातें कर रही है। विद्यापति कहते हैं, यही दुख रह गया कि देखते रहने पर भी आशा पूरी नहीं हुई।

(६३१)

नाहि उठल, तिरे से धनि राइ।
मधु मुख सुन्दरि अवनत चाइ॥
ए सखि पेखल अपुरुब गोरि।
बल करि चीत चोरायल मोरि॥
एकलि चललि धनि होइ आगुआन।
उमड़ि कहइ सखि करह पयान॥

किए धनि रागि विरागिनि होय।
आस निरास दगध तनु मोय॥
कैसे मिलब हमे से धनि अबला।
चीत नयन मझु दुहु तोहे रहला।
विद्यापति कह सुनह मुरारि।
धैरज करह मिलब वर नारि॥

प० त० २११, कीर्त्तनानन्द २१२ः सा० मि० १५ः न० गु० ४१

अनुवाद—सुन्दरी राधिका नहा कर तीर पर उठी। अवनत (मुख से) सुन्दरी ने मेरे मुख की ओर देखा। हे सखि, अपूर्व सुन्दरी को देखा—(वह) बल-पूर्वक मेरा चित्त चुरा कर ले गयी। अकेली सुन्दरी आगे की ओर चली घूम कर (सखी से) बोली, सखि प्रयाण करो (चलो आवो-मुख फिरा कर पुकारने के बहाने श्री कृष्ण को देख लिया)। क्या जाने सुन्दरी मेरे प्रति अनुरक्त है अथवा विरक्त, आशा-निराशा में मेरा शरीर दग्ध हो रहा है। किसी

प्रकार मैं उन अबला सुन्दरी को पकड़ूँगा ? मेरे चित्त और नयन दोनों उसमें लगे हुए हैं। विद्यापति कहते हैं, मुरारि सुनो, धैर्य धारण करके रहो, रमणीश्रेष्ठ मिलेगी।

(६३२)

आजु मझु शुभ दिन भेला।
कामिनि पेखलु सिनानक बेला॥
चिकुर गलये जलधारा।
मेह बरखये जनु मोतिमहारा॥
वदन मोछल परचूर।
बाजि धएल जनु कनक-मुकुर॥
तेइ उदसल कुच-जोरा।
पलटि बेसाओल कनक-कटोरा॥
नीवि-बन्ध करल उदेस।
विद्यापति कह मनोरथ सेस॥

प० त० २०६; कीर्त्तनानन्द २१०; सा० मि० १४: न० गु० ३८

अनुवाद—आज मेरा शुभ दिन है स्नान के समय सुन्दरी को देखा। चिकुर से बह कर जलधारा गिर रही है, मानों मेघ मुक्ताहार की वर्षा कर रहा हो। मुख को खूब पोंछा मानों कनकमुकुर माँज कर रखा गया हो। उससे कुच-युगल उदित हुए, मानों सोना का कटोरा उलट कर रखा गया हो। नीविबन्ध अर्थात् कटिवसन की ग्रन्थि का उद्देश किया अर्थात् यह देखा कि ठीक है अथवा नहीं। विद्यापति कहते हैं कि इससे नायक की आकांक्षा चरम सीमा पर पहुंच गयी। ("नायक को यह आशा नहीं थी कि वह नाभिमूल के दर्शन कर सकेगा किन्तु उसके ढीले कटि-वसन की ग्रन्थि बाँधने के समय उसकी वह आशा भी पूरी हो गयी।

(६३३)

याइते पेखलुँ नाहलि गोरि।
कति सयँ रूप धनि आनलि चोरि॥
केश निंगाड़िते बहे जलधारा।
चामरे गलये जनि मोतिमहारा॥
अलकहि तीतल तँहि अति सोभा।
अलिकुल कमल बेढ़ल मुख लोभा॥
नीरे निरंजन लोचन राता।
सिन्दुर मण्डित जनि पंकज-पाता॥
सजल चीर रह पयोधर सीमा।
कनक बेले जनि पड़ि गेओ हीमा॥
तूल कि कहइते चाहे के देहा।
अबहुँ छोड़बि मोहे तेजबि लेहा॥
ऐछे फेरि रस ना पाओब आर।
इथे लागि राइ गलये जलधार॥
विद्यापति कह सुनह मुरारि।
बसने लागल भाव रूप नेहारि॥

प० त० २०८; कीर्त्तनानन्द २०६; सा० मि० १२; न० गु० ३६

अनुवाद—जाते हुए देखा कि सुन्दरी ने स्नान किया है, कहाँ से सुन्दरी रूप चोरी करके लायी हैं ? केश निचोड़ रही है, जलधारा बह रही है, मानों चामर से मुक्ताहार झर रहा हो। भींगे हुए अलक बड़े ही सुन्दर हैं, मानों

पाठान्तर—पं०— बसनेर भाव ओ रूप नेहारि

मधुलुब्ध भ्रमर कमल को घेरे हुए हैं। जल लगने से चक्षु रक्तवर्ण और अंजन शून्य हो गए हैं - मानों पद्मपत्र सिन्दूर से मण्डित हो गया हो। पयोधर के प्रान्त में भींगा वस्त्र सट गया है, मानों सोना के विम्बफल पर तुषारपात हुआ हो (अतिशयोक्ति अलंकार- वस्त्र पर तुषार का और स्तन पर विम्बफल का आरोप हुआ है)। क्या कोई (अपने) शरीर को (पूर्वचरण में वर्णित सजल वसन के) समान करना चाहता है? 'अब मेरा परित्याग करेगी, मेरे प्रति स्नेह का त्याग करेगी, अब ऐसा आनन्द नहीं पाऊँगा" ऐसा सोच कर नायिका का वस्त्र रो रहा है, इसीसे उससे जलधारा वह रही है। विद्यापति कहते हैं, मुरारी सुनो, ऐसा रूप देख कर क्या तुम्हें वस्त्र का भाव प्राप्त करने की इच्छा होती है?

(६३४)

रामा हे सपथ करहुँ तोर।
से जे गुनवती गुन गनि गनि
न जान कि गति मोर॥
से सब सुमरि दहइ मदन
हृदय लागल धन्ध।
ताहि बिनु हम जीवन मनिअ
मरन अधिक मन्द॥

सगर रजनि रोइ गमाओल
सघन तेज निसास।
नयने नयने पुनि कि मिलब
पुनु कि पुरब आस॥
भनइ विद्यापति सुनह नागर
चिते न मानह आन।
दिवस थोर रहि मिलब नागरि
मने गुनि इह जान॥

न० गु० ७६० ; (कीर्त्तनानन्द), किन्तु मुद्रित कीर्त्तनानन्द में यह पद पाया नहीं जाता।

अनुवाद- हे रामा, तुम्हारी शपथ करता हूँ। उस गुणवती का गुण अनुभव कर-करके मेरी क्या अवस्था (गति) हो गयी है, वह तुम नहीं जानती। हृदय में संशय जाग रहा है; उसको न पाने से मुझे जीवन मरण से भी अधिक बुरा मालूम पड़ता है। सारी रात (मैंने) रोकर काटी है, सघन निश्वास छोड़ता हूँ। अब क्या फिर नयनों से नयनों का मिलन होगा? मेरी आशा क्या फिर पूर्ण होगी? विद्यापति कहते हैं, हे नागर, मन में कुछ अन्य मत समझना, तुम इस बात को निश्चय समझो कि कुछ ही दिनों में नागरी के साथ (तुम्हारा) मिलन होगा।

(६३५)

कि कहब हे सखि कानुक रूप।
के पतियायब सपन सरूप॥
अभिनव जलधर सुन्दर देह।
पीत वसन परा सौदामिनि रेह॥

सामर झामर कुटिलहि केस।
काजरे साजल मदन सुवेस॥
जातकि केतकि कुसुम सुवास।
फुल सर मनमथ तेजल तरास॥

विद्यापति कह की कहब आर।
सुन करलि विहि मदन भंडार॥

अज्ञात, सा० मि० १८, न० गु० ४७

अनुवाद—हे सखि, कानु का रूप क्या कहें ? स्वप्न का स्वरूप (स्वप्न में जो रूप देखा था उस रूप) का कौन विश्वास करेगा ? (उसका) शरीर अभिनव जलधर के समान सुन्दर (एवं) सौदामिनी की रेखा के समान (विद्युत-रेखावत् उज्ज्वल) पीतवसन परिहित। (उसका) केश कृष्णवर्ण और कुंचित, मानों सुवेश मदन ने काजल सजाया (अर्थात् काजल लगाया)। (श्रीकृष्ण के अङ्ग से निकलते हुए) जातकी केतकी फूलों के सुगंध से मन्मथ ने डर के मारे फूल शर का त्याग किया। विद्यापति कहते हैं, और क्या कहें ? (श्रीकृष्ण की सज्जा के लिए) विधि ने मदन का भंडार खाली कर दिया (अर्थात् मदनमोहन श्रीकृष्ण को देख कर मदन पराभूत हो गया)।

(६३६)

ए सखि पेखलि एक अपुरूप[1]।
सुनइत मानबि सपन-सरूप ॥
कमल-जुगल पर चाँदक माल।
तापल उपजल तरून तमाल ॥
तापर बेढ़लि बिजुरि-लता[2]।
कालिन्दि तीर धीर चलि[3] जाता ॥
साखा-सिखर सुधाकर पाँति।
ताहि[4] नव-पल्लव अरुनक भाँति ॥
विमल बिम्बफल जुगल विकास।
तापर कीर थीर करू वास[5] ॥
तापर चंचल खञ्जन-जोर।
तापर सापिनि झाँपल मोर ॥
ए सखि रंगिनि कहल निसान[6]।
हेरइत पुनि हमे हरल गिआन ॥
कवि विद्यापति एह रस भान।
सुपुरुख मरम तुहु भल जान ॥

क्षणदा पृ० ६३ ; सा० मि० २० ; न० गु० ५६

शब्दार्थ—मानबि—सम्भोगी ; माल—माला ; साखा—शाखा ; मोर—मयूर।

अनुवाद—हे सखि, एक अपरूप (दृश्य) देखा ; सुन कर सम्भोगी कि सपना है। कमल युगल पर (चरणद्वय) पर चाँद की माला (नखपँक्ति), उसके ऊपर तरुण तमाल वृक्ष (उरू) उत्पन्न हुआ। उसके ऊपर विद्युल्लता (पीतधटी) लिपटी हुई थी ; (एवं वह) धीरे धीरे कालिन्दी तीर पर चला रहा है। शाखाशिखर पर (हस्तंगुलियों) चन्द्रश्रेणी (नखपंक्ति) ; उस पर अरुण के समान नव पल्लव (करतल)। विमल बिम्बफल युगल (ओष्ठाधर) का विकास (हो रहा है) ; उसके ऊपर शुकपक्षी (शुकपक्षी के चञ्चु के समान नासा) स्थिर होकर वास कर रहा है। उसके ऊपर खंजन युगल (चक्षुद्वय), उसके ऊपर मयूर (मयूरपुच्छ) सापिनी को (चूड़ाबद्ध केश को) आच्छादित किए हुए है। हे रंगिणि सखि, तुमको यह संकेत किया ; फिर देख कर मेरे ज्ञान का हरण हो गया। विद्यापति कवि इस रस का वर्णन करते हैं। सुपुरुष का मर्म तुम खूब जानती हो।

---

६३६ क्षणदा की मुद्रित पोथी का *पाठान्तर*—(१) ए सखि कि पेखलि एक अपरुप (२) तापर बेढ़ल बिजुरिक-लता (३) चलु (४) ताहे (५) आश (६) कहलु निदान (७) भनइ।

(६३७)

पासरिते सरीर होये अवसान।
कहइत न लय अब बुझह अवधान॥
कहइ न पारिअ सहन न जाय।
बलह सजनि अब कि करि उपाय॥
कोन बिहि निरमिल रह पुन नेह।
काहे कुलवति करि गढ़ल मोर देह॥
काम करे धरिया से कराय बाहार।
राखए मन्दिरे ए कुल आचार॥
सहई न पारिअ चलइ न पारि।
घन फिरि जैसे पिञ्जर माहा सारि॥
एतहुँ विपदे किए जीवए देह।
भनइ विद्यापति विसम ए नेह॥

प० त० ६४६ सा० मि० ४७ ; न० गु० २७८

शब्दार्थ—रचह उपाय —उपाय स्थिर करो; नेह—स्नेह; माहा—मध्य में।

अनुवाद—उसको भूलने से शरीर का अवसान हो जाता है, कह नहीं सकती, अब विवेचन करके समझ कर देखो। कहा भी नहीं जाता, सहा भी नहीं जाता, सजनी, कहो, अब क्या उपाय करें। किस विधाता ने इस प्रेम का निर्माण किया, क्यों उसने हमें कुलवती का शरीर दिया। कामदेव हाथ पकड़ कर गृह के बाहर कर देता है, मन्दिर में (घर में) कुलाचार रखता है। सह भी नहीं सकती, चल भी नहीं सकती। पिंजड़े में बन्द मुग्गी के समान अनवरत घूमती रहती हूँ। ऐसी विपद् में क्या कोई शरीर प्राण धारण कर सकता है? विद्यापति कहते हैं—यह प्रेम विषम है।

(६३८)

कानु हेरब छल मन बड़ साध।
कानु हेरइत भेल एत परमाद[1]॥
तबधरि अबुधि मुगुधि हम नारि।
कि कहि कि सुनि किछु बुझए न पारि[2]॥
साओन-घन सम झरु दुनयान[11]।
अविरत धस धस[3] करए परान॥
की[4] लागि सजी दरसन भेल[5]।
रभसे अपन जिउ पर हथ देल[6]॥
ना जानु किए करु मोहन-चोर।
हेरइत प्राण हरि लई गेल मोर[7]॥
अत सब आदर गेओ दरसाइ।
जत विसरिए तत बिसर न जाइ[8]।
विद्यापति कह[9] सुन बरनारि।
धैरज धर चित[10] मिलत मुरारि॥

क्षणदा पृ० ८७; कीर्त्तनानन्द ७४ (प्रथम छ कलियाँ नहीं हैं); सा० मि० १६; न० गु० ६७

६३८ मुद्रित क्षणदा की पोथी का पाठान्तर (१) कानु हेरब करि छिल बहु साध। कानु हेरईते अब भेल परमाद॥
(२) कि करि कि बलि कछु बुझइ ना पारि (११) साङन घन सम ए दुइ नयान।
(३) धक धक (४) काहे (५) भेला (६) बरकी अपन जिउ पर हाते देला
(७) हेरइत प्रान हरिलई गेओ मोरा ना जानिये कि करु मोहन-चोरा। (८) यत बिछुरिए तत बिछुइ न जाइ। (९) कहे (१०) चिते
कीर्त्तनानन्द की भणिता—भणये विद्यापति शुन वरनारी। देखनु तुया लागि आकुल मुरारि।

अनुवाद—मन में बड़ी साध थी कि कानु को देखूँगी। कानु को देखते ही प्रमाद हो गया। उस समय तक मैं अबोध मुग्धा नारी थी—क्या कहूँ, क्या सुनूँ, समझ न सकी। श्रावण के मेघ के समान दोनों नयन झरते हैं, सदा ही प्राण धक् धक् करते रहते हैं। जानें, किस चीज़ के लिए उनके दर्शन हुए। कौतुकवश होकर अपना जीवन दूसरे के हाथ में दे दिया। मोहन चोर (श्रीकृष्ण) ने जाने क्या किया, देखते ही मेरे प्राण चोरी करके ले गया। जितना आदर वह दिखा गया था उस सब को भूलना चाहती हूँ, परन्तु भूल नहीं सकती। विद्यापति कहते हैं, हे नारी-श्रेष्ठ, सुनो, चित्त में धैर्य धरो, मुरारी को पावोगी।

(६३६)

कि कहब रे सखि इह दुख ओर।
बाँसि-निसास-गरले तनु भोर॥
हठ सयँ पइसए स्रवनक माझ।
ताहि खन विगलित तनुमन लाज॥
निपुल पुलक परिपूरए देह।
नयने न हेरि हेरए जनु केह॥

गुरुजन समुखहि भावतरंग।
जतनहि बसन झाँपि सब अंग॥
लहु लहु चरण चलिए गृह माझ।
दइब से विहि आजु राखल लाज॥
तनु मन विवस खसए निवि-बन्ध।
की कहब विद्यापति रहु धन्द॥

प० त० ८३१; सा० मि० २१; न० गु० ६८

अनुवाद—हे सखि, दुख की सीमा क्या कहूँ, बंसी के निश्वासगरल से शरीर विह्वल हो रहा है। बलपूर्वक कानों में प्रवेश कर गया। तब देह और मन से लज्जा विगलित हो गयी। विपुल पुलक से शरीर परिपूर्ण हो गया, कोई देख रहा है कि यह आँख से देख नहीं पाती हूँ। गुरुजनों के सम्मुख ही भावावेश होना है, (तब) वस्त्र द्वारा सकल अंग यत्नपूर्वक आच्छादन करती हूँ। धीरे धीरे गृह में जाती हैं; दैवात् विधि ने आज हमारी लज्जा रखी। देह मन विवश हो रहा है—नीविबन्ध शिथिल हो कर गिर रहा है। विद्यापति कहते हैं, क्या कहूँ. (यह भाव देख कर मन में) सन्देह हो रहा है (कि तुम गम्भीर प्रेम से पड़ गयी हो)।

(६४०)

आज पेखलु धनु तोहारि बड़ाइ।
तुया सम रमनि भुवने आर नाइ॥
कत कत रमनि कानुक संग।
अनुखन करइ तोहारि परसंग॥
हम कहल किछु तोहारि सम्वाद।
चौदिके ना हेरि तोहारि मुख साध॥

तुया गुन कहइ रमनि गन आगे।
बुझलय निचय तोहारि अनुरागे॥
छल छल नयन भेल आन।
भावे भरल रहु तोहारि घेयान।
भणये विद्यापति एहि विचार।
आवे उचित धनि हरि अभिसार॥

कीर्त्तनानन्द २८३; न० गु० १००

अनुवाद— सुन्दरि, आज तुम्हारा गौरव मैंने देखा, तुम्हारे समान रमणी भुवन में अन्य नहीं है। कानु के साथ जाने कितनी स्त्रियाँ रहती हैं, (वह) सदा तुम्हारी ही बातें करता है। मैंने तुम्हारा सम्वाद कुछ कहा, उसने किसी भी ओर नहीं देखा। (उसे) केवल तुम्हारा ही मुख देखने की साध है। रमणियों के आगे तुम्हारा गुण कहता है (इससे) समझी तुम्हारे प्रति (उसका) अनुराग है। छल-छल नयन, हरि अन्यरूप हो गये (बिलकुल बदल गये), तुम्हारे ध्यान में भाव में विभोर हुए बैठे हैं। विद्यापति कहते हैं, ऐसा सोच कर सुन्दरी को उचित है कि वह हरि का अभिसार करे।

(६४१)

चल चल सुन्दरि हरि अभिसार।
जामिनि उचित करह सिगार॥
जैसन रजनि उजोरल चन्द।
ऐसन वेस भुसन करू बन्ध॥
ए धनि भाविनि कि कहब तोय।
निचय नागर तुया बस होय॥
तुहु रस नागरि नागर रसवन्त।
तुरिते चलह धनि कुञ्जक अन्त॥
एकल कुंजवने आकुल कान।
विद्यापति कह करह पयान॥

कीर्त्तनानन्द २६१; न० गु० २४१

शब्दार्थ—सिंगार—शृङ्गार; उजोरल—उज्ज्वल; बन्ध—बन्धन, धारण।

अनुवाद—चलो, चलो, सुन्दरि, हरि के अभिसार में चलो। ऐसा वेश धारण करो जिसका सामञ्जस्य रजनी से हो। जिस प्रकार चन्द्रमा ने रजनी को उज्ज्वल किया, उस प्रकार की वेश-भूषा धारण करो। हे धनि, भाविनि, तुम्हें क्या कहें, नागर निश्चय ही तुम्हारे वशीभूत है। तुम रसिका नागरी हो, नागर रसिक है। कुंज की सीमा पर शीघ्र चलो। विद्यापति कहते हैं, कुंजवन में कन्हायी व्याकुल हो रहे हैं; तुम प्रयाण करो।

(६४२)

नव अनुरागिनि राधा।
किछु नहि मानए बाधा॥
एकलि कएल पयान।
पथ विपथ नहि मान॥
तेजल मनिमय हार।
उच कुच मानए भार॥
कर सयँ कंकन मुदरि।
पथहि तेजल सगरि॥
मनिमय मंजिर पाय।
दूरहि तेजि चलि याय॥
जामिनि घन अँधियार।
मनमथ हिय उजियार॥
विघनि विथारित बाट।
पेमक आयुधे काट॥
विद्यापति मति जान।
ऐछे ना हेरिये आन॥

पदकल्पतरु ६७६; सा० मि० ३९; न० गु० २८२

अनुवाद—नव अनुरागिणी राधा, कोई बाधा भी नहीं मानती। अकेली ही प्रस्थान कर गयी, पथ-विपथ नहीं माना। मणिमय हार का त्याग किया, क्योंकि वह ऊँचे कुच को भार सा मालूम होता था। हाथ से (निकाल निकाल कर) कँकण, मुँदरी (इत्यादि) रास्ते में ही फेंक दिया। पद का मणिमय मंजीर दूर ही छोड़ कर चली गयी। रजनी घोर अन्धकारमय है, किन्तु कामदेव हृदय में उज्ज्वल अर्थात् कामदेव की प्रभा से हृदय प्रभावान्वित है। विघ्न-प्रसारित पथ, किन्तु प्रेम के आयुध से (सब विघ्नों को) काट डाला। विद्यापति मन में जानते हैं, ऐसा और नहीं देख सकता।

(६४३)

सहचरी बात धयल धनि श्रवने।
हृदय हुलास कहत नहि वचने॥
सहचरि समुझल मरमक बात।
सजाओल जइसे किछु लखइ न जात॥
श्वेताम्बरे तनु आवरि देलि।
बाहु पवन गति संगे करि लेलि॥
जइसन चाँद परने चलि जाइ।
ऐसन कुंजे उदय भेलि राइ॥
कानु धरल जब राहिक हात।
बैसल सुवदनि कह लहु बात॥
कुचजुग परसे तरसि मुख मोर।
भनइ विद्यापति आनन्द ओर॥

न० गु० २९८ (बटतला)

शब्दार्थ—हुलास-उल्लास; लहु बात—मृदुस्वर में बात; तरसि—डर से; ओर—सीमा।

अनुवाद—सहचरी की बात धनी ने कानों सुनी, मन का आनन्द मुख से प्रकाशित नहीं किया। सहचरी हृदय की बात समझ गयी, ऐसा सजाया जिससे कुछ पहचान में न आवे। श्वेताम्बर से शरीर आच्छादित किया, हाथ पकड़ कर पवन गति से साथ कर लिया। जिस प्रकार चन्द्रमा पवन में चला जाता है, उसी प्रकार राधा कुंज में उदित हुई। कन्हायी ने जब राधा का हाथ पकड़ा, सुवदना ने बैठ कर मृदुस्वर में बातें की। पयोधर युगल के स्पर्श करते ही डर से मुख घुमा लिया। विद्यापति कहते हैं, आनन्द की पूर्णता (प्राप्त हुई)

(६४४)

रयनि छोटि अति भीरु रमनी।
कति खने आओब कुंजरगमनी।
भीमभुजंगम सरना।
कत संकट ताहे कोमल चरना॥
विहि पाये करों परिहार।
अविघिने सुन्दरि करु अभिसार॥
गगन सघन महि पंका।
विघिनि वियारत उपजय शंका॥
दस दिस घन अंधियार।
चलइत खलइ लखइ नहि पार॥
सब जनि पलटि भुललि।
आओत मानवि भाल त लोलि॥
विद्यापति कबि कहइ।
प्रेमहि कलवति पराभव सहइ।

प० त० १७७; कीर्त्तनानन्द २२१; सा० मि० २४; न० गु० २९६

अनुवाद— सुन्दरि, आज तुम्हारा गौरव मैंने देखा, तुम्हारे समान रमणी भुवन में अन्य नहीं है। कानु के साथ जाने कितनी स्त्रियाँ रहती हैं, (वह) सदा तुम्हारी ही बातें करता है। मैंने तुम्हारा सम्वाद कुछ कहा, उसने किसी भी ओर नहीं देखा। (उसे) केवल तुम्हारा ही मुख देखने की साध है। रमणियों के आगे तुम्हारा गुण कहता है (इससे) समझो तुम्हारे प्रति (उसका) अनुराग है। छल-छल नयन, हरि अन्यरूप हो गये (बिलकुल बदल गये), तुम्हारे ध्यान में भाव में विभोर हुए बैठे हैं। विद्यापति कहते हैं, ऐसा सोच कर सुन्दरी को उचित है कि वह हरि का अभिसार करे।

(६४१)

चल चल सुन्दरि हरि अभिसार।
जामिनि उचित करह सिंगार॥
जैसन रजनि उजोरल चन्द।
ऐसन वेस भुसन करू बन्ध॥
ए धनि भाविनि कि कहब तोय।
निचय नागर तुया बस होय॥
तुहु रस नागरि नागर रसवन्त।
तुरिते चलह धनि कुञ्जक अन्त॥
एकल कुंजबने आकुल कान।
विद्यापति कह करह पयान॥

कीर्त्तनानन्द २६१; न० गु० २४१

शब्दार्थ—सिंगार—श्रृङ्गार; उजोरल—उज्ज्वल; बन्ध—बन्धन, धारण।

अनुवाद—चलो, चलो, सुन्दरि, हरि के अभिसार में चलो। ऐसा वेश धारण करो जिसका सामञ्जस्य रजनी से हो। जिस प्रकार चन्द्रमा ने रजनी को उज्ज्वल किया, उस प्रकार की वेश-भूषा धारण करो। हे धनि, भाविनि, तुम्हें क्या कहें, नागर निश्चय ही तुम्हारे वशीभूत है। तुम रसिका नागरी हो, नागर रसिक है। कुंज की सीमा पर शीघ्र चलो। विद्यापति कहते हैं, कुंजबन में कन्हायी व्याकुल हो रहे हैं; तुम प्रयाण करो।

(६४२)

नव अनुरागिनि राधा।
किछु नहि मानए बाधा॥
एकलि कएल पयान।
पथ विपथ नहि मान॥
तेजल मनिमय हार।
उच कुच मानए भार॥
कर सयँ कंकन मुदरि।
पथहि तेजल सगरि॥
मनिमय मंजिर पाय।
दूरहि तेजि चलि याय॥
जामिनि घन अँधियार।
मनमथ हिय उजियार॥
विघनि विथारित बाट।
पेमक आयुधे काट॥
विद्यापति मति जान।
ऐछे ना हेरिये आन॥

पदकल्पतरु ६७६; सा० मि० ३९; न० गु० २८२

अनुवाद—नव अनुरागिणी राधा, कोई बाधा भी नहीं मानती। अकेली ही प्रस्थान कर गयी, पथ-विपथ नहीं माना। मणिमय हार का त्याग किया, क्योंकि वह ऊँचे कुच को भार सा मालूम होता था। हाथ से (निकाल निकाल कर) कँकण, मुँदरी (इत्यादि) रास्ते में ही फेंक दिया। पद का मणिमय मंजीर दूर ही छोड़ कर चली गयी। रजनी घोर अन्धकारमय है, किन्तु कामदेव हृदय में उज्ज्वल अर्थात् कामदेव की प्रभा से हृदय प्रभावान्वित है। विघ्न-प्रसारित पथ, किन्तु प्रेम के आयुध से (सब विघ्नों को) काट डाला। विद्यापति मन में जानते हैं, ऐसा और नहीं देख सकता।

(६४३)

सहचरी बात धयल धनि श्रवने।
हृदय हुलास कहत नहि वचने॥
सहचरि समुझल मरमक बात।
सजाओल जइसे किछु लखइ न जात॥
स्वेताम्बरे तनु आवरि देलि।
बाहु पवन गति संगे करि लेलि॥
जइसन चाँद परने चलि जाइ।
ऐसन कुंजे उदय भेलि राइ॥
कानु धरल जब राहिक हात।
वैसल सुवदनि कह लहु बात॥
कुचजुग परसे तरसि मुख मोर।
भनइ विद्यापति आनन्द ओर॥

न० गु० २९८ (बटतला)

शब्दार्थ—हुलास-उल्लास ; लहु बात—मृदुस्वर में बात ; तरसि—डर से ; ओर—सीमा।

अनुवाद—सहचरी की बात धनी ने कानों सुनी, मन का आनन्द मुख से प्रकाशित नहीं किया। सहचरी हृदय की बात समझ गयी, ऐसा सजाया जिससे कुछ पहचान में न आवे। श्वेताम्बर से शरीर आच्छादित किया, हाथ पकड़ कर पवन गति से साथ कर लिया। जिस प्रकार चन्द्रमा पवन में चला जाता है, उसी प्रकार राधा कुंज में उदित हुई। कन्हायी ने जब राधा का हाथ पकड़ा, सुवदना ने बैठ कर मृदुस्वर में बातें की। पयोधर युगल के स्पर्श करते ही डर से मुख घुमा लिया। विद्यापति कहते हैं, आनन्द की पूर्णता (प्राप्त हुई)

(६४४)

रयनि छोटि अति भीरु रमनी।
कति खने आओब कुंजरगमनी।
भीमभुजंगम सरना।
कत संकट ताहे कोमल चरना॥
विहि पाये करों परिहार।
अविघिने सुन्दरि करु अभिसार॥
गगन सघन महि पंका।
विघिनि विथारल उपजय शंका॥
दस दिस घन अँधियार।
चलइत खलइ लखइ नहि पार॥
सब जनि पलटि भुललि।
आओत मानवि भाल त लोलि॥
विद्यापति कवि कहइ।
प्रेमहि कलवति पराभव सहइ।

प० स० ६७७; कीर्त्तनानन्द २२१; सा० मि० ३४; न० गु० २५६

शब्दार्थ— रयनी—रजनी; कुंजर—हाथी; सरना—सरणि, पथ; विथारत—विस्तृत।

अनुवाद—रात छोटी और रमणी अत्यन्त भीरु है। कब कुंजर-गमनी आवेगी। प्रबल सर्पिल पथ, वह कोमल-चरण है, कितना संकट है। हे विधि, तुम्हारे चरणों में परिहार करता हूँ (अर्थात् तुम्हारे ही चरणों में उसे समर्पण करता हूँ) सुन्दरी निर्विघ्नतापूर्वक अभिसार करे। गगन मेघाच्छन्न, मही (पथ) कीचड़ से पूर्ण, विघ्न विस्तारित, अतएव शंका पैदा हो रही है। चारो ओर घना अन्धकार है, चलने में पैर स्खलित होते हैं, लक्ष्य कर नहीं सकतो। नायिका क्या सब (संकेत स्थान में मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ) भूल गयीं? यदि वह आवे तो जानूंगा कि वह बहुत ही लोला अर्थात् चंचला (मिलन की उत्कंठा से) हो रही है। विद्यापति कवि कहते हैं, प्रेम के लिए कुलवती पराभव अर्थात् विपद सहन करेगी।

(६४५)

राधामाधव रतनहि मन्दिरे
निवसइ सयनक सुखे।
रसे रसे दारुन दन्द उपजायल
कान्त चलल तहि रोखे॥
नागर-अंचल करे धरि नागरि
हसि मिनती करु आधा।
नागर हृदये पाँच-सर हानल
उरज दरसि मन बाधा॥

देख सखि झुटक मान।
कारन किछुओ बुझइ नाहि पारिये
तब काहे रोखल कान॥
रोख समापि पुन रहसि पसारल
ताहिं मधथ पँचबान।
अवसर जानि मानवति राधा
कवि विद्यापति भान॥

प० त० ६०१; न० गु० ४६८

शब्दार्थ—निवसइ-निवास करते हैं; रोखे—रोष से; रोखल—क्रोध किया।

अनुवाद—राधा-माधव रत्नमन्दिर में सुख से पलंग पर बैठे हैं (वास करते हैं), रस की बातें करते करते दारुण कलह उत्पन्न हुआ, इससे कान्त क्रोध करके चलने लगे। नागरी ने नागर का अंचल हाथ से पकड़ कर हँस कर अर्द्ध (अल्प) मिनती की, नागर के हृदय को (कटाक्ष से) पंचशर से मारा, पयोधर के दर्शन करा के मन चंचल किया। सखि, मिथ्या मान देखो। कोई कारण ही नहीं देखती, तब किस कारण से क्रोध किया? रोष समापन करके फिर कौतुक बढ़ा, मदन मध्यस्थ हुआ। विद्यापति यह कहते हैं, (तब) सुयोग जानकर राधा मानवती हुई।

(६४६)

हरि परसंग न कर मझु आगे।
हम नहि नायरि भयी माधव-लागे॥
जकर मरमे बैसय वरनारी।
ता सयँ पिरीति दिवस दुइ चारि॥
पहिलहि न बुझल एत सब बोल।
रुप निहारि पड़ि गेल भोल॥
आन भावइत विहि आन फल देल।
हार भरमे भुजंगम भैल॥

ए सखि ए सखि जब रहुं जीव।
हरि दिगे चाहि पानि नहि पीव॥
हम जबो जानितओं कानुक रीत।
तब किअ ता सयँ बाँधय चीत॥
हरिणी जानय भल कुटुम्ब विबाध।
तबहुँ व्याधक गीत सुनइत करू साध॥
भनई विद्यापति सुन वरनारि।
पानि पिये किअ जाति विचारि॥

सा० मि० ६२; न० गु० ३६२ (आकर अज्ञात)

अनुवाद—मेरे सामने हरि का प्रसंग मत करना (उसकी बात मुझसे मत कहना;) मैं माधव के लिए नागरी नहीं हुई। जिसके मर्म में (हृदय में) सुन्दरी नारी वास करती है उसके साथ दो-चार दिनों की प्रीति है (माधव दूसरी नारी में अनुरक्त है, इसलिए मेरे साथ केवल दो-चार दिनों के लिए प्रीति की)। पहले यह सब बात नहीं समझती थी, रुप देख कर भूल में पड़ गयी थी (भूल गयी थी)। दूसरा चाहती थी, विधाता ने दूसरा फल दिया; हार का भ्रम था, वास्तव में वह भुजंग था (हार समझ कर माधव का कंठ धारण किया था, भुजंग बन कर मुझे डँस गया)। हे सखि, यदि प्राण रहे (यदि इतनी यन्त्रणा पाकर भी जीवन न जाए तो) हरि की ओर चाह कर जल (तक) नहीं पीऊँगी। कन्हायी का स्वभाव अगर जानती, तब क्या उससे चित्त बँधवाती (उसके प्रति अनुरक्त होती)? हरिणी (व्याध के हाथ से) कुटुम्ब का निग्रह (दूसरी हरिणियों का) जानती है, तथापि व्याध का गीत सुनते ही इच्छा रखती है (माधव ने अन्य रमणियों को यन्त्रणा दी है यह जानकर भी उसके चाटुवाक्य से मैं उसके प्रति अनुरक्त हो गयी)। विद्यापति कहते हैं, हे युवतिश्रेष्ठ' सुन, जल पीने के बाद जाति का विचार क्यों कर रही है? (माधव के प्रति अनुरक्त होने के बाद अब यह सोचने से क्या होगा कि वह अच्छा है अथवा बुरा?)

(६४७)

सखि हे ना बोल वचन आन।
भाले भाले हाम अलपे चिह्नलुँ
ऐछन कुटिल कान॥
काठ कठिन कयल मोदक
उपरे माखिया गुड़।
कनया कलस विखे पुराइया
उपरे दुधक पूर॥

कानु से सुजन हाम दुरजन
ताकर वचने याइ।
हृदय मुखते एक समतुल
कोटिके गुटिक पाइ॥
ये फले तेजसि से फुले पूजसि
से फुले धरसि वाण।
कानुक वचन ऐछन चरित
कवि विद्यापति भाण॥

पदकल्पतरु ४१४; सा० मि० ६१; न० गु० ४२७

अनुवाद—सखि, दूसरी तरह की बातचीत मत करो। कन्हायी कितना कुटिल है यह मैं थोड़ा भले-भले (भाग्यवश, पहचान गयी। ऊपर गुड़ लगा कर मानों किसी ने कठोर काठ की मिठाई बना दी हो, अथवा स्वर्णकलस विष से भर कर उसके मुँह पर मानों दूध का एक स्तर चढ़ा दिया हो (श्री कृष्ण भी उसी प्रकार पयोमुख विषकुम्भ हैं)। कन्हायी सुजन हैं और मैं उनकी बात का विश्वास कर दुर्जन हो गयी। ऐसे लोग करोड़ में एक मिलते हैं जिनका हृदय और मुख एक समान हो। जिस फूल का त्याग करते हो, उसी के द्वारा पूजा भी करते हो, फिर उसी फूल को वाण के समान धारण करते हो (ये सब इस प्रकार विरुद्ध और असंगत है)। कवि विद्यापति कहते हैं, कन्हायी के वाक्य और आचरण इसी प्रकार के हैं।

(६४८)

सहि हे मन्दप्रेम-परिनामा।
वराक जीवन कयल पराधीन
नाहि उपकार एकठामा॥
झाँपल कूप लखइ न पारल
आइत पड़लहुँ धाइ।
तखनुक लघु-गुरु कछु ना विचारलुँ
अब पाछु तरइते चाइ॥

मधु सम वचन प्रेम सम मानुख
पहिलहुँ जानन न भेला।
अपन चतुरपन पर हाते सोंपलुं
हृदिसे गरब दूरे गेला॥
एत दिन आज भाने हम आछलुँ
अब बुझलु अवगाहि।
अपन सूल हम आपहि चाँछल
दोख देयब अब काहि॥

अनये विद्यापति सुन वरजुवति
चिते नाहि गूनबि आने।
प्रेमक कारन जीउ उपेखिअ
जगजन को नाहि जाने॥

सा० मि० ४६ ; प० त० ६३६

अनुवाद—हे सखि, प्रेम का परिणाम बुरा होता है। मैंने हतभाग्य जीवन को पराधीन कर लिया है, किन्तु कहीं भी उपकार नहीं पाया। ढका हुआ कूप देख नहीं सकी, दौड़ कर जा कूदी। उस समय भला बुरा कुछ भी विचार नहीं किया ; अब बाहर निकलना चाहती हूँ। मधुर तुल्य वचन, (मूर्त्तिमान्) प्रेम के तुल्य मनुष्य (देख कर भूल गयी) ; पहले (उसका स्वरूप) समझ नहीं सकी। अपनी बुद्धि दूसरे के हाथ में सौंप दी। अब हृदय से सब गर्व दूर चला गया। इतने दिनों तक मैं दूसरी थी। अब अच्छी प्रकार समझ रही हूँ। मैंने अपना शूल अपने ही हाथों गड़ाया ; अब दोष किसको दूँ ? विद्यापति कहते हैं, हे वर युवति सुन—मन में अन्यथा मत मानना ; संसार में कौन नहीं जानता कि प्रेम के लिए जीवन की उपेक्षा करनी पड़ती है ?

(६४९)

शुन शुन सुन्दरी कर अवधान।
नाह रसिकवर विदगध जान॥
काहे तुहुँ हृदये करसि अनुताप।
अवहु मिलब सोइ सुपुरुख आप॥

उदभट प्रेम करसि अनुराग।
निति निति ऐसन हिय माहा जाग॥
विद्यापति कह वान्धह थेह।
सुपुरुष कबहुँ न तेजय नेह॥

प० त० ६२० ; न० गु० ६४७

शब्दार्थ—निति निति– रोज रोज ; थेह—धैर्य।

अनुवाद—सुन सुन, सुन्दरि, मन लगाकर सुन। नाथ को विदग्ध और रसिक श्रेष्ठ समझना। तुम हृदय में दुख क्यों करती हो ? अब वही सुपुरुष स्वयं आकर तुमसे मिलेंगे। अद्भुत (उद्भट) प्रेम से अनुराग करती हो, रोज रोज इसी प्रकार (प्रेम) तुहारे हृदय में जागता है। विद्यापति कहते हैं, धैर्य धारण करो। सुजन कभी भी स्नेह का त्याग नहीं करते।

(६५०)

तुहु मान धएलि अविचारे।
अबे की करब प्रतिकारे॥
तुहु एड़ाओलि रतने।
मान हृदय करि धरलि जतने॥
मान गरुअ किअ धरलि।
कानुक करुना करने नहि सुनलि॥

वंचित भै पहु चलला।
कलिजुग पाप सतत तोहे फलला॥
न सुनलि महाजन मुखकाँ।
जावत वाघ न खाएत वनकाँ॥
मानिनी मान भुजंगे।
जारल वीख भरल सब अंगे॥

सुकवि विद्यापति गाओल।
पुरुब कृत फल पाओल॥

न० गु० ४१४

अनुवाद—तुमने विना विचारे ही मान किया, अभी मैं क्या प्रतिकार करूँ ? (माधव का प्रेम) रत्न खो दिया। मान को यत्नपूर्वक हृदय में धारण किया। कन्हायी का कातर वचन कान से नहीं सुना। प्रभु वंचित होकर चले गये। कलियुग के शाप से तुम्हें सैकड़ो पाप लगे। महाजन के मुख की वात तुमने सुनी नहीं, वन के वाघ को साधने से क्या वह खाता नहीं है (विपद बुलाकर लाने से किसे विपद् नहीं होता है) ? मानिनी के मानरूपी सर्प का विष सकल अंग में व्याप्त होकर ज्वाला लगा गया। सुकवि विद्यापति गाते हैं, कृतकर्म का फल मिला।

---

(६२०) मन्तव्य—न० गु० ने कहा है कि यह पद उन्होंने कीर्त्तनानन्द से लिया है, परन्तु मुद्रित कीर्त्तनानन्द में यह नहीं मिलता है।

(६५१)

सुन सुन सुन्दरि कर अवधान।
बिनु अपराध कहसि काहे आन॥
पूजलुँ पसुपति जामिनि जागि।
गमन विलम्ब भेल तेहिलागि॥
लागल मृगमद कुंकुम दाग।
उचरइत मन्त्र अधर नहि राग॥
रजनि उजागरि लोचन भोर।
ताहि लागि तोहे मोहे बोलसि चोर॥
नवकविसेखर कि कहव तोय।
सपथ करह तब परतीत होय॥

पदकल्पतरु ३८६, न० गु० ३५२

अनुवाद—हे सुन्दरी (सखि) मन देकर सुन, तुम बिना अपराध ही मुझे अन्य बातें कह रही हो। रात को जाग कर शिव पूजा की, इसी लिए आने में देर हुई। (पूजोपकरण) मृगमद कुंकुम का दाग लग गया है। (सारी रात) मन्त्र उच्चारण करते रहने से अधर रागशून्य हो गये हैं। रात्रि जागरण से आँखें लाल हो गयी हैं। इसी लिए तुम मुझे चोर कह रही हो? नवकविशेखर तुमको क्या कहें, यदि तुम शपथ करके कहो तो विश्वास हो।

(६५२)

सुन सुन गुनवति राधे।
परिचय परिहर को अपराधे॥
गगने उदये कत तारा।
चाँद आनहि अवतारा॥
आन कि कहबि विसेखि।
लाख लखिमिचय लेखि ना लेखि॥
मुनि धनि मन-हृदि झूर।
तबहि मनहि मनपूर॥
विद्यापति कह मीलन भेल।
सुनइत धन्द सबहि भै गेल॥

प० त० ५४६; सा० मि० ६०; न० गु० ५२४

अनुवाद—हे गुणवति राधे, किस अपराध के कारण परिचय परित्याग कर रही हो (बात नहीं बोलती हो)? गगन में कितने तारे उदित हुए, चाँद अन्य अवतार, (चाँद के उगने से ही अन्धकार दूर होता है, सुतरां चाँद सर्वों की अपेक्षा स्वतंत्र है)। और अधिक क्या कहें, लक्ष लक्ष्मी को भी (तुम्हारी तुलना में) गणना नहीं करता। सुनकर धनी के मन और हृदय आकुल हुए एवं दोनों ही मन ही मन में परितृप्त हुए। विद्यापति कहते हैं, मिलन हुआ। सुन कर सकल संशय दूर हो गया।

---

(६५१) *मन्तव्य*—यह विद्यापति का पद नहीं है; भूमिका देखिए।

(६५३)

ए धनि मानिनि करह संजात।
तुत्र्प्रा कुच हेम-घट हार भुजंगिनि
ताक उपर धर हात॥
तोहे छाड़ि जदि हम परसब कोय।
तुत्र्प हार-नागिनि काटब मोय॥
हमर वचन जदि नहि परतीत।
बुझि करह साति जे होय उचीत॥
भुज-पास बाँधि जघन-तर तारि।
पयोधर-पाथर हिय दह भारि॥
उर-कारा बाँधि राख दिन-राति।
विद्यापति कह उचित रह साति॥

प० त० ३८७ ; सा० मि० ११ ; न० गु० ३५१

शब्दार्थ—संजात - संयत करो ; परतीत—विश्वास ; तारि—ताड़न करके।

अनुवाद—हे धनि मानमयी, मान संयत करो। तुम्हारे स्तन स्वर्ण के घट और तुम्हारा हार भुजंगिनी-स्वरूप है, मैं उन पर हाथ रखता हूँ। यदि तुमको छोड़ कर किसी अन्य का स्पर्श करूँ तो हार-नागिनी मुझे काटे [उस जमाने में सर्प-विचार होता था ; किसी अभियुक्त को सर्पयुक्त घट में हाथ डालने को कहा जाता था ; यदि उसको साँप नहीं काटता था तो उसे निर्दोष समझ कर मुक्त कर दिया जाता था। उसी की ओर इशारा करके नायक हार रूपी सर्प की बात कह रहा है]। यदि मेरी बात का विश्वास न हो तो जो दण्ड तुम उचित समझती हो, मुझे दो। भुजपाश में बाँध कर जाँघ द्वारा ताड़न करो और छाती को पयोधर रूपी पत्थर से दबा दो। हृदय के कारागार में दिन-रात बाँध कर रखो। विद्यापति कहते हैं, यह शास्ति समुचित है।

(६५४)

पीन कठिन कुच कनक-कटोर।
वंकिम नयने चित हरलियो मोर॥
परिहर सुन्दरि दारुन मान।
आकुल भ्रमरे कराद मधुपान॥
ए धनि सुन्दरि करे धरि तोर।
हठ न करह महत राख मोर॥
पुन पुन कतए बुझाएव वार वार।
मदन-वेदन हम सहइ न पार॥
भनई विद्यापति तुहुँ सब जान।
आसा-भंग दुख मरन समान॥

प० त० ५१० ; सा० मि० ५४ , न० गु० ३५६

शब्दार्थ—महत—महत्व, मर्यादा।

अनुवाद—तुम्हारे कनक-कटोरा के समान पीन कठिन कुच और वंकिम दृष्टि ने मेरा चित्त हरण कर लिया। सुन्दरी, दारुण मान का परित्याग करो और व्याकुल भ्रमर को मधुपान करावो। हे धनि, सुन्दरि, तुम्हें हाथों से पकड़ रहा हूँ, तुम हठ मत करो, मेरी मर्यादा रखो। तुम्हें बार-बार और कितना समझाऊँ, मैं मदन-वेदना सह नहीं सक रहा हूँ। विद्यापति कहते हैं—तुम सब जानती हो. आशा-भंग जनित दुख मरण के समान होता है।

(६५५)

कत कत अनुनय करु वरनाह।
ओ धनि मानिनि पलटि न चाह॥
वहुविध वानि विलापये कान।
शुनइते सतगुन बाढ़ये मान॥

गद गद नागर हेरि भेल भीत।
वचन न निकसये चमकित चीत॥
परशिते चरन साहस नाहि होय।
कर जोड़ि ठाढ़ि वदन पुनु जोय॥

विद्यापति कह सुन वरकान।
कि करबि तुहुँ अब दुर्ज्जय मान॥

प० त० ४१२ ; सा० मि० ५६ ; न० गु० ३७०

शब्दार्थ— नाह-नाथ ; निकसये—निर्गत होता है ; जोय—(जोह धातु) निरीक्षण करता है।

अनुवाद—प्राण वल्लभ ने कितने अनुनय किए, किन्तु उस मानिनी कामिनी ने फिर कर भी नहीं देखा। कन्हायी वहुत प्रकार की बातें करते हुए विलाप करने लगे। वह सब सुनकर (राधा का) मान सौगुना बढ गया। नागर यह देख कर डर गया ; उसकी वाक्य-स्फूर्त्ति हो नहीं सकी, चित्त चमकित हुआ। पैर छूने का भी साहस न हुआ। दोनो हाथ जोड़े, चुपचाप खड़ा रहकर; मुखनिरखता रहा। विद्यापति कहते है, हे कन्हायी सुनो, अभी मान दुर्ज्जय है तुम क्या कर सक्ते हो कुछ उपाय नहीं है)

(६५८)

सुन माधव राधा साधिन भेल।
जतनहि कत परकार बुझायलुँ
तभु धनि उतर न देल॥

तोहारि नाम शुनये यब सुन्दरि
श्रवणे मुदये दुइ पानि।
तोहर पिरीत जे नव नव मानय
से अब न शुनये वाणी॥

तोहारि केश कुसुम तृन ताम्बुल
धयलहु राहिक आगे।
कोपे कमलमुखि पलटि न हेरल
वैसलि विमुख विरागे।

एहन बुझि कुलिस सार तछु अन्तर
कैछे मिटायव मान।
विद्यापति कह वचन अब समुचित
आपे सिधारह कान॥

प० स० पृ० ७४ ; प० त० ४३४ ; सा० मि० ६४ ; न० गु० ३६६

अनुवाद— माधव, सुनो, राधा स्वाधीन हो गयी (तुम्हारी संगति से सम्बन्धहीन हो गयी)। कितनी तरह से यत्नपूर्वक समझाया, तब भी धनी ने (मेरी बातों का) उत्तर नहीं दिया। तुम्हारा नाम यदि सुन लेती है तो दोनों हाथों से कान बन्द कर लेती है। जो तुम्हारी प्रीति नित्य नूतन समझती रहती थी, वह अब कोई भी बात नहीं सुनती। तुम्हारे केश (प्रायश्चित-स्वरूप), कुसुम (उपहार-स्वरूप), तृण (अपराध-स्वीकार पूर्वक दांतों में तिनका

पकड़ने का चिह्न), ताम्बुल, (अनुराग का उपहार) राधा के सम्मुख रखे ; कमल मुखी ने क्रोध के मारे मुख फिरा कर देखा भी नहीं (कमलमुखी-क्रोध के कारण मुख आरक्तिम हो गया था)। दिल में होता है, उसका हृदय वज्रसार (के समान कठिन) है। मान किस प्रकार मिटाऊँ ? विद्यापति अब समुचित वचन कहते हैं, (हे) कन्हायी, स्वयं जाओ (तुम स्वयं जाकर राधा का मान भञ्जन करो)।

(६५७)

सुन सुन गुनवति राधे।
माधव बधि[1] कि साधबि साधे॥
चाँद दिनहि दिन-हीना[2]।
से[3] पुन पलटि खने खने खीना॥
अंगुरी बलया पुन फेरी।
भांगि गढ़ायब बुझि कत बेरी॥
तोहरि चरित नहि जानी।
विद्यापति पुन सिरे कर हानी॥

प० स० पृ० ४१ ; प० त० ६२ ; कीर्त्तनानन्द २२४ ; सा० मि० २४ ; न० गु० ४०७

अनुवाद—हे गुणवती राधा, सुनो, सुनो, माधव का बध करके कौन सी साध पूरा करोगी ? चाँद (कृष्णपक्ष में) दिन-दिन क्षीण होता है, वह भी पलट कर क्षण-क्षण क्षीण हो रहा है। कृष्णपक्ष के बाद शुक्ल पक्ष में चाँद का कलेवर बढ़ता है, परन्तु यह मानों कृष्णपक्ष के बाद फिर कृष्णपक्ष में ही लौट रहा है, कृशता और भी बढ़ रही है। और भी कहूँ, अंगुरी वलय हो गयी है, समझने की कोशिश होती है कि कितनी बार इसे तोड़ तोड़ कर फिर गढ़ायी जाए। यह बात विद्यापति सिर पर हाथ मार कर कहते हैं कि तुम्हारा चरित्र समझ में नहीं आता।

(६५८)

हरि बड़ गरबी, गोपमाझे, बसइ।
ऐसे करबि जैसे बैरि न हसइ॥
परिचय करबि समय भाल चाइ।
आज बुझब सखि तुआ चतुराइ॥
पुछइत कुसल उलटायबि पानि।
वचन न बान्धबि सुनह सेयानि॥
हरि जदि फेरि पुछये धनि तोय।
इंगिते वेदन जानायबि मोय॥
इह रस विद्यापति कवि भान।
मान रहुक पुनु जाउक परान॥

पदकल्पतरू ४७३ ; सा० मि० ६८ ; न० गु० ४६२

---

(६५७) प० स० *पाठान्तर*—(१) बधिले (२) चान्दहि दिनहि दिनहि दीनहीना (३) सो

(६५८) *मन्तव्य*—न० गु० ने नहीं लिखा है कि यह पद उन्होंने कहाँ पाया। हमने जिस आकार में पद को पदकल्पतरू में पाया था, दे दिया है। नगेन्द्रबाबू ने चतुर्थ कली के बाद दिया था :—

पहलहि वैसब श्यामरूए वाम।
संकेत जनाओब मझु परणाम॥

इसके साथ पूर्व कलियों की संगति नहीं होती। भणिता के अव्यवहित पूर्व में उन्होंने चार नये पद दिए हैं :—

जब चिते देखबि बड़ अनुराग। तैखने जनायब हृदय जनि लाग॥
सखीगन गनइते तुहुँ से सयाणी। तोहे कि शिखायब चतुरिम वाणी॥

यह केवल दुरुक्ति है, अतएव निरर्थक है।

अनुवाद—हरि बड़े गर्वित हैं, गोप युवकों के बीच निवास करते हैं। ऐसा करना (इस कौशल से काम करना) कि शत्रु हँसने न पावे। अच्छा समय देखकर मुलाकात करना। सखि, आज तुम्हारी चातुरी देखूँगी। कुशल पूछे जाने पर हाथ उलट देना (तुम कुछ कहना मत, केवल हाथ उलट देना, उससे मालूम हो जायगा कि मेरी अवस्था अच्छी नहीं है)। हे धनि, यदि हरि फिर पूछें, इशारा से मेरी वेदना (मैं जो यातना भोग रही हूँ) जनाना (यह इशारा कर देना कि मैं कुशल से नहीं हूँ)। विद्यापति कवि यह रस कहते हैं, प्राण जाए, तब (भी) मान रहे।

(६५९)

आहे कन्हु तुहु गुनवान।
हमर वचन कर अवधान॥
धतुरक फुले जव मधुरक केलि।
मालति नाम दैव दुर गेलि॥
जहाँ जहाँ जलधर पियब चकोर।
सहजहि हिमकर आदर थोर॥
काक सबद जब गरुअ सोहाग।
दुरे रहु कोकिल पंचम राग॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
सुजनक दुख दिवस दुइ चारि॥

न० गु० ७७७

अनुवाद—हे कन्हायी, तुम गुणवान हो, मेरी बात मन लगा कर सुनो। यदि भ्रमर धतूरा के फूल पर अनुरक्त हो जाय (तो) दैव वशात मालती नाम तो दूर चला जायगा। चकोर यदि जहाँ तहाँ मेघ का (जल) पान करे (तो) सहज ही चाँद का आदर कम हो जाएगा (चाँद का आदर कौन करेगा)। काक की प्रकार का यदि खूब आदर किया जाय, तव कोकिल का पंचम राग दूर ही रह जायगा। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, सुन, सुजन का दुख केवल दो-चार दिनों के लिए ही होता है।

(६६०)

कंचन-ज्योति कुसुम परकास।
रतन फलव वोलि बाढ़ाओल आस॥
तकर मूले देल दूधक धार॥
फले किछु न हेरिए झनझनि सार॥
जाति गोयालिनि हीन मतिहीन।
कुजनक पिरीति मरन अधीन॥
हाहा विहि मोरे एत दुख देल।
लाभक लागि मूल डुबि गेल।
कवि विद्यापति इह अनुमान।
कुकुरक लांगुल न होय समान॥

सा० मि० ६२ ; न० गु० ४२३ (आकर अज्ञात)।

(६६०) *मन्तव्य*—न० गु० ने कहा है कि उन्होंने यह पद कीर्त्तनानन्द से लिया है, किन्तु मुद्रित पुस्तक में यह पद नहीं है।

अनुवाद—स्वर्ण-ज्योति (युक्त) कुसुम का विकास (देखकर) आशा बढ़ी कि इसमें रत्न फलेगा। उस (वृक्ष) के मूल में दूध की धार दी (उसे दूध से सींचा) फल कुछ नहीं देखनी, केवल झनझनि ही सार है।

सुवर्ण सदृशं पुष्पं फले मुक्ता भविष्यति।
आशया सेवितो वृक्षः पश्चाच्च झनूझनायते।

मैं जाति की हीन ग्वालिन (और) बुद्धिशून्य। मन्द लोगों (कुजनों) की प्रीति मरण के अधीन (कर देती है)। हाय हाय, विधाता ने मुझे इतना दुख दिया, लाभ के लोभ से मूल भी खो बैठी। विद्यापति यह अनुमान करते हैं, कुकुर की पूँछ सीधी नहीं होती जिसका मन स्वभावतः वक्र है, वह कैसे सरल हो सकता है)।

(६६१)

कि कहब हे सखि पामर बोल।
पाथर भासल तल गेल सोल॥

छेदि चम्पक चन्दन रसाल।
रोपल सिमर जिवन्ति मन्दाल॥
गुनवति परिहरि कुजुवति संग।
हिरा हिरन तेजि रांगहि रंग॥

पण्डित गुनि जन दुख अपार।
अछय परम सुख मूढ़ गमार॥
गिरिहि निविहित रांक परवीन।
चोर उजोरल साधु मलीन॥

विद्यापति कह विहि अनुबन्ध।
सुनइत गुनि जन मन रहु धन्ध॥

न० गु० ४३३

अनुवाद—हे सखि, पामर की बात क्या कहूँ, पत्थर डूबा, खखरा उतरा गया। चम्पक, चन्दन और रसाल तरु उखाड़ कर (उसकी जगह) सेमर, जियन्ती और मन्दार (कण्टक वृक्ष) रोपन कर गया।

छेदश्चन्दन चूत चम्पकवने
रक्षा करीर द्रुमे
हिंसा हंसमयूर कोकिलकुले
काकेषु लीलावतिः।
नीतिरत्न

गुणवती रमणी का परिहार करके कुयुवती का संग करता है; मानों सोना और हीरा फेंक कर रांगा का आदर होता हो। गुणवान और पण्डित लोगों को अनेक कष्ट हैं, परन्तु मूर्ख गँवार लोग सुख से रहते हैं। गृहस्थ विवेकशून्य और दरिद्र प्रवीण हुआ। चोर उज्ज्वल (यशपूर्ण) हुए साधु म्लानयश हुए। विद्यापति कहते हैं, विधाता का अनुबन्ध, यह सुनकर गुणीजनों का चित्त संशयाकुल हुआ।

(६६१) *मन्तव्य*—न० गु० ने कहा है कि उन्होंने यह पद कीर्त्तनानन्द से लिया है, किन्तु मुद्रित पुस्तक में य पद नहीं है।

(६६२)

ए धनि मानिनि कठिन परानि।
एतहुँ विपदे तुहुँ न कहसि बानि॥
ऐछन नह इह प्रेमक रीत।
अबके मिलन होय समुचीत॥
तोहरि विरहे जब तेजब परान।
तब तुहुँ का सञे साधबि मान॥
के कह कोमल-अन्तर तोय।
तुहुँ सम कठिन हृदय नहि होय॥
अब जदि न मिलह माधव साथ।
विद्यापति तब न कहब बात॥

प० त० २०४६ ; न० गु० ४४५

अनुवाद—ए धनि मानिनि, तुम कठिन-हृदया हो। इतनी विपद में भी तुम बात नहीं बोलती हो। यह प्रेम की रीति नहीं है, अब मिलन करना ही समुचित है। तुम्हारे विरह में जब (माधव) प्राणत्याग कर ही देंगे, तब तुम किस के साथ (ऊपर) मान साधोगी (करोगी)! कौन कहता है कि तुम्हारा हृदय कोमल है, तुम्हारे समान कठिन हृदय किसी का भी नहीं है। अभी भी यदि तुम माधव से नहीं मिलती हो (मान त्याग कर उसके प्रति प्रसन्न नहीं होती हो) तब विद्यापति को कुछ नहीं कहना है (जो कहना था, कह चुके, विद्यापति की बात खतम हो गयी)।

(६६३)

तोहरि विरह वेदने बाउर
सुन्दर माधव मोर।
खने अचेतन खने सचेतन
खने नाम धरु तोर॥
रामा हे तु बड़ि कठिन देह।
गुन अवगुन न बुझि तेजलि
जगत दुलह नेह॥
तोहरि कहिनि कहइत जागय
सुतइ देखय तोय।
ए घर बाहिर धैरज ना धर
पथ निरखये रोय॥
कत परबोधि न माने रहसि
न करे भोजन पान।
काठ मूरति ऐसन आछये
कवि विद्यापति भान॥

प० स० पृ० ७२ ; प० त० ५३० ; २०४४ ; सा० मि० ५८ ; न० गु० ३८१

अनुवाद मेरे सुन्दर माधव तुम्हारे विरह की वेदना से पागल के समान हो गये हैं। वे कभी होश में और कभी बेहोश रहते हैं, कभी तुम्हारा नाम लेकर पुकारते हैं। हे रामा, तुम्हारे प्राण बहुत ही कठिन हैं—तुमने गुण अवगुण बिना समझे जगत-दुर्लभ स्नेह को त्याग दिया। वे तुम्हारी बात करके जाग उठते हैं, सोने पर भी मानों तुम्हीं को देखते रहते हैं। घर या बाहर कहीं भी धैर्य नहीं धरते, पथ की ओर ताक कर रोते रहते हैं। कितना भी प्रबोध दिया जाय, किन्तु (सखाओं के साथ) कभी भी रहस्यालाप नहीं करते, भोजन-पान भी नहीं करते। काठ की मूर्ति के समान रहते हैं, यह कवि विद्यापति कहते हैं।

(६६४)

आधिलुँ हाम अति मानिनि होइ।
भांगल नागर नागरि होइ॥
कि कहब रे सखि आजुक रंग।
कानु आओल तँहि दूतिक संग॥
बेनी बनाइया चाँचर केसे।
नागर सेखर नागरि बेसे॥
पहिरल हार उरज करि ऊरे।
चरनहि लेल रतन नुपूरे॥

पहिलहि चलइत वामपद घात।
नाचत रतिपति फुलधनु हात॥
हेरि हम सचकित आदर केल।
अवनत हेरि कोर पर लेल॥
सो तनु सरस परस जब भेल।
मानक गरव रसातल गेल॥
नासा परसि रहल हम धन्द।
विद्यापति कह भांगल दन्द॥

प० त० ६१२ ; न० गु० ४३५

अनुवाद—मैं बहुत ही मान किए हुई थी। नागर ने नागरी बनकर मेरा मान भंग किया। सखि, आज के रंग की बात क्या कहूँ, कन्हायी दूती के संग आये। उन्होंने चाँचर केश से वेणी बनायी थी, नागर शेखर ने नागरी का वेश धारण किया था। वक्ष पर पयोधर उगा कर (कृत्रिम पयोधर बना कर) हार पहिरा था। चलने के समय पहले बाँया पैर आगे रखते थे (जो स्त्री का लक्षण है)। (नागर का नागरी रूप देख कर) कामदेव फूलधनु को हाथ में लेकर (शर-निक्षेप सार्थक होना समझ कर) नाचने लगा। उनको देखकर मैंने सचकित हो उनका आदर किया। उनको अवनत देख कर गोद में ले लिया। उस शरीर का जब सरस स्पर्श हुआ, मान का गर्व रसातल चला गया। नासा स्पर्श कर (विस्मय लक्षण) मैं संशय में रह गयी। विद्यापति कहते हैं, वह संशय अब दूर हो गया।

(६६५)

बड़ई चतुर मोर कान।
साधन बिनहि भाँगल मझ मान॥
जोगी वेस धरि आओल आज।
के इह समुझब अपरुब काज॥
सास बचन हम तीख लइ गेल।
मझु मुख हेरइत गद गद भेल॥

कह तब 'मान-रतन देह मोय।'
समझल तब हम सुकपट सोय॥
जे किछु कयल तब कहइत लाज।
कोई ना जानल नागरराज॥
विद्यापति कह सुन्दरि राई।
किए तुहु समुझवि से चतुराई॥

प० त० ६१३ ; सा० मि० ७३ ; न० गु० ४३२

अनुवाद—मेरा कन्हायी बड़ा चतुर है। मेरा मान उसने बिना साधन के भंग कर दिया। योगी वेश धारण कर आज आया। यह अपरूब साज कौन समझे? सासु की बात से (योगी को देने के लिए) मैं भिक्षा लेकर गयी मेरा मुख देख कर योगी गद्‌गद्‌ हुआ। (योगी कहने लगा 'अपना मानरत्न' मुझे (भिक्षा) दो (मैं दूसरी भिक्षा न; लूँगा), तब मैंने जाना कि वह सुकपट (माधव) है। उस समय उसने जो कुछ कहा (अब) कहते लज्जा होती है; नागरराज को किसी ने नहीं जाना (नहीं पहचाना)। विद्यापति कहते हैं (हे) सुन्दरि राइ, (उसकी) वह चतुरता तुम क्या समझो?

(६६६)

दूर गेल मानिनि मान।
अमिया सरोवरे डूबल कान॥
मागये तव परिरम्भ।
प्रेम भरे सुवदनि तनु जनि स्तम्भ॥
नागर मधुरिम भास।
सुन्दरि गद गद दीघ निसास॥
कोरे अगोरल नाह।
करू संकीरन-रस निरवाह॥
लहु लहु चुम्ब रयान।
सरस विरस हृदि सजल नयान॥
साहसे उरे कर देल।
मनहि मनोभव तव नहि भेल॥
तोड़ल जब नीबिबन्ध।
हरि सुखें तबहि मनोभव मन्द॥
तब कछु नाहक सुख।
भन विद्यापति सुख कि दुख॥

प० त० ४२४ ; न० गु० ४३०

अनुवाद—मानिनी का मान दूर गया, कन्हायी अमृत के सरोवर में डूबे। (कन्हायी) जब आलिंगन चाहने लगे ; सुवदनी का शरीर प्रेम से भर कर मानों स्तंभित हो गया। नगर की मधुर बात से सुन्दरी ने गद्‌गद् होकर दीर्घ निश्वास छोड़ा। कन्हायी ने गोद में बिठाया, संकीर्ण रस का निर्वाह किया। कन्हायी ने थोड़ा-थोड़ा वदन चुम्बन किया (उससे) हृदय सरस विरस हुआ (साथ साथ हर्ष और दुख हुआ) एवं आखों से जल भर आया। साहस कर पयोधरों पर हस्तार्पण किया, तब भी मन में काम न जागा। जब नीविबन्ध तोड़ा तब हरि के सुखजनक अल्प कन्दर्प का उद्रेक हुआ। तब नाथ को कुछ सुख हुआ ; विद्यापति कहते हैं, सुख कि दुख, (समझ में नहीं आता)। [मान के बाद सम्भोग के समय नायक नायिका के मन में पूर्व की विषाद-स्मृति जागती है, इसीलिए यह प्रश्न]

(६६७)

प्रेमक गुन कहइ सब कोइ।
ये प्रेमे कुलवति कुलटा होइ॥
हम जदि जानिए पिरीति दुरन्त।
तब किए जाओब पापक अन्त॥
अब सब विसमम लागए मोइ।
हरि हरि पिरीति करए जनु कोइ॥
विद्यापति कह सुन बरनारि।
पानि पिये पिछे जाति विचारि॥

पदकल्पतरु ६८३ ; सा० मि० ४१ ; न० गु० ३६७

अनुवाद - सब कोई प्रेम का गुण (प्रशंसा) कहते हैं, जिस प्रेम से कुलवती कुलटा होती है (श्लेष)। यदि मैं जानती कि यह प्रीति दुर्निवार है (तो) पाप की सीमा पर क्यों जाऊँगी ? अब सब विष के समान लगता है ; हरि हरि, कोई भी प्रीति न करे। विद्यापति कहते हैं, युवतीश्रेष्ठ सुन, पानी पीने के बाद जाति-विचार क्यों कर रही हो ? (नायक से प्रीति करने के बाद अब यह सोचने से क्या होगा कि यह अच्छा है अथवा बुरा ?)

(६६८)

अपरुप राधामाधव रंग।
दुर्ज्जय मानिनि मान भेल भंग॥
चुम्बई माधव राहि बयान।
हेरई मुखससि सजल नायान॥

सखिजन आनन्दे निमगन भेल।
दुहुँ जन मन माहा मनसिज गेल॥
दुहुँ जन आकुल दुहुँ करु कोर।
दुहुँ दरसने विद्यापति भोर॥

प० त० ४८४; सा० मि० ७१: न० गु० ५३१

अनुवाद – राधामाधव का मिलन अपूर्व। मानिनी का दुर्ज्जेय मान भंग हुआ। माधव ने राधा का मुख-चुम्बन किया; उनका मुख देख कर नयन सजल हुए। सखियाँ आनन्द में डूब गयीं। दोनों के मन में मनसिज ने प्रवेश किया (दोनों के हृदय कामदेव के अधीन हुए)। दोनों दोनों का आलिंगन कर आकुल हुए। दोनो के दर्शन करके विद्यापति का हृदय आनन्द से पूर्ण हुआ।

(६६९)

ए धनि कमलिनि सुन हित बानि।
प्रेम करबि अब सुपुरुख जानि॥
सुजनक प्रेम हेम समतूल।
दहइत कनक द्विगुन होय मूल॥
टुटइत नहि टुट प्रेम अदभूत।
जैसन बाढ़ए मृणालक सूत॥

सबहु मतंगज मोति नाहि मानि।
सकल कण्ठ नहि कोइल-बानि॥
सकल समय नहि रीतु बसन्त।
सकल पुरुख-नारि नहि गुनवन्त॥
भनइ विद्यापति सुन बरनारि।
प्रेमक रीत अब बुझह विचारि॥

प० स० पृ: ३८; प० त० १०९; कीर्त्तनानन्द २८४; सा० मि० २६; न० गु० ६५

अनुवाद—हे धनि, कमलिनि, भलाई की बात सुनो। अब सुपुरुष समझ कर प्रेम करना। सुजन का प्रेम हेम के समान होता है। दग्ध होने से (परीक्षा करने पर) सोने का मूल्य दुगुना हो जाता है। प्रेम इतना अद्भुत होता है कि तोड़ने से भी नहीं टूटता, जैसे मृणाल का सूत (खींचने से) बढ़ जाता है। सब हाथियों में मुक्ता नहीं होती, सब कण्ठों में कोकिल का स्वर नहीं होता। सब समय वसन्तकाल नहीं रहता, हे नारि, सब पुरुष गुणवान नहीं होते। विद्यापति कहते हैं, हे रमणी-श्रेष्ठ, सुन, प्रेम की रीति अब विचार कर समझ।

(६७०)

दिवस तिल आध राखवि जौबन
रहइ दिवस सब जाब।
भाल मन्द दुइ संग चलि जायब
पर उपकार से लाभ॥

सुन्दरि हरिबधे तुहुँ भेलि भागि।
राति दिवस सोइ आन नहि भावइ
काल विरह तुआ लागि॥

विरह सिन्धु माहा डुबइत आछय
तुअ कुचकुम्भे लखि देइ।
तुहुँ धनि गुनवति उधार गोकुलपति
त्रिभुवन भरि जस लेइ॥

लाख लाख नागरि जो कानु हेरइ
से सुभदिन करि मान।
तुआ अभिमान लागि सोइ आकुल
कवि विद्यापति भान॥

प० त० ४६३; सा० मि० ४६; न० गु० ४४६

अनुवाद—एक दिन अथवा तिलार्ध भी यौवन रख सकोगी? (जितने दिन तक यौवन है उससे एक दिन भी अधिक नहीं ठहरेगा) सब दिन चले जाएँगे। भला-बुरा सब साथ में चला जायगा (कुछ भी अवशिष्ट न रहेगा)। परोपकार ही लाभ है। सुन्दरि, तुम हरि वध की भागी हुई। तुम्हारे काल-विरह के कारण उसे निशिदिन कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। (गोकुलपति) विरह-सिन्धु में डूब रहे हैं, तुम गुणवती धनी हो, अपने कुचकुम्भ का (अवलम्बन) लक्ष्य प्रदान करके गोकुल-पति का उद्धार करो (एवं) त्रिभुवन भर में यश ग्रहण करो। लक्ष लक्ष नारियाँ जिस दिन कानु को देखती हैं, उस दिन को शुभ समझती हैं, विद्यापति कहते हैं, तुम्हारे अभिमान के लिए वे आकुल (हो रहे हैं)।

मन्तव्य—(पद ६७०)—इस पद के प्रथम चार चरणों के साथ न० गु० ४४६ (तालपत्र) पद के प्रथम चार चरणों में समानता पायी जाती है। यथा—

थिर नहि जउबन थिर नहि देह।
थिर नहि रहए बालमु सञो नेह॥

थिर जनु जानह इ संसार।
एक पए थिर रह पर उपकार॥

(६७१)

जीवन चाहि जौवन बड़ रंग।
तवे जौबन जब सुपुरुख-संग॥
सुपुरुख-प्रेम कबहु नहि छाड़।
दिने-दिने चन्द कला सम बाढ़॥
तुहुँ जैसे रसवति कानु रसकन्द।
बड़ पुने रसवती मिले रसवन्त॥
तुहुँ जदि कहसि करिए अनुसंग।
चौरि पिरीति होय लाख गुन रंग॥
सुपुरुख ऐसन नहि जग माझ।
अते ताहे अनुरत वरज समाज॥
विद्यापति कह इथे नहि लाज।
रूपगुनवतिक इह बड़ काज॥

प० स० पृ० ३८; प० त० ६३+३१०; कीर्त्तनानन्द २८९, सा० मि० २५: न० गु० १०६

अनुवाद—जीवन की अपेक्षा यौवन का रंग अधिक है। यौवन उसी समय (सार्थक) है जब सुजन की संगति हो। सुपुरुष का प्रेम कभी भी त्याग नहीं करता, चन्द्रकला के समान प्रतिदिन बढ़ता रहता है। तुम जिस प्रकार रसवती हो, कृष्ण (अनुरूप) रस के मूल हैं। बड़े पुण्य से रसिक और रसवती का मिलन होता है। यदि तुम कहो (तो मैं) प्रसंग करूँ अर्थात् तुम्हारी बात उनके सामने रखूँ। गुप्त रूप से (चोरी से) प्रेम करने में लाखगुना रंग होता है। जगत में इनके समान सुपुरुष (और) नहीं है; इसीलिए व्रज समाज उन पर अनुरक्त है। विद्यापति कहते हैं, इसमें (गोपन प्रेम में) लज्जा नहीं है। रूपगुणवती का यह प्रधान कार्य है।

(६७२)

सुन सुन ए सखि वचन विसेस।
आजु हम देव तोहे उपदेस[1]॥
पहिलहि बैठवि सयनक सीम।
हेरइत[2] पियामुख मोड़बि गीम॥
परसइत दुहुँ करे वारवि पानि[3]।
मौन रहवि[4] पहु पुछइत वानि॥
जब हम सोंपब करे कर आपि।
साधस[5] धरवि उलटि मोहे काँपि॥
विद्यापति कह इह रस ठाट।
काम गुरु होइ शिखाओव पाठ॥

क्षणदागीत चिन्तामणि का पाठ :—

शुन शुन सुन्दरि हित उपदेश।
हाम शिखाओव वचन विशेष॥
पहेलहि बैठवि सयनक सीम।
आध नेहारवि वंकिम गीम॥
यब पिय परसइ ठेलवि पानि।
मौन करवि कछु ना कहवि बानि॥
यब पिय धरि बले लेअब पास।
नहि नहि बोलवि गद गद भाप॥
पिय परिरम्भने मौरवि अंग।
रभस समय पुन देओवि भंग॥
भनहि विद्यापति कि बोलब हाम
आपहि गुरु इह, शिखायब काम॥

प० स० पृ० २४; प० त० ४६; सा० मि ६६; न० गु० १३२; क्षणदा पृ० २१

(६७२) पदामृत समुद्र का पाठान्तर—(१) आजि हाम तोंहे देउ उपदेश (२) हेरइते (३) परसिते दुहु करे ठेलवि पानि (४) करवि (५) धाधसे

अनुवाद—हे सखि, विशेष बात सुन। आज मैं तुमको उपदेश दूँगी। पहले शय्या की सीमा पर बैठना। पिया के द्वारा मुख देखते देखते ही ग्रीवा फिरा लेना। स्पर्श करते ही दोनों हाथों से (उनके) हाथ को रोकना। प्रभु द्वारा बात पूछे जाने पर चुपचाप बैठे रहना। जब मैं (उनके) हाथों में (तुम्हारा) हाथ समर्पण करूँ (उस समय) डर से काँप कर पलट कर (मुझे) पकड़ लेना। विद्यापति कहते हैं, यह रस का ठाट है। कामदेव गुरु होकर पाठ सिखाते हैं।

(६७३)

सखि अवलम्बन चलवि नितम्बिनि
थम्भवि थम्भ समीपे।
जब हरि करे धरि कोर वइसाओव
आँचरे चोरायवि दीपे॥
सखि मान न रहत उदासे।
सत सम्भासने वचन न परगासव
जेहन कृपन असोयासे॥

लहु लहु हसि हसि मुख मोड़वि
दसन देखाओव हासे।
वदन आध विनु साध न पूरव
कुच दरसाओव पासे॥
वहुविध आदरे पहुक कातर लखि
विमुखि वइसव वामे।
करे कर ठेलव आलिंगन वारव
सेज तेजि वइसव ठामे॥

करे कर जोरि मोरि तनु उठव
अम्बर सम्बरि पीठे।
भनइ विद्यापति उतकट संकट
उपजायव दीठे॥

न० गु० ३३२

अनुवाद—हे नितम्बिनि! सखी का अवलम्बन करके जाना, स्तम्भ के निकट जाकर स्तम्भवत् निश्चल हो जाना। जब हरि हाथ धर कर गोद में बैठावें, तब अंचल से दीपक को छिपा देना। सखि, उदासीन होने से मान (सम्मान) नहीं रहता। शत सम्भाषण करने पर भी कुछ मत बोलना, जिस प्रकार कृपण आश्वास नहीं देता। अल्प हँसी हँस हँस कर मुख फिरा देना, हँसने के समय दाँत चमका देना। मुख का आधा से अधिक दिखा कर साध पूरी मत करना; कुच का केवल पार्श्वदेश मात्र दिखलाना। बहुत प्रकार आदर करके जब प्रभु कातरता दिखावें, तब मुख घुमा कर उनके बायें बैठना। हाथ से हाथ ठेल देना, आलिंगन का निवारण करना। सेज छोड़ कर जमीन पर बैठ जाना। हाथ में हाथ जोड़ कर अंग मोड़ कर पीठ पर का कपड़ा सम्भालना। विद्यापति कहते हैं नयन की दृष्टि मार कर उत्कट संकट की सृष्टि करना।

मन्तव्य—नगेन्द्रबाबू ने इसे कीर्त्तनानन्द में पाया है, किन्तु मुद्रित कीर्त्तनानन्द में यह पद नहीं है। नगेन्द्रबाबू ने इसे मान शिक्षा का पद माना है। उसका कारण मालूम होता है 'सखि मान न रहत उदासे' वाला चरण। परन्तु मान करने के समय सखी का अवलम्बन करके जाने की क्या जरूरत? लघु हँसी, कुचपार्श्व दिखलाना, दृष्टि द्वारा संकट की सृष्टि करना मानिनी का काम नहीं है। यह प्रथम समागम का पद है।

(६७४)

हमर वचन सुन साजनि।
मान करबि आदर जानि॥
जब किछु पिया पुछब तोय।
अवनत मुख रहबि गोय॥
जब परीहरि चलए चाहि।
कुटिल नयाने हेरबि ताहि॥
जब किछु आदर देखइ थोर।
झापि देखाओबि कुच ओर॥
वचन कहबि काँदन माखि।
मान करबि आदर राखि॥
जब करे धरि निकट आनि।
उहु उहू कए कहबि बानि॥

भनइ विद्यापति सोइ से नारि।
मानक पिरिति राखिअ पारि॥

न० गु० ३३१ (कीर्त्तनानन्द) [मुद्रित कीर्त्तनानन्द में यह पद नहीं है]

अनुवाद—सजनि, मेरी बात सुन। आदर (पाने) के लिए ही मान करना। जब प्रिय तुमसे कुछ पूछें तो अवनत होकर मुँह छिपाये रहना। जब (तुम्हें) छोड़ कर चला जाना चाहें, उस समय कुटिल कटाक्ष के साथ उनकी ओर देखना। जब कुछ अल्प आदर देखना, तो ढकने (के बहाना) से कुच प्रान्त दिखला देना। रोने का स्वर मिला कर बातें करना (एवं अपना) आदर रख कर मान करना। जब हाथ पकड़ कर नजदीक लावें, उस समय आह-उह करती हुई बातें करना। विद्यापति कहते हैं—वही 'नारी' है जो मान की प्रीति रख सके।

(६७५)

सुन सुन मुगधनि मझु उपदेस।
हम सिखायब चरित विसेस॥
पहिलहि अलकातिलका करि साज।
वंकिम लोचने काजर राज॥
जाओबि बसने झापि सब अंग।
दूरे रहबि जनु बात विभंग॥
सजनि पहले निअरे न जाबि।
कुटिल नयने धनि मदन जागाबि॥
झापबि कुच दरसायबि कन्ध।
दृढ़ करि बान्धबि नीविक बन्ध॥
मान करबि कछु राखबि भाव।
राखबि रस जनु पुन पुन आव॥

भनइ विद्यापति प्रेमक भाव।
जो गुनवन्त सोइ फल पाव॥

न० गु० ११२

(६७५) मन्तव्य :—इस पद के प्रथम दो चरण और भणिता नूतन हैं। अवशिष्ट अंश वर्त्तमान संस्करण के २७५ संख्यक पद का बंगला रूप है। नेपाल और मिथिला में प्रचलित पद के जिन जिन अंशों का अर्थ बंगाल में सहज में समझ में नहीं आया, उन उन अंशों को परिवर्तित कर दिया गया है।

यथा, नेपाल पद में – जाएब बसने आंग लेब गोए। दूरहि रहब तें अवथित होए॥

बंगाली पद में – जाओब बसने झापि सब अंग। दूरे रहब जनु बात विभंग॥

नेपाल पद में—हम सिखओबि अओर रस रंग। अपनहि गुरु भए कहत अनंग।

भाव अति सुन्दर है ; किन्तु बंगाल के वैष्णव पदसंग्रह में इसे छोड़ दिया गया है।

(६७६)

न जानि प्रेमरस नहि रति रंग।
केमने मिलब हाम सुपुरुख संग॥
तोहारि वचने यब करब पिरीत।
हाम शिशुमति ताहे अपयश भीत॥
सखि हे हाम अब कि बोलब तोय।
ता सञे रभस कवहु नाहि होय॥

सो बर नागर नव अनुराग।
पाँचसरे मदन मनोरथ जाग॥
दरशे आलिगन देयब सोइ।
जिउ निकसब यब राखब कोइ॥
विद्यापति कह मिछइ तरास।
शुनह ऐछे नह ताक विलास॥

प० स० पृ० ४३ ; प० त० ६४ ; कीर्त्तनानन्द २८६ ; सा० मि० २७ : न० गु० १३५

अनुवाद—(मैं) प्रेम रस नहीं जानती, रतिरंग भी नहीं जानती। किस प्रकार सुपुरुष के साथ मिलन होगा। तुम्हारी बातों में पड़ कर यदि प्रीति करूँ, (मैं शिशुबुद्धि (हूँ) अपयश से बहुत डरी हुई हूँ। ए सखि, अभी मैं तुमको क्या कहूँ ? उसके साथ कभी भी रस की बात नहीं होती। हे रसिकश्रेष्ट, (उसका) नवीन अनुराग है। मदन के पंचशर से मनोरथ जाग उठेगा। वह देखते ही आलिंगन करेगा। जब जीवन बाहर होगा तो रक्षा कौन करेगा? विद्यापति कहते हैं, भय मिथ्या है, उसका विलास इस प्रकार का नहीं है।

(६७७)

एके[1] धनि पदुमिनि सहजहि छोटि।
करे धरइत[2] करुना कर कोटि॥
हठ परिरम्भने[3] नहि नहि बोल।
हरि डरे हरिनी हरि-हिये डोल॥

वारि[4] विलासिनि आकुल कान।
मदन-कौतुक किए हठ नहि मान॥
नयनक अंचल चंचल भान।
जागल मनमथ[5] मुदित नयान॥

विद्यापति कह ऐसन[6] रंग।
राधामाधव पहिलहि संग।

प० स० पृ० ४४ : प० त० ६६; क्षणदा पृ० ५७ : कीर्त्तनानन्द २१७ ; न० गु० १२८

शब्दार्थ—पदुमिनी—पद्मिनी जातीया रमणी; करुना—कातरोक्ति; परिरम्भने—आलिंगन में; हरि डरे—सिंह के भय से; हरि-हिये—हरि के हृदय में; मदन-कौतुकि किए हठ नहि मान—मदन के विषय में कौतूहल-विशिष्ट जन किसी प्रकार के बल-प्रकाश को स्वीकार नहीं कर लेते हैं ? राधामोहन ठाकुर कहते हैं—"मदन कुतुकिनी नवकामापि अधिक लज्जादिना तस्य हठं न मनुते, तत्रहेतुः—प्रथमतः पद्मिनी तत्रापि तन्वंगी; अतएव करस्पर्शे शोकस्थायिभावक-करुणरसा-भिर्भाव-कोटयः कतिपया भवन्ति।"

---

(६५०) क्षणदा का *पाठान्तर*—(१) ओ (२) धरइते (३) नयने निझर झरू (४) वालि (५) मनसिज (६) ऐछन।

मन्तव्य—२८५ संख्यक पद में इस पद की प्रथम ६ कलियाँ है, परन्तु परिवर्त्तित आकार में पायी जाती हैं। उक्त पद में केवल प्रथम सम्भोग के दैहिक विकार का वर्णन है परन्तु इस पद की सप्तम और अष्टम् कलियाँ समग्र वर्णन को भावसमृद्ध कर देती हैं।

अनुवाद--एक तो धनी पद्मिनी, उसपर स्वभावतः छोटी, हाथ धरते ही कोटि मिनती करने लगती है। जोर करके आलिंगन करने में ना, ना, कहने लगती है, सिंह के भय से हरिणी हरि के वक्ष में काँपती हुई लगी रहती है। विलासिनी बाला (विलास की इच्छा है, परन्तु उम्र की छोटी है) कामाकुल कन्हायी, मदन के विषय में कौतूहलवशतः किसी प्रकार बल प्रकारा न स्वीकार नहीं कर सकती है। नयन का अंचल अर्थात् सीमा (कटाक्ष) चंचल हो गयी, (सम्भोग—रसानुभूति हेतु) नयन मुदित हुए, मन्मथ जागा। विद्यापति कहते हैं इसी प्रकार का रंग है, राधा-माधव का प्रथम मिलन है।

(६७८)

सुन सुन सुन्दर कन्हाई।
तोहे सोंपल धनि राई॥
कमलिनि कोमल कलेवर।
तुहु से भूखल मधुकर॥
सहज करबि मधुपान।
भूलह जनु पँचबान।
परबोधि पयोधर परसिह।
कुंजर जनि सरोरुह॥

गनइत मोतिम हारा
छले परसबि कुचभारा॥
न बुझए रतिरस-रंग।
खन अनुमति खन-भंग॥
सिरिस-कुसुम जिनि तनु।
थोरि सहब फुल-धनु॥
विद्यापति कवि गाव।
दूतिक मिनति तुए पाव॥

प० त० २२२ ; न० गु० १४१

शब्दार्थ—कुंजर—श्रेष्ठ ; गनइत—गिनते समय ; थोरि—अल्प।

अनुवाद—सुन्दर कन्हायी, सुन, सुन्दरी राधिका को तुम्हें ही समर्पण कर रही हूँ। कमलिनी कोमलांगी, तुम क्षुधित भ्रमर। सहज ही मधुपान करना पंचबाण अर्थात् कन्दर्प का कुसुमशर भूलना मत अर्थात् कन्दर्प जिस प्रकार कुसुम-शर से नायक-नायिका का कोमल चित्त विद्ध करता है, उसी प्रकार तुम भी सावधानी से भोग करना। प्रबोध देकर उत्तम कमलतुल्य पयोधरों का स्पर्श करना। मोतियों का हार गिनने के समय छल से स्तनभार का स्पर्श करना। रति-रस-रंग नहीं समझती, क्षण में अनुमति देती है, क्षण में उसको भंग कर देती है। शिरीष पुष्प के समान तनु, धीरे-धीरे पुष्पधनु का सहन कराना। विद्यापति कवि गान करते हैं, तुम्हारे चरणों में दूती की यही विनती है।

तुलनीय—पिब मधुप बकुल कलिकां
दूरे रसनाग्रमात्रमाधार।
अधर विलेप समाप्ये
मधुनि मुधा वदनमर्पयसि॥
—आर्यासप्तशती।

(६७६)

परिहर, ए सखि, तोहे परनाम।
हम नहि जाएब से पिया ठाम[1] ॥
वचन-चातुरि हम किछु नहि जान[६]।
इंगित न बुझिए न जानिए मान[३] ॥
सहचरि मिली बनावए भेस।
बाँधए न जानिए अपन केस[२] ॥
कभु नहि सुनिए सुरतक बात।
कैसे मिलव हम[६] माधव साथ[४] ॥
से वरनागर[७] रसिक सुजान।
हम अबला[५] अति अलप-गेआन ॥
विद्यापति[८] कह कि बोलव तोए।
आजुक मीलन समुचित होए ॥

क्षणदा पृ० ३०; प० स० पृ० ४२; प० त० १११; कीर्त्तनानन्द २८६; सा० मि० २८; न० गु० १३४।

अनुवाद—हे सखि, मुझे छोड़ो, तुमको प्रणाम करती हूँ, मैं उस प्रियतम के निकट नहीं जाऊँगी। मैं कुछ भी वचन-चातुरी नहीं जानती। इशारा नहीं समझती, मान करना नहीं जानती। सखियाँ मिलकर वेश-भूषा कर देती हैं। मैं अपना केश भी बाँधना नही जानती। कभी भी सुरत की बातें नहीं सुनी। माधव के साथ किस प्रकार मिलन होगा ? वे अभिज्ञ रसिक नागर श्रेष्ठ हैं मैं अबला अति अल्पज्ञान हूँ। विद्यापति कहते हैं, तुम्हें क्या कहें। आज का मिलन समुचित है।

---

(६७६) क्षणदागीत चिन्तामणि का *पाठान्तर*—(१) हाम नाहि जाओब सो पिया ठाम
(२) अनेक यतन करि कराओलि वेश
बन्धिते ना जानिए आपन केश ॥
(३) इंगिते ना जानिये कैछन मान
वचनक चातुरि हाम नहि जान ॥
(४) कबहु ना जानिए सुरतक बात
कैछे मिलब हाम माधवक साथ ॥ (५) नवनागरी

पदामृत समुद्र के अनुसार *पाठान्तर*—(१) हाम नाहि जाओब कन्हुक ठाम
(२) सहचरि मेलि वनाअत वेश
बान्धिते ना जानि आपन केश ॥ (६) 'हम' नहीं है।
(७) नवनागर (८) विद्यापति कह कि बोलव तोए
आजक मिलन समुचित होए।
(९) वचनक चातुरि हाम नाहि जान

मन्तव्य—राधामोहन ठाकुर 'हाम नाहि जायब सो पिया ठाम' देखकर अनुमान करते हैं कि पिया' पाठ लिपिकर का प्रमाद है, क्योंकि इस स्थल पर राधा कृष्ण को प्रिय नहीं कह सकती है—यथा इति दृष्टपाठस्य संगतार्थानभिधानादेक-पुस्तक दृष्टत्वाच्च लिपिकर प्रमादजत्वं बोध्यम्'। सतीशचन्द्र ने 'पिया' के स्थान पर 'कानु' पाठ माना है।

(६८०)

सखि परबोधि सयन-तल[1] आनि।
पिय[2] हिय-हरखि धएल निज-पानि॥
छुअइत बालि[3] मलिन भै गेलि।
विधु-कोर मलिन कुमुदिनि भेलि[4]॥
नहि नहि कहइ नयन झर लोर।
सूति रहलि राहि सयनक ओर॥

आलिंगए नीविबन्ध बिनु खोरि[5]।
कर कुच परस सेह भेल थोरि[6]॥
आँचर लेइ बदन पर झाँप[1]।
थिर नहि होअइ थर थर काँप॥
भनइ विद्यापति धीरज[7] सार।
दिन दिन मदनक होय अधिकार[8]॥

क्षणदा पृ० ३३; कीर्त्तनानन्द २१६; न० गु० १४२

अनुवाद—सखी प्रबोध देकर शय्यातल पर ले आयी; प्रिय ने आनन्दित होकर अपने हाथ में नायिका का हाथ रखा। बालिका को छूते ही वह मलिन हो गयी, (मानों) चाँद की गोद में कमल म्लान हो गया हो। ना ना कहते नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, राइ शय्या के प्रान्त में सो गयी। नीविबन्ध बिना खोले ही आलिंगन किया। पयोधरों पर अल्प कर-स्पर्श हुआ। उसने आँचल से मुख ढाँक लिया। स्थिर होकर रह न सकी, थर-थर काँपने लगी। विद्यापति कहते हैं, धैर्य ही सार है, दिनों-दिन मदन का अधिकार हो रहा है।

(६८१)

थर-थर काँपल लहु लहु भास[1]।
लाजे न वचन करए परकास॥
आजु धनि पेखल बड़ बिपरीत।
खन अनुमति खन मानए भीत॥
सुरतक नामे मुदए दुइ आखि।
पाओल मदन महोदधि साखि॥

चुम्बन वेरि करए मुख वंका।
मिलन चाँद सरोरुह अंका॥
नीविबन्ध परसे चमकि उठे गोरी।
जानल[3] मदन भण्डारक चोरी॥
फुयल वसन हिया भुजे रहु साँठि।
बाहिरे रतन आचरे देइ गाँठि॥

विद्यापति कि बुझव बल हरि।
तेजि तलप परिरम्भन वेरि[4]॥

क्षणदा पृ० २२, न० गु० २११, पंडित बाबाजी की पोथी पद संख्या ७०

(६८०) क्षणदा की मुद्रित पोथी का *पाठान्तर*—(१) सेजतले (२) पिया (३) छुइते बाला (४) विधुकरे कुमुदिनि कमलिनि भेलि (यह पाठ उत्कृष्टतर है) (५) आलिंगए नीविबन्ध खोलि (६) आँचर लेइ वदन उर झाँपे (यह पाठ अपेक्षाकृत अच्छा लगता है)। करे कुच परसे सेह भेल थोरि।
(७) धैरज (८) दिने दिन मदन करये अधिकार।

(६८१) क्षणदा की मुद्रित पोथी का *पाठान्तर*—(१) थर हरि काँपए लहु लहु भास (२) महोदधि; पंडित बाबाजी की पोथी का *पाठान्तर*—प्रारम्भ में हैं—'थर हरि काँपए लहु-लहु हास।
'लाजे वचन ना करये परकाश।'
(३) जागल (४) शेष दो चरण—"रसिक शिरोमणि नागर कान।
विद्यापति कहे कर मधुपान॥"

शब्दार्थ—महोदधि—महासमुद्र ; फुयल—खुल गया ; तलप—शय्या ।

अनुवाद—धीरे धीरे बातें करती थर-थर काँपने लगी। लज्जा से वचन प्रकाशित न कर सकी। आज धनी को बड़ी ही अद्भुत देखा, क्षण में सम्मति प्रकाशित करती थी, क्षण में भय खाती थी। सुरत के नाम से ही दोनों आँखें बन्द कर लेती थी। मानो वह मदन के महासमुद्र का साक्षात् कर रही हो (अकूल समुद्र देख कर डर गयी)।

चुम्बन के समय मुख फिरा लेती थी, पद्म ने मानों चाँद का आलिंगन पाया हो (चन्द्रमा के उदय से कमल-म्लान हो गया है), नीविबन्ध स्पर्श करते ही सुन्दरी चमक उठती थी, समझी कि मदन का भण्डार चोरी हो जायगा। वसन खुल गया है, छाती को हाथों से ढाँक कर रखे हुई है। (किन्तु वह नहीं समझ रही है कि) यह (मानों) रत्न को बाहर रख कर आँचल की गाँठ दी जा रही है। हे हरि, कहो, विद्यापति क्या समझावें, वह तो आलिंगन के समय शय्या छोड़ कर चला जाना चाहती है।

(६८२)

हृदय आरति बहु भय तनु काँप।
नूतन हरिनि जनु हरिन करु झाँप॥
भुखल चकोर जनि पिवइत आस।
ऐसन समय मेघ नहि परकास॥

पहिल समागम रस नहि जान।
कत कत काकु करतहि कान॥
परिरम्भन बेरि उठइ तरास।
लाजे वचन नहि कर परकास॥

भनइ विद्यापति इह, नहि भाय।
जे रसवन्त सेहो रस पाय॥

न० गु० १६१ ; अज्ञात।

अनुवाद—हृदय की आरति (आकांक्षा) बहुत, शरीर भय से काँपता है। नव (यौवन) हरिणी को मानों हरिण आवृत कर रहा हो। तृषात चकोर मानों पान करने को इच्छुक, इस समय मेघ का प्रकाश मानों नहीं हो रहा हो। प्रथम समागम में रस नहीं जानती, कन्हायी को कितनी विनती करती है। आलिंगन के समय डर से उठ बैठती है, लज्जा से बात नहीं करती। विद्यापति कहते हैं, यह शोभा नहीं देता, जो रसिक है, वही यह रस पाता है।

(६८३)

अनेक यतन करि आनलो पास।
खेने खेने खेने धनि छाड़ये निशास॥
अध सुधामुखि चुम्बन दान।
रोगी करये यैछे औषध पान॥

ना मिलये आखि ना कहे रसबात।
निविबन्ध फुयाइते चले पद आध॥
कुचयुग परसिते मोड़इ अंग।
मन्त्र न माने जनु बाल भुजंग॥

भनये विद्यापति सुन वरकान।
अलपे अलपे तुहु कर मधुपान॥

पंडित बाबाजी की पोथी, पद ६८

अनुवाद—अनेक यत्न करके (नायिका-को नायक के) पास ले आयी। धनी क्षण-क्षण पर दीर्घ निश्वास का परित्याग करती है। नायक जब चुम्बन करना चाहता है, उस समय वह मुख नीचे कर लेती है, लगता है जैसे रोगी औषध का पान कर रहा हो। आँख से आँख नहीं मिलाती, रस की बात नहीं कहती। नीविबन्ध खोलते ही अर्द्ध पद अग्रसर होती है (चल जाना चाहती है) कुचयुग छूते ही अंग मोड़ लेती है—जैसे तरुण सर्प मन्त्र नहीं मानता। विद्यापति कहते हैं, हे कन्हायी, तुम धीरे धीरे मधुपान करो।

(६८४)

पहिलहि राइ कानु दरशन भेलि।
परिचय दुलह दूरे रहु केलि॥
अनुनय करइ अवनत वयनी।
चकित विलोकने नख लिख धरणी॥
अंचल परशिते चंचल कान्ह।
राइ- कयल पद आध पयान॥
विदगध नायर अनुभव जानि।
राइक चरणे पसारल पानि॥
करे कर धरिते उपजल पेम।
दारिद घट भरि पाओल हेम॥
हासि दरसि मुख झाँपल गोरी।
देइ रतन पुन पुन लेयि चोरि॥

भनहुँ विद्यापति सुन सुजान।
प्रेम भरे भुलल रसिक वरकान॥

पंडित बाबाजी की पोथी पद ८८।

अनुवाद—राइ और कन्हायी का प्रथम साक्षात्कार (मिलन) हुआ। केलि तो दूर रहे, परिचय ही दुर्लभ हुआ। वह मुख नीचे करके अनुनय करने लगी; चकित नयनों से पृथ्वी पर नख से दाग बनाने लगी। चपल कन्हायी ने ज्योंही उसका अंचल स्पर्श किया कि त्योंही राइ ने चल जाने के लिए आधा कदम बढ़ाया। नायक रसिक, इसीलिए नायिका के मन का भाव समझ कर राइ के चरणों पर हाथ रखा। हाथ में हाथ धरते ही प्रेम जागा। दरिद्र ने मानों घड़ा भर स्वर्ण पाया (घट शब्द में कुच की ध्वनि है)। गौरांगी ने हँस कर, ताक कर, कपड़े में मुख छिपा लिया—लगा जैसे रत्न दान करके फिर उसने उसकी चोरी की हो। विद्यापति कहते हैं, हे सुजन, सुन, रसिक कन्हायी प्रेम में भूले।

(६८५)

जतने आयलि धनि सयनक सीम।
पाओर लिखि खिति नत रहु गीम॥
सखि हे, पिया पास बैठइ राइ।
कुटिल भौंह करि हेरइछि काइ॥
नवि वर नारि पहिल पिया मेलि।
अनुनय करइत रात आध गेलि॥
कर धरि वालमु वैसायल कोर।
एक पए कहे धनि नहि नहि वोर॥
कोरे करइते मोड़ई सब अंग।
प्रबोध न माने जनु वाल भुजंग॥
भनये विद्यापति नागरि रामा।
अन्तरे वाहिरे दानिन वामा[1]॥

कीर्त्तनानन्द ३१२, न० गु० १५४।

६८५ पाठान्तर—(१) नगेन्द्र बाबू का पाठ—अन्तरे दाहिन वाहर वामा।

शब्दार्थ—पाओर—पाँव से ; गीम—ग्रीवा ; दानिन—दाहिन, दक्षिण, अनुकूल।

अनुवाद—धनी यत्नपूर्वक शय्या के प्रान्त पर आयी, पाँव की उँगलियों से जमीन खुरेचने लगी, गर्दन झुकाए रही। हे सखि, प्रियतम के पास राधा बैठी, भ्रू बंकिम कर किसे देख रही है ? प्रिय के प्रथम मिलन में नूतन रमणी श्रेष्ठ। अनुनय करते करते ही आधी रात कट गयी। बल्लभ ने हाथ पकड़ कर गोद में बिठाया, धनी बार-बार ना ना ना कहने लगी। गोद में लेते ही उसने सारा अंग मोड़ लिया, जिस प्रकार सर्पशिशु प्रबोध नहीं मानता (वशीभूत नहीं होता)। विद्यापति कहते हैं, चतुरा नारी, अन्तर में दक्षिण, बाहर बाम है, अर्थात् भीतर से खुश, ऊपर से विमुख है।

(६८६)

अबोध कुमति दूति ना शुनल बाणी।
करिवर कोरे नलिनी दिल आनी॥
हाम नलिनी उह कुलिसक सार।
नलिनी सहब कैछे गिरिवर भार॥
कह सखि कानुक परिहार मोर।
अलपे अलपे साध पुरबहु तोर॥

नव नव बैठल मदन बाजार।
परसहि लुटकि परधन आर॥
हय यदि नागरी नागर विलास।
पहिले सहन करि देइ आशोयास॥
भनये विद्यापति शुन पर कान।
भुखित जन किये दुइ करे पान॥

पण्डित बाबाजी की पोथी का पद ६६।

अनुवाद—निर्बोध और दुष्टमति दूती ने बात नहीं सुनी, प्रकाण्ड हाथी की गोद में नलिनी लाकर रख दिया। मैं नलिनी और वह वज्र का सार। नलिनी क्या पर्वतश्रेष्ठ का भार सहन कर सकती है ? हे सखि, कानु को मेरी दोहाई कहो, मैं धीरे धीरे उनकी साध पूरी करूँगी। मदन का बाजार अभी नया ही बैठा है, छूते ही क्या दूसरे का धन लूट लिया जाता है ? नागरी के साथ यदि नागर का विलास होता है तो पहले आश्वासन देकर सहन कराया जाता है। विद्यापति कहते हैं, हे वर कान, सुन, लोग क्या भूखे रहने पर दोनों हाथों से खाने लगते हैं ?

(६८७)

ए हरि जदि परसबि मोय।
तिरिवध-पातक लागए तोय॥
तुहु रस-आगर नागर ढीठ।
हम न बुझिए रस तीत कि मीठ॥

रस परसंग उठओं म काँप।
बाणे हरिनि जनि कएलन्हि झाँप॥
असमय आस न पूरए काम।
भल जने न कर विरस परिनाम॥

विद्यापति कह बुझलहुँ साँच।
फलहु न मीठ होअए काँच॥

कीर्त्तनानन्द २९८, पण्डित बाबाजी की पोथी का पद ७२ ; न० गु० १६५।

अनुवाद—माधव, यदि तुम मुझे जबरदस्ती छुओगे (तब) तुम्हें स्त्रीवध का पाप लगेगा। तुम रसिकश्रेष्ठ, निर्भय और शठ नगर, मैं नहीं समझती कि यह रस तीता है अथवा मीठा। रस के प्रसंग से मैं काँप उठती हूँ (तीर लगने पर) जैसे हरिणी तड़प उठती है। असमय की कामना से आशा पूर्ण नहीं होती, सद्व्यक्ति अन्त रसहीन नहीं करता अर्थात् सद्व्यक्ति ऐसा कार्य नहीं करता जिससे अन्त में फल नीरस हो जाए। विद्यापति कहते हैं, सत्य समझता हूँ, कच्चा रहने पर फल मीठा नहीं होता।

(६८८)

गरवें न कर हठ लुबुध मुरारि।
तुअ अनुरागे न जीव वर नारि॥
तुहु नागर गुरु हम अगेआन।
केलि कला सब तुहु भल जान॥

फुयल करबि मोर टूटल हार।
हम अबुध नारि तुहुत गोआर॥
विद्यापति कह कर अवधान।
रोगी करए जैसे औखध पान॥

अज्ञात; न० गु० १६६।

अनुवाद—हे लुब्ध मुरारि, गर्व करते हुए बल प्रकाशित मत करना, तुम्हारे अनुराग से रमणीश्रेष्ठ के प्राण नहीं रहेंगे। तुम रसिकगुरु, मैं अज्ञान, काम-कला तुम भली-भाँति जानते हो। कबरी खुल गयी, हार छितरा गया, मैं अल्पबुद्धि रमणी, तुम अविवेचक गोप। विद्यापति कहते हैं, मन लगा कर सुनो, रोगी जिस प्रकार औषध पान करता है (उसी प्रकार ये सब सहो)।

(६८६)

शुनह नागर निविबन्ध छोड़।
गाँठिते नाहि सुरत-धन मोर॥
सुरतक नाम सुनल हम आज।
न जानिये सुरत करये कोन काज॥

सुरतक खोज करब याहाँ पाओ।
घरे कि आछये नाहि सखिरे सुधाओ॥
वेरि एक माधव सुन मधु वानि।
सखिसये खोजि मागि दिब आनि॥

मिनति करये धनि मागे परिहार।
नागरि-चातुरि भन कवि कण्ठहार॥

कीर्त्तनानन्द ३१७; न० गु० १७२।

अनुवाद—नागर, सुन सुन, नीविबन्ध छोड़। (नीविबन्ध की) ग्रन्थि में सुरतधन नहीं है। सुरत का नाम मैंने आज सुना है, (मैं) नहीं जानती कि सुरत कौन काम करता है। जहाँ पाऊँगी, सुरतधन की खोज करूँगी। घर पर है या नहीं, सखी से पूछूँगी। एक बार माधव, मेरी बात सुनो, सखी के संग खोज कर माँग कर ला दूँगी। विनती करके सखी छूट जाना चाहती है। कवि-कण्ठहार नागरी की चातुरी कहते हैं।

(६६०)

रति-सुविसारद तुहु राख मान।
बाढ़िले जौवन तोहे देब दान॥
आवे से अलप रस न पूरब आस।
थोर सलिल तुअ न जाव पिआस॥

अलप अलप रति जदि चाहि नीति।
प्रतिपद चाँद-कला सम रीति॥
थोरि पयोधर न पूरब पानि।
न दिह नख-रेह हरि रस जानि॥

भनइ विद्यापति कैसन रीति।
काँच दाड़िम प्रति ऐसन प्रीति॥

कीर्त्तनानन्द २१६, न० गु० १६६।

अनुवाद—हे रति-सुविशारद, मेरा मान रखो, यौवन बढ़ने पर (आने पर) तुम्हें दान दूँगी। अभी रस थोड़ा है, आशा पूर्ण नहीं होगी, थोड़े पानी से तुम्हारी प्यास नहीं मिटेगी। प्रतिपद होते ही चन्द्रकला जिस प्रकार प्रत्यह वर्द्धित होती है, (उसी प्रकार) थोड़ा-थोड़ा नित्य रति-याचना करना। क्षुद्र कुच से हाथ नहीं भरेगा, हे हरि, रस जान कर नख-रेखा मत देना अर्थात् तुम स्वयं रसिक हो, तुम सब जान कर (पयोधर पर) नख-रेखा मत देना। विद्यापति कहते हैं, यह कैसी रीति है, कच्चे दाड़िम के प्रति इतनी प्रीति।

(६६१)

चानुर - मरदन तुहुँ बनमारि।
सिरिस-कुसुम हम कमलिनि नारि॥

दुति वड़ दारुन साधल वाद।
करि करे सोपल मालति माल॥
नयनक अंजन निरंजन भेल।
मृगमद चन्दन घामे भिगि गेल॥

विदगध माधव तोहे परनाम।
अवला बलि दए न पूजह काम॥
ए हरि ए हरि कर अवधान।
आनि दिवस लागि राखह परान॥

रसवति नागरि रस-मरिजाद।
विद्यापति कह पूरव साध॥

कीर्त्तनानन्द २२० ; न० गु० १६७।

अनुवाद—हे वनमाली, तुम चानुर-मर्दन, शिरीष-फूल के समान मैं पद्मिनी नारी। दूती बड़ी दारुण है, बाध साधा, मालती की माला हाथी के हाथ में दे दिया। नयन का अंजन पुछ गया, मृगमद और चन्दन पसीना से भीग गये। विदग्ध माधव, तुमको प्रणाम है, अबला की बलि देकर काम की पूजा मत करना। हे हरि (वाक्य) अवधान करो। अन्य दिनों के लिए जीवन रखो। रसिक नागरी, रस की मर्यादा रखती है ; विद्यापति कहते हैं, आशा पूर्ण होगी।

(६६२)

बुझल मोहे हरि बहुत अकार।
हिया मोर धस धस तुहु से गोआर॥
धिरे धिरे रमह टुटअ जनु हार।
चोरि रभस नहि कर परचार॥
न दिह कुचे नखरेख घात।
कहसे लुकाएब कालि परभात।

न कर विघातन अधरहि दसने।
लाज भय दुहु नहि तुअ थाने॥
न धर केस न कर ढिठपन।
अलपे अलपे करह निधुवन॥
तोमारे सोपलि तनु जनमेर मत।
अलपे समधान आजु अभिमत॥

नागरि सुन, कह कवि कण्ठहार।
विन्धल कुसुम-सरे, एमते विचार॥

कीर्त्तनानन्द २१८ ; न० गु० १७२।

अनुवाद—हरि, मैंने बहुत प्रकार से समझा कि तुम गवाँर हो ; मेरा हृदय काँप रहा है। धीरे धीरे रमण करो, हार मत छितरावो। चोरी किया हुआ आनन्द प्रचारित मत करो। कुच पर नख रेखा घात मत दो, कल सुबह में कैसे छिपाऊँगी। दाँत से अधर क्षत मत करो, तुम्हारे पास लज्जा और भय दोनों नहीं है। केश मत पकड़ो, ढीठपना अर्थात् बलप्रकाश मत करो, धीरे धीरे निधुवन करो। जन्म के समान शरीर तुम्हें समर्पित किया, आज का अभिमत अल्प ही समाधान करो। कवि कण्ठहार कहते है, नागरि,सुन, पुष्पधनु जिसे विद्ध कर चुका है उसका इसी प्रकार का विचार (व्यवहार) होता है।

(६६३)

ए हरि माधब कि कहब तोय।
अबला बल कए महत न होय॥
केस उधसल टुटल हार।
नख-घाते बिदारल पयोधर भार॥

दसनहि दंसल तुहु बनमारि।
सिरिस-कुसुम हेरि कमलिनि नारि॥
भनइ विद्यापति सुनु बरनारि।
आगिक दहने आगि प्रतिकारि॥

रसमंजरी ; न० गु० १७६

अनुवाद—हरिमाधव तुमको क्या कहूँ, अबला से जो बल प्रकाशित करता है वह महत् नहीं होता। केश अस्तव्यस्त हो गये, हार छिन्न हो गया, स्तनभार नखघात से विदीर्ण हो गया। कमलिनी नारी को शिरीष कुसुम के समान कोमल देख कर भी तुम वनमाली दाँत से दंशन कर रहे हो। विद्यापति कहते हैं, हे नारी श्रेष्ठ, सुन, अग्नि-दहन में अग्नि ही प्रतिकार है।

(६६४)

बाला रमनी रमने नहि सुख।
अन्तरे मदन दिगुन देइ दुख॥
सब सखि मेलि सुतायल बास।
चमकि चमकि धनि छाड़ये निसास॥

करइत कोरे मोड़ई सब अंग।
मन्त्र न सुनए जनु बाल भुजंग॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
तुहु रस सागर मुगुधिनि नारी॥

प० त० १३१ ; न० गु० २१२

अनुवाद—बाला रमणी, रमण में सुख नहीं, मदन भीतर रहकर दुगुना दुख देता है। सब सखियों ने मिलकर उसको निकट सुलाया, धनी चमक कर निश्वास छोड़ती है। आलिंगन करते ही समस्त अंग मोड़ती है, भुजंग शिशु मन्त्र श्रवण नहीं करता। विद्यापति कहते हैं, मुरारि, सुनो, तुम रस के सागर, (राइ) मुग्धा नारी।

(६६५)

नयन छलाछलि लहु लहु हास।
अंग हेरि हेरि गद गद भाष॥
मदन मदालसे नागर भोर।
शशिमुखी हासि हासि करु कोर॥
रसवति नागरी रसिक बर कान।
हेरइते चुम्बई नाह बयान।
दुहु पुन मातल दुहु रस हान।
विद्यापति करु सो हम गान॥

ड त बाबाजी की पोथी।

अनुवाद—नयन छलछल कर रहे हैं, थोड़ी-थोड़ी हँसी हो रही है; एक दूसरे का अंग देखकर गदगद वाक्य कह रहे हैं। नागर मदन मदालस से पूर्ण हो गया है—शशिमुखी हँसहँस कर आलिंगन दे रही है। नागरी रसवती, कन्हायी भी रसिक; नागरी ने नाथ का बदन देखते ही चुम्बन किया। दोनों के दोनों रस के माते हैं; एक दूसरे के प्रति रस का प्रहार किया—विद्यापति वही रस गान करने लगे।

(६६६)

सखि हे से सब कहिते लाज।
जे करे रसिक-राज॥
आंगिना आओल सेह।
हम चललुँ गेह॥
ओ धरु आँचर मोर।
फुयल कबरि मोर॥
ढीठ नागर चोर।
पाओल हेम-कटोर॥
धरिते धयल लाय।
तोड़ल नखेर घाय॥
चकोर चपल चाँद।
पड़ल प्रेमेर फाँद॥
कवि विद्यापति भान।
पूरल दुहुँक काम॥

प० त० ७३२; न० गु० ५५८

अनुवाद—हे सखि, रसिकराज ने जो जो किया वह कहते लज्जा आती है। वे आँगन में आए (उनको देखकर) मैं घर में चली (घर में प्रवेश करना चाहा)। उन्होंने मेरे अंचल का प्रान्त पकड़ लिया। मेरी वेणी खुल गयी। धृष्ट, चोर, नागर ने स्वर्ण का कटोरा पाया (अतिशयोक्ति अलंकार, स्तन स्वर्ण कटोरा)। उसको (हेम कटोरा) को पकड़ कर भाग चला और नख से आघात किया (जिससे) वह टूट गया। चकोर चंचल चाँद पर गिरा एवं प्रेम के फाँद में फँस गया (नायक चकोर और भागती हुई नायिका चंचल चाँद। किन्तु नायिका ने अनुरागवश उसका आलिंगन किया मानों चाँद फंदे में पड़ गया)।

(६६७)

हम अति भीति रहल तनु गोइ।
सो रस सागर थिर नहि होइ॥
रस नहि होएल कएल जे साति।
दयन-लता जनु दंसल हाति॥
पुन कत काकुति कएल अनुकूल।
तबहुँ पाप हिय मझु नहि भूल॥
हमारि अछल कत पुरुबक भागि।
फेरि आओल हम सो फल लागि॥
विद्यापति कह न करह खेद।
ऐसव होएल पहिल सम्भेद॥

प० त० २५२ ; न० गु० २०२ ; पंडित बाबाजी की पोथी का पद ७४

शब्दार्थ—गोइ—छिपा कर ; साति—शास्ति ; सम्भेद—मिलन।

अनुवाद—मैं अति भीत होकर देह छिपा कर रह गयी ; वह रस सागर स्थिर नहीं हुआ। जो शास्ति की, (उससे) रस नहीं हुआ, हाथी ने मानो द्रोणलता को दलित किया। फिर अनुकूल होने के लिए, कितनी काकुति की, तथापि पाप-हृदय भूला नहीं। मेरा कितना पूर्व का भाग्य था, उसी के फल से (फिर) मैं लौट कर चली आई। विद्यापति कहते हैं, आक्षेप मत करना, इसी प्रकार प्रथम सम्भोग होता है।

(६६८)

कि कहब रे सखि कहइते लाज।
जोइ कयल सोइ नागर राज॥
पहिल वयस मझु नहि रतिरंग।
दूति मिलायल कानुक संग॥
हेरइते देह मझु थरहरि काँप।
सोइ लुबध मति ताहे करु झाँप॥
चेतन हरल आलिगन बेलि।
कि कहब किये करल रस-केलि॥
हठ करि नाह कयल जत काज।
सो कि कहब इह सखिनि समाज॥
जाससि तब काहे करसि पुछारि।
सो धनि जो थिर ताहि नेहारि॥
विद्यापति कह न कर तरास।
ऐसन होयल पहिल विकास॥

प० त० २३६ ; न० गु० १६७

अनुवाद—हे सखि, क्या कहूँ, जो उस नागर राज ने किया उसे कहते लज्जा आती है। मेरा प्रथम वयस, रति-रंग हुआ नहीं, दूती ने कन्हायी के संग मिला दिया। देखते ही मेरा शरीर थर-थर काँपने लगा, लुब्धमति ने इसलिए उसे झाँप लिया। आलिंगन के समय चेतना हरण कर ली, किस-प्रकार रसकेलि की, किस प्रकार कहूँ। जबरदस्ती नाथ ने जितना काम किया, उसे इन सखियों के समाज में क्या कहूँ। यदि जानती है तो फिर पूछती क्यों है? उसे देख कर जो स्थिर रह सके, वह धन्य है (व्यंजना यह है कि उसे देखकर जो स्थिर रह सके वह अधन्या है) विद्यापति कहते हैं, भय मत करना, इसी प्रकार प्रथम विलास हुआ।

(६६६)

गलित वसन लुलित भूसन
फुयल कबरि भार।
आहा उहु करि जे किछु कहल
ताहा कि बिछुरि पार॥
कर कर धरि जे किछु कहल
वदन विहसि थोर।
जैसे हिमकर मृग परिहरि
कुमुद कयल कोर॥
रामा हे सपति करहु तोर।
सोइ गुनवति गुनगनि गनि
ना जानि कि गति मोर॥
निभृत केतने हरल चेतने
हृदये रहल बाधा।
भन विद्यापति भाले से उमति
विपति पड़ल राधा॥

प० त० २६०; प० स० पृ० ४५; न० गु० २१४

अनुवाद—हाथ में हाथ धर कर कुछ कहा, थोड़ा मुस्कुरा कर हँसी, मानो हिमकर ने (चन्द्र ने) मृग (कलंक) का परित्याग कर कुमुदिनी को गोद में लिया। रामा, तुम्हारी शपथ लेता हूँ, उस गुणवती के गुणों की गणना कर करके मेरी क्या गति होगी। वसन अस्तव्यस्त, भूषण लुण्ठित, केश खुले हुए, आह-ऊह करते हुए जो कुछ उसने कहा, क्या उसे भूल सकता हूँ? निभृत कुंज में चेतन हरण कर लिया, हृदय में व्यथा रह गयी, विद्यापति कहते हैं, वह उन्मत्त अच्छा, राधा विपद में पड़ी।

(७००)

सुन्दरि येकत गुपुत नेहा।
वंचित आजु करिअ नहि पारब
साखि देल तुअ देहा॥

जागि रजनि दुहु लोहित लोचन
अलस निमिलित भाँती।
मधुकर लोहित कमल कोरे जनि
सुति रहल मदे माती॥
सघने आलस सखी तुअ मुखमण्डल
गन्ड अधर छवि मन्दा।
कत रस पाने कयल सब नीरस
राहु उगिलल चन्दा॥

मन्तव्य—(६९९) पदकल्पतरु की किसी पोथी में 'का जानि कि गति मोर' के बाद है—

नव पयोधर परस दरसि
अधर अमिया देल।
दृढ़ आलिगने सब कलेवर
पुनहि अंकुर भेल।
अंगभंगि करि रस पसारल
लागल हृदय बाण।
से सब सङरि मदन दहन
संशय हइल प्राण॥

वेकत पयोधरे नखरेख भुखल
ताहे परल कुच भारा।
निजरिपु चाँद कलानिधि हेरइत
मेरु पड़ल आँधियारा॥

नवकवि सेखर कहिअ नहि पारत
दोख सपति करि जानी।
कत सत वेरि चोरि करु गोपन
वेरि एक वेकत वानी

प० न० २३२; न० गु० २७०

शब्दार्थ—गुपुत—गुप्त; नेह—स्नेह, प्रणय; साखिदेल—गवाही दी; उगिल—उगल दिया।

अनुवाद—सुन्दरि, गुप्त स्नेह व्यक्त (हो गया है)। आज तुम वंचित नहीं कर सकती हो, तुम्हारा शरीर ही गवाही दे रहा है। सखि, तुम्हारा मुखमण्डल आलस्यपूर्ण हो गया है। कण्ठ और अधर की आकृति मलिन हो गयी है। कितना रस पान करके सब को नीरस कर दिया है, (मानो) राहु ने चन्द्रमा को उगल दिया है अर्थात् राहुमुक्त चन्द्रमा के समान तुम्हारा मुख मलिन है। रात भर जागने के कारण दोनों आँखें लोहितवर्ण और अलस-निमीलित भाव, मानों मधुकर मधुपान से मत्त होकर लाल पद्म की गोद में शयन कर रहा हो। क्षुधित नखक्षत स्तन पर प्रकाशित है, उस पर केशभार पतित हो गया है, (मानो) अन्धकार अपने शत्रु कलानिधि (वदन) को देख कर सुमेरु (स्तन) पर भाग गया है। नवकविशेखर दोष ज्ञात होने पर भी, अङ्गीकार करके बोल नहीं सक रहे हैं, किन्तु भी सौ वार चोरी क्यों न छिपावो, एक वार बात खुल ही जायगी।

(७०१)

मन्दिरे आछिलुँ सहचरि मेलि।
परसंगे रजनि अधिक भइ गेलि॥
यत्र सखी चललहु आपन गेह।
तत्र मझु नीन्दे भरल सब देह॥
सूति रहल हम करि एक चीत।
दैव-विपाके भेल विपरीत॥
ना वोल सजनि सुन सपन सम्वाद।
हसइते केहु जनि कर परिवाद॥

विसाद पड़ल मझु हृदयक माझ।
तुरिते घोचायलु नीविक काज॥
एक पुरुख पुन आयल आगे।
कोपे अरुन आँखि अधरक दागे॥
से भय चिकुर चीर आनहि गेल।
कपाले काजर मुख सिन्दुर भेल॥
कतये करव केहु अपजस गाव।
विद्यापति कह के पतिआव॥

प० त० २४६; न० गु० ३२४

(७००) मन्तव्य—वर्तमान संस्करण के दूसरे और तीसरे पदों के भाव से इसका मेल है, किन्तु यह पद विद्यापति का नहीं है, केवल उसका अनुकरण मात्र है।

अनुवाद—[प्रथम मिलन के बाद नायिका के अंग पर रतिचिह्न देखकर कोई सखी कारण पूछती है; उस पर नायिका प्रकृत घटना को छिपा रही है।] सखियों के साथ घर में बैठी थी, बातें करते अधिक रात बीत गयी। जब सखियाँ अपने घर गयीं तो उस समय निद्रा से मेरी देह भरी हुई थी। सखी, स्वप्न की बात सुन, किसी से कहना मत, जिससे कोई हँस कर निन्दा न करे। मेरे हृदय में विषाद उपस्थित हुआ। (विपद में गात्रावरण कष्टदायक होता है, ऐसा सोच कर) मैंने कटि-वसन-ग्रन्थि ढीली कर दी। मैंने स्वप्न में देखा, एक पुरुष मेरे सामने आया। क्रोध से मेरी आँखें लाल हो गयीं एवं (अपने अधर पर खुद ही दाँत काटने से) अधर पर दाग पड़ गया। उसके डर से वस्त्र केश अस्तव्यस्त हो गये (स्खलित हो गये)। इतना उलट पुलट हो गया कि मेरे कपाल पर काजल और मुख पर सिन्दूर लग गया (नायिका के नेत्र ललाट और ओठ यथाक्रम चूम कर नायक ने आँख का काजल ललाट पर और ललाट का सिन्दूर मुख पर लगा दिया)। और किसी के कहने पर वह अपयश की घोषणा करने लगेगा। विद्यापति कहते हैं, इसका विश्वास कौन करेगा?

(७०२)

आजु मझु सरम भरम रहु दूर।
अपन मनोरथ सो परिपूर॥
कि कहब रे सखि कहइते हास।
सब विपरीत भेल आजुक विलास॥

जलधर उलटि पड़ल महीमाझ।
उयल चारु धराधर-राज॥
मरकत दरपन हेरइते हाम।
उच नीच न बुझि पड़लु सोइ ठाम॥
पुन अनुमानिअ नागर कान।
ताकर वचने भेल समाधान॥

निवासे बास पुन देयल सोइ।
लाजे रहलु हिये आनन गोइ॥
सोई रसिकवर कोरे आगोरि।
आँचरे स्रमजल मोछल मोरि॥
मृदु मृदु विजइत घुमल हाम।
भनइ विद्यापति रस अनुपाम॥

प० त० ११०० ; न० गु० ५८१

अनुवाद—(विपरीत रसोद्गार) :—आज मेरा सब सरम-भरम दूर गया। उस (कन्हाई) ने अपना मनोरथ पूर्ण कर लिया। आज का विलास (केलि) समस्त विपरीत हुआ। (मानो) जलधर (कृष्ण) उलट कर पृथ्वी तल पर गिर पड़ा एवं उसके ऊपर सुन्दर पर्वत युगल (पयोधर) लद गया। मैं मरकत निर्मित दर्पण देख कर ऊँच-नीच न समझ कर उसी जगह पड़ गयी (कृष्ण के दर्पण तुल्य स्वच्छ सुन्दर वक्ष पर गिर गयी)। पीछे अनुमान किया यह (मरकत दर्पण नहीं) नागर कृष्ण हैं। उसकी बातें सुनकर (सन्देह का) शेष हो गया (सन्देह मिट गया)। उसने फिर विजन को (मुझको) वस्त्र दिया, लज्जा से उसके हृदय में मुख छिपा लिया। (उसके द्वारा) मृदुवीजन होते होते मैं सो गयी।

(७०३)

विगलित चिकुर मिलित मुखमण्डल
चाँद वेढ़ल घनमाला ।
मनिमय-कुण्डल स्रवणे दुलित भेल[1]
घांमे तिलक बहि गेला ॥
सुन्दरि तुअ मुख मंगल-दाता ।
रति-विपरीत-समय-यदि राखबि[2]
कि करब हरि हर धाता ॥

किंकिनी किनि किनि कंकन कनकन
कल रव[3] नूपुर बाजे ।
निज मदे मदन पराभव मानल[4]
जय जय डिंडिम बाजे[5] ।
तिल एक[6] जघन सघन रव करइत
होयल[7] सैनक भंग ।
विद्यापति पति ओ रस गाहक[8]
जामुने मिलल गंग तरंग ॥

प० त० १०७६ ; प० स० पृ० ८६ ; क्षणदा पृ० १८४ ; न० गु० ५८४

अनुवाद—चिकुर गलित (मुक्त) हो कर मुखमण्डल पर छा गया, मेघमाला (केश) ने चन्द्रमा (मुख को) को घेर लिया । मणिमय कुण्डल कानों में हिलने लगे ; पसीने से तिलक मिट गया । सुन्दरी, तुम्हारा मुख मंगल दायक है ; विपरीत रति के समय तुम यदि रक्षा करो तो हरि हर विधाता मेरा क्या कर लेंगे । उनका क्या प्रयोजन है ? ('रति विपरीत समये यदि राखबि' अर्थात् तद्रसं यदि स्थगयसि तदा हरिहरादयः किं करिष्यन्ति तवाधीनोऽहम्—राधामोहन ठाकुर की टीका ।)

तुलनीय—

आलोलमलकावलिं विलुलितां विभ्रच्चलत् कुण्डलं ।
किंचिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां शीकरैः ॥
तन्वया यत् सुरतान्ततान्त नयनं वक्त्रं रतिव्यत्यये ।
तत् त्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ।
अमरु शतक ।

(विलुलिता आलोलअलकावलीशोभित चंचल कुंडलधारी, अल्प अल्प घर्मबिन्दु से किंचित् तिरोहित नयनी तन्वी का मुख तुम्हारी चिरदिन रक्षा करे, हरिहर ब्रह्मा इत्यादि देवताओं का क्या प्रयोजन) ? किंकिणी, कंकण और नूपुर बजने लगे । मदन ने अपने गर्व का पराभव पाया । एक तिल जघन सघन रव करते ही (मदन की) सेना भंग हो गयी । विद्यापति कवि यह रस गाते हैं, यमुना में गंगा की तरंग मिल गयी ।

---

(७०३) क्षणदा की मुद्रित पोथी का *पाठान्तर*—(१) चंचल कुंडल चपले गंडाओल (२) 'रति-रणे रमणी पराभव पाओव' (३) घन-घन (४) रति विपरीत भेल मदन समापल (५) जय जय दुन्दुभि बाजे (६) तिले एक

पदामृत समुद्र का *पाठान्तर*—(४) रति रणे मदन पराभव मानल (६) तिले एक (७) होयव
(८) सायक

(७०४)

सखि हे कि कहब नाहिक ओर
स्वपन कि परतेक कहइ न पारिये
किये अति निकट कि दूर ॥
तड़ति लतातले तिमिर सम्भायल
आँतरे सुरधुनि धारा ।
तड़ित तिमिरशशि सूर गरासल
चौदिगे खसि पडु तारा ॥
अम्बर खसल धराधर उलटल
धरणि डगमग डोले ।
खरतर वेग समीरन संचरु
चंचरिगन करु रोले ॥
प्रलय पयोधिजले जनु झापल
इह नह युग अवसाने ।
को विपरीत कथा पतिआयव
कवि विद्यापति भाने ॥

प० स० पृ० ६२; पदकल्पतरु १०१६; न० गु० ५८९

शब्दार्थ—परतेक—प्रत्यक्ष ; सम्भायल-प्रवेश किया ; आँतरे—बीच में ; अम्बर—आकाश, वस्त्र ; धराधर—पर्वत, पयोधर ; चंचरि—भ्रमरी ; झाँपल—आवृत किया ।

अनुवाद—(विपरीत रति का वर्णन): –सखि, क्या कहूँ, कहने का अन्त नहीं है । (मेरा अनुभव है) स्वप्न था या प्रत्यक्ष, निकट था या दूर कह नहीं सकती । (नायिका रूपी) विद्युत् के तले (नायक रूपी) तिमिर ने प्रवेश किया ; दोनों के बीच सुरधुनी की धारा (मुक्ता का हार) । (नायिका के उन्मुक्त केशपाश रूपी) तरल तिमिर ने मानों शशि (चन्दनविन्दु) और सूर्य (सिन्दूर विंदु) को ग्रस लिया । चारो ओर तारा (गले के हार की छितराई हुई फूल की कलियाँ) मानों फैले पड़े थे । अम्बर (साधारण अर्थ आकाश, अन्य अर्थ वस्त्र) गिर पड़ा, पर्वत (कुच युग) उलट पड़ा ; धरणी (नितम्ब) डगमग डोल रही थी । प्रबल वेग से वायु बह रही थी (निश्वास जोरों से चल रही थी) ; भ्रमरियाँ कलरव कर रही थीं (चीत्कार ध्वनि हो रही थी) । प्रलय पयोधि जल ने मानों आच्छादन कर लिया था (स्वेद से सारा शरीर आप्लुत हो गया था) ; किन्तु यह (आकाश का गिरना, पहाड़ का उलटना, सूर्य और चन्द्रमा का अन्धकार द्वारा ग्रसित होना, पृथ्वी का हिलना इत्यादि प्रलयकालीन व्यापार मालूम होने पर भी) युग का अवसान नहीं था । विद्यापति कहते हैं, इस विपरीत (असम्भव, निगूढ़ार्थ में विपरीत रति) की बात कौन विश्वास करेगा ।

(७०५)

कुचयुग चारु धराधर जानि ।
हृदि पैठय जनि पहुँ दिल पानि ॥
घामविन्दु मुखे हेरए नाह ।
चुम्बए हरसे सरस अवगाह ॥
बुझइ न पारिये पियामुखभास ।
वदन निहारिते उपजए हास ॥
आपन-भाव मोहे अनुभावि ।
ना बुझिये ऐसने किए सुख पावि ॥
ताकर वचने कयलुँ सब काज ।
कि कहब सो सब कहइते लाज ॥
ए विपरीत विद्यापति भान ।
नागरी रमइत भय नहि मान ॥

प० त० १०१६ ।

अनुवाद—(विपरीत सम्भोग का वर्णन) :—प्रभु ने कुचयुग को पर्वत समझ कर और इस भय से कि वह उनके हृदय में प्रवेश कर जाएगा उस पर हाथ दिया (हाथ में मानों उसे रोके रहे)। मेरे मुख पर का श्रमजनित स्वेद प्रभु देखने लगे एवं हर्ष के साथ सरस अवगाहन कर चूमने लगे। प्रिय के मुख की भाषा समझ नहीं सकती, उनका मुख देखते ही हँसी आने लगी। इस तरह अपना भाव (पुरुष का भाव) मुझ से अनुभव करके उन्हें क्या सुख मिला, मैं समझ नहीं सकती। उनकी बात से सब कुछ किया, वह सब बात क्या कहूँ, कहते लाज लगती है। विद्यापति यह विपरीत कहते हैं कि नागरी द्वारा रमण कराते नागर को भय नहीं हुआ।

(७०६)

शास घुमायत कोरे आगोरि।
तहिँ रति-ढीठ पीठ रहुँ चोरि॥
किये हम आखरे कहलु बुझाई।
आजुक चातुरी रहव कि जाइ॥
ना करह आरति न अबुध नाह।
अब नहि होएत बचन निरवाह॥
पीठ आलिंगने कत सुख पाव।
पानिक पियास दुधे किये जाव॥
कत मुख मोरि अधर रस लेल।
कत निसबद करि कुचे करदेल॥
समुखे ना जाय सघन निसोयास।
काहे किरन भेल दसन-विकास॥
जागल ससि चलत तब कान।
न पूरल आस विद्यापति भान॥

प० त० ७२१ ; कीर्त्तनानन्द पृ० २५६।

अनुवाद—सास गोद में (मुझे) लेकर सोयी थी। इसलिए (तथापि) रति शठ चुप-चुप मेरे पीठ के निकट आ बैठा (चुप चुप पीछे से आकर सो गया)। कितनी तरह संकेत करके उसे समझाना चाहा। आज की चतुरता रहेगी या जायगी (पकड़ा जायगा कि नहीं—यही सन्देह स्थल था)। हे अबोध नाथ, व्याकुलता मत दिखलाना। (सास जाग जायगी) पीठ का आलिंगन करके कितना सुख पावोगे। जल की प्यास कहीं दूध से मिटती है? मेरा मुख फिरा कर कितना चुम्बन किया, निःशब्द हो व्यक्त कुचों पर हाथ दिया। उनका सघन निश्वास सम्मुख की दिशा में नहीं जाती थी (न तो सास की नींद टूट जाती)। (किन्तु उन्होंने अपनी चालाकी से अपने ही हँस कर सब नष्ट कर दिया) दन्तविकाश और (तज्जनित) दीप्ति क्यों हुए)! सास जाग उठी। तब नागर निरुपाय होकर चले गये। विद्यापति कहते हैं कि आशा पूर्ण नहीं हुई।

---

७०६ यह पद अकृत्रिम मालूम होता है। यदि यह बंगाली विद्यापति का होता तो वे कहीं न कहीं कृष्ण का नाम दे देते। किन्तु यह साधारण नायक-नायिका का पद है। उत्प्रेक्षा युक्त 'पानिक पियास दुधे किए जाय' और अतिशयोक्तियुक्त' काहे किरण भेल दसन विकाश इत्यादि भी इसकी कृत्रिमता के प्रमाण हैं।

(७०७)

ए सखि ए सखि कि कहब हाम।
पिया मोरा विदगध विहि मोरे वाम॥
कत दुख आओल पिया मझु लागि।
दारुन सास रह तहि जागि॥

घरे मोर आँधियार कि कहब सखि।
पासे लागल पिया किछुइ न देखि॥
चित मोर घसधस कहइ न पाइ।
ए बड़ मन दुख रहु चिरथाइ॥

विद्यापति कह तुहु अगेयानि।
पिया हिय करि काहे न फेर बियान॥

प० त० ७३०; न० गु० ९६२।

शब्दार्थ—चिरथाइ—चिरस्थायी; अगेयानि—ज्ञानहीना।

अनुवाद—मेरे प्रियतम विदग्ध (किन्तु) विधि मेरे प्रतिकूल है। दारुण सास उसी समय जाग उठी। मेरा घर अन्धेरा, सखि, क्या कहूँ, प्रियतम मेरे पास लगे रहे (सोये) (किन्तु) कुछ भी देख न सकी। मेरा हृदय धक् धक् कर उठा (किन्तु वंधु से) बातें नहीं कर सकी। यह मन का बड़ा दुख चिरस्थायी हो रहा। विद्यापति कहते हैं, तुम ज्ञानहीना हो। प्रियतम को हिय में लगा कर क्यों नहीं मुख फिरा दिया (प्रियतम की ओर घूम कर सो कर केवल मुख क्यों नहीं सास की ओर रखा? ऐसा करने से तुम्हारे मुख की साँस सास के मुख पर पड़ती तो वह सन्देह नहीं करती और तुम्हारी मनोकामना भी पूरी हो जाती)।

(७०८)

कि कहब हे सखि रातुक बात।
मानिक पड़ल कुबानिक हात॥
काँच कंचन न जानइ मूल।
गुंजा रतन करए समतूल॥

जे किछु कभु नहि कलारस जान।
नीर खीर दुहु करए समान॥
तन्हि सौं कहाँ पिरीत रसाल।
बानर-कण्ठ कि मोतिम माल॥

भनइ विद्यापति इह रस जान।
बानर मुँह की सोभए पान॥

अज्ञात; न० गु० १९८।

अनुवाद—हे सखि, रात की बात क्या कहूँ, बेवकूफ व्यापारी के हाथ में माणिक पड़ गया। काँच और काँचन का मूल्य नहीं जानता, गुंजा (फूल) और रत्न का मूल्य समतूल (समान) समझता है। जो कभी भी कला रस का कुछ नहीं जानता, वह जल एवं क्षीर (दूध) को समान समझता है। उसी को ही पिरीति की रसमय कथा कही, वानर के कण्ठ में क्या मुक्ता की माला (अलंकृत होती है)? विद्यापति यह रस जानकर कहते हैं, वानर के मुख में क्या पान शोभा देता है?

(७०९) यह पूर्व पद का अनुपूरक है।

(७०९)

राइ को नविन प्रेम सुनि दुति मुखे
मन उलसित कान।
मनोरथ कतहि हृदय परिपूरल
आनन्दे हरल गेआन ॥
सजनि विहि कि पुराएब साधा।
कत कत जनमक पुन फले मिलब
से हेन गुणवती राधा ॥

एत कहि माधव तुरित गमन करु
पथ विपथ नहि मान।
सुन्दरि मने करि दूति वदन हेरि
मनमथे जरजर प्रान ॥
ऐछन कुंजे मिलल नव नागर
सखिगन सये याहा राइ।
दुँहु दुहु वदन हेरि दुँहु आकुल
विद्यापति कवि गाइ ॥

कीर्त्तनानन्द १३२; न० गु० ११४

अनुवाद—श्रीराधा का नवीन प्रेम (व्यापार) दूती के मुख से सुनकर कन्हायी का मन उल्लसित हुआ। कितने मनोरथ हृदय में पूर्ण किए आनन्द में ज्ञान खो बैठे। सजनि, विधाता क्या साध पूरी करेगा ? जाने कितने जन्मों के पुण्यफल से वह गुणमयी राधा मिलेगी। यह कह कर माधव ने शीघ्र गमन किया—पथ-विपथ नहीं माना। दूती का मुख देख कर सुन्दरी का (राधा का) ख्याल कर मन्मथ के (पीड़ा से) प्राण जर-जर हुए। जिस कुंज में, जहाँ, सखियों से घिरी राधा हैं, वहीं नवनागर उनसे मिले। दोनों का मुख देख दोनों आकुल हुए (यही) कवि विद्यापति गाते हैं।

(७१०)

हातक दरपन माथक फूल।
नयनक अंजन मुखक ताम्बुल ॥
हृदयक मृगमद गीमक हार।
देहक सरवस गेहक सार ॥

पाखिक पाख मीनक पानि।
जीवक जीवन हम तुहु जानि ॥
तुहु कइसे माधव कह तुहु मोय।
विद्यापति कह दुहु दोहा होय ॥

प० त० १४०८; न० गु० ८३२

अनुवाद—(माधव, तुम मेरे) हाथ के दर्पण, मस्तक के फूल, आँख के अंजन और मुख के पान हो। हृदय की कस्तूरी (लेपन), कण्ठ के हार, देह के सर्वस्व और गेह के सार हो। तुम पक्षी के पंख, मत्स्य के पानी, जीव के वायु हो, मैं तुम्हें ऐसा ही जानती हूँ। माधव, तुम कैसे हो, मुझसे कहो। विद्यापति कहते हैं दोनों दोनों के लिए (एक ही समान) हैं (तुम्हारे लिए माधव जैसे अनुपम हैं, माधव के लिए तुम भी वैसी ही अनुपम हो)।

(७११)

कतिहुँ मदन तनु दहसि हमारि।
हम नह संकर हुँ बरनारि॥
नहि जटा इह वेनि विभंग।
मालति-माल सिरे नह गंग॥
मोतिम-बन्ध मौलि नह इन्दु।
भाले नयन नह सिन्दुर-बिन्दु॥
कण्ठे गरल नह मृगमद-सार।
नह फनिराज उरे मनि-हार॥
नील पटाम्बर नह बाघछाल।
केलिक कमल इह नह ए कपाल॥
विद्यापति कह एहन सुछन्द।
अंगे भसम नह मलयज पंक॥

प० त० ३८५५

अनुवाद—मदन मेरे शरीर को कितना जला रहा है। किन्तु मैं एक रमणी हूँ, शिव तो नहीं (शिव ने मदन को भस्म किया था, वह उनके प्रति क्रोधित हो सकता है)। मेरे सिर पर जटा नहीं है, यह केवल वेणीविन्यास मात्र है, उसमें मालती की माला लगी हुई है, गंगा नहीं है। मेरे कपाल पर चन्द्रमा नहीं है, वह मोती का गुच्छा है। मेरा भाल पर (तृतीय) नयन नहीं, वह सिन्दूर का विन्दु है। मेरे कण्ठ में मृगमद का लेपन है, वह तो (नीलकण्ठ) का विष नहीं है। मेरे वक्ष पर सर्पराज नहीं, वह मणि का हार है; मेरे परिधान में बाघछाल नहीं नील पटुसाड़ी मात्र है। यहाँ मेरे हाथ में नरकपाल नहीं, वह केलिकमल है। अंग में भस्म भी नहीं, वह चन्दनानुलेपन है। विद्यापति कहते हैं, यह भंगि सुन्दर है।

जयदेव के गीतगोविन्द में एक अनुरूप श्लोक पाया जाता है।

हृदि बिसलता हारो नायं भुजंगम नायकः
कुवलयदल श्रेणी कंठे न सा गरलद्युतिः
मलयजरजो नेदं भस्म प्रिया रहिते मयि
प्रहर न हरभ्रन्त्यानंग क्रुधा किमु धावसि ३।११

अर्थ—(माधव की उक्ति) हे अनंग, मेरे प्रति तुम क्रोधावेग से क्यों दौड़े आ रहे हो? मेरे वक्षस्थल पर भुजंगपति वासुकी नहीं है, यह तो मृणाल हार है। मेरे कण्ठ में नीलपद्म की माला है, गरल की आभा नहीं। मेरे अंग में चन्दन है, भस्म नहीं। मैं प्रिया-विरहित हूँ, हर के भ्रम में मुझपर प्रहार न करना।]

(७१२)

कत गुरु गंजन दुरजन-बोल।
मने कछु ना गनलि ओ रसे भोल॥
कुलजा-रीति छाड़लि जसु लागि।
से अब विछुरल हामारि अभागि॥
सुमरि सुमरि सखि कहयि मुरारि।
सुपुरुख परिहरे कि दुख विचारि॥
जे पुन सहचरि होय मतिमान।
करए पिसुन वचने अवधान॥
नारि अबला हम कि बोलब आन।
तुहुँ रसनानन्द गुनक निधान॥
मधुर वचन कहि कानुके बुझाइ।
एहि कर दोख रोख छबगाइ॥
तुहु रसचतुरी हम किए जान।
भनइ विद्यापति इह रसभान॥

प० त० ६६५; न० गु० ४१४

(७११) मन्तव्य—गुप्तनीय २५० दोनों के छन्द पृथक हैं, किन्तु विषय-वस्तु और उपमा प्रायः एक ही है।

अनुवाद—इस रस में विभोर होकर गुरुजनों की कितनी भर्त्सना, दुर्जनों की कितनी बात (निन्दा) सुनी-किसी की गणना न की। कुलवती की रीति जिसके लिए छोड़ा, वह अब भूल गया (मेरा त्याग किया), मेरा अभाग्य। सखि, याद कर करके मुरारि को कहना कि सुपुरुष दोष विचार कर तब परित्याग करते हैं। सहचरि, और सुन, जो मतिमान होता है, वह क्या दुष्टों की बात पर कान देता है? मधुर वचन बोल कर कानु को समझाना, दोष देकर राग—यही (जो) तुम चतुरा, सखियों में श्रेष्ठ हो, मैं क्या जानूँ? विद्यापति कहते हैं—यह रस की बात है।

(७१३)

कि पुछसि मोहे निदान।
कहइते दहइ परान॥
तेजलु गुरुकुल संग।
पूरल दुकुल कलंक॥
विहि मोरे दारुन भेल।
कानु निठुर भइ गेल॥
हम अबला मतिवामा।
न गनलु इह परिनामा॥
कि कहब इह अनुजोग।
आपन करमक दोख॥
कवि विद्यापति भान।
तुरिते मिलायब कान॥

प० त० ४३८, सा० मि० ६७ : न० गु० ६६६

अनुवाद—मेरे परिणाम की बात और क्या पूछ रही है? कहते हृदय दग्ध होता जा रहा है। गुरुजनों का संग त्याग किया, दोनों कुल (पितृकुल और स्वसुरकुल) कलंक में डूब गया। विधाता मेरे प्रति निदारुण हुए। इसलिये कन्हाई निष्ठुर हो गये। मैं अल्पबुद्धि अबला। इस परिणाम की गणना न की थी (नहीं समझा था कि शेष में ऐसा परिणाम होगा)। इसमें क्या अनुयोग करूँ (किसको दोष दूँ)? अपने कर्म (कपाल) का दोष है। विद्यापति कवि कहते हैं, कन्हायी को शीघ्र मिलाऊँगा।

(७१४)

मने छिलो न टूटब नेहा।
सुजनक पिरीति पसानक रेहा॥

तोहे भेल अति विपरीत।
न जानिए ऐसन दैव गठित॥
ए सखि कहबि बन्धुरे करजोड़ि।
कि फल प्रेमक अंकुर मोड़ि॥
जदि कह तुहुँ अगेयानि।
हम सोपलुँ हिया निज करि जानि॥
विद्यापति कह लागल धन्धा।
जकर पिरीति से जन अन्धा॥

प० त० ६६६ ; सा० मि- ४४ ; न० गु० ७०२

अनुवाद—मन में समझा था, प्रेम नहीं टूटेगा, सुजन की प्रीति पाषाण की रेखा के समान है। किन्तु दैव की ऐसी विडम्बना है कि वह विपरीत हुआ। बन्धु को कर जोड़ कर निवेदन करना। प्रेम का अंकुर तोड़ने से फल होगा? सखि यदि कहो, तुम अज्ञानी (मुझे निर्बोध कहो), मैंने उनको अपना समझ कर हृदय समर्पण किया था। विद्यापति कहते हैं कि संशय हो रहा है कि जिसकी प्रीति है वह अन्धा है।

(७१५)

जे दिन माधव पयान करल
उथल से सब बोल।
सुनि हृदय करुना वाढ़ल
नयाने गलतहि लोर॥
दिवि कए सपथ करल
नियरे आओल कान।
मधु कर धरि सिरे ठेकायलुँ
से सब भेगेल आन॥

पथ निरखइत चित उचाटन
फुटल माधवी लता।
कुहु कुहु करि कोकिल कुहरइ
गुंजरे भ्रमर जता॥
कोन से नगरे रहल नागर
नागरी पाए भोर।
कह विद्यापति सुन हे जुवति
तोहारि नागर चोर॥

अज्ञात ; सा० मि० ६८ ; न० गु० ७०१

अनुवाद—जिस दिन माधव चले गये, उस दिन सारी वात (पहले की वात) उठी। वह सब वात (सुन कर) मेरे हृदय में करुणा वढ़ी, आखों से आँसू गिरने लगे। कन्हायी ने मेरे पास आ कसम खायी (वार बार शपथ की, लौट कर आने का दिन स्थिर किया); (मेरा) हाथ पकड़ कर (अपने) सिर में स्पर्श किया वह सब अन्य (व्यर्थ) हो गया। पथ की ओर देखते रहते रहते चित्त उद्विग्न हो गया। माधवीलता में फूल फूटा। कोकिल कुहुकुहु पुकार रही है, भ्रमरकुल गुँजार कर रहा है। नागर किस नगर में नागरी को पाकर विह्वल (भोर) हो गये हैं; विद्यापति कहते हैं, युवति सुन, तुम्हारे नागर चोर हैं (तुम्हारा मन चोरी करके अब अन्य नागरी का मन चोरी करने गये हैं)।

(७१६)

आएल ऋतुपति-राज वसन्त।
धाओल अलिकुल माधवि-पन्थ॥
दिनकर-किरण भेल पौगन्ड।
केसर कुसुम धएल हेमदण्ड॥

नृप आसन नव पीठल पात।
कांचन कुसुम छत्र धरू माथ॥
मौलि-रसाल-मुकुल भेल ताय।
समुख हि कोकिल पंचम गाय॥
सिखिकुल नाचत अलिकुल जन्त्र।
द्विजकुल-आन पढ़ आसिख मन्त्र॥
चन्द्रातप उड़े कुसुम-पराग।
मलय-पवन सह भेल अनुराग॥

कुन्दवल्ली तरू धएल निसान।
पाटलतूण असोक दलवान॥
किंसुक लवंगलता एक संग।
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग॥
सैन साजल मधुमखिका कुल।
सिसिरक सबहु कएल निरमुल॥
उधारल सरसिज पाओल प्रान।
निज नव दले कलु आसन दान॥

नव वृन्दावन राज विहार।
विद्यापति कह समयक सार॥

प० त० १४२१ ; सा० मि० ३८ ; न० गु० ६०४

अनुवाद—ऋतुपति वसन्त राजा आ गया। अलिकुल माधवी की ओर धावित हुआ (राजा के आगमन की बात चारो ओर प्रचार करने के निमित दौड़ कर पहले वसन्त की प्रियतमा माधवीलता की ओर गया)। सूर्य की किरणों ने पौगण्ड दशा प्राप्त की (शैशव का अतिक्रमण किया) केशर कुसुम ने हेम दण्ड धारण किया।

'दिनकर किरण भेल पयगन्ड'

—नगेन्द्रगुप्त का पाठ।

(गण्ड अश्व का भूषण, पय-अव्यय, पादपूरण के लिए; यहाँ वसन्त की राजोचित साजसज्जा का वर्णन हो रहा है, सुतरां नगेन्द्र बाबू का पाठ असंगत नहीं है)।

तुलनीय :—

मदनमहीपति कनकदण्डरुचि

केशर कुसुम विकाशे' —श्री गीत गोविन्द, १ला सर्ग

नये उत्पन्न पत्ते राजासन हुए। कांचन कुसुम ने मानों माथे पर छत्र रखा। आम्रमुकुल शिरोभूषण हुआ। सामने कोकिल ने पंचम तान में गाना आरम्भ किया। शिखिकुल (राजा के दरबार की नर्त्तकियों के समान) नृत्य कर रहा है। अन्य द्विजकुल (पक्षीगण-अन्य अर्थ में ब्राह्मण लोग) आशीर्वाद उच्चारण कर रहे हैं। कुसुमपराग का चन्द्रातप (वसन्त की राजसभा में) उड़ने लगा। मलयानिल के साथ उसकी प्रीति हुई (अर्थात् चन्द्रातप जिस प्रकार हवा में उड़ता है, कुसुमरेणु का आच्छादन भी उसी प्रकार मलयानिल में बहने लगा। तरु ने कुन्दलता का झण्डा फहराया, पाटल (पाटली फूल) तूण और अशोक पुष्पसमूह चाप हुआ।

तुलनीय : —'मिलित शिलीमुख पाटलि-पाटल कृतस्मरतूण विलासे'

— गीत गोविन्द

किंशुक और लवंगलता को एक संग देख कर शीतऋतु ने पहले ही रण भंग कर दिया (किंशुक शीत के शेष भाग में फूटना आरम्भ करता है और वसन्त के मध्य तक भी रहता है। लवंगलता का फूल वसन्तकाल में फूटता है। कवि का अभिप्राय यह है कि जब शीत का अनुगत किंशुक, वसन्त के अनुगत लवंगलता से मिल गया तो अब जय की आशा न देख कर शीतऋतु पहले ही रण से भाग गया)। *मधुमक्खियों ने सैन्यरूप सजाया, शिशिर के सारे* दलबल को निर्मूल कर दिया। (शीत के हाथ से) उद्धार पाकर पद्म ने प्राण प्राप्त किया, अपने नये पत्तों पर (वसन्त के सैन्यसामन्त को) आसन दान किया। नव वृन्दावन का राजा वसन्त विहार कर रहा है। विद्यापति कहते हैं यह समय का सार है (वसन्त सब ऋतुओं से श्रेष्ठ है)

(७१७)

मधुऋतु मधुकर पाँति।
मधुर कुसुम मधुमाति॥
मधुर वृन्दावन माझ।
मधुर मधुर रसराज॥
मधुर जुवतिजन संग।
मधुर मधुर रसरंग॥

मधुर मृदंग रसाल।
मधुर मधुर करताल॥
मधुर नटन गति भंग।
मधुर नटिनी नटसंग॥
मधुर मधुर रसगान।
मधुर विद्यापति भान॥

प० त० १५००; न० गु० ६०६; सा० मि० ४०

(७१८)

नव वृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव विकसित फूल।
नवल वसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अलि-कूल॥
विरहइ नवल किसोर।
कालिन्दि-पुलिन कुंजवन सोभन
नव नव प्रेम-विभोर॥

नवल रसाल-मुकुल-मधु-मातल
नव कोकिल कुल गाय।
नवजुवती गन चित उमताअइ
नव रस कानन धाय॥
नव जुवराज नवल नव नागरि
मिलए नव नव भाँति।
निति ऐसन नव नव खेलन
विद्यापति मति माति॥

प० त० १४३२; सा० मि० ३६; न० गु० ६०५

अनुवाद—नव वृन्दावन में नव नव तरुदल, और उसमें नए नए फूल फूट रहे हैं। नवीन वसन्त, नूतन मलयानिल, नये अलिकुल मतवाले हो उठे। नवल किशोर (कृष्ण) विहार कर रहे हैं। वे यमुना-पुलिनस्थित कुंजवन के शोभास्वरूप हैं। नये नये प्रेम में वे विभोर। नये आम्रकुल का मधु पान करके नव कोकिलकुल मत्त होकर गा रहा है। नयी युवतियों का चित्त उन्मत्त करता है। (वे) नव रस (के लोभ) से कानन में (कृष्ण-दर्शन के लिए) दौड़ रही हैं। (वृन्दावन के) युवराज नूतन, नव नागरियाँ भी अति नूतन, नयी नयी प्रणालियों से वे (कृष्ण से) मिलती हैं। नित्य इस प्रकार की नूतन नूतन रसक्रीड़ा देखकर विद्यापति का मन मत्त होता है।

(७१९)

फुटल कुसुम सकल बन अन्त।
मिलल अब नागरि समय बसन्त॥
कोकिल कुल कलरव बिचार।
पिया परदेस हम सहइ न पार।

अब जदि जाइ सम्बादह कान।
आओब ऐसे-हमर मन मान॥
इह सुख समय सेहो मझु नाह।
का सयँ बिलसब के कह ताह॥

तुह जदि इह दुख कह तसु ठाम।
विद्यापति कह पूरब काम॥

प० त० १७१५; सा० मि० ८८; न० गु० ७२७

अनुवाद—वसन्त समय आकर उपस्थित हो गया। सखि, वन की शेष सीमा तक फूल फूले हुए हैं। कोकिलकुल कलरव का विस्तार कर रहा है। मेरे प्रियतम परदेश में हैं, मैं सहन नहीं कर सकती। अभी यदि जाकर कानु को सम्वाद दो, तो मेरे मन में होता है कि वे चले जाएँगे। यह सुख का समय है, वे हमारे नाथ हैं (यदि वे न आवें) तो किसके संग विलास करूँगी यह बात उनसे कौन कहे? विद्यापति कहते हैं कि यदि यह दुख की बात उनके पास कहो तो कामना पूर्ण होगी।

(७२०)

फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन
कोकिल पंचम गाओइ रे।
मलयानिल हिमसिखरे सिधारल
पिया निज देस न आओइ रे॥
चाँद चन्दन तनु अधिक उतापए
उपवने अलि उतरोल।
समय वसन्त कन्त रहु दुरदेस
जानल विहि प्रतिकूल॥

आनमिख नयने नाह मुख निरखइते
तिरपित न होये नयान।
इ सुख समय सहए एत कट
अवला कठिन परान॥
दिने दिने खिन तनु हिम कमलिनि जनि
न जानि कि जिव परजन्त।
विद्यापति कह धिक धिक जीवन
माधव निकरुन अन्त॥

प० स० पृ० १२२; प० त० १७१२; सा० मि० ८७; न० गु० ७२६

शब्दार्थ—सिधारल—चले गये; परजन्त—पर्यन्त; निकरुन अन्त—निर्दय का शेष।

अनुवाद—कुंजकुटी में नये फूल फूले, कोकिल पंचम तान में गा रही है। मलयानिल हिमशिखर पर चला गया, किन्तु प्रियतम अपने देश नहीं आए। चन्दन और चन्द्रमा शरीर अधिक उत्तप्त कर रहे हैं, उपवन में अलिकुल कलरव कर रहा है। वसन्तकाल, कान्त दूर देश में हैं, मालूम होता है, विधाता प्रतिकूल हो गये हैं। (ऐसे समय में) अनिमेष नयनों से नाथ का मुख निरखते नयन तृप्त नहीं होते, ये अवला के कठिन प्राण ही हैं जो इस सुख के समय में इतना संकट सहन कर रहे हैं। हिम में (शीतकाल में) कमलिनी के समान दिन दिन शरीर क्षीण हो रहा है। नहीं जानती शेष तक जीवन रहेगा वा नहीं। विद्यापति कहते हैं, जीवन को धिक्कार है, माधव निष्करुण के अन्त हैं।

(७२१)

सुरतरुतल जब छाया छोड़ल
हिमकर वरिखय आगि।
दिनकर दिन फले सीत न बारल
हम जीयब कथि लागि॥
सजनि अब नहि बुझिए विचार।
धनका आरति धनपति न पूरल
रहल जनम दुख भार॥

जनम जनम हरगौरि अराधलो
सिव भेल सकति विभोर।
काम-धेनु कत कौतुके पूजलो
न पूरल मनोरथ मोर॥
अमिया सरोवरे साधे सिनायलो
सँसय पड़ल परान।
विहि विपरीत किए भेल
ऐसन विद्यापति परमान॥

प० स० ६२; न० गु० ६६१

शब्दार्थ—दिन फले—किरणों के उत्ताप से; धनका आरति—धन की प्रार्थना।

अनुवाद—जब स्वर्गीय वृक्ष के तले भी छाया नहीं पायी जाती, चन्द्रमा अग्नि बरसाता है, सूर्य किरणों के द्वारा शीत का निवारण नहीं करता, तब और बचने से मुझे क्या लाभ है? सखि, मैं यह व्यवस्था नहीं समझती। धनपति (कुबेर) के पास धन की भीख माँग कर नहीं पाया। जन्म भर दुख का भार ही रह गया। जन्म-जन्म मैंने हरगौरी की आराधना की, किन्तु शिव शक्ति को लेकर ही विभोर रहे। कितने आनन्द से कामधेनु की पूजा की, तथापि मनवासना पूरी नहीं हुई। साध से अमिय सरोवर में स्नान किया, किन्तु प्राण संशय में ही रह गये। क्या विधाता विपरीत हो गये? विद्यापति का ऐसा ही प्रमाण है (वे ऐसा ही समझते हैं)।

(७२२)

हिम हिमकर कर तापे तपायलुँ
भैगेल काल वसन्त।
कान्त काक मुखे नहि सम्वादइ
किए करु मदन दुरन्त॥
जानलुँ रे सखि कुदिवस भेल।
कि खणे विहि मोहे विमुख भेलरे
पलटि दिठि नहि देल॥

एतदिन तनु मोर साधे साधायलुँ
बुझलुँ अपन निदान।
अवधिक आस भेल सब कहिनी
कत सह पाप परान॥
विद्यापति भन माधव निकरुन
काहे समुझयेव खेद।
इह वड़वानल ताप अधिक भेल
दारुन पियाक विच्छेद॥

प० स० पृ० १२२; प० त० १७१२; सा० मि० ८६; न० गु० ६६०

शब्दार्थ—हिम—शीतल; हिमकर—चन्द्र; कर—किरण; सम्वादइ—सम्वाद देता है; साधायलुँ—साधा, रचा की; निदान—शेष अवस्था; अवधिक—निर्दिष्ट समय का।

अनुवाद—चन्द्रकिरण शीतल (किन्तु मैं) उसकी किरणों के उत्ताप से दग्ध हुई; वसन्तकाल हुआ। कान्त ने काक के मुख से भी एक सम्वाद नहीं भेजा। मैं क्या उपाय करूँ? मदन दुसह। सखि, मैंने जाना कि कुदिवस हो गया। किस क्षण में विधाता मुझसे विमुख हुए, (फिर) पलट कर देखा तक नहीं। इतने दिनों तक शरीर को साध से साधा (यत्नपूर्वक उसकी रक्षा की), अब अपना निदान समझो (अब और आशा नहीं है)। अवधि की आशा (जो समय निर्दिष्ट करके गये थे, उस समय लौटने की आशा) केवल कहानी की बात रह गयी; पाप प्राण (अब और) कितना सहेंगे? विद्यापति कहते हैं, माधव निठुर, तुम किसको समझावें? प्रियतम का दारुण विच्छेद (विरह) बड़वानल की अपेक्षा अधिक सन्तापीय हुआ।

(७२३)

(यब) ऋतुपति नव परवेश।
तब तुहुँ छोड़लि देश॥
ताहे यत विविध विलाप।
कहइते ह्रदि माहा ताप॥
तब धरि बाउरि भेल।
गिरिष समय वहि गेल॥
वरिषा भेल चारि मास।
ना छिल जिवन-अभिलाष॥

ताहे यत पाओल दूख।
कहइते विदरये बूक॥
शारदे निरमल चन्द।
ताक जिवन लेइ दन्द॥
पुरबक रास-विलास।
सोङरिते ना रहये श्वास॥
हीम शिशिरे रहु शीत।
दिने दिने उनमत चीत॥

अब भेल बहुत निदान।
नव कविशेखर भान॥

प० त० १८३२

अनुवाद—ऋतुपति वसन्त का जब नूतन प्रवेश हुआ, तब तुमने देश छोड़ दिया। उसके कारण जितने प्रकार के विलाप उठे, उनको कहते भी हृदय में दुख जागता है। तुम्हारे लिए पगली हो जाऊँगी, ग्रीष्मकाल वह गया। वर्षा के चार महीनों में प्राण धारण करने की इच्छा ही नहीं थी। उस समय इतना दुख पाया कि कहते छाती फटती है। शरत्काल में चन्द्रमा निर्मल हुआ, उससे जीवन-सँशय हो गया। पूर्व का रास विलास स्मरण करते करते निश्वास भी नहीं छूटती। शीतकाल की ठंढक से प्रचण्ड शीत हुआ, दिन-दिन चित्त उन्मत्त हुआ। नवकविशेखर कहते हैं कि अब सब दुखों का शेष हुआ (क्यों नहीं तुम आते हो ?)

(७२४)

हम धनि तापिनी मन्दिरे एकाकिनी
दोसर जन नहि संग।
वरिसा परवेस पिया गेल दूरदेस
रिपु भेल मत्त अनंग॥
सजनि आजु शमन दिन होय।
नव नव जलधर चौदिगे झाँपल
हेरि जीउ निकसए मोय॥

घन घन गरजित सुनि जीउ चमकित
कम्पित अन्तर मोर।
पपिहा दारुन पिउ पिउ सोङर
भ्रमि भ्रमि देइ तसु कोर॥
वरिखए पुन पुन आगिदहन जनु
जानलु जीवन अन्त।
विद्यापति कह सुन रमनीवर
मीलब पहु गुनवन्त॥

प० स० पृ० २२५; प० त० १७३०; सा० मि० १०; न० गु० ७१२

---

(७२३) *मन्तव्य*—न० गु० ने प० त० से नवकविशेखर युक्त पद संख्या १०६,२३२ और ३८६ लिया है परन्तु इसे छोड़ दिया है।

शब्दार्थ—तापिनी—ताप सहन करने वाली, दुखिनी; परवेस—प्रवेश ।

अनुवाद—हे धनी, मैं अकेली घर में ताप (विरह का उत्ताप) सहन कर रही हूँ, कोई भी दूसरा आदमी साथ नहीं है। वर्षा आयी, प्रिय दूरदेश गये, उन्मत्त अनंग मेरा शत्रु हुआ। सखि, आज शमन (मृत्यु) का दिन आया। नवीन जलधरों ने चारो ओर घेरा डाल दिया, उन्हें देख कर मेरे प्राण बाहर हो रहे हैं। घन मेघों का गर्जन सुन कर मेरे प्राण चमकित और हृदय कम्पित हो रहे हैं। दारुण पपीहा मेघ की गोद में घूम घूम कर 'पिउ पिउ' शब्दों में प्रियतम का स्मरण कर रहा है। अग्निदहन के समान बार-बार वृष्टि हो रही है। जान गयी कि जीवन का अन्त आ गया। विद्यापति कहते हैं, रमणिश्रेष्ठ, सुन, गुणवन्त प्रभु मिलेंगे।

(७२५)

सखि हे के नहि जानत हृदयक वेदन
हरि परदेस रहइ।
विरह-दसा दुख काहि कहब
जे तसु कहिनि कहइ॥
धारा सघन वरस धरनीतल
विजुरि दसदिस विन्धइ।
फिरि फिरि उतरोल डाक डाहुकिनि
विरहिनि कैसे जिवइ॥
जौवन भेल वन विरह हुतासन
मनमथ भेल अधिकारि।
विद्यापति कह कतहु से दुख सह
वारिस निसि आँधियारि॥

न० गु० ७११

अनुवाद—सखि, हरि के विदेश रहने पर हृदय में किस प्रकार की वेदना होती है, इसे कौन नहीं जानता ? मुझको ऐसा कौन है जिसे विरहदशा के दुख की बात कहनी पड़ेगी ? धरणीतल पर घनधारा वृष्टि हो रही है; दसों दिशाओं में विद्युत् [illegible] कर रहा है; डाहुकी फिर फिर उद्विग्न होकर पुकार रही है; विरहिनी किस प्रकार बचेगी ? यौवन [illegible] में [illegible] और विरह आँगन में रह गया (यौवनवन विरह के दावानल में दग्ध हो गया)। मन्मथ ने [illegible] किया। विद्यापति कहते हैं, वर्षा की इस अँधेरी रात में वह कितना दुख सहन करेगी ?

(७२६)

सखि हे हामारि दुखेर नाहि ओर।
ए भर बादर माह भादर
शून्य मन्दिर मोर॥

झम्पि घन गरजन्ति सन्तति
भुवन भरि वरिखन्तिया।
कन्त पाहुन काम दारुन
सघने खर सर हन्तिया॥

कुलिस कत शत पात मोदित
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुरि डाके डाहुकि
फाटि जायत छातिया॥

तिमिर भरि भरि घोर जामिनि
न थिर विजुरिक पाँतिया।
विद्यापति कह कैछे गोङायबि
हरि बिने दिन रातिया॥ प० त० १७२१; न० गु० ७१४

---

(७२६) *पाठान्तर*—पदकल्पतरु की किसी किसी पोथी की भणिता में है—"भनये शेखर कैछे निरवह
सो हरि बिनु इह रतिया।"
कीर्त्तिनानन्द में भी यही पाठ है।

मन्तव्य—पदकल्पतरु में शेखर भणितायुक्त ६८ पद हैं। उनमें अधिकांश पालाकीर्त्तन के पद, त्रिपदी छन्द में हैं, कई एक हाटपत्तन के भी पद हैं। तीन पद (६८१, २६२२ और २७७६) छोड़ कर और सब खाँटी बंगला में लिखे हैं। इन तीनों में ६८१ संख्यक पद के साथ इस पद का कुछ सुदूर सादृश्य है। पद यों है—

झरझर वरिखे सघने जलधारा।
दश दिश सबहुँ भेल अँधियारा॥
ए सखि, कीये करब परकार।
अब जनि बाधये हरि अभिसार॥
अन्तरे श्यामचन्द्र परकाश।
मनहि मनोभव लेई निजपाश॥
कैछने संकेते वंचये कान।
सोङरिते जरजर अथिर परान॥

झलकइ दामिनि दहन समाने।
झनझन शब्द कुलिश झनझाने॥
घरमाहा रहइते रहइ न पार।
कि करब ए सखि बिबिनि विथार॥
चढ़ब मनोरथे सारथि काम।
तुरिते मिलायब नागर ठाम॥
मन माहा साखि देयत पुनवार।
कह शेखर धरि कर अभिसार॥

इस पद के भी बाधये (बाधा पड़े), बंचये (काल कटे), समान, ठाम (स्थान) पुनवार (पुनराय) शब्द इसे किसी बंगला कवि की रचना होना बताते हैं। २६२२ संख्यक पद में (सखी के साथ सम्भोग सम्बन्धी हास्य-परिहास) 'भूलसि', 'जोर' 'तात (ताहाते—उससे)' 'सघने वदने उठिछे हाइ' 'पुलके पुरित सकल गा' प्रभृति और ७७६ संख्यक पद में 'ललिता यतनहि तुलसि के आनि', 'देइ पठाओल नागर ठाम', "खोजइ काहाँ नव नागर राज" 'छल करि सुबल सखा सेइ कान, राइ-कुण्ड तीरे करल पयाण' प्रभृति के व्यवहार से समझा जाता है कि ये कवि आलोच्य पद के रचयिता नहीं हो सकते। सुतरां पदकल्पतरु की अधिकांश पोथियों का प्रमाण मानकर हम इसे विद्यापति की अकृत्रिम रचना मानते हैं।

अनुवाद—सखि, मेरे दुख का शेष नहीं है। यह भरा बादल, भादो का महीना, और मेरा मन्दिर शून्य है। मेघ चारो दिशायें झाँप कर गर्जन कर रहे हैं एवं सम्पूर्ण भुवन में वर्षा कर रहे हैं। कान्त प्रवासी, काम दारुण, सघन तीक्ष्ण शर से मुझे मार रहा है। कितने सैकड़ों वज्र गिर रहे हैं; आनन्दित, मयूर मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं। मत्त दादुरि और डाहुकि पुकार रही हैं (सुनकर) मेरी छाती फट रही है। दिशा-व्यापी अन्धकार, घोर रजनी, विद्युत्समूह अस्थिर (हो हो कर चमक रहे हैं); विद्यापति कवि कहते हैं कि हरि के बिना मैं दिन-रात कैसे बिता सकूँगी।

(७२७)

गगने गरजे घन फुकरे मयूर।
एकलि मन्दिरे हाम पिया मधुपुर॥
शुन सखि हामारि वेदन।
बड़ दुख दिल मोर दारुण मदन॥
हामारि दुख सखि को पातियाओये।
मिलल रतन किये पुन विघटाओये॥

हरि गेओ मधुपुरि हाम एकाकिनी।
झुरिया झुरिया मरि दिवस रजनी॥
निंद नाहि आओये शयन नाहि भाय।
वरिख अधिक भेल निशि ना पोहाय॥
विद्यापति कह शुन वरनारि।
सुजनक दुख दिवस दुइ चारि॥

पदकल्पतरु १७३२

अनुवाद—गगन में मेघ गर्जन कर रहे हैं, मयूर पुकार रहे हैं, और मैं मन्दिर में अकेली हूँ, प्रिय मधुपुर गये हैं। सखि, मेरे दुख की बात सुनो। दारुण मदन ने हमको बड़ा दुख दिया। मेरे दुख की बात कौन विश्वास करेगा? जो रत्न पाया था उसे फिर खो दिया। हरि मधुपुर चले गये, मैं अकेली, दिन-रात रो-रोकर मरती हूँ। आँखों में नींद भी नहीं आती, सोए रहना भी अच्छा नहीं लगता। वर्षा अधिक हुई, रात भी नहीं कटती। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, सुन, सुजन का दुख दो-चार ही दिन रहता है।

(७२८)

पहिल वयस मोर न पूरल साधे।
परिहरि गेला पिया केन अपराधे॥
हम अबला दुख सहने न जाय।
विरह दारुन दुखे मदन सहाय॥

कोकिल कलरवे मति अति भोर।
कह कह सजनि कोन गति मोर॥
ऐसन सखिरि करम किए भेल।
विद्यापति कह हर पुन मेल॥

प० स० पृ० १२२; प० त० १७१४, सा० मि० ८२; न० गु० ६१४

शब्दार्थ—दुजे—दूसरे; मेल—मिलन।

अनुवाद—मेरा नवीन वयस, साध पूरी नहीं हुई। प्रिय किस अपराध से मुझे छोड़कर चले गये? मैं अबला, दुख सहन किया नहीं जाता है। (एक तो) दारुण विरह, (दूसरे) मदन सहाय हो गया है। कोकिल के कलरव से मति अत्यन्त विभ्रान्त हो गयी है; सखि, बोलो, मेरी क्या गति होगी? सखि, मुझसे क्या कर्म हुआ? विद्यापति कहते हैं, फिर मिलन होगा।

---

(७२८) *मन्तव्य*—प० स० का आरम्भ—हाम अबला दुख सहने न जाय।

(७२६)

कालिक अवधि करिया पिया गेल।
लिखइते कालि भीत भरि गेल॥
भेल परभाति कालि कहे सबहिँ।
कह कह रे सखि कालि कबहिँ॥

कालि कालि करि तेजलुँ आस।
कान्त नितान्त ना मिलल पास॥
भनइ विद्यापति सुन बरनारि।
पुर रमनीगन राखल बारि॥

प० त० १८६१; सा० मि० ८४, न० गु० ६६८

अनुवाद—कल की अवधि करके पिया गए थे (कह गए थे कल आऊँगा), कल लिखते लिखते दिवाल भर गयी (बहुसंख्यक कल बीत गये)। सब कोई कहते हैं, प्रभात हुआ। (किन्तु) हे सखि, कहो, कहो, प्रभात कब होगा? (रात्रि बीतने से ही तो प्रभात होता है; किन्तु जब वे न आए तो कल कब होगा?) कल-कल करते-करते आशा का त्याग किया; कान्त जरा भी पास नहीं आए। विद्यापति कहते हैं, बरनारि, सुन, मथुरापुर की नारियों ने (उन्हें) रोक कर रखा है।

(७३०)

हमर नागर रहल दुरदेस।
केओ नहि कह सखि कुसल सन्देस।

ए सखि काहि करब अपतोस।
हमर अभागि पिया नहि दोस॥
पिया बिसरल सखि पुरब पिरीति।
जखन कपाल बाम सब विपरीति॥

मरमक वेदन मरमहि जान।
आनक दुख आन नहि जान॥
भनइ विद्यापति न पुरल काम।
कि करति नागरि जाहि विधि बाम॥

न० गु० ६२८

अनुवाद—मेरे नागर दूरदेश में हैं, ऐसा कोई नहीं है जो उनका कुशल सम्वाद दे। सखि, किसकी निन्दा करूँ? मेरा ही भाग्य मन्द है, प्रिय का दोष नहीं है। प्रिय पूर्व का प्रेम भूल गये। जब भाग्य खराब होता है जो सब कुछ विपरीत हो जाता है। मर्म की वेदना अन्तर ही जानता है। एक का दुख दूसरा नहीं जानता। विद्यापति कहते हैं, मनोकामना पूर्ण नहीं हुई; विधाता वाम; नागरी क्या करे?

(७३१)

कतदिने घुचब इह हाहाकार।
कतदिने घुचब गुरुआ दुखभार॥
कत दिने चाँद कुमुदे हर मेलि।
कतदिने भ्रमरा कमले करु केलि॥

कतदिने पिया मोरे पुछब बात।
कबहुँ पयोधरे देओब हात॥
कतदिने करे धरि बैसाओब कोर।
कतदिने मनोरथ पूरब मोर॥

विद्यापति कह सुन बरनारि।
भागब सकल दुख मिलत मुरारि॥

प० त० ११९८; सा० मि० ९४; न० गु० ७२७

अनुवाद—कितने दिनों में यह हाहाकार मिटेगा ; कितने दिनों में यह गुरु दुखभार मिटेगा ? कितने दिनों में चाँद के साथ कुमुदिनी का मिलन होता, कितने दिनों में भ्रमर कमल के साथ केलि करेगा ? कितने दिनों में प्रिय मेरी बात पूछेंगे, कब मेरे पयोधरों पर हाथ देंगे। कब हाथ पकड़ कर गोद में बिठावेंगे, कितने दिनों में मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। विद्यापति कहते हैं, वरनारि, सुन, सब दुख दूर होंगे, मुरारि मिलेंगे।

(७३२)

पिया गेल मधुपुर हम कुलबाला।
विपथे परल जैसे मालतिमाला॥
कि कहसि कि पुछसि सुन प्रिय सजनी।
कैसे वंचब इह दिन रजनी॥
नयनक निन्द गेओ बयानक हास।
सुख गेओ पिया संग दुख हम पास॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
सुजनक कुदिन दिवस दुइ चारि॥

प० स० पृ० ११५ ; प० त० १६४१ ; सा० मि० ८० ; न० गु० ६१२

अनुवाद—हरि मधुपुर चले गये, मैं कुलबाला (अतएव उपाय हीना)। मालती की माला (उपेक्षित और परित्यक्त होकर) जिस प्रकार अपथ में पड़ गयी हो (वैसा ही मेरा हाल है)। क्या कहती हो, क्या पूछती हो ? प्रिय सजनी, सुन, (हरि बिना) यह दिन-रात मैं किस प्रकार कटाऊँगी (यह मुझे कहो) ? (जिस दिन से माधव गये) उस दिन से मेरी आँखों की नींद चली गयी, मुख की हँसी भी चली गयी। सुख प्रियतम के संग चला गला, (केवल) दुख मेरे पास (रह गया)। विद्यापति कहते हैं, हे वरनारि, सुन सुजन के कुदिन केवल दो चार दिन रहते हैं।

(७३३)

चिर चन्दन उर हार न देला।
सो अब नदी-गिरि आँतर भेला॥
पियाक गरबे हम काहुक न गनला।
सो पिया बिना मोहे को कि न कहला॥
बड़ दुख रहल मरमे।
पिया बिछुरल जदि कि आर जिवने॥
पूरब जनमे विहि लिखल भरमे।
पियाक दोख नहि जे छल करमे॥
आन अनुरागे पिया आन देसे गेला।
पिया बिना पाँजर झाँझर भेला॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धैरज धरह चित मिलब मुरारि॥

प० स० पृ० १२६, प० त० १६७० : सा० मि० ६७ : न० गु० ६७६

अनुवाद—मिलन में व्यवधान होने के डर से मैं वक्ष पर चीर (वस्त्र), चन्दन एवं हार धारण नहीं करती थी, वही प्रियतम मुझसे इतनी दूर चले गए हैं कि मुझ में और उनमें नदी और गिरि का व्यवधान हो गया है। मन में बड़ा दुख रह गया। प्रियतम यदि मुझको भूल गये, तब और जीवन से क्या प्रयोजन ? प्रियतम के घमण्ड में मैं किसी को कुछ नहीं समझती थी। उस प्रियतम के बिना मुझे कौन क्या नहीं कहता है ? पूर्व-जन्म में विधाता को लिखने में भूल हो गयी थी। प्रियतम का दोष नहीं है, (मेरे) कर्म में जो था (वही हुआ)। अन्य (रमणी) के अनुराग से प्रिय अन्यत्र चले गये। प्रिय के विरह में पंजर में शतछिद्र हो गये (प्रियतम के विरह में मेरा हृदय जर्जरित हो गया)। विद्यापति कहते हैं, वरनारि, सुन, चित्त में धैर्य रख, मुरारि मिलेंगे।

(७३४)

कतदिन माधव रहब मथुरापुर
कबे घुचब विहि वाम।
दिवस लिखि लिखि नखर खोयायलुँ
बिछुरल गोकुल नाम॥
हरि हरि काहे कहब ए सम्बाद।
सोङरि सोङरि नेह खिन भेल मझु देह
जीवने आछये किवा साध॥

पुरुब पियारि नारि हाम आछिलुँ
अब दरसनहुँ सन्देह।
भमर भमए भमि सबहुँ कुसुमे रमि
न तेजअ कमलिनि नेह॥
आशा-निगड़ करि जिउ कत राखब
अबहि ये करत पयान।
विद्यापति कह धैरज धर धनि
मिलब तुरतहि कान॥

प० त० १८६२ ; सा० मि० ८३ ; न० गु० ६६४।

अनुवाद—माधव कितने दिन मथुरापुर रहेंगे, कब विधाता का वामभाव समाप्त होगा? दिवस लिखते लिखते नख नष्ट हो गये, गोकुल का नाम भी भूल गयी। हरि हरि, किसको यह (दुर्दशा) सम्वाद कहें। वही प्रेम स्मरण कर-कर के मेरा शरीर क्षीण हो गया। जीवन में और कौन साध है? मैं पहले (नाथ की) प्रियतमा रमणी थी, अब उनके दर्शन में भी सन्देह है। भ्रमर चारो ओर भ्रमण कर-कर के, सब फूलों का उपभोग करता है (किन्तु) कमलिनी का स्नेह त्याग नहीं करता है। आशा-रूपी निगड़ में जीवन को कितने दिन रखूँगी? अब प्राण चले जायँगे। विद्यापति कहते हैं, धनि, धैर्य धर, शीघ्र ही कन्हायी को पावोगी।

(७३५)

सजनि, के कह आओब मधाई।
विरह-पयोधि पार किए पाओब
मझु मने नहिँ पतिआई॥
एखन-तखन करि दिवस गोङायलु
दिवस दिवस करि मासा।
मास मास करि वरस गमाओल
छोड़लुँ जीवनक आसा॥

बरखि बरखि कर समय गोङयालुँ
खोयालुँ कानुक आशे।
हिमकर-किरणे नलिनि जदि जारब
कि करब माधव-मासे॥
अंकुर तपन-ताप जदि जारब
कि करब वारिद मेहे।
इह नवजौवन विरह गोङायब
की करब से पिया नेहे॥

भनइ विद्यापति सुन वर युवति
अब नहि होइ निराश।
सो व्रजनन्दन हृदय-आनन्दन
झटिति मिलब तुअ पाश॥

प० त० १८२७ एवं १६२७ ; सा० मि० ६६ ; न० गु० ७२३।

अनुवाद—सजनि, कौन कहता है कि माधव आवेंगे? विरहसमुद्र का पार क्या प्राप्त होगा (मेरे विरह का अवसान क्या होगा)? मेरे मन में विश्वास नहीं होता। (उनके आने की आशा से ही) अब-तब करके दिन काटा, दिन-दिन करते मास गया, मास-मास करते वर्ष बीत गया, (अब) जीवन की आशा त्याग कर दी। चन्द्र किरणों से यदि कमल को जला दिया (तब) वैसाख मास आने पर क्या करोगे? धूप की गर्मी में यदि अंकुर जल जाए, तब जल देने वाले मेघ क्या करेंगे (अंकुर के जल जाने पर फिर उसमें जल देने से क्या होगा)? यह नवयौवन विरह में काट दूँगी (उसके बाद) प्रियतम का वह स्नेह क्या करेगा? विद्यापति कहते हैं, हे वर युवति, सुन, अभी निराश मत होवो। हृदय आनन्दकारी वे व्रजनन्दन शीघ्र (तुम्हारे) पास आएँगे।

(७३६)

कत कत सखि मोहे विरहे
भै गेल तीता।
गरल भखि मोञे मरब
रचि देहे मोर चीता॥
सुरसरि तीरे सरीर तेजब
साधब सनक सिधि।
दुलह पहु मोर सुलह होयब
अनुकूल होयब विधि॥
कि मोञे पाँति लीखि पठाओब
तोहे कि कहब सम्बादे।
दसमि दसा पर जब हम होयब
टुटब सबहु विवादे॥

अरु वचन कहिअ सुन्दरि
सहजे पुरुख भोरा।
नारि परखि नेह बढ़ावय
सुनह पुरुख थोरा।
जौं पाँच सरे मरमे हानय
थिर न रहब गेयाने।
सुतिरिथे मजि मोहे अनुसरि
करब जल दाने॥
विद्यापति कवि कहइ सुन्दरि
विरह होयब समधाने।
जलनिधिमय कन्हाइ कामतिरिथ
करब जलदाने॥

न० गु० ६८१।

अनुवाद—सखि, कितने (दीर्घ) विरह से हमारा जीवन तिक्त हुआ। जहर खाकर मैं मरूँगी, मेरी चिता सजा दो। गंगा तीर पर देह त्याग करूँगी, मन की साध साधूँगी, मेरे दुर्लभ प्रभु सुलभ होंगे, विधि अनुकूल होंगे। मैं क्या पत्र लिख कर भेजूँगी, तुम्हीं को क्या सम्बाद कहूँ? जब मेरी दशवीं दशा होगी (मृत्यु-दशा होगी) तब सब विवाद मिट जाएगा। सुन्दरि, और भी कहना कि पुरुष स्वभावतः ही भूल जाता है। हे पुरुष, सुन लो, नारी की परीक्षा करके प्रेम बढ़ाना होता है (जिसके तिसके संग प्रेम करना अनुचित है)। जब पंचशर मर्म विद्ध करेगा, ज्ञान स्थिर नहीं रह सकता; सुतीर्थ में नहा कर, मुझे स्मरण कर जलदान दे (एक अंजलि जल दे)। विद्यापति कवि कहते हैं, सुन्दरि, विरह का अवसान होगा, कन्हायी जलनिधि-मय (समुद्र के समान गम्भीर), तुमको कामनामय समुद्र में निमग्न करके (शीतल करेंगे)।

(७३६) न० गु० ने लिखा है कि यह उन्होंने कीर्त्तनानन्द में पाया है, किन्तु मुद्रित कीर्त्तनानन्द में यह नहीं मिला।

(७३७)

कहत कहत सखि बोलत बोलत रे
हमारि पिया कोन देस रे।
मदन सरानले ए तनु जर जर
कुसल सुनइत सन्देस रे॥
हमारि नागर तथाय विभोर
केहन नागरि मिलल रे।
नागरी पाए नागर सुखी भेल
हमारि हिया दय सेल रे॥

संख्य कर चूर वसन कर दूर
तोड़ह गजमोति हार रे।
पिया जदि तेजल कि काज सिंगारे
जामुन सलिले सब डार रे॥
सींथाक सिन्दूर पोछि कर दूर
पिया बिनु सबहि नैरास रे।
भनय विद्यापति सुनह जुवति
दुख भेल अवसेस रे॥

सा० मि० ६५ ; न० गु० ६६७ (अज्ञात)।

अनुवाद – हे सखि, मेरे प्रियतम किस देश गये, यह कह, यह बोल। उनका कुशल सम्वाद सुन न सकने से मदन शरानल में मेरा यह शरीर जर्जरित हुआ। मेरे पिया वहीं विभोर होकर रह गये, किस प्रकार की नागरी पायी? वे तो नागरी पाकर सुखी हो गये, किन्तु मेरे हृदय में मानों काँटा लगा दिया। शंख्य (चूड़ी) तोड़ दो, वसन दूर करो। गजमोती का हार छितरा कर फेंक दो। प्रियतम ने यदि मेरा त्याग किया, तब वेश-विन्यास (शृंगार) करके क्या होगा? सबों को यमुना के जल में फेंक दो। माथे का सिन्दूर पोंछ कर हटावो, प्रियतम के विना सब निराशापूर्ण मालूम पड़ता है। विद्यापति कहते हैं, युवति, सुन, दुख का अवसान होगा।

(७३८)

सजनी, को कह आओब मधाइ।
विरह-पयोधि पार किये पाओब
मझु मने नहि पतियाइ॥

एंखन तखन करि दिवस गोआयलुँ
दिवस-दिवस करि मासा।
मास मास करि बरिख गोआयलुँ
छोड़लुँ जिवनक आशा॥

बरिख बरिख करि समय गोआयलुँ
खोयलुँ ए तनु आशे।
हिमकर किरणे नलिनि यदि जारब
कि करब माधवि मासे॥

अंकुर तपन तापे जदि जारब
कि करब बारिद मेहे।
इह नवयौवन विरहे गोआयब
कि करब सो पिया नेहे॥
भणये विद्यापति शुन बरजुवति
अब नहि होत निराश।
सो ब्रजनन्दन हृदय-आनन्दन
झटिते मिलब तुय पाश॥

प० स० पृ० १४७; प० त० १८२७ और १६५७

(७३८) ७३५ संख्यक पद से यह पद प्रायः अभिन्न है।

अनुवाद—सजनि, कौन कहता है कि माधव आवेंगे ? मेरे मन को विश्वास नहीं होता कि मैं विरह-समुद्र को पार कर सकूँगी। उनके आने की आशा में अब तब करके दिन काट दिया, दिन-दिन करके मास, मास करके वर्ष काट दिया ; जीवन की आशा छोड़ दी। वर्ष वर्ष करके समय काट दिया ; इस देह की आशा नष्ट हो गयी। चन्द्रमा की किरणों से यदि पद्म दग्ध तो जाए, तब वैसाख का महीना क्या करेगा ? धूप की गर्मी से यदि अंकुर जल जाए तो जलभरे मेघ (उसका क्या कर सकेंगे) ? यह नवयौवन यदि विरह में काट दिया, तब प्रियतम का स्नेह किस काम आयेगा ? विद्यापति कहते है, हे वरयुवति, सुन अभी निराश मत होवो। वह हृदय के आनन्दकारी व्रजनन्दन शीघ्र ही तुम्हारे पास आएँगे।

(७३६)

अब मथुरापुर माधव गेल।
गोकुल-मानिक को हरि लेल॥
गोकुले उछलल करुनाक रोल।
नयनक जले देख' बहए हिलोल॥
सून भेल मन्दिर सून भेल नगरी।
सून भेल दस दिस सून भेल सगरी॥
कैसने जाओब जामुन तीर।
कैसे नेहारब कुंज कुटीर॥
सहचरि सञे जहाँ करल फुलवारि।
कैसे जीयब ताहि निहारि॥
विद्यापति कह कर अवधान।
कौतुके छापित तँहि रहुँ कान॥

प० स० पृ० ११४, प० त० १६३६ ; सा० मि० ७६ ; न० गु० ६२५

अनुवाद—माधव अब मथुरापुर चले गये ; गोकुलमानिक कौन हर कर ले गया। देख रही हूँ गोकुल में करुणा का रोल उछल रहा है, नयनों के जल में मानों हिलोल उठ रहा है। मन्दिर शून्य हुआ, नगरी शून्य हुई, दशों दिशाएँ शून्य हुईं, सब कुछ शून्य हुआ। यमुना-तीर किस प्रकार जाऊँ, कुंजकुटीर किस प्रकार देखूँ। सखियों के संग मिल कर जहाँ पुष्पवाटिका बसायी थी, उसे देख कर किस प्रकार प्राणधारण करूँगी। विद्यापति कहते हैं—मन लगाकर सुनो, कन्हायी (कहीं गये नहीं है) कौतुक देखने के लिए उसी जगह छिपे हुए हैं।

(७४०)

कानु से कहवि कर जोरि।
बोलि दुइ चारि सुनाओब मोरि॥
मुझे कत परिखसि आर।
तुअ आराधन विदित संसार॥
हमछल न टुटब नेहा।
सुपुरुख वचन पसानक रेहा॥
भनइ विद्यापति साइ।
न कर विसाद मने मिलब मधाइ॥

न० गु० ७३१

शब्दार्थ—परिखसि—परीक्षा करते हो ; आराधन–अनुराग ।

अनुवाद—कन्हायी को हाथ जोड़कर कहना, मेरी दो-चार बात सुनाना । मेरी और कितनी परीक्षा करोगे ? तुम्हारा अनुराग संसार में सब कोई जानता है । मैं समझती थी, प्रेम नहीं टूटेगा, (क्योंकि) सुपुरुष का वचन पाषाण की रेखा होता है । विद्यापति कहते हैं, सखि, मन में दुख मत करना ; माधव को पावोगी ।

(७४१)

माधव सो अब सुन्दरि बाला ।
अविरत नयने बारि झरु निझर
जनु घन-साओन माला ॥
पुनमिक इन्दु निन्दि मुख सुन्दर
से भेल अब ससि-रेहा ।
कलेवर कमल काँति जिनि कामिनी
दिने दिने खीन भेल देहा ॥
उपवन हेरि मुरछि पडु भूतले
चिन्तित सखीगन संग ।
पद अंगुलि देइ खिति पर लिखइ
पानि कपोल अवलम्ब ॥
ऐमन हेरि तुरिते हम आओलु
अब तुहुँ करह बिचार ।
विद्यापति कह निकरुन माधव
बुझलु कुलिसक सार ॥

प० त० १६८६ ; सा० मि० १०२ ; न० गु० ७४५ ।

शब्दार्थ—घन-साओन—श्रावण के बादल ; ससिरेहा—चन्द्रमा की रेखा ।

अनुवाद—माधव, उस सुन्दरी बाला के नयनों से श्रावण-मेघमाला के समान अविरत झर झर कर जल झर रहा है । पूर्णिमा का चन्द्र-विनिन्दित सुन्दर मुख अब (प्रतिपदा के) चन्द्रमा की रेखा के समान हो गया है । सुन्दरी का जो कलेवर कमल के सौन्दर्य को जय करता था, वह दिनो-दिन क्षीण हो रहा है ; उपवन देख कर (उपवन में तुम्हारे साथ जो मिलन होता था उसे स्मरण करके, मूर्छित हो कर गिर पड़ती है । सखियों के साथ चिन्तामग्न होकर बैठती है । पैरों की अँगुली से मिट्टी खोदती रहती है और गाल पर हाथ देकर बैठी रहती है । ऐसा देख कर मैं शीघ्र आयी ; अब तुम विचार करके देखो । विद्यापति कहते हैं कि समझा, माधव करुणाहीन पाषाण के सार हैं ।

(७४२)

हिम हिमकर पेखि काँपये खन खन
अनुखन झरये नयान।
हरि हरि बोलि धरणि धरि लुढइ
सखि-बोधे न पातये काण।
माधव पेखलु तैछन राइ।
सविषम खर-शरे अंग भेल जरजर
कहइते को पातियाइ॥
विगलित केश शास वहे खरतर
ना रहे निवि-निवन्ध।
कम्बुकन्धर धरइ न पारइ
टुटल पंजर—वन्ध॥
नव किशलय रचि शयने शुतायइ
अधिक भेल जनु आगि।
किये घर बाहिर पड़ये निरन्तर
अहनिशि खेपाय जागि॥
भनहुँ विद्यापति शुनह रसिकवर
तुरिते मिलह धनि-पाशे।
सकल सखीगन हेरत विनदिनि
दशमि दशा परकाशे।

पदरत्नाकर २६ ; अ ८५४

अनुवाद—शीतल चन्द्र देख कर क्षण-क्षण काँप उठती है ; आँखों से अनुखन जल धारा वहती रहती है। हरि हरि कह कर धरणीतल पर लोट जाती है, सखियों के प्रबोध पर कान तक नहीं देती। माधव, राधा को इस प्रकार की देखा जैसे विषम तीक्ष्ण शर से (उसका) शरीर जर्ज्जरित हो गया हो। यह कहने से कौन विश्वास करेगा ? उसके केशपाश खुले, दीर्घनिश्वास छूट रही है, निवि-बन्ध ठीक नहीं रहता। कम्बुग्रीवा का भार धारण नहीं कर सकती, पंजर का वन्धन मानों (दीर्घनिश्वास से) खुला जा रहा हो। नव किसलय की शय्या बना कर सुलाया गया, परन्तु वह अग्नि से भी अधिक उष्णतर प्रतीत हुई। वह सारा समय घर और बाहर करके बिताती है, रात-दिन जागकर काटती है। विद्यापति कहते हैं, हे रसिकश्रेष्ठ धनी के निकट जाओ। सखियाँ देख रही हैं कि विनोदिनी की दसवीं दशा प्रकट हो रही है।

७४२—*मन्तव्य*—इस पद से कीर्त्तनानन्द से लिए हुए न० गु० ७७६ और ७८२ से वड़ी समानता है। उस पद का प्रारम्भ है :—

किसलए सयने आगि कए मानए
सखिगन न पार बुझाय।
मणिमय मुकुरे देखि पुन मुख
चाँद भरमे मुरछाय॥
माधव, कहलम तोहार दोहाइ
जइसन राहि आजु पेखल
कहइते के पतिआइ॥

इसके वाद 'विगलित के.।' से लेकर भणिता के शेष तक सम्पूर्ण समानता है।

(७४३)

माधव पेखलुँ से धनि राइ।
चित-पुतलि जनु दिठे चाइ॥
वेढ़ल सकल सखी चौपासा।
अति खीन स्वास वहइ तमु नासा॥
अति खीन तनु जनु काँचन रेहा।
हेरइते कोइ न धरु निज देहा॥

कंकन वलया गलित दुहु हात।
फुयल कवरी ना सम्बरी माथ॥
चेहन मुरछन बुझइ न पारि।
अनुखन घोर विरह जरे जारि॥
विद्यापति कह निरदय देह।
तेजल अब जगजन अनुनेह॥

प० त० १७०१ ; सा० मि० १०४ ; न० गु० ७५०

शब्दार्थ—चित-पुतलि—चित्रित पुतली ; चौपासा—चारो ओर ; हेरइते कोइ न धरु निज देहा—देख कर कोई अपना शरीर धारण नहीं करता है (और कोई अर्थ नहीं लगता)।

अनुवाद—माधव, उस सुन्दरी राधा को देखा। वह मानों चित्रित पुतली के समान एक टक से देखती रहती है। सारी सखियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया, देखा कि उसकी नासा से अति क्षीण श्वास बह रही है। उसका शरीर मानों एक क्षीण स्वर्णरेखा के समान, उसे देख कर किसी को भी अपना शरीर धारण किये रहने की इच्छा नहीं होती। उसके दोनों हाथों से कंकण और वलय खिसक कर गिर पड़ रहे हैं। वह माथा की मुक्तवेणी सम्भाल नहीं सकती है। वह मूर्च्छित है अथवा होश में है, समझ में नहीं आता। सब समय विरह-ज्वर में दग्ध रहती है। विद्यापति कहते हैं तुम्हारी देह निर्दय है, इसीलिए जगत के लिए दुर्लभ प्रेम का (तुमने) त्याग किया है।

(७४४)

चन्दन गरल समान।
सीतल पवन हुतासन जान॥
हेरइ सुधानिधि सूर।
निसि बैठलि सुवदनि झूर॥
हरि हरि दारुन तोहारि सिनेह।
तोहेरि जीवन पड़ल सन्देह॥

गुरुजन लोचन वारि।
धनि बाटिया हेरइ तोहारि॥
तेजइ नयन घन नीर।
कत वेदन सहत सरीर॥
सुकवि विद्यापति भान।
दूतीक वचन लजाएल कान॥

अज्ञात ; न० गु० ७१०

अनुवाद—वह चन्दन को गरल-तुल्य और शीतल वायु को अग्नि-तुल्य समझती है। चन्द्रमा को देख कर उसे सूर्य के समान (दाहक) समझती है, रात के समय सुवदनी अश्रु विसर्जन करती है। हरि हरि, तुम्हारा प्रेम दारुण है, उसके जीवन में ही अब संशय हो रहा है। गुरुजनों की नजर बचा कर सुन्दरी तुम्हारे ही पथ की ओर निहारती रहती है। नयनों से अविरल जल-धारा बह रही है। शरीर अब और कितनी वेदना सहन करेगा? सुकवि विद्यापति कहते हैं, दूती के वचन से कन्हायी को लज्जा हुई।

(७४५)

सुन सुन माधव पड़ल अकाज।
विरहिनी रोदिति मन्दिर माझ॥
अचेतन सुन्दरी न मिलए दिठि।
कनक पुतलि जैसे अवनीए[1] लोठि॥

के जाने कैसन तोहारि पिरीति।
बाढ़इ दारुन प्रेम वधइ जुवति॥
कह विद्यापति सुनह मुरारि।[2]
सुपुरुख न छोड़इ रसवती नारि॥

क्षणदा पृ० ४१२ ; न० गु० ७६८

अनुवाद—माधव, सुन सुन, अकाज (अन्याय का काम) हुआ। घर के भीतर विरहिनी रुदन कर रही है। सुन्दरी बेहोश हो गयी है, उसकी आँखें नहीं खुलतीं। सोना की पुतली के समान भूमि पर लोटी हुई है। कौन जानता है कि तुम्हारा प्रेम किस प्रकार का है ; दारुण प्रेम वर्द्धित होकर युवती का प्राण-संहार कर रहा है। विद्यापति कहते हैं, मुरारि सुन, सुपुरुष रसवती नारी को नहीं छोड़ता।

(७४६)

माधव जाइ पेखह तुहुँ बाला।
आजिहुँ कालि परान परितेजब
कत सहु विरहक ज्वाला॥

सीतल सलिल कमल दल सेजहि
लेपहुँ चन्दन पंका।
से सब यतहि आनल सम होयल
दस गुन दहइ मृगंका॥

सकति गेलहु धनि उठइ धरनी धरि
खेपहुँ निसि दिशि जाग।
चमकि चमकि धनी बोलत सिव सिव
जगत भरल तसु आगि॥

काहें उपचार बुझइ न पारइ
कवि विद्यापति भान।
केवल दसमी दसा विधि सिरजल
अवहु करह अवधान॥

प० स० पृ० ११६ ; प० त० १६८१ ; न० गु० ७८१

अनुवाद—माधव, तुम जाकर उस बाला को देखो। आज (अथवा) कल वह प्राण परित्याग करेगी। (उसके लिए) शीतल जल, कमलदल पर शय्या, चन्दनपंक-लेपन सब कुछ अनल-तुल्य हो गये हैं ; आज चाँद मानों दसगुनी अग्नि के समान दहन कर रहा है। राधा की शक्ति खतम हो गयी है, वह जमीन पकड़ कर उठती है (इतनी दुर्बल

७४५—क्षणदा की मुद्रित पोथी का *पाठान्तर*—(१) अवनीते लुठि (२) विद्यापति कहे सुनह मुरारि

७४६—*मन्तव्य*—अमूल्य विद्याभूषण के संस्करण में यह पद ४७० और ७७१ संख्यक होकर दो बार छप गया है।

हो गयी है कि उसे उठने की भी शक्ति नहीं रह गयी), रोज रात जाग कर काटती है। जगत उसकी (काम की) अग्नि से भर गयी है, ऐसा समझ कर चमक उठती है और शिव शिव कहती है

(शम्भो शंकर चन्द्रशेखर हर
श्रीकण्ठ शूलिन् शिव !
त्रायस्वेति परन्तु पंकजदृशा
भर्गस्य चक्रे स्तुतिः ।
—रसमंजरी)

कवि विद्यापति कहते हैं कि समझ में नहीं आता कि कौन उपाय करें। विधाता ने केवल दसवीं दशा अर्थात् मृत्युदशा की सृष्टि की है, इस बार मनोयोग करो।

(७४७)

माधव ओ नवनायरि बाला।
तुहुँ बिछुरलि बिहि कटावलि
भेलि निमालिक माला ॥

से जे सोहागिनी खेदे दिन गिनि
पन्थ निहारइ तोरा।
निचल लोचन ना शुने वचन
ढरि ढरि पड़ु लोरा ॥
तोहरि मुरली से दिग छोड़लि
झामर झामर देहा।
जनु से सोनारे कसि कसटिक
तेजल कनइ रेहा ॥

फुयल कवरि न बान्धे सम्बरि
धनि जे अवस एता।
रुखलि भुखलि दुखलि देखलि
सखिनि-सङ्घ समेता ॥
उससि उससि पड़ु खसि खसि
आलि-आलिगन चाहे।
याकर वेयाधि पराधिन औखधि
ताकर जीवन काहे ॥

भनइ विद्यापति करिये शपति
आर अपरुप कथा।
भावित भावित तोहारि चरित
भरम होइल यथा ॥

प० स० पृ० १३८; पं० १३१८; सा० मि० १०६।

अनुवाद—माधव, वह नवनागरी बाला, तुमने (उसको) विस्मृत किया (अथवा त्याग किया) एवं विधाता ने उसकी उपेक्षा की, वह निर्माल्य की माला (उत्सर्गीकृत और तब उपेक्षित) हुई। वह तुम्हारी सोहागिनी, वह खेद से दिन गिन गिन कर तुम्हारी राह देखती रहती है। उसके नयन निश्चल, वह बात नहीं सुनती, आँखों से नीर बह बह पड़ता है। तुम्हारी वंशी की आवाज ने उस दिशा का परित्याग किया है, इसी लिए उसका शरीर अत्यन्त

म्लान हो गया है, मानों सोनार ने कसौटी पर कस कर एक सोना की रेखा खींच कर छोड़ दी हो। वह खुले हुए कुन्तल को कभी सम्भालती नहीं, इतनी दुर्बल हो गयी है। सखियों के बीच में उसे देखा—रुग्ण, क्षुधार्त और दुख में म्रियमाण। वह दीर्घश्वास त्याग कर के गिर गिर पड़ती है और सखी के आलिंगन की प्रार्थना करती है। जिसकी व्याधि की औषधि दूसरे के अधीन हो, उसका जीवन किस लिए है? विद्यापति शपथ कर के कहते हैं कि इससे भी अपूर्व (आश्चर्यकर विषय) बात यह है कि तुम्हारा चरित्र ध्यान करते करते। (तुम्हारा ही) भ्रम हो गया—अर्थात् तुम्हारी बातों का ख्याल करते करते अपने ही को कृष्ण समझने का भ्रम हो गया।

(७४८)

माधव, कत परबोधब राधा।
हा हरि हा हरि कहतहि बेरि बेरि
अब जिउ करब समाधा॥

धरनी धरिया धनि जतनहि बैठत
पुनहि उठइ नाहि पारा।
सहजहि विरहिणि जग माहा तापिनि
बैरि मदन-सर-धारा॥
अरुन नयन लोरे तीतल कलेवर
विलुलित दीघल केसा।
मन्दिर बाहिर करइते संसय
सहचरि गनतहि सेसा॥

आनि नलिन केओ धनिक सुताओलि
केओ देइ मुख पर नीरे।
निसबद हेरि कोइ शास नेहारत
केइ देइ मन्द समीरे॥
कि कहब खेद भेद जनु अन्तर
घन घन उतपत श्वास।
भनइ विद्यापति सोइ कलावति
जिवन-बन्धन आश-पाश॥

प० त० १८७७; सा० मि० १०७; न० गु० ७८६।

अनुवाद—माधव, राधा को कितना प्रबोध दिया जाए। बार-बार वह हा हरि, हा हरि कहती है, अब ही जीवन समाप्त करेगी। जमीन पकड़ कर किसी प्रकार बैठ जाती है, किन्तु फिर उठ नहीं सकती। सहज ही (एक तो) विरहिनी, जगत में दुखिनी (तापिनी), (उस पर से) मदन की शरधारा उसका शत्रु हो गयी है। उसके अरुण नयनों के जल से देह सिक्त हो गयी। घर के बाहर (यातायात) कराना भी संशय (असाध्य) हो गया है; सहचरियाँ शेष गणना कर रही हैं (समझ रही हैं कि मृत्यु निकट है)। किसी ने नलिनीदल लाकर धनी को उस पर सुलाया, कोई मुख पर जल दे रहा है। निःशब्द देख कर कोई इस बात की परीक्षा कर रही है कि श्वास चलती है अथवा नहीं, कोई धीरे धीरे हवा करती है। खेद (उसके खेद की बात) क्या कहूँ, मानों हृदय भेद कर घन-घन उत्तप्त श्वास निकल रही है। विद्यापति कहते हैं, एक मात्र आशा के पाश में ही उस कलावती का जीवन-बन्धन रह गया है (आशा के पाश में न रहती तो कितने दिन पहले ही प्राण निकल जाते)।

(७४६)

माधव! कि कहब सो विपरीते
तनु भेल जरजर भामिनी अन्तर
चित रहल तह्नु भिते॥
निरस कमल-मुख करे अवलम्बइ
सखि माझे बैठल राइ।
नयनक नीर थिर नहि बाँधइ
पंक करल महि रोइ॥
मरमक बोल, बयाने नाहि बोलत
तनु भेल कुहु-ससि खीना।
अवनि उपर धनि उठइ न पारइ
धयलि ध्वजा करि दीना॥
तपत कनया जनु काजर भेल तनु
अति भेल बिरह-हुतासे।
कवि विद्यापति मने अभिलषित
कानु चलह तह्नु पासे॥

कीर्त्तनानन्द १२४ संख्यक पद; न० गु० ११०।

अनुवाद—माधव, वह विपरीत (बात) क्या कहूँ? भामिनी की देह और मन जर्जर हुए, उसका मन अन्य के पास पड़ा रह गया। नीरस (उदास) कमल-मुख हाथ पर अवलम्बन करके सखियों के बीच राधा बैठी। नयन का जल स्थिर नहीं रहा, रो-रोकर मिट्टी को कीचड़ कर दिया। मर्म की बात मुख से नहीं कहती, शरीर अमावस्या के शशि के समान क्षीण हुआ। जमीन पर से सुन्दरी उठ नहीं सकती, धयलि ध्वजा करि दीना' का कोई अर्थ नहीं होता, इसीलिए नगेन्द्र बाबू ने उसे संशोधन करके लिखा है, 'धएलि भुजा करि दीना' सखियाँ दीना का हाथ पकड़ कर उठाती थीं)। तप्त कांचन के समान शरीर मानो कज्जल के समान हो गया। विरहाग्नि अत्यन्त (प्रचण्ड) हो गयी। कवि विद्यापति मन में अभिलाषा करते हैं—हे कानु, उसके निकट चलो।

(७५०)

माधव हेरिअ आयलुँ राइ।
विरह-विपति न देइ समति
रहल वदन चाइ॥
मरकतस्थलि सुतलि आछलि
विरहे से खीन देहा।
निकस पाषाखे येन पाँच बाने
कसिल कनक रेहा॥
बयान मण्डल लोटाय भूतल
ताहे से अधिक सोहे।
राहु भये ससी भुमे पड़ू खसि
ऐसे उपजल मोहे॥
विरह वेदन कि तोहे कहब
सुनह निठुर कान।
भन विद्यापति से जे कुलवती
जीवन संसय जान॥

प० त० १८७६; सा० मि० ६६; न० गु० ७४६

अनुवाद—माधव, राइ को देख आयी। उसकी विरह-विपत्ति उसको बातें नहीं करने देती है, वह केवल मुख की ओर निहारती रह जाती है। मरकत-निर्मित हर्म्य के नीचे वह विरह-क्षीण शरीर से सोयी थी, मदन ने मानों कसौटी पर कनक की रेखा खींच दी हो (कन्दर्प स्वर्णकार, मरकतस्थली कसौटी और क्षीण शरीर सोना की रेखा के समान उत्प्रेक्षित हुए हैं)। उसका मुखमंडल पृथ्वी पर लोटा रहा है, इससे उसकी शोभा अधिक हो गयी है—मुझे बोध हुआ मानों राहु के डर से चन्द्रमा पृथ्वी पर गिर गया है। हे निष्ठुर कन्हायी, सुन, उसकी विरह-वेदना की बात क्या कहूँ। विद्यापति कहते हैं, वह कुलवती, उसका जीवन संशय में समझना।

(७५१)

माधव अबला पेखलु मतिहीना।
सारंग-सबदे मदन अधिकायल
ताहे दिने दिने भेल खीना॥

रहलि विदेस सन्देस ना पाठायलि
कैहे जीयत व्रजबाला।
तो विनु सुन्दरी ऐछन भेलहि
यैछे नलिनी पर पाला॥

सकल[1] रजनी धनी रोइ गमाबए
सपने न देखय तोय।
धैरज कइसे करब वर कामिनी
विपरीत काम विमोय॥

विद्यापति भन सुन वर नागर
हम आओल तुअ पास।
तुरिते चलह अब धैरज न सह
ऐछन विरह हुतास[2]॥

प० त० १८९९; प० स० पृ० १६४; सा० मि० १११; न० गु० १४४

---

(७५१) *पाठान्तर*—(१) उर विनु शेज नहि पायइ
सोइ लुठत महि कामे।
पुणमिक चाँद टूटि पडु खितिमहा
झामर चम्पक दामे॥

पाठान्तर का अनुवाद तुम्हारे वक्ष पर ही जो रहती, बिछावन का स्पर्श नहीं पाती, वह काम के दहन से आज मिट्टी में लोटा रही हैं। पूर्णिमा का चाँद पृथ्वी पर गिर गया है, चम्पकदाम म्लान हो गया है।

(७५१) *पाठान्तर*—(२) सोई अवधि दिन वह आशोयासलुँ
ते धनि राखत पराण।
भणये विद्यापति निकरुण माधव
शुनइते हरल गेयान॥

अनुवाद—माधव, अवला मतिहीना (पगली) को देखा। कोकिल के (सारंग के) शब्द से मदन ज्वाला बढ़ रही है, इसीलिए दिनों-दिन क्षीण हो रही है। विदेश जाकर सम्वाद नहीं भिजवाया, अबला कैसे बचेगी? तुम्हारे विरह में सुन्दरी उसी प्रकार की हो गयी है जिस प्रकार नलिनी के ऊपर तुषारपात हुआ हो। धनि सारी रात रोकर काटती है, तुमको स्वप्न में भी देख नहीं पाती। कामिनी किस प्रकार धैर्य धरे—प्रतिकूल काम उसको विमोहित करता है (यातना देता है)। विद्यापति कहते हैं, माधव, सुन, तुम्हारे पास मैं आया; तुम शीघ्र चलो; विरह की ज्वाला इतनी तीव्र है कि वह अब और धैर्य नहीं रख सकती है।

(७५२)

माधव विधुवदना।
कबहुँ न जानइ विरहक वेदना॥
तुहुँ परदेस जाव सुनि भइ खीना।
प्रेम परतापे चेतन हरु दीना॥
किसलय तेजि भूमे सुतलि आयासे।
कोकिल कलरवे उठइ तरासे॥
नोरहि कुच कुंकुम दुर गेल।
कृस-भुज भूसन खितितले मेल॥
अवनत वयने राइ हेरत गीम।
खिति लिखइते भेल अंगुलि छीन॥
कहइ विद्यापति उचित चरित।
से सब गनइते भेलि मुरछित॥

प० स० पृ० १०६; प० त० १६१७; सा० मि० ७७; न० गु० ७४०

अनुवाद—माधव, विधुवदना कभी भी विरह-वेदना नहीं जानती। तुम विदेश जावोगे, सुनकर खिन्न हो गयी है। उस दीना का चेतन प्रेम के प्रताप से हृत हो गया है। किसलय की शय्या का परित्याग करके कष्ट से भूतल पर शयन किए हुई है। कोकिल का रव सुनकर भय पाकर उठ बैठती है। नयनों के जल से कुचकुंकुम दूर हो गया है। कृश भुज से मुक्त होकर भूषण पृथ्वीतल पर मिल (गिर) गये हैं ("कनकवलय-भ्रंशरिक्तः प्रकोष्ठः"—मेघदूत)। राइ मुख अवनत कर ग्रीवा निरीक्षण करती है (देखती है कि कितनी दुबली हो गयी है)। पृथ्वी पर लिखते लिखते (दिन गिनते-गिनते) उँगली क्षीण हो गयी है। विद्यापति कहते हैं, उसका चरित्र उचित है (विरहावस्था में जो होता है, सब हो रहा है) वही सब गणना करके धनि मूर्छित हो गयी।

(७५३)

लोचन नोर तटिनी निरमान।
ततहि कमलमुखि करत सिनान॥
बेरि एक माधव तुअ राइ जीवइ।
जब तुअ रुप नयन भरि पीवइ॥
फुयल कवरी उलटि उरे परइ।
जनु कनयागिरि चामर ढरइ॥
तुअ गुन गनइते निन्द न होइ।
अवनत आनने धनि कत रोइ॥
भनइ विद्यापति सुन वर कान।
बुझलु तुअ हिया दारुन पसान॥

प० स० पृ० ११८; प० त० १६८३; सा० मि० १०१; न० गु० ७४२

(७५३) *मन्तव्य*—प्रथम दो चरण नगेन्द्र बाबू की तालपत्र पोथी से लिए हुए ७५२ संख्यक पद से अभिन्न हैं किन्तु अन्य अंश विभिन्न हैं।

शब्दार्थ—कमलमुखी —ध्वनि है कि कमल जिस प्रकार जल में शोभता है उसी प्रकार नायिका का मुखकमल नयनजल में शोभ रहा है एवं पद्मतल के समान उसका शरीर स्नात हो रहा है ; फुथल–खुला ; उरे–वक्ष पर ; चामर ढरइ–चामर डुल रहा है।

अनुवाद—नयनों के अश्रु से तटिनी (नदी) निर्मित हुई है ; कमलमुखी उसमें स्नान कर रही है। माधव तुम्हारी राइ यदि एकबार तुम्हारा रूप नयन भर के पान करे, (तब ही) बच सकती है। मुक्त कबरी उलट कर वक्ष पर गिर गयी है, मानों स्वर्णगिरि पर (पयोधरों) चामर डुल रहा हो। तुम्हारा गुण गिनते गिनते उसे नींद भी नहीं आती। वह मुंह नीचे करके कितना रोती है। विद्यापति कहते हैं, हे कन्हायी, समझा तुम्हारा हृदय पाषाण है।

(७५४)

वर रामा हे सो किये विछुरण याय।
करे धरि माथुर अनुमति मागिते
ततहि पड़ल मुरछाय॥
किछु गद गद स्वरे लहु लहु आखरे
ये किछु कहल वर रामा।
कठिन कलेवर तेइँ चलि आओल
चित रहल सोइ ठामा॥

ता बिने रात दिवस नहि भाओइ
ताते रहल मन लागी।
आन रमनि सब्ने राज सम्पद मये
अछिए यैछे वेरागी॥
दुइ एक दिवसे निचय हम जाओब
तुहु परबोधबि राई।
विद्यापति कह चित रहल ताहाँ
प्रेम मिलायब याइ॥

प० त० १९४७ ; न० गु० ७८८

अनुवाद—हे सुन्दरि, उसको क्या भुलाया जाता है? हाथ पकड़ कर मथुरा जाने की अनुमति माँगने के सम वहीं पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। गद्गद् स्वर में स्खलित अधरों से रामा ने जो कुछ कहा (उसको सुनकर भी) मेरा कठिन कालेवर था, इसलिए चला आया, किन्तु मन उसी जगह रह गया। उसको रात-दिन अच्छे नहीं लगते ; वहीं पर मन पड़ा हुआ है। राज-सम्पदा के बीच अन्य रमणियों के संग में विरागी के समान रहता हूँ। दो एक दिन में मैं अवश्य आऊँगा, यही कह कर राधा को प्रबोध देना। विद्यापति कहते हैं कि जहाँ प्रेम पाया वहीं चित्त रह गया।

(७५५)

ए सखि काहे कहसि अनुजोगे।
कानु से अबहि करबि प्रेमभागे॥
कोरे लेयध सखि तुहुँक पिया।
हम चललँ तुहुँ थिर कर हिया॥

एत कहि कानु पासे मिलल से सखी।
प्रेमक रीत कहल सब दुखी॥
सुनतहि कानु मिलल धनि पास।
विद्यापति कह अधिक उलास॥

सा० मि० ४१; न० गु० ७३८

(७५५) विद्यापति की रचना का कोई वैशिष्ट्य इसमें नहीं पाया जाता है।

(७५६)

सोइ यमुना गेल।
गोप गोपी नाहि बुले॥
रोदति पिंजर शुके।
धेनु धावइ माथुर मुखे॥
हरि कि मथुरापुर गेल।
आज गोकुल सून भेल॥

सागरे तेजिब परान।
आन जनमे हेरब कान॥
कानु होयब यब राधा।
तब जानब विरहक बाधा॥
विद्यापति कह नीत।
रोदन नह समुचित॥

प० स० पृ० ११४

अनुवाद—उसी यमुना-जल में गोप और गोपियाँ भ्रमण नहीं करतीं (क्रीड़ा नहीं करतीं)। शुक-पक्षी पिंजरे में रो रहा है। गौवें मथुरा की ओर दौड़ रही हैं। आज क्या हरि मथुरा पुर चले गए? आज गोकुल सूना हो गया। मैं सागर में प्राण विसर्जन करूँगी, तब दूसरे जन्म में कन्हायी को देख पाऊँगी। कन्हायी जब राधा होंगे तब विरह का दुख समझेंगे। विद्यापति नीतिवाक्य कहते हैं--रुदन करना समुचित नहीं।

(७५७)

अनुखन माधव माधव सोङरिते
सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सभावहि विसरल
आपन गुन लुबुधाई॥
माधव, अपरूप तोहारि सिनेह।
अपने विरह अपन तनु जरजर
जिवइते भेल सन्देह॥

भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि
छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत
आध आधा कहु बानि।
राधा सयें जब पुनतहि माधव
माधव सयें जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत
बाढ़त विरहक बाधा॥

दुहु दिशे दारुदहने जैसे दगधइ
आकुल कीट परान।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि
कवि विद्यापति भान॥

प० स० पृ० ११६ ; पदक-१६८७ ; सा० मि० १०३ ; न० गु० ७११।

---

(७५७) *मन्तव्य*—श्रीमद्भागवत में देखा जाता है कि गोपियाँ कृष्ण के विरह में अपने को कृष्णभाव में विभावित करके श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण करती थी। जयदेव ने लिखा है—

मुहुरवलोकित मण्डनलीला। मधुरिपुरहमिति भावनशीला॥ ६।१

अर्थात् राधा तुम्हारे (माधव के) समान वेशभूषा धारण कर बारबार देखती हैं अर्थात् अपने को कृष्ण समझती हैं।

शब्दार्थ—भोरहि—भोलहि, विह्वल होकर ; दारुदहन—काठ का जलना ।

अनुवाद—अनुखण माधव माधव स्मरण करते करते सुन्दरी माधव हो गयी। अपने गुण पर लुब्ध होकर वह अपना भाव और स्वभाव भूल गयी (प्रेम-तन्मयता हेतु मैं ही माधव हूँ ऐसा बोध हुआ ; भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय में वर्णन हुआ है कि ऐसा गोपियों को हुआ था)। माधव, तुम्हारा प्रेम अपूर्व है। श्रीराधा अपने ही विरह में अपने जर्ज्जरित हो रही हैं। उनके वचने में भी सन्देह है। वे विह्वल होकर सहचरी की ओर कातर नयनों से देखती हैं, उनके नयनों में जल छल-छल करता है। सर्व्वदा (माधव के अभिमान में) राधा राधा कहती हैं एवं आधी आधी बोली मुख से निकालती हैं। जब राधा का संग (अर्थात् राधाभिमान विशिष्ट रहता है) रहता है, तब फिर 'माधव' 'माधव' कहती हैं ; (किन्तु) जब माधव का संग (अर्थात् माधव के अभिमान में रहती हैं) होता है, तब फिर राधा राधा कहने लगती हैं ; उस पर भी दारुण प्रेम टूटता नहीं, विरह की व्यथा बढ़ जाती है। किसी दोनों छोर पर जलते काठ के टुकड़े के भीतर रहने वाले कीड़े की जो दशा होती है, हे वल्लभ, सुधामुखी को उसी प्रकार का देख रहा हूँ। विद्यापति यह कहते हैं।

(७५८)

हामक मन्दिरे जब आओब कान।
दिठि भरि हेरब सो चान्द बयान ॥
नहि नहि बोलब जब हम नारि।
अधिक पिरीति तब करब मुरारि ॥
करे धरि मझु बैसाओब कोर।
चिरदिने साध पुराओब मोर ॥
करब आलिंगन दूरे करि मान।
ओ रसे पूरब हम मूदब नयान ॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
तोहर पिरीतिक जाऊ बलिहारि ॥

सा० मि० ११७ ; न० गु० ८२४ ।

अनुवाद—मेरे मन्दिर में जब कन्हायी आवेंगे तब नयन भर कर उनका चन्द्रवदन देखूँगी। मैं जब 'न, न' कहूँगी तो मुरारी और भी अधिक प्रीति करेंगे। मेरा हाथ पकड़ कर मुझे गोद में बैठावेंगे, बहुत दिनों की साध पूरी करेंगे। मैं मान त्याग कर आलिंगन करूँगी। रस में भर कर मैं आँखे बन्द कर लूँगी। विद्यापति कहते हैं, वरनारि, सुन, तुम्हारी प्रीति पर बलिहारी जाता हूँ।

(७५९)

अंगने आओब जब रसिया।
पालटि चलब हम इसत हँसिया ॥
आवेशे आँचर पिया धरबे।
याओब हम जतन पहु करबे ॥
कँचुया[१] धरब जब हठिया।
करे कर वारब कुटिल आध दिठिया ॥
रभस माँगब पिया जबहीं।
मुख मोड़ि विहसि बोलब नहि तबहि ॥
सहजहि सुपुरुख भमरा।
चिर धरि पियब अधर रस हामरा[२] ॥
तखने हरब मोर चेतने[३]।
विद्यापति कह धनि तुआ जीवने ॥[४]

प० त० १९७४; चयदा पृ० १०९; प० स० पृ० १९१; सा० मि० ११६; न० गु० ८०९

(७५९) चयदा का पाठान्तर—(१) काँचुया (२) सहजे पुरुष सोइ भमरा मुख कमल मधु पीयब हामरा ॥ (३) गेयाने (४) धेयाने

अनुवाद—रसिक जब आँगन में आवेंगे (उस समय) मैं (उनकी ओर न जाकर) ईषत् हँस कर लौट कर चलने लगूँगी। जब वे आवेश में मेरा अँचल पकड़ेंगे, (उस समय) मैं चली जाऊँगी प्रभु (मुझको रोकने के लिए) यत्न करेंगे। हठ पूर्वक जब (मेरी) काँचलि पकड़ेंगे, तब कुटिल कटाक्ष से हनकर मैं हाथ से हाथ रोकूँगी। पिया जब केलि माँगेंगे, तब मुस्कुरा कर मुख फेर कर ना ना कहूँगी। सुपुरुष के स्वभाववश वे भ्रमर तुल्य मेरा वस्त्र पकड़ कर मेरे मुख-कमलमधु पान करेंगे। तब मैं ज्ञान खो दूंगी (तब मुझे होश नहीं रहेगा); विद्यापति कहते हैं, तुम्हारा जीवन धन्य है।

(७६०)

पिया जब आओब ए मझु गेहे।
मंगल जतहुँ करब निज देहे॥
कनया कुम्भ भरि कुचयुग राखि।
दरपन धरब काजर देइ आँखि॥
वेदि बनाओब हम अपन अंकमे।
झाड़ करब ताहे चिकुर बिछाने॥
कदलि रोपब हम गरुआ नितम्ब।
आम-पल्लव ताहे किंकिनि सुझम्प॥
दिसि दिसि आनब कामिनि ठाट।
चौदिगे पसारब चाँदक हाट॥
विद्यापति कह पूरब आस।
दुइ एक पलके मिलब तुअ पास॥

प० त० १९७२; सा० मि० ११९; न० गु० ८०६

अनुवाद—जब प्रिया मेरे इस घर में आवेंगे (तब) अपने शरीर में समस्त मंगल (मंगलाचार) करूँगी। कुचयुग को स्वर्ण-कलश बनाकर रखूँगी। आँखों में काजल देकर दर्पण धरूँगी (निर्मल चक्षु दर्पण होगा—मेरे नेत्र-मुकुर में प्रिया अपना मुख अवलोकन करेंगे)। मैं अपने अंग में वेदी रचना करूँगी। केश पसार कर उससे झाड़ू करूँगी (केशपाश झाड़ू होगा)। अपना गुरु-नितम्ब रूपी कदली रोपूँगी। उसमें किंकिणीरूपी आम्र-पल्लव झुला दूंगी।

[तुलनीय—दीर्घा चन्दनमालिका विरचिता दृष्ट्येव नेन्दीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभिः॥
दत्तः स्वेदमुचा पयोधरयुगेनार्घ्यो न कुम्भाम्भसा
स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मंगलम्॥
—अमरुशतक]

सारी दिशाओं से कामिनी का ठाट लाऊँगी (सब प्रकार का कला-कौशल प्रदर्शित करूँगी), चारों ओर चाँद का हाट पसारूँगी (रूप विस्तार करूँगी)। विद्यापति कहते हैं, यह आशा पूर्ण होगी। दो एक पलकों में ही तुम्हारे पास (प्रिय) आकर मिलेंगे।

(७६१)

यब हरि आओब गोकुलपूर।
घरे घरे नगरे बाजब जयतूर ॥[१]

आलिपन देओब मोतिम हार।
मंगल कलस करब कुचभार ॥
सहकार पल्लव चूचुक देव।
माधव सेवि मनोरथ नेब ॥
धूप दीप नैवेद करब पिया आगे।
लोचन लोरे करब अभिसेके ॥
आलिंगन आहुति पियाकर आगे।
भणइ विद्यापति इह रस भागे ॥[२]

प० त० १६७२; प० स० पृ० १५१; सा० मि० ११४; न० गु० ८०७

अनुवाद—हरि जब गोकुलपुर आवेंगे, घर-घर, नगर में विजयतूरी बजेगी। मुक्ताहार का आलेपन दूँगी। चुचुकरूप सहकार- पल्लव दूँगी। माधव की सेवा करके मनोरथ (वर) लूँगी। धूप (अपना अंगसौरभ), दीप (रूप, अंगकान्ति) नैवेद्य (उपभोग) प्रियतम के सम्मुख रक्खूँगी। [धूप दीप नैवेद्य इत्यात्र धूपः स्वांग सौरभः, प्रदीपोऽत्र निजांग कान्तिः, नैवेद्य उपभोगातिरेक इति तु वैवश्यात्तउत्क्रमिति ज्ञेयं अन्यथा पूर्वापर-वाक्य-विरोधः स्यात्। राधामोहन ठाकुर] लोचन के नीर से अभिषेक करूँगी। प्रिय के सम्मुख आलिंगन रूपी आहुति दूँगी। विद्यापति भावावेश में यह रस कहते हैं।

(७६२)

आओल गोकुले नन्दकुमार।
आनन्द कोई कहइ जनि पार ॥
कि कहब रे सखि रजनिक काज।
स्वपनहि हेरलुँ नागर-राज ॥
आजु सुभ निसि कि पोहायनु हाम।
प्रान पियारे करलु परनाम ॥
विद्यापति कहे सुन वरनारि।
धैरज धरह तोहे मिलब मुरारि ॥

पदकल्पतरु १७६४; सा० मि० ११८; न० गु० ७६५ (प्रथम दो चरण नहीं हैं)

(स्वप्न-मिलन की बात)

अनुवाद—गोकुल में नन्दकुमार आए। आनन्द की सीमा न रही। सखी, रात के काज की बात क्या करूँ, स्वप्न में नागर-राज को देखा। आज मैंने शुभनिशि काटी-प्राणप्रिय को प्रणाम किया। विद्यापति कहते हैं, वरनारी, सुन, धैर्यधर, तू मुरारि को पायेगी।

---

(७६१) *पाठान्तर*—(१) किसी किसी पोथी में अधिक पाठ हैः—

वेदि बान्धव आपन निज अंगमे। झाडु देओब हाम चिकुर विजने ॥
केदलि रोपब हाम गुरुया नितम्बा। आम्र पल्लव दिव किंकिनी झम्पा ॥
रसावेशो धाओब रमणिक ठाट। चौदिके वेढब चान्दकि हाट ॥

(२) किसी किसी पोथी में भणिता में ये दो कलियाँ और मिलती हैंः—

पिया आसे यौवन करवहु दान। कवि विद्यापति इह रस भान ॥

(७६३)

चिरदिने से विहि भेल निरबाध।
पुराओल दुहुक मनोभव साध॥
आओल माधव रति सुख बास।
बाढ़ल रमनिक मनहि उलास॥

से तनु परिमले भरल दिगन्त।
अनुभवि मुरुछि पड़ल रतिकन्त॥
भनइ विद्यापति कुमुदिनि इन्दु।
उछलल सखिगन आनन्द-सिन्धु॥

क्षणदा; न० गु० ८२०

अनुवाद—वह विधि बहुत दिनों पर निर्बाध (बाधारहित) हुआ (मिलन में बाधा न हुई)। दोनों की कामलिप्सा पूर्ण हुई। माधव रतिसुख के स्थान पर आए, रमणी के मन में उल्लास बढ़ा। उसके शरीर की सुगन्ध से दिगन्त भर गया। उसको अनुभव करके काम भी मूर्च्छित हो गया। विद्यापति कहते हैं, कमुदिनी ने इन्दु को पाया, सखियों का आनन्द-सिन्धु उछलने लगा।

(७६४)

चिरदिन सो विहि भेल अनुकुल।
दुहु मुख हेरइते दुहु से आकुल॥
बाहु पसारिया दोंहे दोंहा धरु।
दुहु अधरामृत दुहु मुख भरु॥

दुहु तनु काँपइ मदनक रचने।
किंकिणि रोल करत पुन सदने॥
विद्यापति अब कि कहब आर।
यैछे प्रेम दुहुँ तैछे विहार॥

प० स० ६०; प० त० २०१२; न० गु० ८२३।

अनुवाद—बहुत दिनों के बाद वह विधाता अनुकूल हुआ। दोनों का मुख देखकर दोनों आकुल हुए। बाँह पसार कर दोनों ने दोनों का आलिंगन किया। दोनों के मुख दोनों के अधरामृत से भर गये। मदन की रचना से दोनों के शरीर कम्पित हुए। घर में किंकिणी का शब्द होने लगा। विद्यापति कहते हैं, और क्या कहें, जैसा दोनों का प्रेम, वैसा ही विहार।

---

(७६४) *पाठान्तर*—क्षणदा गीत चिन्तामणि मे पाचवी से दसवीं कली तक का पाठ :—

दुहु तनु काँपइ मदन उछल रे।
कि कि कि करि किंकिनी रुचल रे॥

जातहि स्मित नव वदने मिलल रे।
दुहु पुलकावलि ते लहु लहु रे॥

रसे मातल दुहु बसन खसल रे।
विद्यापति कह रससिन्धु उछलल रे॥

(७६५)

दुहु रसमय तनु गुने नहि ओर।
लागल दुहुक न भाँगइ जोर॥
के नहि कएल कतहुँ परकार।
दुहु जन भेद करिअ नहि पार॥
खोजल सकल महीतल गेह।
खीर नीर सम न हेरलुँ नेह॥

जब कोइ वेरि आनल-मुख आनि।
खीर दण्ड देइ निरसत पानि॥
तबहु खीर उछलि पड़ तापे।
विरह वियोग आगि देइ झाँपे॥
जब कोइ पानि आनि ताहि देल।
विरहवियोग तबहि दूर गेल॥

भनइ विद्यापति एहन सुनेह।
राधामाधव ऐहन नेह॥

प० त० ६११ ; सा० मि० ७२ ; न० गु० ४४८।

शब्दार्थ—ओर—सीमा ; जोर—मिलत ; खीर नीर सम—जल के साथ दूध में ; कोइ वेरि—किसी समय; निरसत पानि—जल सुखा कर फेंक दे।

अनुवाद—दोनों के रसपूर्ण शरीर, गुण की सीमा नहीं ; दोनों का योग मिला ; मिलन टूटता नहीं। किसी ने कितने प्रकार के उपाय क्यों न किए (दुरभिसन्धि की), किन्तु दोनों में भेद (विवाद) पैदा नहीं कर सका। सारी पृथ्वी पर खोज कर देखा, दूध और जल के समान स्नेह नहीं देखा (जैसा इन दोनों में देखा जाता है)। यदि कभी कोई अग्नि के मुख में डाल दे (आग पर दूध और पानी चढ़ा दे एवं) दण्ड देकर जल को सुखा फेंके, तो उसी समय दूध उछल पड़ता है एवं विच्छेद के भय से स्वयं (अग्नि में) कूद पड़ता है। यदि उस समय कोई जल लाकर उसमें डाल दे, विरह-विच्छेद उसी समय दूर चला जाता है (दूध उबलने के समय पानी डाल देने से वह बाहर नहीं गिरता, एवं उसे शान्ति मिल जाती है)। विद्यापति कहते हैं कि सुन्दर स्नेह इसी प्रकार का होता है, राधा-माधव की ऐसी ही प्रीति है।

(७६६)

आजु रजनी हम भागे पोहायलु
पेखलुँ पिया मुख चन्दा।
जीवन जौवन सफल करि मानलुँ
दसदिस भेल निरदन्दा॥
आज मझु गेह गेह करि मानलुँ
आजु मझु देह भेल देहा।
आजु विहि मोहे अनुकूल होअल
टुटल सबहुँ सन्देहा॥

सोइ कोकिल अब लाख लाख डाकउ
लाख उदय करु चन्दा।
पाँचबान अब लाख बान होउ
मलय पवन बहु मन्दा॥
अबहन यबहुँ मोहे परि होयत
तबहि मानब निज देहा।
विद्यापति कह अलप भागि नह
धनि धनि तुया नव नेहा॥

प० स० पृ० २२१ ; प० त० १६६६ ; सा० मि० ११६ ; न० गु० ८१२।

शब्दार्थ—अवहन—पदामृत समुद्र की संस्कृत टीका में राधामोहन ठाकुर ने लिखा है—"ऐक्षन इत्यस्य पाश्चात्यभाषा अवहन इति।"

अनुवाद—आज की रजनी मैंने सौभाग्यपूर्वक काटी, मैंने प्रियतम का मुखचन्द्र देखा। जीवन-यौवन को सफल समझा, दसों दिशाएँ निर्द्वन्द्व हो गयीं। आज मैंने अपने घर को घर और शरीर को शरीर समझा। आज विधाता मेरे प्रति अनुकूल हुए; सब सन्देह दूर हुआ। (जिस कोकिल ने मुझे इतनी विरह-यन्त्रणा सहन करवाया था) वह कोकिल अब लाख-लाख बार पुकारे। लाखों चन्द्रमा उदय हों, मलय पवन मृदुमन्द बहे। जब मेरे पक्ष में ये सब बातें होंगी तब ही मैं अपने शरीर को (शरीर) समझूँगी। विद्यापति कहते हैं, हे धनि, तुम्हारे नवीन प्रेम का भाग्य कम नहीं।

(७६७)

दारुन वसन्त यत दुख देल।
हरि मुख हेरइते सब दूर गेल॥
यतहुँ आछल मोर हृदयक साध।
से सब पूरल हरि परसाद॥

कि कहब रे सखि आनन्द ओर।
चिर दिने माधव मन्दिरे मोर॥
रभस आलिंगने पुलकित भेल।
अधरक पाने विरह दूर गेल॥

भनहि विद्यापति आर नह आधि।
समुचित औखदे ना रह बेयाधि॥

पदामृत समुद्र पृ० ११८ क; न० गु० ८१०; प० त० १९६७ (किन्तु पाचवीं और छठी कलियाँ नहीं हैं)

अनुवाद—दारुण वसन्त ने जितना दुख दिया, हरि का मुख देकर कर वह सब दूर हो गया। मन में जितनी साध थी, हरि के प्रसाद से सब पूर्ण हो गयी। सखि, आनन्द की सीमा की बात क्या कहूँ; बहुत दिनों के बाद माधव मेरे मन्दिर में आए। रभस-आलिंगन से पुलकित हो गयी, अधर के सुधापान से विरह दूर चला गया। विद्यापति कहते हैं, अब और बेचैनी नहीं रह सकती। समुचित औषधि पड़ने पर क्या रोग रहता है?

---

(७६७) मन्तव्य—यह एक सुप्रसिद्ध पद है। श्री चैतन्य देव को विद्यापति के गीत बहुत अच्छे लगते थे। वे अद्वैताचार्य के घर आए, तो अद्वैत जी ने यही पद गाया था। श्री चैतन्य चरितामृत में, (मध्यलीला, तृतीय परिच्छेद) है:—

"कि कहब रे सखि आजुक आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर।"

एइ पद गाइ हर्षे करेन नर्त्तन।
आचार्य नाचेन प्रभु करेन दर्शन॥

स्वेद कम्प अश्रु पुलक हुकार गर्ज्जन
फिरि फिरि कभु प्रभुर धरेन चरण॥

गानसुनतेसुनते श्रीचैतन्यदेव व्याकुलहोकर पृथ्वी पर गिर गये थे। यह पद संकीर्त्तनामृत में (संख्या ४८१) इस तरह है—

आजुक कि कहब आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर॥
पाप सुधाकर यो दुख देल।
पियाक दरशने सब सुख भेल॥

(७६८)

सखि हे कि पुछसि अनुभव मोय।
सोइ[1] पिरीति अनुराग बखानइते[2]
तिले तिले नूतन[3] होय॥
जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
सोइ[4] मधुर बोल श्रवनहि शुनल
श्रुति पथे परश न गेल॥

कत मधु यामिनी[5] रभसे गमाओल
न बुझल कैसन केल।
लाख लाख युग हिये हये[6] राखल
तैओ हिय[7] जुड़न न गेल॥
यत यत रसिक जन रसे[8] अनुमगन
अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत
लाखे न मिलल एक॥

न० गु० ८३४

आँचल भरिया यदि महानिधि पाओं।
आर दूरदेशे हाम पिया ना पाठाओं॥

शितेर ओढ़नी पिया गिरिपेर वा।
वरिषार छत्र पिया दरियार ना॥

भनए विद्यापति शुन वरनारि।
पिया से मिलिल येनचातके वारि॥

इसके साथ पदकल्पतरु का १६६५ संख्यक पद कुछ मिलता-जुलता है। केवल भणिता में पार्थक्य है, यथा
भणए विद्यापति शुन वरनारि। सुजनक दुख दिन दुइ चारि॥

हमें लगता है पदकल्पतरु १६६५ और संकीर्त्तनानन्द ४८१ पद बंगाली विद्यापति की रचना हैं; मैथिली भाषा हजार परिवर्त्तित होने पर भी शितेर ओढ़नी पिया गिरिपेर व। वरिषार छत्र पिया दरियार ना॥
नहीं हो सकता। दरिया शब्द का व्यवहार भी सन्देहजनक है। बंगाली विद्यापति नेमैथिल कवि का भाव एवं 'कि कहब रे सखि आनन्द ओर' इत्यादि सुप्रसिद्ध कलियों को लेकर इस पद की रचना की थी।

(७६८) सारदा चरण मित्र द्वारा बरहमपुर की किसी पोथी में प्राप्त एवं नगेन्द्र गुप्त द्वारा 'मिथिलार प्रकृत पाठ एवंकथित। सारदा चरण मित्र प्रदत्त पाठ का पाठान्तर—

(१) सेहो (२) बखानाइत (३) नूतुन (४) सेहो (५) यामिनिय (६) हिय हिय (७) हिया (८) कत विदगध जन रस

पदकल्पतरु (६३७) का पाठः— सखि हे कि पुछसि अनुभव मोर।
सोइ पिरिति अनुराग बाखानिये
अनुखण नौतुन होय॥

जनम अवधि हैते ओरूपनेहारलुँ
नयन न तिरपित भेला।
लाख लाख युग हाम हियेहिये मुखेमुखे
हृदय जुड़न नाहि गेला॥

वचन अमिया-रस अनुखन शूनलुँ
श्रुति-पथे परश ना भेलि।
कत मधु-यामिनि रभसे लेएडारलुँ
न बुझलुँ कैसे केलि॥

कत विदगध जन रस अनुमोदइ
अनुमान काहु ना पेखि।
कह कवि वल्लभ हृदय जुड़ाइते
मिलये कोटिये एकि (अथवा) लाखे ना मिलये एक॥

अनुवाद—हे सखि, मुझसे अनुभव के बारे में क्या पूछती है? उसी प्रीति को अनुराग कहते हैं जिसमें अनुक्षण अथवा क्षण-क्षण में (उसके) नये रूप की प्रतीति होती है। मैंने जन्म भर रूप निहारा, किन्तु नयन तृप्त न न हुए। वही मधुर वाणी कान से सुनी, किन्तु श्रुतिपथ में मानों उसने स्पर्श ही नहीं किया (आशा नहीं मिटी)। कितनी केलि की रातें केलि में बिताई, परन्तु केलि किस प्रकार की होती है, समझ नहीं सकी (साध पूरी नहीं हुई)।

मन्तव्य—इस विषय पर काफी वादाविवाद है कि यह पद विद्यापति की रचना है अथवा कवि वल्लभ की। पदकल्पतरु के सुविज्ञ सम्पादक सतीशचन्द्र राय कहते हैं कि यह पद विद्यापति की रचना नहीं हो सकता, क्योंकि (क) पदकल्पतरु की सब पोथियों में और पदरस सार की पोथी में इसकी भणिता में कवि वल्लभ का नाम है। (ख) इसमें जो 'सोइ पिरीति अनुराग बखानइते' कलि है वह श्रीरूप गोस्वामी के उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में प्रदत्त अनुराग के लक्षण का अनुवाद है। श्रीरूप ने अनुराग के लक्षण के सम्बन्ध में लिखा है—

सदानुभूतमपि यः कुर्य्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्य्यते॥

अर्थात् जो राग वा प्रेम नव नव रूप धारण करके सर्वदा अनुभूत प्रियजन को भी नये नये रूप में आस्वादित कराता है, उसी को अनुराग कहते हैं। (ग) कविवल्लभ की जनम अवधि" इत्यादि पँक्तिद्वय में जो असीम अतृप्ति सुन्दर स्वाभाविक भाषा में व्यंजित हुई है—उनकी 'लाख लाख युग' इत्यादि पँक्तियों में वह स्वाभाविकता और रसव्यञ्जना रक्षित नहीं हुई है। जगत के सारे व्यक्तियों को सुख का समय संक्षिप्त और दुख का समय सुदीर्घ प्रतीत होता है, ऐसी अवस्था में मिलन का समय किस कारण राधा को "लाख लाख युग" वत् प्रतीत होगा। इसे समझने के लिए शक्तिमान् और शक्तिरूपा श्रीकृष्ण और श्रीराधा का अनादि-अनन्त-काल व्यापी नित्य प्रेम सम्बन्ध रूपी वैष्णव दर्शन के प्रसिद्ध तत्व का आश्रय न ग्रहण करने से काम नहीं चलेगा। कविता में इस प्रकार के दार्शनिक तत्व का आश्रय ग्रहण काव्य के उत्कर्ष का परिचायक नहीं, बल्कि सहृदयों की विवेचना में, अपकर्ष का कारण मालूम होता है।" (पदकल्पतरु भूमिका, पृ० २७-२६)

डा० श्रीकुमार वन्दोपाध्याय कहते हैं (क) श्रीरूप के पक्ष में विद्यापति के इस पद में प्रदत्त अनुराग की संज्ञा ग्रहण करना असम्भव नहीं है (ख) कविता अपेक्षाकृत अख्यात वल्लभ वा कवि वल्लभ की रचना नहीं हो सकती, क्योंकि यह महागीत किसी महाकवि की प्रतिभा से उत्सारित हुई है, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। समस्त वैष्णव-पदावली साहित्य का अनुसन्धान करने पर भी विद्यापति को छोड़कर किसी भी अन्य कवि को इसका रचयिता नहीं कहा जा सकता है। चण्डीदास और ज्ञानदास के कुछ पदों में अनुरूप सुर की गम्भीरता मिलती है, किन्तु उसकी प्रकृति भिन्न है। प्रेम का रहस्यमय विपरीत-धर्मित्व, इसकी आनन्द-वेदना के कारण अविच्छिन्नभाव में जड़ित प्रकृति, इसका सर्वनाशी आकर्षण, सब भुलाने देने वाला मोह, उनके पदों में सार्वभौम व्यंजना के साथ फूट पड़ता है; किन्तु आलोच्य पद की कल्पना की विशाल विश्वव्यापी, असीम काल में प्रसारित, सृष्टि रहस्योद्‌घाटकारी परिधि (cosmic imagination) चण्डीदास वा ज्ञानदास में नहीं।" "प्रेम की चिरन्तन अतृप्ति, आदर्श और वास्तव के बीच अनतिक्रम्य व्यवधान, सौन्दर्य के खण्डित आंशिक प्रकाश से उसका मूल प्रस्रवण की ओर दुरूह अभियान, रूप में रूपातीत की व्यंजना, अनायत्त की ओर व्याकुल हस्त प्रसारण—इत्यादि, प्रेम की दुरवगाह महिमा और आकर्षण का सुर इस कविता में इस आश्चर्यकारी रूप में अभिव्यक्त हुए हैं कि इन कारणों से पृथ्वी के श्रेष्ठ गीत-समूह में इसको स्थान मिलना उपयुक्त है। कीट्स की सौन्दर्योपभोग अपरितृप्ति और शेली का आदर्श सन्धान में उर्द्धाभियान-पिपासी हृदयावेग मानों इस महागीत में निविड़ एकात्मता में युक्त हो गये हैं (बांगला साहित्येर कथा—पृ० २२-२३)

लाखो-लाख युग तक हृदय में हृदय रखा, तब भी हृदय शीतल न हुआ। कितने रसिक जन इस रस में मग्न रहे, किन्तु अनुराग का प्रकृत अनुभव किसी को भी न हुआ। विद्यापति कहते हैं कि प्राण जुड़ाने के लिए लाखों में एक आदमी भी न मिला।

पदकल्पतरु में कवि वल्लभ की भणिता में केवल यही एक पद उद्धृत हुआ है, परन्तु वल्लभ अथवा वल्लभदास की भणिता के २५ पद संकलित हुए हैं। इन पदों में २० पदों की भाषा एकदम बंगला है एवं उनमें दस पद नरोत्तम ठाकुर महाशय की प्रार्थना की रीति एवं किसी किसी जगह भाषा तक भी उनके अनुसरण में लिखे हुए हैं। जिस प्रकार, नरोत्तम ठाकुर की प्रार्थना में

ये आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर।
हेन प्रभु कोथा गेला आचार्य ठाकुर॥

वल्लभ दास में,

ये करिल जगजने करुणा प्रचुर।
हेन प्रभु कोथा गेला अचार्य ठाकुर॥ (पदकल्पतरु २६८१)।

पदकल्पतरु के ७७० संख्यक पद के साथ आलोच्य पद के भाव और भाषा में कुछ सादृश्य पाया जाता है।

सजनी प्रेम कि कहबि विशेष।
कानुके कोरे कलावति कातर,
कहत कानु परदेश॥
चाँदक हेरि सुरज करि भाखये
दिनहि रजनि करि मान।
विलपइ तापे तपायत अन्तर
विरह पियक करि भान॥

कब आओब हरि हरि सजे पूछइ
हसइ रोचइ खेने भोरि।
सो गुण गाओइ श्वास खेणे काढ़इ
खणहि खणिह तनु मोड़ि॥
विधुमुखि वदन कानु अब पोँछल
निज परिचय कत भाति
अनुभवि मदन कान्त किये कामिनि
वल्लभ दास सुखे माति॥

कानु की गोद में रह कर भी विरह में व्याकुल होना, हरि से ही पूछना कि हरि कब आयेंगे प्रभृति श्रीरूपगोस्वामी वर्णित प्रेमवैचित्र्य के उदाहरण हैं। श्रीरूपगोस्वामी ने प्रेमवैचित्र्य की संज्ञा दी है,

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।
या विश्लेषधियार्त्तिस्तत् प्रेमवैचित्र्यमुच्यते॥

अर्थात् प्रेम का उत्कर्ष जब इतना दूर होता है कि प्रियतम के निकट रहने पर भी विच्छेद के भाव की व्याकुलता आती है तो उसे प्रेमवैचित्र्य कहते हैं। वल्लभ ने इस संज्ञा का उदाहरण देने के लिए ही यह पद लिखा है। गोविन्ददास ने भी अनुरूप भाव लेकर लिखा है—

रोदति राधा श्याम करि कोर।
हरि हरि कँहा गेओ प्राणनाथ मोर॥ (पदकल्पतरु ७६६)।

गोविन्ददास ने एक सुविख्यात उत्कृष्ट पद में (पदकल्पतरु २३४) वल्लभ के प्रेमवैदग्ध्य का परिचय देते हुए लिखा है—

गोविन्ददास भणे श्रीवल्लभ जाने
रसवति रस मरियाद।

(७६६)

तातल सैकत वारिविन्दु सम
सुत मित रमनि समाजे।
तोहे विसारि मन ताहे समापलु
अब मझु होब कोन काजे॥
माधव, हम परिनाम निरासा।
तुहुँ जगतारन दीन दयामय
अतए तोहरि विशोयासा॥

आध जनम हम निन्दे गोङायलुँ
जरा सिसु कतदिन गेला।
निधुबने रमनि रंग रसे मातलु
तोहे भजव कोन वेला॥
कत चतुरानन मरि मरि जाओत
न तुया आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत
सागर लहर समाना॥

भणये विद्यापति शेष समन-भय
तुया विनु गति नहि आरा।
आदि अनादि नाथ कहायसि
भवतारन भार तोहारा॥

पदकल्पतरु २०१६ ; न० गु० ८३८।

इसका साध्य पाया जाता है कि वल्लभ नामक प्रेमरस की मर्यादा के ज्ञाता वा रसवेत्ता एक आदमी को उज्ज्वल नीलमणि के प्रेमवैचित्र्य के उदाहरण स्वरूप, उन्होंने जिस प्रकार की कविता लिखी थी, उसी प्रकार अनुराग के दृष्टान्त-स्वरूप 'जनम अवधि' पद रचना करना असम्भव नहीं हो सकता। १५९९ ई० में लिखित 'रसकदम्ब' ग्रन्थ के रचयिता कविवल्लभ एवं पदकल्पतरु में प्रदत्त २५-२६ पदों के लेखक एक आदमी हो सकते हैं। यह होना असम्भव नहीं है कि इन वल्लभ ने विद्यापति रचित 'जनम अवधि' पद में तीन चारि कलियाँ जोड़ कर अपने नाम की भणिता जोड़ दी हो।

जो 'जनम अवधि' पद को विद्यापति की रचना नहीं बतलाते हैं, वे कहते हैं कि उसमें पिरीति शब्द है एवं विद्यापति ने इस शब्द का कभी भी व्यवहार नहीं किया है। किन्तु नेपाल पोथी के १७० संख्यक पद में है

"तन्हि हम पिरिति एके पराण।"

पद अवश्य नृप मल्लदेव रचित है। किन्तु रामभद्रपुर की प्राचीन पोथी के ४०७ संख्यक पद में जिसे विद्यापति की विशुद्ध पदावली में शिवनन्दन ठाकुर ने प्रकाशित किया था, पाया जाता है—

भनये विद्यापति रसमय रीति। राधा-माधव उचित पिरीति॥

किन्तु यह देखने का प्रयोजन है कि विद्यापति के पद में "जुड़ेन" और 'जुड़ाइत' शब्द हृदय जुड़ाया, शीतल हुआ, इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है कि नहीं। ग्रियर्सन के ५० संख्यक पद में 'जुड़ि रयनि चकमक कर चाँदनि" है। "जुड़ि" का अर्थ है शीतल। नेपाल ६७ संख्यक पद में है—

अहनिसि वन्ने जुड़ेओलह कान।

सुतरां भाषा की दृष्टि से इसे विद्यापति का पद न होना नहीं कहा जा सकता है। 'जनम-अवधि' के समान कविता जिन्होंने लिखी है उनकी कलम से एक दो भी अच्छी कविता न बाहर हुई इस प्रकार के अनुमान की असंगत विवेचना का कोई नया प्रमाण न पाने तक हम इसे विद्यापति ही की रचना मानते हैं।

शब्दार्थ—तातल—उत्तप्त ; सुत मित—सुत और मित्र ; समापलु—समपर्ण किया ; बिशोयासा—विश्वास, भरोसा ; समाओत—प्रवेश करता है ।

अनुवाद—उत्तप्त वालुकाराशि जिस प्रकार जलविन्दु को सोख लेती है (उसका कुछ भी अवशिष्ट नहीं रखती है), सुत, मित्र और रमणियों ने (मुझे) उसी प्रकार (ग्रस) लिया । तुमको भूल कर मन उनको समर्पण किया, अब मेरा क्या उपाय होगा ? माधव परिणाम में मेरी आशा नहीं है । तुम जगत का उद्धार करते हो, दीनों के प्रति दयामय हो ; अतएव तुम्हारा ही भरोसा है । मैंने आधा जन्म (जीवन) निद्रा में काटा, बुढ़ापा और शैशव में और भी कितने दिन गये । निधुवन में रमणियों के साथ रसरंग में माता रहा; तुम्हार भजन कब करूँ ? कितने चतुर्मुख ब्रह्मा मर मर जाते हैं, तुम्हारा आदि-अवसान नहीं है । तुम्हीं से जन्म लेकर तुम्हीं में लीन होते हैं, जिस प्रकार समुद्र की तरंगे समुद्र से उत्पन्न होकर फिर समुद्र ही में विलीन होती हैं । विद्यापति कहते हैं कि शेष समय में यम का डर हो रहा है । तुम्हें छोड़कर कोई दूसरी गति नहीं है । तुम्हें आदि एवं अनादि का नाथ कहा जाता है, अब संसार से तारने का भार तुम्हारे ऊपर है ।

(८७०)

जतने जतेक धन पापे बटोरलुँ
मेलि परिजने खाय ।
मरनक बेरि हेरि कोई न पूछत
करम संग चलि जाय ॥

हे हरि, बन्दौं तुअ पद नाय ।
तुअ पद परिहरि पाप-पयोनिधि
पार हर कोन उपाय ॥

जावत जनम हम तुअ पद न सेविलुँ
जुवती मतिमय मेलि ।
अमृत तेजि किये हलाहल पायलुँ
सम्पदे विपदहि भेलि ॥

भनहुँ विद्यापति लेह मने गनि
कहिले कि जानि होय काजे ।
साँझक बेरि सेव कोइ मागइ
हेरइते तुअ पद लाजे ॥

प० स० पृ० २०१; प० त० २०९८; न० गु० ८३६

अनुवाद—पाप द्वारा यत्न करके जितना धन संचय किया, उसे परिजन मिल कर खा रहे हैं; (किन्तु) अब मरने के समय कोई भी कुछ खबर नहीं लेता (पूछता); कर्म साथ जाता है । हे हरि, तुम्हारी पदरूपी नौका की वन्दना करता हूँ; तुम्हारी पद-तरणि को छोड़ कर किस प्रकार पाप का समुद्र पार कर सकता हूँ ? जन्म से (आज तक) तुम्हारी [illegible] युवती (हमारी) मतिमय हो गयी है अर्थात् युवती चिन्ता ने हमारी समस्त मति को आच्छन्न कर

लिया है। मैंने अमृत छोड़कर क्या हलाहल का पान कर लिया है? (मेरी) सम्पत्ति विपत्ति हो गयी। विद्यापति कहते हैं, मन लगा कर देख, केवल बात से क्या हो सकता है? सन्ध्या की वेला में कोई सेवा (सेवा करने के काम) की प्रार्थना करता है (सारे दिन थकता रहे और सन्ध्या को यदि कोई मजदूरी करना चाहे तो क्या उसे मिल सकता है)? तुम्हारे चरणों की ओर देखते भी मुझे लज्जा हो रही है।

(७७१)

माधव, बहुत मिनति करि तोय।
देइ तुलसी तिल देह समर्पिलुँ
दया जनि छाड़बि मोय॥
गनइते दोस गुनलेस न पाओबि
जब तुहुँ करबि बिचार।
तुहुँ जगन्नाथ जगते कहायसि
जग बाहिर नह मुञि छार॥

किए मानुस पसु पाखिये जनमिये
अथवा कीट पतंग।
करम विपाक गतागत पुनपुन
मति रहु तुया परसंग॥
भनइ विद्यापति अतिसय कातर
तरइते इह भव-सिन्धु।
तुआ पद-पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दिनबन्धु॥

प० स० पृ० २०१; प० त० ३०१७; न० गु० ८३७

अनुवाद—माधव, मैं तुम्हें बहुत विनती कर रहा हूँ। तिल तुलसी देकर आपकी देह (तुमको) समर्पण किया। नाथ, मेरे प्रति दया मत छोड़ना। जब तुम विचार करोगे (मेरा) दोष गिनते गुण का लेश भी नहीं पावोगे। जगत में तुम जगन्नाथ कहलाते हो। इसे छोड़ कर (अधम) जगत के बाहर नहीं है (अर्थात जब तुम जगत का त्राण करोगे उस समय मुझको भी तारना होगा)। मेरे कर्म के विपाक से पुनः पुनः जन्म होगा, किन्तु मनुष्य, पशु, पक्षी अथवा कीट पतंग होकर क्यों न जन्मूँ, तुम्हारे प्रसंग में हमारी मति रहे। विद्यापति अतिशय कातर होकर कहते हैं कि यह भवसिन्धु पार करने के लिए तुम्हारे पदपल्लव का अवलम्बन किया। हे दीनबन्धु (हमको यह पदपल्लव) एक तिल (एक तिल के लिए) दान करो।

तृतीय खण्ड समाप्त

चतुर्थ खण्ड

मिथिला में लोक-मुख से सँगृहीत हर-गौरी और गंगाविषयक पद

(७७२)

जय जय भैरवि असुर - भयाउनि
पसुपति - भामिनि माया।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया॥

बासर - रैनि सवासन सोभित
चरन, चन्द्रमणि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल
कतओ उगिल कैल कूड़ा॥

सामर वरन, नयन अनुरंजित,
जलद-जोग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि
लिधुर-फेन उठ फोका॥

घन-घन घनए घुघुर कत बाजए,
हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद-सेवक
पुत्र विसरि जनि माता॥

न० गु० (हर) २

शब्दार्थ— असुर-भयाउनि—असुरों के लिए भयानक; गोसाउनि—गोस्वामिनी; सवासन – शव ही जिसका आसन है; कोका—कोकनद; पाँड़रि— पाटली; लिधुर—रुधिर; काता—खड्ग।

अनुवाद—हे असुर लोगों को भीत प्रदान करने वाली भैरवि, तुम पशुपति की पत्नी माया हो। तुम्हारी जय हो। हे गोस्वामिनी, तुम्हारे चरणों की शरण ही हमारी गति है; वर दो (जिससे) स्वाभाविक सुमति हो। तुम्हारे चरण शवासन (महादेव) द्वारा दिन-रात (सर्वदा) शोभित हैं; चन्द्ररूपमणि (अथवा चन्द्र और मणि) तुम्हारी चूड़ा (ललाट) में है। तुमने कितने दैत्यों को मार कर मुख में फेंक लिया है (उदरसात् कर लिया है), कितने दैत्यों को उगल कर [illegible] कर दिया है। तुम्हारा वर्ण श्यामल, और नयन रक्तिम। मेघ में (मानों) कमल फूट पड़ा हो। तुम्हारे पाँडुवर्ण ओठ-पुट की विकट-स्फुट-ध्वनि, रक्त के फेन से बुदबुद हो उठी है। घन-घन घनरव से घुँघुरू बज रही है, तुम्हारा खड्ग हन हन कर रहा है। विद्यापति कवि तुम्हारे-पद-सेवक, पुत्र को विस्मृत मत करना।

(७७३)

भल हर भल हरि भल तुअ कला।
खन पित वसन खनहि बघछला॥
खन पंचानन खन भुजचारि।
खन संकर खन देव मुरारि।
खन गोकुल भए चराइअ गाय।
खन भिखि माँगिए डमरु बजाय॥

खन गोविन्द भए लिअ महादान।
खनहि भसम भरु काँख बोकान॥
एक सरीर लेल दुइ बास।
खन बैकुण्ठ खनहि कैलास॥
भनइ विद्यापति विपिरित बानि।
ओ नारायन ओ सुलपानि॥

न० गु० (हर) ६

शब्दार्थ—भल—अच्छा; बोकान—थैला।

अनुवाद—हर अच्छे, हरि अच्छे, तुम्हारी लीला अच्छी। क्षण में पीत वसन, क्षण में बाघछाला। कभी पंचानन, कभी चतुर्भुज, कभी शंकर, कभी देव मुरारि। क्षण में गोकुल में गौवें चराते और क्षण में डमरू बजा कर भीख माँगते हो। कभी गोविन्द होकर (वृन्दावन) में महादान लेते हो, कभी भस्म लगा कर काँख में झोला झुलाते हो। एक ही देह, दो वास स्थान लिए हुए हो; क्षण में बैकुण्ठ, क्षण में कैलास। विद्यापति यह अद्भुत बात (विपरीत बात) कहते हैं—वही नारायण, वही शूलपाणि।

(७७४)

हर जनि बिसरब मो ममिता,
हम नर अधम परम पतिता।
तुअ सन अधम उधार न दोसर
हम सन जग नहि पतिता॥

जम के द्वार जबाब कओन देब
जखन बुझत जिन गुन कर बतिया।
जब जमा ककर कोपि उठाएत
तखन के होत धरहरिया॥

भन विद्यापति सुकवि पुनित मति
संकर विपरित बानी।
असरन सरन चरन सिर नाओल
दया करु दिअ सुलपानी॥

बेनी २४०

शब्दार्थ—ममिता ममता; ककर—किंकर;

अनुवाद—हे हर, मेरे प्रति ममता को भूल मत जाना। मैं परम अधम और पतित नर। तुम्हारे समान अधम का उद्धार-कर्त्ता कोई नहीं है। मेरे समान पतित जगत में कोई नहीं है। जब मेरे गुणों की पूछ-ताछ होगी तो यम के द्वार पर मैं क्या जवाब दूँगा? जब यम के किंकर क्रोध से मुझे पकड़ कर ले जाएँगे, तब कौन रक्षा करेगा? सुकवि विद्यापति पवित्र चित्त से शंकर की विपरीत (स्वभाव की) बात कहते हैं। हे शूलपाणि, मस्तक नवाता हूँ, निराश्रय का आश्रय-स्वरूप चरण दया करके दो।

(७७५)

तोंह प्रभु त्रिभुवन नाथे। हे हर

हम निरदीस अनाथे ॥

करम धरम तप हीने।

पड़लहुँ पाप अधीने ॥

बेड़ भासल माझ धारे।

भैरव धरू करुआरे ॥

सागर सम दुख भारे।

अबहु करिअ प्रतिकारे ॥

भनहि विद्यापति भाने।

संकट करिअ तराने ॥

न० गु० (हर) ४२।

शब्दार्थ—निरदीश—निरुद्देश ; बेड़—नौका ; करुआर—नौका की हाल।

अनुवाद—हे हर, तुम त्रिभुवन के नाथ हो। मैं निरुद्देश (निकृष्ट) अनाथ। मैं तपस्या और धर्मकर्म हीन, पाप के अधीन पड़ गया। नौका मझधार में पड़ गयी है, हे भैरव, तुम हाल पकड़ो (कर्णधार होवो)। सागर के समान दुख के भार से अभी प्रतिकार करो। विद्यापति यह बात कहते हैं—संकट से त्राण करो।

(७७६)

सिव संकर हे

भलि अनुगति फल भेला।

एतए संगति एति परतर कोन गति

मनोरथ मनहि रहला ॥

तोंहें होएन परसन पाओब अमोल धन

जनम बहलि एहि आसे।

जमहु संकट पुनु उपेखि हलह जनु

सेओलाहे बड़े परआसे ॥

स्रवन नयन गेले तनु अवसन भेले

जदि तोहे होएब परसने।

कि करब ततिखने होय गअ मनि घने

भरइते बेआकुल मने ॥

ईंदँ चाँद गन हरि कमलासन

सबे परिहरि हमे देवा।

भगत बछल प्रभु बान महेसर

इ जानि कइलि तुअ सेवा ॥

विद्यापति भन पुरह हमर मन

छाड़ओ जमक तरासे।

हमर हमर दुख तथिहु तोहर सुख

सब होअओ तुम परसादे ॥

न० गु० (हर) ४३।

शब्दार्थ—परसन—प्रसन्न ; सेओलाहे—सेवा की ; परआसे—प्रयास से ; ईंद—इन्द्र ; गन—गणेश ; [illegible]—[illegible]।

अनुवाद—हे शिव शंकर, तुम्हारी शरण में आने का अच्छा फल हुआ। यहाँ ऐसी सँगति है, परलोक में जाने क्या गति होगी ? मनोरथ मन ही में रह गया। तुम्हारे प्रसन्न होने से अमूल्य धन पाऊँगा। इसी आशा से

जन्म ढोता रहा। यम-संकट में (मेरी) उपेक्षा मत करना, बड़े प्रयास से तुम्हारी सेवा की है। श्रवण नयन जाने पर (एवं) तनु अवसन्न होने पर यदि तुम प्रसन्न होवो, तब अश्व-गज-मणि-धन से क्या करना है ? इसी शोक से मन व्याकुल है। इन्द्र, चन्द्र, गणेश, कमलासन हरि, सब देवताओं का हमने परित्याग कर दिया है। बाण-महेश्वर प्रभु भक्तवत्सल, यही जान कर तुम्हारी सेवा की है। [विद्यापति के निवासस्थल बिसफी से उत्तर भेड़वा नामक ग्राम में वाणेश्वर महादेव हैं ; ऐसा प्रवाद है कि उसी मन्दिर में जाकर विद्यापति पूजा करते थे।] विद्यापति कहते हैं, मेरा मन (मनोरथ) पूर्ण करो, यम का भय छोड़ो ; मेरा दुख हरण करो, उसीसे तुमको सुख होगा। तुम्हारे प्रसाद से सब होता है।

(७७७)

कखन हरब दुख मोर
हे भोला नाथ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब
सुख सपनेहु नहि भेल, हे भोलानाथ ॥

आछत चानन अवर गंगाजल
बेल पात तोहि देब, हे भोलानाथ।
यहि भवसागर थाह कतहु नहि
भैरव धरू कर आए, हे भोलानाथ ॥

भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति
देहु अभय वर मोहि हे भोलानाथ ॥

वेनी २४२।

अनुवाद—हे भोलानाथ, मेरा दुख कब हरण करोगे ? दुख में जन्म हुआ, दुख ही में समग्र बिताऊँगा, स्वप्न में भी सुख नहीं हुआ। चन्दन, गंगाजल अक्षत और बेलपत्र तुमको दूँगा। इस भवसागर में कहीं भी थाँह नहीं (अगाध है), हे भैरव आकर (मेरा) कर धारण करो। विद्यापति कहते हैं, मेरी गति भोलानाथ हैं। मुझको अभय वर दो।

(७७८)

हे हर जानिने भेल गरु दरबार।
असरन सरन धैल हम ताहि ॥
अबला जानि बिसरल मोर।
भाँग खाय सिब लुतलाह भोर ॥
तै दिन दिन दुरगति भेल मोहि ॥

दाता हमरो सिघेस्वर नाथ
तनिक सेवा कै भेलहुँ सनाथ ॥
भनहि विद्यापति सुनिय महेस,
अपन सेवक कर मेटह कलेस ॥

मि० गी० स० २य खण्ड पृ० ३२।

अनुवाद—हे हर, मैं समझ नहीं सका, तुम्हारा दरबार बड़ा कठिन है। निराश्रय होकर मैंने तुम्हारी शरण गही। दुर्बल जानकर मुझको भूल गये। शिव भाँग खाकर विभोर होकर सो गये। इसीलिए दिन-दिन मेरी दुर्गति हुई। सिंहेश्वर नाथ मेरे दाता हैं, उनकी सेवा करके मैं सनाथ हो गया। विद्यापति कहते हैं, महेश सुनो, अपने सेवक का क्लेश दूर करो।

(७७६)

सिव हो, उतरब पार कवन विधि।
लोढ़ब कुसुम तोरब वेल पात।
पुजब सदासिव गौरिक सात॥
वसहा चढ़ल सिव फिरहू मसान।
भँगिया जठर दरदी नहि जान॥
जप तप नहि कैलहु नित दान।
चित गेला तिन पन करइत आन॥
भन विद्यापति सुनु हे मेहस।
निरधन जानिके हरहु कलेस॥

वेणी २३८।

अनुवाद— हे शिव, किस उपाय से पार (भवपार) उतरेंगे? कुसुम लोढूँगा, वेलपात तोड़ कर लाऊँगा गौर के संग सदाशिव की पूजा करूँगा। बैल वर चढ़ कर शिव श्मशान में घूमते फिरते हैं, पेट में भाँग दूसरे का दुख नहीं जानते। जप-तप नित्यदान नहीं किया। अन्य (विगर्हित) काज करते तीन भाग जीवन बीत गया। विद्यापति कहते हैं. हे. महेश, सुनो (मुझे) निर्धन जानकर (मेरा) क्लेश हरो।

(७८०)

सुरसरि सेवि मोरा किछुउ न भेला।
पुनमति गंगा भगीरथ लय गेला॥

जखन महादेव गंगा कयल दाने।
सुन भेल जटा ओमलिन भेल चाने॥
उठवह वनिओं तों हाट वाजारे।
एहि पथ आओत सुरसरि धारे॥
छोट मोट भगीरथ छितनी कपारे।
से कोना लाओताह सुरसरि धारे॥
विद्यापति भन विमल तरंगे।
अन्त सरन देव पुनमति गंगे॥

न० गु० (गंगा) २

अनुवाद—सुरसरि की सेवा करने से मुझे कुछ भी न हुआ। पुण्यवती गंगा को भगीरथ ले गये। जब महादेव ने गंगा-दान कर दिया, जटा शून्य हो गयी और चाँद मलिन हो गया। वणिक्, तुम हाट-बाजार उठावो, इस रास्ते से सुरसरि की धारा आवेगी। (वणिक का उत्तर) छोटे-मोटे भगीरथ, छितनी के समान सिर, वे क्या गंगा की धारा ला सकेंगे? विद्यापति कहते हैं, हे विमल-तरंगे, हे पुण्यवती गंगे, अन्त में (मुझे शरण देना)।

(७८१)

तोहें प्रभु सुरसरि धार रे।
पतितक करिय उधार रे॥
दुर सों देखल गांग रे।
पाप न रहये आंग रे॥
सुरसरि सेवल जानि रे।
एहन परसमनि पावि रे॥
भनहि विद्यापति भान रे।
सुपुरुष गुणक निधान रे॥

मि० गी० स० १म खण्ड पृ० ३८

अनुवाद—प्रभु तुम सुरसरि की धारा हो। पतित का उद्धार करो। दूर से भी गंगा को देख लेने पर शरीर में पाप नहीं रह जाता। (तुम्हें) सुरसरि जानकर तुम्हारी सेवा की, सोचा था, इसी प्रकार स्पर्शमणि पाऊँगा। विद्यापति कहते हैं कि सुपुरुष गुण का निधान होता है।

(७८२)

एतए कतए अएल जति
गोरि अछ तपे।
राजरे कुमारि बेटि
डरब देखि सापे॥
तोड़ब मोयँ जटाजुट
फोड़ब बोकाने।
हटल न मान जेति
होएत अपमाने॥

तीनि नअन हर बीसम
जर दहनू।
उमा मोरि ननुमि
हेरह जनू॥
भनइ विद्यापति
सुन जगमाता।
ओ नहि उमत
त्रिभुवन दाता॥

न० गु० हर ८

शब्दार्थ—एतए—यहाँ; कतए—कहाँ से; गोरि—गौरी; फोड़ब बोकाने—झोला फाड़ दूँगी; दहनू-अग्नि; ननुमि—छोटा।

अनुवाद—यहाँ कहाँ से यति आया ? गौरी तप में (मग्न) हैं। कन्या राजकुमारी, साँप देख कर उसे भय होगा। मैं जटाजूट खोल दूँगी, थैली फाड़ फेकूँगी। यदि निषेध न मानोगे, अपमानित होवोगे। हे हर, तुम्हारे तृतीय नयन में विषम अग्नि जल रही है। मेरी उमा अभी छोटी है, वह यह सब देखने न पाए। विद्यापति कहते हैं, जगन्माता, सुन, वह उन्मत्त नहीं, त्रिभुवन के दाता हैं।

(७८३)

ए माँ कहह मोय पुछों तोही
ओहि तपोवन तापसि भेटल
कुसुम तोर ए देल मोही॥
आँजलि भरि कुसुम तोड़ल
जे जत अछल जाँहा।
तीनि नयने खने मोहि निहारए
बइसलि रहलि जाँहा॥

गरा गरल नयन अनल
सिर सोमइन्हि ससी।
डिमि डिमि कर डमरू बाजए
एहे आएल तपसी॥
सिर सुरसरि भमु कपाला
हाथ कमण्डलु गोटा।
बसल चढ़ल आएल दिगम्बर
बिभुति कएल फोटा॥

न विद्यापति सामिक निन्दा
न कर गोरी माता।
तोहरे सामि जगत इसर
भुगति मुकुति दाता॥

न० गु० (हर) १०

शब्दार्थ—कहए—कहो, बोलो; तोड़ए—तोड़कर; गरा—कण्ठ में; इसर—ईश्वर; भुगुति—भुक्ति।

अनुवाद—ऐ माँ, मैं तुमसे पूछती हूँ, मुझे कहो। उस तपोवन में तपसी ने मुझे फूल तोड़ कर दिया। वहाँ पर जितने फूल थे, अंजलि भर कर तोड़ा। जहाँ मैं बैठी थी, वहाँ तीन नयनों से मुझे क्षण भर देखा। गला में गरल, नयन में अनल, शिव अधिक शोभा पा रहे हैं। डिम डिम कर डमरू बजाते तपस्वी यहाँ आये। मस्तक की सुरसरि कपाल पर भ्रमण कर रही हैं, हाथ में एक कमण्डल; बैल पर चढ़ के, विभूति का तिलक लगा कर दिगम्बर आए। विद्यापति कहते हैं, गौरी माता, स्वामी की निन्दा मत करना। तुम्हारे स्वामी जगत के ईश्वर, भुक्ति और मुक्ति के दाता हैं।

(७८४)

जोगिया मन भावइ हे मनाइनि।
आएल बसहा चढ़ि विभूति लगाए हे।
मन मोर हरलनि डामरू बजाए हे॥

सुन्दर गात अजर पति से नाहे।
चित सों नइ छुटथि जानथि किछु टोना हे॥
तीनि नयन एक अगनिक ज्वाला हे।
भाल तिलक चान फटिकक माला हे॥

ओह सिंहेस्वर नाथ थिका मोर पति हे।
विद्यापति कर मोर गौरीहर गति हे॥

न० गु० (हर) ५२

शब्दार्थ—मनाइनि—मेनका; हरलनि—हर लिया; गात—गात्र; टोना—मन्त्र; चान—चाँद।

अनुवाद—हे मेनका, योगी मन मोहित करता है। वृषभ पर चढ़कर विभूति लगा कर आया। डमरू बजाकर मेरा मन हरण कर लिया। वह नाथ जराशून्य (अर्थात् चिरयौवनशाली) पति, (उनकी) सुन्दर देह मेरे चित्त से हटती ही नहीं, मालूम होता है कि कुछ यन्त्र-मन्त्र जानते हैं। त्रिनयन में मानो एक अग्नि की ज्वाला है, ललाट पर चन्द्रमा का तिलक, (गला में) स्फटिक की माला। ये सिंहेश्वर नाथ मेरे पति हैं। विद्यापति कहते हैं, गौरीहर मेरी गति हैं।

(७८५)

बियाह चलल सिव संकर हरिवंकर।
डामरू लेलकर लाय विभूति शुभंकर॥
नागर निकट हर आयल सुनि पाओल।
देखए चलल सब भूप रूप देखि लुबुधल॥

परिछय चललि मनाइनि सब गाइनि।
नाग कयल फुफुकार दुरह पड़ाइलि॥
एहन उमत वर केकर उर ससधर।[१]
गौरि वरु रहथु कुमारि करब वर दोसर॥

भनहि विद्यापति गाओल गावि सुनाओल।
तुरत करिये सब काज हरघर सुन्दर॥

वेणी २४८

अनुवाद—शिवशंकर हरिवंकर विवाह (करने) के लिये चले। हाथ में डमरू लिया, विभूति (भस्मावलेपन) भयंकर। हर नागर के निकट आये हैं, सुन पाया है। सब राजा रूप देखने चले, देखकर लुब्ध हो गये। मेनका सब गायनियों के साथ स्त्री-आचार करने चली। नाग फुफकार कर उठे, (सब) दूर भाग चले। ऐसा उन्मत्त वर किसका है? वक्ष पर विषधर (सर्प)। भले ही गौरी कुमारी रह जाय, दूसरा वर कर दूंगी (दूसरे वर के साथ विवाह कर दूंगी)। विद्यापति कहते हैं, मैंने गाना गाकर सुनाया। हर सुन्दर वर; सब काम शीघ्र करो।

(७८६)

मंगल विलुविश्र सिंदुर पिठारे।
तोंहे भलि सोपलि साजलि छारे॥
चलह चल हर पलटि दिगम्बर।
हमरि गोसाउनि तोह न जोग वर॥
हर चाह गुरु गउरवे गोरी।
कि करब तवे जयमाली तोरी॥
नश्रने निहारब सम्भ्रम लागी।
हिमगिरि धीए सहब कइसे आगी॥
भाल बलइ नयनानल रासी।
झरकत मउल डाढ़ति पटवासी॥
वड़े सुखे सासु चुमश्रोवाह मथा।
श्रोठ बुरत सुरसरिके सथा॥
करब सखी जाने केलि अलापे।
विलग होएत फफुश्राएत सापे॥
विद्यापति भन बुझइ जुगुती।
मेलि कराउबि हमे सिव सकती॥

न० गु० (हर) १९

शब्दार्थ—विलुविश्र—सजाया; पिठारे—पिठार (चावल की बुकनी); छारे—भस्म से; मउल—मुकुट; डाढ़ति—जल जायगा; धीए—बेटो, बुरत—डूब जाएगा; विलग होएत—निकट जाते ही।

अनुवाद—सिन्दुर और पिठार देकर मंगल-द्रव्य सजाया। तुम्हें अच्छा समर्पण किया! तुमने भस्म से सजाया। हे दिगम्बर देव, तुम लौट जावो। मेरी ईश्वरी के योग्य वर तुम नहीं हो। हर की अपेक्षा गौरी गौरव में अधिक है। तब तुम्हें जयमाला देने का काम क्या है? संभ्रम के सहित तुम्हारे नयन निहारेगी। (किन्तु) हिमगिरि कन्या किस प्रकार अग्नि सहन करेगी? तुम्हारे ललाट में नयनानल राशि जल रही है, (उससे) गौरी का मुकुट झुलस जाएगा, पटुवस्त्र जल जाएगा। बड़े सुख से सासु (जब) सिर पर स्त्री-आचार करेगी, तब सुरधुनि के स्रोत में उनका ओठ पर्यन्त डूब जायगा। सखियाँ (जब) केलि आलाप करेंगी, (तब) निकट जाते ही सर्प फुफकार मारेंगे। विद्यापति कहते हैं, युक्ति समझ, मैं शिव और शक्ति का मिलन कराउँगा।

(७८७)

जटाजुट दह दिस दए हलु नमाए।
बसह चढ़ल उपगत भेल आए॥
दुर सयँ मन्दाइँनि हलिश्र पुछाए।
कै बरिश्राती के हथि जमाए॥
कण्ठे आएल छइन्हि वासुकि राए।
सेहे बरिश्राती इसर जमाए॥
अइसन ठाकुर हर सम्पति थोरी।
भर उठ आइलिछइन्हि भसमक झोरी॥
विधि न करए हर खेलए पासा सारि।
सापक संगे सिवे रचलि धमारि॥
खिरि न खाए हर चुकति गजाए।
एहन उमत कोने जोहल जमाए॥
भनइ विद्यापति एहो रस भान।
श्रो नहि उमता जगत किसान॥

न० गु० (हर) १६

शब्दार्थ—दह दिस—दसों दिशा; नमाए—झुक कर; मन्दाँइनि—मन्दाकिनी; बरिआती—बरयात्री; इसर जमाए—ईश्वर दामाद; धमारि—हुड़ाहुड़ी; गजाए गाँजा; जोहल—खोजा।

अनुवाद—दसो दिशाओं में जटाजूट झुलाते हुए बैल पर चढ़े आकर झुके। दूर ही से मन्दाकिनी ने जिज्ञासा की, कौन बराती और कौन दामाद है (समझ में नहीं आता)? कण्ठ में (लिपटे) वासुकीनाथ आए। वे ही बरयात्री, ईश्वर दामाद। हर ऐसे ही ठाकुर हैं, सम्पत्ति थोड़ी, भस्म का झोला भर कर साथ लाए हैं। हर (विवाह की) विधि (कुछ) नहीं करते किन्तु पाशा की सारि खेलते (एवं) साँप के संग हुड़ाहुड़ि करते हैं। हर परमान्न (खीर) नहीं खाते, गाँजा खतम हो गया है, ऐसा उन्मत्त जमाता कौन खोज लाया है? विद्यापति कहते हैं, यह रस कहता हूँ; ये उन्मत्त नहीं, जग के रक्षक हैं।

(७८८)

जखने संकरे गौरि करे धरि
आनलि मण्डप माझ।
सरद सँपुन जनि ससधर
उगल समय साँझ॥

चौदह भुअन सिव सोहाओन
गौरी राजकुमारि।
हेरि हरखित भेलि मदाइनि
आएल जनि जभारि॥
हेमत सरिर पुलके पूरल
सफल जनम मोरि।
हरि विरंचि दुहु जन बैसल
हरके देल मोयँ गोरि॥

नारद तुम्बुर मंगल गावथि
आओर कत न नारि।
कौतुके कोवर कौसले कामिनि
सबे सबे देअ गारि॥
भन विद्यापति गौरि परीनय
कौतुक कहए न जाए।
साप फुफकारे नारि पड़ाइलि
वसन ठाम नड़ाए॥

न० गु० (हर) १७

शब्दार्थ—सँपुन—सम्पूर्ण; सोहाओन—शोभास्वरूप; मदाइनि—मन्दाकिनी; जभारि—जम्भारि, इन्द्र; कोबर—कोहबर; गारि—गाली।

अनुवाद—जब शंकर गौरी का हाथ धर कर विवाह-मण्डप में ले आए, उस समय मानों सन्ध्याकाल में सम्पूर्ण शशधर उदित हुए। शिव चौदहों भुवन के शोभन (शोभा-स्वरूप)। गौरी राजा की कुमारी; मन्दाकिनी देख कर हर्षित हुईं, मानों इन्द्र आए हों। शिवजी का शरीर पुलक से पूर्ण हुआ, (बोले) मेरा जन्म सफल हुआ; हरि और ब्रह्मा दोनों बैठे। उन्होंने हर को गौरी दान दी। नारद ने तम्बूरा पर मंगल गान किया और भी जाने कितनी नारियाँ (मंगल गान करने लगीं)। कोहबर में कामिनियों ने कौतुक कर सबों ने सबों को गालियाँ दीं। विद्यापति गौरी परिणय कहते हैं, कौतुक का वर्णन नहीं किया जाता। साँप के फुफकारने से नारियाँ वस्त्र फेंक कर भाग चलीं।

(७८६)

उमता न तेजए अपनि बानि।
बस ससुरा कत कर उबानि॥
गंगाजले सिचु रंगभूमि।
पिछरि खसल हर घूमि घूमि॥
अवलम्बने गोरी तोरए जाए।
करकंकन फनि उठ फँफाए॥
सबे सबतहु बोल गिरिजमाए।
बसह चढ़ल हर रुसल जाए॥
जमाइक परिहन बाघछाल।
चरन घाघर बाजए मुण्डमाल॥
भनइ विद्यापति सिव-विलास।
गोरि सहित हर पुरथु आस॥

न० गु० (हर) १८

शब्दार्थ—उमता—उन्मत्त; बानि—बात, यहाँ स्वभाव; उबानि—उल्टी बात, विपरीत स्वभाव; खसल—गिर गया; रुसल—रूठ कर।

अनुवाद—उन्मत्त अपने स्वभाव का परित्याग नहीं करता। ससुराल में रह कर ही कितना विपरीत व्यवहार करता है। (सिरस्थित) गंगाजल से नृत्य-भूमि सिंचित हुई। हर बार-बार फिसल कर गिरने लगे। गौरी झटपट धरने गयीं। (शिव का) करकंकण फणि फुफकार कर उठा। सब ने सर्वत्र कहा, गिरि के जमाइ हर रूठ कर बैल पर चढ़े जा रहे हैं। जमाइ का परिधान बाघछाल, चरणों में घुंघरू बज रहा है, (गला में) मुण्डमाल। विद्यापति शिव की लीला कहते हैं, गौरी सहित हर आशा पूर्ण करें।

(७६०)

अँजलि भरि फुल तोरि लेल आनी।
सम्भु अराधए चललि भवानी॥
जाहि जुहि तोड़ल मोयँ आओर बेल पाते।
उठिअ महादेव भए गेल पराते॥
जखने हेरलि हरे तिनहु नयने।
ताहि अवसर गोरि पिड़लि मदने॥
करतल काँपु कुसुम छिड़िआऊ।
विपुल पुलक तनु वसन झँपाऊ॥
भल हर भल गोरि भल व्यवहारे।
जप तप दुर गेल मदन विकारे॥
भनइ विद्यापति इ रस गावे।
हर दरसने गोरि मदन सँतारे॥

न० गु० (हर) २१

अनुवाद—अँजलि भर फूल तोड़ कर ले आयी। भवानी शम्भु आराधन करने चलीं। मैंने जाति यूथी तोड़ी और बेलपत्र भी। महादेव, उठो, प्रभात हो गया। जब हर ने त्रिनयन से देखा, उसी समय गौरी को मदन ने पीड़ा दी। करतल कम्पित हुए, फूल छितरा गये। शरीर विपुल पुलक से भर गया, कपड़े से उन्होंने शरीर ढँका। अच्छे हर अच्छी गौरी और अच्छा व्यवहार। मदन-विकार से जपतप दूर गया। विद्यापति कहते हैं, यह रस गाता हूँ, हर-दर्शन से गौरी को मदन सन्तापित कर रहा है।

(७६१)

हम सौं रुसल महेसे।
गौरी विकल मन करयि उदेसे॥
पुछिअ पथुक जन ताही।
ए पथ देखल कहुँ बूढ़ बटोही॥

अँगमे विभूति अनूपे।
कतेक कहब हुनि जोगिक सरुपे॥
विद्यापति भन ताही।
गौरी हर लए भेलि बताही॥

न० गु० (हर) २३

अनुवाद—मुझसे महेश क्रुद्ध हो गये हैं। (यही कह कर) गौरी विकल मन से (महेश का) अनुसन्धान कर रही हैं। हे पथिकजन, तुम लोगों से पूछती हूँ, इस रास्ते से किसी बूढ़े बटोही को जाते हुए देखा है? उनके अङ्ग में अनुपम विभूति, उस योगी का स्वरूप कितना कहूँ? इसीलिए विद्यापति कहते हैं, गौरी हर के लिए पगली हो गयी हैं।

(७६२)

उगना है मोर कतय गेला।
कतए गेला सिव किदहु भेला॥
भाङ नहि बटुया रुसि बेसलाह।
जोहि हेरि आनि देल हसि उठलाह॥

जे मोर कहता उगना उदेस।
ताहि देवँओ कर कंगना बेस॥
नन्दन वन में भेटल महेस।
गौरि मन हरसित मेटल कलेस॥

विद्यापति भन उगना सौं काज।
नहि हितकर मोर त्रिभुवन राज॥

न० गु० (हर) २५

शब्दार्थ—उगना—उतंग, दिगम्बर; मेटल-मिटा; कलेस-क्लेश।

अनुवाद—मेरे दिगम्बर किधर गये? शिव किधर गये, क्या हुआ? बटुआ में भाँग नहीं है, क्रोध कर बैठ गये हैं। खोज कर ला देने पर हँस कर उठे। जो मुझे उगना का उद्देश लाकर देगा उसे हाथ का कँगन दूँगी। नन्दन वन में महेश का साक्षात्कार हुआ; गौरी का मन हर्षित हुआ, क्लेश मिटा। विद्यापति कहते हैं, उगना से ही मुझे काम है, त्रिभुवन का राज्य मेरे लिये हितकर नहीं (मैं त्रिभुवन का राजसिंहासन नहीं चाहता)।

(७६३)

पांसक भाग बहल एहि गनी।
फगि [illegible] मनाएब उगना अनी॥
आन दिन निरहि दुमाह मोर पनी।
आइ भाग दैव कोन बदमनी॥

आनक नीक आपन हो छती।
ठामे एक ठेसता पड़त विपती॥
भनहि विद्यापती सुन हे सती।
ई थिक बाउर त्रिभुवन पती॥

१ न० गु० (हर) २६, पैनौंगी २३६ संग्रह पद की २-४ और ६-१० संख्यक कलियाँ इसके अनुरूप और १ ७ ८ ९ कलियाँ पूर्व पद के अनुरूप।

शब्दार्थ--कथिलँइ – किस उपाय से; निकहि – अच्छा; उदमती - उन्मत्तता; छती - क्षति; ठेसला - ठोकर।

अनुवाद—पीसी हुई भंग यों हीं पड़ी रह गयी। उन्मत्तयति को किस प्रकार मनायें (शान्त करें) ? अन्य दिन मेरे यति अच्छे थे। आज किसने (उनकी) उन्मत्तता बढ़ादी ? दूसरे की भलाई, अपनी क्षति। कहीं ठोकर लग कर गिरने से विपद पड़ेगी। विद्यापति कहते हैं, सति, सुनो, यह पागल त्रिभुवन का पति है।

(७६४)

मोर निरधन भोरा।
अपने भिखारि बिलह नहि थोरा॥
फड़ि कचोटा हर इसर बोलावे।
मगन जना सबे कोटि कोटि पावे॥
सबे बोल हुनि हर जगत किसाने।
बूढ़ बड़द कुट काँख बोकाने॥
भनइ विद्यापति पुछु हुनि दहू।
की लए पोसब दहु परिजन पुत बहू॥

न० गु० (हर) २७

शब्दार्थ—बिलह—वितरण करता है; फड़ि कचोटा—कोपीन पहर कर; मगत—प्रार्थी; बड़द—बलद; कुट—कुकुद।

अनुवाद—मेरे भोला निर्धन हैं, स्वयं भिखारी, (किन्तु) दान थोड़ा नहीं करते (बहुत दान करते हैं) कोपीन पहनने पर भी हर को ईश्वर कहते हैं, प्रार्थी जन कोटि कोटि (अर्थ) पाते हैं। सब कोई कहते हैं कि ये हर जगत के किसान हैं; वृद्ध बलद के कुकुद और काँख में झोली। विद्यापति कहते हैं, इनसे पूछो कि पुत्र, वहू और परिजन का पालन क्या लेकर करेंगे ?

(७६५)

कओने उमतओला हे तैलोकनाथ।
निते उगारिअ निते भसम साथ॥
पाट पटम्बर धर उतारि।
बाघछल निते पहिर झारि॥
तुरय छाड़ि चढ़ बसह पीठि।
लाजे मरिअ जयँ हेरिअ दीठि॥
भनइ विद्यापति सुनह गोरि।
हर नहि उबता तोंहहि भोरि॥

न० गु० (हर) २८

शब्दार्थ—उगारिअ—उधार, उलंग; धर उतारि—खोल कर रखो; पहिर—पहरो; तुरअ—तुरंग, घोड़ा; बसह—बैल।

अनुवाद—हे त्रैलोकनाथ, किसने तुम्हें उन्मत्त किया ? नित्य उलंग, नित्य भस्म लगाते हैं। पाट-पटुवसन खोल कर फेंक देते हैं। नित्य बाघ छाल झाड़कर पहनते हैं। घोड़ा छोड़कर बैल के पीठ पर बैठते हैं। आँख से देखने पर लज्जा होती है। विद्यापति कहते हैं, गोरी, सुन। हर उन्मत्त नहीं है, तुम भोली लड़की हो (शिव को अच्छी तरह पहचान नहीं सकी हो)।

(७९६)

सिव हे सेवए अयलाहुँ सुख लागी ।
विसम नयन अनुखने वर आगी ॥
वसहा पड़ाएल आगे ।
पैसि पताल नुकायल नागे ॥
ससि उठि चलल अकासे ।
गोरि चललि गिरिराजक पासे ॥
उचित बोलए नहि जाइ ।
उमत बुझओब कओने उपाइ ॥
भनइ विद्यापति दासे ।
गौरी संकर पुरावथु आसे ॥

न० गु० (हर) ३०

शब्दार्थ—सेवए—सेवा करने के लिए; पड़ायल—भागा ।

अनुवाद—हे शिव, सुख के लिए सेवा करने आया, किन्तु तुम्हारे विषम नयन में अनुक्षण अग्नि जल रही है । बैल आगे भाग गया, साँप पाताल में प्रवेश कर छिप गया । चन्द्रमा उड़ कर आकाश में चला, गौरी गिरिराज के पास चली । उचित बात कही नहीं जाती । उन्मत्त को किस उपाय से समझाऊँ ? विद्यापति दास्यभाव से कहते हैं, गौरीशंकर आशा पूर्ण करेंगे ।

(७९७)

बेरि बेरि अरे सिव मो तोय बोलो
किरिषि करिअ मन लाइ ।
बिनु सरमे रहइ भिखिए पए मागिअ
गुन गौरव दूर जाइ ॥
निरधन जन बोलि सबे उपहासए
नहि आदर अनुकम्पा ।
तोहि सिव पाओल आक धुथुर फुल
हरि पाओल फुल चम्पा ॥
खटग काटि हरे हर जे बँधाओल
त्रिसुल तोड़िअ करु फारे ।
वसहा धुरन्धर हर लए जोतिअ
पाटए सुरसरि धारे ॥
भनइ विद्यापति सुनह महेसर
इ जानि कएलि तुअ सेवा ।
एतए जे वरु से वर होअल
ओतए जाएब जनि देवा ॥

(७६८)

तोही कोन बुधि देल हे उमता ॥
ललि धान तेजि वसथि मसाने ।
अमिय नहि पिवथि करथि विसपाने हे ॥
चानन नहि हित विभूति भूसने हे ।
मनि नइ धरह फनी कओन भूसने ॥

हय गज रथ तेजि बसहा पलाने हे ।
पलङ्ग नइ सुतथि ओ भूमि सयाने हे ॥

भनइ विद्यापति विपरीत काजे हे ।
अपनइ भिखारी सेवक दीय राजे हे ॥

न० गु० (हर) २४

शब्दार्थ—बुधि—बुधि; पलाने—जीन ।

अनुवाद—हे उन्मत्त, तुमको किसने ऐसी बुद्धि दी ? सुन्दर गृह का परित्याग करके श्मशान में वास करते हो अमिय पान न करके विषपान करते हो । चन्दन तुम्हें अच्छा नहीं लगता, (तुम्हारा) भूषण भस्मराशि । मणि नहीं पहरते, सर्प कैसा भूषण है ? अश्व, गज, रथ त्याग कर वृषभ पर आरोहण, पलंग पर भी शयन नहीं करते, भूमि ही (तुम्हारी) शय्या है । विद्यापति कहते हैं, समस्त विपरित कार्य । स्वयं भिखारी, सेवक को राज्य दान कर देते हैं ।

(७६९)

आइ तँ सुनिअ उमा भल परिपाटी ।
उमगल फिरे मूस झोरी मोर काटी ॥
झोरीरे काटिए मूस जटा काटि जीवे ।
सिरम बैसल सुरसरि जल पीवे ॥

बेटारे कातिक एक पोसल मजुर ।
सेहो देख उर मोर फनिपति झुर ॥
तोह जे पोसल गौरी सिंह बड़ मोटा ।
सेहो देखि उर मोर बसहा गोटा ॥

भनहि विद्यापति बाँसक सिंगा ।
तपवन नाचथि धतिंगा तिंगा ॥

न० गु० (हर) ३६

शब्दार्थ—उमगल—इधर उधर दौड़ना; मूस—चूहा; सिरम—सिर में; मजूर—मयूर; झुर—रोता है; बाँसक—बाँस का ।

अनुवाद—उमा, आज मैंने अच्छी परिपाटी सुनी । चूहा मेरी झोली काट कर इधर-उधर दौड़ रहा है । झोली काटने के बाद चूहा जटा काट कर खा रहा है । सिर पर बैठ कर गंगाजल पी रहा है । बेटा कार्त्तिक ने एक मोर पोसा है । उसे देखकर मेरा साँप भय से रो रहा है । गौरी, तुमने जो एक मोटा सिंह पोसा है, उसे देखकर मेरा बैल डर जाता है । विद्यापति कहते हैं कि बाँस का सिंघा बजा कर तपोवन में (महादेव) धतिंगा तिंगा नाच रहे हैं ।

(८००)

बुढ़ुहु वयस हर बेसन न छड़ले
की फल बसह धवाइ।
भाग भेल सिव चोट न लगले
के जान कि होइ आइ॥
बसह पड़ाएल के जान कतए गेल
हाड़ माल की भेला।
फुटि गेल डामरु भसम छिड़िआएल
अपथे संपति दुर गेला॥

हमर हटल सिव तोंहहि न मानह
अपना हठ वेवहारे।
सगरा जगत सब हुकोंए सुनिअ
घरनिक बोल नहि टारे॥
भनइ विद्यापति सुनह महेसर
इ जानि एलाहु तुअ पासे।
तोहरा लग सिव विघनि विनासव
आनक कोन तरासे॥

न० गु० (हर) ३७

शब्दार्थ– बुढ़ुहु—वृद्ध; बेसन—स्वभाव; धवाइ—दौड़ा कर; हटल—मना करना।

अनुवाद– हे शिव, बुढ़ापे में भी स्वभाव नहीं छोड़ा, बैल को दौड़ाने से क्या फल? शिव, भाग्य से चोट नहीं लगी। क्या जाने आज क्या होता है! बैल भाग गया, कौन जाने कहाँ गया, हाड़माल क्या हुआ? डमरु टूट गया, भस्म बिखर गया, अपथ में सम्पत्ति दूर हुई। शिव, तुम्हारा हठ व्यवहार है, मेरा मना करना तुमने नहीं माना। सारे जगत में यही सुना कि घरनी की बात कोई नहीं टालता। विद्यापति कहते हैं, महेश्वर सुनो, यह जानकर तुम्हारे पास आया कि विघ्न विनष्ट होगा। दूसरे का भय क्या करें?

(८०१)

जबे बोलथ कुल अधिकइ हीन।
नहि कुमार अइल एत दीन॥
गोहर हमर सिव चरन भेल आए।
आपहु न चिन्तह बिआह उपाए॥
भल सिव भल सिव भल बेवहार।
पिता बिन्मा नहि देवा कुमार॥
हसि हर कोसधि सुनह भवानी।
उलितहु करे दैनि होह अगेयानी॥

देस बुलिए बुलि खोजओं कुमारी।
हुन्हिक सरिस मोहि न मिलए नारी॥
एत सुनि कातिक मने भेल लाज।
हम न हे माए बिआहक काज॥
नहि बिआहब रहब कुमार।
न कर कन्दल अमा सपथ हमार॥
भनइ विद्यापति एहे भेल भेल।
कानिक वचने कन्दल दुर गेल॥

हे हर जगत तुलिए दिअ अभयवरे।
तम जानि जोथु महुए महेसरे॥

न० गु० (हर) ११

शब्दार्थ—आने—अन्य, बिआह—विवाह; अगेयानी—अज्ञानी; सरिस—सदृश।

अनुवाद—दूसरे लोग कहेंगे कि कुलहीन था, इसीलिए इतने दिनों कुमार (अविवाहित) रह गया। हे शिव, तुम्हारा हमारा वयस हो गया, अभी भी (कार्तिक के) विवाह की चिन्ता नहीं करते। भले शिव, भले शिव, भला (तुम्हारा) व्यवहार। तुम्हें यह चिन्ता नहीं है कि लड़का कुमार (अविवाहित रह गया)। हर ने हँस कर कहा, ज्ञानी सुनो, जान सुन कर भी क्यों अज्ञानी होती हो। देश-देश में घूम कर कुमारी को खोजता हूं। उनके समान रमणी मुझे मिलती ही नहीं। यह सुन कर कार्त्तिक के मन में लज्जा हुई। माँ, मेरे विवाह का काम नहीं है। मैं विवाह नहीं करूँगा, कुमार रहूंगा। माँ, कलह मत करो, तुमको मेरी कसम है। विद्यापति कहते हैं, यह अच्छा हुआ कार्त्तिक की बात से कलह दूर हो गया। हे हर, जगत भ्रमण करके अभय वर देना,—महत्वक महेश्वर (राजमन्त्री) जिससे जीवित रहें।

(८०२)

आजु नाथ एक व्रत महासुख लागत हे।
तोहें सिव-धरु नट वेस डमरु वजावहु हे॥
तोहें गौरी कहैछह नाचय हम कोना नाचव हे।
चारि सोच मोरा होइ कोने विधि बाँचत हे॥
अमिय चुविय भूमि खसत बघम्बर जागत हे।
होएत बघम्बर बाघ बसहा कें खाएत हे॥

सिव सौं ससरत साँप दहोदिसि जाएत हे।
कार्तिक पोसल मयूर से हो धरि खायत हे॥
जटा सौं छिलकत गंग भूमिपर पाटत हे।
हैत सहस्र मुख धार समढ़ि ओन जाएत हे॥
रुण्ड-माल टुटि खसत मसानी जागत हे।
तोहे गौरि जयवह पड़ाय नाचके देखत हे॥

भनहिं विद्यापति गाओल गावि सुनाओल हे।
राखल गौरी केर मान चारु बचाओल हे॥

मि० गी० स० १ म खण्ड पृ० ३३; बेनीपुरी २४५ संख्यक पद इसके अनुरूप हैं।

अनुवाद—(गौरी की उक्ति) हे नाथ, आज एक व्रत में महासुख लगेगा (आनन्द होगा) तुम शिव नटवेश धरो (एवं) डमरू बजाओ। (शिव की उक्ति) गौरी तुम नाचने को कहती हो (किन्तु) मैं किस प्रकार नाचूँ? मुझे चार चीजों की चिन्ता है, (वे) किस उपाय से बचेगें? अमृत चू कर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा, बाघाम्बर जाग पड़ेगा (अमृत पड़ने से जी उठेगा) बाघाम्बर बाघ हो जायगा। बैल को खा जायगा। सिर से सर-सर करके साँप दशों दिशा में चले जाएँगे। कार्तिक ने मयूर पोसा है, वह (मयूर) पकड़ पकड़ कर (साँप को) खा जायगा। जटा से गंगा उछल कर पृथ्वी पर गिर पड़ेगी। सहस्रमुख धारा होगी, वह सम्हाली नहीं जा सकेगी। मुण्डमाला छितरा पड़ेगी एवं श्मशान जाग पड़ेगा (मुर्दे जीवित हो जाएँगे)। गौरी, तुम भाग जाओगी, नाच कौन देखेगा? विद्यापति कहते हैं, मैंने गान करके सुनाया, गौरी की मान रक्षा हुई एवं चारो चिन्ताएँ भी बच गयीं (अर्थात् नाच नहीं हुआ, और महादेव को विपद् में भी नहीं पड़ना पड़ा)।

चतुर्थ खण्ड समाप्त

पंचम खण्ड

(क) नातिप्रामाणिक पद

नेपाल पोथी से प्राप्त पद

इन पदों में विद्यापति की भणिता नहीं है एवं पद के नीचे 'विद्यापतीत्यादि' शब्द भी नहीं है।

(८०३)

केहु देखल नगना।
भिखिआ मगइते बुल आँगने आँगना॥
उगन उगन केहु देखल विधाता।
गौरिक नाह अभय बरदाता॥
विभुति भुसन कर बीख अहारे।
कण्ठ वासुकि सिर सुरसरि धारे॥
केलि भूत संगे रहए मसाने।
तैलोक इसर हर के नहि जाने॥

नेपाल २७६ पृ० १०१ ख पं ४ ; न० गु० (हर) २४

शब्दार्थ—उगन—दिगम्बर; नाह—नाथ; बीख—विष।

अनुवाद—किसी ने नग्न को देखा है? भिक्षा माँगते हुए आँगन-आँगन घूमते फिरते हैं। उन्मत दिगम्बर विधाता को किसी ने देखा है? (वे) गौरी के नाथ, अभय वरदाता हैं। उनका भूषण विभूति, आहार विष, कण्ठ में वासुकि, सिर पर सुरसरिधारा है। भूत के संग केलि करते हैं, श्मशान में रहते हैं, हर त्रैलोक्य के ईश्वर हैं, कौन नहीं जानता?

(८०४)

सोयँ तो आज देखलि कुरंगि-नयनिआ।
सरदक चाँद वदनिआ॥
कनक-लता जनि कुन्दि बैसाओल
कुच-जुग रतन-कटोरवा लो।
दसन ज्योति जनि जनि मोति बैसाओल[1]
अधर ततु रंग पररवा लो[2]॥

(८०५)

कत न जातकि कत न केतकि
कुसुम वन विकास।
तेइओ[1] भमर तोहि सुमर
न लेअ कतहु वास॥
मालति वधओ जाएतलागि।
भमर बापुर विरहे आकुल
तुअ दरसन लागि॥

जखने जतए वन उपवन
ततहि तोहि निहार।
ते[2] लिहि महीतल तोति परेखए
तोहर जीवन सार॥
समय गेले नेह बढ़ाओवह
कुसुम होयत साल।
भवर जनु अचेतत बुझह
छुइत कर निमाल॥

नेपाल २७२ पृ० ६१ क, पं ४; न० गु० ६६

अनुवाद—कितने जातकी, केतकी के फूल वन में विकसित होते हैं। तब भी भ्रमर तुमको स्मरण करके कहीं भी वास नहीं लेता। हे मालति, तुम उसके वध का कारण होवोगी। भ्रमर बेचारा तुम्हारे दर्शन के लिए विरह में आकुल हो रहा है। वन में, उपवन में, जहाँ भी जब रहता, वहाँ तुम्हीं को देखता है, पृथ्वी पर तुम्हारी तस्वीर खींच कर प्रतीक्षा करता है, तुम्हारा जीवन ही उसके लिए एक सार वस्तु है। समय जाने पर स्नेह बढ़ावोगी, कुसुम शूल होएगा। भ्रमर को अचतुर मत समझना, छूते ही वह निर्माल्य (भोग) करता है।

(८०६)

अथिक नवोढ़ा सहजहि भीति।
आइलि मोरे[1] वचने परतीति॥
चरन न चलए निकट पहु पास।
रहलि धरनि धरि मान तरास॥
अवनत आनन लोचन वारि।
निज तनु मिलि रहलि वरनारि॥

नेपाल १८६ पृ० ६८ क, पं १; न० गु० १४६

अनुवाद—नव-विवाहिता रमणी सहज ही डर जाती है, मेरी बात का विश्वास करके आयी। प्रभु के पास (जाते) पाँव नहीं चलते, डर कर मिट्टी पकड़े रही। रमणीश्रेष्ठा नत मुख से, नयनों में अश्रु (भर कर) अपने अंग में ही मीलित हो कर रही अर्थात् लज्जावशतः अपने शरीर में ही मिली लगी रही।

८०५—*मन्तव्य*—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'तइओ' कर दिया है (२) 'ते' शब्द छोड़ दिया है।

८०६ मन्तव्य—नगेन्द्र बाबू ने संशोधन करके (१) 'मोर' कर दिया है।

(८०७)

कोमल कमल कान्ति विहि सिरिजल
मो चिन्ता पिया लागी।
चिन्ता भरे नीन्दे नहि सोअओं
रयनि गमावओं जागी॥

वर कामिनि हो[1] काम पियारी
निसि अन्धियारि डरासी।
गुरु नितम्ब भरे ल नहि न पावसि[2]
कामक पीड़लि जासी॥

साओन मेह झिमि-झिमि[3] वरिसए
वहल भमए जल पूरे।
विजुरि लता चक चक मक कर
डीठी न पसरए दूरे॥

नेपाल १३१; पृ० ४६ ख, पं ५; न० गु० २६८

अनुवाद—(नायिका की उक्ति) विधाता ने कोमल कमल के समान बनाकर क्यों सृष्टि की? मेरी चिन्ता प्रियतम के लिए है। चिन्तान्वित होकर शयन करने से नींद नहीं आती, रजनी जाग कर काट देती हूँ। (सखी की उक्ति) हे रमणीश्रेष्ठ, कामानुरक्त अन्धेरी रात में डर पाती हो। गुरु नितम्ब के भार से चल नहीं पाती हो, काम के द्वारा पीड़ित हो जाती हो। श्रावण का मेघ झिम-झिम बरस रहा है, जल प्रवाह घूम-घूम कर बहता है, विद्युल्लता चकमक कर रही है, दृष्टि दूर तक प्रसारित नहीं होती।

(८०८)

आज परसन मुख न देखए तोरा।
चिन्ताजे सहज विकल मन मोरा॥
आएल नयन हटिए कौं लेसी।
पछिलाहु जके हसि उतरो न देसी॥

ए वर कामिनि जामिनि भेली।
अवधिक आगनि चौगुन भेली॥
[illegible] पछिम गेल परगामा।
[illegible] पुरन्दर भागा[1]॥

मानिनि मान कओन एहु वेरी।
तिला एक आड़हु डीठि हल हेरी॥
नयनक सीम तेजि दूर जासी।
एकहु सेज भेलाहु परवासी॥
नाहि मनरथ ये कर बाधा[2]।

नेपाल २०४, पृ० १०० क, पं० ६; न० गु० ३५७

अनुवाद—आज प्रसन्न मुख नहीं दीख रहा है; मेरा मन स्वभावतः चिन्ता में विकल (हो रहा है)। [illegible] (इस ओर मुस्काती दृष्टि डाल रही है, तो भी दूसरी ओर फिरा ले रही हो)?

पहले की तरह हँस कर उत्तर भी नहीं देती। हे वर कामिनी, यामिनी चली गयी, याचना करते व्याकुलता चौगुनी हो गयी। चन्द्रमा पश्चिम गया (मलिन हो गया), पूर्व दिशा अरुण से अलंकृत हुई (?) मानिनि, ऐसे समय में मान क्या ? तिलमात्र आड़ दृष्टि से एक बार देख जावो। शय्या की सीमा छोड़ कर दूर जा रही है, एक ही शय्या पर प्रवासी हुआ।

(८०६)

मुख तोर पुनिमक चन्दा।
अधर मधुरि फुल गल मकरन्द।
अगे धनि सुन्दरि रामा।
रभसक अवसरकँ[1] भेलि हे वामा॥
कोपे न देहे मधुपाने।
जीवन जौवन सपन समाने॥

नेपाल १३४; पृ० ४७ ख, पं ३; न० गु० ३६८।

अनुवाद—तुम्हारा मुख पूर्णिमा का चन्द्र, बान्धुली फूल के समान अधर से मधु झर रहा है। हे धनि सुन्दरी रामा, आनन्द के अवसर पर वाम हो गयी ? कोप से मधुपान नहीं करने देती, जीवन यौवन स्वप्नतुल्य हुए।

(८१०)

नाचहु रे[1] तरुनीहु तेजहु लाज।
आएल वसन्त रितु वनिक-राज॥
हस्तिनि, चित्रिनि, पदुमिनि नारि।
गोरि सामरि एक बूढ़ि वारि॥
विविध भाँति कएलन्हि सिंगार।
पहिरल पटोर गृम झुल हार॥
केओ अगर चन्दन घसि भर कटोर।
ककरहु खोइँछा करपुर तमोर॥
केओ कुंकुम मरदाव आँग।
ककरहु मोतिअ भल छाज माँग॥

नेपाल २८१, पृ० १०२ क, पं ५; न० गु० ६०१

अनुवाद—तरुणि, लज्जा त्याग करो, नृत्य करो। वणिकराज वसन्त ऋतु आयी। वृद्धा छोड़ कर और सब—हस्तिनी, चित्रिणी, पद्मिनी नारी, गोरी, साँवली, विविध प्रकार का शृंगार कर रही हैं, परिधान में पट्ट वस्त्र, ग्रीवा में हार झूल रहा है। कोई अगुरु चन्दन घस कर कटोरा में भर रही है, किसी के अंचल में कर्पूर, ताम्बूल। कोई अंग में कुंकुम मर्दन कर रही है, किसी के भाल पर मुक्ता का अलंकार शोभ रहा है।

८०९—*मन्तव्य*—नेपाल पोथी के निर्घण्ट पत्र में इस पद की पहली पँक्ति नहीं मिली। न० गु० ने संशोधन कर (१) 'अवसर' कर दिया है।

८१०—*मन्तव्य*—नेपाल पोथी के निर्घण्ट पत्र में इस का प्रथम चरण नहीं है। न० गु० ने 'तरुणीहु' की जगह संशोधन करके 'तरुणी' कर दिया है।

(ख) रामभद्रपुर पोथी के भणिता-विहीन पद

(८११)

आनन देखि भान मोहि लागल जिनि सरसिज जिनि चन्दा ।
सरसिज मलिन रयनि दिन ससधर, इ दिन रयनि सानन्दा ॥
रूपे रूपे तिनुकि रेखा ।
एहि समय देवे आननहि विहले एसन बुझिअ विसेखा ॥
अनुपम रूप घटइते सब विघटल जत छल रूपक सारे ।
से जानि देवे आनि कए निरमल कामिनि अन्त न भावे ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद २६५

शब्दार्थ—विहले—सृष्टि की ।

अनुवाद—मुख देख कर लगता है कि इसने कमल और चन्द्रमा को जय कर लिया है ; रात में कमल और दिन में चन्द्रमा मलिन रहता है, किन्तु यह रात दिन प्रफुल्ल रहता है । प्रत्येक रूप में…रेखा । इसकी सृष्टि करते समय विधाता ने और किसी चीज की सृष्टि नहीं की, यही विशेषता है ऐसे अनुपम रूप की सृष्टि करते समय रूप की जितनी सामग्री थी, सब समाप्त हो गयी ।…

(८१२)

कानन कुसमित साहर पंकज परम सहासे ।
(च) न चन्द [illegible] दि तोहि बिनु विकल पिआसे ॥
कामिनि तोहि सम के जग आने ।
जसु परिमलसँ परबस मधुकर कतहु न कर मधुपाने ॥
आनन कुसुम विकासि न दरसए केतकी कण्टक मारे ।
नव मधुमालति तइअओ न देखिअ जे अनुरञ्जए पारे ॥
सहज [illegible] सब गुन नागर, तइ पुनु तोहरि सभागे ।
निज मने चिन्तने रसि कुमुदिनि सम जनु अनुरत अनुरागे ॥

(८१३)

कुसुमधुरि मलयानिल पूरित[1] कोकिल कल[2] सहकारे।
हारि पूरब परिपाटि हराएल[3] आने चलल बेवहारे॥
साजनि जानिले तन्त।
सिसिरे महीपति दापें चपिकहुँ[4] राजा भेल बसन्त॥
मनमथतन्त अन्त धरि पढ़िकए[5] अवसरँ भेलि सआनी।
आजुक दिवस कालु नहि पइअए[6] जौवनबन्ध छुट पानी॥

रामभद्रपुर पोथी ; पद ४१ और २१४

अनुवाद—मलयानिल पराग से परिपूर्ण हो गया है, कोकिल कुहुरव से आम्रकुँज पूर्ण कर रही है। पूर्व प्रीति पराभव मान कर चली गयी, नूतन रीति का प्रवर्त्तन हुआ। सखि ! नूतन तन्त्र जान लो। अपने प्रताप से शिशिर-रुपी महीपति को परास्त कर वसन्त राजा हुआ। समयमत मन्मथ का तन्त्र (कामशास्त्र) सम्पूर्ण पढ़ कर सुचतुरा हुई। आज का दिन कल फिर पाया नहीं जायगा। यौवनरूपी बाँध से जल बाहर हो रहा है *अर्थात् यौवन चिरस्थायी* नहीं है।

(८१४)

प्रथम वयस अतिमिति राही अभिमित पिअ-मेला।
नीविक संगे लाज विघटलि अधर पान कयला रे॥
काये संसार सिरिजल सोनाक अंगु (कु) र लागु।
आरति आकमि भांगि न गेले, तोहर दुख न लागु॥
माधव अबे कि बोलब तोही।
केसरि अनि कुरंगिनि आपलि भरम लागल मोही॥
गज दमसलि दमणलता तैसन देखिअ देहे।
चापि चकोरे सुधारस पीड़ल निवसिए ससिरेहे॥
काजेरि ठाम अठाम न गुनल अधर खण्ड विराणी।
जुवति जीव करुना नाही कामदेव अहेवाणी॥
मनमथदेवे सपथ मानल सुनि दइने विराणी।
काँ लागि आनल चान्दक कला राहु मेराउलि आनी॥
कठिन कोमल की रीति सहति मालाए बान्धलि हाथी।
निअँ अनुचित सेवि सम गुरु सेओल लघु ता जाथी॥

रामभद्रपुर पोथी पद ४१

८१३—२१४ संख्यक पद का पाठान्तर—(१) पूरलि (२) कवलु (३) पराएल (४) सिसिर (५) चापि लेल (६) पढ़ से (७) अवसर गेल बहुरि नहि आवए।

शब्दार्थ—आकमे—आलिंगन में।

अनुवाद—प्रथम वयस में राधा अतिशय भीता थीं, (साथ साथ) प्रियसंगम भी चाहती थीं। नीवि के संग लज्जा भी दूर गयी, अधर पान किया। काम ने सोना का अँकुर देकर संसार में (नायिकारूपी) शृंगार रस की सृष्टि की। (यही आश्चर्य है कि) वह आलिंगन में टूट गया; तुम्हें तो (उसके लिए) कोई दुख नहीं होगा। माधव तुमको और क्या कहूँ। (उसको देखकर) लगता है सिंह मानों मृगी के ऊपर जा पड़ा हो। उसका शरीर देखकर लगता है मानो हाथी ने दमन लता का दलन किया हो, अथवा चकोर ने चन्द्ररेखा का सुधारस (निचोड़कर) पीया हो। तुमने कार्य की उपयुक्तता अनुपयुक्तता का विचार नहीं किया, अधर दंशन कर खण्डित कर दिया। कामदेव के स्वभाव के समान, इसे युवती के जीवन पर करुणा नहीं। इस नारी की कातरोक्ति सुन कर मैंने मन्मथ की दुहाई देकर तुमको मना करना चाहा। मैंने किस लिए चन्द्रमा की कला के साथ राहु का मिलन कराया था? कोमल भला किस प्रकार कठिन का सहन करे? माला से कहीं हाथी बाँधा जा सकता है? ऐसा अनुचित कार्य करके नाहक ही मेरा जाने से लघुता प्राप्त होती है (?)

(८१५)

पावक सिखा निच न धावए ऊँच न जा जलधारा।
तत से पए अवस करए जकर जे वेवहारा॥
माधव गुरुवि आरति तोरि।
निअ मने जदि आगु न गुनल कहनि रे वेथा गोरी॥
कत न वासर पलटि आविह कति न होइह राती।
पर दोस दए तिरिवध लए कओन पेखब सजाती॥
ओ नवि नागरि, निसा सगरि सुरत अवधि गेला।
नाह निरदय अरुण उदय उपसम नहि भेला॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३८७

अनुवाद—अग्निशिखा नीचे नहीं जाती, जलधारा भी ऊँची नहीं जाती। जिसका जो स्वभाव रहता है, निश्चय ही वह उसके अनुसार कार्य करता है। माधव, तुम्हारी अभिलाषा उत्कट है। अपने मन में यदि भविष्य के सम्बन्ध में विवेचना भी न करो, तथापि मेरी व्यथा की बात तो सुनो। (इसके बाद) कितने दिन आवेंगे, कितनी रातें होंगी। दूसरे के दोष से स्त्रीवध होने पर स्वजाति में किस प्रकार मुख दिखाऊँगी? वह नवीना नागरी है, समस्त रात भर सम्भोग का चरम हो गया है। नाथ निर्दय, अरुण का उदय हो रहा है, तथापि सन्तुष्ट नहीं होता।

(८१६)

दरसने ससिमुख मधुर हास
देखि हेरइते हरए गेआने।
करे धरि केसपास पिअइ अधर रस
कतए मलिनि जन माने।

सुन्दरि तोकें बोलओ जतन करह
जनु मञे न जाएव ता पिया पासे।
न दइन दखिन मान, न मोह ममत जान।
न रमए मनोरथ राखि सून संकेत न दीप
अचेतन के वर तखुनक साखि।

प्रमोद कपोतरव कुचकुम्भ परिभव
कत कत निधुवन भान्ति।
तखनुक सिव सिव रे रे डरव
न जिव भागे पोहाइलि राति।

रामभद्रपुर पोथी, पद ३११

अनुवाद—(नायिका सखी से कहती है) हे शशि मुखि! उसका मधुर हास्य देखकर देखते ही देखते ज्ञान मानों लोप होने लगता है। केशपाश हाथ में पकड़ कर अधररस का पान करता है, दुष्ट आदमी, क्या बाधा मानता है? सुन्दरी! ऐसा करो, तुम्हें कहती हूं जिससे मुझे प्रिय के निकट जाना न हो। वह दीनता नहीं मानता,दाक्षिण्य नहीं दिखाता, स्नेहदया कुछ भी नहीं जानता। वह भविष्य के लिए कुछ भी मनोरथ न रख कर रमण करता है। शून्य संकेत स्थान, अचेतन दीप, सुतरां (उसकी निर्दयता) का साक्ष्य कौन देगा? पालित कपोत के समान कुचकुम्भ का परिभव करता है और कितने कितने भाव से सम्भोग करता है। उस समय की बात ख्याल करके डर होता है, शिव, शिव, कहना पड़ता है, ऐसा लगता है प्राण अब नहीं बचेंगे। भोग में ही रात्रि बीत गयी।

(८१७)

कुल कुल रहु गगन चन्दा दुअओ कर उजोर।
तिमिर भञे तिरोहित करसि गरुअ साहस तोर॥
साजनि मोहि पुछइते लाज।
कि भये बोलव कते करव कि दहुँ उत्तर काज।
कुन्दक कुसुम सजन हृदय बिमल चरित मोर।
केलि अपजस बोलहि वहुल कलंके सानिए वोर॥

रामभद्रपुर पोथी, पद २९

शब्दार्थ—दुअओ—दोनों दिशाओं में; किदहुँ—किस प्रकार।

अनुवाद—आकाश में चाँद पूरापूरी रहता है—दोनो दिशाएँ चन्द्र किरणों से उद्भासित। तुम्हारा बड़ा साहस है कि अन्धेरा करके छिपना चाहती है। सखी, मुझे पूछते लज्जा होती है। मैं क्या कहूंगी, तुम क्या करोगी किस प्रकार भविष्य का कार्य होगा? सज्जन का हृदय कुन्दकुसुम के समान (शुभ्र); मेरा चरित्र निर्मल। बड़े आश्चर्य की बात करती हो, मेरे सिर पर कलंक का बोझ मत पटकना।

(८१८)

केतकि कुसुम आनि विरचि विविध बानि चौदिस साजल माला ।
घृत मधुदुधए नेते बाती कए चौदिस देलक दिपमाला ॥
माधव सबे काज अइलहुँ साधी ।
गुरु गुरुजन डरे पुछिओ न पुछलक संकेत कएलक सुन ताही ॥
तरनि अस्त भेल चान्द उदित भेल अति उजरि निसा देखी ।
गगन नखत लाखें निहलक निअ हाथें सुरसम्पा गमशब रेखी ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ७१

अनुवाद—केतकी फूल लाकर एवं विविध सजा रचना कर गृह को चारो ओर से सजाया। घृत, मधु और दूध देकर एक सूक्ष्म बत्ती बनाकर चारो ओर दीप माला दी है। माधव, सब काम पूरा करके आयी हूँ। सुनो, गुरुजनों के गुरुतर भय से उससे अच्छी प्रकार न पूछने पर भी उस स्थान (मिलन) का संकेत करके आयी हूँ। सूर्य अस्त हो गया है, चाँद उदित हो गया है, रात्रि को ज्योत्स्नालोक से उज्ज्वल देख कर......

(८१९)

तुअ अनुराग लागि सअल रअनि जागि तरुतल तीन्तलि बामा ।
अलक तिलक मेटि वेअ देल भरि लिहि गेल अपुनक नामारे ॥
चल चल माधव बुझल सरुप सब, वचन आन फल आनरे ।
जेनहि फले निरबाहए पारिअ से बोलिअ कथि लागी ।
से न करिअ जेपर उपहासए धाए मरिअ बरु आगी ॥
जिबओ जाए जग············

रामभद्रपुर पोथी, पद ९८

शब्दार्थ—तीन्तलि—भींगी ।

अनुवाद—तुम्हारे अनुराग में नायिका सारी रात जाग कर वृक्ष तले भींगती रही। अपने अलक-तिलक से अपना नाम लिख गयी। जावो, जावो, माधव, तुम्हारा स्वभाव जाना गया। तुम्हारी बात इस तरह की, काम दूसरी तरह का। जो काम सफल नहीं कर सकते, उसे कहने से क्या लाभ है? वह काम नहीं करना जिससे लोग हँसी उड़ावें। उस प्रकार का काम करने से अच्छा आग में कूद कर मर जाना है।

(८२०)

कत कत भान्ति लता नहि थाक।
तुलना करए न पारए जाक॥
बाहर कण्टक भितर पराग।
तइअओ तोहरा तन्हिक अनुराग॥
बुझलक भमर जइसन तोहें रसी।
जनम गमओलह केतकि बसी॥
मालति माधए कुन्दनलता।
आगरे रसमति अच्छए कता॥
ता हेरि सबहु जदि गुण परिहार।
ताकें बोलब की सहज गमार॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३८८

अनुवाद—कितने प्रकार की लताएँ हैं, उसके साथ (जिस नारी पर अनुरक्त हुए हो) किसी की तुलना नहीं हो सकती। उसके बाहर काँटा और भीतर पराग है, तथापि उसी में तुम्हारा अनुराग है। हे भ्रमर, समझी, तुम कितने रसग्राही हो! केतकी (काँटेदार फूल) पर बैठ कर जीवन काट दिया। मालती, माधवी, कुन्द प्रभृति कितनी रसवन्ती लताएँ हैं। उनको देख कर भी यदि किसी का गुण तुम्हारा मन नहीं आकर्षित करता तो तुमको स्वभावतः ग्राम्य (कुरुचिपूर्ण) छोड़ कर और क्या कहा जायगा?

(८२१)

एक कुसुम मधुकर न बसए कैसने रह नाह।
इ दुइ साजनि जगत सम्भव सबे अनुभव चाह॥
र बोल न बोल पउरुस बच तहि सुबुधि सआनी।
तेतहि माने अनल पजारह अजेहे निझाइअ पानी॥
पिअ अनुचित किछु न धरब मने न मानब दूर।
मुखरपन मारि जओ सोभए तखो कि सोंपि अनुपूर॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३८४

अनुवाद—भ्रमर एक फूल पर स्थिर नहीं रहता, नाथ किस प्रकार रहेंगे? सखि, जगत में ये दोनों ही सम्भव है, सब कोई अनुभव चाहता है। तुम सुबुद्धि और चतुरा हो, प्रिय को कठिन वचन मत कहना। उतनी ही मान की अग्नि जलाना जितना जल देकर बुझाना सम्भव हो। प्रिय के अनुचित कार्मों की गणना मत करना, उनको दूर मत मानना। मुखरता का दमन करके......

(८२२)

विकच कमल तेजि भमरी सेओल मधुरि फुल।
समग्र सम्पद देखि डराएल बड़ेओ वचन भूल।
साजनि भल भेल अभिसार।
सुपहु एलिए जथाँ गेलि हे तकर पुन अपार॥
गुनक बान्धल अएल नागर मन्दिर न देखल तोहि।
मदन सरे बेआकुल मानस आएल चौदिस जोहि॥
सुनि सेज सुति रहल वाकुल नयने तेजए नीर।
हरि हरि हरि पुकारए देह न मानए थीर॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३८३

शब्दार्थ—सेओल—सेवा की।

अनुवाद—प्रस्फुटित कमल का त्याग करके भ्रमर बान्धुलि फूल पर बैठी (सेवा की) समय के दोष से सम्पद् में भी उसने भय पाया, बड़ी ही गलत बात कही अथवा गलत काम किया। सखि! अच्छा अभिसार हुआ। जिस सुप्रभु के पास जाना होता है वही अगर आ जाए तब उसे अपार पुण्य का फल कहना होगा। तुम्हारे गुण से बँध कर नागर आया, परन्तु तुमको मन्दिर में देख नहीं सका। मदनशर से व्याकुल होकर उसने चारो दिशाओं में तुमको खोजा। शून्य शय्या पर सो कर उसने व्याकुल नयनों से अश्रु विसर्जन करना शुरु किया; हरि हरि हरि बोलने लगा, उसकी स्थिरता न रह सकी।

(८२३)

तुअ गुने अमिअ निवास।
विरथ वचन कि के भास॥
वारि सम हिदय हमारि।
हेमगल गलल तगारि॥
परिहर दारुण मान।
देहे अधर मधु पान॥

रोसे दारुण मुहु मन्द।
निन्दल साँझक चन्द॥
कानु भेल सुललित हास।
उठितेहु कमल विकास॥
परमुखे सुनिए अपवाणी।
रोप करब पहु जानी॥

किछु दोष नहि कह मारि
हृदयहु चाहह विचारि॥

रामभद्रपुर पोथी, (पोथी में पद संख्या नहीं है, पद के बाद आभोग्य ६१ लिखा है।

अनुवाद—तुम्हारे मुख में मानों अमृत वास करता है; निर्लज्ज लोगों की बात पर कौन कान देता है ? मेरा हृदय जल के समान स्वच्छ (मन में कोई मैल नहीं है); ....। तुम दारुण मान का परित्याग करो, अधर-मधु पान करने दो। कोप से तुम्हारा मुख विवर्ण हो गया है मानों सन्ध्या के चाँद की निन्दा कर रहा है। कन्हायी ने सुललित हास्य किया, देख कर लगा मानों कमल का विकास हुआ है। दूसरे के मुख से निन्दा सुन कर पहले प्रभु की परीक्षा करके तब क्रोध करना उचित है। अपने हृदय में विचार करके देखो और स्वीकार करो कि मेरा कोई दोष नहीं है।

(८२४)

फरह रंभ पररमनी साथ।
तकरि अ आइति तोंहे पए नाथ।

से सवे परेक कहनि न जाए।
सुनाहुँ चिन्ता सेज ओछाए॥
माधव आओर कि कहव तोहि।
धनि देखलें मन धाधसि मोहि॥

दिन दुइ चारि जिउति महिं लागि।
सबतह खरि विरहानल आगि॥
से तनु जारि करत जनि छाए।
पुच्छओ काहित हटो पलटाए॥

रामभद्दपुर पोथी, पद संख्या ६१

अनुवाद—तुम पररमणी से रंग करते हो, वह पराधीना, तुम तो स्वाधीन। वह सब बात दूसरे को किस तरह कही जाए, (यह) शय्या बिछा कर सुनाया जाता है। माधव, तुमको और क्या कहूँ ? नायिका को देख कर मेरा मन दुख से भर गया है। वह अब केवल दो-चार दिन जिन्दा रहेगी। विरहानल के समान प्रबल अग्नि दूसरी नहीं है। वह मानों देह को जला कर छार कर देती है। तुम उसका जीवन फिरा दो यही प्रार्थना है अर्थात् उसके संग मिल कर उसकी जीवन-रक्षा करो।

(८२५)

जिव जन्वों हमे सिनेह लाओल तोहें विहृदय जानि।
भलजन भए बाचा चुकह इ बड़ि लागए हानि॥
माधव बुझल तोहर नेह।
निठुर पेम पराभव पाओल जीवहुँ भेल सन्देह॥
आनुव जिवन जउवन थोला जगत के नहि जान।
मलविका वल हरल न रह तइओ तोहिहि मान॥

रामभद्दपुर पोथी, पद ३८२

अनुवाद—तुम हृदय हीन हो, तुमसे प्रेम कर मेरा जीवन संशय में पड़ गया। अच्छा आदमी होकर भी बात रख नहीं सकते हो, इससे बड़ी हानि होती है। माधव, तुम्हारा स्नेह समझा। निष्ठुर प्रेम पराभूत हुआ, मेरे बचे रहने में भी सन्देह है। जगत में कौन नहीं जानता कि जीवन और यौवन क्षणस्थायी हैं ? .... उस पर भी तुम्हारा मान नहीं रहा।

(८२६)

की भेलि काम कला मोरि घाटि कि ओछे न बुझए रसपरिपाटि ।
तीखर वचन कन्ते दिहु कान ते विहि करु मोर सभ अवधान ।
भमर हमर किछु कहब सन्देस कन्त वसन्त न रह दूरदेस ।
की दहुँ भमर तनए नहि नाद पिक पंचम धुनि मधुर ननाद ।
की धनुवान मदन नहि साज की विरही नहि विरहि समाज ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ८१

अनुवाद—जाने मेरी ही काम कला में कोई त्रुटि हो गयी, अथवा दयित ही रस-परिपाटी नहीं समझता। मालूम होता है कान्त ने (दुष्टों की) निन्दा पर कान दिया है; विधाता मेरा विचार करेंगे (यदि मैंने निन्दा के योग्य काम किया है तो विधाता मुझे दण्ड दें)। हे भ्रमर, तुम मेरी बात कुछ वहन कर उनके पास ले जाओ। कान्त को कहना कि वे वसन्तकाल में दूर न रहें। क्या वहाँ भ्रमर नहीं गूँजते, अथवा कोकिल पंचम स्वर में गान नहीं करती अथवा कामदेव धनुष-बाण लेकर सज्जित नहीं होता अथवा वहाँ विरही नहीं है अथवा विरहियों का समाज नहीं है ?

(८२७)

एथाँ मनमथ सर साजे।
समदि पठावह आओव आजे ॥

बचनहुँ नहि निरवाहे जनि ।
लोभी तह किअअ सताहे ॥
पेअसि प्रेम चिह्नायी।
कैतव कएले कि फल कन्हायी ॥
नवि नागर, नव नेहा।
नव जउवन देल रुपक रेहा ॥

अभिभव कहइ न जाइ ।
पवनेहु परसे कुसुम असिलाइ ॥
सुपुरुष के सब आसा।
चान्द चकोरी हरए पियासा ॥
समअ न सह विहि मन्दा ।
मालति फुलिलि बासि मकरन्दा ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३६३

अनुवाद—यहाँ मन्मथ ने शरसज्जा की है; आज संवाद भेजो, वे आवें। केवल बात से काम नहीं होता। सत्य करके (मिलन का समय निर्धारण करके) मुझे लोभी क्यों समझा ? हे कन्हायी, प्रेयसी को प्रेम पहचनवा कर कैतव करने से क्या फल ? नवीना नागरी, नवीन प्रेम, नवजीवन ने सौन्दर्य सम्हाल दिया है। दुख की बात नहीं कही जाती। पवन के स्पर्श से भी फूल झड़ जाता है। सुपुरुष की सब आशा करते हैं। चाँद चकोरी की प्यास हरण करता है। बाम विधाता अपेक्षा करने नही देता, मालती के फूटते ही पराग बासी हो जाता है।

(८२८)

वारिस सघन घन पेमे पूरल मन पिआ परदेस हमारे।
एसनि पाउस राति पुरुष कमन जाति गृह परिहरइ गमारे॥
सजनी दूर करु दुरुजन-नामे।
तोहहि सआनि धनि अपन परान-सनि तें करिअ चित विसरामे॥
कमल फुल विरासु केओ बोल मअन हसु भमरा-भमरि विवादे।
मुइल कुसुम धनु से कैसे जीउल पुनु कि बोलव हर परमादे॥
विजुरि चमक घन, विसहर विसहरे उनमुखे नाच मयूरे।
कदम पवन वह, से कैसे युवति सह, हृदय भमइ बाति दूरे॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ४०१

शब्दार्थ—पराण सनि—प्राण तुल्य; विगसु—विकसित हुआ; विसहर—सर्प।

अनुवाद—मेघ गर्जन के साथ वृष्टि पड़ रही है, प्रेम से मन भर गया, मेरे प्रिय परदेश में हैं। पुरुष किस प्रकार की जाति है? इस प्रकार की बादल भरी रातों में जो घर छोड़ कर जाता है वह गवाँर है। सखि, तुम दुर्जन का नाम मत लो (कोई कुप्रस्ताव मत करना) तुम चतुरा, मेरे प्राणों के समान हो, इसीलिए तुमको मनकी बात कहती हूँ। कमल फूल फूट गया। कोई कोई कहते हैं कि भ्रमर और भ्रमरी का विवाद देखकर मदन हँसता था। कुसुमधनु तो मर गया था, वह फिर किस प्रकार बचा? प्रभात का बात क्या कहें? बिजली बार-बार चमक रही है, सर्प घूम रहे हैं, मयूर उन्मुख होकर नाच रहे हैं, कदम्बगन्ध युक्त होकर पवन बह रहा है, यह सब युवती किस प्रकार सहेगी? उसका मन उदास हो जा रहा है।

(८२९)

वरख दोआदस लगलाह जानि।
कतों जलासओं पिउलन्हि पानि॥

जानल हृदय भेल परिताप।
ते नहि गनले परतर पाप॥
साजनि कि कहब कहइते लाज।
अनुदिन भेल चीन्हि सम काज॥

प्रथम समागम दरसन लागि।
वारिस रअनि गमाओलि जागि॥
पवनहु सञो कएलन्हि अवधान।
प्रथम गतागत पथ सब जान॥

रामभद्रपुर पोथी, पद १६०

अनुवाद—जाना कि बारह वर्ष लग गये; कितने जलाशयों का पानी पीया। जाना कि वह अनुगत हो गया है। इसीलिए उसका गुरुतर पाप भी गणना नहीं की। सखि, क्या कहूँ कहने में भी लज्जा होती है। प्रतिदिन (भाग्य के) चिह्न के अनुसार काम हुआ। प्रथम मिलन के समय उसका दर्शन पाने के लिए सारी रजनी जाग कर काटी। हवा के वेग से उसके साथ मिलने गयी थी; यद्यपि प्रथम यातायात, (तथापि) पथ सब जाना हुआ था।

(८३०)

अविरल बिस बस रवि-ससी।
देह दोहकर पवन परसी॥

विसम विसम सर बोधि न देइ।
सिव सिव जिवन केओ नहि लेइ॥
एसखि एसखि मोहि न भास।
सवन चाहि बड़ विरह हुतास॥
आने गओ निअ मने दिढ़ कए जानु।
कतहु सेस नहि कपटे बिनु॥
सहज पेम जदि विरह होइ।
हो तहि विरह जिबए जनु कोइ॥

रामभद्रपुर पोथी, पद ३६२

अनुवाद–रवि और शशि मानों अविरल धारा से विष-वर्षण कर रहे हैं। पवन का स्पर्श मानों देह दाह कर रहा है। क्रूर काम बाण से चेतना हरण कर रहा है। शिव, शिव, जीवन क्यों नहीं जा रहा है? हे सखि, हे सखि, समझती हूँ कि विरह की अग्नि ही सबसे बड़ी है। अब मन में निश्चयपूर्वक जानती हूँ कि जगत में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ कपट नहीं हो। सहज प्रेम हो तो उसमें विरह न हो, और यदि विरह हो तो कोई जीता न बचे।

पँचम खण्ड (ग)

नगेन्द्र बाबू के तालपत्र की पोथी से प्राप्त भणिताहीन पद

(८३१)

लोचन चपल वदन सानन्द।
नील नलिनि दले पूजल चन्द॥
पीन पयोधर रुचि उजरी।
सिरफल फललि कनक मँजरी॥

गुनमति रमनी गजराज गती।
देखलि मोयँ जाइत वर जुवती॥
गरूअ निनम्ब उपर कुच-भार।
भाँगिवाके चाहए थेधिवा के पार॥
तनु रोमावलि देखिए न भेलि।
निज धनु मनमथे थेध न देलि॥

सभ्रम सकल सखी जन वारि।
पेम बुझओलक पलटि निहारि॥
आओर चतुर पन कहहि न जाए।
नयन नयन मिलि रहलि नुकाए।
तरवल सयँ चाँद चँदन न सोहाव।
अबोध नयन पुनु तठमाहि धाव॥

न० गु० तालपत्र ४७

अनुवाद—चपल नयन, सानन्द वदन (मानों) नील नलिनीदल (चक्षु) ने चन्द्र (मुख) की पूजा की। रुचि (देहलावण्य) उज्ज्वल, पयोधर पीन, (मानों) कनकमंजरी में श्रीफल फला। गुणवती, गजेन्द्रगामिनी, युवतीश्रेष्ठ रमणी को जाते देखा। गुरु नितम्ब, ऊपर कुचभार, (कटि) टूट जाना चाहती है, कौन सम्हाले रहेगा? तनु-रोमावली नहीं देखी जाती—मन्मथ ने अपने धनु का अवलम्बन नहीं दिया। सब सखियों का सम्भ्रम निवारण करके (छिपकर) उसने फिरकर देखकर प्रेम प्रगट किया। और चतुरपन कहा नहीं जाता, नयनों में नयन मिलाकर छिपकर रही। उस समय से चाँद चन्दन कुछ भी अच्छा नहीं लगता—अबोध मन फिर भी उसी स्थान पर दौड़ता है।

(८३२)

आनहु तोहरि नामे बजाव।
तोरि कहिनी दिन गमाव॥
सपनहु तोर संगम पाए।
कखने की नहि की विसुवाए॥

कि सखि पुछसि तन्हिक कथा।
ताहि नह भलि तोरि अवथा॥
जाहि जाहि तुअ संग मेरी।
चकित लोचन चउदिस हेरी॥

उठि आलिंगए अपनि छाआ।
एतहु पापिनि तोहि न दाआ॥

न० गु० तालपत्र १०५

अनुवाद--अन्य को तुम्हारे ही नाम से पुकारता है, तुम्हारी ही बात कहते दिन काटता है। स्वप्न में भी मानो तुम्हारा ही संगम लाभ करता है, किसी समय तुमको भूलता नहीं है। सखि, उसकी बात क्या पूछती है? जहाँ-जहाँ तुम्हारे संग मिलन हुआ था (वहाँ-वहाँ) चकित लोचनों से चारों ओर देखता है। उठकर अपनी छाया का आलिंगन करता है, इतने पर भी, पापिन, तुझे दया नहीं होती है?

(८३३)

आज कन्हायी एँ बारे आओब
बुझाए न पारल बेला।
विधिक घटन भेल अकामिक
लोचन लोचन मेला।

नव कलेवर निज पराभव
थम्भ भेल बिनु काजे।
दरसन रस रभस लीला
लोभे गरासलि लाजे।

सुन्दरि रे मन्दिर बाहर भेली॥
विजुअ रेह जलधर नाओ
पुनु जैसे लुकि गेली॥

न० गु० तालपत्र ५८

अनुवाद—आज कन्हायी इसी रास्ते से आवेंगे (किन्तु राधा कृष्ण के अभिसार) का समय समझ नहीं सकी। विविध घटना से अकस्मात् लोचन ही लोचन का मिलन हुआ। राधा का नया कलेवर (अपने अनुराग से) पराभूत होकर बिना कारण स्तम्भित हुआ। दर्शन जनित रहस्यलीला के लोभ ने लज्जा का ग्रास किया। सुन्दरि, तुम घर के बाहर हुई। विद्युतरेखा के समान किस प्रकार फिर जलधर में छिप गयी?

(८३४)

एहि बाटे माधव गेल रे।
मोहि किछु पुछिओ न भेल रे॥
माथुर जाइत जमुना तीर रे॥
आन्तर भेटल अहीर रे॥

नयनहु नयन जुझाए रे।
हृदय न भेल बुझाए रे॥
मोहि छल होयत रति रंग रे।
मधुर मधुर पति संग रे॥

चिकुर न भेल संभारि रे।
बुझलिहु कान्हे गोआरि रे॥

न० गु० तालपत्र ..

अनुवाद—इसी रास्ते से माधव गये, किन्तु मुझसे कुछ पूछा न जा सका। मथुरा जाते दूर ही से यमुनातीर पर गोप के साथ मिलन हुआ। नयनों के साथ नयनों का युद्ध होने पर भी हृदय समझा न गया। मेरे मन में था, मथुरापति के साथ मधुर रतिरंग होगा। चिकुर सम्हाला न गया, कन्हायी ने मुझको आम्या (ग्वालिन) समझा।

(८३५)

जुवति चरित बड़ विपरीत
बुझए के दहु पार।
बुझए चेतन गुन निकेतन
भुलल रह गमार॥

साजनि नागरि नागर रंग।
संग न रहिअ तेसर न बुझ
लोचन लोल तरंग॥

वलित वदन बांक विलोकन
कपट गमन मन्दा।
दुहु मन मिलल ठाम अंकुरल
पेम तरुअर कन्दा॥

न० गु० तालपत्र ७७

अनुवाद—युवती-चरित्र बहुत हो विपरीत है, क्या कोई समझ सकता है? चतुर गुणनिकेतन समझ सकता है, मूर्ख (दिहाती) भूल जाता है (नहीं समझता है)। सजनि, नागरी और नागर का रंग (इस प्रकार का है कि) साथ में तीन व्यक्तियों के रहते भी (वह) नयनों की लोल तरंग समझ नहीं सकता। मुख घुमा कर वंकिम दृष्टि से देखना, कपट से धीरे चलना, (इस रूप से) दोनों का मन मिला, उसी स्थान पर प्रेम तरुवर में मूल अंकुरित हुआ।

(८३६)

प्रथम दरस रस रभस न जानए
कि करति पहु सयँ केली
नवि नलिनी जनि कुंजरे गंजलि
दमने दमन तनु भेली॥
की आरे देखिअ अनूपे।
मधुलोभे मुकुल कुसुम दल कलपए
आरति भुखल मधुपे॥

तालपत्र न० गु० १८४

अनुवाद—प्रथम साक्षात, रस रंग नहीं जानती। प्रभु के साथ क्या केलि करेगी? नव (नूतन) कमल हाथी के द्वारा रंजित हुआ, द्रोण-कुसुम (के समान) अंग दमित हुआ। आह! क्या अनुपम देख रहा हूँ? प्रेम कंगाल (अनुराग के लिए क्षुधित) भ्रमर मधु के लोभ से मुकुल को कुसुमदल समझ कर उससे वैसा ही व्यवहार करने लगा।

अनुवाद—आकाँक्षा थी कि यौवन आने पर जाने कितना रंग करूँगी। शेष पर्यन्त वह सब प्रेम कुछ न हुआ। हृदय फट गया। उस पर भी आकाँक्षा थी, और अब साध करके क्या होगा? ऐसा करके ही अपराधिनी हुई। जो था उसमें भी बाधा पड़ी। माधव, अब यही बड़ा दोष है कि जहाँ जो कुछ भी बोलना या करना चाहती हूँ, उससे गुरुजन रुष्ट होते हैं। इसीलिए रमणी विनय करके कहती है कि पास आना-जाना, पाँच-सात दिन पथ में या घाटे पर आँख से देख जाना अर्थात् गुरुजन क्रुद्ध होते हैं, राह-घाट में देखना-सुनना चलेगा।

(८४०)

सजनि अपद न मोहि परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जहाँ गाँठ पड़ए तहाँ
तेज तम परम विरोध॥

सलिल सनेह सहज थिक सीतल
इ जाने सवे कोई।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइअ
तइओ विरत रस होई॥

गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ
कुलससि नीली रंग।
अनुभवि पुनु अनुभवए अचेतन
पड़ए हुतास पतंग॥

तालपत्र न० गु० ४२८

अनुवाद—सजनी, अनुचित प्रस्तावों से मुझे प्रबोध मत दे। जहाँ तोड़ कर जोड़ा जाता है वहाँ गाँठ पड़ ही जाती है (एकदम मिल नहीं जाता)। आलोक और अन्धकार परम विरोधी हैं (सुतरां उसके साथ मेरा मिलन होना प्रायः असम्भव है)। सलिल और तेल स्वभावतः शीतल होते हैं, यह सब कोई जानता है। यदि उनको तप्त करके यत्नपूर्वक मिलाया जाए तब भी उनमें रस नहीं आ सकता (वे मिल नहीं सकते)। कुलशशि में (कुलरूपी चन्द्रमा में) नील (कृष्ण) वर्ण लगने से (कुल में कलंक लगने से) पूर्व का सहज भाव किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है (एक बार कलंकित होने पर क्या कुल की निर्मलता फिर वापस आ सकती है?) अचेतन (मूर्ख व्यक्ति) अनुभव करके भी फिर अनुभव करता है, पतंग (पुनः पुनः) अग्नि में गिरता है।

(८४१)

आदरि अनलह धएलह बारि।
आँचर न छाड़लह वदन निहारि॥
सुइढ़ेओ केस न बँधलह फोए।
सबे रस सुन्दरि धएलह गोए॥

आवे कि पुछसि राहि भल नहि भेल।
जतने आनल कान्ह तोरे दोसे गेल॥
गुनिगन पथ सह लगलउ हे भोर।
आँचर हीर हराएल मोर॥

सखिजन सोंपइत भेलउ हे राग।
गेल पाइअ जौ हो वड़ भाग॥

तालपत्र न० गु० ४८६

अनुवाद—(भ्रमर) कंटक के दोष से केतकी से क्रोधित होकर रूठ कर तुम्हारे पास आया। अस्थान पर (अथवा असमय में) अधिक क्रोध कर, भ्रमर को उपेक्षावाक्य कह कर तुमने अच्छा नहीं किया। जातकि (राधा को सम्बोधन करके), यह बड़ा अनुचित हुआ। तुमने अपना मधुसार संचय करके रखा, भ्रमर पिपासित ही रह गया। भ्रमर, वह भी मधुसार-अभिज्ञ, अत्यन्त अभिमान का निकेतन, (अभिमान जनित) गुरुत्व छोड़ कर अब नहीं आवेगा। इसमें सन्देह है कि फिर मुलाकात होगी कि नहीं। वह सुचतुर गुण-निकेतन, सब कुसुमों का ही रस लेता है। जो नागरी उसका चतुरपन समझती है वह उसे नहीं छोड़ती।

(८४४)

मानिनि कुसुमे रचलि सेजा मान महघ तेज
जीवन जउवन धने।
आजु कि रयनि जदि विफले जाइति
पुनु कालि भेले के जान जिवने॥

मानिनि मन्द पवन वह न दीप थिर रह
नखतर मलिन गगन भरे।
तोर वदन देखि भान उपजु मोहि
केसु फुल उतर भमरे॥

तालपत्र न० गु० ३६५

अनुवाद—हे मानिनि, कुसुम की शय्या-रचना करके मैंने रखी है। महार्घ मान का त्याग करो, जीवन में यौवन ही धन है। आज की रात अगर विफल जाय, कल जीवन में क्या होगा, कौन जानता है? मानिनि, धीरे वायु बहती है, दीप स्थिर नहीं रहता, आकाश में भरे हुए नक्षत्र मलिन हुए। तुम्हारा मुख देख कर मुझे अनुमान होता है कि किंशुक फूल के ऊपर भ्रमर (बैठा है)।

(८४५)

चउदिस जलदें जामिनि भरि गेलि
धारें धरनि वेआपिति भेलि॥
गगन गरजें जागल पंचवान।
एहना सुमुखि उचित नहि मान॥

नागरि पिसुन वचने करु रोस।
पय परलहु नहि कर परितोस॥
विहि समुचित धरु वामा नाम।
हने अनुमापि हलल फल ठाम॥

नागरि वचन अमिअ परतीति।
हृदय गढ़ल हे पथानहु जीति॥

तालपत्र न० गु० ३१८

अनुवाद—चारों दिशाओं में बादल से रात भर गयी, धाराओं से धरणी व्याप्त हो गयी। गगन के गर्जन से पंचबाण जाग गया, सुमुखि ऐसे समय में मान उचित नहीं है। नागरि, खल की बातों से तुमने रोष किया है, पाँव पड़ने से भी परितोष नहीं करती हो। विधाता ने तुम्हारा नाम ठीक वामा रखा है, मैं अनुमान करता हूँ कि इसी स्थान पर फल प्राप्त किया है, अर्थात् तुम मेरे प्रति वाम हो गयी हो। नागरी की बात अमृत के समान मालूम होती है, परन्तु हृदय पाषाण से भी अधिक कड़ा गढ़ा गया है।

(८४८)

जइअओ जलद रुचि धएल कलानिधि
तइअओ कुमुद मुद देइ।
सुपुरुस वचन कबहु नहि विचलए
जओं विहि वामेओ होइ ॥

मालति कर्के तोञे होसि मलानी।
आन कुसुम मधु पान विरत कए
भवर देव मोञे आनि ॥

दिन दुइ चारि आने अनुरंजन
सुमरत सउरभ तोरा।
आनक वचन अनाइति पड़ला हे
से नहि सहजक भोरा ॥

तालपत्र न० गु० ५०२

अनुवाद—यद्यपि चन्द्रमा जलद की रुचि धारण करता है (मेघावृत हो जाता है) तथापि कुमुद को आनन्द देता है (चन्द्रमा के मेघाच्छन्न होने पर भी कुमुदिनी विकसित होती है); यदि विधि वाम भी हो जाए (तथापि) सुपुरुष का वचन कभी विचलित नहीं होता। मालति, तुम म्लान क्यों हो रही हो? अन्य कुसुमों का मधुपान (करते हुए) विरत करके मैं भ्रमर को (माधव को) ला दूँगी। अन्य नारियाँ दो-चार दिन उसकी प्रीति सम्पादन करेंगी (उसके बाद) वह तुम्हारा सौरभ स्मरण करेगा। दूसरों की बात से वह अनायत्त हो गया है (दूसरे के वश में हो गया है)। वह सहज में भूलता नहीं।

(८४९)

मलयानिले साहर डार डोल।
कल कोकिल रवे मअन बोल।
हेमन्त हरन्ता दुहुक मान।
भमि भमर करए मकरन्द पान ॥

रंगु लागए रितु बसन्त।
सानन्दित तरुनी अवरु कन्त ॥
सारंगिनि कउतुके काम केलि।
माधव नागरि जन मेलि मेलि ॥

तालपत्र न० गु० ६०२

अनुवाद—मलयानिल से सहकार की शाखा डोल रही है, कोकिल कलरव में मदन की भाषा बोल रही है। हेमन्त ने दोनों का (कोकिल और वसन्त का) गौरव हरण कर लिया था, भ्रमर घूम घूम कर मधुपान कर रहा है। वसन्त ऋतु में रंग लग गया है, तरुणी और कान्त आनन्दित हैं। सारंगिनी (मृगी) कौतुक से कामकेलि कर रही है। माधव नागरियों के साथ मिल रहे हैं।

(८५२)

आज मोयँ जानल हरि बड़ मन्द।
बोल वदन तोर पुनिमक चन्द॥
एके दिन पुरित दिनहु दिने खीन।
ता सयँ तुलना हरि हमे दीन॥
बइसलि अधोमुखि चितें गुन दन्द।
एके विरहिनि हे दोसरे दह चन्द॥
नयन नीर ढर पानि कपोल।
खने खने मुरुछि भरम कत बोल॥
सखि चेताउलि अवधिक आस।
रिपु रितुराज तज घन साँस॥

तालपत्र न० गु० ७३५

अनुवाद—आज मैंने जाना, हरि बहुत बुरे हैं, बोले, तुम्हारा मुख पूर्णिमा के चन्द्र (के समान) है। (विरह की विह्वलावस्था में राधा कहती हैं, मानों माधव से इतनी ही बातें हुई थी)। केवल एक दिन पूर्ण रह कर दिनों दिन क्षीण होता जाता है, उसी के साथ हरि ने मेरी तुलना की? चित्त में संशय जानकर (राधा) अधोमुख बैठी; एक तो विरहिनी, दूसरे (उस पर) चन्द्रमा दहन करता है। नयन से अश्रु वह रहे हैं, कपोल कर-लग्न, क्षण-क्षण पर मूर्च्छित होकर भ्रान्त बातें कहती है। सखी ने अवधि की आशा देकर चेतना उत्पन्न की (किन्तु) वसन्त शत्रु (को याद कर उसने) घन निःश्वास त्याग की।

(८५३)

कत नलिनी दल सेज सोआउबि
कत देब मलअज पंका।
जलज दल न कत देह देआओब
तथुहु हुतासन संका॥
कह कइसे राखबि तरुनी तरुन
मदन परतापे॥

चिन्ताए करतल लीन वदन
तसु देखि उजजु मोहि भाने।
दर लोभें विहि अपुरुब जनि सिरिजल
चान्द कमल सन्धाने॥
दारुन पचसर मुरछि पल
सुमरि सुमरि तुअ नेहे।
तोहें पुरुसोतम त्रिभुवन सुन्दर
अपद न अपजस लेहे॥

तालपत्र न० गु० ७८१

अनुवाद—पद्मपत्र पर कितनी बार शयन कराऊँगी, (अंग में) कितना चन्दन दूँगी, कितना पद्मपत्र शरीर पर दूँगी, इनसे हुताशन की शंका होती है (अग्नि-तुल्य मालूम होते हैं)। नूतन मदन के प्रताप से तरुणी किस प्रकार अपनी रक्षा करेगी? चिन्ता से करतल लग्न वदन, उसे देख कर मुझे मालूम होता है, ईषत् (दर) के लोभ से विधाता ने चन्द्रमा और कमल का अपूर्व मिलन करवाया है। दारुण मदन के (पीड़न से) तुम्हारा स्नेह स्मरण कर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर जाती है। तुम पुरुषोत्तम हो, त्रिभुवन में सुन्दर, अब और अकारण अपयश मत लो।

शब्दार्थ—छोड़ाओल—खोला; साँठल—तैयार किया; पकमाने—पकान्न।

अनुवाद—जिस घर में राधा थी, उसी घर के कपाट माधव ने खोल दिए। उन्होंने चोरी से घूँघट हटा कर अधर और मुख देखा मानों आधे चन्द्रमा का उदय हुआ हो (राधा कहती हैं)—मैंने छिपा कर कपूर डाल कर पान सजा कर रखा था, पक्वान्न तैयार किए थे, सारी रात बैठ कर काटी थी, मेरा मान खंडित हुआ।

(माधव उत्तर देते हैं)—मैं मथुरा नगर में फँसा रह गया। तुमने दूती क्यों न पठायी? (राधा कहती हैं)—मैं यहाँ अकेली मणि हूँ, परन्तु वहाँ दस मणियाँ हैं, प्रभु वहाँ ही सोये रह गये। कमलनयन कमलापति वहाँ (अन्य नारियों द्वारा) कुम्भकर्ण के समान दाप से सुस्वित हुए। हरि के चरणों का ध्यान कर विद्यापति राधाकृष्ण का विलाप-गान करते हैं।

(८५६)

मधुपुर मोहन गेल रे
मोरा विहरत छाती।
गोपी सकल विसरलनि रे
जत छल अहिवाती॥

सुतलि छलहुँ अपनगृह रे
निन्दइ गेलओ सपनाइ।
करसो छुटल परसमनि रे
कोन गेल अपनाइ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे
हम भरिए गरानि।
आनक धन सोँ धरवन्ती रे
कुबजा भेल रानि॥

गोकुल चान चकोरल रे
चोरि गेल चन्दा।
विछुहि चललि दुहु जोड़ी रे
जीव देइ गेल धन्दा॥
काक भाख निज भाखह रे
पहु आओत मोरा।
खीर खाँइ भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा॥

भनहि विद्यापति गाओल रे
धैरज धर नारी।
गोकुल होयल सोहाओन रे
फेरि मिलत मुरारि॥

मिथिला; न० गु० ६६२

शब्दार्थ—विहरत—बाहर होता है; अहिवाती—प्रिया; गरानि—घृणा; चकोरल—चकोर हुआ।

अनुवाद—मोहन मधुपुर गये, मेरी छाती फट रही है। जो सारी गोपियाँ प्रिया थीं वे सब उन्हें विस्मृत हो गयीं। अपने घर में सोयी हुई थी, निद्रित अवस्था में स्वप्न देख रही थी। निद्रित अवस्था में मुट्ठी शिथिल होने से) हाथ से परशमणि गिर पड़ी, किसने (चुरा कर) उसे अपना लिया? कितना कहूँ, कितना याद करूँ, मैं

ग्लानि से पूर्ण हो रही हूँ, दूसरे के धन से धनवती (होकर) कुब्जा रानी हो गयी। गोकुलचन्द्र चकोर हो गये, चन्द्रमा चोरी हो गया (कृष्णचन्द्र के चकोर होने से, चाँद अब चाँद नहीं रहा, क्योंकि चाँद चोरी चला गया), दोनों (राधा और माधव) का जोड़ा विच्छिन्न हो चला (गया)। जीवन में सन्देह पड़ गया। काक, तू अपनी भाषा बोल, यदि हमारे प्रभु आवेंगे तो मैं सोना के कटोरे में भर कर चीर और गुड़ भोजन (करने के लिए) दूँगी। विद्यापति कहते हैं, (मैं यह) गाता हूँ, नारि, धैर्य धर, गोकुल शोभन होगा, मुरारि फिर लौट कर आवेंगे।

(८५७)

बिनु दोसे पिय परिहरि गेल।
जौवन जनम विफल भेल॥
जगत जनमि सखि हम सनि।
नहि धनि दोसरी करम हीनि॥
हरि संग कयल रभस जत।
विसलेखे विस सन भेल तत॥
निरवधि विरह पयोनिधि।
कतहु मरन नहि देल विधि॥
विरह दहन हो तन अति।
मनोरथ मनहि रहल कति॥
विद्यापति कह गुनमति।
अचिरहि मिलत मधुरपति॥

मिथिला: न॰ गु॰ ६७२

शब्दार्थ—विसलेखे—विश्लेष में, विच्छेद में।

अनुवाद—सखि, बिना दोष के प्रिय (मेरा) परित्याग कर चले गये। (मेरे) यौवन जन्म विफल हुए। सखि, मेरे समान भाग्यहीना दूसरी नारी ने कभी जन्म ही नहीं लिया। हरि के संग जितना आनन्द किया था, वियोग में वह सब विषतुल्य हो गया। निरवधि विरह पयोनिधि में मग्न होकर (रहती हूँ), विधाता ने क्यों (मुझे मौत) नहीं दी? विरह में शरीर अत्यन्त दग्ध हो रहा है, कितने मनोरथ मन ही में रह गये। विद्यापति कहते हैं, गुणवति, शीघ्र ही मथुरापति मिलेंगे।

(८५८)

नयन नोर घर पीछर
सबहु सखी दिठि नोरे।
पिछरि पिछरि खस तैओ सुमुखि धस
मिलन आस मन तोरे॥
कि होइति हुनि के जाने।
हमर वचन मन धरिअ सुजन जन
करिअ भवन परथाने॥
एत दिन जे धनि तोहर नाम सुनि
पुलके निवेद पराने।
खने खने सुवदनि तथिहु सिथिल जनि
नोर भासअ अनुमाने॥
मने मन बुझिकहु तोरे चलिअ पहु
जावे न कर पिक गाने।
विद्यापति भन हरि बड़ चेतन
समय करत समधाने॥

मिथिला; न॰ गु॰ ७५१

अनुवाद—आँखों के जल से घर और बाहर पिछल हो गया, सब सखियों की आखों में अश्रु है। फिसल फिसल कर गिर पड़ती है, तब भी सुमुखी तुम्हारे मिलन की आशा करके वेग से दौड़ती है। उसका क्या होगा, कौन जानता है! (हे) सुजन पुरुष, मेरा वचन मन में रखो, घर पर प्रस्थान करो (घर लौट जावो)। जो धनि इतने दिनों तक तुम्हारा नाम सुनकर आनन्द पूर्वक प्राण निवेदन करती थी, सुवदनी क्षण-क्षण उसपर भी मानों (उसका स्मरण करके भी अवश होकर) गिर पड़ती है। अनुमान होता है कि वह आँखों के जल से ही बोल रही है। मन ही मन समझ कर कह रही हूँ कि जब तक पिक गान न करे (हे) प्रभु, तब तक चलो (वसन्तागमन के पहले चलो—क्योंकि जैसा उसे देख कर आयी हूँ, वह अधिक दिन बचेगी कि नहीं, इसमें सन्देह है)। विद्यापति कहते हैं, हरि बड़े चतुर हैं, समय (उपयुक्त समय) पर समाधान (विरह दूर) करेंगे।

(८५९)

रयनि समागलि रहलिछ थोर।
रमनि रमन रतिरस नहि ओर॥
नागर निरखि सुमुखि मुखिचुम्ब।
जानि सरसिज मधु पिव विधुविम्ब॥
दृढ़ परिरम्भने पुलकित देह।
जनि अँकुरल पुन दुहुक सनेह॥
धनि रसभगनी रसिक रसधाम।
जनि विलसइ अभिनव रतिकाम॥
कि कहब अपरुब दुहुक समाज।
दुओ दुहुक कर अभिमत काज॥
विद्यापति कह रस नहि अन्त।
गुनमति जुवती कलामय कन्त॥

मिथिला : न० गु० ५६२

अनुवाद—रात्रि शेष हुई, अल्प (अवशिष्ट) रह गयी; रमणी-रमण के रतिरभस की सीमा न रही। नागर ने सुमुखी का निरीक्षण कर मुख-चुम्बन किया, मानों चन्द्र-बिम्ब ने कमल का मधुपान किया। दृढ़ आलिंगन से देह रोमांचित (हुई), मानों दोनों का प्रेम फिर से अंकुरित हुआ (मानों फिर नूतन प्रेमोद्गम हुआ)। सुन्दरी रसमग्न, रसिक रस का आलय, दोनों का विलास मानों रतिकाम की केलि के समान। दोनों के मिलन की अपूर्व बात क्या कहूँ दोनो ने दोनों का अभिमत कार्य किया। विद्यापति कहते हैं रस का अन्त नहीं है (क्योंकि) युवती गुणवती (और) कान्त कलामय हैं।

(८६०)

धिक त्रिय कर जे प्रिय पर कोप।
कुल कामिनि जन प्रेमक लोप॥
भल जन मइ हो अपजस ख्यात।
प्रियतम मनसौं होयब कात॥
एकसरि तारा केओ न देख।
चढ़लि अकास अमंगल लेख॥
अपने सुख हरि करि जनु मान।
कविवर विद्यापति एह भान॥

मिथिला : न० गु० ५३६

(८६४)

माइ हे बालभु अवहु न आव।
जाहि देस सखि न मनोभव भाव॥
तरुण साल तमाल कानन
कूंज कंडल पुष्पिते।
पद्म पाटलि परम परिमल
वकुल संकुल विकसिते॥

अरुन किसलय राग मुद्रित
मंजरी भर लम्बिते।
मधुलुब्ध मधुकरनिकर मुद्रित
लोभ चुम्बन चुम्बिते॥
चुम्बति मधुकर कुसुम पराग।
कोरक परसे बाढ़ल अनुराग॥
चौदिस करए भृङ्ग झंकार।
से सुनि बाढ़ए मदन विकार॥
चीर चन्दन चन्द्रतारक
पावको सम मानसे।
हार कालभुजंगमेव हि विस सरिस
घम रस चय विसे॥

मानिनी मन मानहारक
कोकिला रव कलकले।
वहए मारुत मलय संयुत
सरल सौरभ सीतले॥
सीतल दखिन पवन वह मन्दा।
ता तनु तावए चान्दन चन्दा॥
हृदय हार भेल भुजग समान।
कोकिल कलरवे पिड़ल परान॥
सदर निर्मल पूर्णचन्द्र सुवक्त्र
सुन्दर लोचनी।
कथं सीदति सुन्दरी
प्रिय विरह दुःख विमोचनी॥

ताहि तर तरुन पयोधर धनी।
ओजा संकर कृष्ण जनी॥
अवसर पाउति एति खने।
विद्यापति कवि सुदृढ़ भने॥

न० गु० (नाना) ६

(८६५)

सुतलि छलहुँ हम घरवा रे
गरवा मोति हार।
राति जखनि भिनुसरवा रे
पिया आएल हमार॥
कर कौसल कर कपइत रे
हरवा उर टार।
कर पंकज उर थपइत रे
मुख-चन्द, निहार॥

केहनि अभागलि बैरिनि रे
भागलि मोर निन्द।
फल कए नहि देख पाओल रे
गुनमय गोविन्द॥
विद्यापति कवि गाओल रे
धनि मन धरु धीर।
समय पाए तरुवर फर रे
कतवी सिचु नीर॥

न० गु० ७६६ (मिथिला)।

अनुवाद--मैं घर में सोयी थी, गले में मुक्ता की माला पड़ी थी। रात्रि जब प्रभात के समय पहुँची, उसी समय मेरे प्रियतम आए। कौशल पूर्वक कम्पित हाथों से हार हटाया, कर पंकज वक्ष पर स्थापन कर मेरा मुखचन्द्र देखने लगे। किस शत्रु ने मेरा अभाग्य ला खड़ा किया, मेरी नींद भाग गयी। गुणमय गोविन्द को भली प्रकार देख भी न सकी (स्वप्न में भी देख न सकी)। विद्यापति कवि गाते हैं, धनि, मन में धैर्य धरो, कितना भी जल सिंचन क्यों न करो, समय आने पर ही तरुवर में फल लगते हैं।

(८६६)

सपन देखल पिय मुख अरविन्द।
तेहि खन हे सखि टुटलि निन्द॥
आज सगुन फल सम्भव साँच।
वेरि वेरि वाम नयन मोर नाच॥

आंगन वैसि सगुन कह काक।
विरह विभंजन दिन परिपाक॥
आज देखव पिय अलखक चान।
विद्यापति कविवर एह भान॥

मिथिला: न० गु० ८००

अनुवाद—सखि, स्वप्न में प्रिय-मुखारविन्द देखा, उसी समय नींद टूट गयी। आज सगुन (शुभ) फल होने की सम्भावना है (क्योंकि) बार-बार मेरा बायाँ नेत्र फड़क रहा है। आंगन में बैठ कर काग सगुन (शुभ) कह रहा है। दिन के परिपाक (दुर्दिन के अन्त) के बाद विरह भग्न (शेष) होगा। अलक्षित चन्द्र (तुल्य) प्रिय को आज देखूँगी। कविवर विद्यापति यही कह रहे हैं।

(८६७)

जे दुखदायक से सुख देथु।
अवला जन सौं आसिस लेथु॥

पिय मोर आएल आन परोस।
विरह व्यथा जनि गेल लख कोस॥
नहि छथि उगथु सहस दिजराज।
कुदिवस हितकर अनहित काज॥

त्रिविध समीर वहथु दिनराति।
पंचम गावथु कोकिल जाति॥
से गृह गृह नित उतसव आज।
विद्यापति भन मन निर्व्याज॥

मिथिला ; न० गु० ८०१

अनुवाद—जो दुखदायक है वही सुख देगा। अवला लोगों का (लोगों से) आशीर्वाद ग्रहण करो। मेरे प्रिय दूसरे के पास (पड़ोस में) आए (मैंने सम्वाद पाया) ; विरह व्यथा मानों लाखों कोस दूर चली गयी। (आज) सहस्र चन्द्रमा के उदय होने से भी क्षति नहीं है। समय खराब होने से जो हितकर होता है वह भी अपकार करता है (चन्द्रमा शीतल है किन्तु विरह में सन्ताप देता है)। अब त्रिविध समीर (मन्द, शीतल और सुगन्ध) भले ही बहे। कोकिल पंचम तान से गान करे। घर घर आज सभी समय उत्सव है। विद्यापति कहते हैं, मन निर्व्याज (हुआ)।

(८६८)

दुसह वियोग दिवस गेल बीति।
प्रियतम दरसन अनुपम प्रीति॥
आव लगइछति विधि अनुकूल।
नयन कपूर आँजन समतूल॥

गावथु पंचम कोकिल आवि।
गुंजथु मधुकर लतिका पावि॥
बहुथु निरन्तर त्रिविध समीर।
भन विद्यापति कविवर धीर॥

मिथिला; न० गु० ८०८

अनुवाद—दुःसह विरह दिवस बीत गया, प्रियतम के दर्शन में अनुपम प्रीति। इस समय नयनों में कपूँराञ्जन के समान चन्द्र अनुकूल लग रहा है (मालूम हो रहा है)। कोकिल आकर पंचम में गान करे, मधुकर लतिका पाकर गुंजन करे। त्रिविध समीरन निरन्तर बहे। कविवर विद्यापति धीरे कहते हैं।

(८६९)

अपनेहि अइलिहु कएल अकाज।
मान गमाओल अरजल लाज॥

आदर हरल बहल मुख सोभ।
रांक न फाबए मानिक लोभ॥
ए सखि ए सखि कि कहिबओं तोहि।
दिवसक दोसे दुअस भेल मोहि॥

हरि न हेरल मुख सएन समीप।
रोसे बसाओल चरनहि दीप॥
बइसि गमाओल जामिनि जाम।
कि करब भावि विधाता बाम॥

न० गु० ४८६

अनुवाद—स्वयं आयी, अकाज किया; मान गवाँया, लज्जा कमायी। आदर (सम्भ्रम) नष्ट हुआ। मुख की शोभा गयी, माणिक के लिए दरिद्र का लोभ शोभा नहीं देता। हे सखि, तुम्हें क्या कहें, काल के दोष से मुझे दुर्यश मिला। हरि ने शय्या के निकट (मेरा) मुख नहीं देखा, रोष से चरणों के द्वारा दीप बुझा दिया। यामिनी का याम बैठ कर काट दी। जब विधाता वाम हैं तो समझ कर क्या करूँगी?

(८७०)

माधव एखन दुरि करु सेजे।
किछु दिन धैरज धरु यदुनन्दन
हमहि उमगि रस देवे॥

काँच कमल फुल कली जनु तोड़िय
अधिक उठत उद्वेगे।
एहन वयस रितु कवेक नहि थिक ई
मानिय मोर उपदेशे॥

राहु गरासल जलधर जैसे
तेहन ने करिय गेआने।
किछु दिन और बितए दिअ माधव
तखन होयत रस दाने॥

भनहि विद्यापति सुनिए मधुरपति
धैरज धरिय सुरेसे।
समय जानि तोहि होयत समागम
आब हठ छोडु नरेशे॥

मि० गी० सं० २रा, खंड ३

अनुवाद—माधव, अभी शय्या दूर करो। हे यदुनन्दन, कुछ दिन धैर्य धारण करो, मैं स्वयं आकर रस दूँगी। कच्चा कमल फूल-कलिका मत तोड़ना (उससे) अधिक उद्वेग होगा। इस प्रकार के वयस में (प्रणय की) रीति करनी ठीक नहीं होती। मेरा उपदेश ग्रहण करो। जलधर (शशधर ?) को जिस प्रकार राहु ग्रस जाता है, उसी प्रकार का ज्ञान मत करना। हे माधव, और कुछ दिन जाने दो, तब रसदान (सम्भव) होगा। विद्यापति कहते हैं, मधुरपति (वृन्दाबनेश्वर), सुनो, (सुरेश ?) धैर्य धारण करो। समय होने पर तुम्हारे साथ संगम होगा, हे राजन्, अभी हठ-कारिता का परित्याग करो।

(८७१)

कहु सखि कहु सखि रातुक रंग।
कतेक दिवस पर पहुक प्रसंग॥
कि कहब आहे सखि रातुक रंग।
पीठिदय सुतलहुँ मुरखक संग॥

बरेरे जतन घर बैसलहुँ जाय।
सुति रहल पहु दीप मिझाय॥
आँचर ओछाए हमहुँ संग देल।
जेहोरे जागल छल सेहो अंग गेल॥

भनहिँ विद्यापति सुनु ब्रजनारी।
धैरज धैरहु मिलत मुरारि॥

मि० गी० सं २रा, खंड ३, पृ० १६

अनुवाद—हे सखि, रात्रि का रंग (विलास की कथा) कहो। कितने दिनों के बाद प्रभु के संग प्रसंग हुआ। रात्रि का कौतुक क्या कहूँ ? मूर्ख के संग पीठ फिरा कर शयन किया। बहुत यत्न से घर में जाकर बैठी। प्रभु दीप बुझा कर शयन करने गये। आँचल बिछा कर मैंने भी संग दिया। जो अंग जागा था, वह अंग भी गया (सो गया)। विद्यापति कहते हैं, हे ब्रजनारी, सुन, धैर्य धर, मुरारि मिलेंगे।

(८७२)

कतेक जतन भरमाओल सजनीगे
दै दै सपथ हजार।
सपतहुँ छल जौँ जनितहुँ सजनीगे
नहि करतहुँ अँकार॥
अब जगत भरि भाविन सजनीगे
कोय जनु करै प्रतीति।
मुख सो अधिक बुझावथि सजनीगे
पुरुसक कपटी प्रीति॥

बाजथि बहुत भाँतिसौं सजनीगे,
वचन राखथि नहिँ थोर।
तनुक हिया मोर दगधल सजनीगे,
जस नलिनीदल नोर।
गुन अवगुन सभ बुझलन्हि सजनीगे
बुझलैन्हि पुरुसक रीति।
भनहिँ विद्यापति, गाओल सजनीगे,
पुरुस कपटी प्रीति॥

मि० गी० सं १ला खंड ६-७

अनुवाद—हे सजनि, कितना यत्न करके, हजारों शपथ देकर, मुझको भुला दिया। यदि मैं शपथ का भी छल जानती तो अंगीकार नहीं करती। हे सजनि, अब जगत भर में कोई भी भाविनी प्रतीति न करे। पुरुष की कपट प्रीति मुख की बात से ही अधिक समझ में आती है। हे सजनि, अनेक प्रकार की बातें करता है, वचन स्थिर नहीं रखता। मेरा कोमल हृदय दग्ध हुआ, जैसे नलिनीदल पर जल स्थिर नहीं रहता। (सर्वदा ही हृदय अस्थिर रहता है)। हे सजनि! गुण अवगुण सब समझा, पुरुष की प्रीति भी समझी। विद्यापति कहते हैं, हे सखि, पुरुष का कपट प्रेम गाया।

(८७३)

हम अबला निरजनि रे।
शशिकँ सेवल गुण जानि रे॥
हमसोँ अनेक कुरीति रे।
सुपुरुष ने तेजे पिरीति रे॥

डेङ्गि डुबल मझधार रे।
लै जहाज करु पार रे॥
भनहिँ विद्यापति भान रे।
सुपुरुष बसथि सुठाम रे॥

मि० गी० सं० १ला खंड पृ० ३८

अनुवाद—मैं अबला एकाकिनी। गुण जान कर शशि की सेवा की। मेरे साथ अनेक कुव्यवहार हो रहे हैं। (किन्तु) सुपुरुष प्रीति का परित्याग नहीं करते। नाँव (डोंगी) नदी के मझधार में डूब गयी। (अब) जहाज लेकर (मुझे) पार करो। विद्यापति यह बात कहते हैं, सुपुरुष सुस्थान में ही वास करते हैं।

(८७४)

आएल उनमद समय वसन्त।
दारुन मदन निदारुन कन्त॥

ऋतुराज आज विराज हे सखि
नागरी जन वन्दिते।
नव रंग नव दल देखि उपवन
सहज सोभित कुसुमिते॥
आरे, कुसुमित कानन कोकिल नाद।
मुनिहुक मानस उपजु विसाद॥
अति मत्त मधुकर मधुर रव कर
मालति मधु-संचिते।
समय कन्त उदन्त नहि किछु
हमहि विधि-वस-वंचिते॥
वंचित नागर सेह संसार।
एहि ऋतुपति सोँ न करए विहार॥

अति हार भार मनोज मारए
चन्द रवि सनि मानए।
पुरुष पाप सन्ताप जत हो
मन मनोमथ जानए॥
जारए मनसिज मार सर साधि।
चनेन देह चौगुन हो धाधि॥
सब धाधि आधि बेयाधि जाइति
करिए धैरज कामिनि।
सुपहु मन्दिर तुरित आओल
सुफल जाइति जामिनि॥
जामिनि सुफल जाइति अवसान।
धैरज धरु विद्यापति भान॥

बेनीपुरी २१४

अनुवाद- उन्मादनाकारी वसन्त समय आया, मदन दारुण ; कान्त भी निष्करुण। हे सखि, नागरिजन वन्दित ऋतुराज आज उपस्थित। नूतन रंग और नवदल देख कर उपवन आज स्वभावतः सुन्दर और कुसुमित। प्रस्फुटित कानन में कोकिलरव सुन कर मुनियों के मन में भी विषाद उपस्थित होता है। मालती का मधु संचय करने के लिए अति मत्त मधुकर मधु रख रहा है। ऐसे समय में कान्त नहीं आए, विधिवश मैं भी वंचित हुई। इस जगत में वही नागर वंचित होता है जो वसन्तकाल में विहार नहीं करता। आज मनोज के प्रहार से हार भी भार मालूम होता है, चन्द्रमा भी सूर्य के समान मालूम होता है। पूर्व पाप के फल से जितना सन्ताप हो रहा है, उसे मन्मथ ही मन-मन जानता है। शर-सन्धान कर मदन जर्ज्जरित कर रहा है। चन्दन लेपन करने से व्याधि चतुर्गुण होती है। हे कामिनी, तुम्हारी समस्त दुख-कष्ट-व्याधि दूर होगी, धैर्य धर। तुम्हारे प्रभु शीघ्र ही मन्दिर में आये—रात्रि आनन्द से काटेंगे। विद्यापति कहते है, धैर्य धर, अच्छी तरह हो रात कटेगी।

(८७५)

उठु उठु सुन्दरि जाइछि विदेस।
सपनहु रूप नहि मिलत उदेस॥
से सुनि सुन्दरि उठलि चेहाय।
पहुक वचन सुनि वैसलि झमाय॥

उठइत उठलि वैसलि मनमारि।
विरहक मातलि खसलि हियहारि॥
एक हाथ उबटन एक हाथ तेल।
पियके तमनाओ सुन्दरि चलिभेलि॥

भनहि विद्यापति सुनु ब्रजनारि।
धैरज धय रहु मिलत मुरारि॥

मि० गी० सं० १ला खंड, पृ० २७

अनुवाद—सुन्दरि, उठो, उठो, मैं विदेश जा रहा हूँ। स्वप्न में भी मेरे रूप का (अर्थात् मेरा) उद्देश नहीं मिलेगा। यह बात सुन कर सुन्दरी चमक उठी। प्रभु का वचन सुन कर म्लान होकर बैठी। किसी प्रकार से उठ कर विपन्न होकर बैठ गयी। विरह जनित उन्मत्तता से छाती का हार गिर पड़ा। एक हाथ में अंगराग, एक हाथ तेल लेकर प्रियतम को मनाने (प्रसन्न करने) के लिए सुन्दरी चली। विद्यापति कहते हैं, ब्रजनारी सुन, धैर्य धर, मुरारि मिलेंगे।

(८७६)

दछिन पवन वहु लहु लहु,
पहुसों मिलन होएत कवहु।
आम मजरि महु तूअल,
तैओ न पहु मोर घुरल॥

दीप जरिय वाती जरल
तौओ न पीय मोर आएल।
भनहि विद्यापति गाओल,
योगनिक अन्त नहि पाओल॥

मि० गी० सं० १ला खं० पृ: २५

अनुवाद—दक्षिण पवन मृदु मृदु वह रहा है। (यदि) कभी भी प्रभु के साथ मिलन होता! आम्र-मंजरी का मधु शेष हुआ (वसन्त चल गया) तथापि प्रभु फिर कर नहीं आए। दीप जल गया, वत्ती जल गयी (शेष हो गयी) तथापि प्रियतम नहीं आये। विद्यापति कहते हैं और गाते हैं, योगिनी का अन्त नहीं पाया गया।

(८७७)

माधव, मन जनु राखिए रोसे।
अवसर तेजि कतय चल गेलहुँ
ताहि हमर कोन दोसे॥

तीनि सै साठि आध मिन्हा दै
से कय गेलहुँ ठेकाने।
ता दीगुन तकरो पुनि सटगुन
अयलहुँ तकरो निदाने॥
विरह उदाप दाप तन झाँझर
करय चाहजिव अन्ते।
अब हम करब की लय तुँअ आदर
प्रेम पदारथ तुँअ कन्ते॥
कुचजुग कमल उतंग भारउर से
कुम्हिलाएल फूटी।
गर गर चुवय अमिय भिजु आँचर
अब रहल भय सीठी॥

ई सुनिय वचन सुनिय मधुरापति
विहुँसि हँसलि सुख फेरी।
धन जन जौवन थीर नहि कौखन
ककरानै एक वेरी॥
अजय वैन कमल सुनु भामिनि
बुझल तुअ सदभावे।
सूखल सारि जौं नीर पटाविय,
अवसर काल काज किछु आवे॥
भनहिं विद्यापति सुनु वर जुवति
ई थिक नवरस रीती।
अपन पुरुस के प्रेम जमाविअ
विसरि जाहु सब नीती॥

मि० गी० सं० २रा खंड, पृ० ५

अनुवाद—हे माधव, मन में रोष मत रखना। समय (अवसर) की उपेक्षा कर कहाँ चले गये, इसमें मेरा क्या दोष है? ३६०, उसका आधा छोड़ कर, १८० दिन—छः महीने; वही ठिकाना देकर गये थे (छः मास के बाद आऊँगा ऐसा कह कर गये थे)। उसका दुगुना—३६० दिन—एक वर्ष, उसका ६ गुना—६ वर्ष, उसके बाद आए (अर्थात् ६ महीने के बाद आने का वादा करके गये थे, ६ वर्षों के बाद गये)। विरह के उत्ताप से तापित तनु झाँझर हो गया, जीवन का अन्त करना चाहती हूँ। अभी प्रेम की सामग्री तुम आए हो, तुमको क्या देकर आदर करें? कमल के समान उच्च कुचयुग वक्ष पर भार हो गया था, किन्तु वह फूट कर (क्रम से) म्लान हुआ। अञ्चल में मानों अमृत से सिंचित कुच स्वगर्व्व से थे, अब वे मानों भय से संकुचित हो गये हैं। मथुरापति यह वचन सुन कर मुख फिरा कर हँसे। धन-जन-यौवन कभी भी स्थिर नहीं है। किसी का भी समय एक समान नहीं रहता। हे भामिनि, सुन, (तुम्हारा) अपराजेय वदन (अभी भी) कमल के समान है। तुम्हारा सद्भाव समझा। शुष्क-शालि धान्य को यदि पानी से सिंचन किया जाय, तो वह अवसर के समय कुछ काम में आ सकता है। विद्यापति कहते हैं, वरयुवति, सुन, यह नूतन रस की रीति है। स्वयं ही पुरुष को प्रेम पान करावो, समस्त नीति भूल जावो।

(८७८)

हमराकैँ जँ ओ तेजब गुन बूझब।
जोगहिँ देव बनिसार अधिन कय राखब ॥

एको पलक जोँ तेजब गुन बूझब।
एहेन जोग मोर तेज सेज नहि छोड़ब ॥
आरसि काजर पारब निसि डारब।
ताहि लय आँजब आँखि जोग परचारब ॥
नयनहिँ नयन रिझाएब प्रेम लाएब,
करब मोर गरहार हृदय बिच राखब।
भनहि विद्यापति गाओल जोग लाओल।
दुलहा दुलहिनि समधान अधिन कय राखब ॥

मि० गी० सं० २रा खंड, पृ: ६

अनुवाद—मेरा यदि त्याग करोगे (तब) मेरा गुण समझोगे। योग के द्वारा कारागार में डाल दूँगी और अधीन कर रखूँगी। एक पलक के लिए भी यदि मेरा त्याग करोगे, (तो) गुण समझोगे। मेरे योग में इतना तेज है कि शय्या भी नहीं छोड़ोगे। रात को आरसी में काजर पाड़ कर रखूँगी। उससे अपनी आँखें रँगूगी, योग-प्रचार करूँगी। नयनों-नयनों से ही रिझाऊँगी, प्रेम लाऊँगी (जिससे) मुझे गले का हार बनावोगे, हृदय के मध्य रखोगे। विद्यापति कहते हैं, योग ले आयी, कन्या वर का समाधान कर (विवाह शेष कर) आधीन बना कर रखेगी।

(८७९)

हम जोगिन तिरहुत के जोग देबैन्ह लगाय।
नैन हमर पढ़ाओल रे, जगमोहिनि नाम ॥
आरसि काजर पारल आँखि आँजल।
ताहि आँजल दुइ आँखि जमैआ अपनाओल ॥
रुनुकि झुनुकि धीआ चलितथि जमैआ देखितथि।
पागक पेज उघारि हृदय बिच राखितथि ॥
भनहि विद्यापति गाओल फल पाओल।
जोग हमर बड़ तेज, सेज धय रहताह ॥

मि० गी० सं० १म खंड० ३९

अनुवाद—मैं योगिनी हूँ, तिरहुत का योग लगा दूँगी। मैंने आँखों को पढ़ाया है, मेरा नाम जगमोहिनी है। आरसी में काजर बनाया, उसे आँख में अंजन लगाया। उससे दोनों आँखों को अंजनयुक्त करके जमाई को अपने वश में किया। रुनकि झुनुकि (नाच नाच कर) बेटी चलती, जमाई देखते। पगड़ी का पेंच खोल कर हृदय के निकट रखते। विद्यापति गाकर कहते हैं, फल पाया, मेरा योग अत्यन्त प्रभावशाली है, शय्या पर रहेंगे (जाने नहीं पावेंगे)।

(८८०)

स्याम वदन श्रीराम, हे सखि ।
देखैत मुख अभिराम ॥
आजु हमर विह बाम, सखि ।
मोहि तेजि पहु गेल गाम ॥

पढ़ल पण्डित भान, हे सखि ।
पहुक ने करि अपमान ।
भनहि विद्यापति भान, हे सखि ।
सुपुरुस गुनक निधान ॥

मि० गी० सं० ३ रा खंड, १०६

अनुवाद—हे सखि, श्यामवर्ण श्रीराम का मुख देखने में सुन्दर है । आज विधाता मेरे प्रति वाम हैं, प्रभु मेरा त्याग कर अपने ग्राम गये । हे सखि, पंडित लोग (शास्त्र-ज्ञान) से कहते हैं, प्रभु का अपमान (कभी) मत करना । विद्यापति कहते हैं, हे सखि, सुपुरुष गुण का निधान (होता है) ।

(८८१)

जौं हम जनितहुँ भोला भेल ठकना
होइतहुँ रामगुलाम गे माई ।
भाइ विभीखन बड़ ताप कैलन्हि
जपलक राम का नाम, गे माई ॥
पुरुब पछिम एको नहि गेला
अचल भेला यहि ठाम, गे माई
बीस भुजा दस माथ चढ़ाओलि
भाँग दिहल भर गाल, गे माई ॥

एक लाख पूत सवा लाख नाती
कोटि सोबरनक दान, गे माई ।
गुन अवगुन सिव एको नहि बुझलन्हि
रखलन्हि रावनक नाम गे माई ।
भन विद्यापति सुकबि पुनित मति
कर जोरि बिनओं महेस, गे माई ।
गुन अवगुन हर मन नहि आनथि
सेवकक हरथि कलेस, गे माई ॥

बेनी, २४७

अनुवाद—अरी माँ, यदि मैं जानती कि भोला ऐसे प्रतारक हैं तो राम का गुलाम होता । भाई विभीषण ने अनेक तप किया, (इसीसे) उसने राम का नाम जप किया । (विभीषण) पूरब पश्चिम कहीं नहीं गया, इसी स्थान पर अचल होकर रह गया । मैंने बीस हाथों दस सिरों से (शिव की) पूजा की, गाल पर भाँग दी । एक लाख पुत्र, सवा लाख नाती, कोटि स्वर्ण का दान (सब दिया) । शिव ने गुण-दोष कुछ भी नहीं समझा । रावण का नाम नहीं रखा । सुकवि पवित्रमति विद्यापति कहते हैं, हे महेश, कर जोड़ कर तुम्हारी विनय करता हूँ । हर गुण-दोष मन में नहीं लाते, सेवक का क्लेश हरण करते हैं ।

(८८२)

तात बचने वेकले वन खेपल
जनम दुखहि दुखे गेला।
सीअक सोगें स्वामि सन्तापल
विरहे विखिन तन भेला॥
मन राघव जागे।
राम चरन चित लागे॥

कनक मिरिगि मारि विराध वधल वालि
वानर सेइ बटुराइ।
सेतु बंध दिअ राम लंक लिअ
रावन मारि नड़ाइ॥

दसरथ नन्दन दससिरखण्डन
तिहुअन के नहि जाने।
सीतादेइपति राम चरन गति
कवि विद्यापति भाने॥

न० गु० (विविध) १

अनुवाद—पिता के वचन से वल्कल धारण कर वन में काल-क्षेपण किया, जन्म दुख ही दुख में गया। सीता के शोक में स्वामी सन्तापित हुए, विरह में शरीर क्षीण हुआ। राघव मन में जाग रहे हैं, मन रामचरण में लगा है। कनक-मृग वध कर विराध और वालि का हनन किया, वानर-सेना संग्रह की, राम ने सेतुबन्ध दिया और लंका ली, रावण मार फेंका। दशरथ नन्दन, दशानन-नाशन को त्रिभुवन में कौन नहीं जानता? कवि विद्यापति कहते हैं, सीतादेवी के पति राम के चरण (मेरी) गति है।

(८८३)

रे नरनाह सतत भजु ताही।
ताहि, नहि जननि जनक नहि जाही॥
वसु नइहरा सुसुरा के नाम।
जननिक सिर चढ़ि गेलि वहि गाम॥

सासुक कोर में सुतल जमाय।
समधि विलट तौ विलटल जाय॥
जाहि ओदर से बाहर भेलि।
से पुनि पलटि ततय चलि गेलि॥

भन विद्यापति सुकवी भान।
कवि के कवि कँह कवि पहचान॥

मि० गी० सं १ला खण्ड, पृ० २६

शब्दार्थ—नरनाह—नरनाथ; ताहि—उसको; जाही—जिसका; विलह—वितरण करता है।

अनुवाद—(सीता के सम्बन्ध का पद)—हे नाथ, सतत उसका भजन करो, जिसके माँ-बाप नहीं हैं। बाप के घर में वास करती हैं, ससुर का नाम प्रसिद्ध है। जननी के सिर पर चढ़ के (पृथ्वी के सिर पर पैर देकर) ससुर के गाँव गयीं। सासु की गोद में जमायी सोया। सम्बन्ध जिसको वितरित होता है, उसीसे (सम्बन्ध) होता है। जिसके गर्भ से वे बाहर हुई थीं, फिर लौट कर वहीं चली गयीं (भूतल में प्रवेश कर गयीं) सुकवि विद्यापति कहते हैं कवि को कवि कहते हैं—कवि को पहचान लो।

(८८४)

अपर पयोधि मगन भेल सूर।
नरिव-कुल-संकुल बाट बिदूर॥
नरि परिहरि नाविक घर गेल।
पथिक गमन पथ संसय भेल॥
अनतए पथिक करिअ परवास।
हमे धनि एकलि कन्त नहि पास॥
एक चिन्ता अओक मनमथ सोस।
दसमि दसा मोहि कओनक दोस॥

रअनि न जाग सखि जन मोर।
अनुखन सगर नगर भम चोर॥
तोँहे तरुनत हम विरहिनि नारि
उचितहु वचन उपज कुल गारि॥
बामा बचन बाम पथ धाव।
अपन मनोरथ जुगुति बुझाव॥
भनइ विद्यापति नारि सुजानि।
भल कए रखलक दुहु अनुमानि॥

न० गु० (प) १

अनुवाद—पश्चिम सागर में सूर्य डूब गया। दूर पथ, हिंस्र जन्तु समाकुल। नदी त्याग कर नाविक घर गया। पथिक के गमन-पथ में संशय हुआ। पथिक अन्यत्र प्रवास करो। मैं अकेली रमणी हूँ, कान्त पास नहीं हैं। एक ही चिन्ता (उसपर) और मन्मथ शोषण कर रहा है। किसके दोष से मेरी दसवीं दशा (मृत्युदशा?) आ गयी है? मेरी सखियाँ रात को नहीं जागतीं। सारे नगर में अनुक्षण चोर भ्रमण करते हैं। तुम तरुण, मैं विरहिनी नारी हूँ। उचित बात से भी कुल की गाली (निन्दा) उत्पन्न होती है। वामा का वचन वाम पथ में दौड़ता है। अपने मनोरथ के अनुसार युक्ति बताती है। विद्यापति कहते हैं, नारी चतुरा, ऐसा अनुमान होता है कि दोनों तरफ (उसने) रक्षा की।

(८८५)

अपना मन्दिर बैसलि अछलहुँ
घर नहि देसर केवा।
तहिखने पहिला पाहुन आएल
बरिसय लागल देवा॥
के जान कि बोलति पिसुन परौसिनि
बचनक भेल अवकासे॥
घर अन्धार निरन्तर धारा
दिवसहि रजनी भाने।
कओनक कहब हम के पतिआएत
जगत विदित पचवाने॥

न० गु० (प) २

अनुवाद—अपने घर में बैठी थी, घर में दूसरा कोई नहीं था। उसी समय पहला पथिक आया, देवता बरसने लगे। क्या जानें, खल पड़ोसिन क्या कहेगी? वचन (निन्दा) का अवकाश (सुयोग) हुआ। घर अन्धेरा, निरन्तरधारा (बरस रही है) दिन भी रात सा मालूम होता है। किसको कहें, कौन विश्वास करेगा? जगत में पंचवाण विदित है।

(८८६)

बालम निठुर वसय परवास।
चेतन पड़ोसिया नहि मोर पास॥
ननदी बालक बोलउ न बूझ।
पहिलहि साँझ सासु नहि सूझ॥
हमे भरे जावति रअनि अन्धार।
सपनेहुँ नहि पुर भम कोटवार॥
पथिक वास अनतय भमि लेह।
हमरा तैसन दोसर नहि गेह॥
एकसर जानि आओत चलि चोर।
मोरा संपति मोरा अगोर॥
सुकवि विद्यापति कहथि विचारि।
पथिक बुझावए विरहिनि नारि॥

न० गु० (प) ७

अनुवाद—निष्ठुर वल्लभ बिदेश में वास करते हैं। चतुर पड़ोसी मेरे पास नहीं है। ननदी अभी बच्ची है, बात नहीं समझती। प्रथम साँझ को (सन्ध्या होते ही) सास देख नहीं सकती है। मैं पूर्ण युवती हूँ, रजनी अन्धेरी है। स्वप्न में भी कोतबाल शहर में भ्रमण नहीं करता। हे पथिक, अन्यत्र जाकर वासस्थान ढूँढो। मेरे पास दूसरा ऐसा कोई मकान नहीं है (जहाँ तुम्हारा गुजर होवे)।

[बालाहं नवयौवना निशि कथं स्थानुमस्मद् गृहे।
सायं सम्प्रति वर्तते पथिक हे स्थानान्तरं गम्यताम्॥
शृंगार-तिलक।]

अकेली जानकर चोर चला आवेगा। अपनी सम्पत्ति मुझे स्वयं ही अगोरनी पड़ती है। सुकवि विद्यापति विचार कर कहते हैं, विरहिनी नारी पथिक को समझा रही है।

(८८७)

सासु जरातुलि भेली।
ननदी छलि सेओ सासुर गेली॥
तैसन न देखिअ कोइ
रअनि जगाय सभासन होइ॥
एहिपुर एहि वेवहारे।
काहुक केओ नहि करए पुछारे॥
प्राननाथ के कहवा।
हम एकसरि धनि कतदिन रहवा॥
पथिक कहव मझु कन्ता।
हम सनि रमनि न तेज रसमन्ता॥
भनइ विद्यापति गावे।
भमि भमि विरहिनि पथुक बुझावे॥

न० गु० (प) ८

अनुवाद—सास जरातुरा हुई; ननदी थी, वह भी ससुराल चली गयी। वैसी किसी को भी नहीं देखती जो रात भर जाग कर बातें करे। इस नगरी का यही व्यवहार है, कोई किसी को नहीं पूछता। प्राणनाथ को कहूँगी, मैं अकेली रमणी, कितने दिन रहूँगी। पथिक, मेरे कान्त को कहना, रसवन्त पुरुष मेरे समान नारी का परित्याग नहीं करता। विद्यापति गाकर कहते हैं कि घुमा-फिरा कर विरहिणी पथिक को समझा रही है।

(८८८)

हमराहु घर नहि घरिनिक लेस।
तेँ कारणे गूनिअ परदेस॥
नाना रतन अछए मझु हाथ।
सेवक चाकर केओ नहि साथ॥
सहजक भीरु थिकाहु मतिभोर।
रअनि जगाए के करत अगोर॥
बैसि गमाओव कओनक माझ।
अवगुन अछए रतउँधी साँझ॥
भनइ विद्यापति छइल सोभाव।
नागर पथिक उकुति विरमाव॥

न० गु० (प) १०

अनुवाद—मेरे घर में घरनी का लेश भी नहीं है। इसलिए (घर को) प्रवास समझता हूं। नाना रत्न मेरे हाथ में हैं। सेवक-चाकर कोई संग नहीं है। (मैं) स्वभावतः भीरु (और) निर्बोध (हूँ)। रात-भर जाग कर कौन अगोरेगा? बैठ कर किसके संग (समय) काटूँ? मुझमें एक दोष है, सन्ध्या होते ही रतौंधी तो जाती है। विद्यापति कहते हैं, रसिक-स्वभाव नागर पथिक ने उक्ति शेष की।

(८८६)

अनत पथिक जनु जाहे।
दूर देसान्तर वस मोर नाहे॥
हमे अनुगति सवे केरी।
कतय जायव तोँहे साँझक वेरी॥
निभरस ऐसन ठामा।
सवे परदेसिया वसे एहि गामा॥
भमि भमि भम कोटवारे।
पएलहुँ लोथ न नपति विचारे॥
हमरा कोन तरंगे।
पुर परिजन सब हमरे अंगे॥
भनइ विद्यापति गावे।
भमि भमि अबला उकुति बुझावे॥

घ० १०१६

अनुवाद—पथिक, अन्यत्र मत जाना। मेरे नाथ दूर देशान्तर में वास करते हैं। मैं सबों की अनुगत हूँ, साँझ के समय तुम कहाँ जावोगे? यह स्थान बाधा शून्य; इस ग्राम में जो वास करता है वे सब परदेशी हैं। कोतवाल घूमता फिरता है। चोरी का माल (लाश?) पाने पर भी नृपति विचार नहीं करता। मुझे किसका डर है? पुर-परिजन सब मेरे अपने आदमी हैं। विद्यापति गाते हैं—अबला घुमा फिरा कर अपनी बात समझा रही है।

(८६०)

सिन्धु सुतापति द्युति गेल माइ हे।
निरधिनी बापुरे॥
केवा विगलित पुलकित माइ हे
से देखि हिअरा झूरे।
मोर पिआर गगन भरि आएल
न अएले मोर पियारा॥
मालि मउलि हम बालम्भु विदेस बस
अहि भोअने महि पूरे।
सरअ सरोज बन्धु कर वंचित
कुमुद मुद दिनकरे॥

सखिहे कमलनयन परदेस।
हमे अबला अति दीन दुखित मति
सवने न सुनिअ सन्देस ॥

चातक पोतक हरखित नाचथि
सुखे सिखि नाचथि रंगे।
कन्त कोर पइसि चपला विलसथि
से देखि भामर अंगे ॥

नलिनी नीरे लुकाइलि माइ हे
कन्त न आएल पास।
भमर चरन पंचासे अधिक अघ
वसु तेजि करति गरास ॥

न० गु० (प्र) २ प्रहेलिका।

(८६१)

विरह अनल आनि जुड़ावए
सीतल सीकर आनि।
सैलवती सुत दरसने
मुरुछि खस सयानि ॥
माधव कह कि करति नारि।
गिरि सुता पति हार बिरोधी
गामी तनय धारि ॥

अति जे विकलि चित न चेतए
दूरे परिहर हार।
विरहवल्लभ आसन असन
से सखि सहए न पार ॥
दरसे चन्दन मिड़ि नड़ावए
करे न कुसुम लेय।
हरि भगिनी नन्दन वालहि
सोदर किछु न देय ॥

अधिक आधि वेआधि वढ़ाउलि
दिनहु दुवर काए।
आजे जमपुर सगर नगर
वजर देति वसाए ॥

न० गु० (प्र) ११ प्रहेलिका।

(८६२)

वसु विस पावे हरल पिआ मोर।
अन्ध तनय प्रिय सेओ भेल थोर ॥
जिवसयँ पंचम से तनु जार।
मधुरिपु मलय पवन थिक मार ॥
पहिलुक दोसर आइति गेल।
आदिक तेसर अनाएत भेल ॥

सूर प्रिया सुत तन्हिकर तात।
दिने दिने रखइते खिन भेल गात ॥
अव जाएत जिव पातक तोहि।
वड़ कए मदने हनव जिव मोहि ॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
चतुर चतुरभुज मिलित मुरारि ॥

न० गु० (प्र) २० प्रहेलिका।

(८६३)

भरल भवन तेजि गेलाह मुरारि।
जत दिन गेलाह तकर गुन चारि॥
प्रथम एगावह फेरि दीप पाँच।
तीसक तेगुन थोड़ दिन साँच॥
चालीस कोटि आधा हरि लेल।
तें पुनि जीव एहन सन भेल॥
सै महँ चौगुन शिअने विचारि।
तें तोहि भल नहि कहत मुरारि॥
भनहि विद्यापति आखर लेख।
बुधजन होथि से कहथि विसेस॥

मि० गी० सं २रा खण्ड पृ० ४-५ प्रहेलिका।

(८६४)

आरे विधिवस नयन पसारल
पसरल हरिक सिनेह।
गुरुजन गुरुतरे डरे सखि
उपजल जिवहु सन्देह॥

दुरजन भीम भुजंगम
वम कुवचन विससार।
तेंइ तिखें विसे जनि माखल
लाग मरम कनियार॥
परिजन परिचय परिहरि
हरि हरि परिहरि पास।
सगर नगर बड़ पुरीजन
घरे घरे कर उपहास॥

पहिलुक पेमक परिभव
दुसह सकल जन जान।
धैरज धनि धर मने गुनि
कवि विद्यापति भान॥

मिथिला; न० गु० २७२

शब्दार्थ—नयन पसारल—नयन प्रसारित करके; पसरल—फैला; विसभार—विष का सार, तीव्र विष; तीखें—तीक्ष्ण; कनियार—तीक्ष्ण; पास—पाश, बन्धन।

अनुवाद—अहा, विधिवश नयन मिलते ही हरि का स्नेह प्रसारित होते देखा। सखि, गुरुजनों के गुरुतर भय से प्राण में सन्देह हुआ। दुर्जन बलवान सर्प के समान तीव्र विषवत् दुर्वाक्य का उद्गार (प्रयोग) करता है; वही विषयुक्त तीक्ष्ण तीर (हमारे) हृदय में लगा। हाय हाय, परिजनों का परिचय त्याग कर, उनका बन्धन छोड़ा। समस्त नगर में नगरवासी लोग घर घर अत्यन्त उपहास कर रहे हैं। सब लोग जानते हैं—प्रेम की प्रथम हार दुःसह होती है। कवि विद्यापति कहते है—धनि, मन में समझ कर धीरज धर।

(८६५)

कौतुक चललि भवनकें सजनी गे
संग दस चौदिसि नारी।
बिच बिच सोभित सुन्दरि सजनी गे
जनि घर मिलत मुरारी ॥
लै अभरन के सोड़स सजनि गे
पहिर उतिम रंग चीर।
देखि सकल मन उपजल सजनी गे
मुनिहुँक चित नहि थीर ॥
नील बसन तन घेरलि सजनी गे
सिर लेलि घोघट सारी।
लग लग पहुके चलइति सजनी गे
सकुचल अंकम नारी ॥

सखि सब देल भवनैक सजनी गे
घुरि आएलि सभ नारी।
कर धए लेल पहु लगकें सजनी गे
हेरै बसन उघारि ॥
मन बर सनमुख बोले सजनी गे
करै लागल सविलाथे।
नव रस रीतु पिरित भेल सजनी गे
दुहु मन परम हुलासे ॥
विद्यापति एह गाओल सजनी गे
इ थिक नव रस रीति।
वयस जुगल समचित थिक सजनी गे
दुहु मन परम हुलासे ॥

ग्रियर्सन २३; न० गु० २८०, मि० गी० स० के अनुसार "चन्द्रनाथ का पद"

अनुवाद—हे सजनि, कौतुक से (कुंज) भवन में चली। दस नारियों के संग बीच में सुन्दरी (मैं) शोभित, घर (कुंज) में मुरारि के साथ मिलन होगा, यह जानकर अर्थात् मुरारी के साथ मिलने की इच्छा से सखियों से घिर कर मैं कुंजभवन में चली। हे सजनि, भूषणों से मैंने सोलहों शृंगार किया, उत्तम रंगीन वस्त्र पहना। (मुझे) देख कर सबों के मन में काम उपजने लगा, मुनियों का चित्त भी स्थिर न रहा। हे सखि, नीलवस्त्र से शरीर आवृत्त किया, मस्तक पर साड़ी रख कर घूँघट बनाया। प्रियतम के निकट जाते अन्तःकरण संकुचित हुआ। हे सजनि, सखियाँ मुझको कुंजभवन में पहुँचा कर सब की सब वापस चली आयीं, प्राणनाथ ने मेरा हाथ पकड़ कर नजदीक खींच लिया, (मेरा) वस्त्र मोचन कर के देखा। हे सजनि, नागर सामने खड़ा होकर काम-प्रकाश करने लगा, नूतन रसरीति से प्रणय हुआ, दोनों के मन परम उल्लसित हुए। विद्यापति कवि गाते हैं, हे सजनि, यही नवरस की रीति है। दोनों आदमियों का ही वयस उपयुक्त है, दोनों के मन में ही परम-प्रीति है।

(८६६)

सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना।
चहुदिस सखि सब कर धर ना ॥
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना ॥

जाइतहि हार टुटिए गेल ना।
भुखन वसन मलिन भेल ना ॥
रोए रोए काजर बहाए देल ना।
अवकहि सिन्दुर मेटाए देल ना ॥

भनइ विद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओल ना ॥

ग्रियर्सन २६; न० गु० १४७ मि० गी० स के अनुसार (प्रथमखंड) 'नन्दी पति' कृत।

अनुवाद—सुन्दरी पतिगृह में चली। चारो ओर से सखियों ने हाथ धर लिया। गमन करते डर हुआ, जैसे राहु के भय से चन्द्रमा काँपता है। जाते ही (कण्ठ-) हार छितरा गया, वसन-भूषण मलिन हुए। रोते-रोते काजल बहा दिया, आतंक से सिन्दूर नष्ट हो गया। विद्यापति गाकर कहते हैं, दुख सह-सह कर (प्रथम मिलन का) सुख पाया।

(८६७)

पुरुवक प्रेम अइलहुँ तुअ हेरि।
हमरा अवइत बइसलि मुख फेरि॥
पहिल वचन उतरो नहि देलि।
नयन कटाक्ष सयँ जिव हरि लेलि॥
तुअ ससिमुखि धनि न करिअ मान।
हमहुँ भमर अति विकल परान॥
आसा दए पुन न करिअ निरास।
होउ परसन मोर पूरह आस॥
भनहिं विद्यापति सुनु परमाने।
दुहु मन उपजल विरहक वाने॥

ग्रियर्सन ४६; न० गु० ३६६, मि० गी० स के अनुसार 'रुद्रनाथ' कृत

अनुवाद—तुम्हारा पूर्व का प्रेम देखकर (तुम्हारे पास) आया; मेरे आते ही तुम मुख फिरा कर बैठ गयी। पहली बात का उत्तर भी नहीं दिया, नयन-कटाक्ष से (मेरे) प्राण हरण कर लिया। तुम शशिमुखी धनि, मान मत करना, मैं अति विकल-प्राण भ्रमर हूँ। आशा देकर फिर निराश मत करना, प्रसन्न होवो, मेरी आशा पूर्ण करो। विद्यापति कहते हैं, सच्ची बात सुनो. दोनों के मन में विरह के बाण से (आकुलता) उत्पन्न हुई।

(८६८)

आसक लता लगाओलि सजनी
नैनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय॥
काँच साँच पहु देखिगेल सजनि
तसु मन भेल कुह भात।
दिन दिन फल तरुनव भेल सजनी
अहु मन न करु गेयान॥
समरेक पहु परदेस वसि सजनी
आएल सुमिरि सिनेह।
हमर एहन पहु निरदय सजनी
नहि मन बाढ़ए नेह॥
भनहिं विद्यापति गाओल सजनि
उचित आओत गुनसाह।
उठि बधाव करु मन भरि सजनि
आज आओत घर नाह॥

ग्रियर्सन ६१; न० गु० ६८६, मि गी० स० के अनुसार 'धैरयजपति' कृत।

अनुवाद—सजनि, अश्रुजल से सींच कर आशा की लता लगायी, वह फल (पयोधर) अब तरुण हुआ, आंचल के नीचे अब छिपता नहीं है। हे सजनि, प्रभु कच्चा-कुच्चा देख कर गये थे, इससे उनका मन मलिन हो गया था (किन्तु दिन बीतने पर वही फल जो तरुणत्व को प्राप्त हुआ, उसे वे समझ नहीं सकते हैं)। सजनि सबों के (दूसरी नारियों के) पति विदेशवासी, वे सब स्नेह (प्रेम) स्मरण कर घर लौट आए, मेरे पति इतने निर्दय हैं कि उनके मन में प्रेम बढ़ता ही नहीं (विदेश में रहने से प्रिया के प्रति अनुराग और बढ़ता है, परन्तु मेरे पति उसके विपरीत हैं)। विद्यापति कहते हैं, मैंने यह गाया, सजनि, उचित समय पर गुणवान (तुम तरुणी हो गयी, यह जान कर) आ रहे हैं। उठ कर मन भर आनन्द करो, नाथ अभी घर आ रहे हैं।

(८६६)

सकल[१] सखि परबोधि कामिनी आनि दिल पिया[२] पास।
जनु[३] बान्धि व्याध विपिने सो मृगि तेजइ[४] तीख निशास॥
बैठलि[५] शयन समीपे[६] सुवदनि जतने समुख ना होय।
भेलि[८] मानस भमइ दशदिश देलि[९] मनमथ कोय॥
कठिन काम कठोर कामिनी माने[१०] नाहि परबोध।
निविड़ नीविबन्ध कठिन कंचुक[११] अधरे अधिक निरोध[१२]॥
सकल गात दुकूल दृढ़ अति कतिहु नाहि परकाश[१३]।
पानि[१४] परशिते पराण परिहरे पूरब की रिति आस॥
कान्त कातर कतहु काकुति करत कामिनि पाय।
प्राण पीड़न राइ मानइ विद्यापति कवि गाय॥

प० स० पृ० ४४

(६००)

सुरत समापि सुतल वर नागर
पानि पयोधर आपी[१]।
कनक सम्भु जनि[२] पुजि पुजारे
धएल सरोरुह झाँपी[३]॥
सखि हे माधव[४] केलि विलासे।
मालति रमि अलि नाइ अगोरसि
पुनु रतिरंगक आसे॥

वदन मेराए धएलन्हि मुखमण्डल[६]
कमल मिलल जेनि चन्दा।
भमर चकोर दुअओ अरसाएल
पीवि अमिअ मकरन्दा।
भनइ अमिकर सुनह मथुरपति
राधाचरित अपार।
राजा सिव सिंघ रुपनारायन
सुकवि भनथि कण्ठहार॥

रागतरंगिणी पृः ८४-८५; ग्रि ३७ न० गु० १७३: पद कल्पतरु १५२५; क्षणदा

(८६६) रागतरंगिणी में सिंह भूपति की भणिता है। उसका पाठान्तर—(१) सबहु (२) पिय (३) जनि (४) व्याधाए विपिन सओ मृग तेजए (५) बैसलि (६) समीप (७) समुहि (८) भेल (९) बुलए सहो दिश देल (१०) मान (११) निबिल निबंध कठिन कंचुक (१२) 'अधिक निरोध' शब्द के बाद चार चरण हैं—

करब की परकार आवे हमें किछु न पर अवधारि। कोपे कौसले करए चाहिअ हठहि हलन्हि अहारि॥
दिवस चाहि गमाए माधव करति रति समाधान। वढ़हि कौं यड़ होए धैरज सिंह भूपति भान॥

(६००) *मन्तव्य*—यह पद रागतरंगिणी में अमियकर की भणिता में पाया जाता है। पदकल्पतरू में (१५२८) यह विद्यापति की भणिता में प्रकाशित हुआ है, ग्रियर्सन ने भी इसे विद्यापति का स्वीकार किया है। क्षणदागीत चिन्तामणि में यह भणिताहीन है।

प० त० के अनुसार पाठान्तर—(१) पानि रहल कुच आपी (२) जइछे (३) धाएल नील सरोरूह झाँपी (४) केशव (५) मालती अलि आगोरल-ग्रियर्सन ने यहाँ 'नाइ अगोरथि' रखा है।

(६) वदन मिलाई रहल मुख मण्डल, कमले मिलए जइले, भमर चकोर दुहु रभसे मिलायइ पिअइ अभिया। निसि अवशेषे जागि सब सखिगन विच्छेद भय करु, भनए विद्यापति इह रस आरति दारुन विहि॥

"राजा सिवसिव.........इत्यादि नहीं है।

अनुवाद—सुरत समाप्त करके, हाथ पयोधर पर स्थापन करके नागर सो गया, मानों पुजारी ने शम्भु की पूजा करके कमल के द्वारा उसको ढाँक कर उसे रखा है। हे सखि, माधव केलि-विलास कर रहे हैं, भ्रमर के समान मालती के साथ रमण करके फिर रतिरंग की आशा में उसकी रखवाली कर रहा हो। वदनमण्डल वदन में मिला कर रखे हुए हैं, मानों चन्द्रमा कमल से मिल गया हो, सुधा और मधुपान करके मानो भ्रमर और चकोर दोनों आलस्ययुक्त हो गए हों। अमृतकर कहते हैं, मथुरापति राधा चरित अपार, सुनो, सुकवि कण्ठहार राजा शिवसिंहँ रूपनारायण को कह रहे हैं।

(६०१)

वर बौराह उमाके
सोचहिं नारि निहारि ॥
फनि मनि मौलि विराजित
सिर सुरसरि बहु धार ॥
भाल विसाल सुधाकर
कर त्रिसुल त्रिपुरारि ॥

वाहन बसहा दिगम्बर
परिजन भूत बेताल।
आक धथुर विस भोजन
विजया प्रान अधार ॥
कह ऋषिरानि रजासौं
कन्या रहलि कुमारि।
दुलहिनि जोग वर दुलह
नहिं दुलहिनि बड़ि सुकुमारि ॥

कह जगजननी जननीसौं
चिन्ता छारु हमारि।
जतए जाएब ततए दुख सुख
लिखल मेटल नहिं जाय ॥
सिवसंकर वर ईश्वर
नाथ चरन चित लाय।
गिरिजा नहिमँ अनन्दित
विद्यापति कवि गाय ॥

मि० गी० सं १ला खण्ड, पृः ३०-३१

अनुवाद—वर बौराहा (पागल) देख कर सब नारियाँ उमा के प्रति दुःख कर रही हैं। मस्तक पर साँप की मणि विराजित, सिर पर बहु-धारा (वह रही है) विशाल ललाट में सुधाकर, त्रिपुरारि के हाथ में त्रिशूल। वृषभ-वाहन, दिगम्बर, भूत-बैताल परिजन, अकवन, धतूरा इत्यादि विष आहार, भांग (बिजया) प्राण का आधार (अत्यन्त प्रिय)। ऋषि-पत्नियाँ राजा के पास जाकर कहती हैं, पात्र पात्री के योग्य नहीं है, पात्री अत्यन्त सुकुमारी। जगज्जननी के निकट कह रही हैं, मेरी चिन्ता छोड़ दो। जहाँ जाऊँगी, सुख दुख सभी जगह हैं; (अदृष्ट में) जो लिखा हुआ है, वह मिटाया नहीं जा सकता। चित्त ईश्वर शिवशंकर के चरणों में लगा हुआ है। कवि विद्यापति गाते हैं, गिरिजा मन में आनन्दित हैं।

(६०२)

सुनिऐन्हि हर बड़ सुन्दर,
आगे देखिऐन्हि बिभूति भयंकर।
सुनिऐन्हि हर अओतहि रथपर,
आगे देखिऐन्हि बुढ़ बलद पर॥

सुनिऐन्हि पाटपटम्बर,
आगे देखिऐन्हि फटले बघम्बर।
सुनिऐन्हि गरा मोति माललय,
आगे देखिऐन्हि रुद्रक हारलय॥

भनहिं विद्यापति गाओल,
आगे गौरि उचित वर पाओल॥

मि० गी० सं १ला खण्ड, पृ: ३२

अनुवाद—सुना था, हर बड़े सुन्दर हैं, बाद में देखा, भयंकर विभुति है। सुना हर रथ पर आ रहे हैं, पीछे देखा बूढ़े बैल पर (आ रहे हैं)। सुना (उनका परिधान) पटम्बर है, पीछे देखा, फटा बाघम्बर है। सुना, गला में मोती की माला पहन कर आएँगे, पीछे देखा, रुद्राक्ष का हार धारण किये हुए हैं। विद्यापति यह कहकर गान कर रहे हैं, गौरी ने अपना उचित वर पाया है।

(६०३)

हे मनाइन, देखह जमाय।
सिवक माथ फुटल जटा,
आगे माइ ताहि उपर नाग घटा॥

जटा देल अकुसी लगाय;
आगे माइ ताहि उपर नाग घटा॥
झिकितहि सुरसरि गेलि बहराय।
वेदी देल लवा छिड़िआय,
आगे माइ ताहि उपर नाग घटा॥

भूखल वासुकि विधिविधि खाय
बट्टा भरि घोरल कसाय;
आगे माइ ताहि उपर नाग घटा॥
उमत महादेव भस्म लगाय।
भनहिं विद्यापति गाओल आगे माई,
गौरि सहित वर कोवर जाय॥

मि० गी० सं १ला खण्ड पृ० ३२

अनुवाद—हे मेनका, जमायी देखो, शिव के सिर पर जटा बाहर हो रही है, ओ माँ, उसपर सर्प की घटा है। जटा में अंकुश लगा दिया है। उसके खिचाव से सुरसरि बाहर हो गयी है। वेदी पर लावा छितरा दिया, भुखार्त सर्प उसे चुन चुन कर खाने लगे। भर कटोरा कषाय घोला (अंगलेपन के लिए) (किन्तु) उन्मत्त महादेव ने (अंग में) भस्म लगा लिया। विद्यापति गान करके कहते हैं, ओ माँ, गौरी के संग वर कोहवर में गये।

(६०४)

हम नहि आजु रहब य आँगन
जो बुढ़ होएत जमाई, गे माई।
एक त बइरि भेल बीध विधाता
दोसरे धिया कर बाप।
तीसरे बइरि भेला नारद बाभन
जे बूढ़ आनल जमाई गे माई॥

पहिलुक बाजन डामरु तोड़ब
दोसरे तोरब रूण्डमाला।
बरद हाँकि बरिआत बेलाइब
धिआ ले जाएब पराई, गे माई॥

धोती लोटा, पतरा पोथी
एहो सभ लेबन्हि छिनाए।
जौं किछु बजता नारद बाभन
दाढ़ी धए घिसिआएब, गे माई॥

भन विद्यापति सुनु हे मनाइन
दृढ़ करू अपन गेआन।
सुभ सुभ कए सिरी गौरि बिआहु
गौरी हर एक समान, गे माई॥

मि० गी० सं, प्रथमखण्ड, पृ० ३१ ; वेणी २३४

अनुवाद—यदि बूढ़ा जमाई होगा तो, हे माँ, मैं आज इस आँगन में न रहूँगी। एक तो शत्रु हुआ—विधाता, दूसरे शत्रु, कन्या के पिता। तीसरे शत्रु हुए नारद ब्राह्मण—जो बूढ़ा जमायी लाए। पहले बाजा डमरू को तोड़ूँगी, दूसरे मुंडमाला छितरा दूँगी, बैलों को खदेड़ कर बारातियों को भगा दूँगी। बेटी लेकर भाग जाऊँगी। धोती, लोटा, पत्रा-पोथी सब छिनवा लूँगी। यदि नारद ब्राह्मण कुछ बोलेगा (तो) उसकी दाढ़ी पकड़ कर उसे घसीटूँगी। विद्यापति कहते हैं, हे मेनका, अपना ज्ञान दृढ़ करो (मति स्थिर करो), शुभ-शुभ करके श्री गौरी का विवाह करो। गौरी हर एक समान (तुल्य)।

(६०५)

नाहि करब बर हर निरमोहिया।
बित्ता भरि तन बसन न तिन्हका
बघछल काँख तर रहिया॥

बन बन फिरथि मसान जगावथि
घर आँगन ऊ बनौलन्हि कहिया।
सासु ससुर नहि ननद जेठौनी
जाए बैठति धिया केकरा ठहिया॥

बूढ़ बरद टकटोल गोल एक
सम्पति भाँगक झारिया।
भनइ विद्यापति सुनु हे मनाइन
सिव सन दानि जगत के कहिया॥

वेणी २३५

अनुवाद—निर्मोही (ममता शून्य) हर को वर न करूँगी (बनाऊँगी)। उसके शरीर पर एक बित्ता भी कपड़ा नहीं है, बाघ की छाल काँख तले रहती है। वन-वन फिरता है, मसान जगाता है, घर-आँगन उसने कब बनाया ? सासु-ससुर नहीं, ननद (अथवा) जेठानी नहीं, किसके पास जाकर बेटी बैठेगी ? बूढ़ा बलद अस्थि-चर्म-सार, सादा रंग (गोर)। सम्पत्ति—भाँग की झोली। विद्यापति कहते हैं—मेनका सुन, शिव के समान दानी संसार में कभी कोई हुआ है ?

(६०६)

जोगिया एक हम देखलौं गे माई।
अनहद रुप कहलौ नहि जाई॥
पँच वदन तिन नयन विसाला।
वसन विहुन ओढ़न बघछाला॥
सिर बहे गंग तिलक सोहे चन्दा।
देखि सरुप मेटल दुख दन्दा॥
जाहि जोगिया लै रहथि भवानी।
मन आनलि वर कौन गुन जानी॥
कुल नहि सिल नहि तात महतारी।
बएस दिनक थिक लघु जुग चारी॥
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि।
एहो जोगिया थिक त्रिभुवन दानि॥

बेनी २३७

अनुवाद—हे माँ, मैंने एक योगी देखा, अद्भुत। उसका रूप वर्णन नहीं किया जाता। पंच वदन, तीन विशाल नयन, वसन-विहीन, बाघ छाल का आवरण। सिर पर गंगा बह रही है, चाँद का तिलक शोभा पा रहा है। स्वरूप देख कर दुख-संशय मिट गया। जिस योगी के लिए भवानी (इतने दिनों) रही, मेनका कौन गुण जान कर वर लायी ? कुल नहीं, शील नहीं, बाप-माँ नहीं, उम्र चार लाख युग। विद्यापति कहते हैं, हे मेनका, सुन, वह योगी त्रिभुवन का दानी (दाता) है।

(६०७)

जखन देखल हर हो गुननिधी।
पुरल सकल मनोरथ सब विधी॥
बसहा चढ़ल हर हो बुढ़ जती।
काने कुण्डल सोभे गले गजमोती॥
बइसल महादेव चौका चढ़ी।
जटा छिरिआओल माओल भरी॥
विधि करू विधि करु विधि करु।
विधि न करह से हर हो हठ धरु॥
विधि ए करइत हर हो घुमि खँसु।
सँसरि खसल फनि सिरि गौरि हँसु॥
केओ नहि किछु कहहनिह हिनकहूँ।
पुरविल लिखन छला मोर पहूँ॥
कवि विद्यापति गाओल।
गौरि उचित वर पाओल॥

बेनी २३६, मि० गी० सं, ३रा खण्ड, पृ० ३४

अनुवाद—जब देखा कि हर गुण के आगर हैं, सकल मनोरथ सब प्रकार पूर्ण हो गये। बूढ़ा यति हर वृषभ पर चढ़ा है, कान में कुण्डल शोभ रहे हैं, गले में गजमोती। महादेव चौकी पर बैठे। मौलि (मस्तक) भर जटा घहरा पड़ी। (विवाह के समय सब कहते हैं), यह विधि करो, वह विधि करो। (किन्तु) हर (कोई भी) विधि न करते हैं, हठ करते (जिद कर बैठ जाते हैं)। विधि करते करते नींद में गिर गये, फणि सर सर कर गिर पड़े। श्री गौरी हँस पड़ीं। इनको कोई कुछ मत कहना, पूर्व लेखा के अनुसार ये हमारे पति हुए हैं। कवि विद्यापति ने गाया, गौरी ने उचित वर पाया।

(६०८)

एत जप-तप हम किअलागि कैलहु
कथिला कएलि नित दान।
हमरि धिया के एही वर होएता
अब नहि रहत परान॥
हर के माय बाप नहि थिकइन
नहि छइन सोदर भाय।
मोर धिया जों सासुर जैती
बइसति ककर लग जाय॥

घास काट लैती बसहा चरैती
कुटती भाँग धतूर।
एको पल गौरा बैसहु न पैती
रहती ठाढ़ि हजूर॥
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि
दृढ़ करु अपन गेआन।
तीनि लोक के एहो छथि ठाकुर
गौरा देवी जान॥

वेनी २४१

अनुवाद—इतना जप-तप मैंने किस लिए किया? नित्य ही दान क्यों किया? मेरी कन्या का यही वर होगा, अब प्राण नहीं रहेंगे। हर को माँ-बाप नहीं, सहोदर भाई भी नहीं है। मेरी कन्या ससुराल जाकर किसके पास बैठेगी? (गौरी) घास काट कर लावेगी, बैल चरावेगी, भाँग धतूरा पीयेगी, एकपल गौरी बैठ नहीं सकती, हर समय उनकी खुशामद में रहना पड़ेगा। विद्यापति कहते हैं, हे मेनका, सुन, अपना ज्ञान दृढ़ करो, ये तीन लोकों के ठाकुर हैं, गौरी देवी यह जानती हैं।

(६०९)

यहि विधि व्याहन आयो
एहन बाउर जोगी।
टपर टपर कए बसहा आयल
खटर खटर रुण्डमाल॥

भकर भकर सिव भांग भकोचथि
डमरू लेल कर लाय।
ऐपन मेटल पुरहर फोरल
धर किमि चौमुख दीप॥

धिया ले मनाइनि मण्डप बइसलि
गाविए जनु सखि गीत।
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि
ईथिका त्रिभुवन ईस॥

वेनी० २४३

अनुवाद—इस तरह का पागल योगी, इस प्रकार विवाह करने आ गया। बैल टपर टपर करता आया, मुण्डमाला खटर खटर (शब्द करती)। शिव भकर भकर भाँग खाते हैं, हाथ में डमरू लिये हुए, ऐपन मिट गया, घड़ा फूट गया, चौमुख दीप किस प्रकार जले? मेनका कन्या लेकर मण्डप में बैठी, (बोली) सखि, गीत मत गाना। विद्यापति कहते हैं, हे मेनका, सुनो, ये त्रिभुवन के ईश्वर हैं।

(६१०)

जोगि भँगवा खाइत भेला रंगिया
भोला बौड़लवा।
सबके ओढ़ावे भोला साल दोसलवा
आप ओढ़ए मृगछलवा॥

सबके खिआवे भोला पाँच पकवनमा
आप खाए भाँग धतुरवा।
कोई चढ़ावे भोला अच्छत चानन
कोई चढ़ावे बेलपतवा॥

जोगिन भुतिन सिवा के सँघतिया
भैरो बजावे मिरदंगिया।
भन विद्यापति जै जै संकर
पारवती बौरि संगिया॥

बेनी० २४६

अनुवाद—योगी भाँग खाकर सदानन्द हो गया है और विभोर हो गया है। सब को शाल-दुशाला अंगावरण देते हैं (और) स्वयं मृगचर्म से (अंग) आच्छादन करते हैं। भोला सब को अच्छा पक्वान्न खिलाते हैं और स्वयं भाँग धतूरा खाते हैं। कोई भोला की अर्चना अक्षत-चन्दन देकर करते हैं, कोई बेलपत्र से उनकी पूजा करते हैं। शिव के संग योगिनी-प्रेतिनी का संघट्ट रहता है, भैरव मृदंग बजाते हैं। विद्यापति कहते हैं, जय जय शंकर, पार्वती तुम्हारी संगिनी है।

(६११)

आगे माई, जोगिया मोर सुखदायक
दुख ककरो नहि देल।
दुख ककरो नाहि देल महादेव
दुख ककरो नहि देल॥
यहि जोगिया के भाँग भुलैलक
धतुर खोआइ धन लेल॥
आगे माइ, कातिक गनपति दुइजन बालक
जग भरि के नहि जान।
तिनका अभरन किछुओ न थिकइन
रतियक सोन नहि कान॥

आगे माइ, सोना रूपा अनका सुत अभरन
आपन रुद्रक माल।
अपना सुतला किछुओ न जुरइनि
अनका ला जँजाल॥

आगे माई, छन में हेरथि कोटि धन बकसथि
ताहि देबा नहि थोर।
भन विद्यापति सुनह मनाइनि
थिका दिगम्बर मोर॥

बेनी २४९

अनुवाद—अरी माँ, मेरा योगी जगत का सुखदायक है। किसी को भी दुख नहीं दिया। इस योगी को भाँग खिला कर, भुला कर, धन ले लिया। हे माँ, कार्त्तिक और गणपति दो बालक हैं। (इस बात को) संसार में कौन नहीं जानता ? उनको कोई आभरण नहीं, कान में एक रत्ती सोना भी नहीं। दूसरो के लड़कों को सोना, रूपा का आभरण, स्वयं (अपने बच्चों का आभरण) रुद्राक्ष की माला। अपने बच्चों के लिए उन्हें कुछ नहीं जुटता, दूसरों के लिए अनेक वस्तु (जंजाल)। एक ही क्षण ताक कर कोटि धन दान कर सकते हैं, वे थोड़े धन से धनी नहीं हैं। विद्यापति कहते हैं हे मेनका, सुन, दिगम्बर (एकदम) भोला हैं।

(६१२)

कहाँसौ सूगा आएल नेह लायल।
कहाँ लेल बसेरा अमृत फल भोजन ॥

(फलाँ) गाम सौं सूगा आएल नेह लाएल।
(फलाँ) गाम लेल बसेरा अमृत फल भोजन ॥
के यह पिंजड़ा गढ़ाओल सूगा पोसल।
के ताहि देत अहार अमृत फल भोजन ॥
(फलाँ) बाबा पिंजड़ा गढ़ाओल सूगा पोसल।
(फलाँ) सासुदेति अहार अमृत फल भोजन ॥

एहन सूगा नहि पोसिय
नेह लगाविय सूगवा हैत
उड़िआँत अपन गृह जाएत ॥
भनहि विद्यापति गाओल
जोगिनिक अन्त नहिं पाओल ॥

मि० गी० सं० १ला खण्ड, पृ० ३६

अनुवाद—कहाँ से सुग्गा (जमाइ) आया, स्नेह लाया। कहाँ वासस्थान बनाया, कहाँ अमृत-फल भोजन किया। अमुक गाँव से सुग्गा (जमाइ) आया, स्नेह लाया। अमुक ग्राम में वासस्थान बनाया इत्यादि। किसने यहाँ पिंजड़े का निर्माण किया, किसने सुग्गा पोसा ? कौन उसको अमृतफल भोजन करने को देता है ? अमुक बाबा ने पिंजड़ा निमार्ण किया इत्यादि। अमुक सास ने अमृत फल भोजन करने के लिए दिया। ऐसा सुग्गा मत पोसना, सुग्गा स्नेह लगा कर उड़ कर अपने घर चला जाएगा। विद्यापति गाते हैं, योगिनी का अन्त नहीं पाया।

(६१३)

पाहुन नन्दि भवानी।
आज पाहुन नन्दि भवानी ॥
माइ हे वैसक देलन्हि बघम्बर आनि।
आजं पाहुन नन्दि भवानी ॥

घर नहिं सम्पति घृत नहिं गोरस।
पाहुन आनल माइ हे कौन भरोस ॥
हर माला लय धरथि ध्यान।
पाहुन जमय माइ हे पहिले साँझ ॥

मांगि-चांगि लयलाह माइ हे तामा दुइ मिसिआ।
एक चरित्र देखि हँसय परोसिआ ॥
भनहि विद्यापति सुनिए भवानी।
एहन पाहुन माइ हे नित दिन आनी ॥

मि० गी० सं० २रा खण्ड, पृ० ३०-३१

अनुवाद—हे नन्दि, आज भवानी अतिथि हैं। हूँ माँ, बैठने के लिए बाघ-छाल ला दिया। घर में सम्पत्ति नहीं है, गोरस-घृत नहीं, किस भरोसा पर अतिथि ले आए? हर माला लेकर ध्यान करते हैं। अतिथि प्रथम सन्ध्या को भोजन करते हैं। भिक्षा-शिक्षा करके मामूली सामग्री काठ के छोटे बर्त्तन में ले आए। यह व्यापार देख कर पड़ोसी हँस रहे हैं। विद्यापति कहते हैं, भवानी सुनो, इस प्रकार के अतिथि (भले ही) नित्य दिन आवें।

(६१४)

गौरी औरी ककरा पर करती
बर भेल तपसि भिखारि।
आगे माइ हेमसिखर पर बसथि
एक घर-नै छैन्ह अपन परार॥
बारि कुमारी राज दुलारी
ऋषि के प्रान अधार।
से गौरी कोना बिपति गमौती
के मुख करत दुलार॥

तेल फुलेल लै केश बन्हावथि
और उगावथि आँग।
से गौरा कोना भस्म लोटैती
नितउठि कुटती भाँग॥
भनहिं विद्यापति सुनिए मनाइनि
इहो थिक त्रिभुवन नाथ।
सुभ सुभ कै गौरी बिवाहिय
इहो वर लिखल ललाट॥

मि० गी० सं २रा खण्ड, पृ० ३१

अनुवाद—गौरी किसके ऊपर क्रोध (औरी) करें? उनका वर तपस्वी भिखारी है। हे माँ, हिमगिरि पर वास करते हैं, एक भी घर नहीं है, अपना परिवार (स्वजन) कोई नहीं। बालिका कुमारी, राजदुलारी, ऋषि (हिमालय) का जीवन-आधार। वह गौरी विपद पड़ने पर किस प्रकार काटेगी? कौन उसका मुख पकड़ कर आदर करेगा? वह तेल-फुलेल से केश सँवारती है और अंग में अंगराग का लेप करती है—वह गौरी किस प्रकार भस्म में लोटेगी, रोज भाँग कूटेगी? विद्यापति कहते हैं, मन्दाकिनी सुन, ये त्रिभुवन के नाथ हैं। शुभ-शुभ करके गौरी को ब्याह दो, उसके कपाल में यही वर लिखा था।

(६१५)

गौरा तोर अगना।
बड़ अजगुत देखल तोर अंगना॥
एकदिस बाघ सिंघ करे हुलना।
दोसर बलद छौह सेहो बौना॥
कात्तिक गनपति दुइ चेगना।
एक चढ़े मोर पर एक मुसलदना॥

पैच उधार मागय गेलौं अँगना।
सम्पिति मध देखल एक भँघोटना॥
खेतीन पथारी करे भाग अपना।
जगतक दानी थिका तीन भुवना॥
भनहि विद्यापति सुनु उगना।
दरिद्र हरन करु धैल सरना॥

मि० गी० सं २रा खण्ड, पृ० ३२

अनुवाद—हे गौरी तुम्हारे आँगन में बड़ा आश्चर्य देखा। एक ओर बाघ-सिंह हुड़ाहुड़ि करते हैं, दूसरी ओर बलद है, वह भी बौना। कात्तिक गणपति दो बालक हैं, एक मोर पर चढ़ता है, दूसरे की सवारी है—चूहा। (मैं) उसके आँगन कुछ पैंचा उधार माँगने गयी थी; देखा कि केवल सम्पत्ति भंगघोटना है। अपने भाग की भी खेती वह नहीं करता, और जगत के दानी और त्रिभुवन का नाथ है। विद्यापति कहते हैं, उगना, सुन, दारिद्र्य हरण करो, (मैंने) शरण ली।

(६१६)

डाली कनक पसारल
नयनायोग वेसाहल।
नैना कोना आइलि
सकल योग सभ लाइलि॥

हेमत आनल वर पसुपती
एकोने बाजथि इद्‌मती॥
सुभ सुभ कए सभ भाखीअ
गौरी वसि हर कैं राखीअ॥

भनहि विद्यापति गाओल
जोगनिक अन्त नहि पाओल॥

मि० गी० सं ३रा खण्ड, पृ० ६

अनुवाद—सोना की डाली (छोटी डाली) पसारी। उसमें नयना योगिनी को भाव (दर) करके ले आया। वह नयना योगिनी किस प्रकार आयी? सब योगिनियाँ उसे मिल कर ले आयी। हेमन्त (हिमालय) पशुपति को वर लाए, वह इद्‌मति कुछ भी नहीं बोलता। सब कोई "शुभ "शुभ" कर रहे हैं। गौरी (जिससे) हर को वश में करके रखें। विद्यापति गाते हैं कि योगिनी का अन्त पाया नहीं जाता।

(६१७)

नैहर आव हम जाएब सदासिव। नैहर आव॥
पड़िवा तिथि हम जात्रा कयकँ, द्वितीया गमन कराएब॥
सिव हो नैहर आव हम जाएव, सदासिव नैहर आव॥
तृतीया में हम पथहिं विताएव
चौठिमें काजर लगाएव
सिव हो नैहर आव हम जाएव, सदासिव नैहर आव॥
पंचमि चन्दन अंग लगाएव
षष्ठी वेल तरु जाएव
सिव हो नैहर आव हम जाएव, सदासिव नैहर आव॥
नवपत्री संग सप्तमी प्रातमें
भग्नक घर हम आएव,
सिव हो नैहर आव हम जाएव, सदासिव नैहर आव॥
अष्टमि दिन महा पूजा निसि वलि
लय लय मन्त्र जगाएव
सिव हो नैहर आव हम जाएव, सदासिव नैहर आव।
नवमी में तिरसूलक पूजा
सर्वविधि वलि चढ़वाएव
सिव हो नैहर आव हम जाएव, सदासिव नैहर आव॥

नवो निधि सेवक कें दय क
दसमी कलस (घट) उठवाएब,
सिव हो नैहर आब हम जाएब, सदासिव नैहर आब ॥
भन विद्यापति-जननी कहल सिव,
फेरि आपन गृह आएब
सिव हो नैहर आब हम जाएब, सदासिव नैहर आब ॥

मि० गी० सं ३रा खण्ड, ८० ६

अनुवाद—हे सदाशिव, मैं अभी नैहर जाऊँगी। प्रतिपदा तिथि को मैं यात्रा करूँगी, द्वितीया को गमन करूँगी। तृतीया रास्ते में काटूँगी, चतुर्थी को (नयनों में) काजल लगाऊँगी। पंचमी को अंग में चन्दन लगाऊँगी, षष्ठी को बेलतरू के पास जाऊँगी। सप्तमी के प्रात में नवपत्रिका के साथ भत्तु के घर आऊँगी। अष्टमी के दिन महापूजा निशि को बलि ग्रहण कर भत्तु को जगाऊँगी। नवमी को त्रिशूल पूजा और बहु प्रकार की बलि चढ़ाने को कहूँगी। सेवक को नवनिधि देकर दसमी को कलसी (घट) उठाने को कहूँगी। विद्यापति जननी ने शिव को कहा कि फिर आप के घर आऊँगी।

(६१८)

सुजन अरजी कल मन्दरे,
अवसर ने करि मन्दरे।
सातखण्ड कुसिआररे,
निकसत प्रेम पिआर रे॥
नव-कामिनि नव-नेहरे,
तैजलन्हि हमर सिनेहरे॥

नवदल फुलय पलास रे,
भ्रामिनि भमहर विलासरे॥
ओतहि रहथु दगफेरि रे,
दरसन देथु एक बेरि रे॥
भनहि विद्यापति भानरे,
सु पुरुस गेलाह कुठाम रे॥

मि० गी० सं तीसरा खण्ड, पृ: ८६

अनुवाद—हे सुजन, प्रार्थना में कितनी देर (करोगे)? अवसर नष्ट मत करना। इक्षु सातखण्ड होता है, प्रेम प्रीति बाहर होती है। नूतन कामिनी, नूतन प्रेम किन्तु मेरे प्रति उसने स्नेह का त्याग किया। नूतन फूल दल फूटा; भ्रमर उसमें विलास करता है। उस ओर एक बार दृष्टि करो, एक बार दर्शन दो। विद्यापति कहते हैं, सुपुरुष कुस्थान गया।

(६१६)

माटी भलि जोहिकहु आनलि बानी।
सम्भु अराधए चललि भवानी॥
आक धुथुर फुल देय मोयँ जोही।
जगत जनमि डर छाड़ल मोही॥

जय किकर मोर कि करत अंगे।
रह अपराधी बलिया संगे॥
जे सबे कएल हर सबे मोर दोसे।
से सबे कएल हर तोहरि भरोसे॥

भनइ विद्यापति संकर सुनु।
अन्तकाल मोहि विसरह जनु॥

न० गु० (हर) २२

शब्दार्थ—वाणी--सरस्वती ; जोही—खोज कर ।

अनुवाद—वाणी (सरस्वती) मिट्टी खोज लायीं। भवानी शम्भु की आराधना करने चलीं। मुझे अर्क और धतूरे का फूल सरस्वती ने खोज कर ला दिया। जगत में जन्म लेकर भय ने मेरा त्याग कर दिया। यम-किंकर मेरे अंग में क्या क्या करेंगे ? बली (यमदूत) अपराधी का न्याय मेरे साथ है। हे हर, मैंने जो कुछ किया, उन सबों में मेरा दोष है, मैंने सब कुछ तुम्हारे भरोसे किया। विद्यापति कहते हैं, शंकर सुनो, अन्तकाल में मुझे भूलना मत।

(६२०)

सपन देखल हम सिवसिंघ भूप।
बतिस बरस पर सामर रूप॥
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन।
आब भेलहु हम आयु विहीन॥
समदु समदु निअ लोचन नीर।
ककरहु काल न राखथि थीर॥
विद्यापति सुगतिक प्रस्ताव।
त्याग के करुणा रसक स्वभाव॥

न० गु० (विविध) ११

अनुवाद—बत्तीस वर्षों पर श्यामवर्ण शिवसिंह राजा को मैंने स्वप्न में देखा। बहुत से प्राचीन गुरुजन भी देखे, अब मैं आयुविहीन हो गया (ऐसा प्रवाद है कि मृत मनुष्य को स्वप्न में देखने से मृत्यु आसन्न रहती है)। अपने लोचन-नीर का संवरण करता हूँ, किसी को भी काल स्थिर नहीं रखता। विद्यापति की सुगति का यही प्रस्ताव (सुगति का यही केवल भरोसा) है ; करुणा रस (अपना) स्वभाव छोड़ सकता है ? (भगवान करुणामय हैं, वे अपना करुणामयत्व कभी छोड़ नहीं सकते, मुझ पर करुणा अवश्य करेंगे)।

(६२१)

दुल्लहि तोहरि कतए छथि माय।
कहु न ओ आ बधु एखन नहाय॥
बृथा बुझथु संसार विलास।
पल पल नाना तरहक त्रास॥
माय बाप जोँ सदगति पाव।
सन्तति काँ अनुपम सुख आव॥
विद्यापति आयु अवसान।
कातिक धवल त्रयोदसि जान॥

न० गु० (विविध) १२

अनुवाद—दुल्लहि (कन्या का नाम), तुम्हारी माँ कहाँ है ? अब उन्हें स्नान करके आने कहो। संसार-विलास को वृथा समझो, पल-पल नाना प्रकार का त्रास है। माँ-बाप यदि सद्गति पावें तो (उससे) सन्तति को अनुपम सुख होता है। विद्यापति की आयु का अवसान कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को जानना।

पंचम खण्ड (ङ)

नाति प्रामाणिक पद—बंगाल में प्राप्त सन्दिग्ध पद

(६२२)

शुनइते ऐछन राइक वाणी।
नाह निकटे सखि करल पयानि॥
दूर सञे सो सखि नागर हेरि।
तोड़इ कुसुम नेहारइ फेरि॥
हेरइत नागर आयल ताहि।
कि करह ए सखि आओलि काहि॥
हमरि वचन कछु कर अवधान।
तुहुँ जदि कहसि से मानिनि ठाम॥
सुनि कहे से सखि नागर पास।
विद्यापति कह पूरल आस॥

प० त० ४५८; सा० मि० ६६; न० गु० ४६३

अनुवाद—राइ की इस प्रकार की बातें सुन कर सखी ने नाथ के निकट गमन किया। वह सखी दूर से नागर को देख कर फूल तोड़ने लगी (और) फिर कर देखने लगी (इस प्रकार का छल किया मानो वह फूल तोड़ने आयी थी, नागर के पास नहीं)। (उसे देख कर) नागर वहाँ आया (और उससे बोला), सखि, क्या कहती हो, क्यों आई हो? कुछ मेरी बात सुनो, यदि वही तुम उस मानिनी से कहो (जिससे उसका मान-भंग हो जाय)। (यह बात) सुन कर उस सखी ने नागर से (यह) कह दिया। विद्यापति कहते हैं, आशा पूर्ण हुई।

---

(६२२) *मन्तव्य*—सम्भव है कि यह पद गोविन्ददास का हो। यह पद गोविन्ददास की भणिता से युक्त दो पदों के (पदकल्पतरु ४५७ और ४५६) बीच में है और तीनों पदों को साथ पढ़ने से संगति होती है। 'शुनइते ऐछन राइक वाणी' किसी स्वतन्त्र पद के आरम्भ में नहीं रह सकता। ४५७ संख्यक पद इसके पहले का अंश है। वह पद नीचे दिया जाता है:—

शुन शुन ए सखि निवेदन तोय।
मरमक वेदन जानसि मोय॥
बैठये नाह चतुरगन माझ।
ऐछे कहबि यैछे ना होय लाज॥
सखिगन माझे चतुरि तोहे जानि।
आदर राखि मिलायब आनि॥
अब विरचह तुहुँ सो परबन्ध।
कानुक यैछे होय निरबन्ध॥
जीवन रहिते नाह यदि पाव।
गोविन्ददास तब तुया यश गाव॥

पदकल्पतरु के ४५६ संख्यक पद में दूती कृष्ण को उनके व्यवहार के लिए धिक्कारती है। उसके शेष में है:—

गोविन्ददास मतिमन्द।
हेरइते भैगेल धन्द॥

इन दोनों पदों के साथ अङ्गाङ्गिभाव से संयुक्त रहने के कारण ४५८ संख्यक पद भी गोविन्ददास की रचना मानी जा सकती है। गोविन्ददास ने विद्यापति के बहुत से पदों का अंश लेकर अपने पदों की रचना की थी।

(६२३)

धनि धनि रमनि जनम धनि तोर[1]।
सब जन कानु कानु करि झूरए[2]
सो तुआ भाव-विभोर ॥

चातक चाहि तियासल अम्बुद
चकोर चहि रहु चन्दा[3]।
तरु लतिका अवलम्बन कारि
मझु मन लागल धन्दा[4] ॥
केस पसारि जवहुँ तुहुँ आछलि
उर पर अम्बर आधा।
सोसब हेरि[5] कानु भेल आकुल
कह धनि इथे कि समाधा[6] ॥

हँसइत कब तुहु रसन देखाइलि
करे कर जोरहि मोर।
अलखिते दिठि कब हृदय पसारलि
पुन हेरि सखि कैलि कोर[7] ॥
एतहु निदेस कहल तोहे सुन्दरि[8]
जानि इह करह विधान।
हृदय-पुतलि[9] तुहुँ सो सून कलेवर
कवि विद्यापति भान ॥

पदामृ पृ० ६६ ; प० त० ६१ ; प० स० पृ० ३६ ; कीर्त्तनानन्द २४१ ; सा० मि० २२: न० गु० ८१

अनुवाद—धन्य, धन्य, तुम्हारा रमणी-जन्म धन्य हुआ। सब लोग कन्हायी, कन्हायी कह कर आकुल होते हैं, वह (कन्हायी) तुम्हारे भाव में विभोर हैं। मेघ ने क्षुधार्त होकर चातक की कामना की, चन्द्रमा चकोर को निरखता रह गया। तरु लता का 'अवलम्बन लिए रहा—(यह सब देख कर) मेरे मन में संशय उत्पन्न हुआ—(अर्थात् चातक मेघ को चाहता है, चकोर चन्द्रमा को, लता तरु का अवलम्बन करती है—कहाँ तुम उसकी प्रेम प्रार्थिनी होती, वही तुम्हारे प्रेम में विभोर हो गया है)—केश प्रसारित किए हुई, आधे वक्ष को कपड़े से ढाके हुई बैठी तुम थी, वह सब स्मरण कर कन्हायी आकुल होते हैं। हे धनि, कहो, इसका परिणाम क्या होगा ? दोनों हाथ जोड़ कर हँसते हँसते कब तुम उन्हें दर्शन दोगी, कब अलक्ष्य (तुम्हारी) दृष्टि (उनके) हृदय पर प्रसारित करोगी—और उनको देख कर सखी का आलिंगन करोगी। निर्देश करके यह सब तुमको मैंने कहा—तुम समझ कर इसक विधान करो। कवि विद्यापति कहते हैं, तुम हृदय-पुत्तलि हो, वह शून्य शरीर, अर्थात् तुम प्राण हो, वह प्राणशून्य शरीर मात्र।

---

(६२३) पदामृत का पाठान्तर—(१) रमनि जनम धनि तोर (२) भावइ (३) चन्द (४) धन्द (५) सङरि (६) कह धनि के मन ममाधा (७) हृदय खोलि तुहु दिठि पसारलि ताहे हेरि सखि करु कोर। (८) सकल विशेषकहतु तोते सुन्दरि जानि तुहु करबि विधान।

(१) पराग।

पदामृत समुद्र का पाठ—(१) सुन्दरि रमनि जनम धनि तोर (२) भावए (५) सोङरि (६) कह धनि कोन समाधा—इसके बाद भणिता के अतिरिक्त कोई अन्य चरण नहीं है। भणिता में है—

'ताकर अन्तर लगाइ निरन्तर
विद्यापति भाने जान।
किंचित कपट करि मानह
गोविन्ददास परमान ॥

(६२४)

पराण पिय सखि हामारि पिया।
अबहुँ ना आओल कुलिश-हिया॥
नखर खोयायलुँ दिवस लिखि लिखि।
नयन अन्धायलुँ पिया पथ देखि॥
यब हाम वाला पिया परिहरि गेल।
किये दोष किये गुण बुझइ न भेल॥
अब हाम तरुणि बुझलु रस-भाष।
हेन जन नाहि ये कहये पिया-पाश॥
विद्यापति कह कैछन प्रीत।
गोविन्द दास कह ऐछन रीति॥

पदकल्पतरु १६७३; न० गु० ६६५

(६२५)

हरि कि मथुरापुर गेल।
आजु गोकुल सून भेल॥
रोदति पिजर सुके।
धेनु धावइ माथुर मुखे॥
अब सोइ यमुनार कूले।
गोप गोपी नहि बुले॥
हाम सागरे तेजब परान।
आन जनमे होयब कान॥
कानु होयब जब राधा।
तब जानब विरहक बाधा॥
विद्यापति कह नीत।
अब रोदन नह समुचीत॥

प० त० १६३८; सा० मि० ७८; न० गु० ६२४

---

(६२४) *मन्तव्य*—पदामृत समुद्र में (पृ० १२७) इस पद के साथ निम्नलिखित कलियाँ पायी जाती हैं (हेन न नाहि ये कहये पियापाश' के बाद)

आयब हेन करि मोर पिया गेला।
पुरब के यतगुण विसरित भेला॥
मने मोर जत दुख कहिबो काहाके।
त्रिभुवन एत दुख नाहि जाने लोके॥
भनहु विद्यापति शुन अरे राइ।
कानु समुझाइते अब चलि जाइ॥

(६२५) *मन्तव्य*—पदकल्पतरु की एक पोथी में भणिता है—हेन बुझि निरुण धाता।
गोविन्ददास दुख दाता॥

(६२६)

सजनि कानुके कहवि बुझाय।
रोपिया प्रेम बीज अंकुरे मोड़लि
बाढ़ब कोन उपाय॥

तैलविन्दु यैछे पानि पसारल
तैछन तुआ अनुरागे।
सिकता जल यैछे खनहि सुखायल
ऐछन तोहारि सोहागे॥
कुल कामिनि छिलुँ कुलटा भैगलु
ताकर वचन लोभाइ।
आपन करे हाम मुड़ मुड़ायलुँ
कानुक प्रेम बाढ़ाइ॥

चोरमणि जनु मने मने रोयइ
अम्बरे वदन छापाइ।
दीपक लोभे शलभ जनु धायल
सो फल भुजइते चाइ॥
भणये विद्यापति इह कलियुगरिति
चिन्ता ना कर सोइ।
आपन करम दोष आपहि भुंजइ
योजन परवश होइ॥

पदकल्पतरु ६६८ ; न० गु० ७००

(६२७)

प्रेमक अंकुर जात आत भेल
न भेल जुगल पलासा।
प्रतिपद चाँद उदय जैसे जामिनी
सुख-लव भै गेल निरासा॥
सखि हे अब मोहे निठुर मधाइ
अवधि रहल विसराइ॥

के जाने चांद चकोरिनी वंचब
माधवि मधुप सुजान।
अनुभवि कानु पिरीति अनुमानिए
विघटित विहि निरमान॥

पाप परान आन नहि जानत
कान्ह कान्ह करि झुर।
विद्यापति कह निकरुन माधव
गोविन्ददास रस पूर॥

प० स० संख्या २३ ; प० त० १६४० ; न० गु० ६६६

शब्दार्थ—आत—आतप, रौद्र ; जुगल पलासा—युगल पत्र ; सुखलव—सुख का कण ; विसराई—भूल कर।

अनुवाद—प्रेम का अंकुर जन्मते ही रौद्र ('आतप—राधामोहन ठाकुर की टीका ; शोक में 'प' स्खलित हो गया है 'पद-सेतु-पाठ : सर्प के तपताप से शुष्क) हो गया। युगल पल्लव नहीं हुए। प्रतिपद का चाँद यामिनी को जैसा

(६२६) यह पद गोविन्ददास की भणिता से भी पाया जाता है।

उदित होता है, (मेरे भाग्य से उसी प्रकार) सुख का कणिका-लाभ भी निराशा में परिणत हुआ। हे सखि, अभी माधव मेरे प्रति निष्ठुर हैं। (नहीं तो) अवधि भूल कैसे बैठते? यह कौन जानता था कि चाँद चकोरी को और सुजन मधुप माधवी लता को ठगेगा। कानु की प्रीति का अनुभव कर अनुमान करती हूँ कि विधि ने दुर्घटना का निर्माण किया है। कृष्ण मुझे जो इतना प्यार करते थे, उसे अनुभव कर समझती हूँ कि विधाता ने यह दुर्घटना घटायी है। उनका कोई दोष नहीं है। पापप्राण अभी भी नहीं जाते, कानु कानु कर रोते हैं। विद्यापति कहते हैं कि माधव निष्करुण हैं। गोविन्ददास ने यह रस-पूरण किया है।

(६२८)

अबहु राजपथ पुरुजन जागि।
चाँद किरन जगमण्डल लागि॥
सहए न पारए नव नव नेह।
हरि हरि सुन्दरि पड़लि सन्देह॥
कामिनि कएल कतहु परकार।
पुरुसक वेशे कएल अभिसार॥
धम्मिल लोल झोंट कए वन्ध।
पहिरल वसन्त आन करि छन्द॥
अम्बर कुच नहि सम्बरु भेल।
वाजन-जन्त्र हृदय करि लेल॥
अइसए मिललि धनि कुंजक माझ।
हेरि न चिन्हइ नागर-राज॥
हेरइत माधव पड़लन्हि धन्द।
परशिते भांगल हृदयक दन्द॥
विद्यापति कह तब किये भेलि।
उपजल कत कत मनमथ केलि[1]॥

प० त० १०१२; कीर्त्तनानन्द ४००; सा० मि० ४३; न० गु० २११

अनुवाद—अभी भी राजपथ में पुरजन जागे हुए हैं, ज्योत्सना जगत-मण्डल में छायी हुई है। नव नव अनुराग सह नहीं सकती हाय, हाय, सुन्दरी संशय में पड़ गयी। कामिनी ने कितने प्रकार के उपाय किए पुरुष के वेश में अभिसार किया। केश (पुरुषों के समान) चूड़ा के समान बाँधा, वसन अन्य प्रकार से पहिरा। अम्बर में स्तन संवरण नहीं हुआ (इसलिए) वाद्य-यन्त्र हृदय पर धारण किया। इस तरह धनी कुंज में जाकर मिली अर्थात् उपस्थित हुई। नागरराज (उसको) देख कर पहचान न सके। माधव (उसको) देख कर संशय में पड़ गए, स्पर्श करते ही हृदय का संशय दूर हुआ अर्थात् पहचान गए। विद्यापति कहते हैं, उसके बाद क्या हुआ, मन्मथकेलि कितने प्रकार से हुई।

---

(६२८) (१) पदकल्पतरु की एक प्राचीन पोथी में है—

कसिद कनया जेन कुन्दन हेम।
तुलन दिवारे नाई ए दोहार प्रेम॥
दोहे रोहा निरखिते दोहे दोहा भुले।
गोविन्ददास चिते निरवधि झुरे॥

कीर्त्तनानन्द की भणिता में है :—

भनइ विद्यापति सुन वर नारि।
दूध समुद जनि राजमरालि॥

(६२९)

विरह व्याकुल बकुल तरु-तर[1]
पेखल[2] नन्द-कुमार रे।
नील नीरज नयन सयँ सखि[3]
ढरइ नीर अपार रे[4] ॥
पेखि मलयज पंक मममद[5]
तामरस घनसार रे।
निज पानि-पल्लव[6] मूदि लोचन
धरनि पड़ असम्भार रे[7] ॥

वहइ मन्द सुगन्ध सीतल
मन्द मलय समीर रे।
जानि प्रलय कालक प्रबल पावक
दहइ सून सरीर रे[8] ॥
अधिक वेपथ[9] टूटि पड़ु खिति
मसृन मुकुता-माल रे।
अनिल-तरल तमाल तरुवर
मुंच सुमनस जाल रे ॥

मान-मनि तेजि सुदति चलु जाहि[10]
राए रसिक सुजान रे।
सुखद सुति अति सरस दण्डक
कवि विद्यापति भान रे[11] ।

प० त० ४८८ ; न० गु० ३७६ ; (गीतचिन्तामणि और कीर्त्तनानंद) : क्षणदा पृ० १२६

अनुवाद—बकुल वृक्ष के नीचे नन्दकुमार को देखा। उनके नीलकमल के समान नयनों से अपार अश्रु बरस रहा था। चन्दनपंक, मृगमद, पद्म, कर्पूर, (राधा के अंगभूषण समूह) देखकर करपल्लव से आँखें बन्द कर धरणी पर अवश होकर गिर गये। (माधव) बहुत जोर काँप रहे थे (उससे) मसृन मुक्तामाला छितरा कर मिट्टी पर गिर गयी। (उससे मालूम हुआ) मानों तमाल तरुवर पवन से आन्दोलित होकर पुष्प मोचन कर रहा हो। सुन्दरि, मानमणि का त्याग कर चलो, जहाँ रसिकराज सुचतुर हैं (मान त्याग कर माधव के पास चलो)। कवि विद्यापति (अथवा कवि भूपति कण्ठहार) पावन श्रुति सुनकर सरस दण्डक छन्द कह रहे हैं।

---

(६२९) [illegible] गीतचिन्तामणि का *पाठान्तर*—(१) तरुतले (२) पेखलु (३) नील नीरज नयान-लो सखि (४) झरइ नीर पसारे (५) देखि (६) पल्लवे (७) पेखा सम्भार रे (८) परशे दहइ शरीर रे (९) वेपथु (१०) यदि (११) भूपति भन कण्ठहार रे :—

मन्तव्य—पदकल्पतरु की भणिता 'कवि भूपति कण्ठहार'; नगेन्द्र ने भणिता क्या कीर्त्तनानंद में पायी है ?

(६३०)

सुन सुन माधव निरदय देह।
धिक् रहु ऐसन तोहर सिनेह॥
काहे कहलि तुहुँ संकेत बात।
जामिनि बंचलि आनहि साथ॥
कपट नेह करि राहिक पास।
आन रमनि सँ करह बिलास॥
के कह रसिक शेखर वरकान।
तुहुँ सम मुरुख जगत नहि आन॥
मानिक तेजि काचे अभिलास।
सुधासिन्धु तेजि खारे पियास॥
क्षीरसिन्धु तेजि कूपे विलास।
छिय छिय तोहर रभसमय भास॥
विद्यापति कवि चम्पति भान।
राहि न हेरब तोहर बयान॥

प० त० ३६८ : न० गु० ३७४

(६३१)

चरन नखर-मनि-रंजन छांद।
धरनि लोटायल गोकुल चाँद॥
ढ़रकि ढ़रकि परु लोचन-नोर।
कतरुप मिनति कएल पहु मोर॥
लागल कुदिन कएल हम मान।
अबहु न निकसये कठिन परान॥
रोस तिमिरअत वैरि किए जान।
रतनक भै गेल गैरिक भान॥
नारिजनम हम न कएल भागि।
मरन सरन भेल मानक लागि॥
विद्यापति कह सुनु धनि राइ।
रोयसि काहे कह भल समुझाइ॥

प० त० ४५२ ; सा० मि० ६६ ; न० गु० ४६०

अनुवाद—गोकुल चाँद मेरे चरणनख की शोभा बढ़ा कर भूतल पर लोट गये (मेरे पैरों पर गिर गये)। [इसका एक अन्य अर्थ कोई कोई करते हैं—जिस गोकुलचाँद के चरण-नख (कितनो) रमणियों का आनन्द वर्द्धन करते हैं (चरणनख रमणीरंजन छाँद) वही गोकुलचाँद भूतल पर लोट गये) गोविन्ददास ने जिस पद में विद्यापति के इस पद का अनुकरण किया है, उसके भाव शेषोक्त अर्थ का कितना समर्थन करते हैं:—

याकर चरण नखर रुचि हेरइते
मुरछित कत कोटी काम
सो मझु पदतले धुलि लोटायल
पालटि न हेरल हाम॥]

कौन जानता है कि रोषरुपी अन्धकार इतना शत्रु है? (उस अन्धकार में) रत्न देखकर गैरिक का भान हुआ (क्रोधान्ध होने के कारण मैं माधव को रत्न नहीं समझ सकी, गेरुआ मिट्टी समझ कर उनकी उपेक्षा की)। विद्यापति कहते हैं, राइ धनि सुन, तू रोती क्यों है? अच्छी तरह समझाकर कह।

(६३१) यह पद कविरंजन की भणिता में पाया जाता है।

(६३२)

खिति रेनु गन जदि गगनक तारा।
दुइ कर सिंचि यदि सिन्धुक धारा॥
पुरुब भानु जदि पछिम उदीत।
तइअओ विपरित नह सुजन पिरीत॥
माधव कि कहब आन।
ककर उपमा पिअ पिरीत समान॥
अचल चलए जदि चित्र कह बात।
कमल फुटए जदि गिरिवर साथ॥
दावानल सितल हिमगिरि ताप।
चान्द जदि विसधर सुधा धर साप॥
भनइ विद्यापति सिव सिंघ राय।
अनुगत जन छाड़ि नहि उजियाय॥

न० गु० ८३२

अनुवाद—यदि क्षिति की धूल की गिनती हो जाए हाथ में यदि समुद्र का जल समा जाए, पूर्व का सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे तथापि सुजन की प्रीति विपरीत (विचलित) नहीं होती।

उदयति यदि भानु पश्चिमे दिग-विभागे
विकसित यदि पद्मः पर्वतानां शिखाग्रे।
प्रचलित यदि मेरुः शीततां याति वह्निः
न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदापि॥

—पद्यसंग्रह।

दावानल यदि शीतल हो और हिमगिरि उत्तप्त हो, चन्द्र यदि विषधारण करे और सर्प सुधा धारण करे—विद्यापति कहते हैं, राजा शिवसिंह कभी भी अनुगत जनों के परित्याग की बात नहीं सोचते।

(६३३)

सुनु सुनु ए सखि कहए न होए।
राहि राहि कए तनु मन खोए॥
कहइत नाम पेमे भए भोर।
पुलक कम्प तनु घरमहि नोर॥
गद गद भाखि कहए वर कान।
राहि दरस बिनु निकस परान॥
जब नहि हेरब तकर से मुख।
तव जिउ-भार धरब कोन सुख॥
तुहु बिनु आन नहि इथे कोइ।
बिसरए चाह बिसर नहि होइ॥
भनइ विद्यापति नहि विवाद।
पूरब तोहर सब मनसाध॥

न० गु० ८३ (बटतला)

अनुवाद—हे सखि सुनो, कहा नहीं जाता (यह कहने की बात नहीं)—राह, राह कहते (कन्हायी) देह और मन खो रहे हैं। (तुम्हारा) नाम कहते कहते प्रेम में विभोर होते हैं; पुलक, कम्प, स्वेद, अश्रु अंग में लक्षित होते हैं। गद्गद भाषा में बातें करते हैं, राह के दर्शन बिना प्राण बाहर होंगे। जब वे तुम्हारा वह मुख नहीं देख सकेंगे तो किस सुख के लिए जीवन-भार वहन करेंगे? तुम्हें छोड़ कर यहाँ कोई नहीं है—(कन्हायी तुमको) भूलना चाहते हैं, भूल नहीं सकते। विद्यापति कहते हैं, इसमें विवाद अर्थात् अन्य मत नहीं है। तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे।

(६३३) स्वर्गीय नगेन्द्र बाबू ने कहा है कि उन्होंने यह पद कीर्त्तनानन्द से लिया है, यह पद वहाँ नहीं पाया जाता।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—(क)

राजनामाङ्कित और ६ पद बंगला संस्करण समाप्त करने के बाद मिले थे। ये पद जोग अथवा दामाद को वश करने के हैं। हिन्दी संस्करण में ये पहले ही से सन्निहित हैं। उनकी संख्या है—२०१, २०६, २०७, २२८, २२९ और २३०।

परिशिष्ट—(ख)

बंगाली विद्यापति के पद

पदामृतसमुद्र, पदकल्पतरु और संकीर्त्तनामृत अठारहवी शताब्दी के संग्रह-ग्रन्थ हैं। इस समय तक विद्यापति के पद बंगाल में अनेक परिवर्तित रूप में गाये जा रहे थे। बंगाली विद्यापति सोलहवीं शताब्दी के शेषभाग अथवा सतरहवीं शताब्दी की प्रथम भाग के आदमी थे। उन्होंने विद्यापति के भाव और दो चार उत्प्रेक्षाएँ लेकर बंगाली श्रोताओं की बोधगम्य ब्रजबोली में बहुत से पदों की रचना की थी और कुछ पद विद्यापति के भाव लेकर खाँटी बँगला में रचना की थी—यथा १, ५, ८, १०, १२, २४, २५। उक्त-संग्रह-ग्रन्थों के सुपण्डित और रसिकभक्त संग्रह-कर्त्ताओं ने जिस प्रकार विद्यापति के पदों का संग्रह किया था, उसी प्रकार बंगाली विद्यापति के भी कुछ अच्छे अच्छे पदों को अपने ग्रन्थों में सन्निविष्ट किया था। किसी कवि का परिचय देना उनका उद्देश्य नहीं था। सुतरां उन्होंने जिस जिस भणिता में पद पाए थे, वैसे ही उनको रख दिया था। दोनों विद्यापतियों की रचनारीतियों का पार्थक्य वे समझ न सके थे, ऐसा अभियोग लगाने का कोई युक्ति-संगत कारण नहीं है।

चैतन्यदेव के पहले श्याम नाम प्रचलित नहीं था। जयदेव के गीत-गोविन्द में श्याम नाम नहीं है, केवल ११/११ श्लोक में यह शब्द विशेषणरूप में व्यवहृत हुआ है। श्री रुप गोस्वामी संगृहीत पदावली में भी कहीं श्रीकृष्ण को श्याम नाम से अभिहित नहीं किया गया है। विद्यापति के जो सब पद नेपाल और मिथिला में पाये गये हैं, उनमें कहीं भी श्याम नाम नहीं है। नेपाल पोथी के २८७ पदों में ४२ में माधव (१), ३४ में कान्ह, कन्हा,

---

(१) नेपाल पोथी की पद संख्या—१, २, १७, १९, २०, २२, २४, २६, ३०, ३२, ४८, ७०, ७२, ८२, १३०, १४२, १५२, १६४, १६५, १६६, १८०, १८१, १८२, १९०, १९४, १९५, १९६, २१२, २२७, २२८, २४१, २४२, २४४, २४८, २४९, २५०, २५२, २५४, २५७, २६१, २६७, २७०।

कान्हा, काहून, कन्हाइ (२),, ३२ में हरि (३), ६ में मुरारि (४), २ में गोविन्द (५), १ में दामोदर वनमालि (६), २ में मधुसूदन (७) और १ में नन्द के नन्दन (८) नाम पाया जाता है।

रागतरंगिणी में उद्धृत विद्यापति के ५१ पदों में से १ में माधव, ४ में हरि, ३ में मुरारी, १ में मधुसूदन, १ में वनमाली, १ में कान्ह और १ में कान्ह पाया जाता है (९)। रामभद्रपुर पोथी के ८६ पदों में से १७ में माधव, १० में कान्ह, ८ में हरि, ३ में मुरारि और १ में कृष्ण है (१०)।

२, ४, ६, १६, २१, २२, २६ और २८ संख्यक पदों में श्याम नाम रहने से उनको बंगाली विद्यापति की रचना माना गया है। ११ संख्यक पद में सुबल का नाम और १८ संख्यक पद में जटिला का नाम पाया जाता है। ये सब नाम भी श्रीरूप गोस्वामी की "कृष्णगणोद्देश दीपिका" की रचना के बाद जनसमाज में खूब प्रचलित हुए थे। श्री चैतन्य के आविर्भाव के पहले जिस प्रकार के भाव की बात कहनी सम्भव न थी उस प्रकार के भाव २१, २३, २७ ३० और ३१ संख्यक पदों में पाये जाते हैं। इसी लिए इन्हें बंगाली विद्यापति की रचना माना गया है।

---

(२) ४, ८, ११, १५, १६, ३८, ४३, ५२, ५७, ६२, ६७, ६९, ७२, ७३, ८१, ९६, १०१, १०५, १०८, ११०, ११४, १२०, १५२, १५६, १६८, १७३, १९२, १९६, २०९ २१०, २१८, २५२, २८२, २८७।

(३) २१ २३, २७, २९, ३५, ३६, ४०, ४५, ६१, ७९, १०३, ११६, १३७, १५७ १५८, १६१, १६६, १६७, १९९, १९८, २०२, २०३, २०४, २२२, २३६, २४६, २४७, २५१, २५९, २६४, २६६, २७३।

(४) ४१, ७५ ८४, १४३, १५१, १५४, १७१, २२१, २३१।

(५) १२, १२९।

(६) १४

(७) २८५, २८६

(८) २१५

(९) रागतरंगिणी के ८१, ८५, ८४, १०४, १०८, ११६ पृष्ठों में माधव, [illegible], [illegible], १०४, १०७ पृष्ठों में हरि, [illegible], [illegible] और [illegible] पृष्ठों में मुरारि, ४७ पृष्ठ में मधुसूदन, ४० पृष्ठ में वनमालि, ४१ पृष्ठ में कान्ह और काला है।

(१०) रामभद्रपुर पोथी से शिवनन्दन ठाकुर ने जो "विद्यापति विशुद्ध पदावली" निकाली थी उसके [illegible], १२, १५, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], ३१, ३६, ४४, ४८, ५१, ५६, ७४, ७७ और ७८ पदों में माधव, ४, ८, १४, १८, २०, ३३, [illegible], [illegible], [illegible] और ८४ पदों में कान्ह [illegible], ३८, ४९, ५२, ५४, ६६ ८३ और ८५ पदों में हरि है।

(१)

शुनलो राजार झि
तोरे कहिते आसियाछि।
कानु हेनन घ पराणे वधिलि
ए काज करिला कि॥
बेलि अवसान काले
कवे गियाछिला जले।
ताहारे देखिया इषत् हासिया
धरिलि सखीर गले॥

देखाइया बयान-चान्दे
तारे फेलिलि विषम फान्दे।
तुहुँ हुरिते आओलि लखिते नारिल
ओइ ओइ करि कान्दे॥
हृदय दरशि थोर
तार मन करि चोर।
विद्यापति कह शुन ये सुन्दरि
कानु जियायवि मोर॥

पदकल्पतरु २१४; कीर्त्तनानन्द २५२

(२)

पदकल्पतरु में प्राप्त असली रूप पहले दिया जाता है, उसके बाद नगेन्द्र बाबू ने किस प्रकार उन्हें मैथिली भाषा में परिवर्त्तित किया था वह भी दिया जाता है।

(क)

एक दिन हेरि हेरि हासि हासि याय।
आर दिन नाम धरि मुरलि बाजाय॥
आजि अति नियड़े करये परिहास।
ना जानिये गोकुले काहार विलास॥
शुन सजनि ओ नागर श्यामराज।
मूल विनु पर-धन मागये वेयाज॥

अति परिचय नाहि देखि आन काज।
ना करये संभ्रम ना करये लाज॥
आपना नेहारि नेहारे तनु मोर।
देइ आलिगन होइ विभोर॥
खने खने वैदगधि कला अनुपाम।
अधिक उदार देखि ए परिनाम॥

विद्यापति कहे आरति ओर।
वुझइ न वूझइ इह रस बोल॥

---

(१) *मन्तव्यः—* इस पद में इस बात का सुस्पष्ट प्रमाण मिलता है कि विद्यापति नाम के एक बंगाली सज्जन थे। यह किसी प्रकार से भी मैथिल विद्यापति की भाषा नहीं हो सकती।

वैष्णवदास ने निम्नलिखित छोटी बंगला पद में भी विद्यापति की भणिता का संग्रह किया है।

आजि केने तोमा एमन देखि।
अंग मोड़ा दिया कहिछ कथा।
सघने गगने गनिछ तारा।
यदि वा ना कह लोकेर लाजे।
आँचरे कांचन झलके देखि।
विद्यापति कहे ए कथा दृढ़।

सघने ढलिछे अरुण आँखि॥
ना जानि अन्तरे कि भेल वेथा।
देव अवधात हैयाछे पारा॥
मरमि जनार मरमे राजे॥
प्रेम कलेवर दियाछे साखी॥
गोपत पिरिति विषम बड़।

कीर्त्तनानन्द (पृ० २४६), पदकल्पतरु २२६। पदरत्नाकर में अवश्य यह पद ज्ञानदास की भणिता में पाया गया है।

(२) (ख)

एकदिन हेरि हेरि हँसि हँसि जाय।
अरु दिन नाम धरि मुरलि बजाय ॥
आजु अति नियरे करल परिहास।
ना जानिए गोकुले केकर विलास ॥
साजनि ओ नागर-सामराज।
मूल बिनु परधन माँगब आज ॥

परिचय नहिँ देखि आनक काज।
न करए सम्भ्रम न करए लाज ॥
अपन निहारि निहारि तनु मोर।
देइ आलिंगन होइ विभोर ॥
खन खन वैदगधि-कला अनुपाम।
अधिक उदार देखि एँ परिनाम ॥

विद्यापति कह आरति ओर।
बुझिओ न बुझए इह रस भोर ॥

(३)

देखलि कमलमुखी कहन न याय।
मन मोर हरि लइ मदन जागाय ॥
तनु अति सुकोमल पयोधर गोरा।
कनकलता पर श्रीफल जोरा ॥
कुंजर गमनी अमिया रस बोले।
श्रवणे सोहंगम कुन्डल दोले ॥

भाङु कामन भयल तछु आगे।
तिखन कटाख मरमे शर लागे ॥
नयनक गुण तँति बड़इ विकारा।
बान्धल नागर ओ अति गोङारा ॥
विद्यापति कवि कौतुक गाय।
बड़ पुण्ये रसवती रसिक रिझाय ॥

कीर्त्तनानन्द १७९

(४)

नाहि उठल तीरे राइ कमलमुखि
समुखे हेरल वर कान।
गुरुजन संगे लाजे धनि नत-मुखि
कैछने हेरब बयान ॥
सखि हे अपुरुप चातुरि गोरि।
सब जन तेजि अगुसरि फुकरइ
आइ वदन तँहि फेरि ॥

तँहि पुन मोति-हार टुटि फेलल
कहत हार टुटि गेल।
सब जन एक एक चुनि संचरु
स्याम-दरस धनि केल ॥
नयन चकोर कानु-मुख ससिवर
कयल अमिय रस-पान।
दुहुँ दोंहा दरसने रसहु पसारल
विद्यापति भाले जान ॥

प० त० ७२१ ; सा० मि० १७ ; न० गु० ४

(५)

कि लागि वदन झाँपसि सुन्दरि
हरल चेतन मोर।
पुरुख बधेर भय न करह
इ बड़ साहस तोर॥
मानिनि आकुल हृदय मोर।
मदन वेदन सहिते ना पारि
श्रवण लइलु तोर॥

किये गिरिवर कनया कटोर
ता देखि लागय धन्द।
हियार उपर सम्भु पूजित
वेढ़िया बालकचन्द॥
ए कर-कमले परशिते चाहि
विहि नहे जदि वामा।
तोहारि चरने श्रवण लइलुँ
सदय हइबे रामा॥

चंचल देखिया आकुल हइलुँ
व्याकुल हइल चित।
कहे विद्यापति सुनह जुवति
कानुन करह हीत॥

प० त० २११, सा० मि० ४३, न० गु० २५६

(६)

यब से पेखलु हाम रूपे गुणे अनुपाम
ताहे रहल मन लागि।
तुहुँ सुचतुर धनि मोय अनुकूल जानि
यब पुन हय मोर भागि॥

ओइ दिवस खन होयब सुलखन
मोहे मिलव धनि राइ।
हामारि शुभदिन पायब परशन
तब हाम जीवन पाइ॥

भनये विद्यापति शुन हे गोकुल पति
मने किछु ना भावह दुख।
सोइ विनोदिनि तोहे मिलाय आनि।
तबहि होयब मझु सुख।

नवद्वीपचन्द्र ब्रजवासी और खगेन्द्रनाथ मित्र सम्पादित
पदामृत माधुरी, प्रथम खण्ड, पृ० २०१

(७)

कि कहब माधव पुनफल तोर।
तोहर मुरलि-रवे राहि विभोर॥

ताहि पुन सुनल नाम तोहार।
से सब भाव हम कहहि न पार॥
अंग अवस भेल काँपि आगेआन।
मुरछित भेल धनि किछु नहि जान॥

बुझए न पारिअ कैसन रीत।
कीए भेल किछु नह परतीत॥
आवए से अब काल पथ आज।
विद्यापति कह अवइत काज॥

बटतला, न० गु० १०७

(८)

एमन पियार कथा कि पुछसि रे सखि
परारा निछिया तारे दिये ।
गड़ेर[१] कुटागाछि शिरे ठेकाइया
आलाइ बालाइ तार निये ॥

हात दिया पिया मुखानि माजिया
दीप निया निया चाय ।[२]
कतेक जतने रतन पाइया
थुइते ठान्ति न पाय ॥

कर्पूर ताम्बुल आपनि चिबिया
मोर मुखे भरि देय ।
चिबुक धरिया ईषत् हासिया
मुखे मुख दिया नेय ॥[३]

हियार उपरे शोयाइया मोरे
अवश हइया रय ।
ताहार पिरिति तोमारे एमति
कवि विद्यापति कय ॥

प० स० पृ० १६६ ; प० त० २१२१

(९)

मदन मदालसे स्याम विभोर ।
ससिमुखि हसि हसि करू कोर ॥
नयन दुलादुलि लहु लहु हास ।
अगं हेलाहेलि गद गद भास ॥

रसवति नारि रसिकवर कान ।
रहि रहि चुम्बइ नाह वयान ॥
दुहु तनु मातल दुहु सर हान ।
विद्यापति करू से रस गान ॥

प० त० २००८ ; न० गु० ८२२

(१०)

राइ जाग राइ जाग शुक सारी बले ।
कत निद्रा याओ काल माणिकेर कोले ॥

रजनी प्रभात हरल वलि ये तोमारे ।
अरुण किरण हेरि प्राण काँपे डरे ॥
सारी वले सुन शुक गगने उड़ि डाक ।
नव जलधरे डाकि अरुणोर ढाक ॥

शुक बले शुन सारि आमरा पशुपाखी ।
जागाइते ना जागे राइ धरम कर साखी ॥
विद्यापति कहे चाँद गेल निज ठाइ ।
अरुण किरण हवे फिरे घरे याइ ॥

दुर्गादास लाहिड़ी कर्त्तृक १३१२ साल में सम्पादित वैष्णव पद लहरी, १०

(८) *पाठान्तर*—पदकल्पतरु (१) गड़ोर (२) दारिद्र येमन पाइया रतन (३) पदकल्पतरु में यह नहीं है
थुइते ठाञि ना पाय ॥

(११) क

सुबलेर सने बसिया श्याम।
कहए रजनि विलास काम॥
से ये सुबदनि सुन्दरि राइ।
आवेसे हियार माझारे लाइ॥
चुम्बन करल कतहुँ छन्द।
रभसे बिहसि मन्द मन्द॥
बहुविध केलि करल सोइ।
सो सब सपन होयल मोइ॥
किवा से बचन अमियामीठ।
भाड़र भंगिम कुटिल दीठ॥
सो धनि हियार माझारे जागे।
विद्यापति कह नविन रागे।

प० त० ११०३ ; न० गु० २०८

(११) ख

आजुक लाज तोहे कि कहब माइ।
जल देइ धोइ जदि तवहु न जाइ॥
नाहि उठल हाम कालिन्दि तीर।
अंगहि लागल पातल चीर॥
तहिं बेकत भेल सकल सरीर।
तहिं उपनीत समुखे जदुवीर॥
विपुल नितम्ब अति बेकत भेल।
पालटिया तापर कुन्तल देल॥
उरज उपर जब देयल दीठ।
उर मोड़ि बैठलुँ हरि करि पीठ॥
हँसि मुख मोड़इ ढीठ माधाइ।
तनु तनु झापिते झाँपल न जाइ॥
विद्यापति कह तुहु अगेयानि।
पुनु काहे पलटि न पैठलि पानि॥

प० त० ७२७ ; न० गु० २६१

(१२)

कि कहब रे सखि रजनिक बात।
बहु दुखे गोङायलु माधव साथ॥
करे कुच झाँपये अधरे मधुपान।
वदने दशन दिया वधये परान॥
नव जौवन ताहे रस परचार।
रति-रस न जानये कानु से गोङार॥
मदने विभोर किछुइ नाहि जान।
कतये मिनति करि तभु नहि मान॥
भणये विद्यापति शुन वरनारि।
तुहुँ मुगधिनि सोइ लुबुध मुरारि॥

प० त० २०७ ; न० गु० १६६

(१२) *मन्तव्य*—न० गु० ने इस खाँटी बँगला पद को मैथिल रूप देने के लिए गमाओल, झापए, पिअ, जानए तेओ, मनइ प्रभृति शब्द बैठा दिए थे।

(१३)

ए सखि रंगिनि कि कहब तोय।
आजुक कौतुक कहने ना होय॥
एकलि आछिलुँ घरे हीन परिधान।
अलखिते आयल कमल नयान॥
ए दिगे झाँपइत तनु उदिगे उदास।
धरनी पसिए जदि पाओ परकास॥
करे कुच झाँपिते झाँपल न याय।
मलय सिखर जनु हिमे न लुकाय॥
धिक जाउ जिवन जौवन लाज।
आजु मोर अंग देखल ब्रजराज॥
भनइ विद्यापति रसवती राइ।
चतुरक आगे किए चतुराइ॥

पदकल्पतरु ७२६ ; न० गु० ५५६

(१४)

कह कह सुन्दरि रजनि विलास।
कैसने नाह पूरल तुआ आस॥
कतहुँ यतने विहि करि अनुमान।
नागर नागरि करु निरमान॥
अखिल भुवन महा तुहुँ वर-नारि।
आजुक रजनि किए कयल मुरारि॥
पियाक पिरीति हम कहइ न पार।
लाख वदन विधि न देल हमार॥
करे धरि पिया मोरे बैठायल कोर।
सुगन्धित चन्दन अंगे लेपल मोर॥
अपनक गज-मोति हार उतारि।
कण्ठे परयाल यतने हमारि॥
फुयल कबरी बान्धये अनुपाम।
ताहे बेढ़ेयल चम्पक दाम॥
मधुर मधुर दिठे हेरइ कान।
आनन्द जले परिपूरल नयान॥
भनइ विद्यापति भाव तरंग।
एबे कहि सुन सखि सो परसंग॥

प० स० पृ० ६१ ; प० त० ६६६ ; न० गु० ५७७

(१५)

ए धनि रंगिनि कि कहब तोय।
आजुक कौतुक कहल न होय॥
एकलि शुतिया छिलु कुसुम-सयान।
दोसर मनमथ करे फुलवाण॥
नूपुर रुनु-झुनु आयल कान।
कौतुके मुदि हाम रहल नयान॥
आयल कानु वैठल मझु पास।
पास मोड़ि हम लुकायलुँ हास॥
कुन्तल-कुसुम दाम हरि लेल।
बरिहा माल पुनहि मुझे देल॥
नासा मोतिम गीमक हार।
जतने उतारल कत परकार॥
कुंचुकि फुगइते पहु भेल भोर।
जागल मनमथ बान्धलु चोर॥
भनइ विद्यापति रसिक सुजान।
तुहु रसवति पहु सब रस जान॥

प० त० ७२८ ; कीर्त्तनानन्द पृ० २५५

(१६)

कह कह सखि निकुंज मन्दिरे
आजु कि होयल धन्द।
चपले झाँपल जनु जलधर
नील उतपल चन्द॥
फणी मणिवर उगरे निरखि
शिखिनी आनत गेल।
सुमेरु उपरे सुरतरंगिनी
केवल तरल भेल॥

किकिणी कंकण करु कलरव
नूपुर अधिक ताहे।
सुकाम नटने तुरित जतिकहु
ऐसन सकल सोहे॥
न कर गोपन निज परिजन
इह बुझि अनुमान।
विद्यापति कृत कृपाये ताहारि
कोन जन इहा गान॥

प० त० १०६३ ; न० गु० ६८०

(१७)

कि कहब हे सखि आजुक रंग।
सपन हि सुतल कुपुरुख संग॥
बड़ सुपुरुख बलि आओल धाई।
सुति रहल मुख आँचर झँपाई॥

काँचलि खोलि आलिंगन देल।
मोहे जगाए आपु निद गेल॥
हे विहि हे विहि बड़ दुख देल।
से दुख रे सखि सखि अबहु न गेल॥

भनइ विद्यापति इह रस धन्द।
भेक कि जान कुसुम मकरन्द॥

अज्ञात ; न० गु० ६६४

---

(१६) *मन्तव्य*—मूल पद विद्यापति का है, परन्तु अन्य किसी बंगाली कवि ने इसे भाषान्तरित किया है, एवं इस बात को सरल भाव से स्वीकार कर उन्होंने कहा है—
'इहा विद्यापतिकृत, एवं ताँहार कृपाय कोन एक व्यक्ति इहा गान करितेछेन।' विद्यापति की भाषा बंगाली श्रोताओं और पाठकों के लिए दुर्बोध्य होने के कारण इसे बंगाली लोगों को बोधगम्य बनाने के लिए कुछ सहज किया गया था।

(१७) *मन्तव्य*—इस पद का परिवेशन नेपाल पोथी के ११७ संख्यक पद को तोड़ कर बंगाली पाठकों के लिए किया गया है। नेपाल के पद के पंचम चरण में है—ए सखि कि कहब अपनुक दन्द।
सपनेहु जनु हो कुपुरुष संग॥
'अपनुक दन्द'—का अर्थ है अपने मन के साथ द्वन्द्व। किन्तु इसे न समझ कर किसी गायक ने इसे 'आजुक रंग' कर दिया है। द्वितीय चरण निरर्थक हो गया है। नेपाल के पद में है—"भँम न पिवए कुसुम मकरन्द", उसकी जगह पर उसे हल्का करके बंगला में लिखा है—"भेक कि जान कुसुम मकरन्द"। नेपाल पोथी में है—"कते जतने उपजाइअ गुण। कहल न बूझए हृदयक सून। इस भावगम्भीर वचन को हल्का करने के लिए वर्त्तमान पद में पंचम से अष्टम चरणों की संयोजना की गयी है।

(१८)

जटिला सास फुकरि तहि बोलल
बहुरि बेरि काहे ठाढ़ि।
ललिता कहल अमंगल सूनल
सति पतिभय अवगाढ़ि ॥

सुनि कह जटिला घटल कि अकुसल
घर सयँ बाहर होय।
वहुरिक पानि धरि हेरह जोगी
किए अकुसल कह मोय ॥
जोगेस्वर फेरि बहुरिक पानि धरि
कुसल करब बनदेव।
इहे एक अंक बंक विसंकओ
बन मधि पसुपति सेव ॥
पुजनक तन्त्र मन्त्र बहु आछए
से हम किछु नहि जान।
जटिला कह आन देव कहाँ पाओब
तुहुँ बीज कर इह दान ॥

एत सुनि दुहु जन मन्दिर पइसल
दुहु जन भेल एक ठाम।
मनमथ-मन्त्र पड़ाओल दुहु जन
पूरल दुहुँ मनकाम ॥
पुनु दुहु जन मन्दिर सयँ निकसल
जटिला सयँ कह भाखी।
जब इह गौरि अराधने जाओब
विधवा जन घर राखी ॥
एत कहि सबहु चलति निज मन्दिर
जोगी चरन प्रनाम।
विद्यापति कह नटवर सेखर
साधि चलल मनकाम ॥

प० त० ३६६ ; न० गु० ४३४ ; सा० मि० ७४

अनुवाद - जटिला सास उस समय चिल्ला कर बोली, बहू, इतनी देर वाहर क्यों खड़ी हो ? ललिता ने कहा, अमंगल सुना है (इसी लिए) सती (राधा) पतिभय (पति का अमंगल) निश्चित समझ रही हूँ। (ललिता की बात सुन कर) जटिला घर से वाहर आकर बोली, (बहू को) क्या अमंगल हुआ ? (हे) योगि, बहू का हाथ धर कर देखो, क्या अमंगल हुआ मुझको कहो। योगेश्वर ने फिर से बधू का हाथ धर कर (देख कर) कहा, वनदेवता कुशल करेंगे। (हाथ की) यही एक रेखा वक्र और शंकायुक्त है वन में पशुपति की सेवा (पूजा) करो (उससे मंगल हो जाएगा)। (योगी कह रहा है) पूजा के मन्त्र-तन्त्र अनेक हैं, वह सब मैं कुछ नहीं जानता। जटिला ने कहा, अन्य गुरु मैं कहाँ पाऊँगी, तुम ही इसे बीज मन्त्र दान करो। जटिला के इतना कहने पर दोनों ने घर में प्रवेश किया, दोनों एक जगह एकत्र हुए। मन्मथ ने दोनों को मन्त्र पढ़ाया, दोनों की मनोकामना पूर्ण हुई। उसके बाद दोनों घर से बाहर हुए, जटिला से योगी ने कहा, अभी यह गौरी (सुन्दरी) (पशुपति की) आराधना के लिए जाएगी, (उस समय विधवा को घर में रहना पड़ेगा। योगी के इतना कहने पर सब योगी के चरण छू छू कर अपने घर गये। विद्यापति कहते हैं, नटवर शेखर मनोकामना साध कर चले।

(१८) *मन्तव्य*—जटिला और ललिता नाम गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की सृष्टि है। इसी लिए एवं इसके भाव और भाषा के साथ विद्यापति के भाव और भाषा की सम्पूर्ण विभिन्नता देखकर इसे बंगाली विद्यापति की रचना माना गया है।

(१६)

अवनतवयनि धरनि नखे लेखि।
जे कह स्यामनाम ताहे न पेखि॥
अरुन वसन परि विगलित केस।
अभरन तेजल झाँपल वेस॥
नीरस अरुन कमल-वर-वयनि।
नयननोर वहि जाओत धरनि॥
ऐसन समय आओत वनदेवि।
कहय चलह धनि भावुक सेवि॥
अवनतवयनी उतर नहि देल।
विद्यापति कह से चलि गेल॥

प० त० १५२१; सा० मि० ६१; न० गु० ३७२

(२०)

छोड़ल अभरन मुरली विलास।
पदतले लुठये सो पीतवास॥
जाक दरस विने झरय नयान।
अब नहि हेरसि ताक वयान॥
सुन्दरि तेजह दारुन मान।
साधये चरने रसिक वरकान॥
भाग्ये मिलये इह श्याम रसवन्त।
भाग्ये मिलय इह समय वसन्त॥
भाग्ये मिलय इह प्रेम सङ्गाति।
भाग्ये मिलय इह सुखमय राति॥
आजु जदि मानिनि तेजवि कन्त।
जनम गोङायवि रोइ एकन्त॥
विद्यापति कहे प्रेमक रीत।
याचित तेजि ना हय समुचित॥

प० त० २०३८; सा० मि० ५७ : न० गु० ३८३

(२१)

तुहुँ यदि माधव चाहसि नेह।
मदन साखि करि खत लेखि देह॥
छोड़वि केलि-कदम्ब विलास।
दूरे करवि निज गुरुजन आश॥
मो विने सपने ना हेरवि आन।
हामारि वचने करवि जल पान॥
रजनि दिवस गुण गायवि मोर।
आन युवति कोइ ना करवि कोर॥
ऐछन कवज धरव यब हात।
तबहि तुया सञे मरमक बात॥
भणह विद्यापति शुन वरकान।
मान रहुक पुन याउक पराण॥

पदकल्पतरु ५२१; संकीर्त्तनामृत पद ६६; न० गु० ५२१

(२१) मन्तव्य—अमूल्य विद्याभूषण के संस्करण में ४७२ और ५३६ पदरूप में दो बार मुद्रित हुआ है।

(२२)

बाजत द्रिगि द्रिगि धोद्रिम द्रिमिया ।
नहति कलावति माति स्याम संग
कर कर ताल प्रबन्धक ध्वनिया ॥

डग मग डम्फ द्रिमिकि द्रिमि डिमि मादल
रुनु झुनु मञ्जीर बोल ।
किंकिनी रनरनि बलआ कनकनि
निधुबने रास तुमुल उतरोल ॥

बीन, रबाब मुरज स्वरमण्डल
सा रि ग म प ध नि सा बहुविध भाव ।
घटिता घटिता धुनि मृदंग गरजनि
चंचल स्वरमण्डल करु राव ॥

स्रम भरे गलित लुलित कबरीजुत
मालति माल विथारल मोति ।
समय वसन्त रास रस वर्णन
विद्यापति मति छोभित होति ॥

प० त० १५०२ ; न० गु० ६१० ; सा० मि० ४२

(२३)

कानुमुख हेरइते भाविनी रमनी ।
फुकरइ रोयत झर झर नयनी ॥
अनुमति मागिते वर-विधु-वदनी ।
हरि हरि सबदे मुरझि पड़ु धरनी ॥
आकुल कत परबोधइ कान ।
अब नहि माथुर करब पयान ॥
इह सव सबद पसिल जब स्रवने ।
तब विरहिनी धनी पाओल चेतने ॥

निज करे धरि दुहुँ कानुक हात ।
जतने धरल धनी आपनक माथ ॥
बुझिया कहये वर नागर कान ।
हाम नहि माथुर करब पयान ॥
जब धनी पाओल इह असोयास ।
बैठलि दुहुँ तब छोड़ि निसोयास ॥
राइ परबोधिया चलल मुरारि ।
विद्यापति इह कहइ न पारि ॥

प० त० १६१६ ; न० गु० ६२१

(२४)

सजल नयन करि पियापथ हेरि हेरि
तिल एक हये युग चारि ।
विहि बड़ दारुण ताहे पुन ऐसन
दूरहि करल मुरारि ॥
सजनि कीये करब परकार ।
के मोर करमफले पिया गेल देशान्तरे
नित नित मदन-झंकार ॥

नारीर दीघ निशास पड़ुक ताहार पाश
मोर पिया यार काछे वैसे ।
पाखी जाति यदि हआं पिया पाशे उड़ि याओ
सब दुख कहों तछु पाशे ॥
आनि देइ पिउ राखह आमार जिउ
को इह करुणावान ।
विद्यापति कह धैरज धर चिते
तुरितहिं मीलब कान ॥

प० स० पृ० १२२; पदकल्पतरु १६४२; सा० मि० ८१

(२५)

हम अभागिनी दोसर नहि भेला।
कानु कानु करि जनम बहि गेला॥
आओब करि मोर पिया चलि गेला।
पूरबक जत गुन विसरित भेला॥

मने मोर यत दुख कहिब काहाके।
त्रिभुवने एत दुख नाहि जने लोके॥
भनइ विद्यापति सुन धनि राइ।
कानु समझाइते हम चलि जाइ॥

प० त० १६७२; न० गु० ६४८; सा० मि० ६६

(२६)

नाह दरस सुख विहि कैल वाद।
आँकुरे भाङल बिनि अपराध॥
सुखमय सागर मरुभूमि भेल।
जलद नेहारि चातक मरि गेल॥
आन कयल हिये विहि कैल आन।
अब नहि निकसय कठिन परान॥

ए सखि बहुत कयल हिय माह।
दरशन ना भेल सुपुरुख नाह॥
स्रवनहि स्याम-नाम करु गान।
सुनइते निकसउ कठिन परान॥
विद्यापति कह सुपुरुख नारी।
मरन समापन प्रेम विथारी॥

प० त० १६९२; प० स० पृ० १४६; सा० मि ८४; न० गु० ६७४

(२७)

येखाने सतत बइसे रसिक मुरारि।
सेखाने लिखिय मोर नाम दुइ चारि॥
सखिगन गनइते लैय मोर नाम।
पिया बड़ विदगध विहि मोर नाम॥

दिने एक बेरि पिया लिये मोर नाम।
अरुणा-दुलभ करे दिये जल-दान॥
एइ सब अभरन दिह पिया ठाम।
जनम अवधि मोर इह परनाम॥

भनइ विद्यापति सुन बरनारि।
दिन दुइ चारि बहि मिलब मुरारि॥

स० स० पृ० १२७; प० त० १६८०; न० गु० ६४६

(२८)

दोंहार दुलह दुहुँ दरसन भेल।
विरह जनित दुख सब दुरे गेल॥
करे धरि वैसायल विचित्र आसने।
रमन-रतन-स्याम रमनी-रतने॥

बहुविधि बिलसए बहुविधि रंग।
कमल मधुप येन पाओ संग॥
नयाने नयान दुँहार बयाने बयान।
दुहुँ गुने दुहु गुन दुहुँजने गान॥

भनइ विद्यापति नागर भोर।
त्रिभुवन-विजयी नागरि ठोर॥

प० त० ११०७; न० गु० ८२३

(२१) *मन्तव्य*—न० गु० ने पंचम और षष्ठ चरण छोड़ दिए थे, क्योंकि उन्हें जरा भी मैथिली में रुपान्तरित नहीं किया जा सकता है।

(२९)

कि करिब कोथा याब सोयाथ न हय।
ना याय कठिन प्राण किवा लागि रय॥
पियार लागिये हाम कोन देश याब।
रजनी प्रभात हैले कार मुख चाब॥

बन्धु यावे दूर देशे मरिब आमि शोके।
सागरे तेजिब प्राण नाहि देखे लोके॥
नहेत पियार गलार माला ये परिया।
देशे देशे भरमिब योगिनी हइया॥

विद्यापति कवि इह दुख गान।
राजा शिवसिंह लछिमा परमाण॥

(३०)

मरिब मरिब सखि नियम मरिब।
कानु हेन गुणनिधि कारे दिया याब॥
तोमरा यतेक सखि थेको मझु संगे।
मरणकाले कृष्णनाम लिखो मझु अंगे॥
ललिता प्राणेर सखि मन्त्र दिये काणे।
मरा देह पड़े येन कृष्णनाम शुने॥

ना पोड़ाइओ राधा अंग ना भासाइओ जले।
मरिले तुलिया रेखो तमालेरि डाले॥
सेइ त तमाल तरु कृष्णवर्ण हय।
अविरत तनुमोर ताहे जनु रय॥
कबहुँ सो पिया यदि आसे वृन्दावने
पराण पायव हाम पिया-दरशने॥

पुन यदि चाँद-मुख देखने ना पाव।
विरह-आनल माह तनु तेयागिव॥
भनये विद्यापति शुन वर-नारि।
धैरय धर चिते मिलब मुरारि॥

वैष्णवपाद लहरी, १६२

(३१)

शीतल तछु अंग देखि परश रस लालसे
करल कुल धरम गुण नाशे।
सोइ यदि तेजल कि काज इह जीवने
आनलो सखि गरल करि ग्रासे॥
प्राणाधिका रे सखि काहे तोरा रोयसि
मरिले हाम करवि इह काजे।
नीरे नाहि डारबि अनले नाहि दाहबि
राखबि इह बरजकि माझे॥

हामारि दोनो बाहुधरि सुदृढ़ करि बाँधवि
श्यामरुचि तरु तमाल डाले।
प्रति दिवस सवहुँ मिलि नियड़े आसि देखबि
शयन तेजि उठइ उषाकाले॥
मझु युगल श्रवणमूले कृष्णनाम बोलबि
समय बुझि तोरा सरले मिले।
ललाट हृदि बाहुमूले श्यामनाम लिखबि
तुलसी दाम देयबि मझु गले॥

ललिता लह कँकन विशाखालह अंगुरि
चित्रा लह निर्मल चरिते।
विरह अनल राधे सतत हि कातर
शुनि भेल विद्यापति चिते॥

नवद्वीप व्रजवासी और खगेन्द्रनाथ मित्र सम्पादित श्रीपदामृतमाधुरी, चतुर्थ खंड पृ० ७१

(३२)

कालुक दिन हाम मथुरा समागम
पन्थहि दरशन भेला।
तोहारि कुशल यत पुन पुन पूछत
लोरे नयन ढरि गेला॥

पीत निचोले नयनयुग मोछइते
पुन अचेतन तछु हेरि।
उरुपर थोइ चापि खिति लूठइ
फुकरि रोइ कत बेरि॥

तुया बिने राति दिवस नाहि यावइ
ए तुया बुझलों अनुमाने।
मोहे विछुरल बलि कबहुँ ना बोलवि
कवि विद्यापति भाने॥

१७७१ खृष्टाब्द में अनुलिखित संकीर्त्तनामृत का ४६८ संख्यक पद।

परिशिष्ट—(ग)

नेपाल पोथी में प्राप्त अन्य कवियों के पद

(१)

(राजपण्डित का पद)

प्रथम तोहर पेम गौरब
गरबे बाउलि गेलि।
अधिक आदरे लोभे लुबुधलि
चुकलि ते रति खेडि (लि)॥

खेमह एक अपराध माधव
पलटि हेरह ताहि।
तोह बिनु जञो अमृत पीबए
तैअओ न जीबए राहि॥

कालि परसु इ मधुर ये छलि
आजे से भेलि तीति।
आनहु बोलब पुरुष निदय
तेज पिरीति बैरिकुके एक॥
दोस मबसिअ राजपण्डित ज्ञान
कवि कमलाकमल रसिया धन्य मानिक जान॥

नेपाल पद ३०, पृ० १२ ख, पं ३; न० गु० ५०६ तालपत्र; और कीर्त्तनानन्द—न० गु० के पद की भणित॥

तुहुँ जौँ अब ताहि तेजब
इ अति कओन बड़ाइ।
तोँह बिनु जब जीवन तेजब
से बध लागब काँइ॥

बइरिहु एक अपराध खेमिय
राजपण्डित भान।
रमनि राधा रसिक यदुपति
सिंह भूपति जान॥

(२)

(कंस नृपति का पद)

परिजन करलए देहरि मुहदए
रोअए पथ निहारि।
कओन कहए पुर परिहरि माधुर
कओन दिन आओत मुरारि॥
कहि दए समदब के सुमझाओत
कठिन हृदय पिआ तोरा॥

पिआए विसरल नेह अवसन भेल देह
कत कत सहब सँताप।
कालि कालि भए मदन आगुकए
आओत पाउस पाप॥
कंस नृपति भण धैरज धर कर मन
पूरत सबे तुअ आस।

पद ४१, पृ० १६ ख, पं २; न० गु० ७०८

---

(२) मन्तव्य—न० गु० ने स्वीकार किया है कि यह पद उन्होंने नेपाल पोथी से लिया है, यद्यपि उन्होंने भणिता की कुछ कलियाँ नहीं छापी हैं।

(३)
(आतम का पद)

माधव रजनी पुनु कत ए आउति
सजनी शीतल ओरे चन्दा।
बड़े पुने मीलत गोविन्दा नारे की ॥
मुख ससि हेरि अधर अमिअ कत वेरी
आनन्दै ओरे पिवइ मुहा लए
मदन जि अवइ ना रे की।

हरि देल हरवा अलखित रतन पवरवा
जीवला एरे धरवा निधन नाव्वी
निधाने ना रे की।
आतम गवइ बड़े पुने पुनमत पवइ
मानसेओ पुरला सकल कलुख
विहि हरला नारे की ॥

पद ४८; पृ० १८ ख, पं ४; न० गु० ८२७

(४)
(कंसनरायण का पद)

पएरं पलि विनवओ साजन रे
जति अनुचित पलु मोर
जनु विघटावह नेहरा रे
जीवन यौवन थोल ॥
पलटहु गुणनिधि तोहे गुनरसिया
जीवे करह वरू साति

पुछलेहु उतरु न आल्हो रे
अइसन लागए मोहि भान
की तुअ मन लागलारे
किए कुशलं पॅचवान
काठ कठिन हिय तोहरा रे
दिनहु दया नहि तोहि

कंसनराएन गाविहा रे
निरमल नहि मोह।

पद ५६, पृ० २१ क, पं ५; न० गु० ४७६

(५)
(विष्णुपुरी वा विधुपुरी का पद)

प्रथम बएस जत उपजल नेह।
एक पराण दौ एकजनि देह ॥
तइसन पेम जदि बिसरह मोर
काठक चाहिक विहि तञ तोर ॥

ए प्रभु इ कुवन तेजह नारि।
तोह विनु नागर कओन तुहारि ॥
सुपुरुष चिन्हिक एहे परिणाम।
जेसन प्रथम तेसन अवसान ॥

टुटल पेम नहि लाग एकठाम
विष्णुपुरी कह वुझसि विराम ॥

पद ६०, पृ० २२ ख, पं ४ ; न० गु० के संग्रह में नहीं छपा है।

---

(३) *मन्तव्य*—न० गु० ने स्वीकार किया है कि यह पद उन्होंने नेपाल पोथी से लिया है, किन्तु भणिता की जगह उन्होंने 'आतम गवइ' के स्थल पर "कवि विद्यापति गवइ" लिखा।

(५) *मन्तव्य*—पोथी में कवि का नाम जिस प्रकार लिखा हुआ है उसे विधुपुरी भी पढ़ा जा सकता है।

(६)

(लखिमिनाथ का पद)

माधव जे बेरि दुरहि दुर सेवा।
दिन दस धैरज कर यदुनन्दन
हमे तप बरि बरू देवा॥
करइ कुसुम बेकत मधु न रहते
हठ जनु करिअ मुरारि।
तुअ अइ दाप सहए के पारत
हमे कोमल तनु नारि॥

आइति हठ जओ कर वह माधव
जओ आइति नहि मोरी।
काचि बंदरि उपभोग न आओत
उहे की फल पओवह तोली॥
एतिखने अमिअ बचन उपभोगह
आरति अदिने देवा।
लखिमिनाथ भन सुन यदुनन्दन
कलियुग निते मोरि सेवा॥

पद १२०, पृ० ४८ ख, पं १; न० गु० १६२

(७)

(सिरिधर का पद)

का लागि सिनेह बड़ाओल सखि अहनिसि जागि।
भल कए कपट अतुलओलन्हि हम अवला वध लागि॥
मोरे बोले बोलब सुमुखि हरि परिहरि मने लाज।
सहजहि अथिर जौबन धन तहु जदि बिसरए नाह।
भेलिहु धनक कुसुमसम जीवन गेलेहि उछाह॥
पिया बिसरल तह सबे लटहु
कवि सिरिधर हेन भान।
कंसनराएन नपवर मोरदेवि रमान॥

पद १४६, पृ० ४२ क, पं० १; न० गु० संग्रह में नहीं छपा है।

(८)

(नृपमलदेव का पद)

कुसुमित कानन माँजरि पासे
मधुलोभे मधुकर धाओल आसे॥
सजनी हिअ मोर झुरे
पिआ मोर बहुगुने रहल विदूरे॥

माघ मास कोकिल रव विरल नादे
मन बसि मन भर कर अवसादे॥
तन्हि हम पिरिति एके पराने
से आब दोसर राखत केओने॥

हृदय हार राखल डोरे।
असन पिआर मोर गेल छोड़िरे॥
नृपमलदेव कह सुन।

पद १७०, पृ० ६० ख, पं० ४; न० गु० के संग्रह में नहीं छपा है।

(९)

(अमृतकर का पद)

पहिलहि महघि भइए देवि डीठे।
इती पठाउबि आड़ी डीठे॥
सुतिअ रखिते किछु छोड़बि लाज।
कौतुके कामे साहि देव काज।
सुन सुन सुन्दरि बमधर गोए।
अकथिते अभिमत कतहु न होए॥

सखिजन अनइते रहब अंग मोलि।
परपति आओब विरह बोल वोलि॥
सिनेह लुकान करब अवधाने।
पहुकाहो एवह दोसरि पराने॥
भनइ अमृतकर भलिएहु वाणी।
के सुनि एहुधर सुमुखि सयानी॥

पद १७५, पृ० ६२ ख, पं १; न० गु० के संग्रह में नहीं छपा है।

(१०)

(अमिअकर का पद)

दस दिस भमि भमि लोचन आव।
तेसरि दोसरि अतहु न पाव॥
लगहि अछलि धनि विहि हरि लेलि
तलित लता सागरिका भेलि॥
हरि हरि विरहे छुइल बछराज।
वदन मलान कओने करु आज॥

चन्दन सीतल ताताहेरि काए।
तखने न भेलि ए हृदय मोहि नाए॥
ते . अधिकाइति मानस आधि।
धक धक कर मदनानल धाँधि॥
भनइ अमिअकर नागरि नाम।
आकरि कएलिहि सिरिजन काम॥

पद १७६, पृ० ६४, पं १; न० गु० के संग्रह में नहीं छपा है।

(११)

(पृथिविचन्द का पद)

एकसर अथिकहु राजकुमार।
सुमोनज बातहि अछए अपार॥

मति भरम निथि कओलइ आर।
जागि पहर के करत विआर॥
कइए सनान सुमुखि घर आव॥
पथिक वैसल पथ कर परथाव॥
विधि हरि लेलि मोरि पेअसि नारि।
सहइ न पालिअ मदन करालि॥

कओन संग वैसि खेपुबि कओने भाति।
लगहिक दोसर नहि देखि अराति॥
पहिआ नागर अथिक सही।
उकुति मनोरथ गेलु कही॥
पथिविचन्द भन मेदिनि सार।
इ रस बुझए मलिक दुलार॥

पद २०८, पृ० ७४ ख, पं० ५: न० गु० के संग्रह में नहीं छपा है।

(१२)

(भानु का पद)

कुमुदवन्धु मलीन भासा
चारु-चम्पक बन विकासा
शुद्ध पंचम गाव कलरव
कलय कण्ठी कुंजरे ॥
रे रे नागर जो न देखव
छोड़ अंचल जाव पथ नहि पथिक संचर
लाज डर नहि तो पराणी
दे मेराणी रे ॥

सुनिअ दन्दाजनक रोरा
चक्क चक्की विरह थोरा
निसि विरामा सघन
हकइत मुछना रे ॥
धोए हलु जनि कएज्ञ उज्जल
अबहु न बल्लभ तुअ मनोरथ
काम पुरओ रे ॥

हृदय उखलु मोतिम हारा
निफुल फुल मालति माला
चन्द्रसिंह नेरस जीवओ
भानु जम्पए रे ॥

पद २२४, पृ० ८० क, पं ४ : न० गु० ३२३

(१३)

(धीरेसर का पद)

सुख दरसने सुख पाओला।
रस विलसि ने भेला ॥

सारद चान्द सोहाञे ना।
उगतहि भय गेला ॥
हरि हरि विहि विघटाउलि
गजगामिनि बाला ॥

गुन अनुभवे मन मोहला।
अवसादल देहा ॥
दुलभ लोभे फल पाओला
आवे प्राण सन्देहा ॥

मेनका देवि पति भूपति।
रस परिणति जाने ॥
नर नारायन नागरा
कवि धीरेसर भाने ॥

पद २६६, पृ० ९८, पं १ ; न० गु० ४२

(१३) *मन्तव्य*—किन्तु न० गु० ने भणिता में दिया है—'नरनारायण नागरा कवि धीरे सरस भाने' किन्तु नेपाल पोथी में 'धीरे' और 'सर' के वाद 'स' नहीं है।

(१४)

(रुद्रधर का पद)

बोलितहु साम साम पए बोलितह
नहि से से त विसवासे।
अइसन पेम मोर विहि विघटाओल
दूना रहलि दुरासे ॥
सखि हे कि कहब कहइ न जाए।
मन्द दिवस फल गणहि न पारिअ
अपदहि कुपुत कन्हाइ ॥

जलहु कथन जञो भरमहु बोलितहु
जलथल थपितहु वेदे।
अनुपम पिरिति पराइति पलले
रहत जनम धरि खेदे ॥
अइसना जे करिअ से नहि करवें
कवि रुद्रधर एहु भाने ॥

पद २७०, पृ० ६८ क, पं ४ : न० गु० ४०१

(१४) *मन्तव्य*—न० गु० ने स्वीकार किया है कि यह पद उन्होंने नेपाल पोथी से लिया है। किन्तु 'कवि रुद्रधर एहु भाणे' कली के बाद उन्होंने जोड़ दिया है—राजा सिवसिंह रूपनरायन, लखिमा देवी रमाने ॥

परिशिष्ट (घ)

रामभद्रपुर पोथी में प्राप्त अन्य कवियों के पद

(१)
(अमृत का पद)

सुनि मनमथ सर साजे ।
समन्दि पटावह अओबह आजे ॥
वचनहु नहिनिरवाहे ।
जनि लोभो तह किअअ सताहे ॥
पेअसि पेम बुझायो ।
कइतव कएने कि फल कन्हायो ॥
सुपुरुष के सब आसा ।
चान्द चकोरी हरह पिआसा ॥

अभिनव कहहि न जाइ ।
पवनहु परसे कुसुम असिलाइ ॥
अधर न होइ उपामे ।
विद्रुम थोएल जनि एकहि ठामे ॥
समय न सह विधि मन्दा ।
मालति फुललि बासि मकरन्दा ॥
भनइ अमृत अनुरागे ।
कपटे कुसुमसर कौतुके गावे ॥

जसमादेवी रमाने ।
भैरवसिह भूप रस जाने ॥

(२)
(अमृतकर का पद)

आनन विकच सरोरुह रे देखि कैसन हो भान ।
नागर लोचन वरे भमि भमि कर मधुपान ॥
तोर नयन धनि नोनुअ रे हेरइते न रहए लोभ कि ।
केसर कुसुम कपोल तल रे अधर सुधाकर मन्द
जे न बुझए वरु से भल हे जे बुझ तो सओ मन्द ।
उर अरगज मुकुतावलि रे कइसन दहु परिभास
कुचयुग चकोर बझाओल रे मअने मेलिल जनि फास ।
सुकवि अमृतकरे गाओल रे पुहवी नव पंचवान ।
मधुमति देवि ·················हरि बिरेसर जान ॥

पद ४१२

परिशिष्ट (ङ)

नगेन्द्र बाबू के तालपत्र की पोथी में प्राप्त अन्य कवियों के पद

(१)

(रतनाई कृत पद)

कनकलता अरविन्दा
सदना माँजरि उगिगेल चन्दा ॥
केओ बोल भमय भमरा
केओ बोल नहि नहि चलय चकोरा ॥
केओ बोल सैकबालै वेढ़ला
केओ बोल नहि नहि मेघ मिलला ॥

संसय परु जनमही ।
बोल तोर मुख सम नही ॥
कवि रतनाई भाने ।
संक कलंक दुअओ असमाने ॥
मिलु रति मदन समाजा ।
देवलदेवि लखनचन्द राजा ॥

न० गु० १६ ; रागतरंगिणी पृ० ७६-७७

(२)

(गजसिंहकृत पद)

युगल शैलसिम हिमकर देखल
एक कमब दुइ जोति रे ।
फुललि मधुरि फुल सिन्दुरे लोटाएल
पाँति वैसलि गजमोति रे ॥
आज देखल जत के पतिआएत
अपरुब विहि निरमान रे ।

विपरित कमल कदलि तरे शोभित
थल पंकज के रुप रे ॥
गजसिंह भन एहु पुरुब पुनतह
ऐसनि भजए रसमन्त रे ॥
बुझए सकल रस नृप पुरुषोत्तम
असमति देइकर कन्त रे ॥

रागतरंगिणी, पृ० ७२ ; न० गु० १६

---

(१) *मन्तव्य*—किन्तु न० गु० के तालपत्र की पोथी में भणिता मिलती है :—

भनइ विद्यापति गावे
बढ़ पुने गुनमति पुनमत पावे ॥

(२) *मन्तव्य*—न० गु० लिखते हैं कि यह पद उन्होंने तालपत्र की पोथी और रागतरंगिणी में पाया है। रागतरंगिणी में यह पद गर्जासिंह कृत उल्लिखित है, इसका उन्होंने जिक्र नहीं किया है।

उनकी दी हुई भणिता—भनइ विद्यापति एहु पुरब पुन तह
ऐ सनि भजए रसमन्तरे ।
बुझए सकल रस नृप सिवसिंघ
लखिमा देइकर कन्तरे ॥

रागतरंगिणी के ४८ पृष्ठ में गजसिंह रचित नृपपुरुषोत्तम का नामयुक्त एक और पद है। उसे न० गु० ने विद्यापति की रचना नहीं कही है।

(३)

(उमापति का पद)

मानिनि !

अरुन पुरब दिसि बहलि सगरि निसि
गगन गमन भेल चन्दा।
मुनि[1] गेलि कुमुदिनि तइओ[2] तोहार धनि
मुनल[3] मुख अरविन्दा॥
कमल[4] वदन कुवलय दुहु लोचन
अधर मधुरि निरमाने
सगर सरीर कुसुम तुअ सिरिजल
किअ तुअ हृदय पखाने॥

असकतिकर[5] कंकन[6] नहि परिहसि[7]
हृदय हार[8] भेल भारे।
गिरिसम गरुअ मान नहि मुंचसि
अपरुब तुअ वेवहारे॥
अवगुन परिहरि हरखि हेरु[9] धनि
मानक अवधि विहाने।
हिमगिरि-कुमरि चरन हृदय धरि
सुमति उमापति भाने[10]॥

Bengal Asiatic Society 1884—Grierson's Twenty-one Vaisnavas Hymns. उमापतिकृत पारिजात हरण नाटक (J.B.O.S. 1917, Vol. III Pt. I, P. 44-46) न० गु० (तालपत्र) ३६६

(३) *पाठान्तर*—न० गु० के पद में निम्नलिखित पाठान्तर साधित हुआ है :—
(१) मुदि (२) तइअओ (३) मुदल (४) चान्द (५) करह (६) ककन (७) परिहह (८) हार हृदय (९) हेरह हरषि (१०) राजा शिवसिंह रूपनारायन
कवि विद्यापति भाने।

मन्तव्य—उमापति के पद का शेष अंश (भणितायुक्त) छोड़ कर अन्यान्य अंश लिख कर "एतस्मिन्नर्थे श्लोकः" वा "गीतार्थे श्लोकः" कहकर संस्कृत में उसका अनुवाद दिया हुआ है :—

रुचिगलति कौमुदी शशिनि कोमुदी हीयते।
पदन्ति कमलमन्ततः शृणु समन्ततः कुक्कुटाः॥
पुरोदिगतिरोहिता परितिरोहितास्तारकाः।
कथं तव वरोरु हे मुखसरोरुहे मुद्रणम्॥
आस्यं ते सरसीरुहेन रचितं नीलोत्पलाभ्यां दृशौ।
बन्धुकेन रदच्छदौ तिलतरोः पुष्पेण नासापुटम्॥
इत्येवं विधिना विधाय कुसुमैः सर्व्वं वपुः कोमलम्।
अवं मानसमश्मना पुनर्विद्धं कस्मादकस्मात् कृतम्॥
कान्ते किं तव कंचुकं न कुचयोर्णो हस्तयोः कंकणम्।
दोर्वल्ली वलया वलीमपि न दौर्ब्बल्येन विनश्यसि॥
हारं भारमिवावधारयसि चद्देवं गुरुं मेरुवत्।
मानं मानिनि किं न मुंचसि मनाक् तं भावमावेदय॥

(४)
(जशोधर नवकविशेखरकृत पद)

तोँह हँम पेम जतेदुरे उपजल
सुमरवि से परिपाटी।
आवे पर रमनि रंगरस भुलला[1] हे
कओन कला हमे[2] खाटी ॥
भमरवर मोरे बोले बोलब कन्हाइ।
विरह तन्त जदि जान[3] मनोभव
की फल अधिक जनाइ[4] ॥

सुनिअ सुमेरु[5] -साधुजन तुलना
सब काँ महिमा[6] घने।
तन्हि[7] निअलोभं ठाम जदि छाड़ब[8]
गरिमा गहवि[9] कओने ॥
पुरुप हृदय जल दुअओ सहजे चल
अनुवधें वाधें थिराइ।
से जदि न थिरवह सहसें धारें वह[10]
उचेओ नीच पये जाइ ॥

भनइ जसोधर नव कविशेखर[11]
पुहवी तेसर काँहाँ।
साह हुसेन भृंग सम नागर
मालति सेनिक ताँहाँ ॥

रागतरंगिणी पृ० ६७ ; न० गु० ४८४ (तालपत्र की पोथी और रागतरंगिणी)

(५)
(पंचाननकृत पद)

ओजे अभागलि देहरि लागलि
पथ निहारए तोर।
निचल लोचन सुन न वचन
ढरि ढरि खस नोर ॥
माधव कान्हि विसरलि वाला।
ओ नवि नागरि गुनक आगरि
भेलि निमालक माला ॥
रुखलि भुखलि दुखलि देखलि

देखलि सखि सभतें।
फजलि कवरि न वाध सामरि
सुन्दरि अवथ एते ॥
तोहे विसरलि अदिग पड़लि
दुवर झामर देह।
जनि सोनारें कसि कसवटा
तेभल कमल रेह ॥

(४) न० गु० पद का *पाठान्तर*—(१) भुल ना (२) कओने कला हम (३) बुझलि (४) बुझाइ (५) तुलए सुमेरू (६) धइरज (७) तोँहे (८) लोभे वचन आने चुकला (९) धरवि (१०) से जदि फुटल रह सहस धारे वह (११) भनइ विद्यापति नव कविशेखर

मन्तव्य—प्रथमतः नगेन्द्र बाबू ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह पद तालपत्र की पोथी और रागतरंगिणी में उभय आकार में पाया है ; किन्तु यह नहीं लिखा कि उभय आकारों की भणिता में कितना मारात्मक पार्थक्य रह गया है। द्वितीयतः देखा जाता है कि नवकविशेखर की उपाधि जशोधर की भी थी।

माधव तोरि पजारल आगि।
तोरित भएकहु मिझावह
बधश्रो जाएत लागि॥
भने पँचानन औखद आनन
बिरह मन्द व्याधि।
जतहि पाउति हरि दरसन
ततहि तेजति आधि॥

दिने सात पाँचे असन दितहुँ
से आवे नीर न पीव।
अधर अमिअ गए पिवावह
तओं जओं जीव तबो जीव॥
उससि उससि पड़ खसि खसि
आलि निहारए धाए।
जाहि वेआधि पराधिन औखध
ताहेरि कओन उपाए॥

न० गु० ७८३ (तालपत्र की पोथी)

(६)

परम करम मोर बाम।
सकल तकर परिनाम॥
जाहि देखि हसलउ कालि।
से अब देअ करतालि॥
सुमरि उमापति भान।
पुनहु करब समाधान॥
हिन्दुपति जिउजान।
महेसरि देवि विरमान॥

ताहि अवसर ताहि ठाम (माधव)।
किए विसरल मोर नाम॥
आव कि करब परकार।
अपजस भरल संसार॥
सबहि पाओल अवकास।
जगभ.र कर उपहास॥
कोन परि सखी सभ साथ।
उपर करब हम माथ॥

उमापतिकृत पारिजातहरण (J. B. O. R. S. 1917, March, पृ० ४७-४८)

न० गु० ६६६ (मिथिला का पद)

---

(६) मन्तव्य—न० गु० के लिए जिन लोगों ने लोगों के मुख से सुन कर विद्यापति के पदों का संग्रह किया था, वे लोग यह जानते हुए भी कि कुछ पद अन्य कवियों के हैं, उन्हें विद्यापति के नाम पर चला दिया है।

परिशिष्ट (च)

रागतरंगिणी में प्राप्त विद्यापति के समसामयिक कवियों के पद

(१)

(अमृत का पद)

सुरत समापि सुतल वर नागर
पानि पयोधर आपी।
कनक सम्भु जनि पूजि पुजारे
धएल सरोरुहे झापी॥
सखि हे मालति केलि विलासे।
मालति रमि अति ताइ अगोरलि
पुन रति रंगक आसे॥

वदन मेराए धएलन्हि मुखमण्डल
कसले मिलल जानि चन्दा
भमर चकोर दुअओ अलसाएल
पीवि अमिअ मकरन्दा।
भनइ अमियकर सुनु मधुरापति
राधाचरित अपारे।
राजा सिवसिह रुपनराएन,
लखिमा देइ कण्ठहारे॥

पृ: ८४-८५ ; पदकल्पतरु १९२३

पदकल्पतरु की भणिता
निशि अवशेषे जागि सब सखिगण
विच्छेद भये करु खेद।
भणये विद्यापति इह रस आरति
दारुण विहि कैल भेद॥

ग्रियर्सन ३७ ; न० गु० ३१७

(२)

सखि मधुरिपुसन के कतए सोहाओन
जदिअ तन्हिक उपाम हे।
तसु मन नेओछन सरद सुधानिधि
पंकज के लेत नाम हे॥
सखि आज मधुरिपु देखल मोए हटिआ
लोचन जुगल जुड़एला।

---

(२) *मन्तव्य*—न० गु० ने कहा है कि उन्होंने इसे तालपत्र की पोथी और रागतरंगिणी में पाया है, किन्तु रागतरंगिणी की भणिता का कोई उल्लेख न कर उन्होंने भणिता दी है—'सुकवि भनथि कण्ठहार रे'।

अधर वाँहि लोचन जखने निहारलन्हि
वाँक कहए भोंहभंगा।
तखनुक अवसर जागल पचसर
थाने थाने गेल अंगा ॥

दरसन लोभे पसार देल हमे
सखिमुखे सुनि बड़ रसी
तखने उगजु रस भेलिहु परवस
विसरलि दुध्रहुँ कलसी ॥

दानकलपतरु मेदिनि अवतरु
नृप हिन्दु सुरताने।
मेधादेइ पति रुपनराएन
प्रणवि जीवनाथ भाने ॥

पृ० १११–१२ : न० गु० ६०

(३)

(भीषमकृत तीन पद)

ससधर सहस सार बदुराव।
तैअओन वदन पटन्तर पाव ॥
देख देख आइ,
सरगक सरवस उरवसि जाइ ॥
विविध विलोकन अति अभिराम।
मनहु न अवतर नयन उपाम ॥
निकनिक मानिक अरुनिम जोति।
सहजे धवल देखिअ गजमोति ॥

आतर रात मजले अतिसेत।
एसन दमन तुलना के देत ॥
कांचिक रचि रोमावलि भास।
उपरँ तरल हरावला फास ॥
कर कौशल मनमथ मन लाए।
कुच सिरिफल नहि होअए नवाए ॥
करिकर उरु उपमा नहि पाव।
अपनहि लाजे संकोचि नुकाव ॥

हरिहर प्रणयिए भीषम भान।
प्रभावित पति जगनरायन जान ॥

पृ० ४२-४३

(४)

कीर कुटिल मुख ....।
विरह वेदने दह कोकक करुन सह सरुप कहत के आने।
हरि हरि मोरि उरवसि की भेली।
जाहइत धावओो कतहु न पावओँ मुरछि खसओँ कत वेरी।
गिरिनरि तरु अब कोकिल भमरवर, हरि नहाथि हिमधामा।
सवकपर ओो पेओँ सवे भेल निरदय, केअओो न कहए तसु नामा ॥
मधुर मधुर धुनि नेपुर रव सुनि भमओँ तरंगिणी तीरे।
मोरे करमे कलहंस नाद भेल नयन विमुख्रयो नीरे।
हरि......... ...सखिधरि कवि भीषम एहो भाने।
प्रभावति देइपति मोरंग महीपति नृप जगनराएन जाने ॥

पृ० ४७-४८

(५)

धवल जामिनि धवल हर रे
धवल चाँदन चीर।
निफल जनक विहार भेल रे
गिरिसँ विसरु पिअ थीर ॥
सजनिआ नवक जौवन नवक अनुरे
नवक नव अनुराग।
सारिखेत समेत हेमत
पिया नहि मोर अभाग ॥

वारि सँ परिसए गगन जलरे
परसे ँ पँचसर सोस।
गरजे चओ कलिका हि आलिंगओ
पाउसनिंअ नहि दोस।
धैरज धर धनि कन्त आओत
कुमर भीषम भान।
इस विन्दक नरनराएन
पति धरमा देइ रमान ॥

पृ० ६६

कंसनारायण के दो पद

(६)

तनु सुकुमार पयोधर गोरा।
कनकलता जनि सिरिफल जोरा ॥
देखलि कमल मुखि वरणि न जाइ।
मन मोर हरलक मदन जगाइ ॥

भोंहा धनुष धएल तसु आगु
तीष कटाख मदन शर लागु ॥
संवतरु सुनिअ ऐसन वेत्रहारा;
मारिअ नागर उवर गमारा ॥

कंसनराएन कौतुक गावैं।
पुनभले पुणमत गुनमति पावै ॥

पृ० ७७

(७)

साए साए पिआके कह विनती
इह ओ वसन्त रितु ओवहि गमावथु
एतएक भलि नहि रीति।

घन मलयजरस परसे लाग विस
दुसह सुनिअ पिकनादे।
अनल वरिस ससि निन्दओ न होय निसि
एतए आओर परमादे ॥

जे सवे विपरित से सवे कहव कत
के पतिआएत आने।
जखने आओब हरि हमहि निवेदय
जओ राखत पँचवाने ॥

सुमुखि समाद समादरे समदल
नसिरासाह सुरताने।
नसिराभूपति सोरमदेइपति
कंसनराएन भाने ॥

पृ० ६७

गोविन्ददासकृत दो पद

(८)

तीर तरंगिनि कदम्बकानन
निकट जमुना घाटे।
उलटि हेरैते उबटि परल
चरन चीरल काटे॥
सुकृत सुफल सुनेह सुन्दरि
गोविन्द बचन सारे।
सोरभ-रमन कंसनराएन
मिलत नन्दकुमारे॥

साए साए काँ लागि कौतुके देखल
निमिक लोचन आधे।
मोर मन मृग मरम वेधल
विषम वान वेआधे॥
गोरस विरस वासि विसेषल
छिकेहुँ छाउल गेहा।
मुरलि धुनि सुनि मन मोहल
विवेहुँ भेल सन्देहा॥

पृ० १००-१०१ : न० गु० ५६

(९)

तुअ गुनगन कहि आँनलिअ साहिटारि
दैए सुमुखि विसवास।
तें परि पराइअ जें पुनु पाविअ
परधन विनु परयास॥
जपल जनम सत मदन महामत
विहि सुफलित करु आज।
दास गोविन्द भन कंसनराएन
सोरभ देवि समाज॥

अगर उगर गारि मृगमदरस
कए अनुलेपन देह।
चलति तिमिर मिलि निमिषे अलख भेलि
वाचकसनि मसिरेह॥
हे माधव हेरह हरखि धनि चान उगलि जनि
महितले मेटि कलंक।
घर गुरुजन हेरि पलटति कतवेरि
ससिमुखि परमसंक॥

पृ० १०१-१०२

मन्तव्य (८)—न० गु० ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यह पद रागतरंगिणी से पाया है, किन्तु भणिता छापने के समय लिखा है— विद्यापति वचन सारे
कंसदलननरायनसुन्दर
मिलत नन्दकुमारे॥

समाप्त

पदों के प्रथम चरण की सूची

(दाहिनी ओर पदों की संख्या है)

अ

विद्यापति-पदावली की शब्दसूची

(दाहिनी ओर के अंक पदसंख्यासूचक हैं)

अमरख चाहि—अमर्षवशतः ३२५, ३४३
अम्बर—वसन ५, ४६१
अमिल—अमूल्य २३५, ४८१
अमोल—अमूल्य ३५, ३६२, ३८२, ४७१
अरगजा—अजगर ६०४
अरजल—अर्जन किया ५२८
अरतल—अनुरक्त २६६
अरथ—अर्थ २३६
अरथित—उपयाचित १२१, १३७, १५०, २७५
अरस—मलिन ३
अरसी—आईना १३४
अराधिअ—आराधना करके १६१
अराहिअ—आराधना करेगी १३२
अरु—और २०, ११६, २६१, ४२६
अरुझाई—लिपटा कर २१
अरुझाव—लिपट जाता है ४६४
अरुझायल—लिपट गया २१४, २२६, ५२७
अलिरल—अंगीकार ४७८
असकसाहि—दुर्निवार २१६
असत्रौलिहे—समझाया ४३८
असहनि—असहिष्णु ४३७
असिलाए—म्रियमान ५१७
असोग—अशोक १४०
अहिसिर—सर्प के सिर पर ३६६
अंसुक—वस्त्र २८६
अयानी—अज्ञानी ३८८

आ

आइत—आते हुए ६०१
आइतौ—आज तो ७६६
आइति—आयत्त १६०, २६७, ३१३, ३२३, ३८६, ४३१, ४६४
आइलिछइन्हि—आते है ७८७
आउति—आते हुए ३३२
आएल—आगत ४०७
आओ—और ११३
आओत—आते हुए १७४, ५१५
आओति—आयेगी, बदलालेगी ४८३
आओन—आने का ५०८
आओब—आवेगा २२३
आओर—और ५२२ (घ)
आक—अकवन ६१६
आकट—कठिन ४६६
आकरए—आकर्षण करे ५६२
आकुस—आकुल २५७
आखर—अन्तर, संकेत ३२८
आगर—अग्रणी, श्रेष्ठ ७३, ६८७
आगरि—अग्रगण्या २३, २४१, ३०६, ५५८
आगा—आगे १४६
आगि—अग्नि १४७, १७४, २७६
आगिल—पूर्ववर्ती, भविष्य का, ६१, १६७, ३८१
आगिहि—अग्नि २२३
आगी—अग्नि १५६, २४६, ४०५, ५४६
आगु—भविष्यत् ४७८
आंग—अंग ५७
आचर—अंचल ७७, ४१८
आछरि—धक्का देकर ५६२
आछलि—थी ६२३
आजुरि—अंजलि १८३
आटए—शरसन्धान करे ७८३
आडमुरे—आडम्बर में ६०३
आड़ेहु—आड़, तिर्य्यक ४०७
आतपचर—उत्तापभोगी ५३७

इ

ई

उ

ओ

ओकादिस—दूसरी तरफ ८
ओंग—अंग १७३
ओछाइअ—बिछा कर ४१७
ओछाओन—बिछावन ५६
ओछाओल—बिछाया ४१६
ओछी—अच्छा १३६
ओछेओ—तुच्छ १२०
ओज—छलना, आपत्ति ४२५, ५०२
ओझराएल—उलझ गया ३०५
ओठ—ओष्ठ ३७१, ४८८
ओत—अन्तर्व्यापी १३८
ओत—अन्तराल ३८५, ५४०
ओतए—इसके वाद ५५६
ओतए—वहाँ १००, ४१५, ४७४
ओते—गोपन, अन्तराल ९५
ओतहि—छिपे हुए १४८
ओतहु—वहाँ ४३८
ओभरे—उस ओर ३१६
ओर—सीमा १२५, १३२, ३८२
ओल—सीमा १४, १२०, २७२, ४२२, ४२५, ४७५, ५१०, ५३४, ५६१
ओललए—मीठी वात कहे ५६१
ओलाह—सीमा ५२४
ओड़—सीमा ७४, १२२
ओहओ—वह भी १४८
ओड़ल—दिखा दिया १८८
ओघट—अघाट ३४६

क

कह—कर के ३२६
कइए—कभी भी २६८
कइतवे—छल करके १३२
कउतुक—कौतुक २४
कउलति—अंगीकार ४०४
कउसल—कौशल ३५६, ३७०
कउड़ि—कौड़ी ५६
कए—करके ४६७
कएकहु—करके १३५
कएल—किया २७
कएलह—किये २६७, ३७६, ५०७
कएलाहु—करके भी १०८
कओन—कौन २
कओने—कौन १४७, ३२२
ककरो—किसी का १३३
कके—क्यों १२६, ३७२, ४३४
ककें—क्यों, किस प्रकार ११४, १५४
ककेहु—क्यों ४२५
कच—केश ६१८
कंचन—सोना २५७
कंचने—कंचन के द्वारा ३४५
कओन—कौन २४२
कओनक—किसको ४०८
कट—अवधि ५३६
कटाख—कटाक्ष ४७७, ४८३
कठ—कठिन ४६०
कतए—कहाँ ५४, १०५, ११३, ३६१
कतओ—कहीं ७७२
कतने—कितना २४६
कतन्त—क्या ४१५
कत परि—किस तरह ४४८
कतहु—कभी भी ४६
कतहु—कहीं भी १६४, ५५६

कतय—कहाँ ७३
कता—कितना ४६२
कतिखन—कितनी देर ३७७
कतिवेरी—कितनी बार ७५
कथि—क्यों ६६
कथिलए—क्यों ५०७
कदव—कदम्ब १७५
कनक—स्वर्ण २२
कनकेआ—कनक-निर्मित २३६
कनकबलि—कनक बल्ली ४१६
कनहा—कन्हायी २३२
कनय—स्वर्ण १६८
कनयपर—कनक के ऊपर ५०१
कन्दरे—स्कन्ध पर १८५
कनियार—तीक्ष्ण ५३५
कनियारा—तीक्ष्ण ३०८
कनेठ—कनिष्ठ ६१६
कपट हेम—कृत्रिम सोना ३८५
कपार—कपाल,मस्तक ४४१
कपालि—भाग्य ५६१
कवने—कौन १४१
कवललि—कवलित हुई १४६
कवलु—कवलित हुआ ३७८
कवार—कपाट २०३
कवाल—कपाट ४७७
कवि—ब्रह्मा ३०८
कमन—कौन ६
कमन—कौन ४४१
कमनजञो—किस प्रकार २२२
कसने—कौन २५१
कमाओल साप—दन्तहीन सर्प ५१२

करइते—करने से ३११
करइला—करैला ४२३
करचाव—हाथ हिलाना अथवा फेरना ५५३
करज—नख ११६, ३०३
करजोली—हाथ जोड़कर ७४
करथु—करें ३०८
करलह—किया ४५१
करथि—करते हैं ३२१
करवह—करोगी ३६६
करवार—तलवार २१४
करम—अदृष्ट ५२२
करलाए—हाथ लगाकर ५४१
करस—कलस ३०१
करिनि—हस्तिनी २१६
कल—यन्त्र ५५०
कलइह—झगड़ा करके ४६३
कला—लीला ३६५
कलाओक—कलंक ८०
कलानिधि—चन्द्र ३६५
कलामति—कलावती ५५०
कलेस—क्लेश ५०८
कसउटा—कष्टिप्रस्तर ३०६
कसनिडोर—कमर में बांधने का डोरा १८६
कसमसि—यातना ५६४
कसि—कस कर, बलपूर्वक १११, २३४
कसिकइ—कसकर १३५
कसिथीर कस कर स्थिर करना ३२४
कसौटी—कसौटी ३८१
कह—कहता है २२०
कहए—कहने ५५०
कहत—कहेगा २७५

कहवसि—कहने १०६
कहवा—कहने ८२
कहवि—कहूँ २६०
कहह जनु—मत कहो २६१
कहहिं—कहो २४३
कहिलिओ—उक्त २६०
कहो—कहती हूँ ६
कयलह—किया था ८०
कउहार—नाव की हाल ६१४
का—जगह ४६१
काएव—कापुरुप ५०
काकु—काकुति ७
काग—काक २८
काच—कच्चा २८३
काछ—कच्चा ६१३
काछिअ—इच्छा करना ८६
काजि—क्यों ४१५, ५२०
काजर—काजल १०४
काटि—काटा ४३६
काता—अस्त्र विशेप ७७२
काति—कान्ति २६६
कादव—कीचड़ ४६५
कानट—जीर्ण वस्त्रखण्ड २६८
कानि—शत्रुता ४७८
काप—कर्प, कमल ५३५
कारणि—कारण ४१७
कारि—कृष्णवर्ण २५१, ३१०
कारिनास—कार्यनाश ४१४
कारि लगेनी—कृष्ण सर्पिनी २७०
काह—कभी भी १६३
काह—किस प्रकार ४८२

काहवाकार—तूर्यवाहक १३८
काहल—चक्का ४१९
काहल—तूर्यध्वनि ५११
काहि—किसके प्रति ५२१, ५२४
काहिक—किसी का २३५
काहु—किसी को भी १७४
काहुके—किसी को ६
काहुदिस—किसी ओर ५११
काढ़ि—वाहर करके १३१
किएपरि—किस प्रकार ४३४
किवाड़—कपाट २७९, २९०
किर—सुग्गा २६, २७८
किलय—किस प्रकार ३५७
कीदहु—क्या १६१, ४५६
कीर—सुग्गा २६, १९०, २१६
कुगत—अशुभगत ३२२
कुगयाँ—कुग्रामवासी २७६
कुज—कुच १९८
कुब्र—कूप ११३
कुटाख—कटाक्ष २८
कुटि—काट कर १३३
कुटिल—वंकिम ३५२
कुडिठि—कुदृष्टि ५१६
कुति—कहाँ ३१५
कुवलय—नील उत्पल ५७८
कुम्भार—कुम्हार ४३४
कुम्भिलइलिहु—म्रियमान हुई २१८, ४५४, ५४१
कुम्भीजल—अल्पजल ५६५
कुरंगिनि—हरिणी २६
कुलिस—वज्र १०४, ३६६, ४०६, ४२४
कुसियार—इक्षु १६७, ३२२, ४५८

ख

छ

ज

ध

न

वल्लभ—पति १२६
वला—वल से २५०
वलाहक—मेघ १००, २२३
वलिया—बलीय ६१६
वसय—वास करे १५२
वसी—वैठकर ३२८
वसु—वास करना २५
वसु—वास करो ३४७
वसुह—पृथ्वी पर १२०
वह—वहता है २२०
वहरि—वाहर, प्रकाश ३५२
वहलि—कट गयी १२२
वहीरि—वाहर २३२
वहुड़त—फिरेगा ४३३
वड़द—वलद ३६७
वड़ाइ—महत्त्व १४६, ५३३
वड़ाक—वड़े लोगों का १४६, ३७६
वड़ाकाँ—वड़े लोग ४२२
वड़ि—वड़ा २०६
वड़िश्र—वड़ा ५५२
वड़िवड़ाइ—श्रेष्टत्त्व ४३५
वड़ेँ—अनेक ३६७
वढ़ाउलि—वढ़ाया ७३
वढ़ाश्रोब—वढ़ाना २६४
वढ़ावए—वढ़ावे ४३०
वढ़ावसि—वढ़ाती है ३६४
वढ़ाए—वढ़ाकर ५५७
वाउर—वातुल ७६३
वाउलि—वावरी २१३
वाँके—वाँका, कुटिल २६२
वाखर—दिन की वेला में २८४
वाँक—वाँका १६
वाचा वचन ५५७
वाजए—शब्द करे ७७२
वाजलि—वाले ७१
वाजह—वोलो ६८
वाजु—पाश में २७४
वाट—पथ १०५, १८०, २४४, २६६, ३२७, ३४८, ३५६, ४६०
वाटल—त्याग हुआ है ५३६
वाटि—भाग करके ४३६
वाटी—वाट, पथ ३३
वाटे—पथ में २२२
वाटिया—वाट ७४३
वात—वातास २२३
वाद—कलह १७३
वाद दड़ाए—विवाद मिटा दे ५५२
वादी—दावीदार १४१
वाध—वोध ५०
वाध—वाधा ५२५
वानि—मूल्य १३४
वाने—मूल्य है ३८५
वापु—श्रेष्ठ २५१
वापुपुरुष—श्रेष्ठ लोग ६१
वापु—वेचारी २३२
वापुन—वेचारी ४६०
वाम—वैरी ३४, ५०
वासे—वामा को २१८
वार—वालक १३
वारल—मना करना १७१
वारवि—वाधा देना ६७२
वारल—मना किया ३४

वारहवान—वारहगुना ३०६
वारि—मना करके ११६
वारि—वाला ५३०
वारिद—मेघ ४४६
वारिस—वर्षा ३६६
वालभ—वल्लभ ५२७
वालमु—वल्लभ, पति, प्रिय ३१६, ३६५, ३७५, ५१२
वालभु—वल्लभ का १३७
वालभू—वल्लभ १५६
वाँलभू—वल्लभ ८०
वालमु—वल्लभ १८१
वालहिया—वाल्य सखी २०४
वालि—वाला २६४
वासक—वेशभूषा ३५८
वासर—दिवा २६४
वाह—वहि १५६
वाहुतरि—वाँहों से तैरकर ६१, ३३६
वाट—वन्या ४१५
वाड़िक—वन्या का १३१
व्याज—छल ५६०
वाँक—वाँका १६६
वाकमुह—वाँका मुख ४०७
वांधलिए—वँधी हुई ४३०
वाँधे—वान्ध ४५५
वाँह—हाथ ६७
वाही—वांह, हाथ १३२
विआर—विचार ५६
विकाएत—विकीन होगा २५२
विथार—विस्तार ६२५
विथरिअए—विकीर्ण करे २८
विके—विके २४६

बिख—विष ३८५, ५७३
बिखाद—विषाद १४८
बिखिसि—विशीर्ण ४१६
बिखट—च्युत होना ६
नष्ट होना ४७५
बिघटए—खोल दे ४८५
बिघटओलह—नष्ट किया ५१७
बिघटओलन्हि—व्याघात किया ४२८
बिघटति—विपरीत २६७
बिघटल—मुक्त २८३
बिघटाओल—बुरा किया ५२७
बिघटाओं—नष्ट करते हो ५३४
बिघटावे—नष्ट करे १५३, ४०५
बिघटि—विपरीत १४३
बिघटु—स्थानान्तरित ३६
बिघातन—क्षत ६६२
बिचच्छन—विचक्षण ३
बिचबिच—मध्य में ८६५
बिछाने—फैला कर ७६०
बिछुरल—विच्छिन्न हुआ १५८
बिछुड़ल—छोड़ा छोड़ी हुई ४१
बिछुरावे—विस्मृत होना १७१
बिछोह—विच्छेद १७४
बिजुअ—विद्युत ८३३
बित—वित्त ३८०
बितलअछि—काटी है ३०५
बिति—अतीत १२, ५०६
बितीत—अतीत ५०८
बिथरओ—विकीर्ण करे २१३
बिथरल—विस्तार किया २२१
बिथार—विस्तारित करता है ७१६

वोल—वात १६३
वोलदहु—वोले १६३
वोललन्हि—वोला था १६४
वोलाव—वजावे २५८, ४३९
वोलिअ चालिअ—वोलो अथवा करो ८३६
वोलि—आह्वान २५८
वोली—वात २३१
वौरा—पागल ६०४
वौरि—वैरी, शत्रु ७४८

भ

भआउनि—भयंकर ८५
भइआ—भाई १५९
भुइसूरे—भासुर २०३
भइये—होकर १८०
भउ—हुआ ४१९
भउह—भ्रु १७
भए—होकर ४६, २९५, ४९२
भएसक—हो सका ३६
भओ—हुआ १३८
भगइत—तोड़ते ५२, ३४५
भंग—सुन्दर ६०७
भंगे—भंगी, इंगित ३५२
भंगलए—तोड़ी १३२
भवूक भंग—भ्रु भंग ५२
भवे—भाव से १४१
भवूहक—भ्रु का १५४
भनावथि—कहलाता है ७९
भनिअए—कहे ३५९
भवनके—कुञ्जवन में ८६५
भम—विचरण करना २११
भयओं—भ्रमण करें १९१
भमह—भ्रमण करे ३२६
भमूमए—भ्रमण करके ४३
भमि—भ्रमण करके ४२५, ५३६
भमिकरि—भ्रमणकारी ४०२
भमे—भ्रमण करे ११
भरइत—निर्दिष्ट गति ३५०
भरमलि—भ्रमयुक्ता ७७
भरमहु—भ्रम से भी २४८
भरमैते—घूम घूम कर ४०२
भरला—पूर्ण ३३
भरतंग—धारण करती १८७
भरोस—भरोसा से ५५१
भल—अच्छे लोग ४५८
भलकए—अच्छी प्रकार ६३०
भलजन—अच्छे लोग ३२१
भलभए—अच्छा हुआ ५३९
भलाके—अच्छा लोगों का २७६
भलि—अच्छा ६२४, ५१४
भह—होकर ४५२
भयमीमा—भयंकर ३३७
भयाउनि—भयजनक ८५, ३३५
भयी—हुई ६४३
भ्रम—भ्रमण करता है ७८३
भँउह—भ्रु ३८, १३२, ३०३
भँओह—भ्रु ३८
भँगइते—तोड़ते २०३
भँडार—भण्डार ४२४
भाख—कहे ४३६
भाखह—कहना ४२९
भाखिए—कहा ३६
भाखी—कहके ८४२

भाखे—भापे ३४१
भागउ—भागेगा ७३१
भागल—पलायित ५६
भागि—सौभाग्य ६२३
भागे—भाग्यवश १०५
भाति—प्रकार, रूप ४६५
भादर—भादो १७८
भान—ज्ञान २१६
भानि—कहते हैं ५४८
भान्ति—भाति, शोभा २८३,५७२
भाने—भाव, अनुमान २६५
भाने—कहते हैं ३४६
भाव—अच्छा लगे २१७
शोभा पाए ४१६
भावइ—मोहित करे ७८४
भान—दीप्ति १४०,४२०
भाय—शोभा पाय ६८२
भांगल—टूटा ६६५
भांगिले भासा—बात न रखी ११४
भांगिवाके—तोड़ते ३३१
भांगु—टूटा ४१
भौंति—प्रकार, उपाय ४३८
भौंति—सौन्दर्य १०१
भिखिआ—भिक्षा ७७७
भिगि—भीग कर ६६१
भिनि—भीता ८५
भिनि—भित्ति ३३७
भिनमरवा—प्रात ८६५
भिनमाग—प्रात ६०
भीन—भिन्न १६६
भीन—विकट ३३४

भुअन—भुवन ४३
भुअंगम—भुजंगम ५५०
भुगुतल—उपभुक्त १६५,४०१
भुखस—क्षुधित २२३
भुगुति—भुक्ति ६०८
भुललाहे—भूलता है ८४२
भूखन—भूषण ४४१,५४१
भूँजिअ—भोग करके ५०
भूसन—भूषण ५४६
भूषल—क्षुधित ४८१
भेकधारी—भिक्षुक ६०८
भेटत—मिलेंगे ५४४
भेटताह—देखा है ६०१
भेद—रहस्य ३७६
भेम—भेम कीड़ा ४६५
भेलाहुँ—हुई ३८८
भेली—गयी ३४६
भैलौह—हुई ५६७
भेस—वेश ४६७
भोर—विह्वल ४३, १४३
भोर—भ्रम २८१, ४४३
भोर—भूलकर ५८६, ६१४
भौंरि—मुग्ध १५५, १६०
भोल—भोर ६४६
भौंह—भ्रु ३४४
भौंह—भ्रु २३१, ३०४, ३४४, ३४५

म

मअन—मदन ३२, १४८
मउल—मुकुट ७८६
मगन—प्रार्थी ७६४
मगले—माँगने से २६८

ल

लखिअ—देख रही हूँ २५१
लग—निकट ५६, ६३, ५८६
लगइछ—मालूम होता है ४४२
लगइछति—लगते हैं ८६८
लगले—लगाया ६०७
लगसौं—निकट से ४७४
लच्छन—लक्षण ६०५
लजाइ—लज्जित होकर ४१
लजाए—लज्जित होना २६१
लथा—छलना ३०२
लपटाए—लिपट जाए ४६५
लह—अनुमान हो ३७
लहए—साधित हो ३१२
लहति—अनुमान हो ३००
लहय—हो, लगे ४४६
लहु—लघु १५०, २८२ ३५३
लहु लहु—धीरे धीरे ६१
लहुड़ी—लड्डू २०४
लाइ—अवनत करके ३६
लाइ—लगाकर, दिया ४७२
लाइअ—निक्षेप किया ६
लाउलि—लायी ३५२
लाए—लगाकर दिया ३४४
लाएलि—लगाया ६८
लाओताह—लाएगा ७८०
लाग—स्थायी ७
लागत—लगेगा ५१
लागु—लगा, स्पर्श किया ७२
लागू—लिए ६०५
लागू—लगा २३३
लांघए—उल्लंघन करे ४८५

लाछि—लक्ष्मी ३४
लाज गमाए- लज्जा खोकर ३८४
लाथ—छलना २९६, ३४१, ४४४
लाट—सम्बन्ध २३५
लाव—लावे ३९७
लगाए ४९४
करे ९१
लावल—लगाए हुए २०
लावा—लावा २२१
लाविन—ले आवे ४६८
लार—राल ६०४
लालचे—लोभ से ९८
लाय—देकर २२१
लाड़लि—लालिता १२९
लिअ—लो ७७३
लिखिल—चित्रित ३३७
लिधुर—रुधिर ७७१
लिसि—होती है १३२
लिहल—लिखा ५६२
लिहले—लिया ३१७
लिहि—लिखकर ८०५
लुलए—ज्वाला से १२३
लुलल—लूटा ४८६
लुहबर—लुब्धकारी ५६२
लेख—गणना १०४
लेखे—हिसाब से १५६
लेथु—लें ८६७
लेनें—लेकर ५९७
लेवाके—लेने का १३
लेलि—लिया ६४३
लेलेछली—लिए थी १८१

साओरि—श्यामा, सुन्दरी ६६
साँच—सत्य २३६
सञ्चय ५६
साँचि—सञ्चय २५९
साजनि—सजनी ६७४
साजल—सजाया, सन्धान किया ४१
साजलि—सजाना ३३५
साजा—शोभा ८६
साँझहि—सन्ध्या को १५८
साटे—चाबुक २२२
साटि—शास्ति १०८, १४३, २९७
साठ—साथ, संग २३१
शास्ति २६८
साँठि—दबा कर ६८१
साति—शास्ति ७९, १०१, २९९, ३२३, ३३१, ३७९, ४४९, ४५८, ५२२, ५८०, ५७७
साधस—भय से ६२७
साधा—साध ३८
साँधि—सन्धि ३६
सानि—सँकेत ३८९
सानल—मिलाया १२०
साने—संकेत से २४४
सावधान—सचेतन २३, ७७, २४३, २९३
सामर—श्यामल २२७
सामरंग—श्यामवर्ण लोग १८, ३८, ५५४
सामरि—श्यामांगी १५१, ४५२, ५२०
सामि—स्वामी २५, ३३०, ५३६, ५६२
सारंग—पद्म, पशु, गज ३२५
सारी—साड़ी ८०५
साल—शेल ५१६
सार ५३५
सालय—शाल्य विद्ध करे ७०, ३७०
सासु—सास ५७३
सायक—शर २७
सायर—सागर ४८१
साह—राज ४३, १४२, १७३, १८८, ५६१
साहर—सहकार, आम्रवृक्ष १४७
साहि—साध कर १००
साहिअ—साध कर भी ३०
सिआर—शृंगाल ६२०
सिखओवि—सिखाऊँगी ५४०
सिचलि—सिञ्चन १६१
सीत—शीत ३५
सिधा—सिद्धि ६५६
सिधारह—गमन करो ३११
सिधि—सिद्धि ३६१
सिन—सेना ७२१
सिनायलों—स्नान किया ३३६, ४६३, ५६३
सिनेह—स्नेह ११७
सिमर—सेमर २२२
सिरि—श्री ४५४
सिरिखंड—श्रीखंड चन्दन २४
सिरिजु—सृजन किया २६५
सिरिफल—श्रीफल, वेल ७९६
सिरस—सिर में ८०
सिरिहि—शिरीषपुष्प
सीग—शृंग ३७२
सीचसि—छीटती है ३०, ४२३
सीच—सींच कर ५४१
सीठि—अवशिष्ट ५७४
सीधि—सिद्धि

ह